

VAG



125507
LBSNAA

સા.નં.સા.નં.સા.નં.સા.નં.સા.નં.સા.નં.સા.નં.સા.નં.

त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी

Academy of Administration

मसूरी

MUSSOORIE

पुस्तकालय

LIBRARY

अवाप्ति संख्या

Accession No.

12 5507

वर्ग संख्या, L

Class No.

615.536

पुस्तक संख्या

Book No.

VAC

॥ श्रीः ॥

❧ हरिदास-संस्कृत-ग्रन्थमाला ❧

१०६



श्रीमद्वाग्भटविरचितम्

अष्टाङ्गहृदयम्

‘भागीरथी’ टिप्पण्या शब्दकोषेण

चालङ्कृतम्

टिप्पणीकारः

पं० श्रीतारादत्तपन्त आयुर्वेदविचार्यः



चौखम्बा संस्कृत सीरिज बनारस-१

सं० २०१३]

मूल्यं ४)

[ई० १९५६

प्रकाशक
जयकृष्णदास हरिदास गुप्तः
चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस
बनारस-१

(सर्वेऽधिकाराः प्रकाशकेन स्वायतीकृताः)
Chowkhamba Sanskrit Series Office
P. O. Box 8, Banaras.
(INDIA)
1956

मुद्रक
विद्याविलास प्रेस,
बनारस-१

निवेदनम्

विदितमस्तु तत्र भवतां जिज्ञासूनां सिन्धुदेशलब्धजनिना-
सिंहगुप्तसूनुना विद्वद्वरेण वाग्भटेन, निखिलार्थसंहितानां, स्वाङ्ग-
परिपूर्णतया सर्वासां प्रत्येकं द्वादशसहस्रत्वेपि मिलित्वा लक्ष्य-
मेतत्वेन लक्षश्लोकपरिमित-ब्रह्मसंहितावत् कलिकवलितायुः-
प्रज्ञामेधावतां सुदुःसहाध्ययनमिति तासां सारभूतो गद्यपद्यात्मकः
संग्रहः कृतः, यः खलु-अष्टाङ्गसंग्रहनाम्ना प्रथितः, तस्याऽपि
निम्नीर्णतया, परमकारुणिकेन पुनरपि संक्षेपार्थं विद्यार्थिनाम-
सौष्ठवाय च पद्यात्मकं पृथगेव शास्त्रं (तन्त्रं) विरचितम् ।

तदिदम् 'अष्टाङ्गहृदयम्' इति स्वानुगुणनामधेयम् । अस्मिन्
तत्रै कायचिकित्साविषयाः सर्वे चरकसंहिताया उद्धृताः,
तस्यानां गद्यानां पद्यरचना, पद्यानाञ्च सरलतया परिवर्तनम्,
अनुष्टुप्छन्दसां च संक्षेपः, जटिलानां पदार्थानां सरलता,

विस्तीर्णानां सन्क्षेपः, शास्त्रार्थानाम्, अनुपयुक्तानां, द्विरुक्तानाञ्च,
परित्यागः तत्राऽसतां पदार्थानां भेडादिसंहिताम्यः स्वीकारः,
विकीर्णानाञ्च, क्रमिकतया निवेशनम्—इति तन्त्रस्य पृथक्-
त्वसाधनानि ।

शल्यतन्त्रविषयाः प्रायः सुश्रुतसंहिताया उद्धृताः, कुमार-
भृत्या विषयाः प्रायः काश्यपसंहितायाः, शालाक्य-विषयाः
निमिसंहितायाः, ग्रह-भूत-विषादयः सुश्रुतोत्तरस्थानात्प्रायः
संगृहीता इति तत्र तत्र धन्वन्तरि-निमि-कश्यपादीनां समादर-
पूर्वकं नामग्रहणेन स्पष्टयत्येव ग्रन्थकारः, तन्त्रोपसंहारे च—

इत्यात्रेयादागमय्यार्थ—सूत्रम् ।

तत्सूक्तानां पेशलानामतृप्तः ॥

भेडादीनां सम्मतो मक्तिचम्रः ।

पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ॥ ५६ ॥

(३० अ० ४०)

इति पुनर्वसु तच्छिष्याऽग्निवेशसंवादप्रतिपादनेन चरक-
संहितामयत्वं स्वतन्त्रस्य विशदयति तदिदम्—अष्टाङ्गहृदयमधीत

षडङ्गैरपि हृदयधारणार्हमिति प्रचलितोऽस्य प्रचारः संसारे,
मुद्रितश्च बहुधा बहुषु स्थलेषु परन्तु विद्यार्थिनां बभुत्सूनां
विदुषाश्च सुलभतायै गूढार्थज्ञानाय च सुरभारतीसमाराधनासक्त-
चित्तेन मया प्रातःस्मरणीयनामधेयया 'भागीरथ्या' टिप्पण्या
समलंकृतम् । परिष्कृतश्च नानाविधैः चिह्नैः । विषयभेदे सति—

तद्यथा—पद्योपरि शीर्षकदानेन, पद्यमध्ये *एतादृशचिह्न-
निवेशनेन रोगादिनामसु 'अर्दितम्' 'सुखः' 'कृच्छ्रः' 'याप्यः'
एवं चिह्नसमर्पणेन, समस्तपदेषु च 'व्रतदम्—अयमम्—असेवा'—
इत्याकारक—अमवारणाय व्रत—दम—यम—सेवा, गुरु—मन्द—हिम—
स्निग्ध—इत्यादिरीत्या अवग्रहः कृतः, वर्त्तमानसमये लजाजनक-
त्वेन सुदधातोः स्थाने समानार्थानां नुद धातुरादिष्टः, टिप्पणी-
चिह्नानि च १. एवं रीत्या पदादौ पदान्ते वा निवेशितानि
न मध्ये, पाठाऽव्यवधानाय । स्वविचारानुसारतः समयानुसारतश्च
प्रायः कठिनस्थले लिखितैव टिप्पणी, प्रथमान्तपददर्शनेन
त्रिलिङ्गभ्रमकराः—मज्जन्—प्लीहन्—प्रभृतयः स्वरूपतो निर्दिष्टाः,
क्षेपकाश्च श्लोकाः क्रमिकाङ्गरहिता () कोष्ठकेषु धृताः ।

अपि च दूरव्यवहिताऽन्वयिस्थले-अन्वयोपि दर्शितः,
अप्रसिद्धपदानां पर्यायाश्च, दर्शिताः, पारिभाषिकशब्दानां
कोशश्चान्ते योजित एव, औषधकल्पाध्यायश्च आवश्यकतया
पूर्वपीठिकारूपेण योजितः । महोपकारकतया-अग्रयाणि च
पूर्वपीठिकायामपि योजितानि ।

तदेवंविधमूलपुस्तकेन विद्यार्थिनां महानुपकारः स्यादिति—

एतद्ग्रन्थस्य पुनरपि मुद्रणप्रकाशनार्थं च सर्वेऽप्यधिकाराः
समोदं विद्याविलासयन्त्रालयाधिपतये श्रीजयकृष्णदास-
गुप्तमहोदयाय समर्पिताः, मन्येऽनेन संस्करणेन पिपठिषूणा-
मुपकारः स्यादेवेति ।

संशोधनश्च दत्तचित्ततया मया यथाशक्ति कृतम्, तथापि—

नेत्र-यन्त्र-परिचारक-दोषात्-पुस्तकेषु बहवो लिपिदोषाः ।

सम्भवन्ति हृदयालव एनान् मार्जयन्तु विषयग्रहणेहाः ॥१॥

विदुषामनुचरः—

श्री तारादत्तपन्तः

सङ्क्षिप्त विषयसूची



सूत्रस्थानम्

| विषयः | पृष्ठं | विषयः | पृष्ठं |
|--------------------------|--------|-------------------------|--------|
| प्रथमोऽध्यायः | | तृतीयोऽध्यायः | |
| मंगलाचरणम् | १ | ऋतुचर्याध्यायः | १४ |
| आयुर्वेदोत्पत्तिक्रमः | २ | षड्ऋतवः | ” |
| वातादिदोषाः | ३ | षड्ऋतुचर्या | ” |
| धात्वादिनिरूपणम् | ” | चतुर्थोऽध्यायः | |
| रसनिरूपणम् | ४ | रोगानुत्पादनीयाध्यायः | २० |
| गुणनिरूपणम् | ” | वातादिवेगधारणनिषेधः | ” |
| रोगीपरीक्षाप्रकाराः | ५ | वातादिवेगधारणेन उत्पन्न | |
| व्याधेः साध्यादिभेदादयः | ६ | रोगाणां समनोपायः | २१ |
| अचिकित्स्या रोगिणः | ” | धार्याः वेगाः | २३ |
| क्रमेण ग्रन्थस्य संग्रहः | ७ | पञ्चमोऽध्यायः | |
| द्वितीयोऽध्यायः | | मलशोधनम् | ” |
| दिनचर्याध्यायः | ८ | द्रवद्रव्यविज्ञानीया- | |
| सद्बृत्तलक्षणम् | ११ | ध्यायः | २५ |
| सद्ब्रतस्वरूपम् | १३ | तोयवर्गः | ” |

| | |
|------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| क्षीरवर्गः | २७ |
| दधिवर्गः | २८ |
| इक्षुवर्गः | २९ |
| मधुवर्गः | ३० |
| तैलवर्गः | ३१ |
| मद्यवर्गः | ३२ |
| मूत्रवर्गः | ३४ |

षष्ठोऽध्यायः

| | |
|---------------------------------|----|
| अन्नस्वरूपविज्ञानीया- ध्यायः | ३५ |
| शूकधान्यवर्गः | " |
| तृणधान्यवर्गः | ३६ |
| यवादिवर्गः | " |
| शिम्बीधान्यवर्गः | ३७ |
| कृतान्नवर्गः | ३८ |
| मांसवर्गः | ४० |
| शाकवर्गः | ४३ |
| फलवर्गः | ४८ |
| लवणादिवर्गः | ५१ |
| त्रिफलादिवर्गः | ५२ |

सप्तमोऽध्यायः

| | |
|-----------------|----|
| अन्नरक्षाध्यायः | ५४ |
|-----------------|----|

| | |
|----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| विषाक्तान्नपरीक्षा | ५४ |
| विषदातुल्लक्षणम् | ५५ |
| अग्न्यादौ विषपरीक्षा | ५६ |
| विरुद्धं भोजनीयम् | ५७ |
| निद्रागुणाः | ६० |

अष्टमोऽध्यायः

| | |
|------------------------------------------|----|
| मात्राश्रित्याध्यायः | ६३ |
| कफ-वात-पित्ताजीर्ण- लक्षणं चिकित्सा च | ६६ |
| रसाजीर्णम् | ६७ |
| सामान्याजीर्णम् | " |
| अजीर्णं कारणम् | " |
| भोजने पथ्यापथ्यम् | ६८ |
| भोजनकालः | ७० |

नवमोऽध्यायः

| | |
|--------------------------------|----|
| द्रव्यादिविज्ञानीया- ध्यायः | ७० |
| पार्थिवादिद्रव्याणि | ७१ |
| विपाकलक्षणम् | ७३ |

दशमोऽध्यायः

| | |
|----------------|----|
| रसभेदीयाध्यायः | ७४ |
|----------------|----|

| | |
|-------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| अम्लरसनिरूपणम् | ७५ |
| लवणरसनिरूपणम् | " |
| तिक्त-कटु-कषायरसाः | ७६ |
| मधुरादिस्कन्धाः | " |
| रसभेदबोधार्थं चक्रम् | ८० |
| एकादशोऽध्यायः | |
| दोषादिविज्ञानीया- | |
| ध्यायः | ८१ |
| देहस्य मूलं दोषादयः | " |
| रसादीनां श्रेष्ठकर्माणि | " |
| घ्राणादिमलानां वृद्धि- | |
| क्षयौ | ८३ |
| ओजसो निरूपणम् | ८४ |
| द्वादशोऽध्यायः | |
| दोषभेदीयाध्यायः | ८५ |
| वातादेः स्थानम् | " |
| वायोः पञ्चारमत्वम् | ८६ |
| पञ्चपित्तभेदाः | " |
| पञ्चधा श्लेष्मा | ८७ |
| दोषोपसंहरणम् | " |
| चयकोपरूपवृद्धिनि- | |
| दानम् | ८८ |

| | |
|-----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| हीनमिथ्यातियोगादि- | |
| निर्देशः | ८९ |
| त्रयोदशोऽध्यायः | |
| दोषोपक्रमणीयाध्यायः | ९४ |
| वातादेरुपक्रमः | " |
| परस्थानगतानां दोषाणां | |
| विकल्पेन चिकित्सो- | |
| पदेशः | ९६ |
| औषधकालनिर्देशः | ९९ |
| चतुर्दशोऽध्यायः | |
| द्विविधोपक्रमणीया- | |
| ध्यायः | १०० |
| शमनाख्यस्य लक्षणं | |
| प्रभेदश्च | १०१ |
| बृंहितादेर्लक्षणानि | " |
| कृश-स्थौल्यकारणा- | |
| दीनि | १०३ |
| पञ्चदशोऽध्यायः | |
| शोधनादिगणसंग्रहा- | |
| ध्यायः | १०५ |
| वमनविरेचनादिकराणि | " |

| | |
|----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| वायुपित्तश्लेष्मनाश- | |
| कानि | १०६ |
| जीवनीयाख्यो गणः | " |
| विद्यार्थादिगणः | " |
| सुरसादिगणः | १०९ |
| न्यग्रोधादिगणः | १११ |

षोडशोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| स्नेहाध्यायः | ११२ |
| सम्यक्स्निग्धलक्षणम् | ११६ |
| स्नेहव्यापत्प्रतीकारः | " |

सप्तदशोऽध्यायः

| | |
|------------------|-----|
| स्वेदविध्यध्यायः | ११८ |
| द्रवस्वेदः | ११९ |
| अस्वेद्यलक्षणम् | १२१ |

अष्टादशोऽध्यायः

| | |
|---------------------|-----|
| वमनविरेचनाध्यायः | १२२ |
| गर्भिण्यादीनां वमन- | |
| निषेधः | " |
| नवज्वरिणो विरेचन | |
| निषेधः | १२३ |
| पेयादिक्रमरूपम् | १२५ |

| | |
|----------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| योगायोगलक्षणम् | १२७ |
| अग्निमान्द्यात्पेयादिक्रमः | " |
| वमनादीनां मध्ये स्नेह- | |
| स्वेदप्रयोगः | १२८ |

एकोनविंशोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| वस्तिविधिरध्यायः | १२९ |
| यन्त्रस्य प्रमाणम् | १३० |
| अनुवासने मात्रा | १३१ |
| आतुरस्य नेत्रप्रपीडना- | |
| दिप्रकारः | १३२ |
| वस्तिप्रकल्पना | १३३ |
| मात्रावस्ति लक्षणम् | १३६ |
| स्त्रीणामुत्तरवस्तिवि- | |
| धानम् | " |

विंशोऽध्यायः

| | |
|----------------------------|-----|
| नस्यविधिरध्यायः | १३९ |
| ऊर्ध्वजत्रुविकारादौ नस्यम् | " |
| नस्यविशेषाः | १४० |
| नस्येऽयोग्याः | " |
| नस्ये कालनियमः | " |
| नस्ये संजातमूर्च्छायां | |

| | |
|-----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| प्रतीकारः | १४१ |
| नस्यार्थे तैलं शस्तम् | १४२ |
| अणुतैलनिर्देशः | १४३ |
| एकविंशोऽध्यायः | |
| धूमपानविधिरध्यायः | १४४ |
| रोगानुत्पत्तिनाशार्थं | |
| धूमपानं | ” |
| धूमपानस्य त्रैविध्यम् | ” |
| धूमवर्तिविधानम् | १४६ |
| द्वाविंशोऽध्यायः | |
| गण्डूषादिविधिरध्यायः | १४७ |
| गण्डूषधारणे तैलादिः | ” |
| गण्डूषधारणकालः | १४८ |
| ऋतुभेदेन मुखालेपः | १४९ |
| शिरोबस्तेविधानम् | १५० |
| मात्राप्रमाणम् | ” |
| त्रयोविंशोऽध्यायः | |
| आश्रोतनाञ्जनविधि- | |
| रध्यायः | १५१ |
| आश्च्योतननस्यविधिः | ” |
| अञ्जनप्रयोगः | १५२ |

| | |
|-----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| चतुर्विंशोऽध्यायः | |
| तर्पणपुटपाकविधि- | |
| रध्यायः | १५५ |
| तर्पणविधिः | ” |
| पुटपाककरणप्रकारः | १५६ |
| पञ्चविंशोऽध्यायः | |
| यन्त्रविधिरध्यायः | १५७ |
| यन्त्राणां लक्षणादिः | ” |
| यन्त्राणां कर्माणि | १६२ |
| षड्विंशोऽध्यायः | |
| शस्त्रविधिरध्यायः | १६२ |
| षड्विंशतिः शस्त्राणि | ” |
| शस्त्राणां कर्माणि | १६३ |
| प्रच्छादनप्रकारः | १६७ |
| सप्तविंशोऽध्यायः | |
| सिराव्यधविधिरध्यायः | १६९ |
| सिराव्यधनिषेधः | १७० |
| रोगविशेषेषु सिराविशे- | |
| षव्यधः | ” |
| सिराव्यधोत्तरं कर्त- | |
| व्यानि | १७२ |

| | |
|---------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| स्तम्भनीक्रियाचरणम् | १७४ |
| अष्टाविंशोऽध्यायः | |
| शल्यहरणविधि- | |
| ध्यायः | १७५ |
| शल्यानां पञ्चधागतिः " | |
| त्वगादिगतशल्यलक्ष- | |
| णम् | १७६ |
| त्वगादिनष्टे शल्ये स्थान- | |
| परीक्षादि | " |
| एकोनत्रिंशोऽध्यायः | |
| शस्त्रकर्मविधिर्ध्यायः | १८० |
| श्वयथूपक्रमादि | " |

| | |
|---------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| शस्त्रकर्मणः प्रागातुरस्य | |
| दृष्टान्नं देयम् | १८२ |
| शस्त्रकर्मविधिः | " |
| व्रणस्य बंधनादि | १८३ |
| त्रिंशोऽध्यायः | |
| क्षाराग्निकर्मविधि- | |
| ध्यायः | १९० |
| क्षारस्य श्रैष्ठ्यम् | " |
| क्षाराक्रिया | " |
| क्षारगुणाः | १९२ |
| अग्निकर्मविधिः | १९४ |

शरीरस्थानम्

| | |
|-----------------------|-----|
| प्रथमोऽध्यायः | |
| गर्भावक्रान्तिरध्यायः | १९७ |
| गर्भोत्पत्त्यादिः | " |
| शुक्रार्जवयोर्लक्षणम् | २०० |
| रजस्वलानियमः | २०१ |
| व्यक्तगर्भस्य लक्षणम् | २०४ |

| | |
|---------------------------|-----|
| आसन्नप्रसवाया लक्षणं | |
| तदुपचारादिश्च | २०७ |
| द्वितीयोऽध्यायः | |
| गर्भव्यापद्विधिरध्यायः | २१० |
| शस्त्रोपायसाध्या मूढगर्भ- | |
| चिकित्सा | २१४ |
| मूढगर्भस्त्रिया लक्षणादि | " |

विषयः पृष्ठं

तृतीयोऽध्यायः

अंगविभागशरीरा-

ध्यायः २१७

शरीरेऽन्नपाकप्रकारः २२३

मूत्राद्युत्पत्तिः २२४

जठराग्निभेदाः २२६

देहबलस्य त्रैविध्यं

लक्षणम् २२७

मज्जादीनां प्रमाणम् "

वातादिप्रकृतीनां

लक्षणम् "

वायोर्विभागादि २३१

चतुर्थोऽध्यायः

मर्मविभागशरीरा-

ध्यायः २३३

अन्तराधिमर्माणि २३५

मर्माघाते चिकित्सा २४१

विषयः पृष्ठं

पञ्चमोऽध्यायः

विकृतिविज्ञानीया-

ध्यायः २४२

रिष्टलक्षणादि २४३

छायाया द्वैरूप्यम् २४७

महाभूतच्छाया २४८

प्रतिरोगारिष्टम् २५०

जठराद्यरिष्टम् २५३

भिषजोरिष्टज्ञानाद-

रणम् २५७

षष्ठोऽध्यायः

दूतादिविज्ञानीया-

ध्यायः २५८

शुभशकुनलक्षणम् २६२

अशुभस्य दानादिभि-

र्नाशः २६६

निदानस्थानम्

| विषयः | पृष्ठं | विषयः | पृष्ठं |
|------------------------------|--------|-------------------------|--------|
| प्रथमोऽध्यायः | | महाश्वासलक्षणम् | |
| सर्वरोगनिदानाध्यायः २६८ | | ऊर्ध्वश्वासलक्षणम् २८९ | |
| प्राग्भूतस्य लक्षणादि २६९ | | हिध्मानिदानम् ” | |
| व्याधिकालः २७१ | | यमलादिनिरूपणम् २९० | |
| द्वितीयोऽध्यायः | | पञ्चमोऽध्यायः | |
| ज्वरनिदानाध्यायः २७३ | | राजयक्ष्मादिनिदाना- | |
| मन्त्रोत्पन्नज्वर लक्ष्० २७८ | | ध्यायः २९१ | |
| वर्षादिश्रुतौ ज्वरस्य | | राजयक्ष्मापरिचयः ” | |
| कारणम् २७९ | | संज्ञा व्युत्पत्तिश्च ” | |
| विषमज्वररूपम् २८१ | | राजयक्ष्मानिदानम् २९२ | |
| ज्वरमोक्षकाललक्षणम् २८२ | | तस्या एकादशरूपाणि | |
| तृतीयोऽध्यायः | | उपद्रवाश्च २९३ | |
| रक्तपित्तकासनिदाना- | | स्वरभेदनिदानम् २९५ | |
| ध्यायः २८३ | | अरोचकनिदानम् २९६ | |
| कासनिरूपणम् २८५ | | छर्दिनिदानम् ” | |
| चतुर्थोऽध्यायः | | हृद्दोगनिदानम् २९७ | |
| श्वासहिध्मानिदाना- | | तृष्णानिदानम् २९८ | |
| ध्यायः २८७ | | षष्ठोऽध्यायः | |
| तमकश्वासलक्षणम् ” | | मदात्ययादिनिदाना- | |
| छिन्नश्वासलक्षणम् २८८ | | ध्यायः २९९ | |

| | |
|---------------------|-------|
| विषयः | पृष्ठ |
| मद्यनिवृत्तिगुणाः | ३०२ |
| मदमूर्च्छासंन्यासाः | ” |
| मदनिदानम् | ३०३ |
| मूर्च्छानिदानम् | ” |
| संन्यासनिदानम् | ३०४ |
| मद्यपाने युक्तिः | ३०५ |

सप्तमोऽध्यायः

| | |
|--------------------|-----|
| अशोनिदानाध्यायः | ३०५ |
| वातपित्ताशोलक्षणम् | ३०९ |
| कफाशोलक्षणम् | ३१० |

अष्टमोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| अतीसारग्रहणीरोगा- | |
| ध्यायः | ३१३ |
| ग्रहणीरोगाः | ३१५ |
| अतीसाराद्ग्रहणी | |
| भिन्ना | ” |

नवमोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| मूत्राघातनिदाना- | |
| ध्यायः | ३१७ |
| अश्मरीलक्षणम् | ३१८ |
| वातवस्त्रादीनां लक्ष- | |
| णम् | ३१९ |

| | |
|-------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
|-------|--------|

दशमोऽध्यायः

| | |
|---------------------|-----|
| प्रमेहनिदानाध्यायः | ३२१ |
| कफ-पित्त-वातजादि- | |
| प्रमेहाः | ३२२ |
| प्रवेहिणां पिटिकादि | ३२५ |

एकादशोऽध्यायः

| | |
|---------------------------|-----|
| विद्वधनिदानाध्यायः | ३२८ |
| स्तनविद्वधिः | ३३० |
| वृद्धिबर्ध्मापरनामव्याधिः | ” |
| गुल्मरोगनिदानम् | ३३३ |

द्वादशोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| उदरनिदानाध्यायः | ३३४ |
| वातपित्तोदरादिलक्षणम् | ३३५ |
| प्लीहोदरादिलक्षणम् | ३३७ |

त्रयोदशोऽध्यायः

| | |
|----------------------|-----|
| पाण्डुशोफविसर्पनिदा- | |
| नाध्यायः | ३३९ |
| पाण्डुनिदानम् | ” |
| शोफनिदानम् | ३४१ |
| विसर्पनिदानम् | ३४३ |

| | |
|-------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| चतुर्दशोऽध्यायः | |
| कुष्ठश्चित्रकृमिनिदाना- | |
| ध्यायः | ३४६ |
| कुष्ठनिदानम् | ” |
| श्चित्ररोगनिदानम् | ३४९ |
| कृमिरोगनिदानम् | ३५० |
| पञ्चदशोऽध्यायः | |
| वातव्याधिनिदाना- | |
| ध्यायः | ३५१ |

| | |
|---------------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| वायोर्व्याधिकृच्छ्रसाध्य- | |
| करत्वम् | ३५२ |
| अर्दितस्य लक्षणम् | ३५४ |
| एकाङ्गादिरोगलक्षणम् | ३५५ |
| षोडशोऽध्यायः | |
| वातशोणितनिदाना- | |
| ध्यायः | ३५७ |
| वातशोणितस्य साध्य- | |
| त्वादि | ३५८ |

चिकित्सास्थानम्

| | |
|--------------------|-----|
| प्रथमोऽध्यायः | |
| ज्वरचिकित्साध्यायः | ३६३ |
| वातज्वरादिचिकित्सा | ३६८ |
| ज्वरिणो भोजनकालः | ३७१ |
| तगरादितैलम् | ३७७ |
| सन्निपातचिकित्सा | ३७८ |
| द्वितीयोऽध्यायः | |
| रक्तपित्तचिकित्सा- | |
| ध्यायः | ३८२ |

| | |
|-----------------------|-----|
| रक्तपित्ते चिकित्सित- | |
| विचारः | ३८२ |

| | |
|-----------------|-----|
| तृतीयोऽध्यायः | |
| कासचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ३८७ |
| पित्तकासलक्षणम् | ३९० |
| क्षतजकासलक्षणम् | ३९५ |
| कासे मधुगुटिकाः | ३९६ |

| | |
|---------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| अमृतप्रासघृतम् | ३९७ |
| श्वदंष्ट्रादिघृतम् | ३९८ |
| मधुकाद्यादिघृतम् | " |
| अगस्त्यहरीतकीलक्षणं | ४०१ |
| सैन्धवादिचूर्णम् | ४०२ |
| खाण्डवः | ४०३ |

चतुर्थोऽध्यायः

| | |
|----------------------|-----|
| श्वासहिध्माचिकित्सि- | |
| ताध्यायः | ४०६ |
| धूमप्रकारः | ४०८ |
| कासदौ पेयादिः | ४०९ |

पञ्चमोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| राजयक्ष्मादिचिकित्सि- | |
| ताध्यायः | ४१३ |
| तालीसादिचूर्णम् | ४१९ |

षष्ठोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| क्षुर्यादिचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ४२२ |
| हृद्दूरोगचिकित्सा | " |
| तृष्णारोगचिकित्सा | ४२७ |

| | |
|---------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| सप्तमोऽध्यायः | |
| मदात्ययचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ४३० |
| सर्वमदात्ययचिकित्सा | ४३४ |
| अष्टमोऽध्यायः | |
| अर्शश्चिकित्सिता- | |

| | |
|-------------------|-----|
| ध्यायः | ४४२ |
| अभयारिष्टः | ४४४ |
| आहारनिरूपणम् | ४५० |
| पाननिरूपणम् | ४५१ |
| अनुलोमनादिप्रकारः | " |

नवमोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| अतीसारचिकित्सा- | |
| ध्यायः | ४६० |
| अपराजितः प्रवाहि- | |
| काघ्नः | ४६३ |
| दाडिमाष्टकः | ४७१ |
| उल्लाघलक्षणम् | ४७२ |

दशमोऽध्यायः

| | |
|----------------------|-----|
| ग्रहणीदोषचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ४७२ |

| | |
|-------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| चन्दनाद्यं घृतम् | ४७६ |
| मधूकासवः | ४७७ |
| हिंवादिचारः | " |
| अग्निवर्धनप्रकारः | ४८० |

एकादशोऽध्यायः

| | |
|----------------------|-----|
| मूत्राघातचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ४८२ |
| स्नेहकथनम् | ४८४ |
| उपक्रमप्रकारः | ४८७ |

द्वादशोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| प्रमेहचिकित्सिताध्यायः | ४८९ |
| धान्वन्तरघृतम् | ४९१ |
| रोध्रासवः | ४९२ |
| अयस्कृतिः | " |

त्रयोदशोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| विद्रधिबृद्धिचिकित्सि- | |
| ताध्यायः | ४९४ |
| विद्रधिरोगचिकित्सितं | " |
| विद्धिरोगचिकित्सितं | ४९७ |

चतुर्दशोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| गुल्मचिकित्सिताध्यायः | ४९९ |
|-----------------------|-----|

| | |
|----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| हिंवादिघृतम् | ५०० |
| हपुपादिघृतम् | " |
| दाधिकं घृतम् | ५०१ |
| व्यूषणादिघृतम् | ५०२ |
| लशुनाद्यं घृतम् | " |
| हिंवादिचूर्णम् | ५०३ |
| भागवृद्धं चूर्णम् | " |
| हिंवाष्टकम् | " |
| व्याधिशार्दूलः | " |
| नाराचचूर्णम् | ५०४ |
| त्रिगुणोत्तरं भेषजम् | " |
| पैत्तिकगुल्मचिकित्सा | ५०६ |
| कफजगुल्मचिकित्सा | ५०८ |
| भल्लातकघृतम् | " |
| घटिकाप्रयोगः | ५०९ |
| मिश्रकस्नेहः | " |
| दन्तीहरीतक्यः | ५१० |
| अन्नपानप्रकारः | ५१२ |
| दाहादिविधिः | " |
| रक्तगुल्मचिकित्सा | ५१३ |

पञ्चदशोऽध्यायः

| | |
|---------------------|-----|
| उदरचिकित्सिताध्यायः | ५१४ |
|---------------------|-----|

| | |
|-------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| पटोलमूलादिचूर्णम् | ५१५ |
| नारायणचूर्णम् | " |
| हपुषादिचूर्णम् | ५१६ |
| हरीतकीघृतम् | ५१७ |
| शस्त्रविधिः | ५२५ |

षोडशोऽध्यायः

| | |
|----------------------|-----|
| पाण्डुरोगचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ५२७ |
| दाडिमादिघृतम् | ५२८ |
| नवायसचूर्णम् | ५२९ |
| मण्डूरवटकाः | " |
| ताप्यादिचूर्णम् | ५३० |
| शिलाजतुवटकाः | " |
| द्राक्षादिचूर्णम् | ५३१ |

सप्तदशोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| श्वयथुचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ५३४ |
| कंसहरीतकी | ५३६ |
| एकांगजे शोफे लेपः | ५३८ |

अष्टदशोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| विसर्पचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ५३९ |

| | |
|-----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| ग्रन्थिभेदलेपः | ५४२ |
| ग्रन्थिभेदकान्यौषधानि | " |

एकोनविंशोऽध्यायः

| | |
|-----------------------|-----|
| कुष्ठचिकित्सिताध्यायः | ५४४ |
| पटोलादिघृतम् | " |
| कुष्ठापहं घृतम् | ५४५ |
| मुस्तादिचूर्णम् | ५४० |

विंशोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| श्वित्रकृमिचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ५५७ |
| श्वित्ररोगचिकित्सा | " |
| कृमिरोगचिकित्सा | ५६० |

एकविंशोऽध्यायः

| | |
|--------------------|-----|
| वातव्याधिचिकित्सि- | |
| ताध्यायः | ५६२ |
| उरुस्तम्भचिकित्सा | ५६६ |

द्वाविंशोऽध्यायः

| | |
|---------------------|-----|
| वातशोणितचिकित्सिता- | |
| ध्यायः | ५७१ |
| त्रिफलादिपिष्टम् | ५७३ |
| मधुपष्ट्यादितैलम् | ५७६ |
| बलातैलादि | " |

कल्पस्थानम्

| विषयः | पृष्ठं | विषयः | पृष्ठं |
|-----------------------|--------|---------------------|--------|
| प्रथमोऽध्यायः | | चतुर्थोऽध्यायः | |
| वमनकल्पाध्यायः | ५८० | दोषहरणसाकल्यवस्ति- | |
| आनूपमांसपानादि | ५८५ | कल्पाध्यायः | ५९७ |
| द्वितीयोऽध्यायः | | सिद्धवस्तिकथनम् | ६०१ |
| विरेचनकल्पाध्यायः | ५८६ | पञ्चमोऽध्यायः | |
| वातपित्तकफोत्थादिषु | | वस्तिव्यापत्सिद्धि- | |
| चूर्णपानं विरेचनम् | ५८७ | ध्यायः | ६०६ |
| तृतीयोऽध्यायः | | अनुवासनव्यापत्तीनां | |
| वमनविरेचनव्यापत्ति- | | चिकित्सा | ६०९ |
| द्विरध्यायः | ५९३ | षष्ठोऽध्यायः | |
| विरेचनातियोगे विरेचन- | | भेषजकल्पाध्यायः | ६११ |
| द्रव्योद्धरणम् | ५९५ | स्वरसादिलक्षणम् | ६१३ |

उत्तरस्थानम्

| प्रथमोऽध्यायः | द्वितीयोऽध्यायः |
|---------------------------|----------------------|
| बालोपचरणीयाध्यायः ६१६ | बालामयप्रतिषेधा- |
| स्तन्यप्रवर्तने हेतुः ६१७ | ध्यायः ६२२ |
| रागादीनां चिकित्सितम् ६२० | रजन्यादि चूर्णम् ६२६ |
| ब्राह्म्यादिघृतम् ६२१ | समङ्गादिघृतम् ” |

| | |
|----------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| लाक्षादितैलम् | ६२७ |
| वमिवारकं घृतम् | ६२८ |

तृतीयोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| बालग्रहप्रतिषेधाध्यायः | ६३० |
| स्कन्दगृहीतलक्षणम् | ६३१ |
| विशाखगृहीतलक्षणम् | " |
| मेषलक्षणम् | " |
| स्वग्रह-पितृग्रहयोर्ल- | |
| क्षणम् | ६३२ |
| शकुन्यादिलक्षणम् | " |
| अन्धपूतानदि | ६३३ |
| साध्यासध्यलक्षणम् | " |

चतुर्थोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| भूतविज्ञानाध्यायः | ६३७ |
| भूतग्रहकालः | " |
| देवादिग्रहगृहीत- | |
| लक्षणम् | " |

पञ्चमोऽध्यायः

| | |
|--------------------|-----|
| भूतप्रतिषेधाध्यायः | ६४२ |
| भूतेशपूजादि | ६४८ |

| | |
|-------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
|-------|--------|

षष्ठोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| उन्मादिप्रतिषेधाध्यायः | ६४८ |
| हिंवादिघृतम् | ६५१ |
| उन्मादसूदनी वर्तिः | ६५२ |

सप्तमोऽध्यायः

| | |
|-------------------|-----|
| अपस्मारप्रतिषेधा- | |
| ध्यायः | ६६५ |
| पञ्चगव्यादिघृतम् | ६५७ |

अष्टमोऽध्यायः

| | |
|--------------------|-----|
| वर्मरोगविज्ञानीया- | |
| ध्यायः | ६६० |
| शिशोः कुकूणकः | ६६२ |

नवमोऽध्यायः

| | |
|------------------------|-----|
| वर्मरोगप्रतिषेधाध्यायः | ६६३ |
| वर्मविलेखनादिप्रकारः | " |

दशमोऽध्यायः

| | |
|------------------|-----|
| सन्धिसितासितरोग- | |
| विज्ञानाध्यायः | ६६७ |
| सन्धिरोगाः | " |
| सितभागरोगाः | ६६८ |
| असितभागरोगाः | ६६९ |

विषयः पृष्ठं

एकादशोऽध्यायः

सन्धिसितासितरोगप्रति-

षेधाध्यायः ६७०

तिमिररुचान्यञ्जनानि ६७१

द्वादशोऽध्यायः

दृष्टिरोगविज्ञानीया-

ध्यायः ६७६

वातजाद्विदृष्टरोगाः ६७७

त्रयोदशोऽध्यायः

तिमिरप्रतिषेधाध्यायः ६८०

सर्वाक्षिरोगेष्वञ्जनादिः ६८२

चतुर्दशोऽध्यायः

लिङ्गनाशप्रतिषेधा-

ध्यायः ६९१

सुविद्धलक्षणानि ६९२

पञ्चदशोऽध्यायः

सर्वाक्षिरोगविज्ञानी-

याध्यायः ६९४

पित्ताभिष्यन्दः ६९५

अम्लोषितलक्षणम् ६९७

विषयः पृष्ठं

षोडशोऽध्यायः

सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधा-

ध्यायः ६९८

पाशुपतो योगः ७०१

सप्तदशोऽध्यायः

कर्णरोगविज्ञानीया-

ध्यायः ७०५

प्रतीनाहादिसंज्ञको

गदाः ७०७

अष्टादशोऽध्यायः

कर्णरोगप्रतिषेधाध्यायः ७०९

क्षारतैलम् ७११

कर्णरोगविधानम् ७१३

एकोनविंशोऽध्यायः

नासारोगविज्ञाना-

ध्यायः ७१५

दुष्टप्रतिश्यायः ७१६

अपीनसरोगाः ७१७

विंशोऽध्यायः

नासारोगप्रतिषेधा-

ध्यायः ७१९

विषयः पृष्ठं
 नासाशोषे बलातैल-
 पानादि ७२१
 एकविंशोऽध्यायः

विषयः पृष्ठं
 साध्यानामप्यसाध्यता ७५२
 षड्विंशोऽध्यायः

विषयः पृष्ठ

त्रिंशोऽध्यायः

ग्रन्थ्यर्बुदश्लीपदापची-

नाडीप्रतिषेधाध्यायः ७७८

ग्रन्थिरोगप्रतिषेधः ”

श्लीपदरोगप्रतिषेधः ७७९

अपचीरोगप्रतिषेधः ”

नाडीरोगप्रतिषेधः ७८२

एकत्रिंशोऽध्यायः

क्षुद्ररोगविज्ञानाध्यायः ७८३

द्वात्रिंशोऽध्यायः

क्षुद्ररोगप्रतिषेधाध्यायः ७८७

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

गुह्यरोगविज्ञानाध्यायः ७९१

योनिव्यापद्रोगाः ७९४

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

गुह्यरोगप्रतिषेधाध्यायः ७९६

योनिरोगप्रतिषेधः ७९९

पुष्यानुगं चूर्णम् ८०१

फलसर्पिः ८०२

विषयः पृष्ठ

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विषप्रतिषेधाध्यायः ८०३

चन्द्रोदयनामागदः ८०६

षट्त्रिंशोऽध्यायः

सर्पविषप्रतिषेधाध्यायः ८१२

अल्पविषाः ८१४

साध्यासाध्यता ८१९

सिरामोकः ८१७

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

कीटलूतादिविषप्रतिषे-

धाध्यायः ८२२

कीटादिविषप्रतिषेधः ”

लूतादिविषविज्ञानम् ८२७

लूतादिविषप्रतिषेधः ८२९

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

मूषिकाऽलर्कविषप्रति-

षेधाध्यायः ८३२

मूषिकाविषप्रतिषेधः ”

अलर्कादिविषविज्ञानम् ८३३

अर्कविषप्रतिषेधः ८३५

| | |
|-----------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः | |
| रसायनाध्यायः | ८३६ |
| ब्राह्मरसायनम् | ८३७ |
| अभयामलकावलेहः | ८३९ |
| स्विन्नामलकम् | " |
| च्यवनप्राशः | ८४० |
| त्रिफलरसायनानि | ८४१ |
| मध्यरसायनम् | ८४३ |
| बाह्यादिरसायनम् | " |
| नागवलारसायनम् | ८४४ |
| भल्लातकरसानानि | ८४५ |

| | |
|---------------------|--------|
| विषयः | पृष्ठं |
| पिप्पल्यादिरसायनम् | ८४९ |
| अतिदिष्टरसायनानि | ८५० |
| शिलाजतुरसायनम् | ८५३ |
| सदाऽभयारसायनम् | ८५५ |
| चत्वारिंशोऽध्यायः | |
| वाजीकरणाध्यायः | ८६२ |
| ब्रह्मचर्यम् | " |
| वाजीकरणप्रयोजनम् | " |
| शास्त्रोपसंहारः | ८६९ |
| चिकित्साया निश्चित- | |
| फलत्वम् | ८७० |

अष्टाङ्गहृदयम्

पूर्वपीठिका

अथ औषधकल्पः

‘धन्वे साधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ ।
श्मशानचैत्यायतन-श्वभ्रवल्मीकवर्जिते ॥ १ ॥
मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिपसंस्तृते ।
अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्वलवत्तरैः ॥ २ ॥
शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः ।
जन्तवजग्धं दवादग्धमविदग्धं च वैकृतैः ॥ ३ ॥
भूतैश्छायातपास्त्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम् ।
अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ॥ ४ ॥
अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः ।
गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥
सक्षीरं तदसम्पत्तावनतिक्रान्तवत्सरम् ।
ऋते गुण-घृत-क्षौद्र-धान्य-कृष्णा-विडङ्गतः ॥ ६ ॥
पयो ^१वाष्कयणं ग्राह्यं विण्मूत्रं तच्च नीरुजम् ।
वयोबलवतां धातुपिच्छशृङ्गसुरादिकम् ॥ ७ ॥

१. वाष्कयणी = तरुणवत्सा = पशून्मासवत्सा, गौः (वकीना)
तस्या इदं वाष्कयणम् पयः क्षीरम् ।

कषाययोनयः पञ्च ^१रसा लवणवर्जिताः ।

रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्चेति प्रकल्पना ॥ ८ ॥

पञ्चधैव कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिकाः ।

सद्यःसमुद्भूतात्क्षुण्णाद्यः स्ववैषटपीडितात् ॥ ९ ॥

स्वरसः स समुद्दिष्टः कल्कः पिष्टो द्रवाप्लुतः ।

चूर्णोऽप्लुतः शृतः काथः शीतो रात्रिं द्रवे स्थितः ॥ १० ॥

सद्योऽभिपूतपूतस्तु फाण्टः तन्मानकल्पने ।

युञ्जाद्व्याध्यादिबलतस्तथा च वचनं मुनेः ॥ ११ ॥

‘मात्राया न व्यवस्थाऽस्ति व्याधिं कोष्टं बलं वयः ।

आलोच्य देशकालौ च योज्या तद्वच्च कल्पना ॥ १२ ॥

मध्यं तु मानं निर्दिष्टं ^२स्वरसस्य चतुःपलम् ।

पेष्यस्य कर्षमालोढ्यं तद्द्रवस्य पलत्रये ॥ १३ ॥

१. मधुरकषायः, अम्लकषायः, तिक्तकषायः, कषायकषायः इति वैद्यके-तन्त्रं व्यवहारः । अन्वर्थीयं व्यवहारः. यतः खलु मधुरादयः स्वकीयैरूपरसगन्धैः स्थानमुपरज्य दोषमून्मूलयन्ति, लवणस्तु-दोष-मेव चिह्नयन्ति, भिनत्ति च न तु स्थानं रजयति सामर्थ्याभावात्, रजकत्वमेव कषायत्वम् सोऽयं कषायो मधुरादीनां स्वरसादिभिर्गुण-नात् पञ्चविंशति प्रकारः, सङ्कुरादिभिरनन्तः ।

२. निर्दिष्टं न तु विहितम्, सम्प्रदायस्य ह्रासदर्शनात्, तथा च रसवीर्यविपाकान्-भेदजस्य, कोष्टं बलं वयश्च, रोगिणः आनु-कूल्यं-देशकालयोः, व्यापत्प्रतीकारक्षमत्वं स्वस्य, मृदुत्व-दारुणत्वे, रोगस्य विचार्य, वैद्यः स्वसमये मात्रां कल्पयेत् । तथैव योगाश्च ।

काथं द्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम् ।
 शीतं पले पलैः षड्भिःॐ चतुर्भिश्च ततोऽपरम् ॥ १४ ॥
 स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम् ।
 कल्कस्नेहद्रवं योज्यम्ॐ अधीते शौनकः पुनः ॥ १५ ॥
 स्नेहे सिद्ध्यति शुद्धाम्बुनिःकाथस्वरसैः क्रमात् ।
 कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टकम् ॥ १६ ॥
 पृथक् स्नेहसमं दद्यात्पञ्चमृति तु द्रवम् ।
 नाऽङ्गुलिग्राहिता कल्के न स्नेहोऽग्नौ सशब्दता ॥ १७ ॥
 वर्णादिसम्पच्च यदा तदैवं शीघ्रमाहरन् ।
 घृतस्य फेनोपशमः, तैलस्य तु तदुद्भवः, ॥ १८ ॥
 लेहस्य तन्तुमत्ताऽप्सु मज्जनं शरणं न च ।
 पाकस्तु त्रिविधो मन्दश्चिक्कणः खरचिक्कणः ॥ १९ ॥
 मन्द-कल्कसमे किट्टे चिक्कणो मदनोपमे ।
 किचित्सीदति कृष्णे च वर्त्यमाने च पश्चिमः ॥ २० ॥
 दग्धोत ऊर्ध्वं निष्कार्यः स्यादामस्त्वग्निसादकृत् ।
 मृदुर्नस्ये, खरोऽभ्यङ्ग, पाने वस्तौ च चिक्कणः ॥ २१ ॥
 १शाणं पाणितलं मुष्टिं कुडवं प्रस्थमाढकम् ।
 द्रोणं वहं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
 द्विगुणं योजयेद्दार्द्रं कुडवादि तथा द्रवम् ।

१. शाणम् १)) पाणि तलम् १)) मुष्टिन्, ४)) वा ऽ- कुडवम्
 ऽ। प्रस्थम् १) आढकम् १४ द्रोणम् १५६ वहम् १॥१४ एवमधुना
 लेखन व्यवहारश्च विजानीयात् । शाण-कुडव-प्रस्थाऽढक द्रोण वहाः
 पुगांसः, मुष्टिःस्त्री पाणितलम्-जपंसकम् ।

पेपणालोडने वारि स्नेहपाके च निर्द्रवे ॥ २३ ॥
 कल्पयेत्सदृशान् भागान् प्रमाणं यत्र नोदितम् ।
 कल्कीकुर्याच्च भैषज्यमनिरूपितकल्पनम् ॥ २४ ॥
 द्वौ शाणौ वटकः कोलं बदरं द्रक्ष्णञ्च तौ ।
 अक्षं पिचुः पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ २५ ॥
 कर्पो विडालपदकं तिन्दुकं पाणिमानिका ।
 शब्दान्यत्वमभिज्ञेऽर्थं शुक्तिरष्टमिका पिचू^१ ॥ २६ ॥
 पलं प्रकुञ्चो विल्वं च मुष्टिरात्रं चतुर्थिका^२ ।
 द्वे पले प्रसृतस्तौ द्वावञ्जलिस्तौ तु मानिका ॥ २७ ॥
 आढकं भाजनं कंसो द्रोणः कुम्भो घटोऽर्म्भणम् ।
^३तुलाऽपलशतं तानि^४ विश्रुतिर्भार उच्यते ॥ २८ ॥
^५हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुन्धरा ।
 सौम्यं पथ्यं च ^६तत्राऽऽद्यमाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम् ॥ २९ ॥

१. पिचू = द्वौ कर्पो = २) शुक्तिः, अष्टमिका च कथ्यते ।
२. चतुर्थिका = चतुर्थो भागः कुडवस्तु, एवमष्टमिकाऽष्टमोभागः ।
३. तुला = १६। पलानां ८-शतम् ।
४. तानि = पलशतानि = विंशतिः ३०१॥ भार उच्यते ।
५. हिमस्तुपारो विधते यस्मिन् स हिमवान् = सौम्यः पर्वतः ।
 विशेषेण-ईन्धे = दीप्यते शिलामयत्वेन विन्ध्यः (अध्यादयश्चेति
 शाकटायनसूत्रेण यत्, पृषोदरादित्वाद् अस्यः शिला प्रचुरः शैलः,
 विन्ध्यव्याप्तौ शैलश्च विन्ध्यशैलः हिमवांश्च विन्ध्यशैलश्चेति द्वन्द्वः
 ताभ्याम्, प्रायोऽग्रहणात्समतल-व्यवच्छेदः ।

६. तत्र = तयोर्मध्ये-आद्यम् = आदौ = प्रथमे हिमवति भवमा-

अथाग्रयाणि सङ्गृह्णाति—

मुस्तापर्पटकं ज्वरे^१ तृषि जलं मृदं मृष्टलोष्टोद्भवं,^२
लाजाश्छर्दिषु, वस्तिजेषु गिरिजं मेहेषु धात्रीनिशे ।
पाण्डौ श्रेष्ठमयोऽभयाऽनिलकफे, प्लीहामये पिप्पली,
सन्धाने कृमिजा^३, विपे^४ शुक्रतरु, मंदोनिले गुग्गुलुः ॥३०॥

^५वृषोऽस्रपित्ते, कुटजोऽतिसारे,
भल्लातकोऽर्शःसु, गरेषु हेम ।

स्थूलेषु ताक्ष्यं, कृमिषु कृमिघ्नं,
शोषे सुरा च्छागपयोऽनुमांसम् ॥ ३१ ॥

अचयामयेषु त्रिफला, गुहूची
वाताक्षरोगे मथितं ग्रहण्याम् ।

कुष्ठेषु सेव्यः^६ खदिरस्य सारः
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥ ३२ ॥

द्यम्-औषधं सौम्यं मृदु पथ्यञ्च, विन्ध्ये भयम्बैन्ध्यम् आग्नेयम् =
तीव्रम् = न च तादृक् पथ्यम् 'ओषधीनां परामूर्तिर्मिवान्-शैल-
सत्तमः' (च० चि० अ० १ पा० १।३८)

१. ज्वरे मुस्तासहितं-पर्पटकं शमाय-अलम् इत्युत्तरेणान्वयः
सर्वत्र ।

२. मृदः = मृत्तिकायाः मृष्टं कृतमज्जनं यल्लोष्टं पिण्डं तदु-
द्भवं = तत्पातनेन कृततापम् पुनः स्वभावशीतम् ।

३. कृमिजा = लाक्षा । ४. शुक्रतरुः = शिरीषः ।

५. वृषो = वासा । ६. खदिरः कुष्ठहराणाम् ।

उन्मादं घृतमनवं^१ शोकं मद्यं व्यपस्मृतिं ब्रह्मा ।
 निद्रानाशं क्षीरं जयति रसाला प्रतिश्याम् ॥ ३३ ॥
 मांसं काश्यं, लशुनः प्रभञ्जनं, स्तब्धगात्रतां स्वेदः ।
 गुडमञ्जरीः खपुरो नस्थात्स्कन्धांसवाहुरुजम् ॥ ३४ ॥
 नवनीतखण्डमर्दितमौष्यं मूत्रं पयश्च हन्युदरम् ।
 नस्यं मूर्धविकारान् विद्रुधिमचिरोत्थमस्त्रविस्त्रावः ॥ ३५ ॥
 नस्यं कवलो मुखजान् नस्याञ्जनतर्पणानि नेत्ररुजः ।
 हृद्भवं क्षीरघृते मूर्च्छां शीताम्बुमारुतच्छायाः ॥ ३६ ॥
 समशुक्तार्द्रकमात्रा मन्दे बह्वौ श्रमे सुरा स्नानम् ।
 दुःखसहत्वे स्थैर्ये व्यायामो गोक्षुरुर्हितः कृच्छ्रे ॥ ३७ ॥
 कासे निदिग्धिका पार्श्व-शूले पुष्करजा जटा ।
 वयसः स्थापने धात्री त्रिफलागुग्गुलुवर्णने ॥ ३८ ॥
 वस्तिर्वातविकारान् पैत्तान् रेकः कफोद्भवान् वमनम् ।
 क्षौद्रं जयति बलासं सर्पिः पित्तं समीरणं तैलम् ॥ ३९ ॥
 हृत्प्रग्रथं यत्प्रोक्तं रोगाणामौषधं शमायालम् ।
 तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम् ॥ ४० ॥



❀ श्रीः ❀

अष्टाङ्गहृदयम्



सूत्रस्थानम्



प्रथमोऽध्यायः ।

रागादिरोगान् सततानुषक्तान् ,

अशेषकायप्रसृतानशेषान् ।

औत्सुक्यमोहाऽरतिदाञ्जघान

^१योऽपूर्ववैद्याय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १ ॥

अथात आयुष्कामीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

आयुःकामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम् ।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ २ ॥

नमस्कृत्य देवान् मुनीन् सिद्धवर्यान् ,

गुरून् सूरिमुख्यान् भिषक्-कोविदांश्च ।

लिखामीह टीकां मितां वाग्भटोक्तौ,

दुरूहस्थले छात्रबोधाय 'पन्तः' (दत्तः) ॥ १ ॥

१. यः परमेश्वरः सततानुषक्तान् अशेषकाय-प्रसृतान् औत्सुक्य-

आयुर्वेदोत्पत्तिक्रमः—

ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।

सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन् ॥ ३ ॥

तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ।

अस्य ग्रन्थस्य गौरवम्—

तेभ्योऽतिविप्रकीर्णभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः ॥ ४ ॥

क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिसंक्षेपविस्तरम् ।

^१कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ॥ ५ ॥

मोहाऽरतिदान् असाध्यानपात्यथः । अशेषान् रागादिरोगान् ,
जघान, भजतः, पूर्वमेव किमुत हन्ति हनिष्यतीति वक्तव्यम् । अपूर्व-
वैधाय तस्मै नमोऽस्तु-इति-परम-मङ्गलार्थः ।

सततमविरतमनुपक्ताः प्रसक्ताः, ज्वरस्य मुख्यत्वे कासादीनाम-
नुपक्तत्वं, कासस्य मुख्यत्वे ज्वरादीनामानुपङ्गिकत्वमिति, अथवा—
'निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते' इति नियमाज्ज्वर-रक्त-
पित्तादीनामनुपङ्गः, अतस्ते सततानुपक्तास्तान्, शेषभिन्नानां कायेषु
प्रसृतान् व्याप्तान् शेषस्यैव नीरोगत्वात् (भवानेकः शिष्यते शेष-
सञ्चः) उक्तपठाऽविवेकाऽरुचिजनकान् अशेषान् शल्य-शालाक्य-
कायचिकित्सादितन्त्र-विषयीभूतान्सर्वान् , रागोऽपश्यविषयभोगेच्छा
आदिः कारणं येषान्ते रागादयः, ते च रोगास्तापकरा ज्वरादयस्तान्
जघान भुवि-आयुर्वेदोपदेशेन निरासयामास, अपूर्ववैधाय तस्मै,
आदि-धन्वन्तरये नमोऽस्तु, मुनये वा भरद्वाजाय, पुनर्वसवे वा
नमोऽस्तु, इति-प्रकृतमङ्गलार्थः ।

१. कायचिकित्सा-कुमारमृत्या-भूतविद्या-शालाक्य-शल्य-विष-

अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ।

वातादि—दोषाः—

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ ६ ॥
 विकृताऽविकृता देहं धनन्ति ते वर्तयन्ति च ।
 ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ ७ ॥
 त्रयोऽहो-रात्रि-भुक्तानां तेऽन्त-मध्याऽऽदिगाः क्रमात् ।
 तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः ॥ ८ ॥
 कोष्ठः क्रूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि ।
 शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः ॥ ९ ॥
 तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ।
 समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः ॥ १० ॥
 तत्र रूक्षो लघुः शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।
 पित्तं सस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम् ॥ ११ ॥
 स्निग्धः शीतो गुरुर्मन्दः श्लक्ष्णो मृत्स्नः स्थिरः कफः ।
 संसर्गः सन्निपातश्च तद्वि-त्रि-क्षयकोपतः ॥ १२ ॥

धात्वादिनिरूपणम्—

रसोऽसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्ज-शुक्राणि धातवः ।
 'सप्त दूष्याः' *मला-मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च ॥ १३ ॥
 वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः ।

रसायन-वार्जीकरणमिति क्रमादष्टाङ्गानि ।

* अस्माच्चिह्नात्सर्वत्र विषयविभागो बोद्धव्यः ।

रसनिरूपणम्—

रसाः^१स्वाद्वम्ललवणतिक्तोषणकषायकाः ॥ १४ ॥

षड्, द्रव्यमाश्रितास्ते च-यथापूर्वं बलावहाः ।

तत्राऽऽद्या मारुतं घ्नन्ति त्रयस्तिक्तादयः कफम् ॥ १५ ॥

कषायतिक्तमधुराः पित्तमन्ये^२ तु कुर्वते ।

द्रव्यस्य भेदादिः—

शमनं कोपनं स्वस्थहितं द्रव्यमिति त्रिधा ॥ १६ ॥

उष्णशीतगुणोत्कर्षात्तत्र वीर्यं द्विधा स्मृतम् ।

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्लकटुकात्मकः ॥ १७ ॥

गुणनिरूपणम्—

गुरु-मन्द-हिम-स्निग्ध-श्लक्ष्ण-सान्द्र-मृदु-स्थिराः ।

गुणाः ससूक्ष्म-विशदा विंशतिः सविपर्ययाः^३ ॥ १८ ॥

रोगाऽऽरोग्ययोः कारणादिकम्—

कालार्थकर्मणां योगो^४ हीन-मिथ्याऽतिमात्रकः ।

१. स्वादुर्मधुरः, अम्लञ्चुक्रादि-रसः, लवणः सैन्धवादिः, तिक्तो निम्बादिरसः, ऊषणः कटुः-मरिचादिरसः, कषायः पूगादिरसः, षड्ग्रहणं न्यूनाधिकव्यवच्छेदार्थम् । २. अन्ये = कटुतिक्तकषाया वातं, कट्वम्ललवणाः पित्तं, मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं कुर्वते । च० वि० अ० १। सू० ७ । ३. लघु-तीक्ष्ण-उष्ण-रूक्ष-खर-द्रव-कठिन-सर-स्थूल-पिच्छिलाः क्रमशो गुरुप्रभृतीनां विपरीताः । च०सू० २५ ।

४. अयोगो मिथ्यायोगो ऽतियोगश्चेति रोगकारणम्, सम्यग्योग आरोग्यकारणमित्यर्थः ।

सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगाऽऽरोग्यैककारणम् ॥ १९ ॥

‘रोगस्तु’ दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।

निजागन्तुविभागेन तत्र रोगा द्विधा स्मृताः ॥ २० ॥

तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा ।

रजस्तमश्च ‘मनसो’ द्वौ च दोषाबुदाहृतौ ॥ २१ ॥

रोगिपरीक्षाप्रकाराः—

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम् ।

रोगं निदान-प्राग्रूप-लक्षणोपशयाऽऽप्तिभिः ॥ २२ ॥

देशौषधयोर्भेदादयः—

भूमि-देह-ग्रभेदेन ‘देश’माहुरिह द्विधा ।

जाङ्गलं वातभूयिष्ठमनूपं तु कफोल्बणम् ॥ २३ ॥

साधारणं सममलं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ।

क्षणादिव्याध्यवस्था च ‘कालो’ भेषजयोगकृत् ॥ २४ ॥

शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा ।

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण ‘परमौषधम्’ ॥ २५ ॥

वस्तिर्विरेको वमनं तथा तैलं घृतं मधु ।

धीधैर्यात्मादिविज्ञानं ‘मनोदोषौषधं’ परम् ॥ २६ ॥

पादचतुष्टयम्—

भिषग् द्रव्याण्युपस्थाता रोगी पादचतुष्टयम् ।

चिकित्सितस्य निर्दिष्टं प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ॥ २७ ॥

दक्ष^१ स्तीर्थात्तशास्त्रार्थो दृष्टकर्मा शुचिर्भिषक् ।

१. दक्षः क्षिप्रकारी, तीर्थादधीतायुर्वेदाद् गुरोः, आत्तोऽध्ययनेन स्वीकृतः, शास्त्रार्थः = आयुर्वेदप्रतिपाद्यो विषयो येन तथाभूतः, दृष्टानि

बहुकल्पं ^१बहुगुणं संपन्नं योग्यमौषधम् ॥ २८ ॥

अनुरक्तः ^२शुचिर्दत्तो बुद्धिमान् परिचारकः ।

आढ्यो ^३रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः सत्त्ववानपि ॥ २९ ॥

व्याधेः साध्यादिभेदादयः—

(साध्योऽसाध्य इति व्याधिर्द्विधा तौ तु पुनर्द्विधा ।

सुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च याप्यो यश्चाऽनुपक्रमः ॥)

सर्वौषधक्षमे देहे यूनः पुंसो जितात्मनः ।

अमर्मगोऽल्पहेत्वग्रूपरूपोऽनुपद्रवः ॥ ३० ॥

अतुल्यदृज्यदेशर्तुप्रकृतिः पादसंपदि ।

ग्रहेष्वनुगुणेष्वेकदोषमार्गो नवः 'सुखः' ॥ ३१ ॥

शस्त्रादिसाधनः 'कृच्छ्रः' संकरे च ततो गदः ।

शेषत्वादायुषो 'याप्यः' पथ्याभ्यासाद्विपर्यये ॥ ३२ ॥

'अनुपक्रम' एव स्यात्स्थितोऽत्यन्तविपर्यये ।

औत्सुक्य-मोहाऽरतिकृद्दृष्टरिष्टोऽज्ञनाशनः ॥ ३३ ॥

अचिकित्स्या रोगिणः—

त्यजेदार्तं भिषग्भूपैर्द्विष्टं तेषां द्विषं द्विषम् ।

हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम् ॥ ३४ ॥

शिक्षितानि कर्माणि = औषधनिर्माणादि-चिकित्सोपद्रवशमनानि
येन, शुचिः सद्वृत्तः, एवं गुणचतुष्टयोपेतः, भिषग् = सदैवः ।

१. त्रयमौषधम्, तस्य चत्वारो गुणाः बहुकल्पमित्यादयः ।

२. अनुरक्त-इत्यादयः परिचारकगुणाः । ३. आढ्य-इत्यादयो
रोगिगुणाः एवं पादचतुष्टयं षोडशगुणमित्युच्यते । च० सू० अ० ९ ।

चण्डं शोकातुरं भीहं कृतघ्नं वैद्यमानिनम् ।

क्रमेण ग्रन्थस्य संग्रहः—

^१तन्त्रस्यास्य परं चातो वक्ष्यतेऽध्यायसंग्रहः ॥ ३५ ॥

आयुष्कामदिनत्वीहारोगाऽनुत्पादनद्रवाः ।

अन्नज्ञानाऽन्नसंरक्षामात्राद्रव्यरसाश्रयाः ॥ ३६ ॥

दोषादिज्ञानतद्भेदतच्चिकित्साद्युपक्रमाः ।

शुद्ध्यादिस्नेहन-स्वेद-रेकाऽऽस्थापन-नावनम् ॥ ३७ ॥

धूम-गण्डूष-टक्सेक-नृप्ति-यन्त्रक-शस्त्रकम् ।

सिराविधिः शल्यविधिः शस्त्रक्षाराग्निकर्मिकौ ॥ ३८ ॥

सूत्रस्थानमिमेऽध्याया 'स्त्रिशत्' ❀ 'शारीरमुच्यते' ।

गर्भावक्रान्तितद्व्यापदङ्गमर्मविभागिकम् ॥ ३९ ॥

विकृतिर्दूतजं 'पष्ट' ❀ 'निदानं सार्वरोगिकम्' ।

ज्वरासृक्श्वासयक्ष्मादिमदाद्यशोऽतिसारिणाम् ॥ ४० ॥

मूत्राघातप्रमेहाणां विद्रध्याद्युदरस्य च ।

पाण्डुकुष्ठानिलार्तानां वातास्रस्य च 'षोडश' ॥ ४१ ॥

चिकित्सितं ज्वरे रक्ते कासे श्वासे च यक्ष्मणि ।

वमौ मदात्ययेऽर्शःसु विशि द्वौ द्वौ च मूत्रिते ॥ ४२ ॥

विद्रधौ गुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्पिषु ।

कुष्ठश्चित्रानिलव्याधिवातास्त्रेषु चिकित्सितम् ॥ ४३ ॥

'द्वाविंशति'रिमेऽध्यायाः ❀ 'कल्पसिद्धिरतः परम्' ।

कल्पो वमोर्विरेकस्य तत्सिद्धिर्बस्तिकल्पना ॥ ४४ ॥

सिद्धिर्बस्यापदां, 'पष्ठो' द्रव्यकल्पोः 'ऽत उत्तरम्' ।
 बालोपचारे तद्व्याधौ तद्ग्रहे द्वौ च भूतगे ॥ ४५ ॥
 उन्मादेऽथ स्मृतिभ्रंशे द्वौ द्वौ वर्त्मसु संधिषु ।
 दृक्तमोलिंगनाशेषु त्रयो द्वौ द्वौ च सर्वगे ॥ ४६ ॥
 कर्णनासामुखशिरोव्रणे भङ्गे भगन्दरे ।
 ग्रन्थ्यादौ क्षुद्ररोगेषु गुह्यरोगे पृथग्द्वयम् ॥ ४७ ॥
 विषे भुजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रसायने ।
 चत्वारिंशोऽनपत्यानामध्यायो बीजपोषणः ॥ ४८ ॥
 इत्यध्यायशतं विंशं षड्भिः^१ स्थानैरुदीरितम् ॥ ४९ ॥

इति सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

'ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रत्तार्थमायुषः ।

शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥ १ ॥

अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिजम् ।

प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं^२ कषायकटुतिक्तकम् ॥ २ ॥

१. षड्भिः स्थानैः, विमानस्थानेन्द्रियस्थानीयविषययोः, यत्र
 तत्राऽन्तर्भावात् । सूत्र-शरीर-निदान-चिकित्सा-कल्पोत्तर स्थाना-
 नि षट् । सिद्धिकल्पयोरैक्यम् ।

२. कषाय-कटु-तिक्त-रसवतामन्येषां ग्रहणार्थम्, तथा च याज्ञव-

१ कनीन्यग्रसमस्थूलं प्रगुणं द्वादशांगुलम् ।
 भक्षयेदन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ ३ ॥
 २ नाद्यादजीर्णवमथुश्चासकासज्वराऽर्दिती ।
 तृष्णाऽऽस्यपाकहन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत् ॥ ४ ॥
 'सौवीरमञ्जनं' नित्यं हितमक्ष्णोस्ततो भजेत् ॥
 चक्षुस्तेजोमयं तस्य विशेषात् श्लेष्मतो भयम् ॥ ५ ॥
 योजयेत्ससरात्रेऽस्मात्स्त्रावणार्थं 'रसाञ्जनम्' ।
 ततो ३ नावन-नाण्डूष-धूम-ताम्बूल-भाग्भवेत् ॥ ६ ॥
 ताम्बूलं क्षतपित्तास्त्ररूक्षोत्कुपितचक्षुषाम् ।
 विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं शोषिणामपि ॥ ७ ॥
 ४ 'अभ्यङ्ग'माचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा ।
 दृष्टिप्रसादपुष्ट्यायुःस्वप्नसुत्वक्त्वदार्ढ्यकृत् ॥ ८ ॥

ल्क्यः—आम्रपालाशविल्वानाम्, अपामार्ग-शिरिषयोः । 'वाग्यतः प्रात-
 रुत्थाय भक्षयेदन्तधावनम् । खरिरश्च कदम्बश्च करवीरकरञ्जकौ । एते
 कण्टकिनः पुण्याः क्षीरिणस्तु यशस्विनः'—इति । १. कनीनी =
 कनिष्ठिका, प्रगुणम् = आयतम्, दन्तमांसानि = दन्तच्छदानि ।

२. दन्तकाष्ठभक्षणाऽनधिकारिण आह—नाऽद्यादिति—अजीर्णञ्च व-
 मथुश्च आसश्च कासश्च ज्वरश्चाऽऽर्दितञ्चेति इन्द्रः तानि सन्त्यस्येति
 'अत इनिठना'विति मत्वर्थीय-इनिः, अर्दितं वातरोगेषु वक्ष्यति ।

३. नावनं चावपीडश्च, ध्मापनं धूम एव च । प्रतिमर्शश्च विशेष्यं,
 नस्तः कर्म तु पञ्चधा । स्नेहनं शोधनं चैव, द्विविधं नावनं स्मृतम् ॥
 च० सि० १।१० । ४. अभ्यङ्गस्तैलमर्दनम् ।

शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ।
 'वर्ज्योऽभ्यङ्गः' कफप्रस्तकृतसंशुद्धयजीर्णिभिः ॥ ९ ॥
 लाघवं कर्मसामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः ।
 विभक्तघनगात्रत्वं 'व्यायामादुपजायते' ॥ १० ॥
 वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च 'तं' त्यजेत् ।
 'अर्धशक्त्या' निषेव्यस्तु बलिभिः स्निग्धभोजिभिः ॥ ११ ॥
 शीतकाले वसन्ते च 'मन्दमेव' ततोऽन्यदा ।
 तं कृत्वाऽनुसुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ॥ १२ ॥
 तृष्णा क्षयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।
 'अतिव्यायामतः' कासो ज्वरश्छर्दिश्च जायते ॥ १३ ॥
 व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादिसाहसम् ।
 गजं सिंहं इवाकर्षणं 'भजन्नति विनश्यति' ॥ १४ ॥
 'उद्वर्तनं' कफहरं मेदसः प्रविलायनम् ।
 स्थिरीकरणमङ्गानां त्वक्प्रसादकरं परम् ॥ १५ ॥
 दीपनं वृष्यमायुष्यं 'स्नान'मूर्जाबलप्रदम् ।
 कण्डूमलश्रमस्वेदतन्द्रातृड्दाहपाप्मजित् ॥ १६ ॥
 'उष्णाम्बुना'ऽधः कायस्य परिषेको बलावहः ।
 'तेनैव' तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम् ॥ १७ ॥
 स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ।
 आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च 'गर्हितम्' ॥ १८ ॥
 'जीर्णे' हितं मितं चाद्यान्न वेगानीरयेद्बलात् ।
 न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्नाऽजित्वा साध्यसामयम् ॥ १९ ॥

अथ सद्वृत्तम्—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।
 सुखं च न विना धर्मात्तस्माद्द्वर्मपरो भवेत् ॥ २० ॥
 भक्त्या ^१कल्याणमित्राणि सेवेतेतरदूरगः ।
 हिंसा^२स्तेयाऽन्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते ॥ २१ ॥
 संभिन्नाऽलापव्यापादमभिध्या-दृग्विपर्ययम् ।
 'पापं कर्मेति दशधा' कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ॥ २२ ॥
 अवृत्ति-न्याधि-शोकाऽऽर्त्तानुवर्तेत शक्तितः ।
 आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकम् ॥ २३ ॥
 अर्चयेद् देव-गो-विप्र-वृद्ध-वैद्य-नृपाऽतिथीन् ।
 विमुखान्नार्थिनः कुर्यान्नाऽवमन्येत नाऽक्षिपेत् ॥ २४ ॥
 'उपकारप्रधानः' स्यादपकारपरेऽप्यरौ ।
 'संपद्विपत्स्वेकमना' हेतार्वाप्येत्फले न तु ॥ २५ ॥
 काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम् ।
 पूर्वाभिभाषी सुमुखः सुशीलः करुणा-मृदुः ॥ २६ ॥
 नैकः सुखी न सर्वत्र विश्रब्धो न च शङ्कितः ।
 न कञ्चिदात्मनः शत्रुं नात्मानं कस्यचिद्विपुम् ॥ २७ ॥
 प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रभोः ।
 जनस्याऽऽशयमालक्ष्य यो यथा परितुष्यति ॥ २८ ॥
 तं तथैवाऽनुवर्तेत पराराधनपण्डितः ^३ ।

१. कल्याणस्य शुभकर्मणो मित्राणि सेवेत, इतरभ्योऽशुभकार्य-
 प्रवर्त्तकेभ्यो दूरगः सङ्गमकुर्वन् । २. जनाऽनुरागप्रभवा हि संपदः-
 इत्युक्तेः ।

न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत् ॥ २९ ॥
 त्रिवर्गशून्यं नाऽरम्भं भजेत्तं चाविरोधयन् ।
 अनुयायात्प्रतिपदं 'सर्वधर्मे'षु' मध्यमाम् ॥ ३० ॥
 नीच-रोम-नखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः ।
 स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेपोऽनुत्पणोज्ज्वलः ॥ ३१ ॥
 धारयेत्सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः ।
 साऽऽतपत्र-पदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक् ॥ ३२ ॥
 निशि चाऽऽत्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान् ।
 चैत्यपूज्यध्वजाऽशस्तच्छायाभस्मतुपाऽशुचीन् ॥ ३३ ॥
 नाऽऽक्रामेच्छर्करालोष्ठबलिस्नानभुवो न च ।
 'नदीं तरेन्न' बाहुभ्यां नाऽग्निस्कन्धमभिव्रजेत् ॥ ३४ ॥
 संदिग्धनावं वृत्तं च नाऽरोहेद् दुष्टयानवत् ।
 नासंवृतमुखः कुर्यात्क्षुतिहास्यविजृम्भणम् ॥ ३५ ॥
 नासिकां न विकुण्णीयास्नाकस्माद्विलिखेद्भुवम् ।
 नाङ्गैश्चेष्टेत विगुणं नाऽऽसीतोत्कटकश्चिरम् ॥ ३६ ॥
 देहवाक्चेतसां चेष्टाः प्राक् श्रमाद्विनिवर्तयेत् ।
 नोर्ध्वजानुश्चिरं तिष्ठेत् ऋक्तं सेवेत न द्रुमम् ॥ ३७ ॥
 तथा चत्वरचैत्यान्तश्चतुष्पथसुरालयान् ।
^१सूनाऽऽवीशून्यगृहश्मशानानि दिवाऽपि न ॥ ३८ ॥
 सर्वथेक्षेत नाऽऽदित्यं न भारं शिरसा वहेत् ।
 नेक्षेत प्रततं सूक्ष्मं दीप्ताऽमेभ्याऽप्रियाणि च ॥ ३९ ॥

मद्यविक्रय-संधान-दानाऽऽदानानि नाऽऽचरेत् ।
 पुरोवाताऽऽस्तप-रजस्तुषारपरुषाऽनिलान् ॥ ४० ॥
 अनृजुः क्षवधूद्वारकासस्वप्नान्नमैथुनम् ।
 कूलच्छायां नृपद्विष्टं व्यालदंष्ट्रिविषाणिनः ॥ ४१ ॥
 हीनानार्यातिनिपुणसेवां विग्रहमुत्तमैः ।
 सन्ध्यास्वभ्यवहारस्त्रीस्वप्नाध्ययनचिन्तनम् ॥ ४२ ॥
 शत्रु-सन्न-गणाऽऽकीर्ण-गणिका-पणिका^१ऽशनम् ।
 गात्रवक्त्रनखैर्वाद्यं हस्तकेशाऽवधूननम् ॥ ४३ ॥
 तोयाम्निपूज्यमध्येन यानं धूमं शवाश्रयम् ।
 मद्यातिसक्तिं विश्रम्भस्वातन्त्र्ये स्त्रीषु च त्यजेत् ॥ ४४ ॥
 आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक एव हि धीमतः ।
 अनुकुर्यात्तमेवातो लौकिकेऽर्थे 'परीक्षकः' ॥ ४५ ॥
 आर्द्रसंतानता त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।
 स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु पर्याप्तमिति सद्ब्रतम् ॥ ४६ ॥
 नक्तंदिनानि मे यान्ति कथंभूतस्य संप्रति ।
 दुःखभाङ् न भवत्येवं नित्यं संनिहितस्मृतिः ॥ ४७ ॥
 इत्याचारः समासेन^२ यं प्राप्नोति समाचरन् ।
 आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकांश्च शाश्वतान् ॥ ४८ ॥
 इति सूत्रस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ।

१. पणनं पणः ग्लहः, तदस्यास्ति जीविकात्वेन इति, अत इनि-
 ठनौ इति ठन्, तेन चरति भक्षयति इति नौद्वयचष्टन् ठस्येकः
 पणिको द्यूत-जीवी तस्यान्नं निषिद्धं मनुस्मृतौ ४ र्थाध्याये ।

२. विस्तरेण धर्मशास्त्रेषु-आचाराऽध्यायेषु द्रष्टव्यः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

अथात ऋतुचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात् षड् ऋतवः स्मृताः ।

शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः ॥ १ ॥

शिशिराद्यैस्त्रिभिस्तैस्तु विद्यादयनमुत्तरम् ।

‘आदानं’ च तदादत्ते नृणां प्रतिदिनं बलम् ॥ २ ॥

तस्मिन् ह्यत्यर्थतीक्ष्णोष्णरूपा मार्गस्वभावतः ।

आदित्यपवनाः सौम्यान् क्षपयन्ति गुणान् भुवः ॥ ३ ॥

तिक्तः कषायः कटुको बलिनोऽत्र रसाः क्रमात् ।

तस्मादादानमाग्नेयम् ऋतवो दक्षिणायनम् ॥ ४ ॥

‘वर्षादयो विसर्गश्च’ ‘यद्वलं विसृजत्ययम्’ ।

सौम्यत्वादत्र सोमो हि बलवान् हीयते रविः ॥ ५ ॥

मेघवृष्ट्यनिलैः शीतैः शान्ततापे महीतले ।

स्निग्धाश्चेहाम्ललवणमधुरा बलिनो रसाः ॥ ६ ॥

शीतेऽग्रयं वृष्टिघर्मेऽल्पं बलं मध्यं तु शेषयोः ।

हेमन्तर्तुचर्या—

‘बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः ॥ ७ ॥

भवत्यल्पेन्धनो धातून् स पचेद्वायुनेरितः ।

अतो हिमेऽस्मिन्सेवेत स्वाद्भ्रूल्लवणान् रसान् ॥ ८ ॥

१. वर्षादयस्तय ऋतवो दक्षिणायनमित्यन्वयः । २. अयं विसर्ग-
कालः । ३. हेमन्ते = शीतेऽग्रयं बलं भवतीति हेतोः—बलिनः प्राणिनः

दैर्घ्यान्निशानामेतर्हि प्रातरेव बुभुक्षितः ।
 अवश्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥ ९ ॥
 वातघ्नतैलैरभ्यङ्गं मूर्ध्नि तैलं विमर्दनम् ।
^१नियुद्धं कुशलैः सार्धं पादाघातं च युक्तितः ॥ १० ॥
 कपायापहतस्नेहस्ततः स्नातो यथाविधि ।
^२कुङ्कुमेन सदर्पेण प्रदिग्धोऽगुरुधूपितः ॥ ११ ॥
 रसान् स्निग्धान् पलं पुष्टं गौडमच्छसुरां सुराम् ।
 गोधूमपिष्टमापेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः शुभाः ॥ १२ ॥
 नवमन्त्रं वसां तैलं शौचकार्यं सुखोदकम् ।
^३प्रावाराऽऽजिन-कौशेय-प्रवेणी-कौथवाऽऽस्तृतम् ॥
 उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ।
 युक्त्यार्ककिरणान् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥ १४ ॥
 पीवरोरुस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः ।
 हरन्ति शीतमुष्णाङ्गयो ^४धूपकुङ्कुमयौवनैः ॥ १५ ॥
 अङ्गारतापसंतप्त ^५गर्भभूवेशमचारिणः ।

शीतसंरोधाद् अनलोऽग्निः प्रवलो भवन्नि-सौऽल्पेन्धनः सन् वायु-
 नेरितः प्रेरितः धातून् पचेद्-अतः इत्युत्तरेणान्वयः ।

१. नियुद्धम् = मलयुद्धम् । व्यायामक्षुण्णदेहस्य पद्मथामुद्रति-
 तस्य च । व्याधयो नोपसर्पन्ति-इत्युक्तेः पादाघातमिति ।

२. सदर्पेण = मृगमदसहितेन कुङ्कुमेन = काश्मीरजेन, प्रदिग्धः =
 लिप्ताङ्गः । ३. प्रावारादयो वस्त्रभेदाः सर्वे उष्णाः शीतत्राण-कारकाः,
 एतैरास्तृतं शयनमित्युत्तरेणाऽन्वयः । ४. धूपकुङ्कुमयौवनैरुष्णाङ्ग्यः
 सत्यः शीतं हरन्ति । ५. गर्भवेशम वासगृहम्, भूवेशम भूदुर्गरूपम्

शीतपारुष्यजनितो न दोषो ^१जातु जायते ॥ १६ ॥

हेमन्तचर्या शिशिरेऽतिदिशति—

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः ।

तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ १७ ॥

अथ वसन्तचर्या—

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।

हत्वाऽग्निं ^२कुरुते रोगानतस्तं त्वरया जयेत् ॥ १८ ॥

तीक्ष्णैर्वमनस्याद्यैर्लघुरूक्षैश्च भोजनैः ।

व्यायामोद्वर्तनाघातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥ १९ ॥

स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचन्दनाऽगुरुकुङ्कुमैः ।

पुराणयवगोधूमचौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् ॥ २० ॥

सहकाररसोन्मिश्रानास्वाद्य प्रिययाऽर्पितान् ।

प्रियाऽऽस्यसंगसुरभीन् प्रियानेत्रोत्पलाऽङ्कितान् ॥ २१ ॥

सौमनस्यकृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिबेत् ।

निर्गदानासवारिष्टसीधुमार्द्धकिमाधवान् ॥ २२ ॥

^३शृङ्गवेराम्बु साराम्बु मध्वम्बु जलदाम्बु च ।

दक्षिणाऽनिलशीतिषु परितो जलवाहिषु ॥ २३ ॥

(तैखाना) इति प्रसिद्धम् ।

१. अग्निर्हिमस्य भेषजमिति श्रुतेः शीतवारणे तस्यैव प्राधान्यम् ।

२. अग्निं जाठराग्निम्, हत्वाऽभिभूय, तं कफं जयेत् = अभिभवेत् ।

३. शृङ्गवेरम् = आर्द्रकम् । सारः = खदिरसारश्चन्दन-सारोऽस-
नसार इत्यादिः । जलदो घनः = मुस्ता एतेषां काथः । मधुसहितमम्बु
मध्वम्बु मधूदकम् ।

अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुट्टिमकान्तिषु ।
 परपुष्टविद्युष्टेषु कामकर्मान्तभूमिषु ॥ २४ ॥
 विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु सुगन्धिषु ।
 गोष्ठीकथाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत्सुखी ॥ २५ ॥
 गुरुशीतदिवास्वप्नस्निग्धाम्लमधुरांस्त्यजेत् ।

अथ ग्रीष्मचर्या—

तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्ग्रीष्मे संक्षिपतीव यत् ॥ २६ ॥
 प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ।
 अतोऽस्मिन्पटुकट्वम्लव्यायामार्ककरांस्त्यजेत् ॥ २७ ॥
 भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।
 सुशीततोयसिक्ताङ्गो लिह्यात्सक्तून् सशर्करान् ॥ २८ ॥
 मद्यं न पेयं पेयं वा स्वल्पं सुबहु^१वारि वा ।
 अन्यथा शोफशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत् ॥ २९ ॥
 कुन्देन्दुधवलं शालिमश्रीयाज्जाङ्गलैः पलैः ।
 पिबेद्रसं नातिघनं रसालां रागखाडवौ ॥ ३० ॥
 पानकं पंचसारं वा नवमृद्भाजने स्थितम् ।
 मोचचोचदलैर्युक्तं साम्लं मृण्मयशुक्तिभिः ॥ ३१ ॥
 पाटलावासितं चाम्भः सकर्पूरं सुशीतलम् ।
 शशाङ्ककिरणान् भक्ष्यान् रजन्यां भक्षयन् पिबेत् ॥ ३२ ॥
 ससितं माहिषं क्षीरं चन्द्र-नक्षत्रशीतलम् ।

१. सुबहु = अधिकं वारि जलं यस्मिन् तादृशं वा पिबेत् सति
 सात्म्यत्वे ।

अभ्रङ्कपमहाशालतालरुद्रोष्णरश्मिषु ॥ ३३ ॥
 वनेषु माधवीश्लिष्टद्राक्षास्तवकशालिषु ।
 सुगन्धिहिमपानीयसिच्यमानपटालिके ॥ ३४ ॥
 कायमाने^१ चित्ते चूतप्रवालफललुम्बिभिः ।
 कदलीदलकह्लारमृणालकमलोत्पलैः ॥ ३५ ॥
 कोमलैः कल्पिते तल्पे हसत्कुसुमपल्लवे ।
 मध्यन्दिनेऽर्कतापार्तः स्वप्याद्वारागृहेऽथवा ॥ ३६ ॥
 पुस्तस्त्री-स्तन-हस्ताऽऽस्यप्रवृत्तोशीरवारिणि ।
 निशाकरकराकीर्णं सौधपृष्ठे निशासु च ॥ ३७ ॥
 आसनाः^२ स्वस्थचित्तस्य चन्दनार्द्रस्य मालिनः^३ ।
 निवृत्तकामतन्त्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥ ३८ ॥
 जलार्द्रास्तालवृन्तानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः ।
 उत्क्षेपाश्च मृदूत्क्षेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥ ३९ ॥
 कर्पूरमल्लिकामाला हाराः सहरिचन्दनाः ।
 मनोहरकलाऽऽलापाः शिशवः सारिकाः शुकाः ॥ ४० ॥
 मृणालवलयः कान्ताः प्रोत्फुल्लकमलोज्ज्वलाः ।
 जङ्गमा इव पद्मिन्यो हरन्ति दयिताः क्लमम् ॥ ४१ ॥

अथ वर्षाचर्या—

आदानग्लानवपुषामग्निः सन्नोऽपि सीदति ।
 वर्षासु दोषैर्दुष्यन्ति तेऽम्बुलम्बाम्बुदेऽम्बरे ॥ ४२ ॥
 सत्तुपारेण मरुता, सहसा शीतलेन च ।
 भूवाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा ॥ ४३ ॥

१. कायमाने = वेण्यादिनिमित्ते गृहविशेषे-दति-अरुणः ।

वह्निनैव च मन्देनऋतेष्वित्यन्योन्यदूषिषु ।
 भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत् ॥ ४४ ॥
 आस्थापनं^१ शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसान् कृतान् ।
 जाङ्गलं पिशितं यूषान् मध्वरिष्टं चिरन्तनम् ॥ ४५ ॥
 मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा पञ्चकोला^२ऽवचूर्णितम् ।
 दिव्यं कौपं शृतं चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने ॥ ४६ ॥
 व्यक्तामल्लवणस्नेहं संशुष्कं सौद्रवल्लघु ।
 अपादचारी सुरभिः सततं धूपिताम्बरः ॥ ४७ ॥
 हर्म्यपृष्ठे वसेद्वाप्यशीतशीकरवर्जिते ।
 नदीजलोदमन्था^३हःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

अथ शरच्चर्या—

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः ।
 तप्तानां संचितं वृष्टौ पित्तं शरदि कुप्यति ॥ ४९ ॥
 तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम् ।
 तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु ॥ ५० ॥
 शालिमुद्गसिताधान्रीपटोलमधुजाङ्गलम् ।
 तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः ॥ ५१ ॥
 समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयनिर्विषम् ।
 शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् ॥ ५२ ॥

१. आस्थापनं निरुद्धवस्तिः । २. त्रिकटु-चित्रक-पिप्पलीमूल-
 मिति पञ्चकं पञ्चकोलमित्युच्यते । ३. उदमन्थः, सघृतोदकालोडिताः
 सक्तवः ।

नाभिष्यन्दि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम् ।
 चन्दनोशीरकर्पूरमुक्तास्त्रग्धसनोज्ज्वलः ॥ ५३ ॥
 सौधेषु सौधधवलां चन्द्रिकां रजनीमुखे ।
 तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसाऽऽतपान् ॥ ५४ ॥
 तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् परित्यजेत् ।

अथ समासेन ऋतुचर्या—

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन्वसन्तेऽन्त्यान् रसान्भजेत् ॥ ५५ ॥
 स्वादुं निदाघे शरदि स्वादुतित्तकपायकान् ।
 शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः ॥ ५६ ॥
 अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ।
 नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ ॥ ५७ ॥
 ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः ।
 तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥ ५८ ॥
 असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात् ।
 इति सूत्रस्थाने तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातो रोगानुत्पादनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥ १ ॥

वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्र^१ क्षवतृट्क्षुधाम् ।

निद्राकासभ्रमश्वासजृम्भाऽश्रुच्छर्दिरेतसाम् ॥ १ ॥

१. क्षवः क्षवथुः, दुक्षु शब्दे ऋदोरप् ।

अधोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तरूक्कुमाः ।
 वातमूत्रशकृत्सङ्गदृष्ट्यग्निवधहृदद्वदाः ॥ २ ॥
 स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च ।
 पानानि बस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोमनम् ॥ ३ ॥
 शकृतः^१ पिण्डिकोद्वेष्टप्रतिश्यायशिरोरुजः ।
 ऊर्ध्ववायुः परीकर्तो हृदयस्योपरोधनम् ॥
 मुखेन विट्प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्ताश्रामयाः स्मृताः ॥ ४ ॥
 अङ्गभङ्गाश्मरीबस्तिमेढ्वंच्छणवेदनाः ॥ ५ ॥
 मूत्रस्य रोधात्पूर्वं च प्रायो रोगाः^२ 'स्तदौषधम्' ।
 वर्त्यभ्यङ्गावगाहाश्च स्वेदनं बस्तिकर्म च ॥ ६ ॥
 अन्नपानं च विड्भेदि विड्रोधोत्थेषु यक्ष्मसु ।
 मूत्रजेषु^३ तु पाने च प्राग्भक्तं शस्यते घृतम् ॥ ७ ॥
 जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजना-द्वयम् ।
 अवपीडकमेतच्च संज्ञितं 'धारणात्पुनः' ॥ ८ ॥
 उद्गारस्यारुचिः कम्पो विबन्धो हृदयोरसोः ।
 आध्मानकासहिध्माश्च हिध्मावत्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥
 शिरोर्तीन्द्रियदौर्बल्यमन्यास्तम्भार्दितं क्षुतेः ।

१. शकृतः रोधेन ।

२. मूत्ररोधजेषु-रोगेषु भक्तादोदनभोजनात्प्राग्यथास्यात्तथा प्राग्भक्तं, तथा जीर्णस्य = भोजनस्यान्तिकमव्यवहितोत्तरमेव यथा स्यात्तथा पाने (न तु मर्दनादौ) उत्तमया मात्रया रोगिणः पाचन-शक्त्यनुरूपया घृतं शस्यते-एतच्च योजनाद्वयमवपीडकमितिसंज्ञा संजाताऽस्येति तादृशम् ।

तीक्ष्णधूमाञ्जनाघ्राणनावनार्कविलोकनैः ॥ १० ॥
 प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ।
 शोपाङ्गसादवाधिर्यसंमोहभ्रमहृद्गदाः ॥ ११ ॥
 तृणायानिग्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिर्हितः ।
 अङ्गभङ्गारुचिग्लानिकासर्यशूलभ्रमाः क्षुधः ॥ १२ ॥
 तत्र योज्यं लघु स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम् ।
 निद्राया मोहमूर्धाक्षिर्गौरवालस्यजृम्भिकाः ॥ १३ ॥
 अङ्गमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि च ।
 कासस्य रोधात्तद्वृद्धिः श्वासाऽरुचिहृदामयाः ॥ १४ ॥
 शोषो हिष्मा च कार्याऽत्र कासहा सुतरां विधिः ।
 गुल्महृद्गोगसंमोहाः श्रमश्वासाद्विधारितात् ॥ १५ ॥
 हितं विश्रमणं तत्र वातघ्नश्च क्रियाक्रमः ।
 जृम्भायाः क्षवचद्गोगाः सर्वश्वाऽनिलजिद्विधिः ॥ १६ ॥
 पीनसाक्षिशिरोहृद्गुल्मन्यास्तग्भाऽरुचिभ्रमाः ।
 सगुल्मा वाष्पतस्तत्र स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥ १७ ॥
 विसर्पकोठकुष्ठाक्षि-कण्डूपाण्ड्वामयज्वराः ।
 सकासश्वासहृत्तास-व्यङ्गश्चयथवो वमेः ॥ १८ ॥
 गण्डूपधूमानाहारा रूक्षं भुक्त्वा तदुद्गमः ।
 व्यायामः सुतिरस्त्रस्य शस्तं चात्र विरेचनम् ॥ १९ ॥
 सक्षारलवणं तैल-, मभ्यङ्गार्थं च शस्यते ।
 शुक्रात्तत्स्त्रवणं गुह्य-वेदना श्रयथुर्ज्वरः ॥ २० ॥
 हृद्गुह्यथा मूत्रसङ्गाऽङ्ग-भङ्ग-वृद्धयश्मषण्डताः^१ ।

१. शुक्रादिधारिताद्-हेतुभूतात्-शुक्लवणम्, पायुव्यथा मेहन-

ताम्रचूडसुराशालि-वस्त्यभ्यङ्गाऽवगाहनम् ॥ २१ ॥
 वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं भजेत्क्षीरं प्रियाः स्त्रियः ।
 तृट्शूलार्तं त्यजेत् क्षीणं विडम्बनं वेगरोधिनम् ॥ २२ ॥
 रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैः ।
 निर्दिष्टं साधनं तत्र भूयिष्ठं ये तु तान् प्रति ॥ २३ ॥
 तनश्चानेकधा प्रायः पवनो यत्प्रकुप्यति ।
 अन्नपानौषधं तस्य युञ्जीताऽतोऽनुलोमनम् ॥ २४ ॥

धारयान् वेगानाह—

धारयेत्तु सदा वेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च ।
 लोभेर्ष्याद्वेषमात्मर्य-रागादीनां जितेन्द्रियः ॥ २५ ॥

मलशोधनम्—

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति ।
 अत्यर्थसंचितास्ते हि क्रुद्धाः स्युर्जीवितच्छिदः ॥ २६ ॥
 दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लङ्घनपाचनैः ।
 ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥ २७ ॥
 यथाक्रमं यथायोगमत ऊर्ध्वं प्रयोजयेत् ।
 रसायनानि सिद्धानि वृष्ययोगांश्च कालवित् ॥ २८ ॥
 भेषजक्षपिते पथ्यमाहारैर्बृंहणं क्रमात् ।
 शालिपष्टिकगोधूम-मुद्गमांसघृतादिभिः ॥ २९ ॥

व्यथा च । तयोः शोथश्च, ज्वरश्च, हृदयस्य पीडा, मूत्रावरोधः,
 अङ्गभङ्गः । अण्डवृद्धिः, अश्मरी, स्त्रीसङ्गाऽस्तामर्थ्यञ्चेति भवन्त्युप-
 द्रवाः-रोगरूपाः । अतः-ईरितं शुक्लं धारयेत् ब्रह्मचर्येण तु धारयेत् ।

अष्टाङ्गहृदये ।

हृद्यदीपनभैषज्य-संयोगाद्रुचिपक्तिदैः ।
साभ्यङ्गोद्वर्तनस्नान-निरूहस्नेहवस्तिभिः ॥ ३० ॥
तथा स लभते शर्म सर्वपावकपाटवम् ।
धीवर्णेन्द्रियवैमल्यं वृषतां दैर्घ्यमायुषः ॥ ३१ ॥
ये भूतविषवा य्वग्नि-क्षतभङ्गादिसम्भवाः ।
कामक्रोधभयाद्याश्च ते स्युरागन्तवो गदाः ॥ ३२ ॥
त्यागः प्रज्ञाऽपराधानामिन्द्रियोपशमः स्मृतिः ।
देशकालात्मविज्ञानं सद्वृत्तस्यानुवर्तनम् ॥ ३३ ॥
(अथर्वविहिता शान्तिः प्रतिकूलग्रहार्चनम् ।
भूताद्यस्पर्शनोपायो निर्दिष्टश्च पृथक् पृथक्) ॥
अनुत्पत्त्यै समासेन विधिरेष प्रदर्शितः ।
निजागन्तुविकाराणां, मुत्पन्नानां च शान्तये ॥ ३४ ॥
१ शीतोद्भवं दोषचयं वसन्ते,
विशोधयन् ग्रीष्मजमश्रुकाले ।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक्,
प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु ॥ ३५ ॥
नित्यं हिताहारविहारसेवी,
समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः ।
दाता समः सत्यपरः क्षमावान् ,
आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥ ३६ ॥
इति सूत्रस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।

१. द्वे-उपजाती-इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः । चरके—इमौ श्लोकौ ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो द्रव-द्रव्य-विज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ तोयवर्गः ।

जीवनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम् ।
तन्वच्यत्तरसं स्पृष्टं शीतं लघ्वमृतोपमम् ॥ १ ॥
गङ्गाम्बु नभसो भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केन्दुमारुतैः ।
हिताहितत्वे तद्भूयो देशकालावपेक्षते ॥ २ ॥
येनाऽभिवृष्टममलं शाल्यन्नं राजतस्थितम् ।
अक्लिन्नमविवर्णं च ^१तत्पेयं गाङ्गः 'मन्यथा' ॥ ३ ॥
सामुद्रं तन्न पातव्यं मासादाश्वयुजाद्विना ।
ऐन्द्रमम्बु सुपात्रस्थमविपन्नं सदा पिबेत् ॥ ४ ॥
तदभावे च भूमिष्टमन्तरिक्षानुकारि यत् ।
शुचिपृथ्वसितश्वेते देशेऽर्कपवनाहतम् ॥ ५ ॥
न पिबेत्पङ्कशैवाल-न्तृणपर्णाविलास्तृतम् ।
सूर्येन्दुपवनादृष्ट, मभिवृष्टं घनं गुरु ॥ ६ ॥
फेनिलं जन्तुमत्तप्तं दन्तग्राह्यतिशैत्यतः ।
अनार्तवं च यद्विव्यमार्तवं प्रथमं च यत् ॥ ७ ॥
लृतादितन्तुविण्मूत्र-विषसंश्लेषदूषितम् ।
पश्चिमोदधिगाः शीघ्र-वहा याश्चाऽमलौदकाः ॥ ८ ॥

१. तद् गाङ्गमिति लक्षणम्, पेयम् इति विधिः ।

पथ्याः समासात्ता नद्यो विपरीतास्त्वतोऽन्यथा ।
^१ उपलास्फालनाक्षेप-विच्छेदैः खेदितोदकाः ॥ ९ ॥
 हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्या, स्ता एव च स्थिराः ।
 कृमिश्लीपदहृत्कण्ठ-शिरोरोगान् प्रकुर्वते ॥ १० ॥
 प्राच्याऽऽवन्त्यपरान्तोत्था दुर्नामानि महेन्द्रजाः ।
 उदरश्लीपदातङ्कान् सहाविन्ध्योद्भवाः पुनः ॥ ११ ॥
 कुष्ठपाण्डुशिरोरोगान्, दोषघ्न्यः पारियात्रजाः ।
 बलपौरुषकारिण्यः, सागराभस्त्रिदोषकृत् ॥ १२ ॥
 विद्यात्कूपतडागादीन् जाङ्गलानूपशैलतः ।
 नाम्बु पेयमशक्त्या वा स्वल्पमलपाम्निगुल्मिभिः ॥ १३ ॥
 पाण्डूदरातिसाराशो-ग्रहणीशोषशोथिभिः ।
 ऋते शरन्निदाघाभ्यां पिबेत्स्वस्थोऽपि चाल्पशः ॥ १४ ॥
 समस्थूलकृशा भक्त-मध्यान्तप्रथमाम्बुपाः ।
 शीतं मदात्ययग्लानि-सूर्च्छाच्छर्दिश्रमभ्रमान् ॥ १५ ॥
 तृणोष्णदाहपित्तास्र-विपाण्यम्बु नियच्छति ।
 दीपनं पाचनं कण्ठ्यं लघूष्णं वस्तिशोधनम् ॥ १६ ॥
 हिध्माऽऽध्मानाऽनिल-श्लेष्म-सद्यःशुद्धि-नवज्वरे ।
 कासाऽऽम-पीनस-श्वास-पार्श्वरुत्तु च शस्यते ॥ १७ ॥
 अनभिष्यन्दि लघु च तोयं कथितशीतलम् ।
 पित्तयुक्ते हितं दोषे व्युषितं तत् त्रिदोषकृत् ॥ १८ ॥
 नालिकैरोदकं स्निग्धं स्वादु वृष्यं हिमं लघु ।

तृष्णा-पित्ताऽनिलहरं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ १९ ॥
वर्षासु दिव्य-नादेये परं तोये वराऽवरे ।

अथ क्षीरवर्गः ।

॥ गव्यं माहिषमाजं च कारभं स्त्रैणमाविकम् ।
ऐभमैकफफं चेति क्षीरमष्टविधं मतम् ॥ २० ॥
स्वादुपाकरसं स्निग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् ॥ २० ॥
वातपित्तहरं वृष्यं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ।
प्रायः पयोऽः त्र गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ॥ २१ ॥
क्षतक्षीणहितं मेध्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् ।
श्रम-भ्रम-मदाऽलक्ष्मी-श्वास-कासाऽतिवृद्धुधः ॥ २२ ॥
जीर्णज्वरं मूत्रकृच्छ्रं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।
हितमत्यग्न्यनिद्रेभ्यो गरीयो माहिषं हिमम् ॥ २३ ॥
अल्पांशुपानव्यायाम-कटुतिक्ताशनैर्लघु ।
आजं शोषज्वरश्वास-रक्तपित्तातिसारजित् ॥ २४ ॥
ईषद्रूक्षोष्णलवण-मौष्ट्रकं दीपनं लघु ।
शस्तं वातकफानाह-कृमिशोफोदरार्शसाम् ॥ २५ ॥
मानुषं वातपित्तासृ-गभिघाताक्षिरोगजित् ।
तर्पणाऽऽश्रुतनैर्नस्यैः ॥ अहृद्यं तूष्णमाविकम् ॥ २६ ॥
वातव्याधिहरं हिष्मा-श्वासपित्तकफप्रदम् ।
हस्तिन्याः स्थैर्यकृद् ॥ वाढ-मुष्णं त्वैकशफं लघु ॥ २७ ॥
शाखावातहरं सारल-लवणं जडताकरम् ।
पयोभिष्यन्दि गुर्वमं युक्त्वा शृतमतोऽन्यथा ॥ २८ ॥
भवेद्गरीयोऽतिशृतं धारोष्णममृतोपमम् ।

अथ दधिवर्गः ।

अम्लपाकरसं ग्राहि गुरुष्णं दधि वातजित् ॥ २९ ॥

मेदःशुकबलश्लेष्म-पित्तरक्ताऽग्निशोफकृत् ।

रोचिष्णु शस्तमरुचौ शीतके विषमज्वरे ॥ ३० ॥

पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च रूचे तु ग्रहणीगदे ।

नैवा^१द्यान्निशि नैवोष्णं वसन्तोष्णशरत्सु न ॥ ३१ ॥

नामुद्रसूपं नाचौद्रं तन्नाधृतसितोपलम् ।

न चानामलकं नापि नित्यं नोऽमन्दमन्यथा ॥ ३२ ॥

ज्वरासृक्पित्तवीसर्प-कुष्ठपाण्डुभ्रमप्रदम् ।

^२तक्र गुणाः—

तक्रं लघु कषायाम्लं दीपनं कफवातजित् ॥ ३३ ॥

शोफोदराशोऽग्रहणी-दोषमूत्रग्रहाऽरुचिः ।

प्लीहगुल्मघृतव्यापद्-भारपाण्ड्वामयान् जयेत् ॥ ३४ ॥

तद्वन्मस्तु सरं स्रोतःशोधि विष्टम्भजिह्वधु ।

नवनीतगुणाः—

नवनीतं नवं वृष्यं शीतं वर्णबलाग्निकृत् ॥ ३५ ॥

संग्राहि वातपित्तासृक्-क्षयाशोऽर्दितकासजित् ।

क्षीरोद्भवं तु संग्राहि, रक्तपित्ताक्षिरोगजित् ॥ ३६ ॥

१. दधि निशि नैवाऽद्यात्, उष्णं दधि नैवाऽद्यात्, विकृतम-
प्राप्तदधिभावं दुग्धं मन्दकमित्युच्यते । अन्यथा = विधिरहितं भक्षितं
दधि-ज्वरादीन् प्रकर्षेण ददातीति ध्येयम् ।

२. तक्रं ह्युदधिन्मथितं पादाम्बुवर्द्धाम्बुनिर्जलम् ।

घृतगुणाः—

शस्तं धीस्मृतिमेधाग्नि-बलायुःशुक्रचक्षुषाम् ।
 बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम् ॥ ३७ ॥
 क्षतक्षीणपरीसर्प-शस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।
 वातपित्तविषोन्माद-शोपाऽलक्ष्मीज्वरापहम् ॥ ३८ ॥
 स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम् ।
^१सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत् ॥ ३९ ॥

पुराणघृतगुणाः—

मदापस्मारमूर्च्छाय-शिरःकर्णाक्षियोनिजान् ।
 पुराणं जयति व्याधीन् व्रणशोधनरोपणम् ॥ ४० ॥
 बल्याः किलाट-पीयूष^२कूर्चिकामोरगादयः ।
 शुक्रनिद्राकफकरा विष्टम्भिगुरुदोषलाः ॥ ४१ ॥
 गव्ये क्षीरघृते श्रेष्ठे निन्दिते चाविसम्भवे ।

अथ—इक्षुवर्गः ।

इक्षो रसो गुरुः स्निग्धो बृंहणः कफमूत्रकृत् ॥ ४२ ॥

१. विधिभिर्योगसंस्कारादिभिः सहस्रवीर्यमनेकवीर्यं सद्-घृतमने-
 कार्कश्यकृत् । २. पीयूषो मोरटं चैव किलाटा विविधाश्च ये । दीप्ताग्नी-
 नामनिद्राणां सर्व एव सुखप्रदाः ॥ गुरवस्तर्पणा वृथ्या बृंहणाः पव-
 नाऽपहाः । विशदा-गुरवो रूक्षा ग्राहिणस्तक्रपिण्डकाः । च० सं० सू०
 २७।२३५। सप्तःप्रसूतायाः क्षीरं पीयूष इत्युच्यते, तस्यैव भेदाः किला-
 टादयः । अस्मिन् ग्रन्थे मोरट-स्थाने 'मोरण'-प्रयोगो हिक्कास्थाने-
 हिध्मावत् ।

वृष्यः शीतोऽस्रपित्तघ्नः स्वादुपाकरसः सरः ।
 सोऽग्रे सलवणो, 'दन्त-पीडितः' शर्करासमः ॥ ४३ ॥
 मूलाऽग्रजन्तुजग्धादि-पीडनान्मलसङ्करात् ।
 किञ्चित्कालं विष्टन्या च विकृतिं याति 'यान्त्रिकः' ॥ ४४ ॥
 विदाही गुरुविष्टम्भी ^१तेनासौ तत्र 'पौण्ड्रकः' ।
 शैत्यप्रसादमाधुर्यैर्वरस्, तमनुवांशिकः ॥ ४५ ॥
 शतपर्वक-कान्तार-नैपालाद्यास्ततः क्रमात् ।
 सक्षाराः सकपायाश्च सोष्णाः किञ्चिद्विदाहिनः ॥ ४६ ॥
 फाणितं गुर्वभिष्यण्दि चयकुन्मूत्रशोधनम् ।
 नातिश्लेष्मकरो धौतः ^२सृष्ट-मूत्र-शकृद्-गुडः ॥ ४७ ॥
 प्रभूतकृमिमज्जासृङ्-मेदोमांसकफोऽपरः ।
 हृद्यः पुराणः पथ्यश्च नवः श्लेष्माऽग्निसादकृत् ॥ ४८ ॥
 वृष्याः क्षतक्षीणहिता रक्तपित्तानिलापहाः ।
 मत्स्यण्डिकाखण्डसिताः क्रमेण गुणवत्तमाः ॥ ४९ ॥
 तद्गुणा तिक्तमधुरा कपाया यासशर्करा ।
 दाहवृद्धिर्दिमूर्च्छामृक्-पित्तघ्न्यः सर्वशर्कराः ॥ ५० ॥
 शर्करेक्षु ^३विकाराणां फाणितश्च वराऽवरे ।

अथ मधुवर्गः ।

च प्यं छेदि तृदश्लेष्म-विपहिध्मास्रपित्तनुत् ॥ ५१ ॥

१ तेन = मूलाग्राद्युत्तहेतुसमुदायेन, असौ यान्त्रिक-इक्षुरसः,
 विदाही = विदग्धाजीर्णताकरः, गुरुः, विष्टम्भी च । 'यान्त्रिकस्तु
 विदह्यते' - इति चरकः । २. धौतः संस्कार-शुद्धः । ३. इक्षु-विका-
 राणां मध्ये शर्करा फाणितञ्च वराऽवरे = क्रमात् श्रेष्ठाऽधमे भवतः ।

मेहकुष्ठकृमिच्छर्दि-श्वासकासातिसारानुत् ।
 व्रणशोधनसन्धान-रोपणं वातलं मधु^१ ॥ ५२ ॥
 रूक्षं कषायमधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा ।
 उष्णमुष्णार्तमुष्णे च युक्तं चोष्णैर्निहन्ति तत् ॥ ५३ ॥
 प्रच्छर्दने निरूहे च मधूष्णं न निवार्यते ।
 अलब्धपाकमाश्वेव तयोर्यस्मान्निवर्तते ॥ ५४ ॥

अथ तैलवर्गः ।

तैलं स्वयोनिवत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च ।
 त्वग्दोषकृदक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफकृन्न च ॥ ५५ ॥
 कृशानां^३ बृंहणायाऽलं स्थूलानां कर्शनाय च ।
 बद्धविट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्सर्वदोषजित् ॥ ५६ ॥
 सतिक्तोषणं^३ 'मैरण्डं' तैलं स्वादु सरं गुरु ।
 वर्ध्मगुल्मानिलकफान् , उदरं विषमज्वरम् ॥ ५७ ॥
 रुक्शोफौ च कटीगुह्य-कोष्ठपृष्ठाश्रयौ जयेत् ।
 तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विस्रं^३ 'रक्तैरण्डोद्भवं' त्वति ॥ ५८ ॥

१. मधु-वधुपुं हितं, छिनत्ति बद्धमलादिकमिति-छेदि, इत्याद्य-
 न्वयः, हिध्मा=हिध्मा । २. त्वग्दोषं करोतीति 'त्वग्दोषकृत्'
 पानाम्यासे, त्वग्दोषं कृन्ततीति-मर्दने, सुत्वक्त्वदाढ्यकृत्-इति
 सुश्रुतः । 'त्वच्यमुष्णं स्थिरकरं' तैलमिति चरकः सू० अ० १३ ।
 ३. संकुचितस्त्रोतः-शोथनद्वारा कृशानां पुष्टिः । भेदःशोधनद्वारा
 स्थूलानां कर्शनम्-इति विरुद्धं कार्यद्वयगुणपन्नमेव, स्त्रोतःप्रवेश-
 योग्यगुणवत्त्वात्तैलस्य ।

कटूष्णं 'सार्धपं' तीक्ष्णं कफशुक्रानिलापहम् ।
 लघुपित्तास्रकृत् कोष्ठकुष्ठार्शोव्रणजन्तुजित् ॥ ५९ ॥
^१'आक्षं' स्वादु हिमं केश्यं गुरु पित्तानिलापहम् ।
 नात्युष्णं 'निम्बजं' तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रणुत् ॥ ६० ॥
^२'उमाकुसुम्भजं' चोष्णं त्वग्दोषकफपित्तकृत् ।
 वसा मज्जा च वातघ्नौ बलपित्तकफप्रदौ ॥ ६१ ॥
 मांसानुगं ^३स्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि ताविव ।

अथ मद्यवर्गः ।

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम् ॥ ६२ ॥
 सस्वादुतिक्तकटुकम् , अम्लपाकरसं सरम् ।
 सकपायं स्वरारोग्य-प्रतिभावर्यकृल्लघु ॥ ६३ ॥
 नष्टनिद्राऽतिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम् ।
 कृशस्थूलहितं रुक्षं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनम् ॥ ६४ ॥
 वातश्लेष्महरं युक्त्या पीतं 'विषवदन्यथा' ।
 गुरु त्रिदोषजननं नवं जीर्णमतो 'ऽन्यथा' ॥ ६५ ॥
 पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तक्षुधातुरैः ।
 नात्यर्थतीक्ष्णमृद्वल्प-सम्भारं कलुषं न च ॥ ६६ ॥
 गुल्मोदराशोग्रहणी-शोषहृत् स्नेहनी गुरुः ।
 'सुरा'ऽनिलघ्नी मेदोसृक्-स्तन्यमूत्रकफावहा ॥ ६७ ॥

१. अक्षौ विमातकस्तस्मात्तस्येदं, तत्र भवः, तत आगतः-इत्य-
 णि-आक्षम्, तैलं, तस्य मज्जः स्नेहवत्त्वात् । तैलम्-इत्यधिक्रियते ।

२. उमा=अतसी । ३. मांसाऽनुगं स्वरूपं ययोस्तौ वसा-
 मज्जानौ स्वकारणतुल्यगुणौ ।

तद्गुणा 'वारुणी' हृद्या लघुस्तीक्ष्णा निहन्ति च ।
 शूलकासवमिश्रास-विवन्धाध्मानपीनसान् ॥ ६८ ॥
 नातितीव्रमदा लघ्वी पथ्या 'बैभीतकी सुरा' ।
 व्रणे पाण्ड्वामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते ॥ ६९ ॥
 विष्टम्भिनी 'यवसुरा' गुर्वी रूक्षा 'त्रिदोषला' ।
 यथाद्रव्यगुणोऽरिष्टः' सर्वमद्यगुणाधिकः ॥ ७० ॥
 ग्रहणीपाण्डुकुष्ठार्शःशोफशोषोदरज्वरान् ।
 हन्ति गुल्मकृमिप्लीहः, कषायकटुवातलः ॥ ७१ ॥
 'मार्द्वीकं' लेखनं हृद्यं नात्युष्णं मधुरं सरम् ।
 अल्पपित्तानिलं पाण्डु-मेहार्शःकृमिनाशनम् ॥ ७२ ॥
 अस्मादल्पान्तरगुणं 'खार्जूरं' वातलं गुरु ।
 'शार्करः' सुरभिः स्वादुर्हृद्यो नातिमदो लघुः ॥ ७३ ॥
 सृष्टमूत्रशकृद्वातो 'गौड'स्तर्पणदीपनः ।
 वातपित्तकरः 'शीघ्रः' स्नेहश्लेष्मविकारहा ॥ ७४ ॥
 मेदःशोषोदराशोघ्नस्तत्र पक्करसो वरः ।
 छेदी 'मध्वासव'स्तीक्ष्णो मेहपीनसकासजित् ॥ ७५ ॥
 रक्तपित्तकफोत्क्लेदि 'शुक्तं' वातानुलोमनम् ।
 भृशोष्णतीक्ष्णरूक्षाम्लं हृद्यं रुचिकरं सरम् ॥ ७६ ॥
 दीपनं शिशिरस्पर्शं पाण्डुदृक्कृमिनाशनम् ।
 'गुडेक्षुमद्यमार्द्वीक-शुक्तं' लघु यथोत्तरम् ॥ ७७ ॥

१. त्रयश्च ते दोषाः = त्रिदोषास्ताँल्लातीति—'आतोऽनुप-
 सर्गे कः ।

२. अग्रा०

‘कन्दमूलफलाद्यं’ च तद्वद्विद्यात्तदाऽऽसुतम् ।

‘शाण्डाकी’ चाऽऽसुतं चान्यत्कालाम्लं रोचनं लघु ॥

‘धान्याम्लं’ भेदि तीक्ष्णोष्णं पित्तकृत्स्पर्शशीतलम् ।

श्रमक्लहरं रुच्यं दीपनं वस्तिशूलनुत् ॥ ७९ ॥

शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातकफापहम् ।

एभिरेव गुणैर्युक्ते ‘सौवीरकतुषोदके’ ॥ ८० ॥

कृमिहृद्गोगुल्मार्शःपाण्डुरोगनिवर्हणे ।

ते क्रमाद्वितुषैर्विद्यात्, सतुषैश्च यवैः कृते ॥ ८१ ॥

अथ मूत्रवर्गः—

मूत्रं गोऽजाविमहिषी-गजाश्वोप्सूखरोद्भवम् ।

पित्तलं रुक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु ॥ ८२ ॥

कृमिशोफोदरानाह-शूलपाण्डुकफानिलान् ।

गुल्मारुचिविपुश्चित्र-कुष्ठार्शोसि जयेद्भृशम् ॥ ८३ ॥

तोय-क्षीरेक्षुतैलानां वर्गैर्मद्यस्य च क्रमात् ।

इति-द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृतः ॥ ८४ ॥

इति-सूत्रस्थाने-पञ्चमोऽध्यायः

१. शाण्डीकीशब्देनेह कथिताऽऽसुतानि मूलक-सर्षपशाकानि-
कालजीरक-राजिकासु भावितानि अम्लतीक्ष्णानि-सन्त्युच्यन्ते ।
अरुणः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

^१अथातोऽन्नस्वरूपविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः
इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ ^२शूकधान्यवर्गः—

तत्र शालयः—

रक्तो महान् सकलमस्तूर्णकः शकुनाहतः ।
सारामुखो दीर्घशूको रोध्रशूकः सुगन्धकः ॥ १ ॥
पुण्ड्रः पाण्डुः पुण्डरीकः प्रमोदो गौरसारिवौ ।
काञ्चनो महिषः शूको दूषकः कुसुमाण्डकः ॥ २ ॥
लाङ्गला लोहवालाख्याः कर्दमाः शीतभीरुकाः ।
पतङ्गास्तपनीयाश्च ये चान्ये शालयः शुभाः ॥ ३ ॥
स्वादुपाकरसाः स्निग्धा वृण्वा ^३वद्धाल्पवर्चसः ।
कपायानुरसाः पथ्या लघवो मूत्रला हिमाः ॥ ४ ॥
शूकजेषु वरस्तत्र रक्तस्तृणान्निदोषहा ।

१. पेयं निरूप्य भक्षं निरूपयति—अथात इति ।

२. शूकधान्यं शमीधान्यञ्चेति धान्यं द्विविधम्, तयोः शूकधान्यं-
प्रधानम् तत्राऽपि 'रक्तशालिवरस्तेषामिति चरकोक्तेराह—रक्त
इति । च० सं० सू० २७ ।

३. वद्धमल्पं वर्चः पुरीषं येषामिति विग्रहः, जन्यजनकभावरूप-
सम्बन्धार्थकः पष्ठचर्थे समासः, तथा च—वद्धमल्पं यद्वर्चस्तज्जनकत्वमन्य-
पदार्थे लभ्यते । एवमन्यत्र बहुव्रीहिस्थले ।

महांस्तमनु कलमस्तं चाप्यनु ततः परे ॥ ५ ॥

यवका हायनाः पांसु-वाप्पनैषधकादयः ।

स्वादूष्णा गुरवः स्निग्धाः पाकेऽम्लाः श्लेष्मपित्तलाः ॥ ६ ॥

सृष्टमूत्रपुरीषाश्च पूर्वं पूर्वं च निन्दिताः ।

अथ ब्रीहयः—

स्निग्धो ग्राही लघुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरो हिमः ॥ ७ ॥

पष्टिको ब्रीहिषु^१ श्रेष्ठो गौरश्चाऽसितगौरतः ।

ततः क्रमान्महाब्रीहि-कृष्णब्रीहि-जतूमुखाः ॥ ८ ॥

कुक्कुटाण्डकलावाख्य-पारावतक-शूकराः ।

वरकोद्दालकोज्ज्वाल-चीनशारददुर्दुराः ॥ ९ ॥

गन्धनाः कुरुविन्दाश्च गुणैरल्पान्तराः स्मृताः ।

स्वादुरम्लविपाकोऽन्यो ब्रीहिः पित्तकरो गुरुः ॥ १० ॥

बहुमूत्रपुरीषोष्मा त्रिदोषस्त्वेव पाटलः ।

अथ तृणधान्यवर्गः ।

कङ्गुकोद्रवनीवार-श्यामाकादि हिमं लघु ॥ ११ ॥

तृणधान्यं पवनकृल्लेखनं कफपित्तहृत् ।

भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियङ्गुर्बृहणी गुरुः ॥ १२ ॥

कोरदूपः परं ग्राही स्पर्शशीतो विषापहः ।

अथ यवादिवर्गः ।

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः सरो विड्वातकृच्चवः ॥ १३ ॥

१. ब्रीहयः शारदाः, पष्टिकादयश्च ग्रैष्माः, शालिर्हैमन्तिकं धान्यम्-इति-व्यवस्थेति-भिषजः, ततश्चात्र ब्रीहिशब्दो धान्यसामान्य-वाची ।

वृष्यः स्थैर्यकरो मूत्रमेदःपित्तकफान् जयेत् ।
 पीनसश्वासकासोरुस्तम्भकण्ठत्वगामयान् ॥ १४ ॥
 न्यूनो यवादनुयवः॥ रूक्षोष्णो वंशजो यवः ।
 वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो जीवनो वातपित्तहा ॥ १५ ॥
 संधानकारी मधुरो गोधूमः स्थैर्यकृत्सरः ।
 पथ्या नंदीमुखी शीता कषायमधुरा लघुः ॥ १६ ॥
 अथ शिम्बीधान्यवर्गः ।

मुद्गाढकीमसूरादि ^१शिम्बीधान्यं विबन्धकृत् ।
 कषायं स्वादु संग्राहि कटुपाकं हिमं लघु ॥ १७ ॥
 मेदःश्लेष्मास्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः ।
 वरोऽत्र मुद्गोऽल्पबलः कलायस्वतिवातलः ॥ १८ ॥
 राजमाषोऽनिलकरो रूक्षो बहुशुक्रगुरुः ।
 उष्णाः कुलत्थाः पाकेऽम्लाः शुक्राश्मश्वासपीनसान् ॥ १९ ॥
 कासार्षःकफवातांश्च घ्नन्ति पित्तास्रदाः परम् ।
 निष्पावो वातपित्तास्रस्तन्यमूत्रकरो गुरुः ॥ २० ॥
 सरो विदाही दृक्शुक्र-कफशोफविषापहः ।
 माषः स्निग्धो बलश्लेष्म-मलपित्तकरः सरः ॥ २१ ॥
 गुरुष्णोऽनिलहा स्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् ।
 फलानि माषवद्विद्यात् ^२काकाण्डोलात्मगुप्तयोः ॥ २१ ॥

१. द्विविधं धान्यं, शूकवत्-शिम्बीवच्चेति-माषादयः-शमी-
 धान्ये, शूकधान्ये यवादय'-इत्यमरः ।

२. काकाण्डोला = बलदाङ्क-इतिप्रसिद्धा हिमवति, चित्रशिलादि
 (काठगो दाम) प्रदेशे, ऋषीवेशे च । स्थिरा लता शम्बी च

उष्णस्त्वच्यो हिमः स्पर्शं केश्यो बल्यस्तिलो गुरुः ।
 अल्पमूत्रः कटुः पाके मेधाऽग्निकफपित्तकृत् ॥ २३ ॥
 स्निग्धोमा स्वादुतिक्तोष्णा कफपित्तकरी गुरुः ।
 दृक्शुक्रहृत्कटुः पाके तद्वह्नीजं कुसुम्भजम् ॥ २४ ॥
 माषोऽत्र सर्वेष्ववरो यवकः शूकजेषु च ।
 नवं धान्यमभिष्यन्दि लघु संवत्सरोपितम् ॥ २५ ॥
 शीघ्रजन्म तथा सूप्यं निस्तुषं युक्तिभर्जितम् ।
 'यवगोधूममाषाश्च तिलाश्चाभिनवा हिताः ।
 पुराणा विरसाः सूक्ष्मा न तथार्थकरा मताः ॥
 अथ कृतान्न (पक्कान्न) वर्गः ।
 मण्डपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम् ॥ २६ ॥
 यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्डो वातानुलोमनः ।
 तृङ्गलानिदोषशेषघ्नः पाचनो धातुसाम्यकृत् ॥ २७ ॥
 स्रोतोमार्दवकृत्स्वेदी सन्धुक्षयति चानलम् ।
 क्षुत्तृष्णाग्लानिदौर्बल्य-कुत्तिरोगज्वरापहा ॥ २८ ॥

महती फलं कर्षान्मन्यूनम् । कषिकच्छपास्तु लता फलपाकान्ता । का-
 काण्डोमा (ला) ऽऽत्मगुप्तानामिति चरके बहुवचनेन-‘उमा’ ‘उला’
 वा-तृतीयापि प्रतीयते । तत्र काकाण्डा, उमा (उला) आत्मगुप्ता,
 इतिच्छेदः । शूको जायते येषां फलत्वचि-इतिशूकजाः ‘अन्तान्त्य-
 न्ताध्वदूरपारसर्वानन्तेषु छः-इत्यत्र ‘अन्येष्वपि दृश्यते-इत्युक्तेर्द्वप्रत्य-
 यः । नैते शालियवादयः शूकाज्जयन्ते-येन ‘पञ्चम्यामजाता’ विंति
 छः क्रियते, न वा शूके, येन सप्तम्यां जनेरिति-प्रसज्येत । तथा च-
 शूकवत्सु-इत्यर्थः फलति ।

मलानुलोमनी पथ्या पेया दीपनपाचनी ।
 विलेपी ग्राहिणी हृद्या तृष्णाघ्नी दीपनी हिता ॥ २९ ॥
 व्रणाक्षिरोगसंशुद्धदुर्बलस्नेहपायिनाम् ।
 सुधौतः प्रसृतः स्विन्नोऽत्यक्तोष्मा चौदनो लघुः ॥ ३० ॥
 यश्चाग्नेयौषधकाथ-साधितो भ्रष्टतण्डुलः ।
 विपरीतो गुरुः क्षीरमांसाद्यैर्यश्च साधितः ॥ ३१ ॥
 इति द्रव्यक्रियायोग-मानाद्यैः सर्वमादिशेत् ।
 बृंहणः प्रीणनो वृष्यश्चक्षुष्यो व्रणहा रसः ॥ ३२ ॥
 मौद्गस्तु पथ्यः संशुद्ध-घ्नकण्ठाक्षिरोगिणाम् ।
 वातानुलोमी कौलत्थो गुल्मतूनी^१प्रतूनिजित् ॥ ३३ ॥
 'अकृतं कृतयूर्पं च तनु संस्कारितं रसम् ।
 सूपमग्लमनग्लं च गुरु विद्याद्यथोत्तरम् ॥'
 तिलपिण्याकविकृतिः शुष्कशाकं विरूढकम् ।
 शाण्डाकीवटकं दृग्धनं^२ दोषलं ग्लपनं गुरु ॥ ३४ ॥
 रसाला बृंहणी वृष्या स्निग्धा बल्या रुचिप्रदा ।
 श्रमक्षुत्तट्कृमहरं पानकं प्रीणनं गुरु ॥ ३५ ॥
 विष्टम्भि मूत्रलं हृद्यं यथाद्रव्यगुणं च तत् ।
 लाजास्तृट्छर्द्यतीसार-मेहमेदःकफच्छिदः ॥ ३६ ॥
 कासपित्तोपशमना दीपना लघवो हिमाः ।
 पृथुका गुरवो बल्याः कफविष्टम्भकारिणः ॥ ३७ ॥

१. तूनीप्रतूनि-रोगौ गुल्मनिदाने द्रष्टव्यौ । २. दृग्धनं दृष्टि-
 नाशकम् ।

धाना विष्टम्भिनी रूक्षा तर्पणी लेखनी गुरुः ।
 सक्तवो लघवः क्षुत्तृट्-श्रमनेत्रामयघ्नान् ॥ ३८ ॥
 घ्नन्ति सन्तर्पणाः पानात्सद्य एव बलप्रदाः ।
 नोदकान्तरितान्न द्विर्न निशायां न केवलान् ॥ ३९ ॥
 न भुक्त्वा न द्विजेशिष्यत्वा सक्तूनद्यान्न वा बहून् ।
 पिण्याको ग्लपनो रूक्षो विष्टम्भी दृष्टिदूषणः ॥ ४० ॥
 रौच्याद्विष्टम्भते कोष्ठे विष्टम्भित्वाद्विदह्यते ।
 विदाहात्कुरुते ग्लानिं पिण्याको निशि सेवितः ॥
 वेसवारो गुरुः स्निग्धो बलोपचयवर्धनः ।
 मुद्गादिजास्तु गुरवो यथाद्रव्यगुणानुगाः ॥ ४१ ॥
 कुकूलकर्परभ्राष्ट्रकन्दङ्गारविपाचितान् ।
 एकयोर्नील्लघून्विद्यादपूपानुत्तरोत्तरम् ॥ ४२ ॥

अथ मांसवर्गः ।

हरिणैणकुरङ्गर्क्षगोकर्णमृगमातृकाः ।
 शशशम्बरचारुष्क-शरभाद्या^१ मृगाः स्मृताः ॥ ४३ ॥
 लावचार्नीकवर्तारिरक्तवर्त्मककुक्कुभाः ।
 कपिञ्जलोपचक्राख्य-चकोरकुरुवाहवः ॥ ४४ ॥
 वर्तको वर्तिका चैव तित्तिरिः क्रकरः शिखी ।
 ताम्रचूडाख्यबकर-गोनर्दगिरिवर्तिकाः ॥ ४५ ॥
 तथा शारपदेन्द्राभवरटाद्याश्च 'विज्जिराः' ।
 जीवजीवकदात्यूह-भृङ्गाह्वशुकसारिकाः ॥ ४६ ॥

१. आद्यशब्दात्कालपुच्छकादयः, वन्याश्चतुष्पदो मृगा-इत्युच्यन्ते ।

लट्वा-कोकिल-हारीत-कपोतचटकादयः ।
 प्रतुदाः ॥ भेकगोधाहि-श्वाविदाऽऽद्या 'विलेशयाः' ॥ ४७ ॥
 ॥ गोखराश्वतरोद्गाश्व-द्वीपिसिंहर्त्तवानराः ।
 मार्जारमूषकव्याघ्र-वृकबभ्रुतरक्षवः ॥ ४८ ॥
 लोपाक-जम्बुक-श्येन-चाप-वान्ताद-वायसाः ।
 शशघ्नीभासकुरर-गृध्रोल्ककुलिङ्गकाः ॥ ४९ ॥
 धूमिका मधुहा चेति 'प्रसहा' मृगपक्षिणः ।
 ॥ वराहमहिषन्यङ्कु-रूरोहितवारणाः ॥ ५० ॥
 समरश्चमरः खड्गो गवयश्च 'महामृगाः' ।
 ॥ हंससारसकादम्बवककारण्डवप्लवाः ॥ ५१ ॥
 बलाकोत्क्रोशचक्राह्व-मद्गुक्रौञ्चादयो 'अपचराः' ^१ ।
 ॥ मत्स्या रोहितपाठीन-कूर्मकुम्भीरकर्कटाः ॥ ५२ ॥
 शुक्तिशङ्खोदशम्बूक-शफरीवर्मिचन्द्रिकाः ।
 चुलूकीनक्रमकरशिशुमारतिमिङ्गिलाः ॥ ५३ ॥
 राजीचिलिचिमाद्याश्च ॥ मांसमित्याहुरष्टधा ।
 मृग्यं वैष्किरिकं किञ्च प्रातुदं च विलेशयम् ।
 प्रासहं च महामृग्यमपचरं मात्स्यमष्टधा ॥
 योनिष्वजावी व्यामिश्र-गोचरत्वादनिश्चिते ॥ ५४ ॥
 आद्यान्त्या जाङ्गलानूपा मध्यौ साधारणौ स्मृतौ ।
 तत्र बद्धमलाः शीता लघवो जाङ्गला हिताः ॥ ५५ ॥
 पित्तोत्तरे वातमध्ये सन्निपाते कफानुगे ।

१. अपचराः—जलचराः । * एतानि चिह्नानि विषयारम्भ-
 बोधकानि ।

दीपनः कटुकः पाके ग्राही रूक्षो हिमः शशः ॥ ५६ ॥
 ईषदुष्णगुरुस्निग्धा बृंहणा वर्तकादयः ।
 तित्तिरिस्तेष्वपि वरो मेधाग्निबलशुक्रकृत् ॥ ५७ ॥
 ग्राही वर्ण्योऽनिलोद्विक्तसन्निपातहरः परम् ।
 नातिपथ्यः शिखी पथ्यः श्रोत्रस्वरवयोदशाम् ॥ ५८ ॥
 तद्वच्च ^१कुक्कुटो वृष्यः ॥ ग्राम्यस्तु श्लेष्मलो गुरुः ।
 मेधाऽनलकरा हृद्याः क्रूराः सोपचक्रकाः ॥ ५९ ॥
 गुरुः सलवणः ^२काणकपोतः सर्वदोषकृत् ।
 चटकाः श्लेष्मलाः स्निग्धा वातघ्नाः शुक्रलाः परम् ॥ ६० ॥
 गुरुष्णस्निग्धमधुरा वर्गाश्चातो यथोत्तरम् ।
 मूत्रशुक्रकृतो बल्या वातघ्नाः कफपित्तलाः ॥ ६१ ॥
 शीता महामृगास्तेषु क्रव्यादप्रसहाः पुनः ।
 लवणानुरसाः पाके कटुका मांसवर्धनाः ॥ ६२ ॥
 जीर्णांशोऽग्रहणीदोष-शोषार्तानां परं हिताः ।
 नातिशीतगुरुस्निग्धं मांसमाजमदोषलम् ॥ ६३ ॥
 शरीरधातुसामान्यादनभिव्यन्दि बृंहणम् ।
 विपरीतमतो ज्ञेयमाविकं बृंहणं तु तत् ॥ ६४ ॥
 शुष्ककासश्रमात्यग्निविषमज्वरपीनसान् ।
 कार्श्यं केवलवातांश्च गोमांसं सन्नियच्छति ॥ ६५ ॥
 उष्णो गरीयान्महिषः स्वप्नदार्ष्यबृहत्त्वकृत् ।

१. कुक्कुटोऽत्र वन्यः, ग्राम्यस्य-पृथगुपादानात् ।

२. काणकपोतो ऽगृह्यक-कपोतः । 'गृह्यासक्ताः पक्षिमृगाश्छेकास्ते गृह्यकाश्च ते' इत्यमरः ।

तद्वद्वराहः श्रमहा रुचिशुक्रबलप्रदः ॥ ६६ ॥
 मत्स्याः परं कफकराः ॐ चिलिचीमस्त्रिदोषकृत् ।
 मत्स्यादिपक्षिणां चैव गुरुण्यण्डानि चादिशेत् ।
 तानि स्निग्धानि वृथ्याणि स्वादुपाकरसानि च ॥
 लावरोहितगोधैणाः स्वे स्वे वर्गे वराः परम् ॥ ६७ ॥
 मांसं सद्योहतं शुद्धं वयःस्थं च भजेत् ॐ त्यजेत् ।
 मृतं कृशं भृशं मेघं व्याधिवारिविषैर्हतम् ॥ ६८ ॥
 पुंस्त्रियोः पूर्वपश्चाद्ये गुरुणी, गर्भिणी, गुरुः ।
 लघुर्योषिचतुष्पात्सु, विहङ्गेषु पुनः पुमान् ॥ ६९ ॥
 शिरःस्कन्धोरुपृष्ठस्य कट्याः सक्थनोश्च गौरवम् ।
 तथाऽऽमपकाशययोर्यथापूर्वं विनिर्दिशेत् ॥ ७० ॥
 शोणितप्रभृतीनां च धातूनामुत्तरोत्तरम् ।
 मांसाद्गुरीयो वृषण-मेढू-वृक्क-यकृद्गुदम् ॥ ७१ ॥

अथ शाकवर्गः—

^१‘शाकं पाठाशठीसूषा-सुनिषण्ण ^२सतीनजम्॥
 त्रिदोषघ्नं लघु ग्राहि सराजक्षव-वास्तुकम् ॥ ७२ ॥
 सुनिषण्णोऽन्निकृद्बृष्य, स्तेषु ॐराजक्षवः परम् ।
 ग्रहण्यशोविकारघ्नः ॐवर्चोभेदि तु वास्तुकम् ॥ ७३ ॥
 हन्ति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोष्णा रसायनी ।

१. पत्रं पुष्पं फलं नालं, कन्दं संस्वेदजं तथा । शाकं षड्विधमु-
 दिष्टं गुरु विषाद्यथोत्तरम् । संस्वेदजं = छत्राकादि ।

२. सुनिषण्णः स्वस्तिकाख्यो जलमध्ये भवति-इत्यरुणः ।

काकमाची सरा स्वयां ॐ चाङ्गेर्यम्लाऽग्निदीपनी ॥ ७४ ॥
 ग्रहण्यशोऽनिलश्लेष्म-हितोष्णा ग्राहिणी लघुः ।
 पटोलसप्तलारिष्ट-शाङ्गेष्टावल्गुजाऽमृताः ॥ ७५ ॥
 वेत्राग्रबृहती वासा कुतिलीतिलपर्णिकाः ।
 मण्डूकपर्णिकोर्कोट-कारवेल्लक-पर्पटाः ॥ ७६ ॥
 नाडीकलायं गोजिह्वा वार्ताकं वनतिक्तकम् ।
 करीरं कुलकं नन्दी कुचैला शकुलादनी ॥ ७७ ॥
 कटिह्वं केम्बुकं शीतं सकोशातक-कर्कशम् ।
 तिक्तं पाके कटु ग्राहि वातलं कफपित्तजित् ॥ ७८ ॥
 हृद्यं 'पटोलं' कृमिनुस्वादुपाकं रुचिप्रदम् ।
 पित्तलं दीपनं भेदि वातघ्नं 'बृहतीद्वयम्', ॥ ७९ ॥
 'वृषं' तु वमि-कासघ्नं रक्तपित्तहरं परम् ।
 'कारवेल्लं' सकटुकं दीपनं कफजित्परम् । ॥ ८० ॥
 'वार्ताकं' कटु तिक्तोष्णं मधुरं कफवातजित् ।
 सत्तारमग्निजननं हृद्यं रुच्यमपित्तलम् ॥ ८१ ॥
 'करीरं' माध्मानकरं कषायं स्वादु तिक्तकम् ।
 'कोशातकावल्गुजकौ' भेदिनावग्निदीपनौ ॥ ८२ ॥
 'तण्डुलीयो' हिमो रुचः स्वादुपाकरसो लघुः ।
 मदपित्तविषाक्षघ्नः ॐ मुञ्जातं वातपित्तजित् ॥ ८३ ॥
 स्निग्धं शीतं गुरु स्वादु बृंहणं शुक्रकृत्परम् ।
 गुर्वी सरा तु 'पालङ्क्या' ॐ मदघ्नी चाप्युपोदका ॥ ८४ ॥
 पालङ्क्यावत्स्मृतश्चन्बुः स तु सङ्ग्रहणात्मकः ।
 'विदारी' वातपित्तघ्नी मूत्रला स्वादुशीतला ॥ ८५ ॥

जीवनी बृंहणी कण्ठ्या गुर्वी वृष्या रसायनम्, ^१ ।
 चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी 'जीवन्ती' मधुरा हिमा ॥ ८६ ॥
 कूष्माण्डतुम्बकालिङ्ग-कर्कावैर्वारुतिण्डिशम् ।
 तथा त्रपुसचीनाक-चिर्भटं कफवातकृत् ॥ ८७ ॥
 भेदि विष्टभ्यभिष्यन्दि स्वादुपाकरसं गुरु ।
 वल्लीफलानां प्रवरं कूष्माण्डं वातपित्तजित् ॥ ८८ ॥
^२बस्तिशुद्धिकरं वृष्यम् ✽ 'त्रपुसं' ^३त्वतिमूत्रलम् ।
 'तुम्बं' रुक्षतरं ग्राहि कालिङ्गैर्वारुचिर्भटम् ॥ ८९ ॥
 बालं पित्तहरं शीतं विद्यात्पक्वमतोऽन्यथा ।
 शीर्णवृन्तं तु सचारं पित्तलं कफवातजित् ॥ ९० ॥
 रोचनं दीपनं हृद्यमष्टीलाऽऽनाहनुल्लघु ।
 मृणाल-विस-शालूक-कुमुदोत्पलकन्दकम् ॥ ९१ ॥
 नन्दीमाषककेलूट-शृङ्गाटक-कसेरुकम् ।
 क्रौञ्चादनं कलोड्यं च रुक्षं ग्राहि हिमं गुरु ॥ ९२ ॥
 कलम्बनालिकामार्ष-कुरुटकगवेधुकम् ॥ ९३ ॥
 जीवन्तुष्ट्वेडगजयवशाकसुवर्चलाः ।
 आलुकानि च सर्वाणि तथा सूप्यानि लक्ष्मणम् ॥ ९४ ॥
 स्वादु रुक्षं सलवणं वातश्लेष्मकरं गुरु ।
 शीतलं सृष्टविण्मूत्रं प्रायो विष्टभ्य जीर्यति ॥ ९५ ॥

१. रसायनशब्दस्याऽजहङ्गित्वाद् विदारीत्यनेन सामानाधिक-
 रण्यम् । एवमन्यत्र । २. बस्तिमूत्राशयः । ३. त्रपुसम् = 'खीरा'
 इति प्रसिद्धम् ।

स्विन्नं निर्ष्पाडितरसं स्नेहाढ्यं नातिदोषलम् ।
 लघुपत्रा तु या चिल्ली सा वास्तूकसमा मता ॥ ९६ ॥
 तर्कारीवरुणं स्वादु सतिक्तं कफवातजित् ।
 वर्षाभ्यौ कालशाकं च सत्तारं कटुतिक्तकम् ॥ ९७ ॥
 दीपनं भेदनं हन्ति गरशोफकफानिलान् ।
 (सङ्ग्राहि 'शाल्मलीपुष्पं' पित्तास्रघ्नं विशेषतः ।)
 दीपनाः कफवातघ्ना 'श्रिरविल्वाङ्कुराः' सराः ॥ ९८ ॥
 'शतावर्यङ्कुरा' स्तिक्ता वृष्या दोषत्रयापहाः ।
 रूक्षो 'वंशकरीर'स्तु ^१विदाही वातपित्तलः ॥ ९९ ॥
 'पत्तूरो' ^२दीपनस्तिक्तः प्लीहाशः कफवातजित् ।
 कृमिकासकफोक्त्वेदान् 'कासमर्दो' जयेत्सरः ॥ १०० ॥
 रूक्षोऽगमम्लं 'कौसुम्भं' गुरु पित्तकरं सरम् ।
 गुरूष्णं 'सार्षपं' वद्वविष्मूत्रं सर्वदोषकृत्, ॥ १०१ ॥
 यद्बालमव्यक्तरसं किञ्चित्त्तारं सतिक्तकम् ।
 'तन्मूलकं' दोषहरं लघु सोष्णं नियच्छति ॥ १०२ ॥
 गुल्मकासक्षयश्वास-व्रणनेत्रगलामयान् ।
 ज्वराग्निसादोदावर्त-पीनसांश्च ❀ महत्पुनः ॥ १०३ ॥
 रसे पाके च कटुकमुष्णवीर्यं त्रिदोषकृत् ।
 गुर्वभिष्यन्दि च ❀ स्निग्धसिद्धं तदपि वातजित् ॥ १०४ ॥
 वातश्लेष्महरं शुष्कं सर्वम् ❀ आमं तु दोषलम् ।
 कटूष्णो वातकफहा 'पिण्डालुः' पित्तवर्धनः ॥ १०५ ॥

१. वंशाङ्कुरे करीरो ऽस्त्रीत्यमरः । २. पत्तूरो मत्स्याक्षकः ।

कुठेरशिग्रुसुरस-सुमुखसुरिभूस्तृणम् ।
 फणिज्जार्जकजम्बीर-प्रभृति ग्राहि शालनम् ॥ १०६ ॥
 विदाहि कटु रुक्षोष्णं हृद्यं दीपनरोचनम् ।
 दृक्शुक्रकृमिहृत्तीक्ष्णं दोषोत्क्लेशकरं लघु ॥ १०७ ॥
 हिध्माकासविषश्वास-पार्श्वरुक्पूतिगन्धहा ।
 सुरसः सुमुखो नातिविदाही गरशोफहा ॥ १०८ ॥
 'आर्द्रिका' तिक्तमधुरा मूत्रला न च पित्तकृत् ।
 'लशुनो' भृशतीक्ष्णोष्णः कटुपाकरसः सरः ॥ १०९ ॥
 हृद्यः केशयो गुरुवृष्यः स्निग्धो रोचनदीपनः ।
 भग्नसंधानकृद्वल्यो रक्तपित्तप्रदूषणः ॥ ११० ॥
 किलासकुष्ठगुल्माऽर्शो-मेहक्रिमिकफानिलान् ।
 सहिध्मापीनसश्वास-कासान् हन्ति रसायनम् ॥ १११ ॥
 'पलाण्डु'स्तद्गुणन्यूनः श्लेष्मलो नातिपित्तलः ।
 कफवातार्शसां पथ्यः स्वेदेऽभ्यवहतौ तथा ॥ ११२ ॥
 तीक्ष्णो 'गृञ्जनको' ग्राही पित्तिनां हितकृन्न सः ।
 दीपनः सूरणो' रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ॥ ११३ ॥
 विशेषादर्शसां पथ्यः भूकन्दस्त्वतिदोषलः ।
 पत्रे पुष्पे फले नाले कन्दे च गुरुता क्रमात् ^१ ॥ ११४ ॥
 चरा शाकेषु जीवन्ती ^२ सार्षपं त्ववरं परम् ।

१. छत्राकं विडवराहञ्चेत्यादिना निन्दितत्वेन षष्ठस्य शाकस्यात्र परित्यागः ।

२. जीवन्तीशाकं शाकानां 'पथ्यतमत्वे श्रेष्ठतमम्, सर्वपञ्चाकं शाकानामपथ्यतमत्वे श्रेष्ठतममिति-चरकोक्तेः ।

अथ फलवर्गः ।

द्राक्षा फलोत्तमा^१ वृष्या चक्षुष्या सृष्टमूत्रविद् ॥ ११५ ॥
 स्वादुपाकरसा स्निग्धा सकषाया हिमा गुरुः ।
 निहन्यनिलपित्तास्र-तिक्तास्यत्वमदात्ययान् ॥ ११६ ॥
 तृष्णाकासश्रमश्वास-स्वरभेदक्षतक्षयान् ।
 उद्रिक्तपित्तान् जयति त्रीन् दोषान् स्वादु^२ दाडिमम् ॥ ११७ ॥
 पित्ताऽविरोधि नात्युष्णमम्लं^३ वातकफापहम् ।
 सर्वं^४ हृद्यं लघु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम् ॥ ११८ ॥
 मोच-खर्जूर-पनस-नारिकेल-परुषकम् ।
 आम्रात-ताल-काश्मर्य-राजादनमधूकजम् ॥ ११९ ॥
 सौवीरवदराङ्गोल-फलगुशलेष्मातकोद्भवम् ।
 वातामाभिषुकाक्षोड-मुकूलकनिकोचकम् ॥ १२० ॥
 उरुमाणं प्रियालं च बृंहणं गुरु शीतलम् ।
 दाहक्षतक्षयहरं रक्तपित्तप्रसादनम् ॥ १२१ ॥
 स्वादुपाकरसं स्निग्धं विष्टम्भि कफशुकृत् ।
 फलं तु^५ पित्तलं तालं सरं काश्मर्यजं हिमम् ॥ १२२ ॥

-
१. फलोत्तमा = मृद्वीका फलानाम्-इति चरकोक्तः । सू०अ०२५ ।
 २. स्वादु दाडिमीफलमुद्रिक्त-पित्तान् त्रिदोषान्-जयति-इत्यन्वयः ।
 ३. अम्लं दाडिमीफलं नात्युष्णं वातकफापहम्, पित्ताऽविरोधि ।
 ४. सर्वं = मधुरं-मधुरतरं-मधुरतमं, अम्लमम्लतरमम्लतममि-
 त्यादिभेदभिन्नं श्वेतरक्तसबीज-निर्बीजादि-भेदभिन्नं ग्राम्यवन्यभेद-
 भिन्नञ्चेत्यर्थः, विद्यते हि नानाविधं दाडिमीफलम् । ५. मोचादीनां
 सामान्यगुणानुक्त्वा विशेषगुणान् केषाञ्चिदाह-फलन्त्विति ।

शकृन्मूत्रविबन्धघ्नं केश्यं मेध्यं रसायनम् ।
 वातामाद्युष्णवीर्यं तु कफपित्तकरं सरम् ॥ १२३ ॥
 परं वातहरं स्निग्धमनुष्णं तु प्रियालजम् ।
 प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥ १२४ ॥
 कोलमज्जा गुणैस्तद्वृत्तृच्छिर्दिवासजिह्व सः ।
 पक्वं सुदुर्जरं विल्वं दोषलं पृतिमारुतम् ॥ १२५ ॥
 दीपनं कफवातघ्नं बालं, ग्राह्युभयं च तत् ।
 कपित्थमामं कण्ठघ्नं दोषलं, दोषघाति तु ॥ १२६ ॥
 पक्वं हिध्मावमथुजित्, सर्वं ग्राहि विषापहम् ।
 जाम्बवं गुरु विष्टम्भि शीतलं भृशवातलम् ॥ १२७ ॥
 सङ्ग्राहि मूत्रशकृतोरकण्ठ्यं कफपित्तजित् ।
 वातपित्तास्रकृद्बालं, बद्धास्थि कफपित्तकृत् ॥ १२८ ॥
 गुर्वांश्च वातजित्पक्वं स्वाद्वम्लं कफशुक्रकृत् ।
 (तृष्णाघ्नमुष्णमम्लायाः फलं पित्तकरं सरम् ।)
 वृक्षांश्च ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्महरं लघु ॥ १२९ ॥
 सम्या गुरूष्णं केशघ्नं रूक्षम् ऋषीलु तु पित्तलम् ।
 कफवातहरं भेदि प्लीहाशः कृमिगुल्मनुत् ॥ १३० ॥
 सतिक्तं स्वादु यस्पीलु नात्युष्णं तत्त्रिदोषजित् ।
 त्वक्त्तिककटुका स्निग्धा मातुलुङ्गस्य वातजित् ॥ १३१ ॥
 बृंहणं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ।
 लघु तत्केसरं कासश्वासहिध्मामदात्ययान् ॥ १३२ ॥
 आस्यशोषानिलश्लेष्मविबन्धच्छर्द्यरोचकान् ।
 गुल्मोदरार्शःशूलानि मन्दाग्नित्वं च नाशयेत् ॥ १३३ ॥

(मधुरं किञ्चिदम्लं च हृद्यं भक्तप्ररोचकम् ।
 गुरु वातप्रशमनं विद्यान्नारङ्गजं फलम् ॥)
 भस्मातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम् ।
 तदस्थ्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम् ॥ १३४ ॥
 स्वाद्वम्लं शीतमुष्णं च द्विधा ^१पालेवतं गुरु ।
 रुच्यमत्यग्निशमनम् ॥ रुच्यं मधुरमारुकम् ॥ १३५ ॥
 पक्वमाशु जरां याति नात्युष्णगुरुदोषलम् ।
^२द्राक्षापरूपकं चार्द्रमम्लं पित्तकफप्रदम् ॥ १३६ ॥
 गुरुष्णवीर्यं वातघ्नं सरं सकरमर्दकम् ।
 तथाऽम्लं कोलकर्कन्धू-लकुचाम्रातकारुकम् ॥ १३७ ॥
 ऐरावतं दन्तशठं सतृदं मृगलिण्डिकम् ।
 नातिपित्तकरं पक्वं शुष्कं च करमर्दकम् ॥ १३८ ॥
 दीपनं भेदनं शुष्कमम्लीकाकोलयोः फलम् ।
 स्वाद्वम्लं लघुकोलन्तु शुष्कं जीर्णं तु दीपनम् ।
 तृष्णाश्रमक्लमच्छेदि लघ्विष्टं कफवातयोः ॥ १३९ ॥
 फलानामवरं तत्र ^३लकुचं सर्वदोषकृत् ।
 हिमानलोष्णदुर्वात-व्याललालादिदूषितम् ॥ १४० ॥
 जन्तुलुष्टं जले मग्नमभूमिजमनार्तवम् ।
 अन्यधान्ययुतं हीनवीर्यं जीर्णतयाऽति च ॥ १४१ ॥

१. पालेवतम्-रैवतकं 'फलं' द्विधा, स्वादु = मधुरं, शीतम्
 अम्लमुष्णञ्चेति । २. द्राक्षादीनामम्लानामत्र गुणकथनमतो न
 पुनरुक्तिः । ३. लकुचं फलानामिति चरकौक्तेः ।

धान्यं त्यजेत्तथा शाकं रूक्षसिद्धमकोमलम् ।

असञ्जातरसं तद्वच्छुष्कं चान्यत्र मूलकात् ॥ १४२ ॥

प्रायेण फलमप्येवं तथामंबिल्ववर्जितम् ।

अथ लवणादिवर्गः ।

विष्यन्दि लवणं सर्वं सूक्ष्मं सृष्टमलं सृदुः ॥ १४३ ॥

वातघ्नं पाकि तीक्ष्णोष्णं रोचनं कफपित्तकृत् ।

सैन्धवं तत्र सुस्वादु वृष्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ॥ १४४ ॥

लघ्वनुष्णं दृशः पथ्यमविदाह्यग्निदीपनम् ।

लघु सौवर्चलं हृद्यं सुगन्ध्युद्गारशोधनम् ॥ १४५ ॥

कटुपाकं विबन्धघ्नं दीपनीयं रुचिप्रदम् ।

ऊर्ध्वाधःकफवातानुलोमनं दीपनं विडम् ॥ १४६ ॥

विबन्धानाहविष्टम्भशूलगौरवनाशनम् ।

विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्मविवर्धनम् ॥ १४७ ॥

सत्तिक्तकटुकक्षारं तीक्ष्णमुत्क्लेदि चौद्भिदम् ।

कृष्णे सौवर्चलगुणा लवणे गन्धवर्जिताः ॥ १४८ ॥

रोमकं लघु, पांसूत्थं सक्षारं श्लेष्मलं गुरु ।

लवणानां प्रयोगे तु सैन्धवादि^१ प्रयोजयेत् ॥ १४९ ॥

गुल्महृद्ग्रहणीपाण्डु-प्लीहानाहगलामयान् ।

श्वासाशःकफकासांश्च शमयेद्यवशूकजः ॥ १५० ॥

क्षारः सर्वश्च परमं^२ तीक्ष्णोष्णः कृमिजिल्लघुः ।

पित्तासृग्दूषणः पाकी छेद्य-हृद्यो विदारणः ॥ १५१ ॥

१. 'सन्धवं लवणानाम्' इति हिततमाऽऽदेशात्, च० सू० २५ ।

२. क्रियाविशेषणम् ।

अपथ्यः कटुलावण्याच्छुक्रौजःकेशचक्षुषाम् ।

हिङ्गु वातकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ॥ १५२ ॥

कटुपाकरसं रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ।

अथ त्रिफलादिः ।

कषाया मधुरा पाके रूक्षा ^१विलवणा लघुः ॥ १५३ ॥

दीपनी पाचनी मेघ्या वयसः स्थापनी परम् ।

उष्णवीर्या सराऽऽयुज्या बुद्धीन्द्रियबलप्रदा ॥ १५४ ॥

कुष्ठवैवर्ण्यवैस्वर्यपुराणविषमज्वरान् ।

शिरोऽक्षिपाण्डुहृद्गोगकामलाग्रहणीगदान् ॥ १५५ ॥

सशोषशोफातीसार-मेदमोहवमिक्रिमीन् ।

श्वासकासप्रसेकार्शःप्लीहानाहगरोदरम् ॥ १५६ ॥

विवन्धं स्रोतसां गुल्ममूर्खस्तरम्भनरोचकम् ।

हरीतकी जयेद्व्याधींस्तांस्तांश्च कफवातजान् ॥ १५७ ॥

तद्वदामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् ।

कटु पाके हिमं केश्यमक्षमीषञ्च तद्गुणम् ॥ १५८ ॥

द्वयं रसायनवरा त्रिफलाऽक्ष्यामयापहा ।

रोपणी त्वग्गदक्लेदमेदोमेहकफास्त्रजित् ॥ १५९ ॥

सकेसरं चतुर्जातं त्वक्पत्रैलं ^२त्रिजातकम् ।

(सुगन्धि सर्वपेयानां व्यञ्जनानां च वासनम् ।

लेहानां खाद्यपाकानां चूर्णानां च प्रयोजयेत् ॥)

१. विलवणा = लवणरसरहिता, पञ्चरसेत्यर्थः । २. त्वक्पत्रैलं =
त्रिजातकमित्युच्यते, तत्सकेसरं चतुर्जातमित्युच्यते इत्यर्थः ।

पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं रूक्षं रोचनदीपनम् ॥ १६० ॥
 रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु ।
 श्लेष्मला स्वादुशीतार्द्रा गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली ॥ १६१ ॥
 सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धा वृष्या रसे कटुः ।
 स्वादुपाकाऽनिलश्लेष्मश्वासकासापहा सरा ॥ १६२ ॥
 न ^१तामत्युपयुञ्जीत रसायनविधिं विना ।
 नागरं दीपनं वृष्यं ग्राहि हृद्यं विघ्नन्धनुत् ॥ १६३ ॥
 रुच्यं लघु स्वादुपाकं स्निग्धोष्णं कफवातजित् ।
 तद्वदार्द्रकमेतच्च त्रयं त्रिकटुकं जयेत् ॥ १६४ ॥
 स्थौल्याग्निसदनश्वास-कासरलीपदपीनसान् ।
 चविका पिप्पलीमूलं मरिचाल्पान्तरं गुणैः ॥ १६५ ॥
 चित्रकोऽग्निसमः पाके शोफार्शःकृमिकुष्ठहा ।
 'पञ्चकोलक'मेतच्च ^२मरिचेन विना स्मृतम् ॥ १६६ ॥
 गुल्मप्लीहोदरानाहशूलघ्नं दीपनं परम् ।
 बिल्वकाशमर्यतर्कारी-पाटलादुष्टकैर्महत् ॥ १६७ ॥
 जयेत्कषायतिक्तोष्णं 'पञ्चमूलं' कफानिलौ ।
 'ह्रस्वं' बृहत्पुष्पमतीद्वयगोक्षुरकैः स्मृतम् ॥ १६८ ॥
 स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं सर्वदोषजित् ।

१. त्रीणि द्रव्याणि नाऽत्युपयुञ्जीत-पिप्पली, लवणं, क्षारञ्चेति चरकः । वर्द्धमानपिप्पल्यादेरपवादत्वादाह-रसायनविधिं विनेति ।

२. मरिचेन विना पिप्पल्यादिकं पञ्चकोलमिति स्मृतम्, मरिचेन सहितं षडूषणमित्यर्थः ।

बलापुनर्नवैरण्ड-शूर्पपर्णाद्वयेन तु ॥ १६९ ॥
 मध्यमं कफवातघ्नं नातिपित्तकरं सरम् ।
 अभीरुवीराजीवन्ती-जीवकर्षभकैः स्मृतम् ॥ १७० ॥
 'जीवनाख्यं' तु चक्षुष्यं वृष्यं पित्तानिलापहम् ।
 'तृणाख्यं' पित्तजिह्वर्भ-काशेक्षुशरशालिभिः ॥ १७१ ॥
 'शूक-शिम्बीज-पक्कान्न-मांस-शाक-फलौषधैः ।
 वर्गितैरन्नलेशोऽयमुक्तो नित्योपयोगिकः ॥ १७२ ॥'

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽन्नरक्षाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं निवेशयेत् ।
 सर्वदा स भवत्येवं सर्वत्र प्रतिजागृवि^१ ॥ १ ॥
 अन्नपानं विषाद्रक्षेद्विशेषेण^२ महीपतेः ।
 योगक्षेमौ तदायत्तौ धर्माद्या यन्निबन्धनाः ॥ २ ॥

विपाक्तान्नपरीक्षामाह—

ओदनो विपवान् सान्द्रो यात्यविस्त्राव्यतामिव ।
 चिरेण पच्यते पक्वो भवेत्पर्युपितोपमः ॥ ३ ॥

१. अध्यायाथमुपसंहरति शूकेत्यादिना । इति सूत्रस्थाने षष्ठो-
 ध्यायः । २. प्रतिजागृविः = जागरूकः दत्ताऽवधान इत्यर्थः ।

३. महीपतेरन्तरङ्गबहिरङ्गोभयरिपुमत्त्वादिशेषेण युक्तम्, जाङ्ग-
 मं स्थावरञ्चेति द्विविधं विषम्, शीघ्रकारि,

मयूरकण्ठतुल्योष्मा मोहमूर्च्छाप्रसेककृत् ।
 हीयते वर्णगन्धाद्यैः क्लियते चन्द्रकाचितः ॥ ४ ॥
 व्यञ्जनान्याशु शुष्यन्ति ध्यामक्काधानि तत्र च ।
 हीनातिरिक्ता विकृता छाया दृश्येत नैव वा ॥ ५ ॥
 फेनोर्ध्वराजीसीमन्त-तन्तु-बुद्बुद-सम्भवः ।
 विच्छिन्नविरसा रागाः खाडवाः शाकमाहिषम् ॥ ६ ॥
 नीला राजी रसे, ताम्रा क्षीरे, दधनि दृश्यते ।
 श्यावा, ऽऽपीताऽसिता तम्रे, घृते पानीयसन्निभा ॥ ७ ॥
 मस्तुनि, स्यात्कपोताभा, राजी कृष्णा तुपोदके ।
 काली, मद्याम्भसोः, क्षौद्रे हरितैलेऽरुणोपमा ॥ ८ ॥
 पाकः फलानामामानां पक्कानां परिकोथनम् ।
 द्रव्याणामार्द्रशुष्काणां, स्यातां म्लानिविवर्णते ॥ ९ ॥
 मृदूनां, कठिनानां, च भवेत्स्पर्शविपर्ययः^१ ।
 माल्यस्य स्फुटिताग्रत्वं म्लानिर्गन्धान्तरोद्भवः ॥ १० ॥
^१ध्याममण्डलता वस्त्रे, सदनं तन्तुपद्मणाम् ।
 धातुमौक्तिककाष्ठाश्म-रत्नादिषु मलाक्तता ॥ ११ ॥
 स्नेहस्पर्शप्रभाहानिः, सप्रभत्वं तु मृण्मये ।

विषदातुल्लक्षणम्—

विषदः श्यावशुष्कास्यो विलक्षो वीक्षते दिशः ॥ १२ ॥
 स्वेदवेपथुमांस्त्रस्तो भीतः स्खलति जृम्भते ।

-
१. विपर्ययः = मृदूनां कठिनस्पर्शः, कठिनानां मृदुस्पर्शः ।
 २. ध्याममण्डलता = मलिनमण्डलवत्त्वम् ।

अग्न्यादौ विषपरीक्षा—

प्राप्यान्नं सविपं त्वग्निरेकावर्तः स्फुटत्यति ॥ १३ ॥
 शिखिकण्ठाभधूमाचिरनर्चिवोऽग्रगन्धवान् ।
 म्रियन्ते मक्षिकाः प्राश्य काकः क्षामस्वरो भवेत् ॥ १४ ॥
 उत्क्रोशन्ति च दृष्ट्वैतच्छुक्कदात्यूहसारिकाः ।
 हंसः प्रस्रवति, ग्लानिर्जीवन्जीवस्य जायते ॥ १५ ॥
 चकोरस्याऽक्षिवैराग्यं क्रौञ्चस्य स्यान्मदोदयः ।
 कपोतपरभृदक्षचक्रवाका जहत्यसून् ॥ १६ ॥
 उद्वेगं याति मार्जारः, शक्रन्मुञ्चति वानरः ।
 हृष्येन्मयूरस्तद्दृष्ट्वा मन्दतेजो भवेद्विषम् ॥ १७ ॥
 इत्यन्नं विषवज्जात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः ।
 यथा तेन विषघोरक्षपिडं क्षुद्रजन्तवः ॥ १८ ॥
 स्पृष्टे तु कण्डूदाहोपाज्वरार्तिस्फोटसुप्तयः ।
 नखरोमच्युतिः शोफः, सेकाद्या विषनाशनाः ॥ १९ ॥
 शस्तास्तत्र प्रलेपाश्च सेव्य-चन्दन-पद्मकैः ।
 सप्तोमवल्कतालीस-पत्रकुष्ठामृतानतैः ॥ २० ॥
 लाला जिह्वोष्ठयोर्जाड्यमूषा चिमिचिमायनम् ।
 दन्तहर्षो रसाज्ञत्वं हनुस्तम्भश्च वक्रगो ॥ २१ ॥
^१सेव्याद्यैस्तत्र गण्डूपाः सर्वं च विषजिद्धितम् ।
 आमाशयगते स्वेदमूर्च्छाध्मानमदभ्रमाः ॥ २२ ॥
 रोमहर्षो वमिर्दाहश्चक्षुर्हृदयरोधनम् ।
 बिन्दुभिश्चाऽऽचयोऽङ्गानां, पक्वाशयगते पुनः ॥ २३ ॥

१. उशीरं, नलदं, सेव्यम् ।

अनेकवर्णं वमति मूत्रयत्यतिसार्यते ।

तन्द्रा कृशत्वं पाण्डुत्वमुदरं बलसङ्क्षयः ॥ २४ ॥

तयोर्वान्तविरिक्तस्य हरिद्रे कटभीं गुडम् ।

सिन्दुवारितनिष्पाव-बाष्पिकाशतपर्विकाः ॥ २५ ॥

तण्डुलीयकमूलानि कुक्कुटाण्डमवलुजम् ।

नावनाञ्जनपानेषु योजयेद्विषशान्तये ॥ २६ ॥

विषभुक्ताय^१ दद्याच्च शुद्धायोर्ध्वमधस्तथा ।

सूक्ष्मं ताम्ररजः काले सक्षौद्रं हृद्विशोधनम् ॥ २७ ॥

शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेत् ।

न सज्जते हेमपाऽङ्गे पद्मपत्रेऽम्बुवद्विषम् ॥ २८ ॥

जायते त्रिपुलं चायुर्गरे^२ऽप्येष विधिः स्मृतः ।

अथ विरुद्धं भोजनीयम्

विरुद्धमपि^३ चाहारं विद्याद्विषगरोपमम्^४ ॥ २९ ॥

१. विषभुक्ताय = भुक्तविषाय, 'वाऽऽहिताग्न्यादयश्च' ।

२. यो विधिर्विषे गरेप्येष विधिः, संयोगजं विषं गरसंज्ञां लभते, तृतीयं चिरविपाकि ।

३. विरोधोऽत्र नानाविधः यदाह भगवानात्रेयः—देहधातुप्रत्य-
नीकभूतानि द्रव्याणि, देहधातुभिर्विरोधमापद्यन्ते, परस्परगुणविरु-
द्धानि कानिचित्, कानिचित्संयोगात्, संस्कारादपराणि, देश-काल-
मात्रादिभिश्चाऽपराणि, तथा स्वभावादपराणि । सू० अ० २६।८१ ।

४. विषगरौ-उपमा = सादृश्यं यस्य तत्, शीघ्रविकारकं किञ्चित्, चरविकारकारि किञ्चिदित्यर्थः ।

आनूपमामिपं माषक्षौद्रक्षीरविरूढकैः ।
 विरुध्यते सह विसैर्मूलकेन गुडेन वा ॥ ३० ॥
 विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येष्वपि चिलीचिमः ।
 विरूढमग्लं पयसा सह सर्वं फलं तथा ॥ ३१ ॥
 तद्वत्कुलत्थवरक-कङ्कुवल्लमकुष्ठकाः ।
 भक्षयित्वा हरितकं मूलकादि पयस्यजेत् ॥ ३२ ॥
 वाराहं श्वाविधा नाऽद्यादध्ना पृषतकुक्कुटौ ।
 आममांशानि पित्तेन, माषसूपेन मूलकम् ॥ ३३ ॥
 अविं कुसुम्भशाकेन, विसैः सह विरूढकम् ।
 माषसूपगुडक्षीर-दध्याज्यैर्लाकुचं फलम् ॥ ३४ ॥
 फलं कदल्यास्तक्रेण दध्ना तालफलेन वा ।
 कणोपणाभ्यां मधुना काकमाचीं गुडेन वा ॥ ३५ ॥
 सिद्धां वा मत्स्यपचने पचने नागरस्य वा ।
 सिद्धामन्यत्र वा पात्रे कामात्तामुपितां निशाम् ॥ ३६ ॥
 मत्स्यनिस्तलनस्नेहे साधिताः पिप्पलीस्त्यजेत् ।
 कांस्ये दशाहमुषितं सर्पिरुष्णं त्वरुष्करे ॥ ३७ ॥
 भासो विरुध्यते शूलयः कम्पिल्लस्तक्रमाधितः ।
 ऐकध्यं पायससुराकृशराः परिवर्जयेत् ॥ ३८ ॥
 मधुसर्पिर्वसातैलपानीयानि द्विशस्त्रिशः ।
 एकत्र^१ वा समांशानि विरुध्यन्ते परस्परम् ॥ ३९ ॥

१. मधु सर्पिः प्रभृतीनि द्विशः समांशानि, त्रिशः समांशानि,
 एकत्र वा सर्वाणि समांशानि, परस्परं विरुध्यन्ते-इत्यन्वयः । मध्वा-
 ज्ये तु दिव्यतीयानुपानेन, हेतुना भिन्नांशे अपि विरुध्यन्ते ।

भिन्नांशे अपि मध्वाज्ये दिव्यवार्यनुपानतः ।
 मधुपुष्करबीजं च, मधुमैरेयशार्करम् ॥ ४० ॥
 मन्थानुपानः क्षैरेयो, हारिद्रः कटुतैलवान् ।
 उपोदिकाऽतिसाराय तिलकल्केन साधिता ॥ ४१ ॥
 बलाका वारुणीयुक्ता कुल्माषैश्च विरुध्यते ।
 भृष्टा वराहवसया सैव सद्यो निहन्त्यसून् ॥ ४२ ॥
 तद्वृत्तिरिपत्राढ्य-गोधालावकपिञ्जलाः ।
 ऐरण्डेनाग्निना सिद्धास्तत्तैलेन विमूर्च्छिताः ॥ ४३ ॥
 हारीतमांसं ^१हारिद्र-शूलक-प्रोत-पाचितम् ।
 हरिद्रावह्निना सद्यो व्यापादयति जीवितम् ॥ ४४ ॥
 भस्मपांशुपरिध्वस्तं तदेव च समाक्षिकम् ।
 यत्किञ्चिदोषमुत्क्लेश्य न हरेत्तत्समासतः ॥ ४५ ॥
 विरुद्धम् ❀ शुद्धिरत्रेष्टा शमो वा तद्विरोधिभिः ।
 द्रव्यैस्तैरेव वा पूर्वं शरीरस्याभिसंस्कृतिः ॥ ४६ ॥
 व्यायामस्निग्धदीप्ताग्नि-वयःस्थ-बलशालिनाम् ।
 यिरोध्यपि न पीडायै सात्त्व्यमल्पं च भोजनम् ॥ ४७ ॥
 पादेनापथ्यमभ्यस्तं पादपादेन वा त्यजेत् ।
 निषेवेत हितं तद्वदेकद्विव्यन्तरीकृतम् ॥ ४८ ॥
 अपथ्यमपि हि त्यक्तं शीलितं पथ्यमेव वा ।
 सात्त्व्यासात्त्व्यविकाराय जायते सहसाऽन्यथा ॥ ४९ ॥

१. दारुहरिद्राकाष्ठ-वह्निना-दारुहरिद्राकाष्ठकृत-शूले एव शूलके
 प्रोतं खचितञ्च तत्पाचितं हारीतपक्षिमांसं जीवितं सद्यो व्यापा-
 दयति ।

क्रमेणाऽपचिता दोषाः क्रमेणोपचिता गुणाः ।

सन्तो यान्त्यपुनर्भावमप्रकम्प्या भवन्ति च ॥ ५० ॥

अत्यन्तसन्निधानानां दोषाणां दूषणात्मनाम् ।

अहितैर्दूषणं भूयो न विद्वान् कर्तुमर्हति ॥ ५१ ॥

^१आहारशयनाऽब्रह्मचर्यैर्युक्त्या प्रयोजितः ।

शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणैः ॥ ५२ ॥

आहारो वर्णितस्तत्र तत्र तत्र च वक्ष्यते ।

निद्रागुणाः ।

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः काश्यं बलाबलम् ॥ ५३ ॥

वृषता क्लीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ।

अकालेऽतिप्रसङ्गाच्च न च निद्रा निषेविता ॥ ५४ ॥

सुखायुषी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवाऽपरा ।

रात्रौ जागरणं रूक्षं, स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा ॥ ५५ ॥

अरूक्षमनभिष्यन्दि त्वासीनप्रचलायितम् ।

ग्रीष्मे वायुचयादानरौक्ष्यराज्यल्पभावतः ॥ ५६ ॥

दिवास्वप्नो हितोऽन्यस्मिन्कफपित्तकरो हि सः ।

मुक्त्वा तु भाष्ययानाध्व-मद्यस्त्रीभारकर्मभिः ॥ ५७ ॥

क्रोधशोकभयैः क्लान्तान् श्वासहिध्मातिसारिणः ।

वृद्धबालाऽबलक्षीण-क्षततृट्शूलपीडितान् ॥ ५८ ॥

अजीर्ण्यभिहतोन्मत्तान् दिवास्वप्नोचितानपि ।

धातुसाम्यं तथा ह्येषां श्लेष्मा चाङ्गानि पुण्यति ॥ ५९ ॥

१. आहारश्च, शयनञ्च, अब्रह्मचर्यं = स्त्रीसेवा च तैः, नित्यं युक्त्या कृतैर्धारणैः स्तम्भैरागारमिव शरीरं धार्यतेऽवस्थाप्यते ।

बहुमेदःकफाः स्वप्युः स्नेहनित्याश्च नाऽहनि ।
 विषार्तः कण्ठरोगी च नैव जातु निशास्वपि ॥ ६० ॥
 अकालशयनान्मोह-ज्वरस्तैमित्यपीनसाः ।
 शिरोरुक्शोफहृल्लास-स्रोतोरोधाग्निमन्दताः ॥ ६१ ॥
 तत्रोपवासवमनस्वेदनावनमौषधम् ।
 योजयेदतिनिद्रायां तीक्ष्णं प्रच्छेदनाञ्जनम् ॥ ६२ ॥
 नावनं लङ्घनं चिन्तां व्यवायं शोकभीक्रुधः ।
 एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसङ्ख्यात् ॥ ६३ ॥
 निद्रानाशादङ्गमर्दशिरोगौरवजृम्भिकाः ।
 जाड्यग्लानिभ्रमाऽपक्ति-तन्द्रारोगाश्च वातजाः ॥ ६४ ॥
 कफोऽल्पो वायुनोद्धूतो धमनीः सन्निरुध्य तु ।
 कुर्यात्संज्ञापहां तन्द्रां दारुणां मोहकारिणीम् ॥
 उन्मीलितविनिर्भुग्ने परिवर्तिततारके ।
 भवतस्तत्र नयने स्फुटे ललितपद्मणी ॥
 अर्धत्रिरात्रात्सा साध्या न सा साध्या ततः परम् ॥
 यथाकालमतो निद्रां ^१रात्रौ सेवेत सात्म्यतः ।
 असात्म्याज्जागरादर्थं प्रातः स्वप्यादभुक्तवान् ॥ ६५ ॥
 शीलयेन्मन्दनिद्रस्तु क्षीरमद्यरसान् दधि ।
 अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानमूर्धकर्णाक्षितर्पणम् ॥ ६६ ॥
 कान्ताबाहुलताश्लेषो निर्वृतिः कृतकृत्यता ।

१. रात्रि-स्वभावप्रभवा मता या, तां भूतधार्त्रीं प्रवदन्ति निद्राम्-
 इति चरकः ।

मनोऽनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ॥ ६७ ॥

ब्रह्मचर्यरतेर्प्राग्य^१ सुखनिःस्पृहचेतसः ।

निद्रा सन्तोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते ॥ ६८ ॥

ग्राम्यधर्मे त्यजेन्नारीमनुत्तानां रजस्वलाम् ।

अप्रियामप्रियाचारां दुष्टसङ्कीर्णमेहनाम् ॥ ६९ ॥

अतिस्थूलकृशां सूता गर्भिणीमन्ययोषितम् ।

वर्णिनीमन्ययोनिं च गुरुदेवनृपालयम् ॥ ७० ॥

चैत्यश्मशानाऽऽयतन-चत्वराम्बुचतुष्पथम् ।

पर्वाण्यनङ्गं दिवसं शिरोहृदयताडनम् ॥ ७१ ॥

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्धान् दुःस्थिताङ्गः पिपासितः ।

बालो बृद्धोऽन्यवेगार्तस्यजेद्रोगी च मैथुनम् ॥ ७२ ॥

सेवेत कामतः कामं तृप्तो वाजीकृतां हिमे ।

त्र्यहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ॥ ७३ ॥

भ्रमक्लमोरुदौर्वल्य-बलधात्विन्द्रियक्षयाः ।

अपर्वमरणं^२ च स्यादन्यथा गच्छतः स्त्रियम् ॥ ७४ ॥

स्मृतिमेधायुरारोग्यपुष्टीन्द्रिययशोवलैः ।

अधिका मन्दजरसो भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥ ७५ ॥

^३ स्नानानुलेपनहिमानिलखण्डखाद्य-

शीताम्बुदुग्धरसयूषसुराप्रसन्नाः ।

१. ग्राम्यसुखं = स्त्रीप्रसङ्गः । २. अपर्वमरणम् = अकालमरणम् ।

३. वसन्ततिलकामालिनीभ्यामध्यायमुपसंहरति-स्नानेति = शु-

तेति ।

सेवेत चानु शयनं विरतौरितस्य^१

तस्यैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ७६ ॥

श्रुतचरितसमृद्धे कर्मदत्ते दयालौ

भिषजि निरनुबन्धं देहरक्षां निवेरय ।

भवति विपुलतेजःस्वास्थ्यकीर्तिप्रभावः

स्वकुशलफलभोगी भूमिपालश्चिरायुः ॥ ७७ ॥'

इति सूत्रस्थाने सप्तमोऽध्यायः ।

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातो मात्राशितीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘मात्राशी सर्वकालं स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ।

मात्रां द्रव्याण्यपेक्षन्ते गुरुण्यपि लघून्पि ॥ १ ॥

गुरुणामर्धसौहित्यं लघूनां नातिवृप्तता ।

मात्राप्रमाणं^२ निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥ २ ॥

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयौजसे ।

सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

१. तस्यैव वपुषः सुरतात्पूर्वाऽवस्थस्य देहस्य धाम तेजः बलम् ।

इति सप्तमोऽध्यायः ।

२. यावद्वि-अस्याऽशनमशितमनुपहत्य जरां गच्छति, तावदस्य

मात्रा प्रमाणं वेदितव्यं भवति । च० सू० अ० ५ ।

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।
 पीड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः ॥ ४ ॥
 आमेनाग्नेन दुष्टेन तदेवाऽऽविश्य कुर्वते ।
 विष्टम्भयन्तोऽलसकं^१ च्यावयन्तो विसूचिकाम् ॥ ५ ॥
 अधरोत्तरमार्गाभ्यां सहसैवाजितात्मनः ।
 प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ॥ ६ ॥
 आमाशयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलसकः स्मृतः ।
 विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृशकोपतः ॥ ७ ॥
 सूचीभिरिव गात्राणि विध्यतीति विसूचिका^२ ।
 तत्र शूलभ्रमाऽऽनाहकम्पस्तम्भादयोऽनिलात् ॥ ८ ॥
 पित्ताज्ज्वरातिसारान्तर्दाहतृप्प्रलयादयः ।
 कफाच्छर्द्यङ्गगुरुतावाक्सङ्गघ्नीवनादयः ॥ ९ ॥
 विशेषाद्दुर्बलस्याल्पवह्नेर्वैगविधारिणः ।
 पीडितं मारुतेनान्नं श्लेष्मणा रुद्धमन्तरा ॥ १० ॥
 अलसं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम् ।
 शूलादीन्कुरुते तीव्रांश्छर्द्यतीसारवर्जितान् ॥ ११ ॥
 सोऽलसःॐ अत्यर्थदुष्टास्तु दोषा दुष्टाऽऽम-बद्ध-खाः ।
 यान्तस्तिर्यक्तनुं सर्वा दण्डवत्स्तम्भयन्ति चेत् ॥ १२ ॥

१. विष्टम्भयन्तोऽलसकं कुर्वते, च्यावयन्तो विसूचिकां कुर्वते-इत्य-
 न्वयः । २. विशेषेण सूचयति=तुदति=विध्यति-सूचीभिरिव गात्राणि-
 इति विग्रहे-ण्वुल्, अकादेशः, टाप्, इत्वम् । सूच-पैशुन्ये कथा-
 दित्वाददन्तः ।

दण्डकालसकं नाम तं त्यजेदाशुकारिणम् ।
 विरुद्धाध्यशनाजीर्णशीलिनो विपलक्षणम् ॥ १३ ॥
 आमदोषं महाघोरं वर्जयेद्विषसंज्ञकम् ।
 विषरूपाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ॥ १४ ॥
 अथाऽऽममलसीभूतं साध्यं त्वरितमुल्लिखेत् ।
 पीत्वा ^१सोग्रापदुफलं वार्युष्णं योजयेत्ततः ॥ १५ ॥
 स्वेदनं फलवर्ति च मलवातानुलोमनीम् ।
 मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ।
 गुडक्षारसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥
 नाम्यमानानि चाङ्गानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत् ॥ १६ ॥
 विसूच्यामतिबुद्ध्यां पाण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
 तदहश्चोपवास्येनं विरिक्तवदुपाचरेत् ॥ १७ ॥
 तीव्रार्तिरपि नाजीर्णो पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ।
^२आमसन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥ १८ ॥
 निहन्यादपि चैतेषां ^३विभ्रमः सहसाऽऽतुरम् ।
 जीर्णाशने तु भैषज्यं युञ्ज्यात् स्तब्धगुरुदरे ॥ १९ ॥

१. उग्रा = वचा, पदु = लवणम्, फलं = मदनफलम्, (मय-नफल) तथा च-वचालवणमदनफलसहितमुष्णं जलं पीत्वा त्वरितं वमेत्, ततः स्वेदनादिकं योजयेत् । पिपासायामुष्णमेव जलं योजयेत्तु शीतमिति भावः ।

२. आमेन सन्नः = सादं प्राप्त आमसन्नो मन्दीभूतोऽग्निर्दोषां-श्वौषधानि चाऽशनञ्चेति समाहारद्वन्द्वः, पक्तुं न समर्थः । ३. विभ्रमो व्यापत्तिः ।

दोषशेषस्य पाकार्थमग्नेः सन्धुच्छणाय^१ च ।
 शान्तिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात् ॥ २० ॥
 त्रिविधं त्रिविधे दोषे तत्समीच्य प्रयोजयेत् ।
 तत्राऽल्पे लङ्घनं पथ्यं, मध्ये लङ्घनपाचनम् ॥ २१ ॥
 प्रभूते शोधनं, तद्धि मूलादुन्मूलयेन्मलान् ।
 एवमन्यानपि व्याधीन् स्वनिदानविपर्ययात् ॥ २२ ॥
 चिकित्सेदनुबन्धे तु सति हेतुविपर्ययम् ।
 त्यक्त्वा यथायथं वैद्यो युञ्ज्याद्वाधाधिविपर्ययम् ॥ २३ ॥
^१तदर्थकारि वा, पक्वे दोषे त्विद्धे च पाचके ।
 हितमभ्यञ्जन-स्नेहपान-वस्त्यादि युक्तितः ॥ २४ ॥

कफाजीर्णमाह—

अजीर्णं च कफादामं तत्र शोफोऽन्निगण्डयोः ।
 सद्योभुक्त इवोद्गारः प्रसेकोत्क्लेशगौरवम् ॥ २५ ॥

वाताऽजीर्णमाह—

विष्टब्धमनिलाच्छूलविवन्धाध्मानसादकृत् ।

पित्ताजीर्णम्—

पित्ताद्विदग्धं तृणमोहभ्रमाम्लोद्गारदाहकृत् ॥ २६ ॥

क्रमेण चिकित्सासूत्रम्—

लङ्घनं कार्यमामे तु, विष्टब्धे स्वेदनं भृशम् ।

विदग्धे वमनं, यद्वा यथावस्थं हितं भजेत् ॥ २७ ॥

१. सन्धुक्षणाय = दीपनाय । २. तदर्थकारि = व्याधिविपरीतार्थकारि । इद्धे = प्रदीप्ते ।

गरीयसो भवेद्धीनादामादेव^१विलम्बिका ।

कफवातानुबद्धाऽऽमलिङ्गा तत्समसाधना ॥ २८ ॥

रसाऽजीर्णमाह—

अश्रद्धा हृद्वयथा शुद्धेऽप्युद्गारे रसशेषतः ।

शयीत किञ्चिदेवात्र सर्वश्चानाशितो दिवा ॥ २९ ॥

स्वप्यादजीर्णी, सञ्जातबुभुक्षोऽद्यान्मितं लघु ।

सामान्याऽजीर्णम्—

विवन्धोऽतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिर्मारुतमूढता ॥ ३० ॥

अजीर्णलिङ्गं सामान्यं विष्टम्भो गौरवं भ्रमः ।

न चातिमात्रमेवाह, मामदोषाय केवलम् ॥ ३१ ॥

अजीर्णं कारणान्तरम्—

^१द्विष्ट-विष्टम्भ-दग्धाऽऽम-गुरु-रूक्ष-हिमाऽऽशुचि ।

विदाहि शुष्कमत्यम्बुप्लुतं चान्नं न जीर्यति ॥ ३२ ॥

उपतप्तेन भुक्तं च शोकक्रोधक्षुदादिभिः ।

परिभाषात्रयमाह—

मिश्रं पथ्यमषथ्यं च भुक्तं ^१‘समशनं’ मतम् ॥ ३३ ॥

विद्याद्‘अध्यशनं’ ^२भूयो, भुक्तस्योपरि भोजनम् ।

१. द्विष्टं—द्वेषविषयो भूतमप्रियमित्यर्थः । विशेषेण स्तम्भनं रोध-
नमुदरवायोराध्मानं तदस्यास्तीति द्विष्टम्भ । विशेषेण स्तम्भनातीति-
सुपथजाताविति वा णिनिः । २. समं साकं पथ्याऽपथ्ययोरशनं भोजनं
‘समशनम्’ शकन्द्वादेराकृतिगणत्वात्पररूपम् । ३. अधि = उपरि-
अशनमध्यशनं तदाह भुक्तस्योपरि—इति ।

अकाले बहु चाल्पं वा भुक्तं तु 'विषमाशनम्'^१ ॥ ३४ ॥
 त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान् व्याधीन् सृजन्ति वा ।

भोजनविधिमाह—

काले सात्म्यं शुचि हितं स्निग्धोष्णं लघु तन्मनाः ॥ ३५ ॥
 षड्सं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलम्बितम् ।
 स्नातः क्षुद्धान् विविक्तस्थो धौतपादकराननः ॥ ३६ ॥
 तर्पयित्वा पितृन् देवानतिथीन् बालकान्गुरुन् ।
 प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽपि प्रतिपन्नपरिग्रहान् ॥ ३७ ॥
 समीक्ष्य सम्यगात्मानमनिन्दन्नब्रुवन् द्रवम् ।
 दृष्टमिष्टैः सहाशनीयाच्छुचि भक्तजनाऽऽहृतम् ॥ ३८ ॥

निषिद्धभोजनमाह—

भोजनं तृणकेशादि-जुष्टमुष्णीकृतं पुनः ।
 शाकाऽवराजभृयिष्ठमत्युष्णलवणं त्यजेत् ॥ ३९ ॥
 किलाटदधिकूर्चिका-क्षारशुक्ताऽऽममूलकम् ।
 कृशशुष्कवराहावि-गोमत्स्यमहिषामिषम् ॥ ४० ॥
 माषनिप्पावशालक-बिसपिष्टविरूढकम् ।
 शुष्कशाकानि यवकान् फाणितं च न शीलयेत् ॥ ४१ ॥

सदापथ्यान्याह—

शीलयेच्छूलिगोधूम-यवषष्टिकजाङ्गलम् ।
 सुनिषण्णकजीवन्ती-बालमूलकवास्तुकम् ॥ ४२ ॥
 पथ्यामलकमृद्धीका-पटोलीमुद्गशर्कराः ।

१. विषमाशने, वैषम्यं, कालकृतं प्रमाणकृतञ्च, कचिद् दैशिकमपि ।

घृतदिव्योदकक्षीर-क्षौद्रदाडिमसैन्धवम् ॥ ४३ ॥
 त्रिफलां मधुसर्पिभ्यां निशि नेत्रबलाय च ।
 स्वास्थ्याऽनुवृत्तिकृद्यच्च रोगोच्छेदकरं च यत् ॥ ४४ ॥
^१विसेल्लुमोचचोचाऽऽम्र-मोदकोत्कारिकादिकम् ।
 अद्याद् द्रव्यं गुरु स्निग्धं स्वादु मन्दं स्थिरं पुरः ॥ ४५ ॥
 विपरीतमतश्चान्ते मध्येऽम्ललवणोत्कटम् ।
 अन्नेन कुक्षेर्द्वाविंशौ पानेनैकं प्रपूरयेत् ॥ ४६ ॥
 आश्रयं पवनादीनां ^२चतुर्थमवशेषयेत् ।
 अनुपानं हिमं वारि यवगोधूमयोर्हितम् ॥ ४७ ॥
 दध्नि मद्ये विषे क्षौद्रे, कोष्णं पिष्टमयेषु तु ।
 शाकमुद्गादिविकृतौ मस्तुतक्राम्लकाजिकम् ॥ ४८ ॥
 सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं, स्थूलानां तु मधूदकम् ।
 शोषे मांसरसो, मद्यं मांसे स्वल्पे च पावके ॥ ४९ ॥
 व्याध्यौषधाध्वभाष्यस्त्री-लङ्घनातपकर्मभिः ।
 क्षीणे वृद्धे च बाले च पयः पथ्यं यथाऽमृतम् ॥ ५० ॥
 विपरीतं यदन्नस्य गुणैः स्यादविरोधि च ।
 अनुपानं समासेन, सर्वदा तत्प्रशस्यते ॥ ५१ ॥
 अनुपानं करोत्यूर्जां तृप्तिं व्याप्तिं दृढाङ्गताम् ।
 अन्नसङ्घातशैथिल्य-विकृत्तिजरणानि च ॥ ५२ ॥

१. विसेल्लुप्रभृतानि-गुरुणि द्रव्याणि भोजनस्य पुरः प्रथमम-
 द्यात् । लघूनि-अन्ते, पाचकं लवणप्रायं मध्ये, अद्यात् । २. चतुर्थ-
 मवशेषयेत्-अत्र भाषाऽऽभाणकम्, 'अखे फिटगिरी दाते नून, पेटे
 भरिये तीनै कोन' ।

नोर्ध्वजत्रुगद-श्वास-कासोरः क्षतपीनसे ।
 गीतभाष्यप्रसङ्गे च स्वरभेदे च तद्धितम् ॥ ५३ ॥
 प्रक्लिन्नदेहमेहाक्षि-गलरोगव्रणातुराः ।
 पानं त्यजेयुः ॥ सर्वश्च भाष्याध्वशयनं त्यजेत् ॥ ५४ ॥
 पीत्वा, भुक्त्वाऽऽतपं वह्निं यानं प्लवनवाहनम् ।

भोजनकालमाह—

प्रसृष्टे विष्णूमूत्रे हृदि सुविमले दोषे स्वपथगे
 विशुद्धे चोद्गारे क्षुद्रपगमने वातेऽनुसरति ।
 तथाऽग्नावुद्रिक्ते विशदकरणे देहे च सुलघौ
 प्रयुञ्जीताहारं विधिनियमितं कालः स हि मतः^१

इति सूत्रस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ।

नवमोऽध्यायः ।

अथातो द्रव्यादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘द्रव्यमेव रसादीनां^२ श्रेष्ठं ते हि तदाश्रयाः ।

१. ‘यमौन्सौतः सः स्याद्, रस-रवि-विरामा धीरललिता,
 अष्टादशाक्षरा, १२-१३-१४-एषु एकाक्षर-त्यागे शिखरिणी भवति ।
 इति-अष्टमोऽध्यायः ।

२. रस-वीर्य-विपाक-शक्तिप्रभृतीनां मध्ये द्रव्यमेव प्रधानम्,
 यतो रसादयो द्रव्याश्रयाः ।

पञ्चभूतात्मकं तत्तु^१ ऋक्षामधिष्ठाय जायते ॥ १ ॥

^२अम्बुयोन्यग्निपवन-नभसां समवायतः ।

तन्निवृत्तिर्विशेषश्च^३ व्यपदेशस्तु भूयसा ॥ २ ॥

तस्मान्नैकरसं द्रव्यं भूतसङ्घातसम्भवात् ।

नैकदोषास्ततो रोगास्तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः ॥ ३ ॥

अव्यक्तोऽनुरसः^४ किञ्चिदन्ते व्यक्तोऽपि चेप्यते ।

^५गुर्वादयो गुणाद्द्रव्ये पृथिव्यादौ रसाश्रये ॥ ४ ॥

रसेषु व्यपदिश्यन्ते साहचर्योपचारतः ।

तत्र द्रव्यं गुरु स्थूलस्थिरगन्धगुणोत्वणम् ॥ ५ ॥

पार्थिवादीनि द्रव्याणि विभजते ।

पार्थिवं गौरवस्थैर्यसङ्घातोपचयावहम् ।

द्रवशीतगुरुस्निग्धमन्दसान्द्ररसोत्वणम्^६ ॥ ६ ॥

आप्यं स्नेहनविप्यन्दक्लेदग्रह्लादवन्धकृत् ।

रूक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपगुणोत्वणम् ॥ ७ ॥

१. यद्दूरसादीनामाश्रयभूतं कार्यद्रव्यं हरीतक्यादि स्थावरं, छा-
गादि जङ्गमञ्च, तत् पञ्चभूतात्मकमेव, तुरवधारणे । स्व-तन्त्रोपयोगि-
लक्षणमिदम् । तत्तु इत्यस्यो-भयत्रान्वयः ।

२. अम्बु जलं योनिः कारणं यस्य तत्, द्रव्यस्य निष्पत्तिरवा-
न्तरभेदश्च—तेजःपवन-गगनानां समुदायेन कारणेन भवति, कथन्तर्हि
पार्थिवमाप्यं तैजसमित्यादिव्यवहार—इत्याह—व्यपदेशस्तु भूयसेति ।
'प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ती'ति न्यायात् ।

३. गुर्वादयो बिंशतिगुणाः पूर्वमुक्ताः । अ० १ श्लो० १८

आग्नेयं दाहभावर्यप्रकाशपचन^१ त्मकम् ।
 वायव्यं रूक्षविशदलबुस्प^२ गुणोत्त्वणम् ॥ ८ ॥
 रौक्ष्यलाघववैशद्यवि^३ ऋगलानिकारकम् ।
 नाभसं सूक्ष्मवि^४ शदलघुशब्दगुणोत्त्वणम् ॥ ९ ॥
 सौपिर्यलान^५ वकरं ऋजगत्येवमनौषधम् ।
 न किं^६ वद्विद्यते द्रव्यं वशान्नानार्थयोगयोः ॥ १० ॥

व्यमूर्ध्वगमं तत्र प्रायोऽग्निपवनोत्कटम् ।
 अधोगामि च भूयिष्ठं, भूमितोयगुणाधिकम् ॥ ११ ॥
 इति द्रव्यं ऋरसान् भेदैरुत्तर^१ त्रोपदेक्ष्यते ।
 वीर्यं पुनर्वदन्त्येके गुरु स्निग्धं हिमं मृदु ॥ १२ ॥
 लघुरुक्षोष्णतीक्ष्णं च तदेवं मतमष्टधा ।
 चरकस्त्वाह वीर्यं तत्क्रियते येन या क्रिया ॥ १३ ॥
 नावीर्यं कुरुते किञ्चित्सर्वा वीर्यकृता हि सा ।
 गुर्वादिव्वेव वीर्याख्या तेनान्वर्थेति वर्ण्यते ॥ १४ ॥
 समग्रगुणसारेषु शक्त्युत्कर्षविवर्तिषु ।
 व्यवहाराय मुख्यत्वाद्ब्रह्मग्रहणादपि ॥ १५ ॥
 अतश्च विपरीतत्वात्सम्भवत्यपि नैव सा ।
 विवक्ष्यते रसाद्येषु, वीर्यं गुर्वादयो ह्यतः ॥ १६ ॥
 उष्णं शीतं द्विधैवाऽन्ये वीर्यमाचक्षते ऋ^२ अपि च ।

१. उत्तरत्र दशमाध्याये त्रिपष्टिभेदै रसान् मधुरादीन् षड् उपदे-
 क्ष्यते, तन्त्रकारः । दिश-अतिसर्जने स्वरितेत् तुदादिः, कर्त्तरि लृट् ।
 (अत्राऽऽत्मनेपदादेशः)

२ एतादृशस्थले पाठकैः संहितापाठे सन्धिः कर्त्तव्यः ।

नानात्मकमपि द्रव्यमग्नीषोमौ महाबलौ ॥ १७ ॥
व्यक्ताव्यक्तं जगदिव नातिक्रामति जातुचित् ।
तत्रोष्णं भ्रमत्तृङ्गलानि-स्वेददाहाशुपाकिताः ॥ १८ ॥
शमं च वातकफयोः करोति, शिशिरं पुनः ।
ह्लादनं जीवनं स्तम्भं प्रसादं रक्तपित्तयोः ॥ १९ ॥

विपाकं लक्षयति ।

जाठरेणाग्निना योगाद्यदुदेति रसान्तरम् ।
रसानां परिणामान्ते स 'विपाक' इति स्मृतः ॥ १० ॥
स्वादुः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ।
तिक्तोषणकपायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ॥ २१ ॥
^१रसै रसस्तुल्यफलस्तत्र द्रव्यं शुभाशुभम् ।
किञ्चिद्रसेन कुरुते कर्म पाकेन चाऽपरम् ॥ २२ ॥
गुणान्तरेण वीर्येण प्रभावेणैव किञ्चन ।
यद्यद्द्रव्ये रसादीनां बलवत्त्वेन वर्तते ॥ २३ ॥
अभिभूयेतरांस्तत्तत्कारणत्वं प्रपद्यते ।
विरुद्धगुणसंयोगे भूयसाऽल्पं हि जीयते^२ ॥ २४ ॥
रसं विपाकस्तौ वीर्यं प्रभावस्तान्यपोहति ।
बलसाम्ये रसादीनामिति नैसर्गिकं बलम् ॥ २५ ॥

१. रसैः = जिह्वा-वैषयिकैः, मधुराम्लकटुकादिभिः, रसः =
विपाककालोपलभ्यः—मधुराम्लकटुलक्षणः, तुल्यं फलं यस्य स तुल्य-
फलः = सदृशः । अरुणः ।

२. जीयते = अभिभूयते । जि-जि—अभिभवे ।

रसादिसाम्ये यत्कर्म विशिष्टं तत् प्रभावजम् ।
 दन्ती रसाद्यैस्तुल्याऽपि चित्रकस्य विरेचनी ॥ २६ ॥
 मधुकस्य च मृद्वीका, घृतं क्षीरस्य दीपनम् ।
 इति सामान्यतः कर्म द्रव्यादीनां, पुनश्च तत् ॥ २७ ॥
 विचित्रप्रत्ययारब्ध-द्रव्यभेदेन भिद्यते ।
 स्वादुर्गुरुश्च गोधूमो वातजित्, वातकृद्यवः ॥ २८ ॥
 उष्णा मत्स्याः पयः शीतं कटुः सिंहो न शूकरः ।'

इति सूत्रस्थाने नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

अथातो रसभेदीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 क्षमाग्भोऽग्निक्षमाग्भुतेजःख-वायवग्न्यनिलगोऽनिलैः ।
 द्वयोल्बणैः क्रमाद्भूतैर्मधुरादिरसोद्भवः ॥ १ ॥
 तेषां विद्याद्रसं 'स्वादु' यो वक्रमनुलिम्पति ।
 आस्वाद्यमानो देहस्य ह्लादनोऽक्षप्रसादनः ॥ २ ॥
 प्रियः ^१पिपीलिकादीनाम् अम्लः चालयते मुखम् ।
 हर्षणो रोमदन्तानामक्षिश्रुवनिकोचनः ॥ ३ ॥
 'लवणः' स्यन्दयत्यास्यं कपोलगलदाहकृत् ।
 'तिक्तो' विशदयत्यास्यं रसनं प्रतिहन्ति च ॥ ४ ॥

१. प्रमेहपरीक्षायामुषयोगार्थमिदम् ।

उद्वेजयति जिह्वाग्रं कुर्वंश्चिमिचिमां^१ 'कटुः' ।
 स्वावयत्यक्षिनासास्यं कपोलौ दहतीव च ॥ ५ ॥
 'कषायो' जडयेज्जिह्वां कण्टस्रोतोविबन्धकृत् ।
 रसानामिति रूपाणि, कर्माणि मधुरो रसः ॥ ६ ॥
 'आजन्मसात्म्यात्कुरुते धातूनां प्रबलं बलम् ।
 बाल-वृद्ध-क्षतक्षीण-वर्णकेशेन्द्रियौजसाम् ॥ ७ ॥
 प्रशस्तो बृंहणः कण्ठ्यः स्तन्यसन्धानकृद् गुरुः ।
 आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलविपापहः ॥ ८ ॥
 कुरुतेऽप्युपयोगेन स मेदःश्लेष्मजान् गदान् ।
 स्थौल्याग्निसादसन्न्यास-मेहगण्डार्बुदादिकान् ॥ ९ ॥

अम्लरसं निरूपयति ।

अम्लोऽग्निदीप्तिवृत्तिनिग्धो हृद्यः पाचनरोचनः ।
 उष्णवीर्यो हिमस्पर्शः प्रीणनः क्लेदनो लघुः ॥ १० ॥
 करोति कफपित्तास्रं मूढवातानुलोमनः ।
 सोऽत्यभ्यस्तस्तनोः कुर्याच्छैथिल्यं तिमिरं भ्रमम् ॥ ११ ॥
 कण्डुपाण्डुत्ववीसर्प-शोफविस्फोटतृड्ज्वरान् ।

लवणं निरूपयति ।

लवणः स्तम्भसङ्घात-बन्धविध्मापनोऽग्निहृत् ॥ १२ ॥
 स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्छेद-भेदकृत् ।
 सोऽतियुक्तोऽस्त्रपवनं खलति पलितं बलिम् ॥ १३ ॥

१. चिमचिमामित्यनुकरणशब्दः ।

२. जन्मत एव क्षीरादेरभ्यासाद् देहसात्म्यं मधुरस्य रसस्य ।

तृट्कुष्ठविषवीसर्पान् जनयेत्क्षपयेद् बलम् ।

तिक्तं निरूपयति ।

तिक्तः स्वयमरोचिष्णुररुचिं कृमितृड्विषम् ॥ १४ ॥

कुष्ठमूर्च्छाज्वरोत्क्लेश-दाहपित्तकफान् जयेत् ।

क्लेदमेदोवसामज्ज-शकृन्मूत्रोपशोषणः ॥ १५ ॥

लघुमध्यो हिमो रूक्षः स्तन्यकण्ठविशोधनः ।

धातुक्षयाऽनिलव्याधीनतियोगात्करोति सः ॥ १६ ॥

कटुरसं निरूपयति ।

कटुर्गलामयोदर्द-कुष्ठालसकशोफजित् ।

व्रणावसादनः स्नेहमेदःक्लेदोपशोषणः ॥ १७ ॥

दीपनः पाचनो रूच्यः शोधनोऽन्नस्य शोषणः ।

छिनत्ति बन्धान् स्रोतांसि विवृणोति कफापहः ॥ १८ ॥

कुरुते सोऽतियोगेन तृष्णां शुक्रबलक्षयम् ।

मूर्च्छांमाकुञ्चनं कम्पं कटिपृष्ठादिषु व्यथाम् ॥ १९ ॥

कषायं निरूपयति

कषायः पित्तकफहा गुरुरस्त्रविशोधनः ।

पीडनो रोपणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः ॥ २० ॥

आमसंस्तम्भनो ग्राही रूक्षोऽति त्वक्प्रसादनः ।

करोति शीलितः सोऽति विष्टम्भाध्मानहृद्भुजः ॥ २१ ॥

तृट्कार्श्यपौरुषभ्रंशस्रोतोरोधमलग्रहान् ।

मधुरादिस्कन्धान्निर्दिशति ।

घृत-हेम-गुडाऽक्षोड-भोच-चोच-परुषकम् ॥ २२ ॥

अभीरु-वीरा-पनस-राजादन-बलात्रयम् ।

मेदे चतस्रः पर्णिन्यो जीवन्ती जीवकर्षभौ ॥ २३ ॥
 मधूकं मधुकं विम्बी विदारी श्रावणीयुगम् ।
 क्षीरशुक्ला तुगाक्षीरी क्षीरिण्यौ काश्मरी सहे ॥ २४ ॥
 क्षीरेक्षु-गोक्षुर-क्षौद्र-द्राक्षादि^१ 'र्मधुरो गणः' ।
 'अम्लो' धात्रीफलाऽम्लीका-मातुलुङ्गाऽम्लवेतसम् ॥ २५ ॥
 दाडिमं रजतं तक्रं चुक्रं पालेवतं दधि ।
 आम्रमाम्रातकं भव्यं कपित्थं करमर्दकम् ॥ २६ ॥
 (वृक्षांस्त्र्य-कोल-लकुच-कोशांस्त्र्य-तकधन्वनम् ।
 मस्तुधान्याम्लमद्यानि जम्बीरं तिलकण्टकम् ॥)
 वरं^२ सौवर्चलं कृष्णं बिडं सामुद्रमौद्गिदम् ।
 रोमकं पांसुजं शीसं चारश्च 'लवणो गणः' ॥ २७ ॥
 'तित्तिः' पटोली त्रायन्ती वालकोशीर-चन्दनम् ।
 भूनिम्ब-निम्ब-कटुका-तगराऽगुरु-वत्सकम् ॥ २८ ॥
 नक्तमाल-द्विरजनी-मुस्त-मूर्वाऽटरूषकम् ।
 पाठाऽपामार्ग-कांस्याऽयो-गुडूची-धन्वयासकम् ॥ २९ ॥
 पञ्चमूलं महद्व्याघ्रयौ विशालाऽतिविषा वचा ।
 'कटुको' हिङ्गु-मरिच-कृमिजित्पञ्चकोलकम् ॥ ३० ॥
 कुठेराद्या हरितकाः पित्तं मूत्रमरुष्करम् ।
 वर्गः 'कपायः' पथ्याऽक्षं शिरीषः खदिरो मधु ॥ ३१ ॥
 कदम्बोदुम्बरं मुक्ताप्रवालाञ्जनगैरिकम् ।
 वालं कपित्थं खर्जूरं बिसपद्मोत्पलादि च ॥ ३२ ॥

१. आदिशब्दाद्-तृणपञ्चमूलादयः चरकाद्युक्ता गृह्यन्ते ।

२. वरं = सौधवम् ।

‘मधुरं’ श्लेष्मलं प्रायो जीर्णाच्छालियवाहते^१ ।

मुद्गाद्गोधूमतः क्षौद्रात्सिताया जाङ्गलामिषात् ॥ ३३ ॥

‘प्रायोऽम्लं’ पित्तजननं दाडिमामलकाहते ।

अपथ्यं ‘लवणं’ प्रायश्चक्षुषोऽन्यत्र सैन्धवात् ॥ ३४ ॥

‘तिक्तं कटु च’ भूयिष्ठमवृष्यं वातकोपनम् ।

ऋतेऽमृतापटोलीभ्यां शुण्ठीकृष्णारसोनतः ॥ ३५ ॥

‘कषायं’ प्रायशः शीतं स्तम्भनं चाऽभ्यां विना ।

रसाः कट्वम्ललवणा वीर्येणोष्णा यथोत्तरम् ॥ ३६ ॥

तिक्तः कषायो मधुरस्तद्वदेव च शीतलाः ।

तिक्तः कटुः कषायश्च रूक्षा वद्धमलास्तथा ॥ ३७ ॥

पट्वम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविष्मूत्रमारुताः ।

षटोः कषायस्तस्माच्च मधुरः परमं गुरुः ॥ ३८ ॥

लघुरम्लः कटुस्तस्मात्तस्मादपि च तिक्तकः ।

(लवणादम्लमधुरौ कार्यौ स्यातां यथाक्रमम् ।

वायोर्निरनुबन्धस्य पाकशान्तिप्रवृत्तये ॥

प्राक्तिको मधुरः पश्चात् कषायोऽन्ते विधीयते ।

तैः पित्तं शममभ्येति पक्वाऽच्छीकृतपिण्डितम् ॥

कटुः प्राक् तिक्तकः पश्चात् कषायोऽन्ते विधीयते ।

तैः श्लेष्मा शममभ्येति पक्वाऽच्छीकृतपिण्डितः) ॥

संयोगाः सप्तपञ्चाशत्कल्पना तु त्रिषष्टिधा ॥ ३९ ॥

१. ऋते= विना सर्वैः पञ्चम्यन्तैः सम्बध्यते, ‘अन्यारादितरसैः, इत्यादिना पञ्चमी ।

रसानां यौगिकत्वेन यथास्थूलं विभज्यते ।

एकैकहीनास्तान्पञ्च, पञ्च यान्ति रसा द्विके^१ ॥ ४० ॥

(स्वादुद्विकेषु पञ्चांशश्चतुरो लवणस्त्रयम् ।

द्वौ तिक्तः, कटुकश्चैकं याति पञ्चदशेति तु) ॥

^२त्रिके स्वादुर्दशांशः षट् त्रीन् षट्स्तिक्त एककम् ।

^३चतुष्केषु दश स्वादुश्चतुरोऽम्लः षट्ः सकृत् ॥ ४१ ॥

^४पञ्चकेष्वेकमेवांशो मधुरः पञ्च सेवते ।

द्वयमेकं षडास्वादमसंयुक्ताश्च षड्रसाः ॥ ४२ ॥

^५षट्पञ्चकाः, षट् च पृथग्रसाः स्युः, श्रतुर्द्विकौ पञ्चदशप्रकारौ ।

१. द्विके संयोगे-पञ्चरसाः = मधुराऽम्ललवणतिक्तकटुकाः । एकैकहीनान् पञ्च तान् = अम्ल-लवण-तिक्त-कटु-कषायान् यान्ति संयुज्यन्ते ।

२. त्रिके संयोगे स्वादुर्दश-संयोगान् याति, अम्लः षट्संयोगान् प्राप्नोति । षट्ः = लवणः त्रीन् संयोगान् याति, तिक्तः-एककं संयोगं याति ।

३. चतुष्के परिमाणे-स्वादुर्दश संयोगान्, अम्लश्चतुरः, षट्ः, सकृत् = एकं याति ।

४. पञ्चकेषु-संयोगेषु-मधुरः पञ्चसंयोगान् सेवते, अम्लः— एकमेव संयोगं सेवते । षडास्वादं = षड्रसास्वादविशिष्टमेकं द्रव्यम् । असंयुक्ताः संयोगरहिता-रसाः-मधुरादयः पृथक् षट्-इति-त्रिषष्टिः ।

५. पूर्वोक्तान् भेदान् सङ्कलयति-षट्पञ्चका-इति ।

भेदास्त्रिका विंशतिरेकमेव द्रव्यं पडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥
 ते रसानुरसतो रसभेदास्तारतम्यपरिकल्पनया च ।
 सम्भवन्ति गणनां समतीता दोषभेषजवशादुपयोज्याः ॥'
 इति सूत्रस्थाने-दशमोऽध्यायः ।



रसभेदो गार्थं चक्रम् ।

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | |
|--------------------------|-------|------|--------|------|-------|-----|
| मधुरः | अम्लः | लवणः | तिक्तः | कटुः | कषायः | |
| | म. | म. | म. | म. | म. | ५ ॥ |
| | | अ. | अ. | अ. | अ. | ४ ॥ |
| | | ल. | ति. | कटुः | कषायः | ४ ॥ |
| | | | ल. | ल० | ल० | ३ ॥ |
| | | | ति. | कटुः | कषा. | ३ ॥ |
| | | | | ति. | ति. | २ ॥ |
| | | | | कटु | कषा. | २ ॥ |
| | | | | | कटु. | १ ॥ |
| | | | | | कषायः | १ ॥ |
| अनेन चक्रेण सर्वमूहनीयम् | | | | | | १५ |

एकादशोऽध्यायः ।

अथातो ^१दोषादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

^१दोषधातुमला मूलं सदा देहस्य ऋतं चलः ।

उत्साहोच्छ्वासनिश्वास-चेष्टावेगप्रवर्तनैः ॥ १ ॥

सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवेन च ।

अनुगृह्णात्यविकृतः, पित्तं पक्त्यूष्मदर्शनैः ॥ २ ॥

क्षुत्तृड् रुचिप्रभामेधा-धीशौर्यतनुमार्दवैः ।

श्लेष्मा स्थिरत्वस्निग्धत्व-सन्धिबन्धक्षमादिभिः ॥ ३ ॥

प्रीणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणे ।

गर्भोत्पादश्च धातूनां श्रेष्ठं कर्म क्रमात्स्मृतम् ॥ ४ ॥

अवष्टम्भः पुरीषस्य, मूत्रस्य क्लेदवाहनम् ।

स्वेदस्य क्लेदविधृतिः ऋद्धस्तु कुस्तेऽनिलः ॥ ५ ॥

कार्श्यकाण्ण्योष्णकामत्व-कम्पाऽऽनाहशकृद्ग्रहान् ।

बलनिद्रेन्द्रियभ्रंश-प्रलापभ्रमदीनताः ॥ ६ ॥

पीतविष्णूमूत्रनेत्रत्वक्क्षुत्तृड्दाहाऽल्पनिद्रताः ।

पित्तम् ऋ श्लेष्माऽग्निसदन-प्रसेकालस्यगौरवम् ॥ ७ ॥

श्वैत्यशैत्यश्लथाङ्गत्वं श्वासकासातिनिद्रताः ।

रसोऽपि श्लेष्मवत् ऋ रक्तं विसर्पण्लीहविद्रधीन् ॥ ८ ॥

१. दोषाः = वात-पित्त-कफाः, धातवः - 'रसाऽसृङ्मांसमेदोऽ-
स्थि-मज्जशुक्राणि धातवः' । मला-मूत्रादयः ।

कुष्ठवातास्रपित्तास्र-गुल्मोपकुशकामलाः ।
 व्यङ्गाग्निनाशसम्मोह-रक्तवड्नेत्रमूत्रताः ॥ ९ ॥
 मांसं गण्डार्बुदग्रन्थिगण्डोरुदरवृद्धिताः ॥
 कण्ठादिष्वधिमांसं च तद्वन्मेदस्तथा श्रमम् ॥ १० ॥
 अल्पेऽपि चेष्टिते श्वासं स्फिक्स्तनोदरलम्बनम् ।
 अस्थ्यध्यस्थ्यधिदन्तांश्च मज्जा^१ नेत्राङ्गगौरवम् ॥ ११ ॥
 पर्वसु स्थूलमूलानि कुर्यात्कृच्छ्राण्यरूपि च ।
 अतिस्त्रीकामतां वृद्धं शुक्रं शुक्रारमरीमपि ॥ १२ ॥
 कुक्षावाध्मानमाटोपं गौरवं वेदनं शकृत् ।
 मूत्रं तु वस्तिनिस्तोदं कृतेऽप्यकृतसञ्ज्ञताम् ॥ १३ ॥
 स्वेदोऽतिस्वेददौर्गन्ध्यकण्डूः एव च लक्षयेत् ।
^२दूषिकादीनपि मलान् बाहुल्यगुरुतादिभिः ॥ १४ ॥
 लिङ्गं क्षीणेऽनिलेऽङ्गस्य सादोऽल्पं भापितेहितम्^३ ।
 संज्ञामोहस्तथा श्लेष्मवृद्धयुक्तामयसम्भवः ॥ १५ ॥
 पित्ते मन्दोऽनलः शीतं प्रमाहानिः कफे श्रमः ।
 श्लेष्माशयानां शून्यत्वं हृद्द्रवः श्लथसन्धिता ॥ १६ ॥
 रसे रौक्ष्यं श्रमः शोषो ग्लानिः शब्दाऽसहिष्णुता ।
 रक्तेऽम्लशिशिरप्रीति-शिराशैथिल्यरुक्षताः ॥ १७ ॥
 मांसेऽक्षग्लानिगण्डस्फिक्शुष्कतासन्धिवेदनाः ।

१. मज्जन्-शब्दो नान्तः पुंलिङ्गो राजन्-शब्दवत् ।

२. दूषिकाः नेत्रमलम्, आदिशब्देन-‘नासामलन्तु शिङ्घाणं पिञ्जूपं कर्णयोर्मलम्’ । इत्यादि । ३. भापितञ्च-ईहितञ्चाऽल्पम् ।

मेदसि स्वपनं कट्याः प्लीहो वृद्धिः कृशाङ्गता ॥ १८ ॥
 अस्थन्यस्थितोदः शदनं दन्तकेशनखादिषु ।
 अस्थनां मज्जनि सौषिर्यं भ्रमस्तिमिरदर्शनम् ॥ १९ ॥
 शुक्रे चिरात् प्रसिच्येत शुक्रं शोणितमेव वा ।
 तोदोऽन्यर्थं वृषणयोर्मेढ्रे धूमायतीव च ॥ २० ॥
 पुरीषे वायुरन्त्राणि सशब्दो वेष्टयन्निव ।
 कुक्षौ भ्रमति यात्यूर्ध्वं हृत्पार्श्वं पीडयन् भृशम् ॥ २१ ॥
 मूत्रेऽल्पं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विवर्णं सास्त्रमेव वा ।
 स्वेदे रोमच्युतिः स्तब्धरोमता स्फुटनं त्वचः ॥ २२ ॥
 मलानामतिसूक्ष्माणां दुर्लक्ष्यं लक्षयेत् क्षयम् ।
 स्वमलायनसंशोष-तोदशून्यत्वलाघवैः ॥ २३ ॥
 दोषादीनां यथास्वं च विद्याद्वृद्धिक्षयौ भिषक् ।
 क्षयेण विपरीतानां गुणानां वर्धनेन च ॥ २४ ॥
 वृद्धिं मलानां सङ्गाच्च क्षयं चाति विसर्गतः ।
 मलोचितत्वाद्देहस्य क्षयो वृद्धेस्तु पीडनः ॥ २५ ॥
 तत्रास्थनि स्थितो वायुः, पित्तं तु स्वेदरक्तयोः ।
 श्लेष्मा शेषेषु, तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः ॥ २६ ॥
 यदेकस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणौषधम् ।
 अस्थिमारुतयोर्नैवं, प्रायो वृद्धिर्हि तर्पणात् ॥ २७ ॥
 श्लेष्मणाऽनुगता तस्मात् सङ्क्षयस्तद्विपर्ययात् ।
 वायुनाऽनुगतोऽस्माच्च वृद्धिक्षयसमुद्भवान् ॥ २८ ॥
 विकारान् साधयेच्छीघ्रं ^१क्रमाह्नङ्गनबृंहणैः ।

१. वृद्धिजन्यान्-लङ्घनैः, क्षयजन्यान्-बृंहणैः ।

वायोरन्यत्र, तज्जांस्तु तैरेवोत्क्रमयोजितैः ॥ २९ ॥
 विशेषाद्वृद्धयुत्थान् रक्तस्रुतिविरेचनैः ।
 मांसवृद्धिभवान् रोगान् शस्त्रक्षाराग्निकर्मभिः ॥ ३० ॥
 स्थौल्यकाश्रयोपचारेण मेदोजानस्थिसङ्क्षयात् ।
 जातान् क्षीरघृतैस्तिक्तसंयुतैर्बस्तिभिस्तथा ॥ ३१ ॥
 (मज्जशुक्रोद्भवान् रोगान् भोजनैः स्वादुतिक्तकैः ।
 वृद्धं शुक्रं व्यवायाद्यैर्यच्चान्यच्छुक्रशोषिकम् ॥
 प्रत्यनीकौषधं मज्जशुक्रवृद्धिक्षये हितम् ।)
 विड्वृद्धिजानतीसार-क्रियया, विट्क्षयोद्भवान् ।
 मेपाजमद्यकुल्माष-यवमाषद्वयादिभिः ॥ ३२ ॥
 मूत्रवृद्धिक्षयोत्थांश्च मेहकृच्छ्रचिकित्सया ।
 व्यायामाभ्यञ्जनस्वेद-मद्यैः स्वेदक्षयोद्भवान् ॥ ३३ ॥
 स्वस्थानस्थस्य कायाग्नेरंशा धातुषु संश्रिताः ।
 तेषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिक्षयोद्भवः ॥ ३४ ॥
 पूर्वो धातुः परं कुर्याद्वृद्धः क्षीणश्च तद्विधम् ।
 दोषा दुष्टा रसैर्धातून् दूषयन्त्युभये मलान् ॥ ३५ ॥
 अधो द्वे, सप्त शिरसि, खानि स्वेदवहानि च ।
 मला मलायनानि स्युर्यथास्वं तेष्वतो गदाः ॥ ३६ ॥
 अष्टमं धातुं निरूपयति ।
 ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम् ।
 हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थितिनिबन्धनम् ॥ ३७ ॥
 स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमीषहोहितपीतकम् ।
 यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति तिष्ठति ॥ ३८ ॥

निष्पद्यन्ते यतो भावा विविधा देहसंश्रयाः ।
 ओजः क्षीयेत कोपक्षु, द्ध्यान-शोक-श्रमादिभिः ॥ ३९ ॥
 बिभेति दुर्बलोऽभीक्ष्णं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः ।
 दुश्छायो दुर्मना रुक्षो भवेत्क्षामश्च तत्क्षये ॥ ४० ॥
 जीवनीयौषधक्षीर-रसाद्यास्तत्र भेषजम् ।
 ओजोवृद्धौ हि देहस्य तुष्टिपुष्टिबलोदयः ॥ ४१ ॥
 यदन्नं द्वेष्टि यदपि प्रार्थयेताविरोधि तु ।
 तत्तत्त्यजन् समश्नंश्च तौ तौ वृद्धिक्षयौ जयेत् ॥ ४२ ॥
 कुर्वते हि रुचिं दोषा विपरीतसमानयोः ।
 वृद्धाः क्षीणाश्च भूयिष्ठं लक्ष्यन्त्यवुधास्तु न ॥ ४३ ॥
 यथाबलं यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।
 रूपाणि, जहति क्षीणाः, समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥ ४४ ॥
 य एव देहस्य समा विवृद्धयै त एव दोषा विषमा वधाय ।
 यस्मादतस्ते हितचर्ययैव, क्षयाद्विवृद्धेरिव रक्षणीयाः ॥ ४५ ॥
 इति सूत्रस्थाने एकादशोऽध्यायः ।

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातो दोषभेदीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'पक्काशय-कटी-सक्थि-श्रोत्राऽस्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ।
 स्थानं वातस्य, तत्रापि पक्काधानं विशेषतः ॥ १ ॥
 नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका रुधिरं रसः ।
 दृक् स्पर्शनं च पित्तस्य, नाभिरत्र विशेषतः ॥ २ ॥

उरःकण्ठशिरःक्लोम-पर्वाण्यामाशयो रसः ।
 मेदो घ्राणं च जिह्वा च कफस्य, सुतरामुरः ॥ ३ ॥
 प्राणादिभेदात्पञ्चात्मा वायुः ॥ प्राणोऽत्र मूर्धगः ।
 उरःकण्ठचरो बुद्धि-हृदयेन्द्रियचित्तधृक् ॥ ४ ॥
 छीवनक्षवथूद्वार-निःश्वासान्नप्रवेशकृत् ।
 उरः स्थानमुदानस्य नासानाभिगलांश्चरेत् ॥ ५ ॥
 वाक्प्रवृत्तिप्रयत्नोर्जा-बलवर्णस्मृतिक्रियः ।
 व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी महाजवः^१ ॥ ६ ॥
 गत्यपक्षेपणोत्क्षेप-निमेषोन्मेषणादिकाः ।
 प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन्^२ प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥ ७ ॥
 समानोऽग्निसमीपस्थः कोष्ठे चरति सर्वतः ।
 अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति मुञ्चति ॥ ८ ॥
 अपानोऽपानगः श्रोणि-वस्तिमेदोरुगोचरः ।
 शुक्रार्तवशकृन्मूत्र-गर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥ ९ ॥
 पित्तं पञ्चात्मकम् ॥ तत्र, पक्वामाशयमध्यगम् ।
 पञ्चभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥ १० ॥
 त्यक्तद्रवत्वं पाकादि-कर्मणाऽनलशब्दितम् ।
 पचत्यन्नं विभजते सारकिट्टौ पृथक् तथा ॥ ११ ॥
 तत्रस्थमेव पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।
 करोति बलदानेन 'पाचकं' नाम तत्स्मृतम् ॥ १२ ॥
 आमाशयाश्रयं पित्तं 'रज्जकं' रसरज्जनात् ।

१. महाजवः = महावेगः । २. प्रतिबद्धास्तदायत्ताः ।

बुद्धिमेधाभिमानाद्यै, रभिप्रेतार्थसाधनात् ॥ १३ ॥
 'साधकं' हृद्रतं पित्तं ॥ रूपालोचनतः स्मृतम् ।
 दृक्स्थमालोचकं ॥ त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥ १४ ॥
 श्लेष्मा तु पञ्चधा ॥ ऊरःस्थः स त्रिकस्य स्ववीर्यतः ।
 हृदयस्यान्नवीर्याच्च तत्स्थ एवाम्बुकर्मणा ॥ १५ ॥
 कफधाम्नां च शेषाणां यत्करोत्यवलम्बनम् ।
 अतोऽवलम्बकः श्लेष्मा ॥ यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥ १६ ॥
 क्लेदकः सोऽक्षसङ्घात-क्लेदनात् ॥ रसबोधनात् ।
 बोधको रसनास्थायी ॥ शिरःसंस्थोऽक्षतर्पणात् ॥ १७ ॥
 तर्पकः ॥ सन्धिसंश्लेषाच्छ्लेपकः सन्धिषु स्थितः ।
 इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम् ॥ १८ ॥
 १ व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ।
 उष्णेन युक्ता रूक्षाद्या वायोः कुर्वन्ति सञ्चयम् ॥ १९ ॥
 शीतेन कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः ।
 शीतेन युक्तास्तीक्ष्णाद्या, श्रयं पित्तस्य कुर्वते ॥ २० ॥
 उष्णेन कोपं, मन्दाद्याः शमं शीतोपसंहिताः ।
 शीतेन युक्ताः स्निग्धाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम् ॥ २१ ॥
 उष्णेन कोपं, तेनैव गुणा रूक्षादयः शमम् ।
 चयो वृद्धिः स्वधाम्न्येव प्रद्वेपो वृद्धिहेतुषु ॥ २२ ॥
 विपरीतगुणेच्छा च ॥ कोपस्तून्मार्गगामिता ।
 लिङ्गानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसम्भवः ॥ २३ ॥

१. सामान्यतो व्यापिनामपि दोषाणां प्रायेण इति = पूर्वोक्तानि,
 स्थानानि जानीयादिति सम्बन्धः ।

स्वस्थानस्थस्य समता विकाराऽसम्भवः शमः ।
 चय-प्रकोप-प्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु त्रिषु ॥ २४ ॥
 वर्षादिषु तु पित्तस्य, श्लेष्मणः शिशिरादिषु ।
^१चीयते लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः ॥ २५ ॥
 तद्विधस्तद्विधे देहे कालस्यौष्ण्यान्न कुप्यति ।
 अद्भिरम्लविपाकाभि, रोषधीभिश्च तादृशम् ॥ २६ ॥
 पित्तं याति चयं कोपं न तु कालस्य शैत्यतः ।
 चीयते स्निग्धशीताभि, रुदकौषधिभिः कफः ॥ २७ ॥
 तुल्येऽपि काले देहे च स्कन्तत्वान्न प्रकुप्यति ।
 इति कालस्वभावोऽयम् आहारादिवशात्पुनः ॥ २८ ॥
 चयादीन् यान्ति सद्योऽपि दोषाः कालेऽपि वा न तु ।
 व्याप्नोति सहसा देह, मापादतलमस्तकम् ॥ २९ ॥
 निवर्तते तु कुपितो मलोऽल्पाल्पं जलौघवत् ।
 नानारूपैरसङ्ख्येयै, विकारैः कुपिता मलाः ॥ ३० ॥
 तापयन्ति तनुं तस्मा, तद्धेत्वाकृतिसाधनम् ।
 शक्यं नैकैकशो वक्तुमतः सामान्यमुच्यते ॥ ३१ ॥
 दोषा एव हि सर्वेषां ^२रोगाणामेककारणम् ।
 यथा पक्षी परिपतन् सर्वतः सर्वमप्यहः ॥ ३२ ॥

१. चीयते=वर्द्धते । सम्यगीरयति=प्रेरयति-पित्त-कफादीन्
 इति-ल्युः । सम्यगीर्त्ते गच्छति स्रोतःसु इति चलनार्थत्वात्-‘चलन,
 शब्दार्थादकर्मकाद्, युच्’ इति कर्त्तरि युच् प्रत्ययः, अनादेशः ।

२. रोगाणां=रोगत्वाऽवच्छिन्नं प्रति, एकमनुगतं सामान्य-
 कारणं, दोषत्वाऽवच्छिन्नम्, तथा च रोगनिष्ठकार्यतानिरूपित—

- छायामत्येति नात्मीया यथा वा कृत्स्नमप्यदः ।
 विकारजातं विविधं त्रीन् गुणान्नातिवर्तते ॥ ३३ ॥
 तथा स्वधातुवैषम्य-निमित्तमपि सर्वदा ।
 विकारजातं त्रीन्दोषान्* तेषां कोपे तु कारणम् ॥ ३४ ॥
 अथैरसात्म्यैः संयोगः कालः कर्म च दुष्कृतम् ।
 हीनातिमिथ्यायोगेन भिद्यते तत्पुनस्त्रिधा ॥ ३५ ॥
 हीनोऽर्थनेन्द्रियस्याल्पः संयोगः स्वेन नैव वा ।
 अतियोगोऽतिसंसर्गः, सूक्ष्मभासुरभैरवम् ॥ ३६ ॥
 अत्यासन्नातिदूरस्थं विप्रियं विकृतादि च ।
 यदक्षणा वीक्ष्यते रूपं मिथ्यायोगः स दारुणः ॥ ३७ ॥
 एवमत्युच्चपूत्यादीनिन्द्रियार्थान् यथायथम् ।
 विद्यात्* कालस्तु शीतोष्ण-वर्षाभेदात्त्रिधा मतः ॥ ३८ ॥
 स हीनो हीनशीतादिरतियोगोऽतिलक्षणः ।
 मिथ्यायोगस्तु निर्दिष्टो विपरीत-स्वलक्षणः ॥ ३९ ॥
 काय-वाक्चित्तभेदेन कर्मापि विभजेत्त्रिधा ।
 कायादिकर्मणो हीना प्रवृत्तिर्हीनसंज्ञकः ॥ ४० ॥
 अतियोगोऽतिवृत्तिस्तु, वेगोदीरणधारणम् ।
 विषमाङ्गक्रियारम्भ-पतनस्वलनादिकम् ॥ ४१ ॥

- कारणताऽवच्छेदकत्वं दोषत्वम् । कीटाणुप्रवेशपक्षेऽपि—दोषदूषित-
 देहे तदवयवे वा सजातीयानामेव कीटाणूनां प्रवेश—इति नियमान्न-
 कोपि दोषः । अन्यथा-देश-काल-सामानाधिकरण्येन सर्वेषां रोगि-
 त्वापत्तिः ।

भाषणं सामिभुक्तस्य रागद्वेषभयादि च ।
 कर्म प्राणातिपातादि दशधा यच्च निन्दितम् ॥ ४२ ॥
 मिथ्यायोगः समस्तोऽसाविह वाऽमुत्र वा कृतम् ।
 निदानमेतद्दोषाणां, कुपितास्तेन नैकधा ॥ ४३ ॥
 कुर्वन्ति विविधान् व्याधीन् शाखाकोष्ठास्थिसन्धिषु ।
 'शाखा' रक्तादयस्त्वक् च बाह्यरोगायनं हि तत् ॥ ४४ ॥
 'तदाश्रया मष-व्यङ्ग-गण्डा-लज्जर्बुदादयः ।
 'बहिर्भागाश्च' दुर्नाम-गुल्म-शोफादयो गदाः ॥ ४५ ॥
 अन्तःकोष्ठो 'महास्रोत' आमपक्काशयाश्रयः ।
 तत्स्थानाश्छर्द्यतीसारकासश्वासोदरज्वराः ॥ ४६ ॥
 'अन्तर्भागं' च शोफार्शोगुल्मवीसर्पविद्रधिः ।
 शिरोहृदयवस्त्यादि^२-मर्माण्यस्थनां च सन्धयः ॥ ४७ ॥
 तन्निबद्धाः सिरास्नायु-कण्डराद्याश्च 'मध्यमः' ।
 रोगमार्गं स्थितास्तत्र यक्ष्मपक्षवधार्दिताः ॥ ४८ ॥
 मूर्धादिरोगाः सन्ध्यस्थि-त्रिकशूलग्रहादयः ।
 स्तंभ्यासव्यधस्वाप-सादरुक्तोदभेदनम् ॥ ४९ ॥
 सङ्गाऽङ्गभङ्ग-सङ्कोच-वर्त-हर्षण-तर्षणम् ।
 कम्प-पारुष्य-सौषिर्य-शोष-स्पन्दन-वेष्टनम् ॥ ५० ॥

१. तदाश्रयाः—ताः शाखा आश्रय आधारौ येषां ते = मषका-
 दयः । २. शिरोहृदयं वस्तिश्च = मर्माणि, अस्थनां सन्धयः तन्निबद्धाः
 सिरा-द्याश्च = मर्माणि, सौड्यं मध्यमो रोगमार्गः, यक्ष्मादयस्तत्र
 स्थिता-भरन्तीत्यन्वयः ।

स्तम्भः कपायरसता वर्णः श्यावोऽरुणोऽपि वा ।
 कर्माणि 'वायोः' ॐ 'पित्तस्य' दाहरागोष्मपाकिताः ॥ ५१ ॥
 स्वेदः क्लेदः स्रुतिः कोथः सदनं मूर्च्छनं मदः ।
 कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाण्डुरारुणवर्जितः ॥ ५२ ॥
 श्लेष्मणः स्नेहकाठिन्य-कण्डूशीतत्वगौरवम् ।
 बन्धोपलेपस्तैमित्य-शोफापक्व्यतिनिद्रताः ॥ ५३ ॥
 वर्णः श्वेतो रसौ स्वादुलवणौ चिरकारिता ।
 हृत्पशोषाऽऽमय-व्यापि यदुक्तं दोषलक्षणम् ॥ ५४ ॥
 दर्शनाद्यैरवहितस्तत्सम्यगुपलक्षयेत् ।
 व्याध्यवस्था-विभागज्ञः पश्यञ्चार्तान् प्रतिक्षणम् ॥ ५५ ॥
 अभ्यासात्प्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनी ।
 रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥ ५६ ॥
 दृष्टापचारजः कश्चित्कश्चित्पूर्वापराधजः ।
 तत्सङ्कराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः ॥ ५७ ॥
 यथानिदानं दोषोत्थः कर्मजो हेतुभिर्विना ।
 महारम्भोऽल्पके हेतावातङ्को दोषकर्मजः ॥ ५८ ॥
 विपक्षशीलनात्पूर्वः कर्मजः कर्मसङ्ख्यात् ।
 गच्छत्युभयजन्मा तु दोषकर्मक्षयात्क्षयम् ॥ ५९ ॥
 'द्विधा' स्वपरतन्त्रत्वाद्व्याधयोऽन्त्याः पुनर्द्विधा ।
 पूर्वजाः पूर्वरूपाख्या, जाताः पश्चाद्दुपद्रवाः ॥ ६० ॥
 यथास्वजन्मोपशयाः 'स्वतन्त्राः' स्पष्टलक्षणाः ।
 विपरीतास्ततोऽन्ये तु विद्यादेवं मलानपि ॥ ६१ ॥

तां ह्यक्षयेदवहितो विकुर्वाणान् प्रतिज्वरम्^१ ।
 तेषां प्रधानप्रशमे प्रशमोऽशाम्यतस्तथा ॥ ६२ ॥
 पश्चाच्चिकित्सेत्तूर्णं वा बलवन्तमुपद्रवम् ।
 व्याधिक्षिप्रशरीरस्य पीडाकरतरो हि सः ॥ ६३ ॥
^२विकारनामाऽकुशलो न जिहीयात् कदाचन ।
 न हि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥ ६४ ॥
 स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।
 स्थानान्तराणि च प्राप्य विकारान् कुरुते बहून् ॥ ६५ ॥
 तस्माद्विकारप्रकृती, रधिष्ठानान्तराणि च ।
 बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्यादुपक्रमम्^३ ॥ ६६ ॥
 दूष्यं देशं बलं कालमनलं प्रकृतिं वयः ।
 सत्त्वं सात्त्व्यं तथाऽऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः ॥ ६७ ॥
 सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यैषां दोषौषधनिरूपणे ।
 यो वर्तते चिकित्सायां न स स्वलति जातुचित् ॥ ६८ ॥
 गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्त्वदेहबलावलात् ।

१. प्रतिज्वरं = प्रतिरोगं, 'रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिरिति वक्ष्यति ।

२. 'विकाराणां रोगाणां नामसु सञ्ज्ञासु-अकुशलः = अनभिज्ञः सन्, कदापि- 'अस्य रोगस्य नाम न ज्ञातमिति न लज्जेत्' हि- सर्वेषामसंख्यानां रोगाणां नामनिर्धारणेन व्यवस्था निश्चिता नास्ति, किन्तु-वात-पित्त-कफजन्यत्वेनाऽनुगमः, अतोऽनिर्दिष्टनामनि रोगे, वातिक-पैत्तिक-श्लैष्मिकरोगेण व्यवहारः कर्त्तव्य-इत्यर्थः ।

३. उपक्रमं चिकित्साम् ।

दृश्यतेऽप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेत् ॥ ६९ ॥
 गुरुं लघुमिति व्याधिं कल्पयंस्तु भिषग्ब्रुवः ।
 अल्पदोषाकलनया पथ्ये विप्रतिपद्यते ॥ ७० ॥
 ततोऽल्पमल्पवीर्यं वा गुरुव्याधौ प्रयोजितम् ।
 उदीरयेत्तरां रोगान् संशोधनमयोगतः ॥ ७१ ॥
 शोधनं त्वतियोगेन विपरीतं विपर्यये ।
 क्षिणुयान्न मलानेव केवलं वपुरस्यति ॥ ७२ ॥
 अतोऽभियुक्तः सततं सर्वमालोच्य सर्वथा ।
 तथा युञ्जीत भैषज्यं, मारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥ ७३ ॥
 वक्ष्यन्तेऽतः परं दोषा वृद्धिक्षयविभेदतः ।
 पृथक् त्रीन् विद्धि ^१संसर्गस्त्रिधा, तत्र तु तान्नव ॥ ७४ ॥
 त्रीनेव समया वृद्ध्या, षडेकस्यातिशायने ।
 त्रयोदश समस्तेषु ऋषड्द्वयेकातिशयेन तु ॥ ७५ ॥
 एकं तुल्याधिकैः ऋषट् च तारतम्यविकल्पनात् ।
 पञ्चविंशतिमित्येवं वृद्धैः ऋक्षिणैश्च तावतः ॥ ७६ ॥
 एकैकवृद्धिसमताक्षयैः षट् ते ऋषुनश्च षट् ।
 एकक्षयद्वन्द्ववृद्ध्या सविपर्यययाऽपि ते ॥ ७७ ॥

भेदा द्विपष्टिर्निर्दिष्टाः

ऋषिषष्ठः ^२स्वास्थ्यकारणम् ।

१. संसर्गो द्वन्द्वः समया = तुल्यया वृद्ध्या त्रीनेव भेदान्, एकस्य वातादेरतिशायने वृद्धौ षट्, सङ्कलनया तान्नव विद्धि ।

२. त्रिषष्ठः = त्रिपष्टितमो भेदो धातुसाम्यरूपः स्वास्थ्यकारणम् ।

१संसर्गाद्वसरुधिरादिभिस्तथैषां
 दोषास्तु क्षयसमताविवृद्धिभेदैः ।
 आनन्त्यं तरतमयोगतश्च यातान्
 जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥ ७८ ॥
 इति सूत्रस्थाने द्वादशोऽध्यायः ।



त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथातो दोषोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'वातस्योपक्रमः' स्नेहः स्वेदः संशोधनं मृदु ।
 स्वाद्वद्भललवणोष्णानि भोज्यान्यभ्यङ्ग^१मर्दनम् ॥ १ ॥
 वेष्टनं^२त्रासनं सेको मद्यं पैष्टिकगौडिकम् ।
 स्निग्धोष्णा वस्तयो वस्तिनियमः सुखशीलता ॥ २ ॥

१. स्वास्थ्यफलं प्रहर्षं प्रहर्षिण्या सूचयन्-अध्यायमुपसंहरति-
 संसर्गादिति । 'भनौजौगस्त्रिदशयतिः' प्रहर्षिणीयम् । द्वादशोऽध्यायः
 समाप्तः ।

२. अभ्यङ्गश्च मर्दनञ्च द्वन्द्वः, 'अभ्यङ्गस्तैलमर्दनम्' मर्दनं=
 पाणिभ्याम् पादाभ्यां वा-संवाहनं बिना स्नेहम् ।

३. वेष्टनं = वस्त्रेणाऽवगुण्ठनम् । त्रासनं=सर्पादिदर्शनेन. कथया,
 अकस्मात्सर्प २ इत्यादि-भाषणादिना उन्मादादौ, सेको=दशमूला-
 दिक्वाथेन ।

दीपनैः पाचनैः सिद्धाः स्नेहाश्रानेकयोनयः ।
 विशेषान्मेघपिशित-रसतैलानुवासनम् ॥ ३ ॥
^१‘पित्तस्य’ सर्पिषः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम् ।
 स्वादुतिक्तकषायाणि भोजनान्यौषधानि च ॥ ४ ॥
 सुगन्धिशीतहृद्यानां गन्धानामुपसेवनम् ।
 कण्ठेगुणानां हाराणां मणीनामुरसा धृतिः ॥ ५ ॥
 कर्पूरचन्दनोशीरैरनुलेपः क्षणे क्षणे ।
 प्रदोषश्चन्द्रमाः सौधं हारि गीतं हिमोऽनिलः ॥ ६ ॥
 अयन्त्रणसुखं मित्रं पुत्रः सन्दिग्धमुग्धवाक् ।
 छन्दानुवर्तिनो दाराः प्रियाः शीलविभूषिताः ॥ ७ ॥
 शीताम्बुधारागर्भाणि गृहाण्युद्यानदीर्घिकाः ।
 सुतीर्थविपुलस्वच्छसलिलाशयसैकते ॥ ८ ॥
 साम्भोजजलतीरान्ते कायमाने द्रुमाकुले ।
 सौम्या भावाः पयः सर्पिर्विरेकश्च विशेषतः ॥ ९ ॥
^२‘श्लेष्मणो विधिना युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।
 अन्नं रूक्षाल्पतीक्ष्णोष्णं कटुतिक्तकषायकम् ॥ १० ॥
 दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रीतिः प्रजागरः ।
 अनेकरूपो व्यायामश्चिन्ता रूक्षं विमर्दनम् ॥ ११ ॥

१. पित्तस्योपक्रममाह सर्पिष-इत्यादिना ।

२. श्लेष्मण उपक्रममाह-तीक्ष्णं वमनं तीक्ष्णं विरेचनञ्च ‘न तु मृदु’ कफान्तविरेकादेरपेक्षितत्वात् ।

‘मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफान्तिका’ । इति ।

विशेषाद्वमनं यूषः चौद्रं मेदोन्नमौषधम् ।
 धूमोपसेवागण्डूपा निःसुखत्वं सुखाय^१ च ॥ १२ ॥
 उपक्रमः^२ पृथग्दोषान् योऽयमुद्दिश्य कीर्तितः ।
 संसर्गसन्निपातेषु तं यथास्वं विकल्पयेत् ॥ १३ ॥
 ग्रैष्मः प्रायो मरुत्पित्ते वासन्तः कफमारुते ।
 मरुतो योगवाहित्वात्, कफपित्ते तु शारदः ॥ १४ ॥
 चय एव जयद्दोषं कुपितं त्वविरोधयन् ।
 सर्वकोपे बलीयांसं शेषदोषाविरोधतः ॥ १५ ॥
 प्रयोगः शमयेद्व्याधिमेकं योऽन्यमुदीरयेत् ।
 नाऽसौ विशुद्धः शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपयेत् ॥ १६ ॥
 व्यायामादूष्मणस्तैक्ष्ण्यादहिताचरणादपि ।
 कोष्ठाच्छाखाऽस्थिमर्माणि द्रुतत्वान्मारुतस्य च ॥ १७ ॥
 दोषा यान्तिऽतथा तेभ्यः स्रोतोमुखविशोधनात् ।
 वृद्ध्याऽभिप्यन्दनात्पाकात्कोष्ठं वायोश्च निग्रहात् ॥ १८ ॥
 ते कालादिबलं लब्ध्वा कुप्यन्त्यन्याश्रयेष्वपि ॥ १९ ॥
 तत्रस्थाश्च विलम्बेरन् भूयो हेतुप्रतीक्षिणः ।
 तत्रान्यस्थानसंस्थेषु तदीयामबलेषु तु ।
 कुर्याच्चिकित्साम् ऋस्वामेव बलेनान्याभिभाविषु ॥ २० ॥
 आगन्तुं शमयेद्दोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य वा ।

१. सुखायेति तादर्थ्ये चतुर्थी, तथा च-सुखप्रयोजनप्राप्तिसाधनं
 निःसुखत्वम् = आस्या-शयनादिसुखाल्पत्वं, शारीरः परिश्रमः श्लेष्म-
 ण उपक्रमः । २. शुद्धदोषोपक्रमं संसृष्टादिषु यथास्वमतिदिशति-उप-
 क्रम-इति ।

'साधारणं वा कुर्वीत क्रियासुभययोगिनीम्' ।
 'प्रायस्तिर्यग्गता' दोषाः क्लेशयन्त्यातुरांश्चिरम् ॥ २१ ॥
 कुर्यान्न तेषु त्वरया देहाग्निबलवित् क्रियाम् ।
 शमयेत्तान् प्रयोगेण सुखं वा कोष्ठमानयेत् ॥ २२ ॥
 ज्ञात्वा कोष्ठप्रपन्नांश्च यथासन्नं विनिर्हरेत् ।
 स्रोतोरोधबलभ्रंश-गौरवानिलमूढताः ॥ २३ ॥
 आलस्यापक्तिनिष्ठीव, मलसङ्गाऽरुचिकलमाः ।
 'विण्मूत्रनखदन्तत्वक्-चक्षुषां पीतता भवेत् ।
 रक्तत्वमथ कृष्णत्वं पृष्ठास्थिकटिसन्धिरूक् ॥
 शिरोरुग् जायते तीव्रा, निद्रा विरसता मुखे ।
 क्वचिच्च श्वश्रुर्गात्रे ज्वराऽतीसार-हर्षणम् ॥'
 लिङ्गं मलानां सास्नानां, निरामाणां विपर्ययः ॥ २४ ॥
 ऊष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् ।
 दुष्टमामाशयगतं 'रससामं' प्रचक्षते ॥ २५ ॥
 अन्यं दोषेभ्य एवातिदुष्टेभ्योऽन्योन्यमूर्च्छनात् ।
 क्रोद्धवेभ्यो विपस्येव वदन्त्यामस्य सम्भवम् ॥ २६ ॥
 आमेन तेन सम्पृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः ।
 सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवाः ॥ २७ ॥
 'वायुः सामो विबन्धाऽग्निसाद-स्तम्भाऽन्त्रकूजनैः ।
 वेदनाशोफनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयन् ॥
 विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् ।
 स्नेहाद्यैर्बृद्धिमायाति सूर्यमेघोदये निशि ॥
 निरामो विशदो रूक्षो निर्विबन्धोऽल्पवेदनः ।

विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥
 दुर्गन्धि हरितं श्यावं पित्तमम्लं घनं गुरु ।
 अम्लीका-कण्ठहृदाहकरं सामं विनिदिशेत् ॥
 आताम्रपीतमत्युष्णं रसे कटुकमस्थिरम् ।
 पक्वं विगन्धि विज्ञेयं रुचिपक्तिबलप्रदम् ॥
 आबिलस्तन्तुलः स्यान् कण्ठदेशेऽवतिष्ठते ।
 सामो बलानां दुर्गन्धिः क्षुद्रद्वारविघातकृत् ॥
 फेनवान् पिण्डितः पाण्डुर्निःसारोऽगन्ध एव च ।
 पक्वः स एव विज्ञेयश्छेदवान् वक्त्रशुद्धिदः ॥^१
 सर्वदेहप्रविस्तान्^१ सामान् दोषान् न निर्हरेत् ।
 लीनान् धातुष्वनुक्लिष्टान् 'फलादामाद्रसानिव' ॥ २८ ॥
 आश्रयस्य हि नाशाय ते स्युर्दुर्निर्हरत्वतः ।
 पाचनैर्दीपनैः स्नेहैस्तान् स्वेदैश्च परिष्कृतान् ॥ २९ ॥
 शोधयेच्छोधनैः काले यथासन्नं यथाबलम् ।
 हन्त्याशु^२ युक्तं वक्त्रेण द्रव्यमामाशयान्मलान् ॥ ३० ॥
 घ्राणेन चोर्ध्वजत्रूत्पान् पक्वाधानाद् गुदेन च ।
 उत्क्लिष्टानध ऊर्ध्वं वा न चामान् बहतः स्वयम् ॥ ३१ ॥
 धारयेदौषधैर्दोषान् विधृतास्ते हि रोगदाः ।
 प्रवृत्तान् प्रागतो दोषानुपेक्षेत हिताशिनः ॥ ३२ ॥

१. साऽऽमा अपि दोषा उत्क्लिष्टा एव निर्हार्या न तु देहव्या-
 पिनो देहधारका निर्हार्या-इत्याह सर्व-इति-दृष्टान्तमाह-फलादामा-
 दिति । २. मलशोधनायाऽऽसन्नमार्गानाह-वक्त्रेण, घ्राणेन, गुदेनेति ।

विविद्धान् पाचनैस्तेस्तैः पाचयेन्निर्हरेत् वा ।
 श्रावणे^१ कार्तिके चैत्रे मासि साधारणे क्रमात् ॥ ३३ ॥
 (प्रावृट्शरद्वसन्तेषु मासेष्वेतेषु शोधयेत् ।
 साधारणेषु विधिना त्रिमासान्तरितान् मलान् ॥)
 ग्रीष्मवर्षाहिमचितान् वाय्वादीनांशु निर्हरेत् ।
 अन्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिमागमाः ॥ ३४ ॥
 सन्धौ साधारणे तेषां दुष्टान् दोषान् विशोधयेत् ।
 (त्रयः साधारणास्तेषामन्तरे प्रावृषादयः ।
 प्रावृट् शुचिनभौ तेषु शरदूर्जसहौ स्मृतौ ॥
 तपस्यो मधुमासश्च वसन्तः शोधनं प्रति ।
 एतानृतून् विकल्प्यैवं दद्यात्संशोधनं भिषक् ॥)
 स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य, व्याधौ व्याधिवशेन तु ॥ ३५ ॥
 कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम् ।
 प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ३६ ॥

औषधकालानाह—

^२युज्यादनन्नमन्नादौ मध्येऽन्ते कवलान्तरे ।

१. शीतोद्भवं दोषचयं वसन्ते-इत्युक्तम् प्राक् तत्र मासन्नि-
 धारयति-श्रावणे-इति ।

२. नास्तिपूर्वाऽपरसामीप्य-सबन्धेनाऽन्नभक्षणं यस्मिन्कर्मणि
 तथा—औषधमुपयुज्यात्, सामीप्यञ्चात्र कालिकमौषध-परिणाम-
 योग्यं ग्राह्यम् । समुद्गं सम्पुटितान्नं यथा स्यात्, शेषं स्पष्टम् ।
 दश कालाः ।

प्रासे प्रासे मुहुः सान्नं सामुद्गं निशि चौषधम् ॥ ३७ ॥
 कफोद्रेके गदेऽनन्नं बलिनो रोगरोगिणोः ।
 अन्नादौ विगुणेऽपाने, समाने मध्य इष्यते ॥ ३८ ॥
 व्यानेऽन्ते प्रातराशस्य, सायमाशस्य तूत्तरे ।
 प्रासप्रासान्तयोः प्राणे प्रदुष्टे मातरिश्चनि ॥ ३९ ॥
 मुहुर्मुहुर्विपच्छर्दिहिध्मातृत्वासासिपु ।
 योज्यं सभोज्यं भैषज्यं भोज्यैश्चित्रैररोचके ॥ ४० ॥
 कम्पाक्षेपकहिध्मासु सामुद्गं लघुभोजिनाम् ।
 ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु ^१स्वप्नकाले प्रशस्यते ॥ ४१ ॥
 इति सूत्रस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ।



चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो द्विविधोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'उपक्रम्यस्य हि ^२द्वित्वाद् द्विधैवोपक्रमो मतः ।
 एकः ^३सन्तर्पणस्तत्र द्वितीयश्चापतर्पणः ॥ १ ॥
 बृंहणो लङ्घनश्चेति तत्पर्यायाबुदाहृतौ ।

१. स्वप्नकाले = शयनारम्भे, नतु स्वप्नदर्शनेऽसम्भवात् ।

त्रयोदशोऽध्यायः समाप्तः ।

२. द्वित्वाद् = द्विविधत्वात् । बृंहणीयत्वाद्-लङ्घनीयत्वाच्चेत्यर्थः ।

३. अत्र सन्तर्पणादिशब्दा उपक्रम-विशेषगत्वात्पुलिङ्गा अर्शआद्य-
जन्तत्वात् ।

बृंहणं यद् बृहत्वाय ^१लङ्घनं लाघवाय यत् ॥ २ ॥
 देहस्य ऽभवतः प्रायो भौमापमितरच्च ते ^२ ।
 स्नेहनं रूक्षणं कर्म स्वेदनं स्तम्भनं च यत् ॥ ३ ॥
 भूतानां तदपि द्वैध्याद् द्वितयं नातिवर्तते ।
 शोधनं शमनं चेति द्विधा तत्रापि 'लङ्घनम्' ॥ ४ ॥
 यदीरयेद्बहिर्दोषान् पञ्चधा 'शोधनं' च तत् ।
 निरूहो वमनं ^३कायशिरोरेकोऽस्त्रविस्तृतिः ॥ ५ ॥
 न शोधयति यद्दोषान् समाज्ञोदीरयत्यपि ।
 समीकरोति विषमान् शमनं तच्च सप्तधा ॥ ६ ॥
 पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्भ्यायामातपमारुताः ।
 बृंहणं शमनं स्वेव वायोः पित्तानिलस्य च ॥ ७ ॥
 बृंहयेद् व्याधिभैषज्य-मद्यस्त्रीशोककर्शितान् ।
 भाराध्वोरःक्षतक्षीण-रूक्षदुर्बलवातलान् ॥ ८ ॥
 गर्भिणीसूतिकाबाल-वृद्धान् ग्रीष्मेऽपरानपि ।
 मांसक्षीरसितासर्पिर्मधुरस्निग्धबस्तिभिः ॥ ९ ॥
 स्वप्नशय्यासुखाभ्यङ्ग-स्नाननिर्वृतिहर्षणैः ।
 मेहाऽऽमदोषाऽतिस्निग्ध-ज्वरोरुस्तम्भकुष्ठिनः ॥ १० ॥

१. 'यत्किञ्चिलाघवकरं देहे तल्लङ्घनं स्मृतम्', बृहत्त्वं यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च बृंहणम्' च० सू० २२ ।

२. ते सन्तर्पणाऽपतर्पणे—भौमसहितमापम्, इतरद् = वह्निमा-
 रुतादिकञ्च, भवतः क्रमात् । यवमसूरादीनां भौमत्वेऽपि—अपतर्पण-
 त्वात्प्रायेणेति ।

३. रेचनं रेकः घञ् शिरसो रेको विरेकः नस्तः कर्म ।

विसर्पविद्रधिप्लीहशिरःकण्ठाक्षिरोगिणः ।
 स्थूलांश्च लङ्घयेन्नित्यं शिशिरे त्वपरानपि ॥ ११ ॥
 तत्र संशोधनैः स्थौल्य-बलपित्तकफाधिकान् ।
 आमदोषज्वरच्छर्दिरतीसारहृदामयैः ॥ १२ ॥
 विबन्धगौरवोद्गार-हृल्लासादिभिरातुरान् ।
 मध्यस्थौल्यादिकान् प्रायः पूर्वं पाचनदीपनैः ॥ १३ ॥
 एभिरेवामयैरार्तान् हीनस्थौल्यबलादिकान् ।
 क्षुत्तृष्णानिग्रहैर्दोषैस्स्वार्तान् मध्यबलैर्दृढान् ॥ १४ ॥
 समीरणाऽऽतपाऽऽयासैः किमुताल्पबलैर्नरान् ।
 न बृंहयेत्तृणनीयान् ॥ बृंह्यांस्तु मृदु लङ्घयेत् ॥ १५ ॥
 युक्त्या वा देशकालादि-बलतस्तानुपाचरेत् ।
 बृंहिते स्याद्बलं पुष्टिस्तत्साध्याऽऽमयसङ्क्षयः ॥ १६ ॥
 विमलेन्द्रियतया सर्गो मलानां लाघवं रुचिः ।
 क्षुत्तृप्सहोदयः शुद्धहृदयोद्गारकण्ठता ॥ १७ ॥
 व्याधिमादवमुत्साहस्तन्द्रानाशश्च लङ्घिते ।
 अनपेक्षितमात्रादिसेविते कुरुतस्तु ते ॥ १८ ॥
 अतिस्थौल्याऽतिकाश्यादीन् , वक्ष्यन्ते ते च सौषधाः ।
 रूपं तैरेव च ज्ञेयमतिबृंहितलङ्घिते ॥ १९ ॥
 अतिस्थौल्याऽपचीमेह-ज्वरोदरभगन्दरान् ।
 कास-सन्न्यास-कृच्छ्राम-कुष्ठादीनतिदारुणान् ॥ २० ॥
 तत्र मेदोऽनिलश्लेष्म-नाशनं सर्वमिष्यते ।
 कुलत्थचूर्णश्यामाक-यवमुद्गमधूदकम् ॥ २१ ॥
 मस्तुदण्डाहतारिष्ट-चिन्ताशोधनजागरम् ।

मधुना त्रिफलां लिङ्गाद् गुडूचीमभयां घनम् ॥ २२ ॥
 रसाञ्जनस्य महतः पञ्चमूलस्य गुग्गुलोः ।
 शिलाजतुप्रयोगश्च साम्निमन्थरसो हितः ॥ २३ ॥
 विडङ्गं नागरं चारः काललोहरजो मधु ।
 यवामलकचूर्णं च योगोऽतिस्थौल्यदोषजित् ॥ २४ ॥
 व्योषकट्वीवराशिग्रु-विडङ्गाऽतिविषास्थिराः ।
 हिङ्गुसौवर्चलाजाजी-यवानीधान्यचित्रकाः ॥ २५ ॥
 निशे बृहत्यौ हपुषा पाटा मूलं च केम्बुकात् ।
 एषां चूर्णं मधु घृतं तैलं च ^१सदृशांशकम् ॥ २६ ॥
 सक्तुभिः षोडशगुणैर्युक्तं पीतं निहन्ति तत् ।
 अतिस्थौल्यदिकान् सर्वान् रोगानन्यांश्च तद्विधान् ॥ २७ ॥
 हृद्रोगकामलाश्वित्र-श्वासकासगलग्रहान् ।
 बुद्धिमेधासमृत्तिकरं ^२सन्नस्याऽग्नेश्च दीपनम् ॥ २८ ॥
 अतिकार्ष्यं भ्रमः कास-स्तृष्णाधिवयमरोचकः ।
 स्नेहाग्निनिद्रादृक्श्रोत्र-शुक्रौजःक्षुत्स्वरक्षयः ॥ २९ ॥
 बस्तिहन्मूर्धजङ्घोरु-त्रिकपार्श्वरुजा ज्वरः ।
 प्रलापोर्ध्वाऽनिलग्लानिच्छर्दिपर्वास्थिभेदनम् ॥ ३० ॥
 वर्चोमूत्रग्रहाद्याश्च जायन्तेऽतिविलङ्घनात् ।
 कार्ष्यमेव वरं स्थौल्यात्^३ न हि स्थूलस्य भेषजम् ॥ ३१ ॥
 बृंहणं लङ्घनं वाऽलमतिभेदोऽग्निवातजित् ।

१. सदृशांशकं समभागम् एषां व्योषादीनां चूर्णम्, एको भागः,
 तत्समाः मधुघृततैलानां त्रयो भागाः, एषां चतुर्णां भागानां षोडश-
 गुणैस्सक्तुभिः, युक्तं, पीतमित्यन्वयः । २. सन्नस्य = मन्दस्य ।

मधुरस्निग्धसौहित्यैर्यत्सौख्येन च नश्यति ॥ ३२ ॥

क्रशिमा स्थविमाऽत्यन्तविपरीतनिषेवणैः ।

योजयेद् बृंहणं तत्र सर्वं पानान्नभेषजम् ॥ ३३ ॥

अचिन्तया हर्षणेन ध्रुवं सन्तर्पणेन च ।

स्वप्नप्रसङ्गाच्च कृशो वराह इव पुप्यति ॥ ३४ ॥

न हि ^१मांससमं किञ्चिदन्यद् देहबृहत्त्वकृत् ।

मांसादमांसं मांसेन सम्भृतत्वाद्विशेषतः ॥ ३५ ॥

गुरु चातर्पणं स्थूले विपरीतं हितं कृशे ।

यवगोधूममुभयोस्तद्योग्याहितकल्पनम् ॥ ३६ ॥

दोषगत्याऽतिरिच्यन्ते ग्राहिभेद्यादिभेदतः ।

उपक्रमा न ते द्वित्वाद्विज्ञा अपि ^२गदा इव ॥ ३७ ॥

इति सूत्रस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ।



१. मांसेन तुल्यं किञ्चिदन्यद्, देहस्य बृंहणकारकं नास्ति ।
मांसेन पुष्टत्वाद् मांसादानां = मांसभक्षकाणां सिंह-बुकादीनां=मांसं
विशेषेण बृहत्त्वकृदित्यर्थः ।

२. यथा-गदा रोगा ज्वरादयः सामा निरामा, निजा आगन्त-
बश्च शीताभिप्राया उष्णाभिप्रायाः इत्याद्यागमेन द्वैविध्यं नातिवर्त्तन्ते
तथा-उपक्रमा अपि लङ्घन-बृंहणरूपं द्वित्वं नातिवर्त्तन्ते-इत्यर्थः ।
चतुर्दशोऽध्यायः समाप्तः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातः शोधनादिगणसङ्ग्रहमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

^१‘मदन-मधुक-लम्बा-निम्ब-बिम्बी-विशाला-

त्रपुस-कुटज-मूर्वा-देवदालीकृमिघ्नम् ।

विदुल-दहन-चित्राः कोशवत्यौ करञ्जः

कण-लवण-वचैला-सर्षपाश्छर्दनानि ^२ ॥ १ ॥

निकुम्भ-कुम्भ-त्रिफला-गवाक्षी-

स्तुकशङ्खिनीनीलिनितिल्वकानि ।

शम्पाक-कम्पिल्लक-हेमदुग्धा

दुग्धं च मूत्रं च विरेचनानि ^३ ॥ २ ॥

मदन-कुटज-कुष्ठ-देवदाली-

मधुकवचा-दशमूल-दारु-रास्नाः ।

यव-मिशि-कृतवेधनं कुलत्था

मधुलवणं त्रिवृता ^४ निरूहणानि ॥ ३ ॥

१. ‘मदनः करहाटश्च राठः पिण्डीतकः फलम्, श्वसनश्चेति चरकः’ क० २७ । (मयनफल,) मधुकं = मधुयष्टिका । लम्बा = अलाबू । विशाला = इन्द्रवारुणी । त्रपुसं = तिक्तं वन्यं, मृदङ्गफलं, देवदाली = धरद्वरा । कृमिघ्नं = विडङ्गम् । विदुलो = जलवेतसः । चित्रा = मूषिकर्षणी । शेषं स्पष्टम् ।

२-४. प्रच्छर्दन-विरेचन-निरूहण-स्वेदन-स्तम्भनादयः शब्दाः कारणार्थकाः, प्रच्छर्द्यतेऽनेनाऽगदेनेति ‘कृत्यल्युटो बहुलमि’ति करणे ल्युट् ।

वेत्लाऽपामार्ग-व्योष-दार्वा-सुराला,
 बीजं शैरीषं बार्हतं शैग्रवं च ।
 सारो माधूकः सैन्धवं ताक्ष्यशैलं
 त्रुट्यौ पृथ्वीका शोधयन्त्युत्तमाङ्गम् ॥ ४ ॥
 भद्रदारु नतं कुष्ठं दशमूलं बलाद्वयम् ।
 वायुं वीरतरादिश्च विदार्यादिश्च नाक्षयेत् ॥ ५ ॥
 दूर्वाऽनन्ता निम्न-वासाऽऽत्मगुप्ता,
 गुन्द्राऽभीरुः शीतपाकी प्रियङ्गुः ।
 न्यग्रोधादिः पञ्चकादिः स्थिरे द्वे,
 पद्मं वन्यं सारिवादिश्च पित्तम् ॥ ६ ॥
 आरग्वधादिरर्कादिर्मुष्ककाद्योऽसनादिकः ।
 सुरसादिः समुस्तादिर्वत्सकादिर्बलासजित् ॥ ७ ॥
 जीवन्ती काकोल्यौ मेदे द्वे मुद्गमापपण्यौ च ।
 ऋषभकजीवकमधुकं चेति गणो ^१जीवनीयाख्यः ॥ ८ ॥
 विदारिपञ्चाङ्गुलवृश्चिकाली ^२घृश्चीव-देवाह्वय-शूर्पपण्यः ।
 कण्डूकरी जीवनह्रस्वसंज्ञे द्वे पञ्चके गोपसुता ^३त्रिपादी ॥ ९ ॥
 विदार्यादिरयं हृद्यो बृंहणो वातपित्तहा ।
 शोषगुल्माङ्गमर्दोर्ध्वश्वासकासहरो गणः ॥ १० ॥
 सारिवोशीरकाशमर्यमधूकशिशिरद्वयम् ।
 यष्टी परुषकं हन्ति दाहपित्तास्त्रुड्ज्वरान् ॥ ११ ॥

१. चरके सूत्रस्थाने चतुर्थाऽध्याये द्रष्टव्यम् ।

२. वृश्चिकाली = उष्ट्रमधूकः । ३. गोपसुता = सारिवा ।

पद्मकपुण्ड्रौ वृद्धितुगर्ध्यः शृङ्गव्यमृता दश जीवनसंज्ञाः ।
 स्तन्यकरा घ्नन्तीरणपित्तं प्रीणनजीवनबृंहणवृध्याः ॥१२॥
 परुषकं वरा द्राक्षा कट्फलं ^१कतकात् फलम् ।
 राजाह्वं दाडिमं शाकं तृणमूत्राऽऽमयवातजित् ॥ १३ ॥
 अञ्जनं फलिनी मांसी पद्मोत्पलरसाञ्जनम् ।
 सैलामधुकनागाह्वं विषान्तर्दाहपित्तनुत् ॥ १४ ॥
 पटोलकटुरोहिणीचन्दनं मधुस्रवगुडूचिपाठान्वितम् ।
 निहन्ति कफपित्तकृष्टज्वरान् विषं वमिमरोचकं कामलाम् ॥

असनादिविजयते श्वित्रकुष्ठकफक्रिमीन् ।
 पाण्डुरोगं प्रमेहं च मेदोदोषनिबर्हणः ॥ २० ॥
 वरुणसैर्यकयुग्मशतावरी-दहनमोरटविल्वविषाणिकाः ।
 द्विवृहतीद्विकरञ्ज-जवाद्वयं बहलपल्लव-दर्भरुजाकराः ॥ १२ ॥
 वरुणादिः कफं मेदो मन्दाग्नित्वं नियच्छति ।
 आढ्यवातं शिरःशूलं गुल्मं चान्तः सविद्रधिम् ॥ २२ ॥
^१उषकस्तुत्थकं हिङ्गु कासीसद्वयसैन्धवम् ।
 सशिलाजतु कृच्छ्राश्म-गुल्ममेदःकफापहम् ॥ २३ ॥
^२वेल्लन्तराऽरणिक-वूक-वृषाऽश्मभेद-
 गोकण्टकेकट-सहाचरबाणकाशाः ।
 वृत्तादनी-नल-कुशद्वयगुण्ठ-गुन्द्रा-
 भल्लूकमोरट-कुरण्टक-रम्भपार्थाः ॥ २४ ॥
 वर्गो ^३वीरतराद्योऽयं हन्ति वातकृतान् गदान् ।
 अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजाहरः ॥ २५ ॥
 रोध्र ^४शाबरकरोध्रपलाशा जिङ्गिणीसरलकट्फलयुक्ताः ।

१. ऊषकः-कल्लर-इति प्रसिद्धः । तुत्थकं किटिहसम्भम् । का-
 सीसद्वयं = धातुकासीसं पुष्पकासीसञ्च ।

२. वेल्लन्तरं-पर्यायबोधनार्थं वीरतराद्योऽयमिति पठितम् ;
 अन्यथा वर्गो वेल्लन्तराद्योऽयमित्येव पठेत् ,

३. रुणद्धि मेदःकफादीन् रोगानिति बाहुलकादगि 'रोध्रः'
 कपिलकादीनां रस्य वा लत्वमिति वा संज्ञायां लत्वम् 'तिल्वकस्तु
 मतो लोध्रो बृहत्पत्रस्तिरीटकः' चरकः, 'गालवः शावरो लोध्रः'

कुत्सिताम्बकदलीगतशोकाः सैलवालुपरिपेलवमोचाः ॥ २६ ॥

एष रोध्रादिको नाम मेदःकफहरो गणः ।

योनिदोषहरः स्तम्भी वण्यो विपविनाशनः ॥ २७ ॥

अर्कालर्को नागदन्ती विशल्या,

भाङ्गी रास्ना वृश्चिकाली प्रकीर्या ।

प्रत्यक्पुष्पी पीततैलोदकीर्या

श्वेतायुग्मं^१ तापसानां च वृक्षः^२ ॥ २८ ॥

अयमर्कादिको वर्गः कफमेदोविपापहः ।

कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद् व्रणशोधनः ॥ २९ ॥

सुरस-युग-फणिज्जं कालमाला विडङ्गं

खरबुस-वृषकर्णी-कट्फलं कासमर्दः ।

क्षवक-सरसि-भाङ्गीकार्मुकाः काकमाची

कुलहल-विषमुष्टीभूस्तृणो भूतकेशी ॥ ३० ॥

‘सुरसादिर्गणः’ श्लेष्ममेदः कृमिनिषूदनः ।

प्रतिश्यायारुचिश्वास-कासघ्नो व्रणशोधनः ॥ ३१ ॥

मुष्ककस्तुग्वराद्वीपि-पलाशधवर्शिशिपाः ।

गुल्ममेहोश्मरीपाण्डु-मेदोऽर्शःकफशुक्रजित् ॥ ३२ ॥

वत्सकमूर्वाभाङ्गीकटुका मरिचं घृणप्रिया च गण्डीरम् ।

अमरः । ‘रोध्रो ना गालवे, क्लीवमपराधेऽपि किल्विषे’ मेदिनी ।

लोध्रद्रुममिति रघु० । लोध्रणौरीति माघः ।

१. श्वेतायुग्मं = किणिहि-पालिन्धौ ।

२. ‘इङ्गदी तापसतरुः’-अमरः ।

एला पाठाऽजाजी कट्वङ्गफलाजमोदसिद्धार्थवचाः ॥ ३३ ॥

जीरकहिङ्गुविडङ्गं पशुगन्धा पञ्चकोलकं हन्ति ।

चलकफमेदःपीनसगुल्मज्वरशूलदुर्नाम्नः ॥ ३४ ॥

वचाजलददेवाह्वनागरातिविषाभयाः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकलशीकुटजोद्भवाः ॥ ३५ ॥

वचाहरिद्रादिगणावामातीसारनाशनौ ।

मेदःकफाढ्यपवनस्तन्यदोपनिवर्हणौ ॥ ३६ ॥

प्रियङ्गुपुष्पाञ्जनयुग्मपद्माः

पद्माद्रजो योजन^१ वल्लघनन्ता ।

मानद्रुमो मोचरसः समङ्गः

पुन्नागशीतं मदनीयहेतुः ॥ ३७ ॥

अम्बष्ठा मधुकं नमस्करी नन्दीवृत्तपलाशकच्छुराः ।

रोध्रं धातकिबिल्वपेशिके कट्वङ्गः कमलोद्भवं रजः ॥ ३८ ॥

गणौ 'प्रियङ्गुवम्बष्ठादी' पक्वातीसारनाशनौ ।

सन्धानीयौ हितौ पित्ते व्रणानामपि रोपणौ ॥ ३९ ॥

मुस्तावचाग्नि-द्विनिशा^२ द्वितित्ता-

भल्लात-पाठा-त्रिफलाविपाख्याः ।

कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि-

स्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥ ४० ॥

१. 'मज्जिष्ठा, विकसा, जिङ्गी, समङ्गा, कालमेशिका । मण्डूक-
पर्णी, भण्डीरी, भण्डी, योजनवल्ग्यपि-' अमरः ।

२. द्विनिशा = हरिद्रा, दारुहरिद्रा च, द्वितित्ता = कटुका, काक-
तित्ता च ।

न्यग्रोधपिप्पलसदाफल^१रोधयुग्मं

^२जम्बूद्वयार्जुनकपीतनसोमवल्काः ।

प्लक्षान्नवज्जुलपियालपलाशनन्दी

कोलीकदम्बविरलामधुकं मधूकम् ॥ ४१ ॥

‘न्यग्रोधादिर्गणो’ व्रण्यः सङ्ग्राही भग्नसाधनः ।

मेदःपित्तास्रतृड्दाह-योनिरोगनिवर्हणः ॥ ४२ ॥

एलायुग्मं^३तुरुष्ककुष्ठफलिनी-मांसीजलध्यामकं

सृक्काचोरकचोचपत्रतगर-स्थौण्यजातीरसाः ।

शुक्तिर्व्याघ्रनखोऽमराह्मगुरुः श्रीवासकः कुङ्कुमं

चण्डागुग्गुलदेवधूपखपुराः पुन्नागनागाह्वयम् ॥ ४३ ॥

‘एलादिको’ वातकफौ विपं च विनियच्छति ।

वर्णप्रसादनः कण्डूपिटिकाकोठनाशनः ॥ ४४ ॥

श्यामा-दन्तीद्रवन्ती-क्रमुक^४-कुट-रणा-शङ्खिनी-चर्मसाह्वा-
स्वर्णक्षीरी-गवाक्षी-शिखरि-रजनक-च्छिन्नरोहा-करञ्जाः ।

वस्तान्त्री व्याधिघातो बहलबहुरसस्तीक्ष्णवृक्षात् फलानि

‘श्यामाद्यो’ हन्ति गुल्मं विषमरुचिकफौ हृद्गुजं मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ४५ ॥

त्रयस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्गास्तेषु त्वलाभतः ।

१. रोधयुग्मम् = रक्तश्वेतमेदेन द्विविधम् ।

२. जम्बूद्वयं राजजम्बूः सूक्ष्मपत्राच ‘जम्बूः सुरभिपत्रा च; राज-
जम्बूर्महाफला । सूक्ष्मपत्रा क्षुद्रजम्बूनद्वियी भूमिजम्बुकाः; ।

३. एलायुग्मं त्रुटिर्बहुला च ।

४. ‘क्रमुकः पट्टिकाख्यः स्यात्पट्टी लाक्षाप्रसादनः’ (रक्त लोप्रः)

युञ्ज्यात्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्यादयौगिकम् ॥ ४६ ॥

एते वर्गा दोषदूष्याद्यपेक्ष्य

कल्ककाथस्नेहलेहादियुक्ताः ।

पाने नस्येऽन्वासनेऽन्तर्बहि^१र्वा

लेपाभ्यङ्गैर्ध्नन्ति रोगान् सुकृच्छ्रान् ॥ ४७ ॥

इति सूत्रस्थाने पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः ।

अथातः स्नेहविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘गुरु-शीत-सर-स्निग्ध-मन्द-मूक्ष्म-मृदु-द्रवम् ।

औषधं^२ स्नेहनं प्रायो, विपरीतं विरूक्ष्णम् ॥ १ ॥

सर्पिर्मज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।

तत्रापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात् ॥ २ ॥

१. अन्तः परिमार्जनीयाः च०सू० २ अध्याये; तृतीये-वह्निः परिमार्जनीयाः, चतुर्थे कषायाः; तेऽत्र सर्वे संगृहीता अत आह- कल्केति; अन्तर्बहिरिति च । इति पञ्चदशोऽध्यायः ।

२. औषधं द्विविधं स्नेहनं रूक्ष्णञ्चेति-तत्र गुरुशीतादिस्नेहनम् ; लघूष्णदि विरूक्ष्णम् ; स्नेहेनेषु च-घृतं वसा मज्जा तैलञ्च श्रेष्ठं साक्षात्स्नेहात्, स्नेहेषु च घृतं श्रेष्ठतमं तत्र हेतुः संस्काराऽनुवर्त्तनं दुग्धादारभ्य-घृतनिष्पत्तिपर्यन्तमातञ्जन-मन्थनादयो ये संस्कारा- स्तेषामुत्तरोत्तरस्निग्धत्वोत्कर्षाधायकत्वमित्यर्थः ।

माधुर्यादविदाहित्वाज्जन्माद्येव च शीलनात् ।
 पित्तघ्नास्ते यथा^१ पूर्वमितरघ्ना यथोत्तरम् ॥ ३ ॥
 घृतात्तैलं गुरु वसा तैलान्मज्जा ततोऽपि च ।
 द्वाभ्यां^२ त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ॥ ४ ॥
 स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकाः ।
 वृद्धवालाबलकृशा रुक्षाः क्षीणास्त्रेतसः ॥ ५ ॥
 वातार्तस्यन्दतिमिरदारुणप्रतिबोधिनाः ।
 'स्नेह्याः' ऋन त्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ॥ ६ ॥
 उरुस्तम्भातिसाराऽऽम-गलरोगगरोदरैः ।
 मूर्च्छार्च्छार्द्यरुचिश्लेष्म-तृष्णामद्यैश्च पीडिताः ॥ ७ ॥
 अपप्रसूता युक्ते च नस्ये वस्तौ विरेचने ।
 तत्र धीस्मृतिमेधादि-काङ्क्षिणां शस्यते घृतम् ॥ ८ ॥
 ग्रन्थिनाडीकृमिश्लेष्म-मेदोमारुतरोगिषु ।
 तैलं लाघवदाढ्यार्थि-क्रूरकोष्ठेषु देहिषु ॥ ९ ॥
 वातातपाध्वभारस्त्री व्यायामक्षीणधातुषु ।
 रुक्त्वलेशक्षमात्यग्नि-वातावृतपथेषु च ॥ १० ॥

१. यथापूर्वं पित्तघ्नाः-वसा पित्तघ्नी; मज्जा पित्तघ्नतरः; सर्पिः
 पित्तघ्नतमम् । इतरघ्ना यथोत्तरम्-मज्जा वातकफघ्नः; वसा वातकफघ्न-
 तरा; तैलं वातकफघ्नतमम्-इति तात्पर्यम् ।

२. यमकस्नेहः; त्रिवृतस्नेहः; महास्नेहः-इत्यायुर्वेदपरिभाषा
 स्पष्टयति-द्वाभ्यां स्नेहाभ्यां योगद्वेद्यमकः; त्रिभिस्त्रिवृतः; चतुर्भि-
 र्महास्नेह-इति संज्ञा ।

शेषौऽवसा तु सन्ध्यस्थिमर्मकोष्ठरूजासु च ।
 तथा दग्धाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ॥ ११ ॥
 तैलं प्रावृषि, वर्षान्ते सर्पिरन्यौ तु माधवे ।
 ऋतौ साधारणे स्नेहः शस्तोऽह्नि विमले^१रवौ ॥ १२ ॥
 तैलं त्वरायां शीतेऽपि^२ घर्मेऽपि च घृतं निशि ।
 निश्येव पित्ते पवने संसर्गे पित्तवत्यपि ॥ १३ ॥
 निश्यन्यथा वातकफाद्रोगाः स्युः पित्ततो दिवा ।
 युक्त्याऽवचारयेत्स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन वस्तिभिः ॥ १४ ॥
 नस्याभ्यङ्गनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणैः ।
 रसभेदैककत्वाभ्यां चतुःषष्टिर्विचारणाः^३ ॥ १५ ॥
 स्नेहस्यान्याभिभूतत्वादल्पत्वाच्च क्रमात्स्मृताः ।
 यथोक्तहेत्वभावाच्च^३ नाच्छ्रपेयो विचारणा ॥ १६ ॥
 स्नेहस्य कल्पः स श्रेष्ठः स्नेहकर्मशुसाधनात् ।

१, विमले भेष-नीहारायनाच्छ्रदिते ।

२. पूर्वोक्तैस्त्रिषष्टिसंख्याकै रसभेदैः सह प्रयुज्यमानस्य रनेहस्य
 त्रिषष्टिर्विचारणा = स्नेहप्रयोगकल्पना; एककस्य = एकाकिनः केवलस्य
 प्रयुज्यमानस्य एका कल्पना मिलित्वा चतुषष्टिः कल्पनाऽऽयुर्वेदप्रवर्त्त-
 कैर्मुनिभिः स्मृताः; विग्रहरतु-रसभेदश्च-एककत्वञ्च ताभ्याम् ।

३. अच्छं स्वच्छं द्रव्यान्तरहितं यथा स्यात्तथा; पातुं प्रेषितः;
 पातुमत्तिष्ठः; पातुं प्राप्तावसरो वा पेयस्नेहः-विचारणापद-वाच्यो
 न; किन्तु स्नेहपानपदवाच्य-इत्यर्थः । अयमभिप्रायः-केवलस्नेहपा-
 नाऽतिरिक्तः सर्वस्नेहप्रयोगः शुद्धो मिश्रितो वा विचारणा-पदवाच्यः ।

द्वाभ्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामैर्जीर्यन्ति याः क्रमात् ॥ १७ ॥
 ह्रस्वमध्योत्तमा मात्रास्तास्ताभ्यश्च हसीयसीम् ।
 कल्पयेद्वीच्य दोषादीन् प्रागेव तु हसीयसीम् ॥ १८ ॥
 ह्यस्तने जीर्ण एवान्ने स्नेहोऽच्छः शुद्धये बहुः ।
 शमनः क्षुद्रतोऽनन्नो मध्यमात्रश्च शस्यते ॥ १९ ॥
 बृंहणो रसमद्याद्यैः सभक्तोऽल्पः^१हितः स च ।
 बालवृद्धपिपासार्तस्नेहद्विण्मद्यशीलिषु ॥ २० ॥
 स्त्रीस्नेहनित्यमन्दाग्नि-सुखितक्लेशभीरुषु ।
 मृदुकोष्ठाल्पदोषेषु काले चोष्णे कृशेषु च ॥ २१ ॥
 प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदंहजान् ।
 व्याधीर्ज्वरद्वलं कुर्यादङ्गानां च यथाक्रमम् ॥ २२ ॥
 वार्युष्णमच्छेऽनु पिबेत् स्नेहे तत्सुखपक्तये ।
 आस्योपलेपशुद्धये च, तौवरारुणकरे न तु ॥ २३ ॥
 मूर्च्छा दाहोऽरतिस्तृष्णा जृम्भा मोहभ्रमक्लृमाः ।
 भवन्ति जीर्यति स्नेहे जीर्णः स्यात्तैः शमं गतैः ॥
 जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पुनरुष्णोदकं पिबेत् ।
 तेनोद्गारविशुद्धिः स्यात्ततश्च लघुता रुचिः ॥ २४ ॥
 भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन्^१श्च पिबन् पीतवानपि ।
 द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्निग्धमसङ्करम् ॥ २५ ॥

१. श्वः = मात्रया स्नेहं पास्यन्-अथ पिबन् ; ह्यः पीतवानपि
 नरः; 'मात्रया' अन्नं भोज्यो = भोजयितव्यः; प्रत्यवसानार्थकत्वाद्
 द्विकर्मकता ।

उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारी क्षपाशयः ।
 न वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान् ॥ २६ ॥
 व्यायामवेगसंरोधशोकवर्षहिमातपान् ।
 प्रवातयानयानाध्वभाष्यात्यासनसंस्थितीः ।
 नीचात्युच्चोपधानाहःस्वप्नधूमरजांसि च ॥ २७ ॥
 यान्यहानि पिबेत्तानि तावन्त्यन्यान्यपि त्यजेत् ।
 सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिक्षीणेषु च क्रमः ॥ २८ ॥
 उपचारस्तु शमने कार्यः स्नेहे विरिक्तवत् ।
 ज्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं पिबेत् ॥ २९ ॥
 सम्यक्स्निग्धोऽथवा यावदतः सात्पयीभवेत्परम् ।

सम्यक्स्निग्धमाह—

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ ३० ॥
 स्नेहोद्वेगः क्लमः सम्यक्स्निग्धे, रूक्षे विपर्ययः ।
 अतिस्निग्धे तु पाण्डुत्वं घ्राणवक्रगुदस्रवाः ॥ ३१ ॥
 अमात्रयाऽहितो काले मिथ्याहारविहारतः ।
 स्नेहः करोति शोफार्शस्तन्द्वास्तम्भविसंज्ञताः ॥ ३२ ॥
 कण्डूकुष्ठज्वरोत्क्लेशशूलानाहभ्रमादिकान् ।

स्नेहव्यापत्प्रतीकारमाह—

क्षुत्तृष्णोल्लेखनस्वेदरूक्षपानान्नभेषजम् ॥ ३३ ॥
 तक्रारिष्टखलोद्वालयवश्यामाककोद्रवम् ।
 पिप्पलीत्रिफलाक्षौद्रपथ्यागोमूत्रगुग्गुलु ॥ ३४ ॥
 यथास्वं प्रतिरोगं च स्नेहव्यापदि साधनम् ।

१ विरुक्षणे लङ्घनवत्कृतातिकृतलक्षणम् ॥ ३५ ॥
 स्निग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक् स्वेदमाचरेत् ।
 स्निग्धस्थंहं स्थितः कुर्याद्विरेकं, वमनं पुनः ॥ ३६ ॥
 एकाहं दिनमन्यच्च कफमुत्क्लेश्य तत्करैः ।
 मांसला मेदुरा भूरिश्लेष्माणं विषमाग्नयः ॥ ३७ ॥
 स्नेहोचिताश्च ये स्नेह्यास्तान् पूर्वं रूक्षयेत्ततः ।
 संस्नेह्य शोधयेदेवं स्नेहव्यापन्न जायते ॥ ३८ ॥
 अलं मलानीरयितुं स्नेहश्चासात्म्यतां गतः ।
 बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ॥ ३९ ॥
 योगानिमाननुद्वेगान् सद्यःस्नेहान् प्रयोजयेत् ।
 प्राज्यमांसरसास्तेषु, पेया वा स्नेहभर्जिता ॥ ४० ॥
 तिलचूर्णश्च सस्नेहफणितः, कृशरा तथा ।
 क्षीरपेया घृताढ्योष्णा, दध्नी वा सगुडः सरः ॥ ४१ ॥
 पेया च पञ्चप्रसृता स्नेहैस्तण्डुलपञ्चमैः ।
 सप्तैते स्नेहनाः सद्यः, स्नेहाश्च लवणोत्बणाः ॥ ४२ ॥
 तद्व्यभिष्यन्द्यरूक्षं च सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ।
 गुडानूपामिषक्षीरतिलमापसुरादधि ॥ ४३ ॥
 कुष्ठशोफप्रमेहेषु स्नेहार्थं न प्रकल्पयेद् ।
 त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गुल्वादिविपाचितान् ॥ ४४ ॥

१. विरुक्षणे कृताऽतिकृतयोः सम्यग्विरुक्षिताऽसम्यग्विरुक्षित-
 योर्यल्लक्षणं तद् लङ्घनस्येव लङ्घनवद् बोध्यम् । 'तत्र तस्येव' इति
 धृष्ट्यन्ताद् वतिः । विमलेन्द्रियत्वादीनि तत्र विशेषणानि ।

स्नेहान् यथास्वमेतेषां योजयेदविकारिणः ।

क्षीणानां त्वामयैरग्निदेहसन्धुक्षणक्षमान् ॥ ४५ ॥

^१दीप्तान्तराग्निः परिशुद्धकोष्ठः, प्रत्यग्रधातुर्बलवर्णयुक्तः ।

दृढेन्द्रियो मन्दजरः शतायुः स्नेहोपसेवी पुरुषः प्रदिष्टः ॥ ४६ ॥

इति सूत्रस्थाने षोडशोऽध्यायः ।

सप्तदशोऽध्यायः ।

^२अथातः स्वेदविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘स्वेदस्तापोपनाहोष्मद्रवभेदाच्चतुर्विधः ।

‘तापो’ऽग्नितप्त-वसन-फालहस्ततलादिभिः ॥ १ ॥

‘उपनाहो’ वचाकिण्वशताह्लादेवदारुभिः ।

धान्यैः समस्तैर्गन्धैश्च रास्नैरण्डजटामिषैः ॥ २ ॥

उद्रिक्तलवणैः स्नेहचुक्रतक्रपयःप्लुतैः ।

केवले पवने, श्लेष्मसंसृष्टे सुरसादिभिः ॥ ३ ॥

पित्तेन पञ्चकाद्यैस्तु साल्वणाख्यैः पुनः पुनः ।

१. स्नेहसेवनफलं कारणमालालङ्कारेणाह-दीप्तान्तराग्निरिति
‘प्रत्यग्रोऽभिनवो नवः’ मन्दा जरा वलीपालित्यादिका यस्य ‘परं परं
प्रति यदा पूर्वपूर्वस्य हेतुता; तदा कारणमाला स्याद्’ इतिसाहित्य-
दर्पणम् इति षोडशः ।

२. ‘स्नेहमग्ने प्रयुज्यते ततः स्वेदमनन्तरम् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य
संशोधनमथेतर्द्’-इति चरकोक्तं राह-अथात-इति ।

स्निग्धोष्णवीर्यैर्मृदुभिश्चर्मपट्टैरपृतिभिः ॥ ४ ॥
 अलाभे वातजित्पत्रकौशेयाविकशाटकैः ।
 बद्धं रात्रौ दिवा मुञ्चेन्मुञ्चेद्रात्रौ दिवाकृतम् ॥ ५ ॥
 'ऊष्मा' तूत्कारिकालोष्ट-कपालोपलपांसुभिः ।
 पत्रभङ्गेन धान्येन करीपसिकतातुषः ॥ ६ ॥
 अनेकोपायसन्तप्तैः प्रयोज्यो देशकालतः ।

द्रवस्वेदमाह—

शिग्रुवारणकैरण्ड-करञ्जसुरसार्जकात् ॥ ७ ॥
 शिरीषवासावंशार्क-मालतीदीर्घवृन्ततः ।
 पत्रभङ्गैर्वचाद्यैश्च मांसैश्चानूपवारिजैः ॥ ८ ॥
 दशमूलेन च पृथक् सहितैर्वा यथामलम् ।
 स्नेहवद्भिः सुराशुक्तवारिच्चीरादिसाधितैः ॥ ९ ॥
 कुम्भीर्गलन्तीर्नाडीर्वा पूरयित्वा रुजार्दितम् ।
 वाससाऽऽच्छादितं गात्रं स्निग्धं सिञ्चेद्यथासुखम् ॥ १० ॥
 तैरेव वा द्रवैः पूर्णं कुण्डं सर्वाङ्गोऽनिले ।
 अवगाह्यातुरस्तिष्ठेदर्शःकृच्छ्रादिरुद्धु च ॥ ११ ॥
 निवातेऽन्तर्बहिःस्निग्धो जीर्णान्नः स्वेदमाचरेत् ।
 व्याधिव्याधितदेशर्तुवशान्मध्यवरावरम् ॥ १२ ॥
^१कफार्तो रुक्षणं रुद्धो, ^२रुद्धः स्निग्धं कफानिले ।

१. कफग्रस्तः रुक्षः सन् न तु स्निग्धः, रुक्षणं स्वेदमाचरेत्-न तु स्निग्धम् ।

२. कफाऽनिलद्वन्द्वपीडितः-अन्तर्बहिश्च रुक्षः सन् स्निग्धं स्वेदमाचरेत् ।

आमाशयगते वायौ कफे पक्काशयाश्रिते ॥ १३ ॥
 रूक्षपूर्वं तथा स्नेहपूर्वं स्थानानुरोधतः ।
 अल्पं वङ्क्षणयोः, स्वल्पं दृङ्मुष्कहृदये न वा ॥ १४ ॥
 शीतशूलक्षये स्विन्नो जातेऽङ्गानां च मार्दवे ।
 स्याच्छनैर्मृदितः स्नातस्ततः स्नेहविधिं भजेत् ॥ १५ ॥
 पित्तास्रकोपतृणमूर्च्छा-स्वराङ्गसदनभ्रमाः ।
 सन्धिपीडा ज्वरः श्यावरक्तमण्डलदर्शनम् ॥ १६ ॥
 स्वेदातियोगाच्छर्दिश्च, तत्र स्तम्भनमौषधम् ।
 विषक्षाराग्न्यतीसारच्छर्दिमोहातुरेषु च ॥ १७ ॥
 स्वेदनं गुरु तीक्ष्णोष्णं प्रायः, स्तम्भनमन्यथा ।
 द्रव-स्थिर-सर-स्निग्ध-रूक्ष-सूक्ष्मं च भेषजम् ॥ १८ ॥
 स्वेदनं, स्तम्भनं श्लक्ष्णं रूक्ष-सूक्ष्म-सर-द्रवम् ।
 प्रायस्तिक्तं कषायं च मधुरं च समासतः ॥ १९ ॥
 स्तम्भितः स्याद् बले लब्धे यथोक्तमयसङ्ख्यात् ।
^१स्तम्भत्वक्स्नायुसङ्कोच-कम्पहृद्वाग्धनुग्रहैः ॥ २० ॥

१. स्तम्भश्च-त्वक्स्नायुसङ्कोचश्च-कम्पश्च-हृद्वाग्धनुग्रहश्चेति
 द्वन्द्वः । त्वक्स्नायुपदयोः; हृदादीनां च प्रथमं द्वन्द्वौ कर्तव्यौ तथा च-
 स्तम्भेन; त्वक्स्नायुसङ्कोचेन; कम्पेन; हृद्ग्रहेण, वाग्ग्रहेण; हनुग्रहेण;
 श्यावैः कपिशवर्णैः पादौष्ठत्वक्करैरतिस्तम्भितमादिशेदित्यन्वयः; पा-
 दौष्ठत्वक्करैरित्यत्र प्राण्यङ्गत्वेऽपि 'अपि माषं मषं कुर्यान्न च्छन्दो-
 भङ्गमाचरेद्' इति नियमस्य प्रबलत्वान्नैकवद्भावः । प्रावल्यञ्च साधु-
 त्वाऽवच्छिन्नस्य माषपदस्य स्थानेऽसाधुत्वाऽवच्छिन्नमष-इत्याकारि

पादौष्ठ्यक्करैः श्यावेरतिस्तिग्भितमादिशेत् ।

अस्वेद्यानाह—

न स्वेदयं दतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्च्छितान् ॥ २१ ॥

स्तम्भनीयक्षतक्षीणक्षाममद्यविकारिणः ।

तिमिरोदरवीसर्पकुष्ठशोपाढ्यरोगिणः ॥ २२ ॥

पीतदुग्धदधिस्नेहमधून् कृतविरेचनान् ।

अष्टदग्धगुदग्लानिक्रोधशोकभयादितान् ॥ २३ ॥

क्षुत्तृष्णाकामलापाण्डुमेहिनः पित्तपीडितान् ।

गर्भिणीं पुष्पितां सूतां, मृदु चात्ययिके गदे ॥ २४ ॥

श्वास-कास-प्रतिश्याय- हृद्मा-ध्मान-विबन्धिषु ।

स्वरभेदानिलव्याधिश्लेष्मामस्तम्भगौरवे ॥ २५ ॥

अङ्गमर्दकटीपार्श्वपृष्ठकुक्षिहनुग्रहे ।

महत्वे मुष्कयोः खल्ल्यामायामे वातकण्ठके ॥ २६ ॥

मूत्रकृच्छ्राब्धुदग्रन्थि-शुक्राघाताढ्यमारुते ।

स्वेदं यथायथं कुर्यात्तदौषधविभागतः ॥ २७ ॥

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेदःकफावृते ।

निवातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥ २८ ॥

उपनाऽऽहाहव-क्रोधा भूरिपानं क्षुधाऽऽतपः ॥ २९ ॥

कानुपूर्वी-प्रयोगप्रयोजकः कुर्यादिति विधिरेव बोधयति । न चैता-
वता मषादीनां साधुत्वं शङ्क्यम् ; नियमस्य छन्दोभङ्गनिवृत्तिमात्र-
विषयत्वात् ।

१. पुष्पितां रजस्वलाम् ।

स्नेहक्लिन्नाः कोष्ठगा धातुगा वा,
 स्रोतोलीना ये च शाग्वास्थिसंस्थाः ।
 दोषाः स्वेदैस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं
 नीताः सम्यक् शुद्धिभि^१ निर्हिंयन्ते ॥ २९ ॥
 इति सूत्रस्थाने सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातो वमनविरेचनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'कफे विदध्याद्वमनं संयोगे वा कफोत्खणे ।
 तद्वद्विरेचनं पित्तेऽऽ विशेषेण तु वामयेत् ॥ १ ॥
 नवज्वरातिसाराधःपित्तासृग्राजयक्ष्मिणः ।
 कुष्ठ-मेहा-पची-मन्थि-श्लीपदोन्मादकासिनः ॥ २ ॥
 श्वास-हृत्तास-वीसर्प-स्तन्यदोषोर्ध्वरोगिणः ।
 'अवाग्म्या' गर्भिणी रूक्षः क्षुधितो नित्यदुःखितः ॥ ३ ॥
 बालवृद्धकृशस्थूल-हृद्रोगिहृतदुर्वलाः ।
 प्रसक्तवमथुप्लीह-तिमिरक्रिमिकोष्ठिनः ॥ ४ ॥
 ऊर्ध्वप्रवृत्तवायवस्त्र-दत्तवस्तिहतस्वराः ।
 मूत्राघात्युदरी गुल्मी दुर्वलोऽत्यमिरर्शसः ॥ ५ ॥

१. अध्यायार्थमुमसंहरन्नुत्तरोत्तराध्यायार्थं शालिन्या सूचयति-
 शुद्धिभिरिति = वमनविरेचनादिभिः । इति सप्तदशः ।

उदावर्तभ्रमाष्ठीला-पार्श्वरुग्वातरोगिणः ।
 ऋते विषगराजीर्ण-विरुद्धाभ्यवहारतः ॥ ६ ॥
 प्रसक्तवमथोः पूर्वे प्रायेणाऽमज्वरोऽपि च ।
 १धूमान्तैः कर्मभिर्वर्ज्याः, सर्वैरेव त्वजीर्णिनः ॥ ७ ॥
 विरेकसाध्या गुल्माशौविस्फोटव्यङ्गकामलाः ।
 जीर्णज्वरोदरगर-च्छर्दिप्लीहहलीमकाः ॥ ८ ॥
 विद्रधिस्तिमिरं काचः स्यन्दः पक्काशयव्यथा ।
 योनिशुक्राश्रया रोगाः कोष्ठगाः कृमयो व्रणाः ॥ ९ ॥
 वातास्रमूर्ध्वगं रक्तं मूत्राघातः शकृद्ग्रहः ।
 वाम्याश्च कुष्ठमेहाद्याः न तु रेच्यो २नवज्वरी ॥ १० ॥
 अल्पाग्न्यधोगपित्तास्र-क्षतपायवतिसारिणः ।
 सशल्यास्थापितक्रूर-कोष्ठातिस्निग्धशोषिणः ॥ ११ ॥
 अथ साधारणे काले स्निग्धस्विन्नं यथाविधि ।
 श्लेष्मन्मुक्लिष्टकफं मत्स्यमाषतिलादिभिः ॥ १२ ॥
 निशा ३ सुप्तं सुजीर्णान्नं पूर्वाह्ने कृतमङ्गलम् ।
 निरन्नमीषत्स्निग्धं वा पेयया ४ पीतसर्पिषम् ॥ १३ ॥

१. धूमान्तैः = वमन-विरेचन-शिरोविरेचन नस्तःकर्मादि-धूम-ग्रहणान्तैः कर्मभिः ।

२. 'नवज्वरी तु न विरेच्यः' किन्तु = 'ज्वरादौ लङ्घनं शस्तम्; ज्वरमध्ये तु पाचनम्; ज्वरान्ते भेषजं दद्याद्; ज्वरमुक्ते विरेचनम्' इति नियमानुसारमुपक्रम्यः ।

३. निशाभिति-अत्यन्तसंयोगे द्वितीया; अत एव निद्राया गाढ-त्वम्; ततश्चान्नस्य सुजीर्णत्वम् । ४. पेयया-इति सहार्थे तृतीया ।

वृद्ध-बालाऽवल-क्लीब-भीरून् रोगानुरोधतः ।
 आकण्ठं पायितान्मद्यं क्षीरमिच्छुरसं रसम् ॥ १४ ॥
 यथाविकारविहितां मधुसैन्धवसंयुताम् ।
 कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मन्त्राभिमन्त्रिताम् ॥ १५ ॥
 'ब्रह्मदत्ताश्विरुद्रेन्द-भूचन्द्रार्कानिलानलाः ।
 ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु वः ॥ १६ ॥
 रसायनमिवर्षीणाममराणामिवामृतम् ।
 सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥ १७ ॥
 ओं नमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजाय ।
 तथागतायार्हते सम्यक्सम्बुद्धाय । तद्यथा ।
 ओं भैषज्ये भैषज्ये महाभैषज्ये समुद्रते स्वाहा ॥'
 प्राङ्मुखं पाययेत् ऋषीतो मुहूर्तमनुपालयेत् ।
 तन्मनाःॐ जातहृद्भासप्रसेकश्च्छर्दयेत्ततः ॥ १८ ॥
 अङ्गुलिभ्यामनायस्तो नालेन मृदुनाऽथवा ।
 गलताल्वरुजन् वेगानप्रवृत्तान् प्रवर्तयन् ॥ १९ ॥
 प्रवर्तयन् प्रवृत्तांश्च जानुतुल्यासने स्थितः ।
 उभे पार्श्वे ललाटे च वमतश्चास्य धारयेत् ॥ २० ॥
 प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिलोमतः ।
 कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैः पित्ते स्वादुहिमैरिति ॥ २१ ॥
 वमेत् सिग्धाम्ललवणः संसृष्टे मरुता कफे ।
 पित्तस्य दर्शनं यावच्छेदो वा श्लेष्मणो भवेत् ॥ २२ ॥
 हीनवेगः कणाधात्रीसिद्धार्थलवणोदकैः ।
 वमेत्पुनः पुनःॐ तत्र वेगानामप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥

प्रवृत्तिः सविबन्धा वा केवलस्यौषधस्य वा ।
 अयोगस्तेन निष्ठीव-कण्डूकोटज्वरादयः ॥ २४ ॥
 निर्विबन्धं प्रवर्तन्ते कफपित्तानिलाः क्रमात् ।
 (मनः प्रसादः स्वास्थ्यं चावस्थानं च स्वयं भवेत् ।
 वैपरीत्यमयोगानां न चातिमहती व्यथा ॥ १ ॥)
 'सम्यग्योगे, ॐ 'अतियोगे, तु फेनचन्द्रकरक्तवत् ॥ २५ ॥
 वमितं क्षामता दाहः कण्ठशोषस्तमो भ्रमः ।
 घोरा वाय्वामया मृत्युर्जीवशोणितनिर्गमात् ॥ २६ ॥
 सम्यग्योगेन वमितं क्षणमाश्रास्य पाययेत् ।
 धूमत्रयस्यान्यतमं स्नेहाचारमथादिशेत् ॥ २७ ॥
 ततः सायं प्रभाते वा क्षुद्धान् स्नातः सुखाम्बुना ।
 भुञ्जानो रक्तशाल्यन्नं भजेत्पेयादिकं क्रमम् ॥ २८ ॥
 पेयां^१ विलेपीमकृतं कृतं च,
 यूपं रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।
 क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालान्
 प्रधानमध्याज्वरशुद्धिशुद्धः ॥
 यथाऽणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः
^२सन्धुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
 महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव
 शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥ ३० ॥

१. पेयां विलेपीमित्यादयः श्लोकाः, चरके सिद्धिस्थाने प्रथमाध्याये । उपजातयः ।

२. धुक्ष, धिक्क्ष; संदीपने भ्या० आ० संदीप्यमानः ।

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-

श्रत्वार इष्टा वमने पड्यौ ।

दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके

प्रस्थस्तथा स्याद् द्विचतुर्गुणश्च ॥ ३१ ॥

।पत्तावसान वमनं विरेका-

दर्धं कफान्तं च विरेकमाहुः ।

^१द्वित्रान् सविट्कानपनीय वेगान्

मेयं विरेके, वमने तु पीतम् ॥ ३२ ॥

अथैनं वामितं भूयः स्नेहस्वेदोपपादितम् ।

श्लेष्मकाले गते ज्ञात्वा कोष्ठं सम्यग्विरेचयेत् ॥ ३३ ॥

बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणापि विरिच्यते ।

प्रभूतमारुतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्रयामादिकैरपि ॥ ३४ ॥

कपायमधुरैः पित्तं विरेकः, कटुकैः कफे ।

स्निग्धोष्णलवणैर्वायौॐ अप्रवृत्तौ तु पाययेत् ॥ ३५ ॥

उष्णाम्बु, स्वेदयेदस्य पाणितापेन चोदरम् ।

उत्थानेऽल्पे दिने तस्मिन्भुक्त्वाऽन्येद्युः पुनः पिबेत् ॥ ३६ ॥

अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहृतः ।

भूयोऽप्युपस्कृततनुः स्नेहस्वेदैर्विरेचनम् ॥ ३७ ॥

१. द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रास्तान् वेगान् । 'संख्ययाऽन्ययाऽसन्ना-
दूराऽधिकसंख्या संख्येये;-इति बहुव्रीहिः समासः । 'बहुव्रीहौ संख्ये-
ये ङजबहुगणाद्'इति, समासान्तोऽच् टिलोपः । इन्द्रवज्रा ।

यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमनुक्रमम् ।
 हृत्कुक्ष्यशुद्धिररुचिरुत्त्वलेशः श्लेष्मपित्तयोः ॥ ३८ ॥
 कण्डूर्विदाहः पिटिकाः पीनसो वातविड्ग्रहः ।
 अयोगलक्षणम् ॥ योगो वैपरीत्ये यथोदितात् ॥ ३९ ॥
 विट्पित्तकफवातेषु निःसृतेषु क्रमात्सवेत् ।
 निःश्लेष्मपित्तमुदकं श्वेतं कृष्णं सलोहितम् ॥ ४० ॥
 मांसधावनतुल्यं वा मेदःखण्डाभमेव वा ।
 गुदनिःसरणं तृष्णा भ्रमो नेत्रप्रवेशनम् ॥ ४१ ॥
 भवन्त्यतिविरिक्तस्य तथाऽतिवमनामयाः ।
 सम्यग्विरिक्तमेनं च वमनोक्तेन योजयेत् ॥ ४२ ॥
 धूमवर्ज्येन विधिना ॥ ततो वनितवानिव ।
 क्रमेणान्नानि भुञ्जानो भजेत्प्रकृतिभोजनम् ॥ ४३ ॥
 मन्दबह्निमसंशुद्धमक्षामं दोषदुर्बलम् ।
 अदृष्टजीर्णलिङ्गं च लङ्घयेत्पीतभेषजम् ॥ ४४ ॥
 स्नेहस्वेदौषधोत्त्वलेशसङ्घैरिति न वाध्यते ।
 संशोधनास्रविस्त्रावस्नेहयोजनलङ्घनैः ॥ ४५ ॥
 यात्यग्निर्मन्दतां तस्मात् क्रमं पेयादिमाचरेत् ।
 सुताल्पपित्तश्लेष्माणं मद्यपं वातपैत्तिकम् ॥ ४६ ॥
 पेयां न पाययेत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः ।
 अपक्वं वमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम् ॥ ४७ ॥
 निर्हरेद्दमनस्यातः पाकं न प्रतिपालयेत् ।
 दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यः स्वयम् ॥ ४८ ॥
 विरिच्यते भेदनीयैर्भोज्यैस्तमुपपादयेत् ।

दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः ॥ ४९ ॥
 अपरिज्ञातोष्ठश्च पिबेन्मृद्वल्पमौषधम् ।
 वरं तदसकृत्पीतमन्यथा संशयावहम् ॥ ५० ॥
 हरेद्बहुंश्चलान् दोषानल्पानल्पान् पुनः पुनः ।
 दुर्बलस्य मृदुद्रव्यैरल्पान् संशमयेत्तु तान् ॥ ५१ ॥
 क्लेशयन्ति चिरं ते हि हन्युर्वेनमनिर्हृताः ।
 मन्दान्निं क्रूरकोष्ठं च सत्चारलवणैर्घृतैः ॥ ५२ ॥
 सन्धुक्षितार्गिं विजित-ऋफवातं च शोधयेत् ।
 रूक्षबह्वनिलक्रूर-कोष्ठ-व्यायामशीलिनाम् ॥ ५३ ॥
 दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति ।
 तेभ्यो वस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम् ॥ ५४ ॥
 शकृन्निर्हृत्य वा किञ्चित्तीक्ष्णाभिः फलवर्तिभिः ।
 प्रवृत्तं हि मलं स्निग्धो विरेको निर्हरेत्सुखम् ॥ ५५ ॥
 विषाभिघातपिटिका-कुष्ठशोफविसर्पिणः ।
 कामलापाण्डुमेहार्तान्नातिस्निग्धान् विशोधयेत् ॥ ५६ ॥
 सर्वान् स्नेहविरेकैश्च, रूक्षैस्तु स्नेहभावितान् ।
 कर्मणां वमनादीनां पुनरप्यन्तरेऽन्तरे ॥ ५७ ॥
 स्नेहस्वेदौ प्रयुज्जीत, स्नेहमन्ते बलाय च ।
 मलो हि देहादुत्क्लेश्य ह्रियते वाससो यथा ॥ ५८ ॥
 स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लिष्टः शोध्यते शोधनैर्मलः ।
 स्नेहस्वेदावनभ्यस्य कुर्यात्संशोधनं तु यः ॥ ५९ ॥
 दारु शुष्कमिवाऽऽनामे शरीरं तस्य दीर्यते ॥ ६० ॥

^१बुद्धिप्रसादं बलमिन्द्रियाणां
धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।
चिराच्च पाकं वयसः करोति
संशोधनं सम्यगुपास्यमानम् ॥ ६१ ॥
इति सूत्रस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ।

एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथातो ^१वस्तिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
‘वातोत्बग्नेषु दोषेषु वाते वा बन्तिरिष्यते ।
उपक्रमाणां सर्वेषां सोऽग्रणीस्त्रिविधस्तु सः ॥ १ ॥
^२निरूहोऽन्वासनं वस्तिरुत्तरस्तेन साधयेत् ।
गुल्माऽनाह-खुड-प्लीह-शुद्धाऽतीसार-शूलिनः ॥ २ ॥
जीर्णज्वर-प्रतिश्याय-शुक्राऽनिलमलग्नहान् ।
बध्माऽश्मरीरजोनाशान् दारुणांश्चाऽनिलामयान् ॥ ३ ॥
अनास्थाप्यस्त्वतिस्त्रिगधः क्षतोरस्को भृशं कृशः ।

१. उपजातिः इं इ-उ-इं अष्टादशोऽध्यायः ।

२. वस्तिमूत्राशयः, अत्र तु-छायादिमूत्राशयेन नलिकाग्रबद्धेन गुदद्वारद्वारा रुक्षणौषधस्य स्नेहनौषधस्य वा दीयमानतया लाक्षणि-को वस्तिशब्दः । च० सि० स्थाने ।

३. निरूहः कषायेण रक्षीकरणम् । अन्वासनमनुवासनं स्नेन रिनग्धीकरणम् । उत्तरवस्तिमूत्रद्वारेण पिचुदानद्वारा मूत्राशयशुद्धिः ।

आमातिसारी वमिमान् संशुद्धौ दत्त-नावनः ॥ ४ ॥
 श्वासकासप्रसेकाशोहिध्माध्मानाल्पवह्नयः ।
 शूनपायुः कृताहारो बद्धच्छिद्रोदकोदरी ॥ ५ ॥
 कुष्ठी च मधुमेही च मासान् सप्त च गर्भिणी ।
 आस्थाप्या एव चान्वास्या विशेषादतिवह्नयः ॥ ६ ॥
 रूक्षाः केवलवातार्ताःः नानुवास्यास्त एव च ।
 येऽनास्थाप्यास्तथा पाण्डुकामलामेहपीनसाः ॥ ७ ॥
 निरन्नप्लीहविद्भेदिगुरुकोष्ठकफोदराः ।
 अभिप्यन्दिक्कृशस्थूलकृमिकोष्ठाढ्यमारुताः ॥ ८ ॥
 पीते विषे गरेऽपच्यां श्लीपदी गलगण्डवान् ।
 १तयोस्तु नेत्रं हेमादिधातुदार्ढ्यस्थिवेणुजम् ॥ ९ ॥
 गोपुच्छाकारमच्छिद्रं श्लक्ष्णं गुलिकामुखम् ।
 ऊनेऽब्दे पञ्च, पूर्णेऽस्मिन्नासप्तभ्योऽङ्गुलानि षट् ॥ १० ॥
 सप्तमे सप्त, तान्यष्टौ द्वादशे, षोडशे नव ।
 द्वादशैव परं विंशाद्वीच्य वर्षान्तरेषु च ॥ ११ ॥
 वयोबलशरीराग्नि प्रमाणमभिवर्धयेत् ।
 स्वाङ्गुष्ठेन समं मूले स्थौल्येनाग्रे कनिष्ठया ॥ १२ ॥
 पूर्णेऽब्देऽङ्गुलमादाय तदर्धार्धप्रवर्धितम् ।
 श्यङ्गुलं परमं छिद्रं मूलेऽग्रे वहते तु यत् ॥ १३ ॥
 मुदगं माषं कलायं च क्लिन्नं कर्कन्धुकं क्रमात् ।

१. तयोनिरूहान्वासनवस्तयोः सिद्धयर्थं नेत्रं = नलिका हेमा-
 दिजा, चरके सिद्धिस्थाने तृतीयाध्याये द्रष्टव्यम् ।

मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्रान्ते घटितकर्णिकम् ॥ १४ ॥
 वर्त्याऽग्रे पिहितं, मूले यथास्वं द्वयङ्गुलान्तरम् ।
 कर्णिकाद्वितयं नेत्रे कुर्यात् ॥ तत्र च योजयेत् ॥ १५ ॥
 अजाविमहिषादीनां बस्तिं सुमृदितं दृढम् ।
 कषायरक्तं निश्छिद्रग्रन्थिगन्धसिरं तनुम् ॥ १६ ॥
 ग्रथितं साधु सूत्रेण सुखसंस्थाप्यभेषजम् ।
 बस्त्यभावेऽङ्गपादं वा न्यसेद्वासोऽथवा घनम् ॥ १७ ॥
 निरुहमात्रा प्रथमे ^१प्रकुञ्चो वत्सरात्परम् ।
 प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट् प्रसृतास्ततः ॥ १८ ॥
^२प्रसृतं वर्धयेद्दूर्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु ।
 आसप्ततेरिदं मानं, दशैव प्रसृताः परम् ॥ १९ ॥
 यथायथं निरुहस्य पादो मात्राऽनुवासने ।
 आस्थाप्यं स्नेहितं स्विन्नं शुद्धं लब्धवलं पुनः ॥ २० ॥
 अन्वासनाहं विज्ञाय पूर्वमेवानुवासयेत् ।
 शीते वसन्ते च दिवा रात्रौ केचित्ततोऽन्यदा ॥ २१ ॥
 अभ्यक्तस्नातमुचितात्पादहीनं हितं लघु ।
 अस्त्रिगधरुक्षमशितं सानुपानं द्रवादि च ॥ २२ ॥
 कृतचङ्क्रमणं मुक्तविण्मूत्रं शयने सुखे ।
 नात्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्श्वतः ॥ २३ ॥
 सङ्कोच्य दक्षिणं सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम् ।

१. द्वे पलादौ पलं मुष्टिः प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका; च. क. १२ ।

२. बिल्वं षोडशिका चाऽऽग्रं द्वे पले प्रसृतं विदुः । च० ।

अथास्य नेत्रं प्रणयेस्त्रिगन्धे स्त्रिगन्धमुखं गुदे ॥ २४ ॥

^१उच्छ्वासस्य बस्तेर्वदने बद्धे हस्तमकम्पयन् ।

पृष्ठवंशं प्रति ततो नातिद्रुतविलम्बितम् ॥ २५ ॥

नातिवेगं न वा मन्दं सकृदेव प्रपीडयेत् ।

सावशेषं च कुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति ॥ २६ ॥

दत्ते तूत्तानदेहस्य पाणिना ताडयेत्स्फिजौ ।

तत्पार्श्विभ्यां तथा शय्यां पादतश्च त्रिरुत्क्षिपेत् ॥ २७ ॥

ततः प्रसारिताङ्गस्य सोपधानस्य पार्श्विके ।

आहन्यान्मुष्टिनाऽङ्गं च स्नेहेनाभ्यज्य मर्दयेत् ॥ २८ ॥

वेदनार्तमिति स्नेहो न हि शीघ्रं निवर्तते ।

योज्यः शीघ्रं निवृत्तेऽन्यः स्नेहोऽतिष्ठन्नकार्यकृत् ॥ २९ ॥

दीप्ताग्निं त्वागतस्नेहं सायाह्ने भोजयेद्ब्रूयुः ।

निवृत्तिकालः परमस्त्रयो यामास्ततः परम् ॥ ३० ॥

अहोरात्रमुपेक्षेत, परतः फलवर्तिभिः ।

तीक्ष्णैर्वा वस्तिभिः कुर्याद्यत्नं स्नेहनिवृत्तये ॥ ३१ ॥

अतिरौक्ष्यादनागच्छन्न चेज्जाड्यादिदोषकृत् ।

उपेक्षेतैव हि ततोऽध्युषितश्च निशां पिबेत् ॥ ३२ ॥

प्रातर्नागरधान्याग्भः कोष्णं, केवलमेव वा ।

^२अन्वासयेत्तृतीयेऽह्नि पञ्चमे वा पुनश्च तम् ॥ ३३ ॥

१. उच्छ्वासस्य = वायुनोच्छ्वसनं कृत्वा,

२. अन्वासयेत् = आसु-उपवेशने इत्यस्माद् ण्यन्ताल्लिङ् । वस निवासे-इत्यस्य तु-अनुवासयेत् । अस्मिन्ग्रन्थे—अनुवासन-स्थाने प्रायः, अन्वासन-शब्दः प्रयुक्तः समानार्थत्वात् ।

यथा वा स्नेहपक्तिः स्यादतोऽत्युल्बणमारुतान् ।
 व्यायामनित्यान् दीप्ताग्नीन् रूक्षांश्च प्रतिवासरम् ॥ ३४ ॥
 'आध्मानसङ्कोचपुरीषबन्ध-क्षीणेन्द्रियत्वारुचिभङ्गशूलाः ।
 पाङ्गुल्यशाखाश्रितवातभग्न-बन्धाश्च साध्या ह्यनुवासनेन ॥'
 इति स्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये ।
 निरुहं शोधनं युञ्ज्यादस्निग्धे स्नेहेन तनोः ॥ ३५ ॥
 पञ्चमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके शुभे ।
 मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ॥ ३६ ॥
 अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम् ।
 अवेक्ष्य पुरुषं दोषभेषजादीनि चादरात् ॥ ३७ ॥
 बस्तिं प्रकल्पयेद्वैद्यस्तद्विद्यैर्बहुभिः सह ।
 क्वाथयेद्विंशतिपलं द्रव्यस्याष्टौ फलानि च ॥ ३८ ॥
 ततः क्वाथाच्चतुर्थांशं स्नेहं वाते प्रकल्पयेत् ।
 पित्ते स्वस्थे च षष्ठांशमष्टमांशं कफेऽधिके ॥ ३९ ॥
 सर्वत्र चाष्टमं भागं कल्काद्भवति वा यथा ।
 नात्यच्छसान्द्रता बस्तेः पलमान्नं गुडस्य च ॥ ४० ॥
 मधुपट्वादिशेषं च युक्त्या सर्वं तदेकतः ।
 उष्णाम्बुकुम्भीबाष्पेण तप्तं ^१खजसमाहतम् ॥ ४१ ॥
 प्रक्षिप्य बस्ता प्रणयेत्पायौ नात्युष्णशीतलम् ।
 नातिस्निग्धं न वा रूक्षं नातितीक्ष्णं न वा मृदु ॥ ४२ ॥

१. खज्यते मध्यतेऽनेनेति खजः मन्थनसाधनम्, दर्विः कम्बिः
 खजाका-चेत्यमरः । 'खज-मन्थे'न्वादिः प० । लक्षणं वक्ष्यति सू०
 २६।२३ ।

नात्यच्छसान्द्रं नोनातिमात्रं नापटु नाति च ।
 लवणं तद्वदम्लं च॥ पठन्त्यन्ये तु तद्विदः ॥ ४३ ॥
 मात्रां त्रिपलिकां कुर्यात्स्नेहमाक्षिकयोः पृथक् ।
 कर्षार्धं माणिमन्थस्य स्वस्थे कल्कपलद्वयम् ॥ ४४ ॥
 सर्वद्रवाणां शेषाणां पलानि दश कल्पयेत् ।
 माक्षिकं लवणं स्नेहं कल्कं काथमिति क्रमात् ॥ ४५ ॥
 १आवपेत निरूहाणामेष संयोजने विधिः ।
 उत्तानो दत्तमात्रे तु निरूहे तन्मना भवेत् ॥ ४६ ॥
 कृतोपधानः सञ्जातवेगश्चोत्कटकः सृजेत् ।
 २आगतौ परमः कालो मुहूर्तो मृत्यवे परम् ॥ ४७ ॥
 तत्रानुलोमिकं स्नेहस्रारमूत्राश्लकल्पितम् ।
 त्वरितं स्निग्धतीक्ष्णोष्णं बस्तिमन्थं प्रपीडयेत् ॥ ४८ ॥
 विदध्यात्फलवर्तिं वा स्वेदनोष्नासनादि च ।
 स्वयमेव निवृत्ते तु द्वितीयो बस्तिरिष्यते ॥ ४९ ॥
 तृतीयोऽपि चतुर्थोऽपि यावद्वा सुनिरूढता ।
 विरिक्तवच्च योगादीन्विद्यात्॥ योगे तु भोजयेत् ॥ ५० ॥
 कोष्णेन वारिणा स्नातं तनुधन्वरसौदनम् ।
 विकारा ये निरूढस्य भवन्ति प्रचलैर्मलैः ॥ ५१ ॥

१. आवपेत = आस्थापयेत् । डुवप् बीजसन्ताने भ्वा० उ० ।

२. आगतौ = आगमने, दत्तस्य बस्तेः प्रत्यावर्त्तनमागतिस्तस्याम्
 मुहूर्तो दण्डद्वयात्मकः कालः प्रतीक्षासमयः परमः पराऽवधिः, ततः
 परः प्राणहरः, -अतोऽन्यमनुलोमिकं बस्तिं विधत्ते-तत्रेति ।

ते सुखोष्णाम्बुसिक्तस्य यान्ति भुक्तवतः शमम् ।
 अथ वातार्दितं भूयः सद्य एवानुवासयेत् ॥ ५२ ॥
 सम्यग्घीनातियोगाश्च तस्य स्युः ^१स्नेहपीतवत् ।
 किञ्चित्कालं स्थितो यश्च सपुरीषो निवर्तते ॥ ५३ ॥
 सानुलोमानिलः स्नेहस्तस्मिद्धमनुवासनम् ।
 एकं त्रीन् वा बलासे तु स्नेहवस्तीन् प्रकल्पयेत् ॥ ५४ ॥
 पञ्च वा सप्त वा पित्ते, नवैकादश वाऽनिले ।
 पुनस्ततोऽप्ययुग्मांस्तु पुनरास्थापनं ततः ॥ ५५ ॥
 कफपित्तानिलेष्वन्नं यूषहीरसैः क्रमात् ।
 वातघ्नौषधनिष्काथत्रिवृतासैन्धवैर्युतः ॥ ५६ ॥
 बस्तिरेकोऽनिले स्निग्धः स्वाद्वम्लोष्णो रसान्वितः ।
 न्यग्रोधादिगणक्वाथ-पद्मकादिसितायुतौ ॥ ५७ ॥
 पित्ते स्वादुहिमौ साज्य-हीरेक्षुरसमाक्षिकौ ।
 आरग्वधादिनिष्काथ-वत्सकादियुतास्त्रयः ॥ ५८ ॥
 रुक्षाः सक्षौद्रगोमूत्रास्तीक्ष्णोष्णकटुकाः कफे ।
 त्रयस्ते सन्निपातेऽपि दोषान् धनन्ति यतः क्रमात् ॥ ५९ ॥
 त्रिभ्यः परं बस्तिमतो नेच्छन्त्यन्ये चिकित्सकाः ।
 न हि दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दीयेत यं प्रति ॥ ६० ॥
 उत्क्लेशनं शुद्धिकरं दोषाणां शमनं क्रमात् ।
 त्रिधैव कल्पयेद्बस्तिमित्यन्येऽपि प्रचक्षते ॥ ६१ ॥
 दोषौषधादिबलतः सर्वमेतत्प्रमाणयेत् ।

१. स्नेहपीतस्यैव, स्नेहपीतवत्, पीतस्नेहस्येवेत्यर्थः

सम्यङ्निरूढलिङ्गं तु नासम्भाष्य निवर्तयेत् ॥ ६२ ॥
 प्राक्स्नेह एकः पञ्चाऽन्ते द्वादशास्थापनानि च ।
 सान्वासनानि कर्मेवं बस्तयस्त्रिंशदीरिताः ॥ ६३ ॥
 कालः पञ्चदशैकोऽत्र प्राक् स्नेहोऽन्ते त्रयस्तथा ।
 षट् पञ्च बस्त्यन्तरिताःॐ योगोऽष्टौ बस्तयोऽत्र तु ॥ ६४ ॥
 त्रयो निरूहाः स्नेहाश्च स्नेहावाद्यन्तयोरुभौ ।
 स्नेहयस्ति निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत् ॥ ६५ ॥
 उत्क्लेशाग्निवधौ स्नेहान्निरूहान्मरुतो भयम् ।
 तस्मान्निरूढः स्नेहः स्थान्निरूढश्चानुवासितः ॥ ६६ ॥
 स्नेहशोधनयुक्त्यैवं बस्तिकर्म त्रिदोषजित् ।
 ह्रस्वया स्नेहपानस्य मात्रया योजितः समः ॥ ६७ ॥
 मात्रावस्तिः स्मृतः स्नेहःॐ शीलनीयः सदा च सः ।
 बालवृद्धाध्वभारंस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकैः ॥ ६८ ॥
 वातभग्नावलाल्पाग्निनृपेश्वरसुखारमभिः ।
 दोषघ्नो निष्परीहारो बल्यः सृष्टमलः सुखः ॥ ६९ ॥
 बस्तौ रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च ।
 द्वित्रास्थापनशुद्धेभ्यो विदध्याद्वस्तिमुत्तरम् ॥ ७० ॥
 आतुराङ्गुलमानेन तन्नेत्रं द्वादशाङ्गुलम् ।
 वृत्तं गोपुच्छवन्मूलमध्ययोः कृतकर्णिकम् ॥ ७१ ॥
 सिद्धार्थकप्रवेशाग्रं श्लक्ष्णं हेमादिसम्भवम् ।
 १कुन्दाश्वमारसुमनःपुष्पवृन्तोपमं दृढम् ॥ ७२ ॥

१. कुन्दं = माष्यम्, अश्वमारः = करवीरः, सुमनाः = जातिः
 एतेषां पुष्पवृन्तेन उपमा सादृश्यमारोहावरोहे यस्य तत् ।

तस्य बस्तिर्मृदुलघुर्मात्रा शुक्तिर्विकल्प्य वा ।
 अथ स्नाताशितस्यास्य स्नेहबस्तिविधानतः ॥ ७३ ॥
 ऋजोः सुखोपविष्टस्य पीठे जानुसमे मृदा ।
 हृष्टे मेढ्रे स्थिते चर्जौ शनैः स्रोतोविशुद्धये ॥ ७४ ॥
 सूक्ष्मां शलाकां प्रणयेत्तया शुद्धेऽनुसेवनि ।
 आमेहनान्तं नेत्रं च निष्क्रम्य गुदवत्ततः ॥ ७५ ॥
 पीडितेऽन्तर्गते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः ।
 बस्तीननेन विधिना दद्यात्त्रींश्चतुरोऽपि वा ॥ ७६ ॥
 अनुवासनवच्छेषं सर्वमेवास्य चिन्तयेत् ।
 स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गृह्णात्यपावृतेः ॥ ७७ ॥
 विदधीत तदा तस्मादनृतावपि चात्यये ।
 योनिविभ्रंशशूलेषु योनिव्यापद्यसृग्दरे ॥ ७८ ॥
 नेत्रं दशाङ्गुलं मुद्रप्रवेशं चतुरङ्गुलम् ।
 अपत्यमार्गे योज्यं स्याद् , द्वयङ्गुलं मूत्रवर्त्मनि ॥ ७९ ॥
 मूत्रकृच्छ्रविकारेषु, बालानां त्वेकमङ्गुलम् ।
 प्रकुञ्चो मध्यमा मात्रा, बालानां ^१शुक्तिरेव तु ॥ ८० ॥
 उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् सङ्कोच्य सक्थिनी ।
 ऊर्ध्वजान्वास्त्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत् ॥ ८१ ॥
 बस्तींस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयन् ।
 श्यहमेव च विश्रम्य प्रणिदध्यात्पुनस्त्यहम् ॥ ८२ ॥
 पक्षाद्विरेको वमिते ततः पक्षाग्निरूहणम् ।
 सद्यो निरूढश्चान्वास्यः सप्तरात्राद्विरेचितः ॥ ८३ ॥

१. शुक्तिः = द्वे सुवर्णे पलाङ्गं स्याच्छुक्तिरष्टमिका च सा । च० ।

यथा कुसुम्भादियुतात्तोयाद्रागं हरेत्पटः ।

तथा द्रवीकृताद्देहाद्धस्तिर्निर्हरते मलान् ॥ ८४ ॥

शाखागताः कोष्ठगताश्च रोगा

मर्मोर्ध्वसर्वावयवाङ्गजाश्च ।

ये सन्ति तेषां न तु कश्चिदन्यो

वायोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥ ८५ ॥

विट्श्लेष्मपित्तादिमलोच्चयानां

विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।

तस्यातिवृद्धस्य शमाय नान्य-

द्वस्तेर्विना भेषजमस्ति किञ्चित् ॥ ८६ ॥

^१तस्माच्चिकित्सार्धं इति प्रदिष्टः

कृत्स्ना चिकित्साऽपि च बस्तिरेकैः ।

तथा ^२निजागन्तुविकारकारि-

रक्तौषधत्वेन सिराव्यधोऽपि ॥ ८७ ॥

इति सूत्रस्थाने-एकोनविंशोऽध्यायः ।



१. 'तस्माच्चिकित्सार्धमिति ब्रुवन्ति, सर्वा चिकित्सामपि बस्ति-
मेके' इति चरके द्वितीयान्तं चिकित्सार्धमिति-ब्रुवन्तीत्यस्य कर्मत्वात्,
चिकित्साया अर्द्धः चिकित्सार्द्धः, विषमांशवाव्यर्द्धशब्दः पुमान्-अतः
षष्ठीसमासः । वस्तिकर्मणो वातरोगहरत्वम् । वातरोगाः ८०, पित्तक-
फात्मकाः ६०, अतोऽत्र विषमांशता, अतएव-अर्द्धं नपुंसकमिति न
समासः । २. निजागन्तु-विकारान्, करोति तच्छीलं यद्रक्तं तस्यौ-
षधत्वेन = प्रतीकारकत्वेन सिराव्यधोऽपि रक्तमोचनमपि-चिकि-
त्सार्द्ध-इति प्रदिष्ट-इत्यन्वयः ।

विंशोऽध्यायः ।

अथातो ^१नस्यविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

^२‘ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु विशेषान्नस्यमिष्यते ।

नासा हि शिरसो द्वारं तेन तद्व्याप्य हन्ति तान् ॥ १ ॥

विरेचनं बृंहणं च शमनं च त्रिधाऽपि तत् ।

(मर्शध्मानाऽवपीडाख्यैस्तत्पुनः षड्विधं स्मृतम् ।)

विरेचनं शिरःशूलजाड्यस्यन्दगलामये ॥ २ ॥

शोफगण्डकृमिग्रन्थिकुष्ठापस्मारपीनसे ।

(‘स्नेहेन तीक्ष्णैः सिद्धेन कल्ककाथादिभिश्च तत् ।,)

बृंहणं वातजे शूले सूर्यावर्ते स्वरक्षये ॥ ३ ॥

नासास्यशोषे वाक्सङ्गे कृच्छ्रबोधेऽवबाहुके ।

शमनं नीलिकान्यङ्गकेशदोषाक्षिराजिषु ॥ ४ ॥

यानीहोक्तानि कर्माणि विसर्पाणां निवृत्तये । एकतस्तानि सर्वाणि
रक्तमोक्षणमेकतः । च० वि० २१।१४। इति० एकोनविंशोऽध्यायः ।

१. नासिकायै द्वितं नस्यम् नसादेशः ‘पद्मने’ति सूत्रेण । पूर्वा-
परीभावः संबन्ध अध्याययोः ।

२. जत्रु = वक्षोऽसयोः सन्धिः । ‘स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री,
सन्धी तस्यैव जत्रुर्णी, अमरः । जत्रुण ऊर्ध्वमूर्ध्वजत्रु = उत्तमाङ्गम्,
राजदन्तादिः, शालाक्यतन्त्रोक्तरोगाऽधिष्ठानम् तत्र तस्य वा ये
विकारास्तेषु ‘वमनविरेचनादय-इत्यन्त एव, नस्यं = नावनादिकं
नस्तःकर्म तु-विशेषादिष्यते = इष्यतेराम् ।

यथास्वं यौगिकः स्नेहैर्यथास्वं च प्रसाधितैः ।
 कल्ककाथादिभिश्चाद्यं मधुपट्वासवैरपि ॥ ५ ॥
 बृंहणं धन्वमांसोत्थरसासृक्खपुर्रैरपि ।
 शमनं योजयेत्पूर्वैः क्षीरेण सलिलेन वा ॥ ६ ॥
 मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्विधा स्नेहोऽत्र मात्रया ।
 कल्काद्यैरवपीडस्तु स तीक्ष्णैर्मूर्ध्निरेचनः ॥ ७ ॥
 ध्मानं विरेचनश्चूर्णोऽयुञ्ज्यात्तं मुखवायुना ।
 षडङ्गुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया ॥ ८ ॥
 स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ।
 प्रदेशिन्यङ्गुलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात् ॥ ९ ॥
 यावत्पतत्यसौ बिन्दुर्दशाष्टौ षट् क्रमेण ते ।
 मर्शस्योत्कृष्टमध्योना मात्रास्ता एव च क्रमात् ॥ १० ॥
 बिन्दुद्वयोनाः कल्कादेः योजयेन्न तु नावनम् ।
 तोयमद्यगरस्नेह-पीतानां पातुमिच्छताम् ॥ ११ ॥
 भुक्तभक्तशिरःस्नात-स्नातुकामस्तुतासृजाम् ।
 नवपीनसवेगार्त-सूतिकाश्वासकासिनाम् ॥ १२ ॥
 शुद्धानां दत्तबस्तीनां तथाऽनार्तवदुर्दिने ।
 अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेः यथ नस्यं प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥
 प्रातः श्लेष्मणि, मध्याह्ने पित्ते, सायन्निशोश्चले,
 स्वस्थवृत्ते तु पूर्वाह्ने शरत्कालवसन्तयोः ॥ १४ ॥
 शीते मध्यन्दिने, ग्रीष्मे सायं वर्षासु सातपे ।
 वाताभिभूते शिरसि हिध्मायामपतानके ॥ १५ ॥

१. चलं = वातरोगे-सायमपराह्णे रात्रौ च नस्यं ग्रहीतव्यम् ।

मन्यास्तम्भे स्वरभ्रंशे सायंप्रातर्दिने दिने ।
 एकाहान्तरमन्यत्र ॐसप्ताहं च तदाचरेत् ॥ १६ ॥
 स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य प्राक्कृतावश्यकस्य च ।
 निवातशयनस्थस्य जत्रूर्ध्वं स्वेदयेत् पुनः ॥ १७ ॥
 अथोत्तानर्जुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।
 किञ्चिदुन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ १८ ॥
 नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् ।
 उष्णाम्बुतप्तं भैषज्यं प्रणाढ्या पिचुनाऽथवा ॥ १९ ॥
 दत्ते पादतलस्कन्ध-हस्तकर्णादि मर्दयेत् ।
 शनैरुच्छिद्य निष्ठीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः ॥ २० ॥
 आभेषजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।
 मूर्च्छायां शीततोयेन सिञ्चेत्परिहरन् शिरः ॥ २१ ॥
 स्नेहं विरेचनस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ।
 नस्यान्ते वाक्शतं तिष्ठेदुत्तानः ॐधारयेत्ततः ॥ २२ ॥
 धूमं पीत्वा ^१कवोष्णाम्बुकवलान् कण्ठशुद्धये ।
 सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षपाटवम् ॥ २३ ॥
 रुक्षेऽक्षिस्तब्धता शोषो नासास्ये मूर्धश्शून्यता ।
 स्निग्धेऽति कण्ठगुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २४ ॥
 सुविरिक्तेऽक्षिलघुतावक्रस्वरविशुद्धयः ।
 दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः, क्षामताऽतिविरेचिते ॥ २५ ॥
 'प्रतिमर्शः' क्षतक्षामबालवृद्धसुखात्मसु ।

१. कवोष्णाम्बुनः = मन्दोष्णजलस्य कवलान् गण्डूषाऽर्जान् ।

प्रयोज्योऽकालवर्षेऽपिॐ न त्विष्टो दुष्टपीनसे ॥ २६ ॥

१ मद्यपीतेऽबलश्रोत्रे कृमिदूषितमूर्धनि ।

उत्कृष्टोत्कृष्टदोषे च, हीनमात्रतया हि सः ॥ २७ ॥

निशाहर्भुक्तवान्ताहःस्वप्नाध्वश्रमरेतसाम् ।

शिरोभ्यञ्जनगण्डूष-प्रस्त्रावाञ्जनवर्चसाम् ॥ २८ ॥

दन्तकाष्ठस्य हासस्य योज्योऽन्तेऽसौ द्विविन्दुकः ।

पञ्चसु स्रोतसां शुद्धिः, क्लम-नाशस्त्रिषु क्रमात् ॥ २९ ॥

दृग्वलं पञ्चसु, ततो दन्तदार्यं मरुच्छमः ।

न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे ॥ ३० ॥

न चोनाष्टादशे धूमः, कवलो नोनपञ्चमे ।

न शुद्धिरूनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततौ ॥ ३१ ॥

आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु बस्तिवत् ।

मर्शवच्च गुणान् कुर्यात्स हि नित्योपसेवनात् ॥ ३२ ॥

न चात्र यन्त्रणा नापि व्यापद्भयो मर्शवद्भयम् ।

तैलमेव च नस्यार्थं नित्याभ्यासेन शस्यते ॥ ३३ ॥

शिरसः श्लेष्मधामत्वात्स्नेहाः स्वस्थस्य नेतरे ।

आशुकृच्चिरकारित्वं गुणोत्कर्षापकृष्टता ॥ ३४ ॥

मर्शं च प्रतिमर्शं च विशेषो न भवेद्यदि ।

को मर्शं सपरीहारं सापदं च भजेत्ततः ॥ ३५ ॥

२ अच्छपान-विचाराख्यौ कुटीवातातपस्थितौ ।

१. पीतं मद्यं येन तस्मिन् ।

२. यथा मर्शं—प्रतिमर्शौ आशुकारित्वचिरकारित्वादि-गुण-विशिष्टौ, तथैव-अच्छस्नेहपान-विचारणाख्यस्नेहोपयोगौ; कुटीप्रावे-

अन्वासमात्राबस्ती च तद्वदेव विनिर्दिशेत् ॥ ३६ ॥

(पटोलमुद्रवार्ताक-ह्रस्वमूलकजाङ्गलैः ।

रसैः शालियवानद्यान्नस्यकर्मणि षड्विधे ॥

उच्चैर्भाषणमायासमजीर्णासाख्यभोजनम् ।

दत्तनस्यो नरः क्रोधं यानादींश्च विवर्जयेत् ॥)

अणुतैलमाह—

‘जीवन्तीजलदेवदारुजलद-त्वक्सेव्यगोपीहिमं-

दार्वात्वङ्माधुकप्लवागुरुवरीपुण्ड्राह्वित्वोत्पलम् ।

धावन्यौ सुरभिं स्थिरे कृमिहरं पत्रं त्रुटिं रेणुकां

किञ्जल्कं कमलाद्वलां शतगुणे दिव्येऽम्भसि क्वाथयेत् ॥ ३७ ॥

तैलाद्रसं दशगुणं परिशेष्य तेन

तैलं पचेत् सलिलेन दशैव वारान् ।

पाके क्षिपेच्च दशमे सममाजदुग्धं

नस्यं महागुणमुशन्यणुतैलमेतत् ॥ ३८ ॥

^१घनोन्नतप्रसन्नत्वक्स्कन्धग्रीवास्यवक्षसः ।

हृदेन्द्रियास्तपलिता भवेयुर्नस्यशीलिनः ॥ ३९ ॥

इति सूत्रस्थाने विंशोऽध्यायः ।

शिक-वातातपिकाख्यौ कल्पौ, अनुवासन-मात्रा बस्ती च-आशु-
कारित्व-चिरकारित्वादि-विशिष्टौ विनिर्दिशेत् ।

१. अध्यायार्थ—परिशीलनफलमुपसंहरति—घनोन्नतैत्यादिना ।

इति विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातो ^१धूमपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘जग्रूध्वकफवातोत्थविकाराणामजन्मने ।

उच्छेदाय च जातानां पिबेद्धूमं सदाऽऽत्मवान् ॥ १ ॥

स्निग्धो मध्यः स तीक्ष्णश्च वाते वातकफे कफे ।

योज्यः न रक्तपित्तार्तिविरिक्तोदरमेहिषु ॥ २ ॥

तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहिणीदत्तबस्तिषु ।

मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषाशिषु ॥ ३ ॥

शिरस्यभिहते पाण्डुरोगे जागरिते निशि ।

रक्तपित्तान्ध्यबाधिर्यतृणमूर्च्छामदमोहकृत् ॥ ४ ॥

धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्हितः ।

क्षुतजृम्भितविण्मूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम् ॥ ५ ॥

हासस्य दन्तकाष्ठस्य धूममन्ते पिबेन्मृदुम् ।

कालेष्वेषु निशाहारनावनान्ते च मध्यमम् ॥ ६ ॥

निद्रानस्याञ्जनस्नानच्छर्दितान्ते विरेचनम् ।

बस्तिनेग्रसमद्रव्यं त्रिकोशं कारयेद्दजु ॥ ७ ॥

मूलाग्रेऽङ्गुष्ठकोलास्थिप्रवेशं धूमनेत्रकम् ।

तीक्ष्णस्नेहनमध्येषु त्रीणि चत्वारि पञ्च च ॥ ८ ॥

अङ्गुलानां क्रमात्पातुः प्रमाणेनाष्टकानि तत् ।

ऋजूपविष्टस्तच्चेता विवृतास्यस्त्रिपर्ययम् ॥ ९ ॥

१. धूमपानविधिश्चरके स्वस्थवृत्ते, अत्र तु-ऊर्ध्वान्नप्रसङ्गादाह ।

पिधाय च्छिद्रमेकैकं धूमं नासिकया पिबेत् ।
 प्राक् पिबेन्नासयोत्किलष्टे दोषे घ्राणशिरोगते ॥ १० ॥
 उत्क्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कण्ठगे ।
 मुखेनैवोद्वेदधूमंॐ नासया दृग्विघातकृत् ॥ ११ ॥
 आक्षेपमोक्षैः पातव्यो^१ धूमस्तु त्रिखिभिखिभिः ।
 अह्नः पिबेत्सकृत् स्निग्धं, द्विर्मध्यं, शोधनं परम् ॥ १२ ॥
 त्रिश्रुतुर्वाॐ मृदौ तत्र द्रव्याप्यगुरुगुगुलु ।
 मुस्तस्थौणेयक्षैलेय-नलदोशीरवालकम् ॥ १३ ॥
 वराङ्गकौन्तीमधुकबिल्वमज्जैलवालुकम् ।
 श्रीवेष्टकं सर्जरसो ध्यामकं मदनं प्लवम् ॥ १४ ॥
 शल्लकी कुङ्कुमं माषा यवाः कुन्दुरुकस्तिलाः ।
 स्नेहः फलानां साराणां मेदो मज्जा वसा घृतम् ॥ १५ ॥
 शमने शल्लकी लाक्षा पृथ्वीका कमलोत्पलम् ।
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षरोध्रत्वचः सिता ॥ १६ ॥
 यष्टीमधु सुवर्णत्वक् पद्मकं रक्तयष्टिका ।
 गन्धाश्चाकुष्ठतगराःॐ तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा ॥ १७ ॥
 दशमूलमनोह्मालं लाक्षा श्वेता फलत्रयम् ।

१. धूमस्तु-त्रिभिः त्रिभिः, आक्षेप-मोक्षैरुपलक्षितः, त्रिः =
 वारत्रयं पातव्यः । प्रथमं त्रिमिराक्षेपमोक्षैः पीत्वा 'विश्रामः'
 कर्त्तव्यः, ततो द्वितीयावृत्तौ त्रीन् आक्षेपमोक्षान् पीत्वा विश्रामः,
 ततस्तृतीयाऽऽवृत्तौ त्रय आक्षेपमोक्षाः । एवं नव । विश्रम एव
 'विश्रामः' ।

गन्धद्रव्याणि तीक्ष्णानि गणो मूर्धविरेचनः ॥ १८ ॥
 जले स्थितामहोरात्रमिषीकां द्वादशाङ्गुलाम् ।
 पिष्टैर्धूमौषधैरेवं पञ्चकृत्वः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥
 वर्तिरङ्गुष्ठकस्थूला यवमध्या यथा भवेत् ।
 छायाशुष्कां विगर्भो तां स्नेहाभ्यक्तां यथायथम् ॥ २० ॥
^१धूमनेत्रार्पितां पातुमग्निप्लुष्टां प्रयोजयेत् ।
^२शरावसम्पुटच्छिद्रे नार्डी न्यस्य दशाङ्गुलाम् ॥ २१ ॥
 अष्टाङ्गुलां वा वक्रेण कासवान् धूममापिबेत् ॥ २१½ ॥
 कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्वं ।
 पूतिर्गन्धः पाण्डुता केशदोषाः ॥ २२ ॥
 कर्णास्याक्षिस्त्रावकण्ड्वर्तिजाड्यं
 तन्द्रां ^३हिध्मां धूमपं न स्पृशन्ति ॥ २२½ ॥
 ('हृत्कण्ठेन्द्रियसंशुद्धिर्लाघवं शिरसः शमः ।
 यथेरितानां दोषाणां सम्यक्पीतस्य लक्षणम् ॥')
 इति सूत्रस्थाने-एकविंशोऽध्यायः ।

१. धूमनेत्रं धूमपान-नलिका ।

२. शरावसम्पुटो मृत्तिकानिर्मितं धूमपानपात्रम् ।

३. हि इति अव्यक्तं ध्वनिं धमति शब्दायते-इति विग्रहे धमा-
 धातोः, विचि हिध्माशब्दो विश्वपावत् । आतोऽनुपसर्गे क इति
 कप्रत्यये टापि रमावत् धमा शब्दाभिसंयोगयोः भ्वा० प० पाप्माध्मा...
 पिब-जिघ्र-धम...इत्यादिना धमादेशे धमति, शपि । धूमं पिबति;
 कप्रत्ययः, धूमपः । शालिनी । इति—एकविंशोऽध्यायः ।

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातो ^१गण्डूषादिविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयोऽमहर्षयः ।

‘चतुष्प्रकारो गण्डूषः स्निग्धः शमनशोधनौ ।

रोपणश्च॥ त्रयस्तत्र त्रिषु योज्याश्चलादिषु ॥ १ ॥

अन्त्यो व्रणघ्नः॥ स्निग्धोऽत्र स्वाद्वम्लपटुसाधितैः ।

स्नेहैः॥संशमनस्तिक्तकषायमधुरौषधैः ॥ २ ॥

शोधनस्तिक्तकट्वम्लपटूष्णैः॥ रोपणः पुनः ।

कषायतिक्तकैः॥ तत्र स्नेहः क्षीरं मधूदकम् ॥ ३ ॥

शुक्तं मद्यं रसो मूत्रं धान्याम्लं च यथायथम् ।

कल्कैर्युक्तं विपक्वं वा यथास्पर्शं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दन्तहर्षे दन्तचाले मुखरोगे च वातिके ।

सुखोष्णमथवा शीतं तिलकल्कोदकं हितम् ॥ ५ ॥

गण्डूषधारणे॥नित्यं तैलं मांसरसोऽथवा ।

ऊषादाहान्विते पाके हृते चागन्तुसम्भवे ॥ ६ ॥

विषे क्षाराम्लिदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा ।

वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखव्रणान् ॥ ७ ॥

दाह-तृष्णा-प्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ।

धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ ८ ॥

तदेवालवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ।

१. ‘गण्डूषो मुखपूरणः’ । अ० । आदिना-‘कवल-’ प्रतिसारण-
मुखालेपमूर्द्धतैलानि ।

आशु क्षाराम्बुगण्डूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ॥ ९ ॥

मुखोष्णोदकगण्डूषैर्जायते वक्रलाघवम् ।

निवाते सातपे स्विन्नमृदितस्कन्धकन्धरः ॥ १० ॥

गण्डूषमपिबन् किञ्चिदुन्नतास्यो विधारयेत् ।

कफपूर्णस्यता यावत्स्त्रवद्घ्राणाक्षताऽथवा ॥ ११ ॥

असञ्चार्यो^१ मुखे पूर्णे गण्डूषः, 'कवलो'^२ऽन्यथा ।

मन्या-शिरः-कर्ण-मुखाऽक्षिरोगाः

प्रसेक-कण्ठाऽऽमय-वक्त्र-शोषाः ।

हृत्क्ष्मास-तन्द्राऽरुचि-पीनसाश्च

साध्या विशेषात्कवलग्रहेण ॥ १२ ॥

कल्को रसक्रिया चूर्णस्त्रिविधं प्रतिसारणम् ॥ १३ ॥

युञ्ज्यात्तत् कफरोगेषु गण्डूषविहितौषधैः ।

'म्याधेरपचयः पुष्टिवैशद्यं वक्रलाघवम् ।

इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ॥

हीनाज्जाड्यकफोत्क्लेशावरसज्ञानमेव च ।

अतियोगान्मुखे पाकः शोषतृष्णारुचिकृमाः^३ ॥'

'मुखालेप' स्त्रिधा दोषविषहा वर्णकृच्छ्रः सः १४ ॥

उष्णो वातकफे शस्तः, शेषेष्वत्यर्थशीतलः ।

त्रिप्रमाणश्चतुर्भागत्रिभागार्धाङ्गुलोन्नतिः ॥ १५ ॥

१. मुखे पूर्णे सति सञ्चारयितुमशक्यो 'गण्डूष-' इत्युच्यते
सञ्चारयितुं शक्यः 'कवल'-इत्युच्यते ।

२. अङ्गरहिताः दलोकाः सर्वत्र 'क्षेपकाः' ।

अशुष्कस्य स्थितिस्तस्य, शुष्को दूषयति^१च्छविम् ।

^२तमार्द्रयित्वाऽपनयेत्तदन्तेऽभ्यङ्गमाचरेत् ॥ १६ ॥

विवर्जयेद्दिवास्वप्नभाष्याग्न्यातपशुक्क्रुधः ।

न योज्यः पीनसेऽजीर्णे दत्तनस्ये हनुग्रहे ॥ १७ ॥

अरोचके जागरितेऽस्य तु हन्ति सुयोजितः ।

अकालपलितव्यङ्गचलीतिमिरनीलिकाः ॥ १८ ॥

ऋतुभेदेन मुखालेपानाह—

कोलमज्जा वृषान्मूलं शाबरं गौरसर्षपाः ।

सिंहीमूलं तिलाः कृष्णा दार्वीत्वङ्निस्तुषा यवाः ॥ १९ ॥

दर्भमूलहिमोशीरशिरीषमिशितण्डुलाः ।

कुमुदोत्पलकह्लारदूर्वामधुकचन्दनम् ॥ २० ॥

कालीयक-तिलोशीरमांसीतगरपद्मकम् ।

तालीसगुन्द्रापुण्ड्राह्वयष्टीकाशनतागुरु ॥ २१ ॥

^३इत्यर्धाधोदिता लेपा हेमन्तादिषु षट् स्मृताः ।

मुखालेपनशीलानां दृढं भवति दर्शनम् ॥ २२ ॥

वदनं चापरिम्लानं श्लक्ष्णं तामरसोपमम् ।

अभ्यङ्गसेकपिचवो बस्तिश्चेति चतुर्विधम् ॥ २३ ॥

मूर्धत्तलम् बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरोत्तरम् ।

तत्राभ्यङ्गः प्रयोक्तव्यो रौक्ष्यकण्डूमलादिषु ॥ २४ ॥

१. छविं त्वचम् । २. तं शुष्कं मुखालेपम् ।

३. अर्धे-अर्धे पद्ये-उदिताः कथिताः अर्धाधोदिताः । वीप्सायां
द्वित्वम् ।

अरुंषिकाशिरस्तोददाहपाकव्रणेषु तु ।
 परिषेकःॐपिचुः केशशातस्फुटनधूपने ॥ २५ ॥
 नेत्रस्तम्भे चॐवस्तिस्तु प्रसुप्त्यर्दितजागरे ।
 नासास्यशोषे तिमिरे शिरोरोगे च दारुणे ॥ २६ ॥
 'विधिस्तस्य'^१ निषण्णस्य पीठे जानुसमे मृदौः ।
 शुद्धाक्त-स्विन्न-देहस्य दिनान्ते गव्यमाहिषम् ॥ २७ ॥
 द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं ^२शिरःसमम् ।
 आकर्णबन्धनस्थानं ललाटे वस्त्रवेष्टिते ॥ २८ ॥
 चलवेणिकया बद्ध्वा ^३माषकल्केन लेपयेत् ।
 ततो यथाव्याधि शृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत् ॥ २९ ॥
 ऊर्ध्वं केशभुवो यावदङ्गुलम्ॐधारयेच्च तम् ।
 आवक्रनासिकोत्क्लेदाद्वशाष्टौ षट् ^४चलादिषु ॥ ३० ॥
 मात्रासहस्राण्यरुजे^५ त्वेकंॐ स्कन्धादि मर्दयेत् ।
 मुक्तस्नेहस्यॐ परमं सप्ताहं तस्य सेवनम् ॥ ३१ ॥
 धारयेत्पूरणं कर्णे कर्णमूलं विमर्दयन् ।
 रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदने ॥ ३२ ॥

१. तस्य = शिरोवस्तेः ।

२. शिरःसमं दैर्घ्ये प्रायः सप्ताहस्तपरिमितम् भवति ।

३. माषकल्केन तथा लेपयेद् यथा शिरसि तैलं तिष्ठेत् ।

४. चलादिषु वात-पित्त-कफेषु क्रमशः दशसहस्रनिमेष-अष्ट-सहस्रनिमेष-षट्सहस्रनिमेष-पर्यन्तञ्चेत्यर्थः । मात्रा = निमेषात्मकः कालः । ५. अरुजे तु—स्वस्थे तु—स्वास्थ्यरक्षार्थमेकसहस्रनिमेष-पर्यन्तं धारयेत् ।

मात्राप्रमाणमाह—

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमण्डलम् ।

निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता ॥ ३३ ॥

^१कचसदनसितत्वपिञ्जरत्वं

परिफुटनं शिरसः समीररोगान् ।

जयति, जनयतीन्द्रियप्रसादं

स्वरहनुमूर्धबलं च मूर्धतैलम् ॥ ३४ ॥

इति सूत्रस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ।



त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथात ^२आश्रोतनाञ्जनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्रोतनं हितम् ।

रक्तोदकण्डूघर्षाश्रु-दाहरागनिवर्हणम् ॥ १ ॥

^३उष्णं पाते, कफे कोष्णं, तच्छीतं रक्तपित्तयोः ।

निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम् ॥ २ ॥

१. शिरसि तैलधारणगुणानाह-कचेत्यादिना । पुष्पिताग्रा ।

इति द्वाविंशोऽध्यायः ।

२. आश्च्योतनमासेचनम्, (श्चु) श्च्युतिर्-आसेचने स्वा०
नपुंसके भावे ल्युट् अनादेशः । ‘आश्च्योतनन्तु हरिचन्दन-पल्ल-
वानाम्’ इतिभवभूतिप्रयोगः ।

३. उष्णं तावदेव, यावत्सङ्गते नेत्रे, वक्ष्यति-अत्युष्णमित्यादि ।

शुक्तौ प्रलम्बयाऽन्येन पिचुवर्त्या कनीनिके ।
 दश द्वादश वा बिन्दून् द्व्यङ्गुलादवसेचयेत् ॥ ३ ॥
 ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन, कफवातयोः ।
 अन्येन कोष्णपानीय-प्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥ ४ ॥
 अत्युष्णतीक्ष्णं ^१रुग्नागदृङ्नाशयाक्षिसेचनम् ।
 अतिशीतं तु कुरुते निस्तोद-स्तम्भ-वेदनाः ॥ ५ ॥
 कषायवर्त्मतां घर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु ।
 विकारवृद्धिमत्यल्पं संरम्भमपरिस्तुतम् ॥ ६ ॥
 गत्वा सन्धिशिरोघ्राणमुखस्रोतांसि भेषजम् ।
 ऊर्ध्वगान्धयने न्यस्तमपवर्तयते मलान् ॥ ७ ॥

अञ्जनधारणमाह—

अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले ।
 पक्कलिङ्गेऽल्पशोफातिकण्डूपैच्छिल्यलक्षिते ॥ ८ ॥
 मन्दघर्षाश्रुरागेऽक्षिण प्रयोज्यं घनदूषिके ।
 आर्ते पित्तकफासृग्भिर्मारुतेन विशेषतः ॥ ९ ॥
 लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा ।
 अञ्जनम् लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः ॥ १० ॥
 रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः स्वादुशीतैः प्रसादनम् ।
 तीक्ष्णाञ्जनाभिसन्तप्ते नयने तत्प्रसादनम् ॥ ११ ॥
 प्रयुज्यमानं लभते प्रत्यञ्जनसमाह्वयम् ।
 दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ^२ ॥ १२ ॥

१. रुजे, रागाय, नेत्र-नाशाय, चेत्यर्थः ।

२. मुकुलाकारे-आनने कोटी यस्याः सा मुकुलानना ।

प्रशस्ता, लेखने तान्त्री, रोपणे काललोहजा ।
 अङ्गुली च, सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥ १३ ॥
 (पिण्डस्य तीक्ष्णद्रव्यस्य मृदुद्रव्यकृतस्य च ।
 हरेणुमात्रं द्विगुणं प्रमाणं कथयन्त्यपि ॥
 रसक्रियायामप्येवं विडङ्गफलमात्रकम् ।
 शलाकां द्विगुणां तीक्ष्णे चूर्णे च त्रिगुणां मृदौ ॥)
 पिण्डो, रसक्रिया, चूर्ण, स्निग्धैवाञ्जनकरूपना ।
 गुरौ मध्ये लघौ दोषे ताः क्रमेण प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥
 हरेणुमात्रा पिण्डस्य वेक्षमात्रा रसक्रिया ।
 तीक्ष्णस्य, द्विगुणं नस्यं मृदुनः॥चूर्णितस्य च ॥ १५ ॥
 द्वे शलाके तु तीक्ष्णस्य, तिस्रस्तदितरस्य च ।
 निशि स्वप्ने न मध्याह्ने म्लःने नोष्णगभस्तिभिः ॥ १६ ॥
 अक्षिरोगाय दोषाः स्युर्वर्धितोत्पीडितद्रुताः ।
 प्रातः सायं च तच्छान्त्यं व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा ॥ १७ ॥
 वदन्त्यन्ये तु न दिवा प्रयोज्यं तीक्ष्णमञ्जनम् ।
 विरेकदुर्बलं चक्षुरादित्यं प्राप्य सीदति ॥ १८ ॥
 स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सौम्यत्वेन च तर्पिता ।
 शीतसात्म्या दृगाग्नेयी स्थिरतां लभते पुनः ॥ १९ ॥
 अत्युद्रिक्ते बलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे ।
 काममह्वथपि नात्युष्णे तीक्ष्णमक्षिणं प्रयोजयेत् ॥ २० ॥
 अश्मनो जन्म लोहस्य तत एव च तीक्ष्णता ।
 उपघातोऽपि तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः ॥ २१ ॥
 न रात्रावपि शीतेऽति नेत्रे तीक्ष्णाञ्जनं हितम् ।

दोषमस्त्रावयत्स्तम्भ-कण्डूजाड्यादिकारि तत्^१ ॥ २२ ॥
 नाञ्जयेद्भीतवमित-विरिक्ताशितवेगिते ।
 क्रुद्धज्वरिततान्ताक्षि-शिरोरुक्शोकजागरे ॥ २३ ॥
 अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः ।
 अजीर्णेऽन्यकंसन्तप्ते दिवासुप्ते पिपासिते ॥ २४ ॥
 अतितीक्ष्णमृदुस्तोक-बह्वृच्छ-घन-कर्कशम् ।
 अत्यर्थशीतलं तप्तमञ्जनं नावचारयेत् ॥ २५ ॥
 अथानुन्मीलयन् दृष्टिमन्तः सञ्चारयेच्छनैः ।
 अञ्जिते वर्त्मनी किञ्चिच्चालयेच्चैवमञ्जनम् ॥ २६ ॥
 तीक्ष्णं व्याप्नोति सहसा, न चोन्मेषनिमेषणम् ।
 निष्पीडनं च वर्त्मभ्यां क्षालनं वा समाचरेत् ॥ २७ ॥
 अपेतौषधसंरम्भं निर्वृतं नयनं यदा ।
 व्याधिदोषर्तुयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा ॥ २८ ॥
 दक्षिणाङ्गुष्ठकेनाक्षि ततो वामं सवाससा ।
 ऊर्ध्ववर्त्मनि सङ्गृह्य शोध्यं वामेन चेतरेत् ॥ २९ ॥
 वर्त्मप्राप्ताऽञ्जनादोषो रोगान् कुर्यादतोऽन्यथा ।
 कण्डूजाड्येऽञ्जनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत् पुनः ॥ ३० ॥
 तीक्ष्णाञ्जनाभितप्तं तु चूर्णं प्रत्यञ्जनं हितम् ॥ ३१ ॥
 इति सूत्रस्थाने त्रयोविंशोऽध्यायः ।

१. तत् = अतितोऽङ्गमञ्जनं, दोषम्-अस्त्रावयत् सत् स्तम्भ-
 कण्डू-जाड्यादिकारि स्यान्न तु शमकारि-इत्यन्वयः । इति त्रयोविंशः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातस्तर्पणपुटपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
'नयने ताम्यति स्तब्धे शुष्के रूक्षेऽभिघातिते ।
घातपित्तातुरे जिह्वे शीर्णपक्ष्माविलेक्षणे ॥ १ ॥
कृच्छ्रोन्मीलसिराहर्षसिरोत्पाततमोऽर्जुनैः ।
स्यन्दमन्थान्यतोवातवातपर्यायशुक्रकैः ॥ २ ॥
आतुरे शान्तरागाशु-शूलसंरम्भदूषिके ।
निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः ॥ ३ ॥
काले साधारणे प्रातः सायं वोत्तानशायिनः ।
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोशाद्वहिः समाम् ॥ ४ ॥
द्वयङ्गुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत् ।
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्ताम्बुप्रविलायितम् ॥ ५ ॥
नक्तान्ध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिके वसाम् ।
आपक्ष्माग्राद् अथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वतः ॥ ६ ॥
मात्रा विगुणयेत्तत्र वर्त्मसन्धिसितासिते ।
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पञ्च च ॥ ७ ॥
शतानि सप्त चाष्टौ च, दश मन्थे, दशानिले ।
पित्ते षट्, स्वस्थवृत्ते च बलासे पञ्च धारयेत् ॥ ८ ॥
कृत्वाऽपाङ्गे ततो द्वारं स्नेहं पात्रे निगालयेत् ।
पिबेच्च धूमं, नेक्षेत व्योम रूपं च भास्वरम् ॥ ९ ॥
इत्थं प्रतिदिनं वायौ, पित्ते त्वेकान्तरं, कफे ।

स्वस्थे च द्वयन्तरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् ॥ १० ॥

नेत्रतृप्तिक्षणमाह—

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम् ।

तृप्ते, विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः ॥ ११ ॥

स्नेहपीता तनुरिव कलान्ता दृष्टिर्हि सीदति ।

तर्पणानन्तरं तस्माद् दृग्बलाधानकारिणम्^१ ॥ १२ ॥

पुटपाकं प्रयुञ्जीत पूर्वोक्तेष्वेव यक्ष्मसु ।

स वाते स्नेहनः, श्लेष्मसहिते लेखनो हितः ॥ १३ ॥

दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः ।

भूशयप्रसहानूप-मेदोमज्जवसामिषैः ॥ १४ ॥

स्नेहनं पयसा पिष्टैर्जीवनीयैश्च कल्पयेत् ।

मृगपक्षियकृन्मांस-मुक्तायस्ताम्रसैन्धवैः ॥ १५ ॥

स्रोतोजशङ्खफेनैर्लेखनं मस्तुकल्कितैः ।

मृगपक्षियकृन्मज्ज-वसान्त्रहृदयामिषैः ॥ १६ ॥

मधुरैः सघृतैः स्तन्यक्षीरपिष्टैः प्रसादनम् ।

बिल्वमात्रं पृथक् पिण्डं मांसभेषजकल्कयोः ॥ १७ ॥

उरूबूकवटाम्भोजपत्रैः स्नेहादिषु क्रमात् ।

वेष्टयित्वा मृदा लिप्तं धवधन्वनगोमयैः ॥ १८ ॥

पचेष्वदीप्तैरग्न्याभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम् ।

नेत्रे तर्पणवद्युञ्ज्यात् ॥ शतं द्वे त्रीणि धारयेत् ॥ १९ ॥

१. हेतुगर्भं विशेषणम्, यस्माद् दृग्बलाधानकारी पुटकस्तस्मात्तं प्रयुञ्जीत ।

लेखस्नेहनान्त्येषु० कोष्णौ पूर्वौ, हिमोऽपरः ।
 धूमपोऽन्ते तयोरेव योगास्तत्र च तृप्तिवत् ॥ २० ॥
 तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हं न योजयेत् ।
 यावन्त्यहानि युञ्जीत द्विस्ततो हितभाग्भवेत् ॥ २१ ॥
 मालतीमल्लिकापुष्पैर्बद्धाक्षो निवशेन्निशाम् ॥ २२ ॥
 सर्वात्मना नेत्रबलाय यत्नं
 कुर्वीत नस्याञ्जनतर्पणाद्यैः ।
^१दृष्टिश्च नष्टा विविधं जगच्च
 तमोमयं जायत एकरूपम् ॥ २३ ॥
 इति सूत्रस्थाने चतुर्विंशोऽध्यायः ।

पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथातो यन्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'नानाविधानां शल्यानां ^१नानादेशप्रबाधिनाम् ।

१. 'दृष्टेर्विनाशे विविधं जगच्च', तमोमयं जायत एकरूपम्' ।
 इति पठितुमुचितमनुगुणतया कवितायाः । चतुर्विंशः ।

२. नानादेश-प्रबाधिनां नानाविधानां शल्यानाम् = शल्य-
 गुलिका-काच-पाषाण-वंश-कण्टकादीनाम्, आहर्तुम्=आकर्ष्य, यः
 अभ्युपायः=साधनं, तद्यन्त्रम्-इत्युच्यते. यच्च-अदृश्यानां रोगाणां
 शल्यानाञ्च. दर्शने=निरीक्षणे, साधनं तच्च यन्त्रमित्युच्यते,-वक्ष्यति
 नाडीयन्त्राणि, श्लो० ११ ।

आहर्तुमभ्युपायो यस्तद्यन्त्रं यच्च दर्शने ॥ १ ॥

अशोभगन्दरादीनां शस्त्रक्षाराग्नियोजने ।

शेषाङ्गपरिरक्षायां तथा बस्त्यादिकर्मणि ॥ २ ॥

घटिकालाबुशृङ्गं च जाम्बवौष्ठादिकानि च ।

अनेकरूपकार्याणि यन्त्राणि विविधान्यतः ॥ ३ ॥

विकल्प्य कल्पयेद्बुद्ध्याः^१ यथास्थूलं तु वक्ष्यते ।

तुल्यानि कङ्कसिंहर्त-काकादिमृगपक्षिणाम् ॥ ४ ॥

मुखैर्मुखानि यन्त्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च ।

अष्टादशाङ्गुलायामान्यायसानि च भूरिशः ॥ ५ ॥

मसूराकारपर्यन्तैः कण्ठे बद्धानि कीलकैः ।

विद्यात्स्वस्तिकयन्त्राणि मूलेऽङ्कुशनतानि च ॥ ६ ॥

तैर्द्वैर्द्वैस्थिसंलग्नशल्याहरणमिष्यते ।

कीलबद्धविमुक्ताग्रौ सन्दंशौ षोडशाङ्गुलौ ॥ ७ ॥

त्वक्सिरास्नायुपिशित-लग्नशल्यापकर्षणौ ।

षडङ्गुलोऽन्यो हरणे सूक्ष्मशल्योपपक्ष्मणाम् ॥ ८ ॥

मुचुण्डी सूक्ष्मदन्तर्जुर्मूले रुचकभूषणा ।

गम्भीरव्रणमांसानामर्मणः शेषितस्य च ॥ ९ ॥

द्वे द्वादशाङ्गुले मत्स्य-तालवद् द्वयेकतालके ।

१. यथास्थूलं = स्थूलं स्थूलमनतिक्रम्येति विग्रहः । पदार्थानति-
बृत्तौ-अव्ययं विभक्तीत्यादिनाऽव्ययीभावः समासः । स्थूलानि स्थू-
लानि यन्त्राणि वक्ष्यन्ते-इति भावः ।

१ तालयन्त्रे स्मृते कर्ण-नाडीशल्याषहारिणी ॥ १० ॥
 नाडीयन्त्राणि सुषिराण्येकानेकमुखानि च ।
 स्रोतोगतानां शल्यानामामयानां च दर्शने ॥ ११ ॥
 क्रियाणां सुकरस्वाय कुर्यादाचूषणाय च ।
 तद्विस्तारपरीणाहदैर्घ्यं स्रोतोऽनुरोधतः ॥ १२ ॥
 दशाङ्गुलाऽर्धनाहाऽन्तःकण्ठशल्यावलोकिनी ।
 नाडीः पञ्चमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य सङ्ग्रहे ॥ १३ ॥
 वारङ्गस्य, द्विकर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः ।
 वारङ्गकर्णसंस्थानानाहदैर्घ्यानुरोधतः ॥ १४ ॥
 नाडीरेवंविधाश्चान्या द्रष्टुं शल्यानि कारयेत् ।
 पञ्चकर्णिकया मूर्ध्नि सदृशी द्वादशाङ्गुला ॥ १५ ॥
 चतुर्थसुषिरा नाडी शल्यनिर्घातिनी मता ।
 अर्शसाङ्गोस्तनाकारं यन्त्रकं चतुरङ्गुलम् ॥ १६ ॥
 नाहे पञ्चाङ्गुलं पुंसां प्रमदानां षडङ्गुलम् ।
 द्विच्छिद्रं दर्शने व्याधेरेकच्छिद्रं तु कर्मणि ॥ १७ ॥
 मध्येऽस्य त्र्यङ्गुलं छिद्रमङ्गुलोदरविस्तृतम् ।
 अर्धाङ्गुलोच्छ्रितोद्वृत्तकर्णिकं च तदूर्ध्वतः ॥ १८ ॥
 शम्याख्यं तादृगच्छिद्रं यन्त्रमर्शःप्रपीडनम् ।
 सर्वथाऽपनयेदोष्ठं छिद्रादूर्ध्वं भगन्दरे ॥ १९ ॥
 घ्राणार्बुदार्शसामेक-च्छिद्रा नाड्यङ्गुलद्वया ।
 प्रदेशिनीपरीणाहा स्याद्भगन्दरयन्त्रवत् ॥ २० ॥

१. तालयन्त्रमिति केचन वदन्ति तदनुसारं त्रिषु स्थानेषु
 तालुशब्दं पठन्ति-मत्स्यतालुवदित्यादौ ।

अङ्गुलित्राणकं दान्तं वार्शं वा चतुरङ्गुलम् ।
 द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तद्वक्त्रविष्टौ सुखम् ॥ २१ ॥
 योनिव्रणेक्षणं मध्ये सुषिरं षोडशाङ्गुलम् ।
 मुद्राबद्धं चतुर्भित्तमम्भोजमुकुलाननम् ॥ २२ ॥
 चतुःशलाकमाक्रान्तं मूले तद्विकसेन्मुखे ।
 यन्त्रे नाडीव्रणाभ्यङ्गक्षालनाय षडङ्गुले ॥ २३ ॥
 बस्तियन्त्राकृती मूले मुखेऽङ्गुष्ठकलायन्त्रे ।
 अग्रतोऽकर्णिके मूले निबद्धमृदुचर्मणी ॥ २४ ॥
 द्विद्वारा नलिका पिच्छनलिका वोदकोदरे ।
 धूमबस्यादियन्त्राणि निर्दिष्टानि यथायथम् ॥ २५ ॥
 त्र्यङ्गुलास्यं भवेच्छृङ्गं चूषणोऽष्टादशाङ्गुलम् ।
 अग्रे सिद्धार्थकच्छिद्रं सुनदं चूचुकाकृति ॥ २६ ॥
 स्याद्द्वादशाङ्गुलोऽलाबुर्नाहि त्वष्टादशाङ्गुलः ।
 चतुस्त्यङ्गुलवृत्तास्यो दीप्तोऽन्तः श्लेष्मरक्तहृत् ॥ २७ ॥
 तद्वद्वटी हिता गुल्मविलयोन्नमने च सा ।
 शलाकाख्यानि यन्त्राणि ^१नानाकर्माकृतीनि च ॥ २८ ॥
 यथायोगप्रमाणानि० तेषामेषणकर्मणी ।
 उभे गण्डूपदमुखे० स्रोतोभ्यः शल्यहारिणी ॥ २९ ॥
 मसूरदलवक्त्रे द्वे स्यातामष्टनवाङ्गुले ।
 शङ्खवः षट्० उभौ तेषां षोडशद्वादशाङ्गुलौ ॥ ३० ॥

१. शलाकासंज्ञकानि यन्त्राणि नानाविधानि यानि एषणादीनि
 कर्माणि तदनुगुणाऽऽकृतिमन्ति कार्याणि ।

व्यूहनेऽहिफणावक्राः॥ द्वौ दशद्वादशाङ्गुलौ ।
 चालने शरपुङ्खास्यौः॥ ^१आहार्यं बडिशाकृती ॥ ३१ ॥
 नतोऽग्रे शङ्कुना तुल्यो गर्भशङ्कुरिति स्मृतः ।
 अष्टाङ्गुलायतस्तेन मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाः ॥ ३२ ॥
 अश्मर्याहरणं सर्पफणावद्वक्रमग्रतः ।
 शरपुङ्खमुखं दन्तपातनं चतुरङ्गुलम् ॥ ३३ ॥
 कार्पासविहितोष्णीषाः शलाकाः षट् प्रमार्जने ।
 पायावासन्नदूरार्थं द्वे दशद्वादशाङ्गुले ॥ ३४ ॥
 द्वे षट्सप्ताङ्गुले घ्राणे, द्वे कर्णेऽष्टनवाङ्गुले ।
 कर्णशोधनमश्वत्थ-पत्रप्रान्तं सुवाननम् ॥ ३५ ॥
 शलाकाजाम्बवौष्ठानां चारेऽग्नौ च पृथक् त्रयम् ।
 युञ्ज्यात् स्थूलाणुदीर्घाणां॥ शलाकामन्त्रवर्ध्मनि ^२ ॥ ३६ ॥
 मध्योर्ध्ववृत्तदण्डां च मूले चार्धेन्दुसन्निभाम् ।
 कोलास्थिदलतुल्यास्या नासाशोर्ध्वददाहकृत् ॥ ३७ ॥
 अष्टाङ्गुला निम्नमुखास्तिस्रः चारौषधक्रमे ।
 कनीनीमध्यमाऽनामीनख-मान-समैर्मुखैः ॥ ३८ ॥
 स्वं स्वमुक्तानि यन्त्राणि मेढ्रशुद्धयञ्जनादिषु ।
^३अनुयन्त्राण्ययस्कान्तरज्जुवस्त्राश्ममुद्गराः ॥ ३९ ॥

१. आहार्यं = आकर्षणे बडिशाकारौ ।

२. अन्त्रवर्ध्मनि = अन्त्रवृद्धौ ।

३. अनुयन्त्राणि = यन्त्राऽनुसारि-स्वल्पकार्यकराणि — अयस्कान्तादीनि-एकविंशतिः, तेषां कार्य्याणि निर्घातनादीनि ।

६ अष्टा०

वधान्त्रजिह्वावालाश्च शाखानखमुखद्विजाः ।
 कालः पाकः करः पादो भयं हर्षश्च, तत्क्रियाः ॥ ४० ॥
 उपायवित्प्रविभजेदालोच्य निपुणं धिया ॥
 निर्घातनोन्मथनपूरणमार्गशुद्धि-
 संव्यूहनाहरणबन्धनपीडनानि ।
 आचूषणोन्नमननामनचालभङ्ग-
 व्यावर्तनर्जुकरणानि च यन्त्रकर्म^१ ॥ ४१ ॥
 विवर्तते साध्ववगाहते च
 ग्राह्यं गृहीत्वोद्धरते च यस्मात् ।
 यन्त्रेष्वतः कङ्कमुखं प्रधानं
 स्थानेषु सर्वेष्वधिकारि यच्च^२ ॥ ४२ ॥
 इति सूत्रस्थाने पञ्चविंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथातः शस्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'षड्विंशतिः' ^३सुकर्मरैर्घटितानि यथाविधि ।
 शस्त्राणि रोमवाहीनि बाहुल्येनाङ्गुलानि षट् ॥ १ ॥

१. वसन्ततिलका । २. उपजातिः । इति पञ्चविंशः ।

३. सुकर्मरैः शस्त्राऽस्त्रनिर्माणकुशलैर्लोहकारैः; यथाधिधिरचितानि लोमच्छेदन-समर्थानि प्रायः षडङ्गुलायतानि षड्विंशति-संख्याकानि शस्त्राणि सुरूपादिगुणविशिष्टानि कारयेद् भिषक् ।

सुरूपाणि सुधाराणि सुग्रहाणि च कारयेत् ।
 अकरालानि सुध्मातसुतीक्ष्णावर्तितेऽयसि ॥ २ ॥
 समाहितमुखाग्राणि नीलाम्भोजच्छवीनि च ।
 नामानुगतरूपाणि सदा सन्निहितानि च ॥ ३ ॥
 स्वोन्मानार्धचतुर्थोऽशफलान्येकैकशोऽपि च ।
 प्रायो द्वित्राणि, युञ्जीत तानि स्थानविशेषतः ॥ ४ ॥
 ❀‘मण्डलाग्रं’ वृद्धिपत्रमुत्पलाध्यर्धधारके ।
 सर्पैषण्यौ वेतसाख्यं शरार्यास्यत्रिकूर्चके ॥ १ ॥
 कुशास्यं साटवदनमन्तर्वक्त्रार्धचन्द्रके ।
 ग्रीहिमुखं कुठारी च शलाकाङ्गुलिशस्त्रके ॥ २ ॥
 बडिशं करपत्राख्यं कर्तरी नखशस्त्रकम् ।
 दन्तलेखनकं सूच्यः कूर्चो नाम खजाह्वयम् ॥ ३ ॥
 आरा चतुर्विधाकारा तथा स्यात्कर्णवेधनी ।
 ‘मण्डलाग्रं’ फले तेषां तर्जन्यन्तर्नखाकृति ।
 लेखने छेदने योज्यं पोथकीशुण्डिकादिषु ॥ ५ ॥
 ‘वृद्धिपत्रं’ क्षुराकारं छेदभेदनपाटने ।
 ऋज्वग्रमुन्नते शोफे गम्भीरे च तदन्यथा ॥ ६ ॥
 नताग्रं पृष्ठतो दीर्घह्रस्ववक्त्रं यथाश्रयम् ।
 ‘उत्पलाध्यर्धधाराख्ये’ भेदने छेदने तथा ॥ ७ ॥
 ‘सर्पास्यं’ घ्राणकर्णांशश्छेदनेऽर्धाङ्गुलं फले ।
 गतेरन्वेषणे श्लक्ष्णा ‘गण्डूपदमुखैषणी ॥ ८ ॥
 भेदनार्थेऽपरा सूचीमुखा मूलनिविष्टा ।
 वेतसं व्यधनेऽस्त्राव्येऽशरार्यास्यत्रिकूर्चके ॥ ९ ॥

❁कुशाटवदने स्वाव्ये द्व्यङ्गुलं स्यात्तयोः फलम् ।
 तद्वदन्तर्मुखं तस्य फलमध्यर्द्धमङ्गुलम् ॥ १० ॥
 'अर्धचन्द्राननं' चैतत्❁ तथाऽध्यर्धाङ्गुलं फले ।
 'नीहिवक्त्रं' प्रयोज्यं च तस्मिरोदरयो^१र्व्यधे ॥ ११ ॥
 पृथुः 'कुठारी' गोदन्तसदृशाऽर्धाङ्गुलानना ।
 तयोर्ध्वदण्डया विध्येदुपर्यस्थनां स्थितां सिराम् ॥ १२ ॥
 ताम्री 'शलाका' द्विमुखी मुखे कुरुबकाकृतिः ।
 लिङ्गनाशं तथा विध्येत्❁कुर्यादङ्गुलिशस्त्रकम् ॥ १३ ॥
 मुद्रिकानिर्गतमुखं फले त्वर्धाङ्गुलायतम् ।
^२योगतो वृद्धिपत्रेण मण्डलाग्रेण वा समम् ॥ १४ ॥
 तत्प्रदेशिन्यग्रपर्व-प्रमाणार्पणमुद्रिकम् ।
 सूत्रबद्धं गलस्रोतोरोगच्छेदनभेदने^३ ॥ १५ ॥
 ग्रहणे शुण्डिकामादे 'बडिशं' सुनताननम् ।
 छेदेऽस्थनां 'करपत्रं' तु खरधारं दशाङ्गुलम् ॥ १६ ॥
 विस्तारे द्व्यङ्गुलं सूक्ष्मदन्तं^४ सुत्सरुबन्धनम् ।

१. व्यधनं व्यधः; घञर्थे कः व्यध-ताडने तुदा० विध्यति, विध्यत-इत्यादि ।

२. योगतः संस्थानतः पूर्वोक्ताभ्यां वृद्धिपत्रमण्डलाग्राभ्यां तुल्यम् । पुनश्च-तस्य वैद्यस्य प्रदेशिन्यग्रपर्वप्रमाणेन हेतुना तदर्पण-योग्या मुद्रिका यस्य तादृशम् ।

३. छिदिर्-द्वैधीकरणे, भिदिर्-विदारणे, अनयोर्भेदः सुश्रुते स्पष्टः । ४. सुष्ठु त्सरुः=मुष्टिः बन्धनञ्च यस्य तत् । त्सरुः खड्गमुष्टिः, अत्र तु मुष्टिमात्रे प्रयोगः ।

स्नायुसूत्रकचच्छेदे 'कर्तरी' कर्तरीनिभा ॥ १७ ॥
 वक्रजुधारं द्विमुखं 'नखशस्त्रं' नवाङ्गुलम् ।
 सूक्ष्मशल्योद्धृतिच्छेदभेदप्रच्छानलेखने ॥ १८ ॥
 एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चैकतः ।
 'दन्तलेखनकं' तेन शोधयेदन्तशर्कराम् ॥ १९ ॥
 वृत्ता गूढदृढाः पाशे तिस्रः 'सूच्योऽत्र सीवने ।
 मांसलानां प्रदेशानां त्र्यस्त्रा त्र्यङ्गुलमायता ॥ २० ॥
 अल्पमांसास्थिसन्धिस्थव्रणानां द्व्यङ्गुलायता ।
 घ्रीहिवक्रा धनुर्वक्रा पक्वामाशयमर्मसु ॥ २१ ॥
 सा सार्धद्व्यङ्गुलाः सर्ववृत्तास्ताश्चतुरङ्गुलाः ।
 'कूर्चो' वृत्तैकपीठस्थाः सप्ताष्टौ वा सुबन्धनाः ॥ २२ ॥
 स योज्यो नीलिकाव्यङ्गकेशशातेषु कुट्टने ।
 अर्धाङ्गुलमुखैर्वृत्तैरष्टाभिः कण्टकैः 'खजः'^१ ॥ २३ ॥
 पाणिभ्यां मध्यमानेन घ्राणात्तेन हरेदसृक् ।
 व्यधनं कर्णपालीनां यूथिकामुकुलाननम् ॥ २४ ॥
 'आरा'ऽर्धाङ्गुलवृत्तास्या तत्प्रवेशा तथोर्ध्वतः ।
 चतुरस्ता, तया विध्येच्छोफं पक्वामसंशये ॥ २५ ॥
 कर्णपालीं च बहलाम् बहलायाश्च शस्यते ।
 'सूची' त्रिभागसुषिरा त्र्यङ्गुला कर्णवेधनी ॥ २६ ॥
 जलौकःक्षार-दहन-काचो-पलनखादयः ।

१. खज-मन्थे = खज्यते मध्यते अनेनेति खजः, पुंसि
 'जायां घः ।

अलौहान्यनुशस्त्राणि, तान्येवं च विकल्पयेत् ॥ २७ ॥
 अपराण्यपि यन्त्रादीन्युपयोगं च यौगिकम् ।
 उत्पाद्यपाठ्यसीव्यैष्यलेख्यप्रच्छानकुट्टनम् ॥ २८ ॥
 छेद्यं भेद्यं व्यधो मन्थो ग्रहो दाहश्च तत्क्रियाः ।
 कुण्ठखण्डतनुस्थूलह्रस्वदीर्घत्ववक्रताः ॥ २९ ॥
 शस्त्राणां खरधारत्वमष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ।
 छेदभेदनलेख्यार्थं शस्त्रं वृन्तफलान्तरे ॥ ३० ॥
 तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैर्गृहीयात्सुसमाहितः ।
 विस्रावणानि वृन्ताग्रे तर्जन्यङ्गुष्ठकेन च ॥ ३१ ॥
 तलप्रच्छन्नवृन्ताग्रं ग्राह्यं व्रीहिमुखं मुखे ।
 मूलेष्वाहरणार्थानि क्रियासौकर्यतोऽपरम् ॥ ३२ ॥
^१स्यान्नवाङ्गुलविस्तारः सुघनो द्वादशाङ्गुलः ।
^२क्षौमपत्रोर्णकौशेयदुकूलमृदुचर्मजः ॥ ३३ ॥
 विन्यस्तपाशः सुस्यूतः सान्तरौर्णस्थशस्त्रकः ।
 शलाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसञ्चयः ॥ ३४ ॥
 'जलौकसस्तु' सुविनां रक्तस्तावाय योजयेत् ।
 दुष्टाम्बुमत्स्यभेकाहि-शवकोथमलोद्भवाः ॥ ३५ ॥
 रक्ताः श्वेता भृशं कृष्णाश्चपलाः स्थूलपिच्छिलाः ।
 इन्द्रायुधविचित्रोर्ध्व-राजयो रोमशाश्च ताः ॥ ३६ ॥

१. शस्त्रकोशमाचष्टे—स्यादिति ।

२. क्षौमः = अतसीतन्तुजः, पत्रजः = भूर्जपत्रजः, कौशेयजः,
 कृमिकोशजतन्तुजः ।

सविषा वर्जयेत्॥ताभिः कण्डूपाकज्वरभ्रमाः ।
 विषपित्तास्त्रनुत्कार्यं तत्र॥शुद्धाम्बुजाः पुनः ॥ ३७ ॥
 निर्विषाः शैवलश्यावा वृत्ता नीलोर्ध्वराजयः ।
 कषायपृष्ठास्तन्वङ्गयः किञ्चित्पीतोदराश्च याः ॥ ३८ ॥
 ता अप्यसम्यग्वमनात् प्रततं च निपातनात् ।
 सीदन्तीः सलिलं प्राप्य रक्तमत्ता इति त्यजेत् ॥ ३९ ॥
 अथेतरा निशाकल्कयुक्तेऽम्भसि परिप्लुताः ।
 अवन्तिसोमे तत्रे वा पुनश्चाश्वासिता जले ॥ ४० ॥
 लागयेद्धृतमृत्स्तन्य-रक्त-शस्त्र-निपातनैः ।
 पिबन्तीरुन्नतस्कन्धाश्छादयेन्मृदुवाससा ॥ ४१ ॥
 सम्पृक्ताद्दुष्टशुद्धास्त्राजलौका^१ दुष्टशोणितम् ।
 आदत्ते प्रथमं हंसः क्षीरं क्षीरोदकादिव ॥ ४२ ॥
 ॥गुल्मार्शोविद्रधीन् कुष्ठ-वातरक्तगलामयान् ।
 नेत्ररुग्विषवीसर्पान् शमयन्ति जलौकसः ॥॥
 दंशस्य तोदे कण्डूवां वा मोक्षयेद् ॥ वामयेच्च ताम् ।
 पटुतैलाक्तवदनां श्लक्ष्णकण्डनरूपिताम् ॥ ४३ ॥
 रक्तन् रक्तमदाद्भूयः सप्ताहं ता न पातयेत् ।
 पूर्ववत् पटुता दाढर्यं सम्यग्वान्ते जलौकसाम् ॥ ४४ ॥

१. जलौका कर्त्री प्रथमम् संपृक्तान्मिलिताद्-दुष्टञ्च शुद्धञ्च
 तदस्त्रं रुधिरं तस्माद् दुष्टमेव रुधिरमादत्ते नतु शुद्धम्, अत्र दृष्टान्तः-
 हंसः कर्त्ता क्षीरञ्चोदकञ्चानयोः समाहारस्तस्माद् यथा क्षीरमेवाऽऽ-
 दत्ते न तूदकं, तथा ।

क्लमोऽतियोगान्मृत्युर्वाःॐ दुर्वान्ते स्तब्धता मदः ।
 अन्यत्रान्यत्र ताः स्थाप्या घटे मृत्स्नाम्बुगर्भिणि ॥ ४५ ॥
 लालादिकोथनाशार्थं, सविषाः स्युस्तदन्वयात् ।
 अशुद्धौ स्त्रावयेद्दंशान् हरिद्रागुडमाक्षिकैः ॥ ४६ ॥
 शतधौताज्यपिचवस्ततो लेपाश्च शीतलाः ।
 दुष्टरक्तापगमनास्सद्यो रागरूजां शमः ॥ ४७ ॥
 अशुद्धं चलितं स्थानास्थितं रक्तं व्रणाशये ।
 व्यम्लीभवेत्पर्युषितं तस्मात्तस्त्रावयेत्पुनः ॥ ४८ ॥
 युञ्ज्याञ्जालाबुधटिका रक्ते पित्तेन दूषिते ।
 तासामनलसंयोगाद् युञ्ज्यात्तु कफवायुना ॥ ४९ ॥
 कफेन दुष्टं रुधिरं न शृङ्गेण विनिर्हरेत् ।
 १स्कन्नत्वाद् वातपित्ताभ्यां दुष्टं शृङ्गेण निहरेत् ॥ ५० ॥
 गात्रं बद्ध्वोपरि दृढं रज्ज्वा पट्टेन वा समम् ।
 स्त्रायुसन्ध्यस्थिमर्माणि त्यजन् प्रच्छानमाचरेत् ॥ ५१ ॥
 अधोदेशप्रविसृतैः पदैरुपरिगामिभिः ।
 न गाढघनतिर्यग्भिर्न पदे पदमाचरन् ॥ ५२ ॥
 प्रच्छानेनैकदेशस्थं ग्रथितं जलजन्मभिः ।
 हरेच्छृङ्गादिभिः सुप्तमसृग्यापि सिरान्वधैः ॥ ५३ ॥
 प्रच्छानं पिण्डिते वा स्याद्भवगाढे जलौकसः ।

१. स्कन्दिर्-गतिशोषणयोः क्तः स्कन्नः, तस्य भावः स्कन्नत्वं
 स्त्यानत्वम् घनत्वं शुष्कत्वं तस्मात् 'विभाषा गुणेऽस्त्रियामि'ति हेतौ
 पञ्चमी । इति षड्विंशः ।

त्वक्स्थेऽलाबुघटीशृङ्गम् ॥ सिरैव व्यापकेऽसृजि ॥ ५४ ॥

वातादिधाम वा शृङ्गजलौकोऽलाबुभिः क्रमात् ।

खुतासृजः प्रदेहाद्यैः शीतैः स्याद्वायुकोपतः ॥ ५५ ॥

सतोदकण्डूः शोफस्तं सर्पिषोष्णेन सेचयेत् ॥ ५६ ॥

इति षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातः सिराव्यधविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘मधुरं’^१ लवणं किञ्चिदशीतोष्णमसंहतम् ।

पद्मेन्द्रगोपहेमाविशशलोहितलोहितम् ॥ १ ॥

लोहितं प्रवदेत्, तनोस्तेनैव च^२ स्थितिः ।

तत्पित्तश्लेष्मलैः प्रायो दूष्यते ॥ कुरुते ततः ॥ २ ॥

^३ विसर्पविद्रधिप्लीह-गुल्माग्निसदनज्वरान् ।

मुखनेत्रशिरोरोग-मदतृड्लवणास्यता ॥ ३ ॥

कुष्ठवातास्रपित्तास्र-कट्वग्नेरग्निरणभ्रमान् ।

शोतोष्णान्निग्धरूक्षाद्यैरुपक्रान्ताश्च ये गदाः ॥ ४ ॥

१. शुद्धरुधिरलक्षणमाह-मधुरमित्यादिना ।

२. तद्विशुद्धं हि रुधिरं बलवर्णसुखायुषा, युनक्ति प्राणिनं, ‘प्राणः शोणितं ह्यनुवर्त्तते’ । च० सू० २४ ।

३. रुधिर-कोपजन्यान् रोगान् दर्शयति-विसर्पेत्यादिना ।

सम्यक्साध्या न सिध्यन्ति ते च रक्तप्रकोपजाः ।
 तेषु स्रावयितुं रक्तमुद्रिक्तं व्यधयेत्सिराम् ॥ ५ ॥
 न ^१तूनपोडशातीत-सप्तत्यब्दस्तुतासृजाम् ।
 अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम् ॥ ६ ॥
 गर्भिणीमूतिकाजीर्ण-पित्तास्रश्वासकासिनाम् ।
 अतीसारोदरच्छर्दि-पाण्डुसर्वाङ्गशोफिनाम् ॥ ७ ॥
 स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु ।
 नायन्त्रितां सिरां विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम् ॥ ८ ॥
 नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्रात्ययिकाद्गदात् ।
^२शिरोनेत्रविकारेषु ललाट्यां मोक्षयेत्सिराम् ॥ ९ ॥
 अपाङ्ग्यामुपनास्यां वाः कर्णरोगेषु कर्णजाम् ।
 नासारोगेषु नासाग्रे स्थिताम् नासाललाटयोः ॥ १० ॥
 पीनसेः मुखरोगेषु जिह्वौष्ठहनुतालुगाः ।
 जत्रूर्ध्वग्रन्थिषु ग्रीवाकर्णशङ्खशिरःश्रिताः ॥ ११ ॥
 उरोऽपाङ्गललाटस्था उन्मादेऽपस्मृतौ पुनः ।
 हनुसन्धौ समस्ते वा सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् ॥ १२ ॥
 विद्रधौ पार्श्वशूले च पार्श्वकक्षास्तनान्तरे ।
 तृतीयकेंऽसयोर्मध्येऽऽस्कन्धस्याधश्चतुर्थके ॥ १३ ॥
 प्रवाहिकायां शूलिन्यां श्रोणितो द्व्यङ्गुले स्थिताम् ।

१. ऊनपोडशाब्दाश्च, अतीतसप्तत्यब्दाश्च स्तुताऽसृजश्च ये तेषां
 सिरां न व्यधयेदिति सम्बन्धः ।

२. कस्मिन् रोगे कुत्रत्यां सिरां व्यधयेदित्याह—शिर-इति ।

शुक्रमेढामये भेदे ॥ ऊरूणां गलगण्डयोः ॥ १४ ॥
 गृध्रस्यां जानुनोऽधस्तादूर्ध्वं वा चतुरङ्गुले ।
 इन्द्रवस्तेरधोऽपच्यां द्वयङ्गुले ॥ चतुरङ्गुले ॥ १५ ॥
 ऊर्ध्वं गुल्फस्य सक्थ्यतौ, तथा क्रोण्टकशीर्षके ।
 पाददाहे खुडे हर्षे विपाद्यां वातकण्टके ॥ १६ ॥
 चिप्पे च द्वयङ्गुले विध्येदुपरि क्षिप्रमर्मणः ।
 गृध्रस्यामिव विश्वाच्याम् ॥ यथोक्तानामदर्शने ॥ १७ ॥
 मर्महीने यथासन्ने देशेऽन्यां व्यधयेत् सिराम् ।
 अथ 'स्निग्धतनुः' सज्जसर्वोपकरणो बली ॥ १८ ॥
 कृतस्वस्त्ययनः स्निग्धरसान्नप्रातभोजितः ।
 अग्नितापातपस्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः ॥ १९ ॥
 मृदुपट्टात्तकेशान्तो जानुस्थापितकूर्परः ।
 मुष्टिभ्यां वस्त्रगर्भाभ्यां मन्ये गाढं निपीडयेत् ॥ २० ॥
 दन्तप्रपीडनोत्कासगण्डाध्मानानि चाचरेत् ।
 पृष्ठतो यन्त्रयेच्चैनं वस्त्रमावेष्टयन्नरः ॥ २१ ॥
 कन्धरायां परिक्षिप्य न्यस्यान्तर्वातमर्जनीम् ।
 एषोऽन्तर्मुखवर्ज्यानां सिराणां यन्त्रणे विधिः ॥ २२ ॥
 ततो मध्यमयाऽङ्गुल्या वैद्योऽङ्गुष्ठविमुक्तया ।
 ताडयेद् ॥ उत्थितां ज्ञात्वा स्पर्शाद्वाऽङ्गुष्ठपीडनैः ॥ २३ ॥
 कुठार्या लक्षयेन्मध्ये वामहस्तगृहीतया ।
 फलोद्देशे सुनिष्कम्पं सिरां, तद्वच्च, मोक्षयेत् ॥ २४ ॥
 ताडयन् पीडयंश्चैनां विध्येद् ब्रीहिमुखेन तु ।

अङ्गुष्ठेनोन्नमय्याग्रे ^१ नासिकामुपनासिकाम् ॥ २५ ॥
 अभ्युन्नतविदष्टाग्र-जिह्वस्याधस्तदाश्रयाम् ।
 यन्त्रयेत्स्तनयोरुर्ध्वं ग्रीवाश्रितसिरान्यधे ॥ २६ ॥
 पाषाणगर्भहस्तस्य जानुस्थे प्रसृते भुजे ।
 कुक्षेरारभ्य मृदिते विध्येद्वद्धोर्ध्वपट्टके ॥ २७ ॥
 विध्येद्वस्तसिरां बाहावनाकुञ्चितकूर्परे ।
 बद्ध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमङ्गुष्ठगर्भिणम् ॥ २८ ॥
 ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिकां चतुरङ्गुले ।
 विध्येदालम्बमानस्य बाहुभ्यां पार्श्वयोः सिराम् ॥ २९ ॥
 प्रहृष्टे मेहनेऽजङ्घासिरां जानुन्यकुञ्चिते ।
 पादे तु सुस्थितेऽधस्ताज्जानुसन्धेर्निपीडिते ॥ ३० ॥
 गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि ।
 द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदारूढे हस्तवत्ततः ॥ ३१ ॥
 बद्ध्वा विध्येत्सिराम् ॥ इत्थमनुक्तेष्वपि ^२ कल्पयेत् ।
 तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायवित् ॥ ३२ ॥
 मांसले निक्षिपेद् देशे व्रीह्यास्यं व्रीहिमाश्रकम् ।
 यबार्धमस्थनामुपरि सिरां विध्यन् कुठारिकाम् ॥ ३३ ॥
 सम्यग्विद्धा स्रवेद्वारां यन्त्रे मुक्ते तु न स्रवेत् ।
 अल्पकालं वहत्यल्पं, दुर्विद्धा तैलचूर्णनैः ॥ ३४ ॥
 सशब्दमतिविद्धा तु स्रवेद् दुःखेन धार्यते ।

१. नासिकामङ्गुष्ठेनोन्नमय्योपनासिकां सिरां विध्येत् ।

२. अनुक्तेषु सिरान्यधमतिदिशति-इत्थमनेन प्रकारेण कल्पयेत् कल्पनां कुर्यात् ।

भीमूर्च्छायन्त्रशैथिल्य-कुण्ठशस्त्रातिवृत्तयः ॥ ३५ ॥
 क्षामत्ववेगितास्वेदा रक्तस्यास्रुतिहेतवः ।
 असम्यगस्त्रे स्रवति वेष्टव्योषनिशानतैः ॥ ३६ ॥
 सागारधूमलवण-तैलैर्दिष्टात्सिरामुखम् ।
 सम्यक्प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ॥ ३७ ॥
 अग्रे स्रवति दुष्टास्त्रं कुसुम्भादिव पीतिका ।
 सम्यक्स्रुत्वा स्वयं तिष्ठेच्छुद्धं तदिति नाहरेत् ॥ ३८ ॥
 यन्त्रं विमुच्य मूर्च्छायां वीजिते व्यजनैः पुनः ।
 स्त्रावयेन्मूर्च्छति पुनस्त्वपरेष्टुस्त्र्यहेऽपि वा ॥ ३९ ॥
 वाताच्छ्रथावारुणं रूक्षं वेगस्त्राव्यच्छफेनिलम् ।
 पित्तात् पीतासितं विस्त्रमस्कन्धौण्यात्सचन्द्रिकम् ॥ ४० ॥
 कफात् स्निग्धमसृक्पाण्डु तन्तुमस्पिच्छिलं घनम् ।
 संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्त्रिदोषं मलिनाविलम् ॥ ४१ ॥
 अशुद्धौ बलिनोऽप्यस्त्रं न प्रस्थास्त्रावयेत्परम् ।
 अतिस्त्रुतौ हि मृत्युः स्याद्धारुणा वा चलामयाः ॥ ४२ ॥
 तत्राभ्यङ्गरसक्षीररक्तपातानि भेषजम् ।
 स्त्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय हिमाश्विना ॥ ४३ ॥
 प्रक्षाल्य तैलप्लोताक्तं बन्धनीयं सिरामुखम् ।
 अशुद्धं स्त्रावयेद्भूयः सायमह्ण्यपरेऽपि वा ॥ ४४ ॥
 स्नेहोपस्कृतदेहस्य पक्षाद्वा भृशदूषितम् ।
 किञ्चिद्धि शेषे दुष्टास्त्रे नैव रोगोऽतिवर्तते ॥ ४५ ॥

१. वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे । सार्द्धत्रयोदशपलं
 प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ।

सशेषमप्यतो धार्यं न चातिस्त्रुतिमाचरेत् ।
 हरेच्छृङ्गादिभिः शेषम् ॥ प्रसादमथवा नयेत् ॥ ४६ ॥
 शीतोपचारपित्तास्रक्रियाशुद्धिविशोषणैः ।
 दुष्टं रक्तमनुद्रिक्तमेवमेव प्रसादयेत् ॥ ४७ ॥
 रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तम्भनीमाचरेत्क्रियाम् ।
 रोधप्रियङ्गुपत्तङ्गमाषयन्त्याह्वगैरिकैः ॥ ४८ ॥
 मृत्कपालाञ्जनक्षौममषीक्षीरित्वगङ्गुरैः ।
 विचूर्णयेद्ब्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥ ४९ ॥
 तामेव वा सिरां विध्येद्वधधातस्मादनन्तरम् ।
 सिरामुखं वा त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥ ५० ॥

१ उन्मार्गगा यन्त्रनिपीडनेन

स्वस्थानमायान्ति पुनर्न यावत् ।

दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं प्रसन्ना-

स्तावद्विताहारविहारभाक् स्यात् ॥ ५१ ॥

२ नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं

रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम् ।

तदा शरीरं ह्यनवस्थितासु-

गग्निर्विशेषादिति रक्षितव्यः ॥ ५२ ॥

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तमव्याहतपक्तृवेगम् ।

१. उपजातिभिः-हिताऽऽहारादीनाह-मुक्तशोणितस्य ।

२. चरके सू० अ० २४। २३-२४ उपजातिद्वयम् । इति
सप्तविंशः ।

सुखान्वितं पुष्टिवलोपपन्नं विशुद्धरक्तं पुरुषं वदन्ति ॥५३॥
 ('रक्तजा व्यङ्गकुष्ठाद्याः कण्ठास्याक्षिशिरोगदाः ।
 पलितारूषिकाबाधाः शाम्यन्त्येते सिराव्यधात् ॥
 निर्व्याधिनीलोत्पलपत्रनेत्रं सुव्यक्तमूलासितवद्वकेशम् ।
 चन्द्रोपमं पद्मसुगन्धि वक्त्रं भवेत्तल्ललाटे तु सिराव्यधेन ॥')

इति सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथातः शल्याहरणविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘वक्रजुतिर्यगृध्वाधिः शल्यानां पञ्चधा गतिः ।

ध्यामं^१ शोफरूजावन्तं स्रवन्तं शोणितं मुहुः ॥ १ ॥

अभ्युद्गतं बुद्बुदवत्पिपटिकोपचितं व्रणम् ।

मृदुमांसं च जानीयादन्तःशल्यं समासतः ॥ २ ॥

विशेषास्त्वगते शल्ये विवर्णः कठिनायतः ।

शोफो भवतिॐ मांसस्थे चोषः शोफो विवर्धते ॥ ३ ॥

पीडनाक्षमता पाकः शल्यमार्गो न रोहति ।

पेश्यन्तरगते मांसप्राप्तवच्छ्वयथुं विना ॥ ४ ॥

आक्षेपः स्नायुजालस्य संरम्भस्तम्भवेदनाः ।

स्नायुगो दुर्हरं चैतत् ॐ सिराध्मानं सिराश्रिते ॥ ५ ॥

१. ध्यामं श्यामवर्णम् । शोफं शोफान्वितम् । अर्श आण्वजन्तः ।

स्वकर्मगुणहानिः स्यात्स्रोतसां स्रोतसि स्थिते ।
 धमनीस्थेऽनिलो रक्तं फेनयुक्तमुदीरयेत् ॥ ६ ॥
 निर्याति शब्दवान् स्याच्च हृत्सासः साङ्गवेदनः ।
 सङ्घर्षो बलवानस्थिसन्धिप्राप्तेऽस्थिपूर्णता ॥ ७ ॥
 नैकरूपा रुजोऽस्थिस्थे शोफः ऋतद्वच्च सन्धिगे ।
 चेष्टानिवृत्तिश्च भवेत् ऋआटोपः^१ कोष्ठसंश्रिते ॥ ८ ॥
^२आनाहोऽञ्जशकृन्मूत्रदर्शनं च ब्रणानने ।
 विद्यान्मर्मगतं शल्यं मर्मविद्धोपलक्षणेः ॥ ९ ॥
 यथास्वं च परिस्त्रावैस्त्वगादिषु विभावयेत् ।
 रुद्धते शुद्धदेहानामनुलोमस्थितं तु तत् ॥ १० ॥
 दोषकोपाभिघातादिक्षोभाद्भूयोऽपि बाधते ।
^३त्वङ्नष्टे यत्र तत्र स्युरभ्यङ्गस्वेदमर्दनैः ॥ ११ ॥
 रागरुग्दाहसंरम्भा यत्र चाज्यं विलीयते ।
 आशु शुष्यति लेपो वा तत्स्थानं शल्यवद्भवेत् ॥ १२ ॥
 मांसप्रणष्टं संशुद्ध्या कर्शनाच्छ्लथतां गतम् ।
 क्षोभाद्रागादिभिः शल्यं लक्षयेत् ऋ तद्वदेव च ॥ १३ ॥
 पेश्यस्थिसन्धिकोष्ठेषु नष्टमस्थिषु लक्षयेत् ।
 अस्थिनामभ्यङ्गनस्वेद-बन्धपीडनमर्दनैः ॥ १४ ॥
 प्रसारणाकुञ्चनतः सन्धिनष्टं तथाऽस्थिवत् ।
 नष्टे स्नायुसिरास्रोतो-धमनीष्वसमे पथि ॥ १५ ॥

१. आटोपः क्षोभः । २. आनाहो जठराध्मानम् । अरुणः ।

३. त्वचो नष्टं नाशस्त्वङ्नष्टम्, 'नषुंसके भावे क्तः' ।

अश्वयुक्तं रथं खण्ड-चक्रमारोप्य रोगिणम् ।
 शीघ्रं नयेत्ततस्तस्य संरम्भाच्छल्यमादिशेत् ॥ १६ ॥
 मर्मनष्टं पृथङ्नोक्तं तेषां मांसादिसंश्रयात् ।
 सामान्येन सशल्यं तु क्षोभिण्या क्रियया सुरूक् ॥ १७ ॥
 वृत्तं पृथु चतुष्कोणं त्रिपुटं च समासतः ।
 अदृश्यशल्यसंस्थानं व्रणाकृत्या विभावयेत् ॥ १८ ॥
 तेषामाहरणोपायौ प्रतिलोमानुलोमकौ ।
 अर्वाचीनपराचीने निर्हरेत्तद्विपर्ययात् ॥ १९ ॥
 सुखाहार्यं यतश्छिन्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत् ।
 शल्यं न निर्घात्यमुरःकक्षावङ्गणपार्श्वगम् ॥ २० ॥
 प्रतिलोममनुत्तुण्डं छेद्यं पृथुमुखं च यत् ।
 नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुपद्रवम् ॥ २१ ॥
 अथाहरेत्करप्राप्यं करेणैव हृतरत्पुनः ।
 दृश्यं सिंहाऽहि-मकर-वर्मिकर्कटकाननैः ॥ २२ ॥
 अदृश्यं व्रणसंस्थानाद् ग्रहीतुं शक्यते यतः ।
 कङ्कभृङ्गाङ्गकुरर-शरारीवायसाननैः ॥ २३ ॥
 सन्दंशाभ्यां त्वगादिस्थम् तालाभ्यां सुषिरं हरेत् ।
 सुषिरस्थं तु नलकैः शेषं शेषैर्यथायथम् ॥ २४ ॥
 शस्त्रेण वा विशस्यादौ ततो निर्लोहितं व्रणम् ।
 कृत्वा घृतेन संस्वेद्य बद्धाऽऽचारिकमादिशेत् ॥ २५ ॥
 सिरास्नायुविलग्नं तु चालयित्वा शलाकया ।
 हृदये संस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमाम्बुना ॥ २६ ॥
 ततः स्थानान्तरं प्राप्तमाहरेत्तद्यथायथम् ।

यथामार्गं दुराकर्षम् ॥ अन्यतोऽप्येवमाहरेत् ॥ २७ ॥
 १अस्थिदष्टे नरं पद्भ्यां पीडयित्वा विनिर्हरेत् ।
 इत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य किङ्करैः ॥ २८ ॥
 तथाऽप्यशक्ये वारङ्गं वक्रीकृत्य धनुर्जया ।
 सुबद्धं वक्रकटके बध्नीयात्सुसमाहितः ॥ २९ ॥
 सुसंयतस्य पञ्चाङ्ग्या वाजिनः कशयाऽथ तम् ।
 ताडयेदिति मूर्धानं वेगेनोन्नमयन् यथा ॥ ३० ॥
 उद्धरेच्छल्यम् ॥ एवं वा शाखायां कल्पयेत्तरोः ।
 बद्ध्वा दुर्बलवारङ्गं कुशाभिः शल्यमाहरेत् ॥ ३१ ॥
 श्वयथुग्रस्तवारङ्गं शोफमुत्पीड्य युक्तितः ।
 मुद्गराहतया नाड्या निर्घात्योत्तुण्डितं हरेत् ॥ ३२ ॥
 तैरेव चानयेन्मार्गममार्गोत्तुण्डिते तु यत् ।
 मृदित्वा कर्णिनां कर्णं नाड्यास्येन निगृह्य वा ॥ ३३ ॥
 अयस्कान्तेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुस्थितम् ।
 पक्षाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत् ॥ ३४ ॥
 दुष्टवातविषस्तन्यरक्ततोयादि चूषणैः ।
 कण्ठस्रोतोगते शल्ये सूत्रं कण्ठे प्रवेशयेत् ॥ ३५ ॥
 बिसेनात्ते ततः शल्ये बिसं सूत्रं समं हरेत् ।
 नाड्याऽमितापितां क्षिप्त्वा शलाकामप्स्थिरीकृताम् ॥ ३६ ॥

१. अस्थि = कीकसं दष्टं विद्धं येन शल्येन तदस्थिदष्टं शल्यं
 (वाऽऽहिताग्न्यादिषु चेति, निष्ठा-इत्यनेन प्राप्तस्य विकल्पः)
 तादृशे शल्ये सति शल्यस्योभयपार्श्वे नरं शल्यविद्धनराभयवं पद्भ्यां
 चरणाभ्यां पीडयित्वा शल्यं स्वत उद्गच्छति अतस्तथैवोद्धरेत् ।

आनयेज्जातुषं कण्ठात्* जतुदिग्धामजातुषम् ।
 केशोन्दुकेन पीतेन द्रवैः कण्टकमाक्षिपेत् ॥ ३७ ॥
 सहसा सूत्रबद्धेन वमतः* तेन चेतारत् ।
 अशक्यं मुखनासाभ्यामाहर्तुं परतो नुदेत् ॥ ३८ ॥
 अप्पानस्कन्धघाताभ्यां ग्रासशल्यं प्रवेशयेत् ।
 सूक्ष्माक्षिप्राणशल्यानि क्षौमवालजलैर्हरेत् ॥ ३९ ॥
 अपां पूर्णं विधुनुयादवाक्शिरसमायतम् ।
 वामयेच्चामुखं भस्मराशौ वा निखनेन्नरम् ॥ ४० ॥
 कर्णेऽम्बुपूर्णं हस्तेन मथित्वा तैलवारिणी ।
 क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वाऽऽचूषयेत् वा ॥ ४१ ॥
 कीटे स्रोतोगते कर्णं पूरयेल्लवणाम्बुना ।
 शुक्तेन वा सुखोष्णेन मृते क्लेदहरो विधिः ॥ ४२ ॥
 जातुषं हेमरूप्यादिधातुजं च चिरस्थितम् ।
 ऊष्मणा प्रायशः शल्यं देहजेन विलीयते ॥ ४३ ॥
 मृद्वेणुदारुशृङ्गास्थिदन्तवालोपलानि न ।
 विषाणवेण्वयस्तालदारुशल्यं चिरादपि ॥ ४४ ॥
 प्रायो निर्भुज्यते तद्धि पचत्याशु ^१पलासृजी ।
 शल्ये मांसावगाढे चेत्स देशो न विदह्यते ॥ ४५ ॥
 ततस्तं मर्दनस्वेदशुद्धिकर्षणबृंहणैः ।
 तीक्ष्णोपनाहपानान्नघनशस्त्रपदाङ्गनैः ॥ ४६ ॥

१. पलासृजी = मांसरुधिरे । पलञ्चासृक् चेति इतरेतरद्वन्द्वः ।

पाचयित्वा हरेच्छल्यं पाटनैषणभेदनैः ।

शल्यप्रदेशयन्त्राणामवेक्ष्य बहुरूपताम् ॥ ४७ ॥

तैस्तैरुपायैर्मतिमान्^१ शल्यं विद्यात्तथाऽऽहरेत् ॥ ४८ ॥

इति अष्टाविंशोऽध्यायः ।



एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातः शस्त्रकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति, ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘व्रणः’^२ सञ्जायते प्रायः षाकाच्छ्वयथुपूर्वकात् ।

तमेवोपचरेत्तस्माद्रक्षन् पाकं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

सुशीत-लेप-सेकाऽस्त्र-मोक्ष-संशोधनादिभिः ।

शोफोऽल्पोऽल्पोष्मरूक्षसामः सवर्णः कठिनः स्थिरः ॥ २ ॥

१. प्रशस्ता शल्योद्धरणनिपुणा मतिर्यस्य स मतिमान् प्रशंसायां मतुप् । इति ।

२. शस्त्रकर्मविधिः कुत्रोपदिश्यते इत्याकाङ्क्षायाम् तद्विषयं व्रणं लक्षयति, व्रण = गात्र-विचूर्णने चुरादिरदन्तः, ततः कर्त्तरि भावेऽन्यस्मिन्वा कारके व्रणशब्दः सिद्ध्यति व्रणयति गात्रं विचूर्णयति पचाद्यच् । व्रण्यतेऽनेन शरीरमिति ‘अकर्त्तरि च कारके संज्ञाया’मिति घञ् । व्रणनं व्रणः, भावे घञ् । अदन्तत्वान्न वृद्धिः । वृञ्-धातोः, व्रण-शब्दे-इति भौवादिकात्साधनन्तु न सङ्गतम् । व्रणो द्विविधः, निज आगन्तुश्चेति ।

पच्यमानो विवर्णस्तु रागी बस्तिरिवाततः ।
 स्फुटतीव सनिस्तोदः साङ्गमर्दविजृम्भिकः ॥ ३ ॥
 संरम्भारुचिदाहोषातृड्ज्वरानिद्रतान्वितः ।
 स्त्यानं विष्यन्दयस्याज्यं व्रणवत्स्पर्शनासहः ॥ ४ ॥
 पक्वेऽल्पवेगता म्लानिः पाण्डुता वलिसम्भवः ।
 नामोऽन्तेषून्नतिर्मध्ये कण्डूशोफादिमार्दवम् ॥ ५ ॥
 स्पृष्टे पूयस्य सञ्चारो भवेद्वस्ताविवाम्भसः ।
 शूलं नर्तेऽनिलाद्वाहः पित्ताच्छोफः कफोदयात् ॥ ६ ॥
 रागो रक्ताच्च पाकः स्यादतो दोषैः सशोणितैः ।
 पाकेऽतिवृत्ते सुषिरस्तनुत्वग्दोषभक्षितः ॥ ७ ॥
 बलीभिराचितः श्यावः शीर्यमाणतनूरुहः ।
 कफजेषु तु शोफेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् ॥ ८ ॥
 पक्कलिङ्गं ततोऽस्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ।
 त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ ९ ॥
 'रक्तपाकमिति' ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ।
 अल्पसत्त्वेऽबले बाले पाकाद्वाऽत्यर्थमुद्धते ॥ १० ॥
 दारणं मर्मसन्ध्यादिस्थिते चान्यत्र पाटनम् ।
 आमच्छेदे सिरास्नायु-ध्यापदोऽसृगतिस्तुतिः ॥ ११ ॥
 रुजोऽतिवृद्धिर्दरणं विसर्पो वा क्षतोद्भवः ।
 तिष्ठन्नन्तः पुनः पूयः सिरास्नायवसृगामिषम् ॥ १२ ॥
 विवृद्धो दहति क्षिप्रं तृणोलपमिवानलः ।
 यश्छिनस्याममशानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते ॥ १३ ॥

१ श्वपचाविव विज्ञेयौ तावनिश्चितकारिणौ ।

प्राक् शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम् ॥ १४ ॥

पानपं पाययेन्मद्यं तीक्ष्णं यो वेदनाक्षमः ।

न मूर्च्छत्यन्नसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते ॥ १५ ॥

अन्यत्र मूढगर्भाशम-मुखरोगोदरातुरात् ।

शस्त्रविधिमुपदिशति ।

अथाहतोपकरणं वैद्यः प्राङ्मुखमातुरम् ॥ १६ ॥

सम्मुखो यन्त्रयित्वाऽऽशु न्यस्येन्मर्मादि वर्जयन् ।

अनुलोमं सुनिशितं शस्त्रमापूयदर्शनात् ॥ १७ ॥

सकृदेवाहरेत्तच्च पाके तु सुमहत्यपि ।

पाटयेद् द्वयङ्गुलं सम्यग्द्वयङ्गुलज्यङ्गुलान्तरम् ॥ १८ ॥

एषित्वा सम्यगेषिण्या परितः सुनिरूपितम् ।

अङ्गुलीनालवालैर्वा यथादेशं यथाशयम् ॥ १९ ॥

यतो गतां गतिं विद्यादुत्सङ्गो यत्र यत्र च ।

तत्र तत्र व्रणं कुर्यात्सुविभक्तं निराशयम् ॥ २० ॥

आयतं च विशालं च यथा दोषो न तिष्ठति ।

२ शौर्यमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमस्वेद्वेपथू ॥ २१ ॥

असम्मोहश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शस्यते ।

१. शस्त्रवैद्यान् समाधापयति-श्वपचश्चाण्डालः । पचतीति पचः
(पचादित्वादच्) शुनः पचः श्वपचः-इति विग्रहः । श्वानं पचतीति
विग्रहे 'श्वपाकः' कर्मण्यण् कुत्वञ्च-न्यङ्क्वादिपाठात् ।

२. शस्त्रवैद्यगुणान् दर्शयति-शौर्यमित्यादिना ।

तिर्यक्छिन्द्याल्ललाटभ्रूदन्तवेष्टकजत्रुणि ॥ २२ ॥
 कुक्षिकक्षाक्षिकूटौष्ठ-कपोलगलवङ्गणे ।
 अन्यत्र छेदनात्तिर्यक् सिरास्नायुविपाटनम् ॥ २३ ॥
 शस्त्रेऽवचारिते वाग्भिः शीताम्भोभिश्च रोगिणम् ।
 आश्वास्य परितोऽङ्कुल्या परिपीड्य व्रणं ततः ॥ २४ ॥
 क्षालयित्वा कषायेण प्लोतेनाम्भोऽपनीय च ।
 गुग्गुल्वगुरुसिद्धार्थ-हिङ्गुसर्जरसान्वितैः ॥ २५ ॥
 धूपयेत्पटुषड्ग्रन्था-निम्बपत्रैर्घृतप्लुतैः ।
 तिलकल्काज्यमधुभिर्यथास्वं भेषजेन च ॥ २६ ॥
 दिग्धां वर्तिं ततो दद्यात्तैरेवाच्छादयेच्च ताम् ।
 घृताक्तैः सक्तुभिश्चोर्ध्वं घनां कवलिकां ततः ॥ २७ ॥
 निधाय युक्त्या बध्नीयात्पट्टेन सुसमाहितम् ।
 पार्श्वे सव्येऽपसव्यं वा नाधस्तान्नेव चोपरि ॥ २८ ॥
 शुचिसूक्ष्मदृढाः पट्टाः कवल्यः सविकेशिकाः^१ ।
 धूपिता मृदवः श्लक्ष्णा निर्वलीका व्रणे हिताः ॥ २९ ॥
 कुर्वीतानन्तरं तस्य रक्षां^२ रक्षोनिषिद्धये ।
 बलिं चोपहरेत्तेभ्यः ऋसदा मूर्ध्ना च धारयेत् ॥ ३० ॥
 लक्ष्मीं गुहामतिगुहां जटिलां ब्रह्मचारिणीम् ।
 वचां छत्रामतिच्छत्रां दूर्वां सिद्धार्थकानपि ॥ ३१ ॥

१. तिलकल्कादिभेषजदिग्धा पूर्वोक्त वर्तिः = विकेशिका-इत्युच्यते । 'व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्य-वर्तिकेशिका'-इति वक्ष्यति ।

२. रक्षसां पिशिताशित्वाद् व्रणेऽवसरप्राप्त्या वायुरूपेणाऽऽतुर-पीडकत्वं सङ्गच्छते देवयोनित्वेन कामरूपत्वात्तेषाम् ।

ततः स्नेहविधानोक्तं तस्याचारं समादिशेत् ।
 दिवास्वप्नो व्रणे कण्डूरागरूक्शोफपूयकृत् ॥ ३२ ॥
 स्त्रीणां तु स्मृतिसंस्पर्शदर्शनैश्चलितस्रुते ।
 शुक्ले व्यवायजान् दोषानसंसर्गेऽप्यवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥
 व्रणे श्वयथुरायासात् स च रागश्च जागरात् ।
 तौ च रुक् च दिवास्वापात्ताश्च मृत्युश्च मैथुनात् ॥
 भोजनं च यथासात्म्यं यवगोधूमषष्टिकाः ।
 मसूरमुद्गतुवरी-जीवन्तीसुनिषण्णकाः ॥ ३४ ॥
 बालमूलकवार्ताक-तण्डुलीयकवास्तुकम् ।
 कारवेल्लककर्कोट-पटोलकटुकाफलम् ॥ ३५ ॥
 सैन्धवं दाडिमं धात्री घृतं तप्तहिमं जलम् ।
 जीर्णशाल्योदनं स्निग्धमल्पमुष्णोदकोत्तरम् ॥ ३६ ॥
 भुञ्जानो जाङ्गलैर्मसैः शीघ्रं व्रणमपोहति ।
 अशितं मात्रया काले पथ्यं याति जरां सुखम् ॥ ३७ ॥
 अजीर्णात्त्वनिलादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत् ।
 ततः शोफरूजापाक-दाहानाहानवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥
 नवं धान्यं तिलान् माषान् मद्यं मांसमजाङ्गलम् ।
 क्षीरेक्षुविकृतीरम्लं लवणं कटुकं त्यजेत् ॥ ३९ ॥
 यच्चान्यदपि विष्टम्भि विदाहि गुरु शीतलम् ।
 वर्गोऽयं नवधान्यादिर्वर्णिनः सर्वदोषकृत् ॥ ४० ॥
 मद्यं तीक्ष्णोष्णरूक्षाम्लमाशु व्यापादयेद् व्रणम् ।

१. व्यापादयेत् = विशिष्टाऽऽपदयुक्तं कुर्याद् व्रणम् ।

वालोशीरैश्च वीज्येत न चैनं परि^१घट्टयेत् ॥ ४१ ॥
 न तुदेक्ष च कण्डूयेच्चेष्टमानश्च पालयेत् ।
 स्निग्धवृद्धद्विजातीनां कथाः शृण्वन्मनःप्रियाः ॥ ४२ ॥
 आशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं व्रणमपोहति ।
 तृतीयेऽह्नि पुनः कुर्याद् व्रणकर्म च पूर्ववत् ॥ ४३ ॥
 प्रक्षालनादि, दिवसे द्वितीये नाचरेत्तथा ।
 तीव्रव्यथो विप्रथितश्चिरात्संरोहति व्रणः ॥ ४४ ॥
^२स्निग्धां रूक्षां श्लुथां गाढां दुर्न्यस्तां च विकेशिकाम् ।
 व्रणे न दद्यात्कल्कं वा ॥ स्नेहात्कलेदो विवर्धते ॥ ४५ ॥
 मांसच्छेदोऽतिरुग्रौक्ष्याहरणं शोणितागमः ।
 श्लथातिगाढदुर्न्यासैर्व्रणवर्मावघर्षणम् ॥ ४६ ॥
 सपूतिमांसं सोत्सङ्गं सगतिं पूयगर्भिणम् ।
 व्रणं विशोधयेच्छीघ्रं स्थिता ह्यन्तर्विकेशिका ॥ ४७ ॥
 व्यम्लं तु पाटितं शोफं पाचनैः समुपाचरेत् ।
 भोजनैरूपनाहैश्च नातिव्रणविरोधिभिः ॥ ४८ ॥
 सद्यः सद्योव्रणान् सीज्येद्विवृतानभिघातजान् ।

१. न चालयेत्-घट्ट चलने चुरादिः । तुद = व्यथने । कण्डूञ् = गात्रविघर्षणे । चेष्ट = चेष्टायाम् । पाल = रक्षणे अत्र तु प्रतीक्षायाम् ।

२. अतिस्निग्धाम्, अतिरुक्षाम्, अतिशिथिलाम्, अतिदृढाम् ; दुःखदातृत्वेनोपनिवेशिताम्, विकेशिकाम् = व्रणान्तर्निवेशनीयां वृत्तिकाम् व्रणे न निवेशयेत् किन्तु-तद्विपरीताम् । एवं कल्के योजनीयम्, कल्कः क्लिन्नपिष्टौषधिलेपः । पञ्चकषायेषु प्रसिद्धः ।

मेदोजांस्त्रिखितान् ग्रन्थीन् ह्रस्वाः पालीश्च कर्णयोः ॥ ४९ ॥
 शिरोऽक्षिकूटनासौष्ठ-गण्डकर्णोरुबाहुषु ।
 ग्रीवाललाटमुष्कस्फिङ्मेढूपायूदरादिषु ॥ ५० ॥
 गम्भीरेषु प्रदेशेषु मांसलेप्त्वचलेषु च ।
 न तु वङ्गणकक्षादावल्पमांसे चले व्रणान् ॥ ५१ ॥
 वायुनिर्वाहिणः शल्यगर्भान् चारविषाम्निजान् ।
 १सीव्येच्छलास्थिशुष्कास्त्रतृणरोमाऽपनीय तु ॥ ५२ ॥
 प्रलम्बि मांसं विच्छिन्नं निवेश्य स्वनिवेशने ।
 सन्ध्यस्थि च स्थिते रक्ते स्नायवा सूत्रेण वल्कलैः ॥ ५३ ॥
 सीव्येन दूरे नासन्ने गृह्णन्नाल्पं न वा बहु ।
 २सान्त्वयित्वा ततश्चार्तं व्रणे मधुघृतद्रुतैः ॥ ५४ ॥
 अञ्जनक्षौमजमषी-फलनीशङ्खकीफलैः ।
 सरोध्रमधुकैर्दिग्धे युञ्ज्याद्वन्धादि पूर्ववत् ॥ ५५ ॥
 व्रणो निःशोणितौष्ठो यः किञ्चिदेवावलिख्य तम् ।
 सञ्जातरुधिरं सीव्येऽसन्धानं ह्यस्य शोणितम् ॥ ५६ ॥
 बन्धनानि तु देशादीन् वीक्ष्य युञ्जीत तेषु च ।
 आविकाजिनकौशेयमुष्णं, क्षौमं तु शीतलम् ॥ ५७ ॥
 शीतोष्णं तूलसन्तानकार्पासस्नायुवल्कजम् ।
 ताम्रायस्त्रपुसीसानि व्रणे मेदःकफाधिके ॥ ५८ ॥

१. पिबु = तन्तुसन्ताने दिवादिः ५० तन्तुसन्तानमत्र सूची-
 कर्म, न तु वयनम् ।

२. सान्त्व = सामप्रयोगे चु० । 'साम सान्त्वमुभे समे' अमरः ।

भङ्गे च युञ्ज्यात्फलकं चर्मवत्ककुशादि च ।
 १ स्वनामानुगताकारा बन्धास्तु दश पञ्च च ॥ ५९ ॥
 कोशस्वस्तिकमुत्तली-चीनदामानुवेष्टितम् ।
 खट्वाविवन्धस्थगिका-वितानोत्सङ्गगोष्फणाः ॥ ६० ॥
 यमकं मण्डलाख्यं च पञ्चाङ्गी चेति योजयेत् ।
 'विदध्यात्तेषु तेष्वेव कोशमङ्गुलिपर्वसु ।
 स्वस्तिकं कर्णकक्षादिस्तनेषूक्तं च सन्धिषु ॥
 मुत्तलीं मेढ्रीवादौ युञ्ज्याच्चीनमपाङ्गयोः ।
 सम्बाधेऽङ्गे तथा दाम, शाखास्वेवानुवेष्टितम् ॥
 खट्वां गण्डे हनौ शङ्खे, विबन्धं पृष्ठकोदरे ।
 अङ्गुष्ठाङ्गुलिमेढ्राग्रे स्थगिकामन्त्रवृद्धिषु ॥
 वितानं पृथुलाङ्गादौ तथा शिरसि चेरयेत् ।
 विलम्बिनि तथोत्सङ्गं, नासौष्ठ्यचिबुकादिषु ॥
 गोष्फणं सन्धिषु तथा, यमकं यमिके व्रणे ।
 वृत्तेऽङ्गे मण्डलाख्यं च, पञ्चाङ्गीं चोर्ध्वजत्रुषु ॥'
 यो यत्र सुनिविष्टः स्यात्तं तेषां तत्र बुद्धिमान् ॥ ६१ ॥
 बध्नीयाद्वाढमूरुस्फिकक्षावङ्गुणमूर्धसु ।
 शाखावदनकर्णोरःपृष्ठपार्श्वगलोदरे ॥ ६२ ॥
 समं मेहनमुष्के च, नेत्रे सन्धिषु च श्लथम् ।
 बध्नीयाच्छिथिलस्थाने वातश्लेष्मोद्भवे समम् ॥ ६३ ॥

१. स्वेषां नामसु योगरूढेषु शब्देषु अनुगतोऽनुसृतः प्रकृति-
 प्रत्ययार्थलभ्य आकार आकृतिर्येषान्ते तादृशाः-अन्वर्थनामानः पञ्च-
 दश बन्धाः कोशादि-पञ्चाङ्गीपर्यन्ताः ।

गाढमेव समस्थाने, भृशं गाढं तदाशये ।
 शीते वसन्तेऽपि च तौ मोक्षणीयौ व्यहात्यहात् ॥ ६४ ॥
 पित्तरक्तोत्थयोर्बन्धो गाढस्थाने समो मतः ।
 समस्थाने श्लथो, नैव शिथिलस्याशये तथा ॥ ६५ ॥
 सायम्प्रातस्तयोर्मोक्षो ग्रीष्मे शरदि चेप्यते ।
 अवद्धो दंशमशक-शीतवातादिपीडितः ॥ ६६ ॥
 दुष्टीभवेच्चिरं चात्र न तिष्ठेत्स्नेहभेषजम् ।
 कृच्छ्रेण ^१शुद्धिं रूढिं वा याति रूढो विवर्णताम् ॥ ६७ ॥
 बद्धस्तु चूर्णितो भग्नो विश्लिष्टः पाटितोऽपि वा ।
 छिन्नस्नायुसिरोऽप्याशु सुखं संरोहति व्रणः ॥ ६८ ॥
 उत्थानशयनाद्यासु सर्वेहासु न पीड्यते ।
 उद्वृत्तौष्ठः समुत्सन्नो विषमः कठिनोऽतिरूक् ॥ ६९ ॥
 समो मृदुररूक् शीघ्रं व्रणः शुध्यति रोहति ।
 स्थिराणामल्पमांसानां रौक्ष्यादनुपरोहताम् ॥ ७० ॥
 प्रच्छाद्यमौषधं पत्रैर्यथादोषं यथर्तुं च ।
 अजीर्णतरुणाच्छिद्रैः समन्तात्सुनिवेशितैः ॥ ७१ ॥
 धौतैरकर्कशैः क्षीरिभूर्जार्जुनकदम्बजैः ।
 कुष्ठिनामग्निदग्धानां पिटिकामधुमेहिनाम् ॥ ७२ ॥
 कर्णिकाश्चोन्दुरुविषे क्षारदग्धा विषान्विताः ।
 बन्धनीया न मांस्पाके गुदपाके च दारुणे ॥ ७३ ॥

१. शुद्धिम् = स्वच्छतां, रूढिं = रोहणम् । रूढ-बीजजन्मनि
 प्रादुर्भावे च ।

क्षीर्यमाणाः सस्त्रदाहाः शोफावस्थाविसर्पिणः ।
 अरक्षया व्रणे यस्मिन् मक्षिका निक्षिपेत्कृमीन् ॥ ७४ ॥
 ते भक्षयन्तः कुर्वन्ति रुजाशोफास्त्रसंस्त्रवान् ।
 सुरसादिं प्रयुञ्जीत तत्र धावनपूरणे ॥ ७५ ॥
 सप्तपर्णकरञ्जार्क-निम्बराजादनत्वचः ।
 गोमूत्रकल्कितो लेपः सेकः चाराम्बुना हितः ॥ ७६ ॥
 प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा व्रणं तानाशु निर्हरेत् ।
 न चैनं ^१त्वरमाणोऽन्तः सदोषमुपरोहयेत् ॥ ७७ ॥
 सोऽल्पेनाप्यपचारेण भूयो विकुरुते यतः ।
 रूढेऽप्य ^२जीर्णव्यायामव्यवायादीन् विवर्जयेत् ॥ ७८ ॥
 हर्षं क्रोधं भयं चापि यावदास्थैर्यसम्भवात् ।
 आदरेणानुवर्त्योऽयं ^३मासान् षट् सप्त वा विधिः ॥ ७९ ॥
 उत्पद्यमानासु च तासु तासु
 वार्तासु दोषादिबलानुसारी ।
 तैस्तैरूपायैः प्रयतश्चिकित्से-
 दालोचयन् विस्तरमुत्तरोक्तम् ^४ ॥ ८० ॥
 इति एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

१. त्वरमाणः शीघ्रतां कुर्वन् सन् अन्तः सदोषं व्रणं नोपरोहयेत्, किन्तु शुद्धान्तःपूयादिदोषं सन्तं शनैरारोपयेत् ।

२. रूढेऽपि व्रणेऽजीर्णादीन् विवर्जयेत् ।

३. अयमजीर्णादिवर्ज्यनविधिः षट् सप्त वा मासान् आदरेणाऽनुवर्त्यः । ४. इन्द्रवज्रया व्रणाऽध्यायमुपसंहरति । इत्येकोनत्रिंशः ।

त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातः^१ क्षाराग्निकर्मविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘सर्वशस्त्रानुशस्त्राणां क्षारः श्रेष्ठो बहूनि यत् ।

छेद्यभेद्यादिकर्माणि कुरुते विषमेष्वपि ॥ १ ॥

दुःखावचार्यशस्त्रेषु तेन सिद्धिमयात्सु^२ च ।

अतिकृच्छ्रेषु रोगेषु यच्च पानेऽपि युज्यते ॥ २ ॥

स पेयोऽर्शोऽग्निसादाऽश्म-गुल्मोदर-गरादिषु ।

योज्यः साक्षान्मपश्चित्रबाह्यार्शःकुष्ठसुप्तिषु ॥ ३ ॥

भगन्दरार्बुदग्रन्थि-दुष्टनाडीव्रणादिषु ।

न तूभयोऽपि योक्तव्यः पित्ते रक्ते चलेऽबले ॥ ४ ॥

ज्वरेऽतिसारे हृन्मूर्ध-रोगे पाण्डुवामयेऽरुचौ ।

तिमिरे कृतसंशुद्धौ श्वयथौ सर्वगात्रगे ॥ ५ ॥

भीरुगर्भिण्यृतुमतीप्रोद्वृत्तफलयोनिषु ।

अजीर्णेऽन्ने शिशौ वृद्धे धमनीसन्धिमर्मसु ॥ ६ ॥

तरुणास्थिसिरास्नायु-सेवनीगलनाभिषु ।

देशेऽल्पमांसे वृषणमेढ्रस्रोतोन्खान्तरे ॥ ७ ॥

बध्मरोगादृतेऽक्षणेऽश्व शीतवर्षोष्णदुर्दिने ।

१. क्षारकर्मविधिः, अग्निकर्मविधिश्चास्मिन्नध्याये ।

२. या प्रापणेऽदादिः, शत्रन्तः यान्, यान्तौ, यान्तः, नञ्-
समासे सप्तमीबहुवचने अयात्सु, सिद्धिमयात्सु = सिद्धिमप्राप्नुवत्सु =
असिद्धयत्सु-इति फलितम् ।

क्षारक्रियामाह—

कालमुष्कक-शम्पाक-कदली-पारिभद्रकान् ॥ ८ ॥
 अश्वकर्ण-महा^१वृक्ष-पलाशाऽऽस्फोटवृक्षकान् ।
 इन्द्रवृक्षाऽर्कपूतीक-नक्तमालाऽश्वमारकान् ॥ ९ ॥
 काकजङ्घामपामार्गमग्निमन्थाऽग्नितिल्वकान् ।
 सार्द्रान् समूलशाखादीन् खण्डशः परिकल्पितान् ॥ १० ॥
 कोशातकीश्चतस्रश्च शूकं नालं यवस्य च ।
 निवाते निचयीकृत्य पृथक् तानि शिलातले ॥ ११ ॥
 प्रक्षिप्य मुष्ककचये सुधाश्मानि^२ च दीपयेत् ।
^३ततस्तिलानां कुतलैर्दग्ध्वाऽग्नौ विगते पृथक् ॥ १२ ॥
 कृत्वा सुधाश्मनां भस्म द्रोणं त्वितरभस्मनः ।
 मुष्ककोत्तरमादाय प्रत्येकं जलमूत्रयोः ॥ १३ ॥
 गालयेदर्धभारेण महता वाससा च तत् ।
 यावत्पिच्छिलरक्ताच्छस्तीक्ष्णो जातस्तदा च तम् ॥ १४ ॥

१. महावृक्षः = सेहुण्डः । पूर्तीकः = पूतीकरञ्जः, नक्तमालः = चिरबिल्वः (चिलबिल) इति प्रसिद्धः करअमेदायुभौ ।

२. अश्मन् = पुमान्, अत्र नपुंसकप्रयोगश्चन्द्रोऽनुरोधात् । सुधाश्मनश्च दीपयेत्-इति मकारोत्तराऽकारस्य, वङ्गीयोच्चारणरीत्या पाठेन गुरुत्वे, न च्छन्दोभङ्गः, नापि पुंस्त्वत्यागः । गुरुत्वं, दीर्घत्वञ्च, भिन्नमेव छन्दःशास्त्रे, अत एव 'यशोधनो धेनुमृधेर्मुमोच' इत्यत्र चकारोत्तराकारस्याऽदीर्घस्यापि गुरुत्वम् ।

३. तिलानां कुतलैस्तिलकाष्ठैः । कुन्तालैरित्यपि पाठः ।

गृहीत्वा क्षारनिष्यन्दं पचेह्यौघां विघट्टयन् ।
 पच्यमाने ततस्तस्मिंस्ताः सुधाभस्मशर्कराः ॥ १५ ॥
 शुक्ति-क्षार-पङ्क-शङ्ख-नाभीश्चायसभाजने ।
 कृत्वाऽग्निवर्णान्बहुशः क्षारोत्थे कुडवोन्मिते ॥ १६ ॥
 निर्वाप्य पिष्ट्वा तेनैव प्रतीवापं विनिक्षिपेत् ।
 श्लक्ष्णं ^१शकृद् दक्ष-शिखि-गृध्र-कङ्क-कपोतजम् ॥ १७ ॥
 चतुष्पात्पक्षिपित्तालमनो ह्वालवणानि च ।
 परितः सुतरां चातो दर्व्या तमवघट्टयेत् ॥ १८ ॥
 सबाष्पैश्च यदोत्तिष्ठेद्बुद्बुदैर्लेहवद्धनः ।
 अवतार्य तदा शीतो यवराशावयोमये ॥ १९ ॥
 स्थाप्योऽयं मध्यमः क्षारोऽऽ न तु पिष्ट्वा क्षिपेन्मृदौ ।
 निर्वाप्यापनयेत्तीक्ष्णे पूर्ववत् प्रतिवापनम् ॥ २० ॥
 तथा लाङ्गलिकादन्तिचिब्रकातिविषावचाः ।
 स्वर्जिकाकनकक्षीरिहिङ्गुपूतीकपल्लवाः ॥ २१ ॥
 तालपत्री बिडं चेति, सप्तरात्रात्परं तु सः ।
 योज्यःऽऽ तीक्ष्णोऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्वर्बुदादिषु ॥ २२ ॥
 मध्येष्वेष्वेव मध्योऽन्यः पित्तास्त्रगुदजन्मसु ।
 बलार्थं क्षीणपानीये क्षाराम्बु पुनरावपेत् ॥ २३ ॥
 नातितीक्ष्णमृदुः श्लक्ष्णः पिच्छिलः शीघ्रगः सितः ।
 शिखरी सुखनिर्वाप्यो न विष्यन्दि न चातिरूक् ॥ २४ ॥
 क्षारो दशगुणः ^२शस्त्रतेजसोरपि कर्मकृत् ।

१. दक्षः = कुक्कुटो वन्यः । शिखी = मयूरः ।

२. शस्त्रञ्च तेजश्च शस्त्रतेजसी तयोः, शस्त्रं प्रसिद्धं तेजोऽग्निः ।

१ आचूषन्निव संरम्भाद्वात्रमापीडयन्निव ॥ २५ ॥
 सर्वतोऽनुसरन् दोषानुन्मूलयति मूलतः ।
 कर्म कृत्वा गतरुजः स्वयमेवोपशम्यति ॥ २६ ॥
 क्षारसाध्ये गदे छिन्ने लिखिते स्त्रावितेऽथवा ।
 क्षारं शलाकया दत्त्वा प्लोतप्रावृतदेहया ॥ २७ ॥
 मात्राशतमुपेक्षेत ॥ तत्रार्शःस्वावृताननम् ।
 हस्तेन यन्त्रं कुर्वीत ॥ वर्त्मरोगेषु वर्त्मनी ॥ २८ ॥
 निर्भुज्य पितुनाऽऽच्छाद्य कृष्णभागं विनिक्षिपेत् ।
 पद्मपत्रतनुः क्षारलेपो, घ्राणार्बुदेषु च ॥ २९ ॥
 प्रत्यादित्यं निषण्णस्य समुन्नम्याग्रनासिकाम् ।
 मात्रा विधार्यः पञ्चाशत्तद्वदशसि कर्णजे ॥ ३० ॥
 क्षारं प्रमार्जनेनानु परिमृज्यावगम्य च ।
 सुदग्धं घृतमध्वक्तं तत्पयोमस्तुकाज्जिकैः ॥ ३१ ॥
 निर्वापयेत्ततः साज्यैः स्वादुशीतैः प्रदेहयेत् ।
 अभिष्यन्दीनि भोज्यानि भोज्यानि क्लेदनाय च ॥ ३२ ॥
 यदि च स्थिरमूलत्वात्क्षारदग्धं न शीर्यते ।
 धान्याम्लबीजयष्ट्याह्न-तिलैरालेपयेत्ततः ॥ ३३ ॥
 तिलकल्कः समधुको घृताक्तो ब्रणरोपणः ।
 पक्कजम्बवसितं सन्नं सम्यग्दग्धम् ॥ विपर्यये ॥ ३४ ॥
 ताम्रतातोदकण्ड्वाद्यैर्दुर्दग्धम् ॥ पुनर्दहेत् ।
 अतिदग्धे स्त्रवेद्रक्तं मूर्च्छादाहज्वरादयः ॥ ३५ ॥

१. चूष पाने—इत्यस्मादाहुर्पूर्वात्-शतृप्रत्ययः ।

गुदे विशेषाद्विण्मूत्र-संरोधोऽतिप्रवर्तनम् ।
 पुंस्रवोपघातो मृत्युर्वा गुदस्य शातनाद्भ्रुवम् ॥ ३६ ॥
 नासायां नासिकावंश-दरणाकुञ्चनोद्भवः ।
 भवेच्च विषयाज्ञानम् तद्वच्छ्रोत्रादिकेष्वपि ॥ ३७ ॥
 विशेषादत्र सेक्रोऽम्लैर्लंपो मधु घृतं तिलाः ।
 वातपित्तहरा चेष्टा सर्वेव शिशिरा क्रिया ॥ ३८ ॥
 अम्लो हि शीतः स्पर्शेन चारस्तेनोपसंहितः ।
 यात्याशु ^१स्वादुतां तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम् ॥ ३९ ॥
 'विषाग्निशस्त्राशनिमृत्युतुल्यः चारो भवेदल्पमतिप्रयुक्तः ।
 स धीमता सम्यगनुप्रयुक्तो रोगान्निहन्त्यादचिरेण घोरान्' ॥

अग्निकर्मविधिमाह—

अग्निः ^२क्षारादपि श्रेष्ठस्तद्गन्धानामसम्भवात् ।
 भेषज-क्षार-शस्त्रैश्च नसिद्धानां प्रसाधनात् ॥ ४० ॥
 त्वचि मांसे सिरास्त्रायुसन्ध्यस्थिषु स युज्यते ।
 मषाङ्गलानिमूर्धार्ति-मन्थकीलतिलादिषु ॥ ४१ ॥
 त्वग्दाहो वर्तिगोदन्त-सूर्यकान्तशरादिभिः ।

१. स्वादुतां = मधुरताम् ।

२. अग्निः क्षारकर्मणोऽपि श्रेष्ठः, कुतः ? अग्निदग्धानां रोगाणां
 पुनरनुत्पत्तिरित्येको हेतुः, द्वितीयमाह-भेषजानि च क्षाराश्च शस्त्राणि
 च-तैः, न सिद्धाः, नसिद्धाः, नशब्देन 'सहस्रपा' इति समामः, अतो
 नलोपो न, तेषां नसिद्धानामसिद्धानामचिकित्स्यानां रोगाणाम् प्रक-
 र्षेण साधनात्संशमनाच्चाऽग्निः श्रेष्ठः ।

अर्शोभगन्दरग्रन्थि-नाडीदुष्टव्रणादिषु ॥ ४२ ॥
 मांसदाहो मधुस्नेह-जाम्बवौष्ठगुडादिभिः ।
 श्लिष्टवर्त्मन्यसृक्स्त्राव-नील्यसम्यग्व्यधादिषु ॥ ४३ ॥
 सिरादिदाहस्तैरेव ॥ न दहेत्क्षारवारितान् ।
 अन्तःशल्यसृजो भिन्नकोष्ठान् भूरिव्रणानुरान् ॥ ४४ ॥
 सुदग्धं घृतमध्वक्तं स्निग्धशीतैः प्रदेहयेत् ।
 तस्य लिङ्गं स्थिते रक्ते शब्दवल्लसिकान्वितम् ॥ ४५ ॥
 पक्वतालकपोताभं सुरोहं नातिवेदनम् ।
 प्रमाददग्धवत्सर्वं दुर्दग्धाऽत्यर्थदग्धयोः ॥ ४६ ॥
 चतुर्धा तत्तु तुच्छेन सह ॥ तुच्छस्य लक्षणम् ।
 त्वग्विवर्णोप्यतेऽत्यर्थं न च स्फोटसमुद्भवः ॥ ४७ ॥
 सस्फोटदाहतीव्रोषं दुर्दग्धम् ॥ अतिदाहतः ।
 मांसलम्बनसङ्कोच-दाहधूपनवेदनाः ॥ ४८ ॥
 सिरादिनाशस्तृणमूर्च्छा-व्रणगाम्भीर्यमृत्यवः ।
 तुच्छस्याऽग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम् ॥ ४९ ॥
 स्यानेऽस्त्रे वेदनाऽत्यर्थं विलीने मन्दता रुजः ।
 दुर्दग्धे शीतमुष्णं च युञ्ज्यादादौ ततो हिमम् ॥ ५० ॥
 सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरी-प्लव्णचन्दनगैरिकैः ।
 लिम्पेत्साज्यामृतैरूर्ध्वं पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ५१ ॥
 अतिदग्धे द्रुतं कुर्यात्सर्वं पित्तविसर्पवत् ।
 स्नेहदग्धे भृशतरं रुक्षं तत्र तु योजयेत् ॥ ५२ ॥
 शस्त्रक्षाराम्नयो यस्मान्मृत्योः परममायुधम् ।

^१अप्रमत्तो भिषक् तस्मात्तान् सम्यगवचारयेत् ॥

समाप्यते स्थानमिदं ^२हृदयस्य रहस्यवत् ।

^३अत्रार्थाः सूत्रिताः सूक्ष्माः प्रतन्यन्ते हि सर्वतः ॥ ५३ ॥

इति सूत्रस्थाने त्रिंशोऽध्यायः ।

समाप्तं चेदं प्रथमं सूत्रस्थानम् ।



१. भिषजः समाहितान् करोति-अप्रमत्त-इति ।

२. स्थानमुपसंहरति-समाप्यते इति ।

३. सूत्रस्थानशब्दार्थं विशदयति-अत्रार्थाः-इति । सर्वतः सर्वेषु स्थानेषु 'इतराभ्योऽपि दृश्यन्ते' इति स्तम्भ्यन्तात्तसिल् । इति त्रिंशः ।
इति काशीस्थ-श्रीतारादत्तपन्त-विरचितायामष्टाङ्गहृदय-टिप्पण्यां

भागीरथीनामिकायां सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥



अष्टाङ्गहृदयम्



शारीरस्थानम्



प्रथमोऽध्यायः ।

‘अथातो गर्भावक्रान्तिं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

इमि ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘शुद्धे शुक्रार्तवे सत्त्वः स्वकर्मक्लेशनोदितः ।

गर्भः सम्पद्यते युक्तिवशादग्निरिवारणौ ॥ १ ॥

१. अथ सूत्रस्थाननिरूपणानन्तरं, यतः सूत्रस्थानारम्भे ‘क्रिय-
तेऽष्टाङ्गहृदयम्-’ इति प्रतिज्ञातं, तत्रापि ‘कायवालग्रहोर्ध्वाङ्ग-’
इत्यादिना-अष्टावङ्गानि च निर्दिष्टानि, तेषु च चिकित्साश्रयेषु कायः
प्रधानम्, अतः-अष्टाङ्गार्थः=आयुर्वेदार्थः-सूत्रणानन्तरं प्रथमोद्दिष्टं
कायाऽपरपर्यायं शारीरं व्याख्यास्यामः, तत्र च तस्यापि निदान-
भूतं गर्भाऽवक्रान्ति-मयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

२. सत्त्वः=जीवः स्वस्य कर्मभिः पूर्वजन्मार्जितैः कायिक-वा-
चिक-मानसैः, क्लेशैः-अविद्याऽस्मिता-रागद्वेषाऽभिनिवेशैः नोदितः
प्रेरितः सन् गर्भः=भ्रूणः सम्पद्यते=जायते, दृष्टान्तमाह-युक्ति-

बीजात्मकैर्महाभूतैः सूक्ष्मैः सत्त्वानुगैश्च सः ।
 मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ^१ विवर्धते ॥ २ ॥
 तेजो^२ यथाऽर्करश्मीनां स्फटिकेन तिरस्कृतम् ।
 नेन्धनं दृश्यते गच्छत् , सत्त्वो गर्भाशयं तथा ॥ ३ ॥
 कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्स्वभावता^३ ।
 नानायोन्याकृतीः सत्त्वो धत्तेऽतो द्रुतलोहवत्^४ ॥ ४ ॥
 भत एव च शुक्रस्य बाहुल्याज्जायते पुमान् ।
 रक्तस्य स्त्री, तयोः साम्ये क्लीबःःशुक्रार्तवे पुनः ॥ ५ ॥
 वायुना बहुशो भिन्ने यथास्वं बह्वपत्यता ।
^५वियोनिविकृताकारा जायन्ते विकृतैर्मलैः^६ ॥ ६ ॥

योगः-स्त्रीपुरुषयोरिव-उत्तराऽरणितलारण्योः संयोगे मन्थान-कर-
 णक-मन्थनक्रियासहितः यथाऽरणावशिजनकस्तथेति ।

१. कुक्षौ = जठरे ।

२. यथा स्फटिकेन = स्फटिकमणिना, काचादिना वा स्वच्छ-
 पदार्थेन तिरस्कृतं = व्यवहितम्-अर्करश्मीनां तेजः (कर्तृ) इन्धनं
 (कर्म) गच्छत् = पविशत् = संक्रामत्-न दृश्यते, तथा सत्त्वो
 जीवो गर्भाशयं गच्छन् सन् न दृश्यते-इत्यन्वयः ।

३. तत्स्वभावता = कारणस्वभावता (कारणगुणाः कार्यगुणाना-
 रभन्ते) इति न्यायात् ।

४. यथा-द्रुताः = द्रवीभूता लोहाः = स्वर्गादिधातवः, दीर्घवर्तु-
 लाद्याधाराऽकारं रूपं दधति तद्वदिति-नानायोन्याऽऽकृतीः सत्त्वो
 धत्ते । अतः = तत्स्वभावत्वात् ।

५. वियोनयश्च विकृताऽकाराश्चेति द्वन्द्वः । ६. मलैः = वातादिभिः ।

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम् ।

^१वत्सराद् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम् ॥ ७ ॥

पूर्णषोडशवर्षा स्त्री पूर्णविंशेन सङ्गता ।

शुद्धे गर्भाशये मार्गे रक्ते शुक्लेऽनिले हृदि ॥ ८ ॥

वीर्यवन्तं सुतं सूतेऽततो न्यूनाब्दयोः पुनः ।

रोग्यल्पायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥ ९ ॥

^२वातादि कुणप-ग्रन्थि-पूयक्षीण-मला-ह्वयम् ।

बीजासमर्थं रेतोऽस्रम्ऽस्वलङ्कैर्दोषजं वदेत् ॥ १० ॥

रक्तेन कुणपं, श्लेष्मवाताभ्यां ग्रन्थिसन्निभम् ।

पूयाभं रक्तपित्ताभ्यां, क्षीणं मारुतपित्ततः ॥ ११ ॥

कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यं तु त्रिदोषं मूत्रविट्प्रभम् ।

कुर्याद्वातादिभिर्दुष्टे स्वौषधम्ऽकुणपे पुनः ॥ १२ ॥

धातुकीपुष्पखदिर-दाडिमारुनसाधितम् ।

पाययेत्सर्पिरथवा विपक्वमसनादिभिः ॥ १३ ॥

पलाशभस्माश्मभिर्वा ग्रन्थ्याभेऽपूयरेतसि ।

१. उपलक्षणमेतत्-न्यूनाधिक-कालेऽपि रजसः प्रवृत्ति-दशनात् ।

२. वातादयश्च, कुणपञ्च, ग्रन्थिश्च, पूयश्च, क्षीणञ्च मले च-
तानि आह्वयः सम्ज्ञा यस्य-रेतोऽस्रस्य, तत् बीजे = कारणत्वे, अस-
मर्थमयोग्यम्, वातरेतः, पित्तरेतः, कफरेतः, कुणपरेतः, ग्रन्थिरेतः,
पूयरेतः, क्षीणरेतः, मूत्ररेतः, पुरीषरेतः, एवं वाताऽस्रं पित्ताऽस्रमि-
त्यादि च योजनीयम् । रेतः = शुक्रम् । अस्रम् = असृक् कुण-
पादयः शब्दाः सादृश्यसम्बन्धेन लाक्षगिकाः ।

परुषकवटादिभ्याम्❁क्षीणे शुक्रकरी क्रिया ॥ १४ ॥
 'स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरुद्धमनुवासितम् ।
 योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरवस्तिभिः ॥'
 संशुद्धो विट्प्रभे सर्पिर्हिङ्गुसेव्यादिसाधितम्^१ ।
 पिबेत्* ग्रन्थ्यार्तवे पाठाव्योषवृक्षकजं जलम् ॥ १५ ॥
 पेयं कुणपपूयास्त्रे चन्दनं वक्ष्यते तु यत् ।
 गुह्यारोगे च तत्सर्वं कार्यं सोत्तरवस्तिकम् ॥ १६ ॥
 शुक्रं शुक्लं गुरु स्निग्धं मधुरं बहलं बहु ।
 घृतमाक्षिकतैलाभं सद्गर्भाय ❁ आर्तवं पुनः ॥ १७ ॥
 लाक्षारसशशास्त्राभं धौतं यच्च विरज्यते ।
 शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्तं मिथुनं मिथः ॥ १८ ॥
 स्नेहैः पुंसवनैः स्निग्धं शुद्धं शीलितवस्तिकम् ।
 नरं विशेषात्क्षीराज्यैर्मधुरौषधसंस्कृतैः ॥ १९ ॥
 नारीं तैलेन माषैश्च पित्तलैः समुपाचरेत् ।
 क्षामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ॥ २० ॥
 स्वस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कां विद्यादुतुमतीं स्त्रियम् ।
 पद्मं सङ्कोचमायाति दिनेऽतीते यथा, तथा ॥ २१ ॥
 ऋतावतीते योनिः, सा शुक्रं नातः^२ प्रतीच्छति ।
 मासेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृती पुनः ॥ २२ ॥
 प्लक्कुष्णं विगन्धं च वायुर्योनिमुखान्नुदेत् ।

१. 'हिङ्गुसेव्याग्निसाधितमि'ति च पाठः । तत्र अग्निः=चित्रकः ।

२. अतः=सङ्कुचितत्वात् कारणात्, न प्रतीच्छति =न गृह्णाति ।

रजस्वलानियमाः ।

ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी श्यहम् ॥ २३ ॥
^१मृजालङ्काररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ।
 क्षैरेयं यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ॥ २४ ॥
 पर्णे शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी ।
 चतुर्थेऽह्नि ततः स्नाता शुक्लमाल्याम्बरा शुचिः ॥ २५ ॥
 इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम् ।
 ऋतुस्तु द्वादश निशाः पूर्वास्तिस्त्रोऽत्र निन्दिताः ॥ २६ ॥
 एकादशी च युग्मासु स्यात्पुत्रोऽन्यासु कन्यका ।
 उपाध्यायोऽथ पुत्रीयं ^२कुर्वीत विधिवद्विधिम् ॥ २७ ॥
 नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मन्त्रवर्जितम् ।
 अवन्ध्य एवं संयोगः स्यादपत्यं च कामतः ॥ २८ ॥
 सन्तो ह्याहुरपत्यार्थं दम्पत्योः सङ्गतिं रहः ^३ ।
 दुरपत्यं कुलाङ्गारो गोत्रे जातं महत्यपि ॥ २९ ॥
 इच्छेतां यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ ।
 चिन्तयेतां जनपदांस्तदाचारपरिच्छदौ ॥ ३० ॥
 कर्मान्ते च पुमान् सर्पिःक्षीरशाल्योदनाशितः ।
 प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्यां मौढूर्तिकाशया ^४ ॥ ३१ ॥

१. मृजा = शुद्धिः । २. पुत्रीयं = यागादिकं कर्म ।

३. रहः सङ्गतिम् = शास्त्रोक्तविधिना शुभापत्यकामनया-रतिम्-
 सन्तः सदपत्यार्थमाहुः, यतः महति गोत्रेऽपि जातं दुरपत्यम् = दुष्ट-
 सन्ततिः कुलस्य अङ्गारमिव कुलाङ्गारमित्यन्वयः ।

४. शुभसमयबोधकस्य दैवशस्याऽऽशया ।

आरोहेत् स्त्री तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ।
 तैलमाषोत्तराहारा तत्र मन्त्रं^१ प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥
 ओम् अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता त्वां
 दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवेति ।
 ब्रह्मा बृहस्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ ।
 भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु मे सुतम् ॥ ३३ ॥
 सान्त्वयित्वा ततोऽन्योन्यं संविशेतां^२ मुदान्वितौ ।
 उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदङ्गैः सुसंस्थितैः ॥ ३४ ॥
 तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।
^३लिङ्गं तु सद्योगर्भाया योन्या बीजस्य सङ्ग्रहः ॥ ३५ ॥
 तृप्तिर्गुरुत्वं स्फुरणं शुक्रास्त्राऽननुबन्धनम् ।
 हृदयस्पन्दनं तन्द्रा तृङ्ग्लानिर्लोमहर्षणम् ॥ ३६ ॥
 अव्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कललीभवेत् ।
 गर्भः पुंसवनान्यत्र पूर्वं व्यक्तेः प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥
 बली पुरुषकारो हि दैवमप्यतिवर्तते ।
 पुष्ये पुरुषकं हैमं राजतं वाऽथवाऽऽयसम् ॥ ३८ ॥
 कृत्वाऽग्निवर्णं निर्वाप्य क्षीरे तस्याञ्जलिं पिबेत् ।
 गौरदण्डमपामार्गं जीवकर्पभसैर्यकान् ॥ ३९ ॥

१. मन्त्रम् = अहिरसि-आयुरसीत्यादिकम्, चरकोक्तम् ।

२. संविशेताम् = सङ्गच्छेताम्, संविशेतामिति पाठान्तरम् ।

३. लिङ्गं = चिह्नम्, सद्योगर्भायाः = गृहीतगर्भायाः, योन्या-
 करणभूतया ।

पिबेत्पुष्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसमस्तशः ।
 क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे स्वयम् ॥ ४० ॥
 पुत्रार्थं दक्षिणे सिन्धुद्वामे दुहितृवाञ्छया ।
 पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् ॥ ४१ ॥
 नासयाऽऽस्येन वा पीतं वटशुङ्गाष्टकं तथा ।
 ओषधीर्जीवनीयाश्च बाह्यान्तरूपयोजयेत् ॥ ४२ ॥
 उपचारः प्रियहितैर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भघृक् ।
 नवनीतघृतक्षीरैः सदा चैनामुपाचरेत् ॥ ४३ ॥
 अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।
 अकालजागरस्वप्नं कठिनोत्कटकासनम् ॥ ४४ ॥
 शोकक्रोधभयोद्वेग-वेगश्च द्वाविधारणम् ।
 उपवासाध्वतीक्ष्णोष्ण-गुरुविष्टम्भिभोजनम् ॥ ४५ ॥
 रक्तं निवसनं श्वभ्रकूपेक्षां मद्यमामिषम् ।
 उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो नेच्छन्ति तस्यजेत् ॥ ४६ ॥
 तथा रक्तस्रुतिं शुद्धिं बस्तिमामासतोऽष्टमात् ।
 एभिर्गर्भः स्रवेदामः कुक्षौ शुष्येन्म्रियेत वा ॥ ४७ ॥
 वातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जान्धजडवामनः ।
 पित्तलैः खलतिः पिङ्गः, शिवत्री पाण्डुः कफात्मभिः ॥ ४८ ॥
^१व्याधींश्चास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरौषधैर्जयेत् ।

१. अस्याः गर्भवत्याः, व्याधीन् = रोगान्, मृदुभिः सुखकरैः,
 तीक्ष्णत्वरहितैः, औषधैः = अगदैः, जयेत् = अभिभवेत्, न तु
 कठोरैः, दुःखकरैः, तीक्ष्णैरित्यर्थः ।

द्वितीये मासि कललाद्धनः पेश्यथवाऽर्बुदम् ॥ ४९ ॥
 पुंस्त्रीक्रीबाः क्रमात्तेभ्यः तत्र व्यक्तस्य लक्षणम् ।
 क्षामता गरिमा कुक्षेर्मूर्च्छा च्छर्दिरोच्चकः ॥ ५० ॥
 जृम्भा प्रसेकः सदनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ।
 अम्लेष्टता स्तनौ पीनौ सस्तन्यौ कृष्णचूचुकौ ॥ ५१ ॥
 पादशोफो विदाहोऽन्ये श्रद्धाश्च विविधात्मिकाः^१ ।
 मातृजं ह्यस्य हृदयं मातुश्च हृदयेन तत् ॥ ५२ ॥
 सम्बद्धं तेन^२ गर्भिण्या नेष्टं श्रद्धाविमाननम् ।
 देयमप्यहितं तस्यै^३ हितोपहितमल्पकम् ॥ ५३ ॥
 श्रद्धाविघाताद्वर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ।

गात्रव्यक्तिमाह—

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपञ्चकम् ॥ ५४ ॥
 मूर्धा द्वे सक्थिनी बाहू सर्वसूक्ष्माङ्गजन्म च ।
 सममेव हि मूर्धायैर्ज्ञानं च सुखदुःखयोः ॥ ५५ ॥

१. विविधात्मिकाः भोजन—पान—दर्शन—श्रवणादिविषयिकाः,
 श्रद्धाः = स्पृहाः ।

२. तेन = गर्भिणी—गर्भयोः हृदयस्य सम्बद्धत्वेन हेतुना गर्भि-
 ण्याः, श्रद्धायाः = दोहदस्य, विमाननम् = असम्पादनम् इष्टं न,
 अत एव कालिदासः—‘उपेत्य सा दोहददुःखशीलताम्, यदेव वज्रे
 तदपश्यदाहतम्—’ इति । ‘प्रजावती दोहदशंसिनी ते, तपोवनेषु स्पृह-
 यालुरेषा—इति च ।

३. हितेन—उपहितं = युक्तं हितोपहितम्, तच्च—अल्पकम् =
 श्रद्धानिवृत्तिमात्रफलकम् ।

गर्भस्य नाभौ मातुश्च हृदि नाडी निबध्यते ।
 यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया ॥ ५६ ॥
 चतुर्थे व्यक्ताऽङ्गानां, चेतनायाश्च पञ्चमे ।
 षष्ठे स्नायुसिरारोमबलवर्णनखत्वचाम् ॥ ५७ ॥
 सवैः सर्वाङ्गसम्पूर्णो भावैः पुण्यति सप्तमे ।
 गर्भेणोत्पीडिता दोषास्तस्मिन्^१ हृदयमाश्रिताः ।
 कण्डूं विदाहं कुर्वन्ति गर्भिण्याः किक्किसानि^२ च ॥ ५८ ॥
 नवनीतं हितं तत्र कोलाम्बुमधुरौषधैः ।
 सिद्धमल्पपटुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम् ॥ ५९ ॥
 चन्दनोशीरकल्केन लिम्पेदूरुस्तनोदरम् ।
 श्रेष्ठया वैणहरिण-शशशोणितयुक्तया ॥ ६० ॥
^३अश्वघ्नपत्रसिद्धेन तैलेनाऽभ्यज्य मर्दयेत् ।
 पटोलनिम्बमज्जिष्ठा-सुरसैः सेचयेत्पुनः ॥ ६१ ॥
 दार्वीमधुकतोयेन मृजां च परिशीलयेत् ।
 ओजोऽष्टमे सञ्चरति^४ मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ६२ ॥

१. तरिमन्-सप्तमे मासे-गर्भेणोत्पीडितायाः, गर्भिण्या हृदय-
 माश्रिता 'वातादयो' दोषाः कण्डू' विदाहं किक्किसानि च कुर्वन्ते-
 इत्यन्वयः ।

२. गर्भिण्याः-ऊरुस्तनोदरेषु ये बलिविशेषा रेखाकारा जायन्ते
 ते किक्किससंज्ञाः, अरुणः ।

३. अश्वघ्नः=करवीरः, हयमाराऽपरपर्यायः ।

४. अष्टमे मासि ओजः (सर्वधातुसारोऽष्टमो धातुः) कर्तुं
 मुहुः क्रमात् कर्मभूतौ मातापुत्रौ (योनिःसम्बन्धवाचित्वादानङ्ग)

तेन तौ ग्लानमुदितौ* तत्र जातो न जीवति ।
 शिशुरोजोऽनवस्थानान्नारी^१ संशयिता भवेत् ॥ ६३ ॥
 क्षीरपेया च पेयाऽत्र^२ सघृताऽन्वासनं घृतम् ।
 मधुरैः साधितं शुद्ध्यै पुराणशकृतस्तथा ॥ ६४ ॥
 शुष्कमूलककोलाऽम्ल-कषायेण प्रशस्यते ।
 शताह्वाकल्कितो बस्तिः सतैलघृतसैन्धवः ॥ ६५ ॥
 तस्मिंस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम् ।
 वर्षाद्विकारकारी स्यात्कुक्षौ वातेन धारितः ॥ ६६ ॥
 शस्तश्च नवमे मासि स्निग्धो मांसरसौदनः ।
 बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम् ॥ ६७ ॥
 तत एव पिचुं चास्या योनौ नित्यं निधापयेत् ।

सञ्चरति तेन तौ क्रमात् ग्लानौ च मुदितौ च भवतः, यदा यत्र
 ओजःसञ्चारस्तदा स मुदितोऽन्यदा ग्लानः, तत्र = ग्लानाऽवस्थायां
 जातः शिशुर्न जीवति-सारथातोरोजसोऽभावात्, तत्र = अष्टमे
 मासि-इति तु न व्याख्येयम् अष्टममासोत्पन्नानामपि पूर्णानन्दाऽनु-
 भवपूर्वकपूर्णशुभोगदर्शनात् ।

१. यदा ओजःसञ्चारः शिशौ तदा गर्भिण्या ग्लानावस्था
 तदानीं प्रसूता जीवति न वेति? प्रश्नस्योत्तरमाह—‘नारी संशयिता
 भवेद्’ इति संशयापन्नजीविता भवेत्—अल्पौजस्का, सर्वस्य = ओजसः
 शिशौ सञ्चारे सति प्रसूता न जीवति, स्थिरौजस्काऽशतो ग्लाना
 जीवति, न हि नारी शिशुरिव सर्वथा निरौजाः सम्भवति, चिर-
 प्ररुद्धौजस्कत्वात् । २. अत्र = अष्टमे मासि ।

वातघ्नपत्रभङ्गाग्भः शीतं स्नानेऽन्वहं हितम् ॥ ६८ ॥
 निःस्नेहाङ्गीं न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत् ।
 प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं तत्पार्श्वचेष्टिनी ॥ ६९ ॥
 पुत्रामदौर्हदप्रश्न-रता पुंस्वप्नदर्शिनी^१ ।
 उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले ॥ ७० ॥
 पुत्रं सूतेऽन्यथा कन्यां या चेच्छति नृसङ्गतिम् ।
 नृत्यवादित्रगान्धर्वगन्धमाल्यप्रिया च या ॥ ७१ ॥
 क्लीवं तत्सङ्करे, तत्र मध्यं कुक्षेः समुन्नतम् ।
 यमौ पार्श्वद्वयोन्नामात्कुक्षौ द्वोऽप्यामिव स्थिते ॥ ७२ ॥
 प्राक्चैव नवमान्मासात् सा सूतिगृहमाश्रयेत् ।
 देशे प्रशस्ते सम्भारैः सम्पन्नं साधकेऽहनि ॥ ७३ ॥
 तत्रोदीक्षेत सा सूतिं^२ सूतिकापरिवारिता ।
 अथ श्वः प्रसवे ग्लानिः कुक्ष्यक्षिश्लथता क्लमः ॥ ७४ ॥
 अधोगुरुत्वमरुचिः प्रसेको बहुमूत्रता ।
 वेदनोरुदरकटी-पृष्ठहृद्वस्तिवङ्क्षणे ॥ ७५ ॥
 योनिभेदरुजातोद-स्फुरणस्रवणानि च ।
^३आवीनामनु जन्मातस्ततो गर्भोदकस्रुतिः ॥ ७६ ॥
 अथोपस्थितगर्भा^४ तं कृतकौतुकमङ्गलाम् ।
 हस्तस्थपुत्रामफलां स्वभ्यक्तोष्णाम्बुसेचिताम् ॥ ७७ ॥

१. पुंल्लिङ्गा ये पदार्थाः सूर्य-वृक्ष-गजादयस्तद्विषयकस्वप्न-दर्शिनी ।

२. सूतिकाभिरनेकवाराऽनुभूत-प्रसवे-वेदनाभिरुपसूतिकाकर्म-कुशलाभिः सङ्गिता । ३. आवीनां = प्रसववेदनानाम् ।

पाययेत्सघृतां पेयांॐ तनौ भूशयने स्थिताम् ।
 आभुग्नसक्थिमुत्तानामभ्यक्ताङ्गीं पुनः पुनः ॥ ७८ ॥
 अधो नाभेर्विमृदनीयात्कारयेज्जृम्भचङ्क्रमम् ।
 गर्भः प्रयात्यवागेवं, तल्लिङ्गं हृद्विमोक्षतः ॥ ७९ ॥
 आविश्य जठरं गर्भो बस्तेरुपरि तिष्ठति ।
 आव्योऽभित्वरयन्त्येनां खट्वामारोपयेत्ततः ॥ ८० ॥
 अथ सम्पीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसारयेत् ।
 मृदु पूर्वं प्रवाहेत् वाढमाप्रसवाच्च सा ॥ ८१ ॥
 हर्षयेत्तां मुहुः पुत्र-जन्मशब्दजलानिलैः ।
 प्रत्यायान्ति तथा प्राणाः सूतिक्लेशावसादिताः ॥ ८२ ॥
 धूपयेद्गर्भसङ्गे तु योनिं कृष्णाहिकञ्चुकैः ।
 हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत् ॥ ८३ ॥
 सुवर्चलां विशल्यां वा 'जरायवपतनेऽपि' च ।
 कार्यमेतत्तथोत्तिप्य बाह्वोरेनां विकम्पयेत् ॥ ८४ ॥
 कटीमाकोटयेत्पाण्यां स्फिजौ गाढं निपीडयेत् ।
 तालुकण्ठं स्पृशेद्वेण्या मूर्ध्नि दद्यात्स्नुहीपयः ॥ ८५ ॥
 भूर्जलाङ्गलिकीतुम्बीसर्पत्वक्कुष्ठसर्षपैः ।
 पृथग्द्वाभ्यां समस्तैर्वा योनिलेपनधूपनम् ॥ ८६ ॥
 कुष्ठतालीसकल्कं वा सुरामण्डेन पाययेत् ।
 यूषेण वा कुलत्थानां ^१बिल्वजेनासवेन वा ॥ ८७ ॥

१. बिल्वं वारिणा आप्लुत्य धान्यराशौ धारितं, तच्छीतकषायो बिल्वजकषाय-इत्युच्यते-इत्यरुणः ।

शताह्वासर्षपाजाजी-शिग्रुतीक्ष्णकचित्रकैः ।
 सहिष्णुकुष्ठमदनैर्मन्त्रे क्षीरे च सार्षपम् ॥ ८८ ॥
 तैलं सिद्धं हितं पायौ योन्यां वाऽप्यनुवासनम् ।
 शतपुष्पा-वचा-कुष्ठ-कणा-सर्षप-कल्कितः ॥ ८९ ॥
 निरूहः पातयत्याशु सस्नेहलवणोऽपराम्^१ ।
 तत्सङ्गे ह्यनिलो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात् ॥ ९० ॥
 कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्क्लृप्तनखेन वा ।
^२मुक्तगर्भापरां योनिं तैलेनाङ्गं च मर्दयेत् ॥ ९१ ॥
^३मक्कल्लाख्ये शिरोबस्तिकोष्ठशूले तु पाययेत् ।
 सुचूर्णितं यवक्षारं घृतेनोष्णजलेन वा ॥ ९२ ॥
 धान्याम्बु वा गुडव्योषत्रिजातकरजोऽन्वितम् ।
 'अथ बालोपचारेण' बालं योषिदुपाचरेत् ॥ ९३ ॥
 सूतिका क्षुद्रती तैलाद् घृताद्वा महतीं पिबेत् ।
^४पञ्चकोलकिनीं मात्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥ ९४ ॥
 वातघ्नौषधतोयं वा, तथा वायुर्न कुप्यति ।
 विशुष्यति च दुष्टासं द्वित्रिरात्रमयं क्रमः ॥ ९५ ॥
 स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत् ।

१. अपराम् = जरायुम् ।

२. गर्भश्च अपरा च गर्भाऽपरे ते मुक्ते निर्गते यस्याः योनेः सकाशात् तां योनिं तैलेन मर्दयेत्, तस्याः अङ्गञ्च प्रत्येकं तैलेन मर्दयेदुपसूतिका । ३. मक्कल्लाऽऽख्ये रोगे-उत्पन्ने सति ।

४. पञ्चकोलवतीं महतीं मात्रामित्यन्वयः ।

पीतवत्याश्च जठरं^१ यमकाक्तं विवेष्टयेत् ॥ ९६ ॥
 जीर्णे स्नाता पिबेत्पेयां पूर्वोक्तौषधसाधिताम् ।
 द्यहादूर्ध्वं विदार्यादि-वर्गकाथेन साधिता ॥ ९७ ॥
 हिता यवागूः स्नेहाड्या सात्म्यतः पयसाऽथवा ।
 सप्तरात्रात्परं चास्यै क्रमशो बृंहणं हितम् ॥ ९८ ॥
 द्वादशाहेऽनतिक्रान्ते पिशितं नोपयोजयेत् ।
 यत्नेनोपचरेत्सूतां, दुःसाध्यो हि तदामयः^२ ॥ ९९ ॥
 गर्भवृद्धिप्रसवरूक्-क्लेदास्त्रस्तुतिपीडनैः ।
 एवं च मासादध्यर्धान्मुक्ताऽऽहारादियन्त्रणा^३ ॥ १०० ॥
 गतसूताऽभिधाना स्यात्पुनरात्तवदर्शनात् ॥

द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातो गर्भव्यापदं शारीरं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'गर्भिण्याः परिहार्याणां सेवया रोगतोऽथ वा ।
 पुण्ये दृष्टेऽथवा शूले बाह्यान्तः स्निग्धशीतलम् ॥ १ ॥

१. यमकाक्तं-मिश्रिताभ्यां तैलघृताभ्याम् अभ्यक्तम् ।

२. तदाऽऽमयः = प्रसूतिकाया रोगः ।

३. मुक्ता = शिथिलीभूता आहारादीनां यन्त्रणा = पथ्यनियमो
 यस्याः, गतं सूताऽभिधानं-प्रसूतिव्यपदेशो यस्याः तादृशी पुनरा-
 त्तवदर्शनात्स्यात् ।

सेव्याऽम्भोजऽहिम-क्षीरि-वल्ककल्काऽज्यलेपितान्^१ ।
 धारयेद्योनिबस्तिभ्यामार्द्रार्द्रान् पिचुनक्तकान्^२ ॥ २ ॥
 शतधौतघृताक्तां स्त्रीं तदम्भस्यवगाहयेत् ।
 ससिताक्षौद्रकुमुद-कमलोत्पलकेसरम् ॥ ३ ॥
 लिह्यात् क्षीरघृतं खादेच्छृङ्गाटक-कसेरुकम् ।
 पिबेत्कान्ताब्जशालुक-बालोदुम्बरवत्पयः ॥ ४ ॥
 शृतेन शालिकाकोली-द्विबलामधुकेक्षुभिः ।
 पयसा रक्तशाल्यज्ज, मद्यात्समधुशर्करम् ॥ ५ ॥
 रसैर्वा जाङ्गलैः ॥ शुद्धिवर्जं^३ चाऽऽस्रोक्तमाचरेत् ।
 असम्पूर्णत्रिमासायाः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ॥ ६ ॥
 आमाम्बये च ॥ तत्रेष्टं शीतं रूक्षोपसंहितम् ।
 उपवासो घनोक्षीर-गुडूच्यरलुधान्यकाः ॥ ७ ॥
 दुरालभा-पर्पटक-चन्दनाऽतिविषा-बलाः ।
 कथिताः सलिले पानं तृणधान्यानि भोजनम् ॥ ८ ॥
 मुद्गादियूषैरामे तु जिते स्निग्धादि पूर्ववत् ।
 गर्भे निपतिते तीक्ष्णं मद्यं सामर्थ्यतः पिबेत् ॥ ९ ॥
 गर्भकोष्ठविशुद्धयर्थमर्तिविस्मरणाय च ।
 लघुना पञ्चमूलेन रूक्षां पेयां ततः पिबेत् ॥ १० ॥

१. सेव्यम् = उशीरम्, अम्भोजं = पद्मम्, हिमं = चन्दनं, क्षीरि-
 णाम् = पिप्पलोऽदुम्बरादीनां वल्कलस्य = त्वचः कल्केन = पिष्टेन,
 लेपितान् = कृतलेपान् । २. पिचुनक्तकान् पिचुरूपान् वस्त्रखण्डान् ।

३. अस्रोक्तं = रक्तपित्तीक्तम् ।

पेयाममद्यपा कल्के साधितां पाञ्चकौलिके ।
 बिल्वादिपञ्चककाथे तिलोद्दालकतण्डुलैः ॥ ११ ॥
 मासतुल्यदिनान्येवं पेयादिः पतिते क्रमः ।
 लघुरस्नेहलवणो दीपनीययुतो हितः ॥ १२ ॥
 दोषधातुपरिकलेद-शोषार्थं विधिरित्ययम् ।
 स्नेहान्नवस्तयश्चोर्ध्वं बल्यदीपनजीवनाः ॥ १३ ॥
 सञ्जातसारे महति गर्भे योनिपरिस्त्रवात् ।
 वृद्धिमप्राप्नुवन् गर्भः कोष्ठे तिष्ठति सस्फुरः^१ ॥ १४ ॥
 'उपविष्टक' माहुस्तं, वर्धते तेन नोदरम् ।
 शोकोपवासरूक्षाद्यैरथवा योन्यतिस्रवात् ॥ १५ ॥
 वाते क्रुद्धे कृशः कृष्येद्गर्भो 'नागोदरं' तु तम् ।
 उदरं वृद्धमप्यत्र हीयते स्फुरणं चिरात् ॥ १६ ॥
 तयोर्बृहणवातघ्न-मधुरद्रव्यसंस्कृतैः ।
 घृतक्षीररसैस्तृप्तिरामगर्भाश्च खादयेत् ॥ १७ ॥
 तैरेव च सुभिक्षायाः क्षोभणं यानवाहनैः ।
 'लीनाख्ये' निस्फुरे श्येनगोमत्स्योच्छ्रोशबर्हिजाः ॥ १८ ॥
 रसा बहुघृता देया माषमूलकजा अपि ।
 बालबिल्वं तिलान्माषान्सक्तं पयसा पिबेत् ॥ १९ ॥
 समे^२द्यमांसं मधु वा कट्यभ्यङ्गं च शीलयेत् ।

१. स्फुरणं स्फुरः स्फुरणेन चलनेन सह वर्तते-इति-सस्फुरः,
 घअर्थे कः ।

२. मेघं = स्निग्धम्, मेदसो वर्द्धकं वा । जिमिदा स्नेहने ।

हर्षयेत्सततं चैनामेवं गर्भः प्रवर्धते ॥ २० ॥
 पुष्टोऽन्यथा वर्षगणैः कृच्छ्राज्जायेत, नैव वा ।
 'उदावर्त' तु गर्भिण्याः स्नेहैराशुतरां जयेत् ॥ २१ ॥
 योग्यैश्च बस्तिभिर्हृन्यासगर्भो स हि गर्भिणीम् ।
 गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यैर्देवतोऽपि वा ॥ २२ ॥
 मृतेऽन्तरुदरं शीतं स्तब्धं ध्मातं भृशव्यथम् ।
 गर्भास्पन्दो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं क्लमः ॥ २३ ॥
 अरतिः स्वस्तनेत्रत्वमावीनामसमुद्भवः ।
 तस्याः कोष्णाम्बुसिक्तायाः पिष्टा योनिं प्रलेपयेत् ॥ २४ ॥
 गुडं किण्वं सलवणं ^१तथाऽन्तः पूरयेन्मुहुः ।
 घृतेन कल्कीकृतया शाल्मल्यतसिपिच्छया ॥ २५ ॥
 मन्त्रैर्योगैर्जरायूक्तैर्मूढगर्भो न चेत्पतेत् ।
 अथापृच्छयेत्श्वरं वैद्यो यत्नेनाशु तमाहरेत् ॥ २६ ॥
 हस्तमभ्यज्य योनिं च साज्यशाल्मलिपिच्छया ।
 हस्तेन शक्यं तेनैव गान्त्रं च विषमं स्थितम् ॥ २७ ॥
 आञ्जनोत्पीडसम्पीड-विक्षेपोत्क्षेपणादिभिः ।
^१अनुलोम्य समाकर्षेद्योनिं प्रत्यार्जवागतम् ॥ २८ ॥

१. तथा योन्या अन्तः मुहुः पूरयेत् कया घृतेन पिष्टया-शाल्म-
 ल्यतस्योः पिच्छया-इति-सम्बन्धः । 'ड्यापोः संज्ञाछन्दसोर्वहुल-
 मि'ति, बाहुलकादतसौशब्दस्य ह्रस्वः ।

२. अनुलोम्य = आञ्जनादिभिः क्रियाभिः, अनुलोमं कृत्वा,
 योनिं प्रति-आर्जवेन = सरलतया आगतं सन्तं तं मूढगर्भम् सम्यग्
 आकर्षेत् ।

हस्तपादशिरोभिर्यो योनिं भुम्नः प्रपद्यते ।
 'पादेन योनिमेकेन भुम्नोऽन्येन गुदं च यः' ॥ २९ ॥
 विष्कम्भौ नाम तौ मूढौ^१ शस्त्रदारणमर्हतः ।
 मण्डलाङ्गुलिशस्त्राभ्यां तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ ३० ॥
 वृद्धिपत्रं हि तीक्ष्णाग्रं न योनाववचारयेत् ।
 पूर्वं शिरःकपालानि दारयित्वा विशोधयेत् ॥ ३१ ॥
 कक्षोरस्तालुचिबुकप्रदेशेऽन्यतमे ततः ।
 समालम्ब्य दृढ कर्षेत्कुशलो गर्भशङ्कुना ॥ ३२ ॥
 अभिन्नशिरसं त्वत्किंकटयोर्गण्डयोरपि ।
 बाहुं छित्त्वाऽससक्तस्य वाताध्मातोदरस्य तु ॥ ३३ ॥
 विदार्य कोष्ठमन्त्राणि बहिर्वा सन्निरस्य च ।
 कटीसक्तस्य तद्वच्च तत्कपालानि दारयेत् ॥ ३४ ॥
 यद्यद्वायुवशादङ्ग सज्जेद्गर्भस्य खण्डशः ।
 तत्तच्छित्त्वाऽऽहरेत्सम्यग्, रक्षेत्रारीं च यत्नतः ॥ ३५ ॥
 गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनिलः ।
 तत्रानल्पमतिस्तस्मादवस्थापेत्तमाचरेत् ॥ ३६ ॥
 छिन्द्याद्गर्भं न जीवन्तं मातरं स हि मारयेत् ।
 सहात्मना, न चोपेक्ष्यः क्षणमप्यस्तजीवितः ॥ ३७ ॥
 योनिसंवरणभ्रंशमक्लृप्तश्वासपीडिताम् ।
 प्लुतुद्गारां हिमाङ्गीं च मूढगर्भां परित्यजेत् ॥ ३८ ॥

१. तौ = पूर्वपथपूर्वाद्धोत्तराद्धोक्तौ, मूढौ = मूढगर्भौ शस्त्रेण
 विदारणमर्हतः, गत्यन्तराऽभावात् ।

अथापतन्तीमपरां पातयेत्पूर्ववद्विषक् ।
 एवं निर्हृतशल्यां^१ तु सिञ्चेदुष्णेन वारिणा ॥ ३९ ॥
 दद्यादभ्यक्तदेहायै योनौ स्नेहपिचुं ततः ।
 योनिर्मृदुर्भवेत्तेन शूलं चास्याः प्रशाम्यति ॥ ४० ॥
 दीप्यकातिविषारास्ना-हिङ्ग्वेलापञ्चकोलकात् ।
 चूर्णं स्नेहेन कल्कं वा काथं वा पाययेत्ततः ॥ ४१ ॥
 कटुकातिविषापाठा-शाकत्वग्घृतेजिनीः ।
 तद्वच्च दोषस्यन्दार्थं वेदनोपशमाय च ॥ ४२ ॥
 त्रिरात्रमेवं, सप्ताहं स्नेहमेव ततः पिबेत् ।
 सायं पिबेदरिष्टं च तथा सुकृतमासवम् ॥ ४३ ॥
 शिरीषककुभकाथ-पिचून् योनौ विनिक्षिपेत् ।
 उपद्रवाश्च येऽन्ये स्युस्तान् यथास्वमुपाचरेत् ॥ ४४ ॥
 पयो वातहरैः सिद्धं दशाहं भोजने हितम् ।
 रसो दशाहं च परं लघुपथ्याल्पभोजना ॥ ४५ ॥
 स्वेदाभ्यङ्गपरा स्नेहान् बलातैलादिकान् भजेत् ।
 ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च ॥ ४६ ॥
 बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा ।
 यवकोलकुलत्थानां दशमूलस्य चैकतः ॥ ४७ ॥
 निष्काथभागो भागश्च तैलस्य तु चतुर्दशः ।
 द्विमेदादारुमज्जिष्ठाकाकोलीद्वयचन्दनैः ॥ ४८ ॥

१. निर्हृतः निष्कासितः, शल्यः = शल्यवद् दुःखदायकौ मूढ-
 गर्भौ यस्याः ताम् ।

सारिवाकुष्ठतगर-जीवकर्षभसैन्धवैः ।
 कालानुसार्याशैलेय-वचागुरुपुनर्नवैः ॥ ४९ ॥
 अश्वगन्धावरीक्षीरशुक्लायष्टीवरारसैः ।
 शताह्वाशूर्पपर्ण्यला-त्वक्पत्रैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ५० ॥
 पक्वं मृद्वग्निना तैलं सर्ववातविकारजित् ।
 सूतिकाबालमर्मास्थि-क्षतक्षीणेषु पूजितम् ॥ ५१ ॥
 ज्वरगुल्मग्रहोन्माद-मूत्राघातान्त्रवृद्धिजित् ।
 धन्वन्तरेरभिभूतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥
 बस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।
 १जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्वरेच्छिशुम् ॥ ५३ ॥
 मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ।
 अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ ५४ ॥
 वृक्षादनी पयस्या च लता सोत्पलसारिवा ।
 अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा च मधुयष्टिका ॥ ५५ ॥
 बृहतीद्वयकाशमर्य-क्षीरिशुद्धत्वचा घृतम् ।
 पृश्निपर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ५६ ॥
 शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता ।
 सप्तैतान् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनान् ॥ ५७ ॥
 क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत् ।
 कपित्थबिल्वबृहती-पटोलेष्टुनिदिग्भिजैः ॥ ५८ ॥

१. जन्मकाले = गर्भस्य प्रसवोन्मुखे समये विपन्नायाः = मृतायाः
 गर्भिण्याः कुक्षिः यदि बस्तिद्वारे प्रस्पन्दते, ततः इत्यादि स्पष्टम् ।

मूलैः शृतं प्रयुञ्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे ।
 नवमे सारिवाऽनन्ता-पयस्यामधुयष्टिभिः ॥ ५९ ॥
 योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया ।
 अथवा यष्टिमधुक-नागरामरदारुभिः ॥ ६० ॥

वातरुद्धलोहितम्

अवस्थितं लोहितमङ्गनाया
 वातेन गर्भं ब्रुवतेऽनभिज्ञाः ।
 १गर्भाकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः
 सुते पुनः केवल एव रक्ते ॥ ६१ ॥
 गर्भं जडा भूतहतं वदन्ति
 मूर्त्तेर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः ।
 ओजोशनत्वादथवाऽव्यवस्थै-
 भूतैरुपेक्ष्येत न गर्भमाता ॥ ६२ ॥



तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोऽङ्गविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'शिरोऽन्तराधिद्वौ बाहू सक्थिनीति समासतः ।
 षडङ्गमङ्गं^१ प्रत्यङ्गं तस्याच्चिह्नदयादिकम् ॥ १ ॥

१. रक्तगुल्मे, वातरुद्धलोहिते, गर्भे च, -उत्पलेदादयः समाना-
 इत्यर्थः । २. अङ्गानि = अवयवाः सन्त्यस्य-अङ्गम् = शरीरम् (अर्श
 आद्यजन्तः,) षड् अङ्गानि = शिरः, अन्तराधिः, बाहुद्वयं, सक्थिद्वय-

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धः क्रमाद् गुणाः ।

^१खानिलाग्न्यबभुवाम् ॥ एकगुणवृद्धयन्वयः परे ^२ ॥ २ ॥

तत्र खात् खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो विविक्तता ।

‘वातात्स्पर्शत्वमुच्छ्वासा’ वह्नेर्द्रूपपक्तयः ॥ ३ ॥

‘आप्या जिह्वारसक्लेदा’ घ्राणगन्धास्थि पार्थिवम् ।

मृद्वत्र ‘मातृजं’ रक्तमांसमज्जगुदादिकम् ॥ ४ ॥

‘पैतृकं’ तु स्थिरं शुक्रधमन्यस्थिकचादिकम् ।

^३‘चैतनं’ चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्म च ॥ ५ ॥

‘सात्म्यजं’ त्वायुरारोग्यमनालस्यं प्रभा बलम् ।

‘रसजं’ वपुषो जन्म वृत्तिवृद्धिरलोलता ॥ ६ ॥

मिति-पङ्क्तं, समासतः = संक्षेपतः, विस्तरस्तु—तस्य = शरीरस्य
प्रत्यङ्गं = अक्षिहृदयादिकं बहुभेदभिन्नमित्यर्थः ।

१. खञ्ज, अनिलश्च, अग्निश्च, आपश्च, भूश्च, एतेषां क्रमात्—
शब्दादयो गुणाः, न्यायदर्शनसिद्धान्तोऽयम् ।

२. परे = आचार्याः—एकस्य गुणस्य वृद्ध्या अन्वयः सम्बन्ध—
इति वदन्ति—यदाह मनुः—‘यो यो यावत्तिथ्यैषां स स तावद्गुणः
स्मृत’—इति, तथा च—आकाशं शब्दगुणम्, वायुः शब्दस्पर्शगुणः,
तेजः शब्दस्पर्शरूपगुणम्, जलं-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गुणम्,
भूमिः-शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-गुणा, यावत्तिथः = यावत्संख्यकः ।
वेदान्तादिप्रसिद्धोऽयं पक्षः ।

३. चेतनायाः = आत्मन—आगतं चैतनम् = आत्मजमित्यर्थः, ।
आत्मजमिति कचित्पाठः ।

‘सार्विकं’ शौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मरुचिर्मतिः ।
 ‘राजसं’ बहुभाषित्वं मानक्रुद्धम्भमत्सरम् ॥ ७ ॥
 ‘तामसं’ भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता ।
 इति भूतमयो देहः॥ तत्र सप्त त्वचोऽसृजः ॥ ८ ॥
 पच्यमानात्प्रजायन्ते क्षीरात्सन्तानिका इव ।
 धात्वाशयान्तरक्लेदो^१ विपक्वः स्वं स्वमूष्मणा ॥ ९ ॥
 श्लेष्मस्नायवपराच्छन्नः ‘कलाख्यः’ काष्ठसारवत् ।
 ताः सप्त॥ सप्त चाधारा रक्तस्याद्यः क्रमात् परे ॥ १० ॥
 कफाऽऽमपित्तपक्वानां वायोर्मूत्रस्य च स्मृताः ।
 गर्भाशयोऽष्टमः स्त्रीणां पित्तपक्वाशयान्तरे ॥ ११ ॥
 कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोम फुफ्फुसम् ।
 यकृतप्लीहोन्दुकं वृक्कौ नाभिडिम्भान्त्रवस्तयः ॥ १२ ॥
 दश जीवितधामानि शिरोरसनबन्धनम् ।
 कण्ठोऽस्त्रं हृदयं नाभिर्वस्तिः शुक्रौजसी गुदम् ॥ १३ ॥
 जालानि कण्डराश्चाङ्गो पृथक् षोडश निर्दिशेत् ।
 षट् कूर्चाः सप्त सीवन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः ॥ १४ ॥
 शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ।

१. धातूनाम्=रसाऽसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणां ये आशयाः=
 आधाराः, तेषाम्—अन्तरस्य = अन्तरालस्य यः क्लेदः = क्लिन्नता,
 स स्वकीयेन, ऊष्मणा = वाष्पेण, विशेषेण पक्वः सन्—अथ च श्ले-
 ष्मणा = कफेन, स्नायुभिः = अपरया च यथायथं छन्न आच्छादितः
 सन् कला—आख्या संज्ञा यस्य सः कलाख्यः, काष्ठसारवदिति
 दृष्टान्तः ।

चतुर्दशास्थिसङ्ख्याताः, सीमन्ता द्विगुणा नव ॥ १५ ॥
 अस्थनां शतानि षष्टिश्च त्रीणि दन्तनखैः सह ।
 धन्वन्तरिस्तु त्रीण्याह, सन्धीनां च शतद्वयम् ॥ १६ ॥
 दशोत्तरं सहस्रे द्वे निजगादाऽत्रिनन्दनः ।
 स्नान्नां नवशती पञ्च पुंसां पेशीशतानि तु ॥ १७ ॥
^१अधिका विंशतिः स्त्रीणां योनिस्तनसमाश्रिताः ।
 दश 'मूलसिरा' हृत्स्थास्ताः सर्वं सर्वतो वपुः ॥ १८ ॥
 रसात्मकं वहन्त्योजस्तन्निबद्धं हि चेष्टितम् ।
 स्थूलमूलाः सुसूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् ॥ १९ ॥
 भिद्यन्ते तास्ततः 'सप्तशतान्यासां' भवन्ति तु ।
 तत्रैकैकं च शाखायां शतं, तस्मिन्नेव वेधयेत् ॥ २० ॥
 सिरां जालन्धरां नाम तिस्रश्चाभ्यन्तराश्रिताः ।
 षोडशद्विगुणाः श्रोण्यां, तासां द्वे द्वे तु वङ्गणे ॥ २१ ॥
 द्वे द्वे कटीकतरुणे शस्त्रेणाष्टौ^२ स्पृशेन्न ताः ।
 पार्श्वयोः षोडशैकैकामूर्ध्वगां वर्जयेत्तयोः ॥ २२ ॥
 द्वादशद्विगुणाः पृष्ठे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ।
 द्वे द्वे तत्रोर्ध्वगामिन्यौ न शस्त्रेण परामृशेत् ॥ २३ ॥
 पृष्ठवज्जठरे तासां मेहनस्योपरि स्थिते ।
 रोमराजीमुभयतो द्वे द्वे शस्त्रेण न स्पृशेत् ॥ २४ ॥

१. पुसां पञ्चशतपेश्यः, स्त्रीणां—विंशत्यधिकपञ्चशतपेश्य—
 इत्यर्थः, तासां योनिस्तनसमाश्रित—मांसपेशीनामधिकत्वात् ।

२. सर्वत्र—शस्त्रेण न स्पृशेदिति—मर्मस्थानत्वात् ।

चत्वारिंशदुरस्यासां चतुर्दश न वेधयेत् ।
 स्तनरोहिततन्मूलहृदये तु पृथग्द्वयम् ॥ २५ ॥
 अपस्तम्भाख्ययोरे कां तथाऽपालापयोरपि ।
 ग्रीवायां पृष्ठवत्तासां नीले मन्ये कृकाटिके ॥ २६ ॥
 विधुरे मातृकाश्चाष्टौ षोडशेति परित्यजेत् ।
 हन्वोः षोडश, तासां द्वे सन्धिवन्धनकर्मणी ॥ २७ ॥
 जिह्वायां हनुवत्तासामधो द्वे रसबोधने ।
 द्वे च वाचः प्रवर्तिन्यौऽनासायां चतुरुत्तरा ॥ २८ ॥
 विंशतिर्गन्धवेदिन्यौ तासामेकां च तालुगाम् ।
 षट्पञ्चाशन्नयनयोर्निमेषोन्मेषकर्मणी ॥ २९ ॥
 द्वे द्वे, अपाङ्गयोर्द्वे च तासां षडिति वर्जयेत् ।
 नासानेत्राश्रिताः षष्टिर्ललाटे, स्थपनीश्रिताम् ॥ ३० ॥
 तत्रैकां, द्वे तथाऽऽवर्तौ, चतस्रश्च कचान्तगाः ।
 सप्तैवं वर्जयेत्तासाम् कर्णयोः षोडशात्र तु ॥ ३१ ॥
 द्वे शब्दबोधने शङ्खौ सिरास्ता एव चाश्रिताः ।
 द्वे शङ्खसन्धिगे तासाम् मूर्ध्नि द्वादश तत्र तु ॥ ३२ ॥
 एकैकां पृथगुत्क्षेप-सीमन्ताधिपतिस्थिताम् ।
 हृत्पद्मे विभागार्थं प्रत्यङ्गं वर्णिताः सिराः ॥ ३३ ॥
^१अवेध्यास्तत्र कात्स्न्येन देहेऽष्टानवतिस्तथा ।
 सङ्कीर्णां प्रथिताः क्षुद्रा वक्राः सन्धिषु चाश्रिताः ॥ ३४ ॥
 तासां शतानां सप्तानां पादोऽस्त्रं वहते पृथक् ।

वातपित्तकफैर्जुष्टं शुद्धं चैवं स्थिता मलाः ॥ ३५ ॥
 शरीरमनुगृह्णन्ति पीडयन्त्यन्यथा पुनः ।
 तत्र श्यावारुणाः सूक्ष्माः पूर्णरिक्ताः क्षणात्सिराः ॥ ३६ ॥
 प्रस्पन्दिन्यश्च वातास्रं वहन्तेऽपि पित्तशोणितम् ।
 स्पर्शोष्णाः शीघ्रवाहिन्यो नीलपीताः कफं पुनः ॥ ३७ ॥
 गौर्यः स्निग्धाः स्थिराः शीताः संस्पृष्टं लिङ्गसङ्करे ।
 गूढाः समस्थिताः स्निग्धा रोहिण्यः शुद्धशोणितम् ॥ ३८ ॥
 धमन्यो नाभिसम्बद्धा विंशतिश्चतुर्त्तरा ।
 ताभिः परिवृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः ॥ ३९ ॥
 ताभिश्चोर्ध्वमधस्तिर्यग्देहोऽयमनुगृह्यते ।
 स्रोतांसि नासिके कर्णौ नेत्रे पाय्वास्यमेहनम् ॥ ४० ॥
 स्तनौ रक्तपथश्चेति नारीणामधिकं त्रयम् ।
 जीवितायतनान्यन्तः स्रोतांस्याहुस्त्रयोदश ॥ ४१ ॥
 प्राणधातुमलाम्भोऽन्नवाहीनि* अहितसेवनात् ।
 तानि दुष्टानि रोगाय, विशुद्धानि सुखाय च ॥ ४२ ॥
 स्वधातुसमवर्णानि वृत्तस्थूलान्यणूनि च ।
 स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि च ॥ ४३ ॥
 आहारश्च विहारश्च यः स्याद्दोषगुणैः समः ।
 धातुभिर्विगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः ॥ ४४ ॥
 अतिप्रवृत्तिः सङ्गो वा सिराणां ग्रन्थयोऽपि वा ।
 विमार्गतो वा गमनं स्रोतसां दुष्टिलक्षणम् ॥ ४५ ॥

१, एतादृशस्थले सन्धिं कृत्वा पठनीयम् ।

बिसानामिव सूक्ष्माणि दूरं प्रविसृतानि च ।
 द्वाराणि स्रोतसां देहे रसो यैरुपचीयते ॥ ४६ ॥
 व्यधे तु स्रोतसां मोह-कम्पाऽऽध्मानवमिज्वराः ।
 प्रलापशूलविण्मूत्ररोधा मरणमेव वा ॥ ४७ ॥
 स्रोतोविद्धमतो वैद्यः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ।
 उद्धृत्य शल्यं यत्नेन सद्यःक्षतविधानतः ॥ ४८ ॥
 अन्नस्य पक्ता पित्तं तु पाचकार्ख्यं पुरेरितम् ।
 दोषधातुमलादीनामूष्मेत्यात्रेयशासनम् ॥ ४९ ॥
 'वामपाश्वाश्रितं नाभेः किञ्चित्सूर्यस्य मण्डलम् ।
 तन्मध्ये मण्डलं सौम्यं तन्मध्येऽग्निर्व्यवस्थितः ॥
 जरायुमात्रप्रच्छन्नः काचकोशस्थदीपवत् ।'
 तदधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता ।
 सैव धन्वन्तरिमते कला पित्तधराह्वया ॥ ५० ॥
 आयुरारोग्यवीर्योजोभूतधात्वग्निपुष्टये ।
 स्थिता पक्काशयद्वाहि भुक्तमार्गार्गलेव सा ॥ ५१ ॥
 भुक्तमामाशये रुध्वा सा विपाच्य नयत्यधः ।
 बलवत्यबला त्वन्नमाममेव विमुञ्चति ॥ ५२ ॥
 ग्रहण्या बलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः ।
 दूषितेऽप्रावतो दुष्टा ग्रहणी रोगकारिणी ॥ ५३ ॥
 यदन्नं देहधात्वोजोबलवर्णादिपोषणम् ।
 तन्नाग्निर्हंतुराहाराच्च ह्यपक्वाद्रसादयः ॥ ५४ ॥
 अन्नं कालेऽभ्यवहतं ^१कोष्ठं प्राणानिलाहतम् ।

१. कोष्ठं कर्मभूतं प्राणाऽनिलेन = प्राणवायुना-आहतम् =

द्रवैर्विभिन्नसङ्घातं नीतं स्नेहेन मार्दवम् ॥ ५५ ॥
 सन्धुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् ।
 औदर्योऽग्निर्यथा बाह्यः स्थालीस्थं तोयतण्डुलम् ॥ ५६ ॥
 आदौ षड्रसमप्यञ्च^१ मधुरीभूतमीरयेत् ।
 फेनीभूतं कफं, यातं विदाहादम्लतां ततः ॥ ५७ ॥
 पित्तमामाशयात्कुर्याच्च्यवमानं, च्युतं पुनः ।
 अग्निना शोषितं पक्वं पिण्डितं कटु मारुतम् ॥ ५८ ॥
 भौमाऽऽप्याऽऽग्नेय-वायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभसाः ।
 पञ्चाहारगुणान्स्वान् स्वान् पार्थिवादीन् पचन्त्यनु ॥ ५९ ॥
 यथास्वं ते च पुष्णन्ति पक्का भूतगुणान् पृथक् ।
 पार्थिवाः पार्थिवानेव शेषाः शेषांश्च देहगान् ॥ ६० ॥
 किट्टं साश्च तत्पक्वमञ्चं सम्भवति द्विधा^२ ।

आनीतम् । द्विकर्मकः । कोष्ठे-इति-कचित्पाठः ।

१. आदौ भोजनानन्तरं षड्रसमपि किमुत ततो न्यूनरसम्—
 अन्नमशितपीतं मधुरीभूतं सत् फेनीभूतं, कफं कर्मभूतमीरयेत्-
 उद्धावयेत्, इति (प्रथमावस्था) ततः—विदाहात्कारणादम्लतां
 यातमत-एव मधुराधारादामाशयात् - च्यवमानं सत् पित्तं कुर्यात्-
 इति द्वितीयावस्था । पुनः (आमाशयात्) च्युतं (तत्रापि)
 अग्निना शोषितं, (अत एव) पक्वं, सञ्जातपिण्डं, कटुरसं सत् मारुतं
 कुर्यादिति सम्बन्धः । इति भुक्तस्यान्नस्य तृतीयावस्था अत्र 'वयो
 ऽद्वीरात्रभुक्तानां, तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात्' इति सङ्गमनीयम् ।

२. किट्ट-सार-मेदेन—पक्वमन्नं द्विधा सम्भवति, किट्टमपि

तत्राच्छं किट्टमन्नस्य मूत्रं विद्याद्धनं शकृत् ॥ ६१ ॥
 सारस्तु-सप्तभिर्भूयो यथास्वं पच्यतेऽग्निभिः ।
 रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदस्ततोऽस्थि च ॥ ६२ ॥
 अस्थनो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्गर्भः प्रजायते ।
 कफः, पित्तं, मलाः खेषु प्रस्वेदो, नखरोम च ॥ ६३ ॥
 स्नेहोऽक्षित्वविशा, भोजो ^१धातूनां क्रमशो मलाः ।
 प्रसादकिट्टौ धातूनां पाकादेवं द्विधच्छतः ॥ ६४ ॥
 परस्परोपसंस्तम्भाद्वातुस्नेहपरम्परा ।
 केचिदाहुरहोरात्रात्पडहादपरे, परे ॥ ६५ ॥
 मासेन याति शुक्रत्वमन्नं पाकक्रमादिभिः ।
 सन्तता भोज्यधातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत् ॥ ६६ ॥
 वृथ्यादीनि प्रभावेण सद्यः शुक्रादि कुर्वते ।
 प्रायः करोत्यहोरात्रात्कर्मान्यदपि भेषजम् ॥ ६७ ॥
 व्यानेन रसधातुर्हि विक्षेपोचितकर्मणा ।

द्विधा—अच्छं घनञ्चेति, अन्नस्य—अच्छं किट्टं मूत्रं, घनं किट्टं
 शकृत् = पुरीषं विषात् ।

१. धातूनां = रसा,ऽसृङ्, मांस-मेदो,ऽस्थि, मज्ज, शुक्राणाम्-
 कफः, पित्तम्, खेषु नेत्रनासिकाकर्णादिषु-विद्यमाना मलाः = दूषी-
 का-शिङ्गाण-पिञ्जुषादयः, रोमकूपेभ्यो जायमानः प्रस्वेदः, नखानि
 च रोमाणि च = नखरोम, (प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः) अक्षित्वग्-
 विशाम् = नेत्र-चर्म-पुरीषाणां संबन्धी स्नेहः चिक्कणता, औजोऽ-
 दमो धातुः, क्रमशः क्रमात्-मलाः किट्टाः सम्भवन्ति इत्यन्वयः ।

युगपत्सर्वतोऽजस्रं देहे विक्षिप्यते सदा ॥ ६८ ॥
 क्षिप्यमाणः खवैगुण्याद्रसः सज्जति यत्र सः ।
 तस्मिन्विकारं कुरुते खे वर्षमिव तोयदः ॥ ६९ ॥
 दोषाणामपि चैवं स्यादेकदेशप्रकोपणम् ।
 अन्नभौतिकधात्वग्नि-कर्मति परिभाषितम् ॥ ७० ॥
 'अन्नस्य पक्ता' सर्वेषां पक्त्वाणामधिको मतः ।
 तन्मूलास्ते हि तद्वृद्धिर्ज्ञेयवृद्धिर्ज्ञेयात्मकाः ॥ ७१ ॥ १
 तस्मात्तं विधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ।
 पालयेत्प्रयतस्तस्य स्थितौ ह्यायुर्बलस्थितिः ॥ ७२ ॥

जाठराग्निभेदाः ।

समः समाने^१ स्थानस्थे विषमोऽग्निर्विमार्गगे ।
 पित्ताग्निमूर्च्छते तीक्ष्णो मन्दोऽस्मिन्कफपीडिते ॥ ७३ ॥
 समोऽग्निर्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चैवं चतुर्विधः ।
 यः पचेत्सम्यगेवान्नं भुक्तं सम्यक् समस्त्वसौ ॥ ७४ ॥
 विषमोऽसम्यगप्याशु सम्यग्वाऽपि चिरात्पचेत् ।
 तीक्ष्णो वह्निः पचेच्छीघ्रमसम्यगपि भोजनम् ॥ ७५ ॥
 मन्दस्तु सम्यगप्यन्नमुपयुक्तं चिरात्पचेत् ।
 कृत्वाऽऽस्यशोषाटोपाऽन्त्र-कूजनाध्मानगौरवम् ॥ ७६ ॥
 'शान्तेऽग्नौ' म्रियते, युक्ते चिरं जीवत्यनामयः ।
 रोगी स्याद्विकृते, मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥^२

१. समाने = नाभिस्थे वायौ, स्वाशयस्थे सति—अग्निः समो भवति, विमार्गगे विषमः ।

बलं विभजते—

सहजं कालजं युक्तिकृतं देहबलं त्रिधा ।
तत्र सत्त्वशरीरोत्थं प्राकृतं सहजं बलम् ॥ ७७ ॥
वयस्कृतमृतूत्थं च कालजं, युक्तिजं पुनः ।
विहाराहारजनितं तथोर्जस्करयोगजम् ॥ ७८ ॥

देशं विभजते—

देशोऽल्पवारिद्रुनगो जाङ्गलः स्वल्परोगदः ।
आनूपो विपरीतोऽस्मात्समः साधारणः स्मृतः ॥ ७९ ॥

धातुप्रमाणमाह—

मज्जमेदोवसामूत्र-पित्तश्लेष्मशकृन्त्यसृक् ।
रसो जलं च देहेऽस्मिन्नेकैकाञ्जलिवर्धितम् ॥ ८० ॥
पृथक् स्वप्नसृतं प्रोक्तमोजोमस्तिष्करेतसाम् ।
द्वावञ्जली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ॥ ८१ ॥
समधातो रिदं मानं विद्याद्बृद्धिस्तथावतः ॥ ८२ ॥
शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टागर्भाशयर्तुषु ।
यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ८३ ॥
विभुत्वादाशुकारित्वाद्वलित्वादन्यकोपनात् ।
स्वातन्त्र्याद्बहुरोगत्वाद्विषाणां प्रबलोऽनिलः ॥ ८४ ॥

वातिकानाह—

^१प्रायोऽत एव पवनाध्युषिता मनुष्या-
दोषात्मकाः स्फुटितधूसरकेशगात्राः ।

१. प्रायो ग्रहणं क्वचिद् व्यभिचारार्थम् ।

शीतद्विषश्चलधृति-स्मृतिबुद्धिचेष्टा-

सौहार्ददृष्टिगतयोऽतिबहुप्रलापाः ॥ ८५ ॥

अल्पवित्तबलजीवितनिद्राः

सश्वसक्तचलजर्जरवाचः ।

नास्तिका बहुभुजः सविलासा

गीतहासमृगयाकलिलोलाः ॥ ८६ ॥

मधुराम्लपटूष्णसात्म्यकाङ्क्षाः

कृशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः ।

न दृढा न जितेन्द्रिया न चाऽऽर्या

न च कान्तादयिता बहुप्रजा वा ॥ ८७ ॥

नेत्राणि चैषां खरधूसराणि

वृत्तान्यचारुणि मृतोपमानि ।

उन्मीलितानीव भवन्ति सुप्ते

शैलद्रमांस्ते गगनं च यान्ति ॥ ८८ ॥

अधन्या मत्सराध्माताः स्तेनाः प्रोद्धद्वपिण्डिकाः ।

श्वशृगालोष्ट्रगृध्राखु-काकाऽनू^१ काश्च वातिकाः ॥ ८९ ॥

पैत्तिकानाह—

पित्तं वह्निर्वह्निजं वा यदस्मा-

त्पित्तोद्विक्तस्तीक्ष्णनृष्णाखुभुक्षुः ।

गौरोष्णाङ्गस्ताम्रहस्ताङ्घ्रिवक्त्रः

शूरो मानी पिङ्गकेशोऽल्परोमा ॥ ९० ॥

१. अनूकाः = सदृशाः, सादृश्यञ्च तत्तद्गुणवत्तया बोध्यम् ।

दयितमाल्यविलेपनमण्डनः

सुचरितः शुचिराश्रितवत्सलः ।

विभवसाहसद्युद्धिबलान्वितो

भवति भीषु गतिर्द्विषतामपि ॥ ९१ ॥

मेधावी प्रशिथिलसन्धिबन्धमांसो

नारीणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ।

आवासः पलिततरङ्गनीलिकानां

भुङ्क्तेऽन्नं मधुरकषायतिक्तशीतम् ॥ ९२ ॥

घर्मद्वेषी स्वेदनः पूतिगन्धि-

भूर्युच्चारक्रोधपानाशनेर्ष्यः ।

सुप्तः पश्येत्कर्णिकारान्पलाशान्

दिग्दाहोत्काविद्युदूर्कानलांश्च ॥ ९३ ॥

तनूनि पिङ्गानि चलानि चैषां

तन्वल्पपद्माणि हिमप्रियाणि ।

क्रोधेन मद्येन रवेश्च भासा

रागं व्रजन्त्याशु विलोचनानि ॥ ९४ ॥

मध्यायुषो मध्यबलाः पण्डिताः क्लेशभीरवः ।

व्याघ्रर्क्षकपिमार्जारयज्ञानूकाश्च पैत्तिकाः ॥ ९५ ॥

श्लैष्मिकानाह—

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन सौम्यो

गूढस्निग्धश्लिष्टसन्ध्यस्थिमांसः ।

छुत्तृड्दुःखक्लेशघमैरतप्तो

बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसन्धः ॥ ९६ ॥

प्रियङ्गुदूर्वाशरकाण्डशस्त्र-गोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ।
 प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्त्रा महाललाटो घननीलकेशः ॥ ९७ ॥
 मृद्वङ्गः समसुविभक्तचारुदेहो
 बह्वोजोरतिरसशुक्रपुत्रभृत्यः ।
 धर्मात्मा वदति न निष्ठुरं च जातु
 प्रच्छन्नं वहति दृढं चिरं च वैरम् ॥ ९८ ॥
 समदद्विरदेन्द्रतुल्ययातो^१
 जलदाम्भोधिमृदङ्गसिंहघोषः ।
 स्मृतिमानभियोगवान् विनीतो
 न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ९९ ॥
 तित्कं कषायं कटुकोणरूक्ष-
 मल्पं स भुङ्क्ते बलवांस्तथाऽपि ।
 रक्तान्तसुस्निग्धविशालदीर्घ-
 सुव्यक्तशुक्लासितपद्मलालः ॥ १०० ॥
 अल्पव्याहारक्रोधपानाशनेहः
 प्राज्यायुर्वित्तो दीर्घदर्शी वदान्यः ।
 श्राद्धो गम्भीरः स्थूललक्षः क्षमावा-
 नार्यो निद्रालुर्दीर्घसूत्रः कृतज्ञः ॥ १०१ ॥
 ऋजुर्विपश्चित्सुभगः सुलज्जो
 भक्तो गुरुणां स्थिरसौहृदश्च ।
 स्वप्ने सपद्मान्सविहङ्गमालां-
 स्तोयाशयान् पश्यति तोयदांश्च ॥ १०२ ॥

१. यातं = यानं (नपुंसके भावे क्तः) समदद्विरदेन्द्रेण तुल्यं यातं यस्य ।

ब्रह्मरुदेन्द्रवरुण-तार्क्ष्यहंसगजाधिपैः ।

श्लेष्मप्रकृतयस्तुल्यास्तथा सिंहाश्वगोवृषैः ॥ १०३ ॥

प्रकृतीर्द्वयसर्वोत्था द्वन्द्वसर्वगुणोदये^१ ।

^२शौचास्तिक्यादिभिश्चैवं गुणैर्गुणमयीर्वदेत् ॥ १०४ ॥

वयोविभागमाह—

^३वयस्स्वाषोडशाद्वालं, तत्र धास्विन्द्रियौजसाम् ।

वृद्धिराससतेर्मध्यं, तत्राऽवृद्धिः, परं क्षयः ॥ १०५ ॥

स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुः पात्रं सुखायुषोः ।

न च यद्युक्तमुद्रिकतैरष्टाभिर्निन्दितैर्निजैः ॥ १०६ ॥

अरोमशाऽसितस्थूल-दीर्घस्वैः सविपर्ययैः ।

सुस्निग्धा मृदवः सूक्ष्मा नैकमूलाः स्थिराः कचाः ॥ १०७ ॥

ललाटमुन्नतं श्लिष्टशङ्खमर्धेन्दुसन्निभम् ।

कर्णौ नीचोन्नतौ पश्चान्महान्तौ श्लिष्टमांसलौ ॥ १०८ ॥

१. द्वन्द्वानि च सर्वे च द्वन्द्वसर्वे, त्रीणि द्वन्द्वानि, एकः सन्निपातः इति चत्वारस्तेषां गुणानां पूर्वोक्तानामुदये = प्रादुर्भावे सति—
द्वन्द्वसर्वोत्थाः = द्वन्द्वजाः सन्निपातजाश्च प्रकृतीः, वदेत् ।

२. एवं शौचादिभिः, गुणैः—उदितैः सद्भिः, गुणमयीः प्रकृतीः, वदेत्—इति सम्बन्धः ।

३. कालकृता शरीराऽवस्था—वयः, तत्त्रिविधम् बाल—मध्य—पर (वृद्ध) भेदेन, कफ—पित्त—वातानामुद्रेकबोधनार्थोऽयं भेदः, तत्रापि भेदाः संहिताभ्य ऊहनीयाः । 'तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमादि'ति न विस्मरणीयम् ।

नेत्रे व्यक्तमितसिते सुबद्धघनपद्मणी ।

उन्नताग्रा महोच्छ्वासा पीनर्जुर्नासिका समा ॥ १०९ ॥

ओष्ठौ रक्तायनुद्वृत्तौ,

महत्थौ नोल्बणे हनू ।

महदास्यं, घना दन्ताः

स्निग्धाः, श्लक्षणाः सिताः समाः ॥ ११० ॥

जिह्वा रक्ताऽऽयता तन्वी, मांसलं चिबुकं महत् ।

ग्रीवा ह्रस्वा घना वृत्ता, स्कन्धावुन्नतपीवरौ ॥ १११ ॥

उदरं दक्षिणावर्तगूढनाभि समुन्नतम् ।

तनुरक्तोन्नतनखं स्निग्धमाताम्रमांसलम् ॥ ११२ ॥

दीर्घाच्छिद्राङ्गुलि महत्पाणिपादं प्रतिष्ठितम् ।

गूढवंशं बृहत्पृष्ठं, निगूढाः सन्धयो दृढाः ॥ ११३ ॥

धीरः स्वरोऽनुनादी च, वर्णः स्निग्धः स्थिरप्रभः ।

स्वभावजं स्थिरं सत्त्वमविकारि विपत्स्वपि ॥ ११४ ॥

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रं वपुर्गर्भादिनीरुजम् ।

आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैः शुभम् ॥ ११५ ॥

इति सर्वगुणोपेते शरीरे शरदां शतम् ।

आयुरैश्वर्यमिष्टाश्च सर्वे भावाः प्रतिष्ठिताः ॥ ११६ ॥

त्वग्रक्तादीनि सत्त्वान्तान्यग्र्याण्यष्टौ यथोत्तरम् ।

बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥ ११७ ॥

सारैरुपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंयुतः ।

सर्वारम्भेषु चाशावान्सहिष्णुः सन्मतिः स्थिरः ॥ ११८ ॥

अनुत्सेकमदैर्न्यं च सुखं दुःखं च सेवते ।

सत्त्ववांस्तप्यमानस्तु राजसो नैव तामसः ॥ ११९ ॥

दान-शील-दया-सत्य-ब्रह्मचर्य-कृतज्ञताः ।

रसायनानि मैत्री च पुण्यायुर्वृद्धिकृद्गणः^१ ॥ १२० ॥

इति शारीरस्थाने तृतीयोऽध्यायः ।

चतुर्थोऽध्यायः ।

^२अथातो मर्मविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ॥

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

^३'सप्तोत्तरं मर्मशतम्' तेषामेकादशादिशेत् ।

^४पृथक्सक्थनोस्तथा बाह्वोस्त्रीणि कोष्ठे नवोरसि ॥ १ ॥

१. 'नहीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते । दया भूतेषु मैत्री च दानं च मधुरा च वाक्' ॥ मनुः । इति तृतीयोऽध्यायः ।

२. अथ = अङ्गविभागानन्तरं यतो मर्माणि-अङ्गप्रत्यङ्गाश्रितानि अतः स्मृतिविषयत्वेन-उपेक्षाऽनर्हाणि तान्येवाऽत्र विमज्ज्यन्ते=इति पूर्वापरसङ्गतिरध्याययोः ।

३. सप्त-उत्तराणि = अधिकानि यस्मिंस्तत् सप्तोत्तरं, त्रियन्ते एषु आहतेषु प्राणिन-इति मर्माणि = (सर्वधातुभ्य-इन्) इदादि-स्थानानि, तेषां शतम् १०७ सप्ताधिकं शतम् इत्यर्थः ।

४. तेषां मर्मणां मध्ये द्वयोः सक्थनोस्तथा द्वयोर्बाह्वोः पृथक् २ एकादश २ मर्माणि आदिशेत् एवं चतुश्चत्वारिंशत् ४४ । कोष्ठे = जठरे त्रीणि, उरसि = वक्षसि नव, पृष्ठे चतुर्दश, जत्रोः = जत्रुण ऊर्ध्व-
'म् = उपरिष्टात् त्रिंशच्च सप्त चेति सङ्कलनया सप्तत्रिंशत्, एवं

पृष्ठे चतुर्दशोर्ध्वं तु जत्रोर्ध्वं शतं सप्त च ।

मर्मणां स्थानानि नामानि कर्माणि चाह—

मध्ये पादतलस्याहुरभितो मध्यमाङ्गुलिम् ॥ २ ॥

‘तलहन्नाम’ रुजया तत्र विद्वस्य पञ्चता ।

अङ्गुष्ठाङ्गुलिमध्यस्थं क्षिप्रमाक्षेपमारणम् ॥ ३ ॥

तस्योर्ध्वं द्व्यङ्गुले ‘कूर्चः’ पादभ्रमणकम्पकृत् ।

गुल्फसन्धेरधः ‘कूर्चशिरः’ शोफरुजाकरम् ॥ ४ ॥

जङ्घान्तरे त्विन्द्रवस्तिर्मारयत्यसृजः क्षयात् ॥ ५ ॥

जङ्घोर्वोः सङ्गमे ‘जानु’ खञ्जता तत्र जीवतः ।

जानुनस्यङ्गुलादूर्ध्वं ‘माण्यू’रुस्तम्भशोफकृत् ॥ ६ ॥

उर्व्यरूमध्ये तद्वेधात्सक्थिशोषोऽस्त्रसङ्क्षयात् ।

ऊरूमूले ‘लोहिताख्यं’ हन्ति पक्ष्मसृक्क्षयात् ॥ ७ ॥

मुष्कवङ्कगयोर्मध्ये ‘विटपं’ पण्डताकरम् ।

^१इति सक्थनोस्ततथा बाह्वोर्मणिबन्धोऽत्र गुल्फवत् ॥ ८ ॥

सङ्कलने १०७ सप्तोत्तरं शतम् । जत्रोरित्यत्र छन्दोऽनुरोधात्, नुम् न कृतः, आगमशास्त्रस्याऽनित्यत्वात् । जङ्गुशब्दः क्लीबः, अंसकक्षयोः सन्धिवाची ।

१. सक्थनोर्द्वयोरधः-शाखयोः=तलहत्, क्षिप्रं, कूर्चः, कूर्च-शिरः, गुल्फः, इन्द्रवस्तिः, जानु, माणी, उर्वी, लोहितं, विटपम् (विटपम्) इति=अनेन प्रकारेण एतानि मर्माणि स्थानतो नामतः-कर्मतश्च निर्दिष्टानि, तथा तैर्नैव प्रकारेण ‘तलहत्’ प्रभृतीनि मर्माणि द्वयोर्बाह्वोरपि शेषानि-इति सामान्याऽतिदेशः, विशेषतोऽतिदिशति—अत्र=बाह्वोः, मणिबन्धः=पाणिमूलं, गुल्फवत्=गुल्फाभ्यां तुल्यः

कूर्परं जानुवत्कौण्यं तयोर्विटपवत्पुनः ।

^१कक्षाक्षमध्ये कक्षाष्टक् कुणित्वं तत्र जायते ॥ ९ ॥

अन्तराधिमर्माण्याह—

स्थूलान्त्रबद्धः सद्योघ्नो विड्वातवमनो गुदः^२ ।

मूत्राशयो धनुर्वक्रो 'बस्ति'रल्पास्त्रमांसराः ॥ १० ॥

एकाधोवदनो मध्ये कट्याः सद्यो निहन्त्यसून् ।

ऋतेऽश्मरीव्रणाद्विद्धस्तत्राप्युभयतश्च सः ॥ ११ ॥

मूत्रस्त्राव्येकतो भिन्ने व्रणो रोहेच्च यत्नतः ।

^३देहामपक्वस्थानानां मध्ये सर्वसिराश्रयः ॥ १२ ॥

नाभिः, सोऽपि हि सद्योघ्नो ऋद्वारमामाशयस्य च ।

सत्त्वादिधाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम् ॥ १३ ॥

कूर्परं = कफोर्गि, जानुवत्-विद्यादिति शेषः, तयोर्मणिबन्धकूर्परयोः
शस्त्रादिना विद्धयोः सतोः कुणेः = कुकरस्य भावः कौण्यं = करस्य
कराङ्गुलीनां च पाङ्गुल्यम् भवति ।

१. कक्षा च अक्षश्च तयोर्मध्ये तु 'कक्षाष्टक्' संज्ञकं मर्म, विटपेन =
मुष्कवङ्क्षणमध्यस्थेन मर्मणा तुल्यम्, तत्र = तस्मिन्मर्मणि विद्धे सति
सर्वस्य भुजस्य कुणित्वं = पाङ्गुल्यं भवतीत्यन्वयः ।

२. 'स्थूलान्त्रबद्धं सद्योघ्नं विड्वातवमनं गुदम्' इति पठितुं
युक्तम्, 'गुदन्वपानं पायुर्ना, इति गुदशब्दस्य नपुंसकत्वात् ।

३. देहस्य मध्ये वत्तमानयोरामपक्वाशययोः सन्निस्था नाभिः,
सर्वासां सिराणामाश्रयः = आधारः सोऽपि सर्वसिराधारोऽपि सद्योघ्न
एव न केवलं गुदवस्ती इति भावः । नाभिशब्दः स्त्रीलिङ्गः ।

'स्तनरोहितमूलाख्ये' द्वयङ्गुले^१ स्तनयोर्वदेत् ।
 ऊर्ध्वाधोऽस्रकफापूर्ण-कोष्ठो नश्येत्तयोः क्रमात् ॥ १४ ॥
 'अपस्तम्भा'वुरःपार्श्वे नाड्यावनिलवाहिनी ।
 रक्तेन पूर्णकोष्ठोऽत्र श्वासात्कासाच्च नश्यति ॥ १५ ॥
 पृष्ठवंशोरसोर्मध्ये तयोरेव च पार्श्वयोः ।
 अधोऽसकूटयोर्विद्या 'दपालापाख्यमर्मणी' ॥ १६ ॥
 तयोः कोष्ठेऽसृजा पूर्णे नश्येद्यातेन पूयताम् ।
 पार्श्वयोः पृष्ठवंशस्य श्रोणीकर्णौ प्रति स्थिते ॥ १७ ॥
 वंशाश्रिते स्फिजोरूर्ध्व 'कटीकतरुणे' स्मृते ।
 तत्र रक्तक्षयात्पाण्डुर्हीनरूपो विनश्यति ॥ १८ ॥
 पृष्ठवंशं ह्युभयतो यौ सन्धी कटिपार्श्वयोः ।
 जघनस्य बहिर्भागे मर्मणी तौ 'कुकुन्दरौ' ॥ १९ ॥
 चेष्टाहानिरधःकाये स्पर्शाज्ञानं च तद्व्यधात् ।
 पार्श्वान्तरनिबद्धौ यावुपरि श्रोणिकर्णयोः ॥ २० ॥
 आशयच्छादनौ तौ तु 'नितम्बौ' तरुणास्थिगौ ।
 अधःशरीरे शोफोऽत्र दौर्बल्यं मरणं ततः ॥ २१ ॥
 पार्श्वान्तरनिबद्धौ च मध्ये जघनपार्श्वयोः ।
 तिर्यग्ूर्ध्वं च निर्दिष्टौ पार्श्वसन्धी तयोर्व्यधात् ॥ २२ ॥
 रक्तपूरितकोष्ठस्य शरीरान्तरसम्भवः ।
 स्तनमूलार्जवे भागे पृष्ठवंशाश्रये सिरे ॥ २३ ॥

१. स्तनयोरूर्ध्वाधः द्वयङ्गुले प्रदेशं क्रमात् स्तनरोहित-स्तनमूले
 मर्मणां वदेत्, तयोः स्तनरोहितस्तनमूलयोर्मर्मणोः, विद्धयोः सतोः
 क्रमात्-रुधिरापूर्णकोष्ठः कफापूर्णकोष्ठश्च सन् नश्येदित्यन्वयः ।

'बृहत्यौ' तत्र विद्वस्य मरणं रक्तसङ्ख्यात् ।
 बाहुमूलाभिसम्बद्धे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ॥ २४ ॥
 अंसयोः फलके बाहुस्वापशोषौ तयोर्व्यधात् ।
 ग्रीवामुभयतः स्नाब्नी ग्रीवाबाहुशिरोऽन्तरे ॥ २५ ॥
 स्कन्धांसपीठसम्बन्धावंसौ बाहुक्रियाहरौ ।
 कण्ठनाडीमुभयतः सिरा हनुसमाश्रिताः ॥ २६ ॥
 चतस्रस्तासु नीले द्वे मन्ये द्वे मर्मणी स्मृते ।
 स्वरप्रणाशवेकृत्यं रसज्ञानं च तद्व्यधे ॥ २७ ॥
 कण्ठनाडीमुभयतो जिह्वानासागताः सिराः ।
 पृथक् चतस्रस्ताः सद्यो घ्नन्त्यसून्मातृकाङ्क्षयाः ॥ २८ ॥
 कृकाटिके शिरोग्रीवासन्धौ, तत्र चलं शिरः ।
 अधस्तात्कर्णयोर्निम्ने विधुरे श्रुतिहारिणी ॥ २९ ॥
 फणाबुभयतो घ्राणमार्गं श्रोत्रपथानुगौ ।
 अन्तर्गलस्थितौ वेधाद्वन्धविज्ञानहारिणौ ॥ ३० ॥
 नेत्रयोर्बाह्यतोऽपाङ्गौ भ्रुवोः पुच्छान्तयोरधः ।
 तथोपरि भ्रुवोर्निम्नावावर्तावान्ध्यमेषु तु ॥ ३१ ॥
 अनुकर्णं ललाटान्ते 'शङ्खौ' सद्योविनाशनौ ।
 केशान्ते शङ्खयोरूर्ध्वमुत्क्षेपौ, स्थपनी पुनः ॥ ३२ ॥
 भ्रुवोर्मध्ये, त्रयेऽप्यत्र शल्ये जीवेदनुद्धते ।
 स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यति तूद्धते ॥ ३३ ॥
 जिह्वाऽक्षिनासिकाश्रोत्र-खचतुष्टयसङ्गमे ।
 तालुन्यास्यानि चत्वारि स्रोतसां, तेषु मर्मसु ॥ ३४ ॥
 विद्वः शृङ्गाटकाख्येषु सद्यस्त्यजति जीवितम् ।

कपाले सन्धयः पञ्च सीमन्तास्तिर्यगूर्ध्वगाः ॥ ३५ ॥
 अमोन्मादमनोनाशैस्तेषु विद्धेषु नश्यति ।
 आन्तरो मस्तकस्योर्ध्वं सिरासन्धिसमागमः ॥ ३६ ॥
 रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हरत्यसून् ।
 विषमं स्पन्दनं यत्र पीडिते रुक् च मर्म तत् ॥ ३७ ॥
 १मांसास्थिस्रायुधमनी-सिरासन्धिसमागमः ।
 स्यान्मर्मेति च तेनात्र सुतरां जीवितं स्थितम् ॥ ३८ ॥
 २बाहुल्येन तु निर्देशः षोडशैव मर्मकल्पना ।
 प्राणायतनसामान्यादैक्यं वा मर्मणां मतम् ॥ ३९ ॥
 मांसजानि दशेन्द्राख्य-तलहस्तनरोहिताः ।
 शङ्खौ कटीकतरुणे नितम्बावंसयोः फले ॥ ४० ॥
 अस्थिन्यष्टौ ॥ ३स्नावमर्माणि त्रयोविंशतिराणयः ।
 कूर्च-कूर्चशिरोऽपाङ्ग-क्षिप्रोत्क्षेपांसबस्तयः ॥ ४१ ॥
 गुदापस्तम्भविधुरशृङ्गाटानि नवादिशेत् ।
 मर्माणि धमनीस्थानि ॥ सप्तत्रिंशत्सिराश्रयाः ॥ ४२ ॥

१. मांसपेशी=समागमः = मांसमर्मे, अस्थि-समागमोऽस्थिमर्म,
 स्नायु-समागमः स्नायुमर्म, धमनी-समागमो धमनीमर्म, सिरासमा-
 गमः सिरामर्म, सन्धि-समागमः सन्धिमर्म-एवं षोडश मर्मकल्पना
 बोध्या, यद्येवं तर्हि मांस-पेश्यादीनां बहुत्वाद् बहूनि मर्माणि
 भवेयुः कथं सप्तोत्तरं मर्मशतमित्युक्तमित्याह—

२. स निर्देशो बाहुल्येनेति ।

३. स्नावन्-शब्दः स्नायुपर्यायवाची, ण्णा-शौचे इत्यस्मादा-
 दन्तलक्षणो वनिप्, 'स्नायुमर्माणि'ति क्वचित्पाठः ।

बृहत्स्यौ मातृका नीले मन्ये कक्षाधरौ फणौ ।
 विटपे हृदयं नाभिः पार्श्वसन्धौ स्तनाधरे ॥ ४३ ॥
 अपालापा स्थपन्युर्व्यश्चतस्रो लोहितानि च ।
 सन्धौ विंशतिरावर्तौ मणिबन्धौ कुकुन्दरौ ॥ ४४ ॥
 सीमन्ताः कूर्परौ गुल्फौ कृकाढ्यौ जानुनी पतिः ।
 मांसमर्म गुदोऽन्येषां, स्नाग्नि कक्षाधरौ तथा ॥ ४५ ॥
 विटपौ विधुराख्ये च, शृङ्गाटानि सिरासु तु ।
 अपस्तम्भावपाङ्गौ च, धमनीस्थं न तैः स्मृतम् ॥ ४६ ॥
 विद्वेऽजस्रमसृक्स्त्रावो मांसधावनवत्तनुः ।
 पाण्डुत्वमिन्द्रियाज्ञानं मरणं चाशु मांसजे ॥ ४७ ॥
 मज्जान्वितोऽच्छो विच्छिन्नः स्त्रावो रुक् चास्थिमर्मणि ।
 आयामाक्षेपकस्तम्भाः स्नावजेऽभ्यधिकं रुजा ॥ ४८ ॥
 यानस्थानासनाशक्तिर्वैकल्यमथवाऽन्तकः^१ ।
 रक्तं सशब्दफेनोष्णं धमनीस्थे विचेतसः ॥ ४९ ॥
 सिरामर्मव्यधे सान्द्रमजस्रं बह्वसृक्स्त्रवेत् ।
 तत्क्षयात्तृड्भ्रमश्वास-मोहहिध्माभिरन्तकः^१ ॥ ५० ॥
 वस्तु शूकैरिवाकीर्णं रुढे च कुणिलज्जता ।
 बलचेष्टाक्षयः शोषः पर्वशोफश्च सन्धिजे ॥ ५१ ॥
 नाभिश्छाधिपापानहृच्छृङ्गाटकवस्तयः ।
 अष्टौ च मातृकाः सद्यो निघ्नन्त्येकान्नविंशतिः ॥ ५२ ॥
 सप्ताहः परमस्तेषां कालः कालस्य कर्षणे ।

१. अन्तकः = जीवितनाशः, स्वार्थे कन् ।

त्रयस्त्रिंशदपस्तम्भतलहृत्पार्श्वसन्धयः ॥ ५३ ॥
 कटीतरुणसीमन्तस्तनमूलेन्द्रवस्तयः ।
 क्षिप्रापालापबृहतीनितम्बस्तनरोहिताः ॥ ५४ ॥
 कालान्तरप्राणहरा मासमासार्धजीविताः ।
 उत्क्षेपौ स्थपनी त्रीणि विशल्यघ्नानि, तत्र हि ॥ ५५ ॥
 वायुर्मांसवसामज्ज-मस्तुलुङ्गानि शोषयन् ।
 शल्यापाये विनिर्गच्छन् श्वासात्कासाच्च हन्त्यसून् ॥ ५६ ॥
 फणावपाङ्गौ विधुरे नीले मन्ये कृकाटिके ।
 अंसांसफलकावर्तविटपोर्वीकुकुन्दराः ॥ ५७ ॥
 सजानुलोहिताक्षणि कक्षाधृक्कूर्चकूर्पराः ।
 वैकल्यमिति चत्वारि चत्वारिंशच्च कुर्वते ॥ ५८ ॥
 हरन्ति तान्यपि प्राणान् कदाचिदभिघाततः ।
 अष्टौ कूर्चशिरोगुल्फ-मणिवन्धा रुजाकराः ॥ ५९ ॥
 १तेषां विटपकक्षाधृगुर्व्यः कूर्चशिरोसि च ।
 द्वादशाऽङ्गुलमानानि ॥ ६० ॥
 गुल्फौ च स्तनमूले च ॥ ६१ ॥
 अपानवस्तिहन्नाभिनीलाः सीमन्तमातृकाः ॥ ६२ ॥
 कूर्चश्चक्ष्णाटमन्याश्च त्रिंशदेकेन वर्जिताः २ ।
 ३आत्मपाणितलोन्मानाः ॥ ६३ ॥
 पञ्चाशत्षट् च मर्माणि, तिलव्रीहिसमान्यपि ।

१. तेषां मर्मेणां मध्ये विटपादीनि द्वादश मर्माणि-अङ्गुलमा-
 नानि = अङ्गुलप्रमाणानि । २. एकोनत्रिंशदित्यर्थः ।

३. स्वकरतलप्रमाणाः ।

इष्टानि मर्माण्यन्येषाम् चतुर्थोक्ताः सिरास्तु याः ॥ ६३ ॥
 तर्पयन्ति वपुः कृत्स्नं ता मर्माण्याश्रितास्ततः ।
 तन्मृतास्तजात्यर्थ-प्रवृत्तेर्धातुसङ्क्षये ॥ ६४ ॥
 वृद्धश्चलो रुजस्तीव्राः प्रतनोति समीरयन् ।
 तेजस्तदुद्धृतं धत्ते तृष्णाशोषमदभ्रमान् ॥ ६५ ॥
 स्विन्नस्तश्चथतनुं हरत्येनं ततोऽन्तकः ।
 वर्धयेत्सन्धितो गात्रं मर्मण्यभिहते द्रुतम् ॥ ६६ ॥
 छेदनात्सन्धिदेशस्य सङ्कुचन्ति सिरा ह्यतः ।
 जीवितं प्राणिनां तत्र^१ रक्ते तिष्ठति तिष्ठति ॥ ६७ ॥
 सुविक्षतोऽप्यतो जीवेदमर्मणि न मर्मणि ।
 प्राणघातिनि जीवेत् कश्चिद्वैद्यगुणेन चेत् ॥ ६८ ॥
 असमग्राभिघाताच्च सोऽपि वैकल्यमश्नुते ।
 तस्मात्क्षारविषाग्न्यादीन् यत्नान्मर्मसु वर्जयेत् ॥ ६९ ॥
 मर्माभिघातः स्वल्पोऽपि प्रायशो बाधतेतराम् ।
 रोगा मर्माश्रयास्तद्वत्प्रक्रान्ता यत्नतोऽपि च ॥ ७० ॥^२

इति शारीरस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।



१. तत्र = मर्मणि स्थाने, रक्ते = रुधिरे, तिष्ठति सति प्राणिनां
 जीवितं तिष्ठति = स्थिरं भवति, अतः कारणाद् अमर्मणि सुविक्ष-
 तोऽपि जीवेत्, मर्मणि तु सुविक्षतो न जीवेत् । कश्चित्-जीवेत्, चेत्,
 स तु वैद्यगुणेन-इत्यन्वयः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

‘अथातो विकृतिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः’ ।

‘पुष्पं फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदयः ।

यथा भविष्यतो लिङ्गं रिष्टं मृत्योस्तथा ध्रुवम् ॥ १ ॥

(आयुष्मति क्रियाः सर्वाः सफलाः सम्प्रयोजिताः ।

भवन्ति भिषजां भूत्यै कृतज्ञ इव भूभुजि ॥

क्षीणायुषि कृतं कर्म व्यर्थं कृतमिवाऽधमे ।

अयशो देहसन्देहं स्वार्थहानिं च यच्छति ॥

तर्हीदानीं गतासूनां लक्षणं सम्प्रचक्षते ।

विकृतिः प्रकृतेः प्राज्ञैः प्रदिष्टा रिष्टसंज्ञया^१ ॥)

‘अरिष्टं नास्ति मरणं दृष्टरिष्टं च जीवितम् ।

अरिष्टे रिष्टविज्ञानं न च रिष्टेऽप्यनैपुणात् ॥ २ ॥

केचित्तु तद्द्विधेत्याहुः स्थाय्यस्थायिविभेदतः ।

१. अथ = मर्मविभागविज्ञानानन्तरं यतो मर्मजा रोगा असाध्या
अतः = असाध्यत्वसूचकानि प्रकृतेर्विकृति-कराणि चिह्नानि विशा-
तव्यानि-इति पूर्वापरसङ्गतिः,

२. चरकादिसंहितासु-इन्द्रियस्थानस्यायं विषयः ।

३. वर्षस्य = वृष्टेः अनुमानप्रयोगास्तु-अस्मिन् वृक्षे फलानि
भविष्यन्ति, अथवा अयं वृक्षः भाविफलवान् पुष्पोदयवत्त्वात्, पुष्पि-
तत्वाद् वा यन्नैवं तन्नैवम्-इत्यादिरीत्या ऊहनीयाः ।

४. सर्वत्र निरङ्काः श्लोकाः प्रक्षिप्ताः सन्ति ।

५. अरिष्टम् = रिष्टरहितम् ।

१ दोषाणामपि बाहुल्याद्रिष्टाभासः समुद्भवेत् ॥ ३ ॥
स दोषाणां शमे शाम्येत्स्थाय्यवश्यं तु मृत्यवे ।

अरिष्टान्याह—

रूपेन्द्रियस्वरच्छाया-प्रतिच्छायाक्रियादिषु ॥ ४ ॥

अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतेष्वनिमित्ततः ।

विकृतिर्या समासेन रिष्टं तदिति लक्षयेत् ॥ ५ ॥

केशरोम निरभ्यङ्गं यस्याभ्यक्तमिवेक्ष्यते ।

यस्यात्यर्थं चले नेत्रे स्तब्धान्तर्गतनिर्गते ॥ ६ ॥

जिह्वे विस्तृतसङ्क्षिप्ते सङ्क्षिप्तविनतभ्रुणी ।

उद्भ्रान्तदर्शने हीनदर्शने नकुलोपमे ॥ ७ ॥

कपोताभे अलाताभे स्मृते लुलितपद्मणी ।

नासिकाऽत्यर्थविवृता संवृता पिटिकाचिता ॥ ८ ॥

उच्छूना स्फुटिता म्लानाऽयस्यौष्ठो यात्यधोऽधरः ।

ऊर्ध्वं द्वितीयः, स्यातां वा पक्वजम्बूनिभावुभौ ॥ ९ ॥

दन्ताः सशर्कराः श्यावास्ताम्राः पुष्पितपङ्किताः ।

सहस्रैव पतेयुर्वाऽजिह्वा जिह्वा विसर्पिणी ॥ १० ॥

१. दोषाणां = वातादीनां, बाहुल्याद् = अतिविकृतत्वाद्-रिष्टमिव
आभासते रिष्टाऽऽभासः, अपि न तु वास्तवं रिष्टं समुद्भवेत् = उत्प-
द्येत, स = रिष्टाभासः दोषाणां शमे शाम्येत्-अतोऽस्थायीति भावः,
(दोषशान्तावशाम्यन्) स्थायी तु-अवश्यं मृत्यवे सम्पद्यते-इत्येवं
प्रकारेण केचित्तु तद् द्विधेत्याहुः । सदोषाणां शमे-इति पाठे-तद् =
आभासरूपं रिष्टम्-इति व्याख्येयम् ।

शूना शुष्का गुरुः श्यावा लिप्ता सकण्टका ।
 शिरः शिरोधरा वोढुं पृष्ठं वा भारमात्मनः ॥ ११ ॥
 हनू वा पिण्डमास्यस्थं शक्नुवन्ति न यस्य च ।
 यस्यानिमित्तमङ्गानि गुरुण्यति लघूनि वा ॥ १२ ॥
 विषदोषाद्विना यस्य खेभ्यो रक्तं प्रवर्तते ।
 उत्सिक्तं मेहनं यस्य वृषणावतिनिःसृतौ ॥ १३ ॥
 अतोऽन्यथा वा यस्य स्यात् सर्वे ते कालचो(नो)दिताः ।
 यस्यापूर्वाः शिरालेखा बालेन्द्राकृतयोऽपि वा ॥ १४ ॥
 ललाटे बस्तिशीर्षे वा षण्मासान्न स जीवति ।
^१पद्मिनीपत्रवत्तोयं शरीरे यस्य देहिनः ॥ १५ ॥
 प्लवते ^२प्लवमानस्य षण्मासास्तस्य ^३जीवितम् ।
 हरिताभाः सिरा यस्य रोमकूपाश्च संवृताः ॥ १६ ॥
 सोऽम्लाभिलापी पुरुषः पित्तान्मरणमश्नुते ।
 त्यजन्ति वाऽतिवैरस्यात्सोऽपि वर्षं न जीवति ॥ १७ ॥

१. पद्मिनी-पत्रे-इव-पद्मिनीपत्रवत्, 'तत्र तस्येवेति' सप्तम्य-
 न्ताद्वतिः, शरीरे-इत्युपमेयेन सामानाधिकरण्यात् ।

२. प्लवमानस्य = स्नानं कुर्वतः, प्लवते = निर्गच्छति, न तु स-
 ज्जते । ३. तस्य जीवितम् = प्राणधारणकालः षट्-मासाः इति व्यस्तः
 प्रयोगः । षट्-मासा यस्मिन् इति समासे- 'षण्मासं तस्येति' पाठः ।
 पञ्चम्यन्तपाठे 'न' इत्यस्यानुवृत्तिः कर्त्तव्या, अत्यन्तसंयोगविवक्षायां
 'षण्मासोस्तस्येति' द्वितीयान्तः पाठः । एवमत्र बहवः पाठाः
 समर्थिताः ।

यस्य गोमयचूर्णाभं चूर्णं मूर्ध्नि मुखेऽपि वा ॥ १७ ॥
 सस्नेहं, मूर्ध्नि धूमो वा, मासान्तं तस्य जीवितम् ॥
 मूर्ध्नि भ्रुवोर्वा कुर्वन्ति सीमन्तावर्तका नवाः ॥ १८ ॥
 मृत्युं स्वस्थस्य षड्रात्राच्चिरात्रादातुरस्य तु ।
 जिह्वा श्यावा मुखं पूति सव्यमक्षि निमज्जति ॥ १९ ॥
 खगा वा मूर्ध्नि लीयन्ते यस्य तं परिवर्जयेत् ।
 यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं शुष्यत्युरो भृशम् ॥ २० ॥
 आर्द्रेषु सर्वगात्रेषु सोऽर्धमासं न जीवति ।
 अकस्माद्युगपद्गात्रे वर्णौ प्राकृतवैकृतौ ॥ २१ ॥
 तथैवोपचयग्लानिरौक्ष्यस्नेहादि मृत्यवे ।
 यस्य स्फुटेयुरङ्गुल्यो नाऽकृष्टा न स जीवति ॥ २२ ॥
 क्ष्वकासादिषु तथा यस्यापूर्वो ध्वनिर्भवेत् ।
 ह्रस्वो दीर्घोऽति वोच्छ्वासः पूतिः सुरभिरेव वा ॥ २३ ॥
 आप्लुतानाप्लुते काये यस्य गन्धोऽतिमानुषः ।
 मलवस्त्रवणादौ वा वर्षान्तं तस्य जीवितम् ॥ २४ ॥
 भजन्तेऽत्यङ्गसौरस्याद् यं यूकामक्षिकादयः^१ ।
 सततोष्मसु गात्रेषु शैत्यं यस्योपलभ्यते ।
 शीतेषु भृशमौष्ण्यं वा स्वेदः स्तम्भोऽप्यहेतुकः ॥ २५ ॥
 यो जातशीतपिटिकः शीताङ्गो वा विदह्यते ।
 उष्णद्वेषी च शीतार्तः स प्रेताधिपगोचरः ॥ २७ ॥
 उरस्यूष्मा भवेद्यस्य जठरे चातिशीतता ।

१. यूकामक्षिकादयः मधुरप्रियाः अत्यङ्गसौरस्याद् = अतिशयेन,
 अङ्गमाधुर्याद् यं भजन्ते-इत्यन्वयः ।

भिन्नं पुरीषं तृष्णा च यथा प्रेतस्तथैव सः ॥ २८ ॥
 मूत्रं पुरीषं निष्ठयूतं शुक्रं वाऽप्सु निमज्जति ।
 निष्ठयूतं बहुवर्णं वा यस्य मासात्स नश्यति ॥ २९ ॥
 घनीभूतमिवाकाशमाकाशमिव यो घनम् ।
 अमूर्तमिव मूर्तं च मूर्तं चामूर्तवस्थितम् ॥ ३० ॥
 तेजस्व्यतेजस्तद्वच्च शुक्लं कृष्णमसच्च सत् ।
 अनेत्ररोगश्चन्द्रं च बहुरूपमलान्बुधम् ॥ ३१ ॥
 जाग्रदृक्षांसि गन्धर्वान् प्रेतानन्यांश्च तद्विधान् ।
 रूपं व्याकृति तत्तच्च यः पश्यति स नश्यति ॥ ३२ ॥
 सप्तर्षीणां समीपस्थां यो न पश्यत्यरुन्धतीम्^१ ।
 ध्रुवमाकाशगङ्गां^२ वा स न पश्यति तां समाम् ॥ ३३ ॥
 मेघतोयौघनिर्घोष-वीणापणववेणुजान् ।
 शृणोत्यन्यांश्च यः शब्दानसतो न सतोऽपि वा ॥ ३४ ॥
 निष्पीड्य कर्णौ शृणुयान्न यो धुकधुकास्वनम् ।
 तद्वद्वन्धरसस्पर्शान् मन्यते यो विपर्ययात् ॥ ३५ ॥
 सर्वशो वा न यो, यश्च दीपगन्धं न जिघ्रति ।
 विधिना यस्य दोषाय स्वास्थ्यायाविधिना रसाः ॥ ३६ ॥
 यः पांसुनेव कीर्णाङ्गो योऽङ्गे घातं न वेत्ति वा ।

१. 'पूर्वं भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वशिष्ठोऽस्मात्'-
 इत्युक्तेर्द्वितीयो वसिष्ठः । 'तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रिताऽरुन्धती-
 साध्वी' इत्युक्तां सूक्ष्मताराम् ।

२. आकाशगङ्गा = श्रवणनक्षत्रोदये गगने गोलाकारोत्तरदक्षिणा-
 यता दृश्यते ।

१ अन्तरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥
 जानात्यतीन्द्रियं यश्च तेषां मरणमादिशेत् ।
 हीनो दीनः स्वरोऽन्यक्तो यस्य स्याद्भद्रदोऽपि वा ॥ ३८ ॥
 सहसा यो विमुञ्चेद्वा विवक्षुर्न स जीवति ।
 स्वरस्य दुर्बलीभावं हानिं च बलवर्णयोः ॥ ३९ ॥
 रोगवृद्धिमयुक्त्या च दृष्ट्वा मरणमादिशेत् ।
 अपस्वरं भाषमाणं प्राप्तं मरणमात्मनः ॥ ४० ॥
 श्रोतारं चास्य शब्दस्य दूरतः परिवर्जयेत् ।
 २ संस्थानेन प्रमाणेन वर्णेन प्रभयाऽपि वा ॥ ४१ ॥
 छाया विवर्तते यस्य स्वप्नेऽपि प्रेत एव सः ।
 छाया द्विविधा ।
 आतपाऽऽदर्शतोयादौ या संस्थानप्रमाणतः ॥ ४२ ॥
 छायाऽङ्गात्सम्भवत्युक्ता प्रतिच्छायेति सा पुनः ।
 वर्णप्रभाश्रया या तु सा छायेव शरीरगा ॥ ४३ ॥
 भवेद्यस्य प्रतिच्छाया च्छिन्ना भिन्नाऽधिकाऽऽकुला ।
 विशिरा द्विशिरा जिह्वा विकृता यदि वाऽन्यथा ॥ ४४ ॥
 तं समाप्तायुषं विद्यान्न चेह्यन्नमित्तजा ।
 प्रतिच्छायामयी यस्य न चाक्षणीक्ष्येत कन्यका ३ ॥ ४५ ॥
 खादीनां पञ्च पञ्चानां छाया विविधलक्षणाः ।

१. तीव्रं तपोऽन्तरेण = विना, विधिपूर्वकं योगं वा विना यः नरः
 अतीन्द्रियं वस्तु जानाति-इत्यन्वयः, चकारः पूर्वोक्तानां समुच्चयार्थः ।

२. संस्थानम् = अवयवसन्निवेशः आकृतिरित्यर्थः ।

३. कन्यका = कनीनिका ।

महाभूतच्छायामाह—

‘नाभसी’ निर्मलाऽऽनीला सस्नेहा सप्रभेव च ॥ ४६ ॥
 ‘वाता’द्रजोऽरुणा श्यावा भस्मरूक्षा हतप्रभा ।
 विशुद्धरक्ता ‘स्वाग्नेयी’ दीप्ताभा दर्शनप्रिया ॥ ४७ ॥
 शुद्धवैदूर्यविमला सुस्निग्धा ‘तोयजा’ सुखा ।
 स्थिरा स्निग्धा घना शुद्धा श्यामा श्वेता च ‘पार्थिवी’ ॥ ४८ ॥
 वायवी रोगमरण-क्लेशायाऽन्याः सुखोदयाः ।
 प्रभोक्ता तैजसी सर्वा, सा तु सप्तविधा स्मृता ॥ ४९ ॥
 रक्ता पीता सिता श्यावा हरिता पाण्डुराऽसिता ।
 तासां याः स्युर्विकासिन्यः स्निग्धाश्च विमलाश्च याः ॥ ५० ॥
 ताः शुभा, मलिना रूक्षाः सङ्क्षिप्ताश्चाऽशुभोदयाः ।
 वर्णमाक्रामति च्छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी ॥ ५१ ॥
 १ आसन्ने लक्ष्यते छाया विकृष्टे भा प्रकाशते ।
 नाच्छायो नाप्रभः कश्चिद्विशेषाश्चिह्नयन्ति तु ॥ ५२ ॥
 नृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायासमाश्रयाः ।
 निकषन्निव यः पादौ च्युतांसः परिसर्पति ॥ ५३ ॥
 हीयते बलतः शश्वद्योऽन्नमशनन् हितं बहु ।
 योऽल्पाशी बहुविण्मूत्रो बह्वाशी चाल्पमूत्रविट् ॥ ५४ ॥
 यो वाऽल्पाशी कफेनार्तो दीर्घं श्वसिति चेष्टते ।
 दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं निःश्वस्य परिताम्यति ॥ ५५ ॥
 ह्रस्वं च यः प्रश्वसिति २ व्याविद्धं स्पन्दते भृशम् ।

१. छायाप्रभयोर्भेदमाह—आसन्ने इति । २. व्याविद्धं = विषमम् ।

शिरो विसृज्यते कृच्छ्राद्योऽञ्जयित्वा प्रपाणिकौ ॥ ५६ ॥
 यो ललाटात्स्वतस्वेदः श्लथसन्धानबन्धनः ।
 उत्थाप्यमानः सम्मुह्येद्यो बली दुर्बलोऽपि वा ॥ ५७ ॥
 उत्तान एव स्वपिति यः पादौ विकरोति च ।
^१शयनासनकुड्यादौ योऽसदेव जिघृक्षति ॥ ५८ ॥
 अहास्यहासी सम्मुह्यन् यो लेढि दशनच्छदौ ।
 उत्तरौष्ठं परिलिहन् फूत्कारांश्च करोति यः ॥ ५९ ॥
 यमभिद्रवति च्छाया कृष्णा पीताऽरुणाऽपि वा ।
 भिषग्भेषजपानाऽन्न-गुरुमित्रद्विषश्च ये ॥ ६० ॥
 वशगाः सर्व एवैते विज्ञेयाः समवर्तिनः^२ ।
 (ग्रीवालललाटहृदयं यस्य स्विद्यति शीतलम् ॥ ६१ ॥
 उष्णोऽपरः प्रदेशश्च शरणं तस्य देवताः ।)
 [पूर्वरूपाणि सर्वाणि ज्वरादिष्वतिमात्रया ।
 यं विशन्ति विशत्येनं मृत्युर्ज्वरपुरःसरः ॥]
 यो^३ अणुज्योतिरनेकाग्रो दुश्छायो दुर्मनाः सदा ॥ ६२ ॥
 बलिं बलिभृतो यस्य प्रणीतं नोपभुञ्जते ।
 निर्निमित्तं च यो मेधां शोभामुपचयं श्रियम् ॥ ६३ ॥
 प्राप्नोत्यतो वा विभ्रंशं स प्राप्नोति यमक्षयम् ।

१. यः शयनासनकुड्यादौ विषये, असद् = अविद्यमान, वस्तु
 ग्रहीतुमिच्छति ।

२. समवर्ती = परेतराट् तस्य वशवर्त्तिनो विज्ञेयाः ।

३. अणुज्योतिः = अतिस्तोकदृष्टिः, अनेकाग्रः = व्यग्रचित्तः बलि-
 भृतः = काकादयः ।

गुणदोषमयी यस्य स्वस्थस्य व्याधितस्य वा ॥ ६४ ॥
 यात्यन्यथात्वं प्रकृतिः पष्मासान्न स जीवति ।
 भक्तिः शीलं स्मृतिस्त्यागो बुद्धिर्बलमहेतुकम् ॥ ६५ ॥
 षडेतानि निवर्तन्ते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ।
 मत्तवद्गतिवाक्कम्प-मोहा मासान्मरिष्यतः ॥ ६६ ॥
 नश्यत्यजानन् षडहात्केशलुञ्जनवेदनाम् ।
 न याति यस्य चाहारः कण्ठं कण्ठाऽऽमयादृते ॥ ६७ ॥
 प्रेष्याः प्रतीपतां यान्ति प्रेताकृतिरुदीर्यते ।
 यस्य निद्रा भवेन्नित्या नैव वा न स जीवति ॥ ६८ ॥
 वक्रमापूर्यतेऽश्रूणां स्विद्यतश्चरणौ भृशम् ।
 चक्षुश्चाकुलतां याति^१ यमराज्यं गमिष्यतः ॥ ६९ ॥
 यैः पुरा रमते भावैरतिस्तैर्न जीवति ।
 सहसा जायते यस्य विकारः सर्वलक्षणः ॥ ७० ॥
 निवर्तते वा सहसा, सहसा स विनश्यति ।

अथ प्रतिरोगं रिष्टमाह—

ज्वरो निहन्ति बलवान्^२ गम्भीरो दैर्घरात्रिकः ॥ ७१ ॥

१. यमराज्यं = यमालयम् ।

२. बलवान् = प्रबलाऽपथ्यजन्यः, गम्भीरः समस्तधात्वन्तर्गतः,
 दैर्घरात्रिकः = चिरजः, प्रलाप (अनर्थकवचन) भ्रमश्वाससहितः,
 ज्वरः = रोगराजः कर्त्ताः, क्षीणः, = धातुक्षययुक्तम्, नष्टाऽग्निम्,
 अक्षामम् = स्थूलम्, सक्तवचनम् = अबलवचनम्, रक्तनेत्रम्, हृदय-
 शूलयुक्तम्, पुरुषं निहन्ति = नाशयति-इत्येकं रिष्टम् ।

सप्रलापभ्रमश्वासः क्षीणं शूनं हतानलम् ।
अक्षामं सक्तवचनं रक्ताक्षं हृदि शूलिनम् ॥ ७२ ॥
संशुष्ककासः पूर्वाह्ने^१ योऽपराह्नेऽपि वा भवेत् ।
बलमांसविहीनस्य^२ श्लेष्मकाससमन्वितः ॥ ७३ ॥

रक्तपित्तारिष्टमाह—

रक्तपित्तं भृशं रक्तं कृष्णमिन्द्रधनुप्रभम् ।
ताम्रहारिद्रहरितं रूपं रक्तं प्रदर्शयेत् ॥ ७४ ॥
रोमकूपप्रविस्तृतं कण्ठास्यहृदये सजत् ।
^३वाससोऽरञ्जनं पूति वेगवच्चाति भूरि च ॥ ७५ ॥
वृद्धं पाण्डुज्वरच्छर्दिकासशोफातिसारिणम् ।

कासश्वासारिष्टमाह—

कासश्वासौ ज्वरच्छर्दितृष्णाऽतीसारशोफिनम् ॥ ७६ ॥
'यक्ष्मा' पार्श्वरुजानाह-रक्तच्छर्द्यसतापिनम् ।
'छर्दिर्वेगवती' मूत्रशकृद्गन्धिः सचन्द्रिका ॥ ७७ ॥
सास्त्रविट्पूयरुक्कासश्वासवत्यनुषङ्गिणी ।
'तृष्णा'ऽन्यरोगक्षपितं बहिर्जिह्वं विचेतनम् ॥ ७८ ॥
'मदात्ययो'ऽतिशीतार्त्तं क्षीणं तैलप्रभाननम् ।

१. यः ज्वरः सम्यक्शुष्ककासः सन् पूर्वाह्ने, अपराह्ने, वा भवेत् सोऽपि हन्ति, द्वितीयं रिष्टम् ।

२. यश्च ज्वरः बलरहितस्य मांसरहितस्य च नरस्य श्लेष्म-
समन्वितः काससमन्वितश्च भवेत् = सोपि ज्वरस्तं ज्वरिणं निहन्ति-
इति तृतीयं रिष्टम् ।

३. वासोरञ्जनं रक्तपित्तस्य स्वाभाविकम्-अरञ्जनमरिष्टम् ।

‘अर्शोसि’ पाणिपन्नाभिगुदमुष्कास्यशोफिनम् ॥ ७९ ॥

हृत्पार्श्वार्द्धरुजाच्छर्दिपायुपाकज्वरातुरम् ।

‘अतीसारो’ यकृत्पिण्डमांसधावनमेचकैः ॥ ८० ॥

तुल्यस्तैलघृतक्षीरदधिमज्जवसासवैः ।

मस्तुलुङ्गमषीपूयवेसवाराम्बुमाक्षिकैः ॥ ८१ ॥

अतिरक्तासितस्निग्धपूत्यच्छघनवेदनः ।

कर्बुरः प्रस्रवन् धातून् निष्पुरीषोऽथवाऽतिविट् ॥ ८२ ॥

तन्तुमान् मक्षिकाक्रान्तो राजीमांश्चन्द्रकैर्युतः ।

शीर्णपायुवलिं मुक्तनालं पर्वास्थिशूलिनम् ॥ ८३ ॥

स्रस्तपायुं बलक्षीणमन्नमेवोपवेशयन्^१ ।

स्तृट्श्वासज्वरच्छर्दि-दाहानाहप्रवाहिकः^२ ॥ ८४ ॥

‘अश्मरी’ शूनवृषणं बद्धमूत्रं रुजादितम् ।

‘मेह’स्तृड्दाहपिटिकामांसकोथातिसारिणम् ॥ ८५ ॥

‘पिटिका, मर्महृत्पृष्ठस्तनांसगुदमूर्धगाः ।

पर्वपादकरस्था वा मन्दोत्साहं प्रमेहिणम् ॥ ८६ ॥

सर्वं च मांससङ्कोथदाहतृष्णामदज्वरैः ।

विसर्पमर्मसंरोधहिध्माश्वासभ्रमकुमैः ॥ ८७ ॥

‘गुल्मः’ पृथुपरीणाहो घनः कूर्म इवोन्नतः ।

सिरानद्धो ज्वरच्छर्दि-हिध्माऽऽध्मानरुजान्वितः ॥ ८८ ॥

१. उपवेशयन् = हृदयन् = पुरीषोत्सर्गं कारयन् ।

२. तृषा, श्वासेन, ज्वरेण, चक्षुर्घा, दाहेन, आनाहेन, सहितः = प्रवाहिकया च उपद्रुतः अतीसार-इति सम्बध्यते निहन्ति-इत्यनुवर्तते ।

कासपीनसहृत्तास—श्वासातीसारशोफवान् ।

जठरारिष्टमाह—

विष्मूत्रसङ्ग्रहश्वास—शोफहिध्माज्वरभ्रमैः ॥ ८९ ॥

मूर्च्छाच्छर्द्यतिसारैश्च 'जठरं' हन्ति दुर्बलम् ।

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिष्टतनुत्वचम् ॥ ९० ॥

विरेचनहृतानाहमानह्यन्तं पुनः पुनः ।

'पाण्डुरोगः' श्वयथुमान् पीताक्षिनखदर्शनम् ॥ ९१ ॥

तन्द्रादाहारुचिच्छर्दि—मूर्च्छाध्मानातिसारवान् ।

शोफारिष्टमाह—

^१अनेकोपद्रवयुतः पादाभ्यां प्रसृतो नरम् ॥ ९२ ॥

नारीं 'शोफो' मुखाद्धन्ति, कुक्षिगुह्यादुभावपि ।

राजीचितः स्रवश्छर्दि—ज्वरश्वासातिसारिणम् ॥ ९३ ॥

ज्वरातिसारौ शोफान्ते श्वयथुर्वा तयोः क्षये ।

दुर्बलस्य विशेषेण जायन्तेऽन्ताय देहिनः ॥ ९४ ॥

श्वयथुर्यस्य पादस्थः परिस्रस्ते च पिण्डके ।

सीदतः सक्थिनी चैव तं भिषक् परिवर्जयेत् ॥ ९५ ॥

आननं हस्तपादं च विशेषाद्यस्य शुष्यतः ।

शूयेते वा विना देहात्स मासाद्याति पञ्चताम् ॥ ९६ ॥

'विसर्पः' कासवैवर्ण्यज्वरमूर्च्छाङ्गथङ्गवान् ।

१. अनेकोपद्रव-युतः पादाभ्यां प्रसृतः शोफः, नरं हन्ति, अनेकोपद्रवैर्युतः, मुखात्प्रसृतः, शोफः नारीं हन्ति, अनेकैरुपद्रवैर्युतः कुक्षि-गुह्यात्प्रसृतः, शोफः उभौ=नारीनरौ कर्मभूतौ हन्ति-इत्यन्वयः ।

अमास्यशोफहृल्लास-देहसादातिसारवान् ॥ ९७ ॥
 'कुष्ठं' विशीर्यमाणाङ्गं रक्तनेत्रं हतस्वरम् ।
 मन्दाग्निं जन्तुभिर्जुष्टं हन्ति तृष्णातिसारिणम् ॥ ९८ ॥
 'वायुः' सुप्तत्वचं भुग्नं कम्पशोफरुजातुरम् ।
 'वातास्रं' मोहमूर्च्छायामदास्वप्नज्वरान्वितम् ॥ ९९ ॥
 शिरोग्रहारुचिश्वाससङ्कोचस्फोटकोथवत् ।
 शिरोरोगारुचिश्वासमोहविड्भेदतृड्भ्रमैः ॥ १०० ॥
 घ्नन्ति 'सर्वाभयाः' क्षीणस्वरधातुबलानलम् ।
 'वातव्याधिरपस्मारी कुष्ठी रक्त्युदरी क्षयी ॥ १०१ ॥
 गुल्मी मेही च तान् क्षीणान् विकारेऽल्पेऽपि वर्जयेत् ।
 बलमांसक्षयस्तीव्रो रोगवृद्धिररोचकः ॥ १०२ ॥
 यस्यातुरस्य लक्ष्यन्ते त्रीन् पक्षान्न स जीवति ।
 'वाताष्टीला'ऽतिसंवृद्धा तिष्ठन्ती दारुणा हृदि ॥ १०३ ॥
 तृष्णया तु परीतस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम् ।
 शैथिल्यं पिण्डिके वायुर्नृत्वा नासां च जिह्मताम् ॥ १०४ ॥
 क्षीणस्यायम्य मन्ये वा सद्यो मुष्णाति जीवितम् ।
 नाभीगुदान्तरं गत्वा^१ वङ्क्षणी^२ वा समाश्रयन् ॥ १०५ ॥
 गृहीत्वा पायुहृदये क्षीणदेहस्य वा बली ।
 मलान् बस्तिशिरो नाभिं विबद्धथ जनयन् रुजम् ॥ १०६ ॥

१. वातः व्याधिर्यस्येति बहुव्रीहिः अन्यानि पदानि मत्वर्थीयानि,
 यः वातव्याधिः, अपस्मारी मेही च तान् पतनिति सम्बन्धः ।

२. वङ्क्षणी=ऊरुसन्धी ।

कुर्वन् वङ्क्षणयोः शूलं तृष्णां भिक्षपुरीषताम् ।
 श्वासं वा जनयन् वायुर्गृहीत्वा गुदवङ्क्षणम् ॥ १०७ ॥
 वितत्य पशुकाग्राणि^१ गृहीत्वोरश्च मास्तः ।
 स्तिमितस्यातताक्षस्य सद्यो मुष्णाति जीवितम् ॥ १०८ ॥
 सहसा स्वरसन्तापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः ।
 विश्लेषणं च सन्धीनां मुमूर्षोरुपजायते ॥ १०९ ॥
^२गोसर्गे वदनाद् यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।
 लेपज्वरोपतप्तस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ ११० ॥
^३प्रवालगुलिकाभासा यस्य गात्रे मसूरिकाः ।
 उत्पद्याशु विनश्यन्ति न चिरात्स विनश्यति ॥ १११ ॥
 मसूरविदलप्रख्यास्तथा विद्रुमसन्निभाः ।
 अन्तर्वक्त्राः किणाभाश्च विस्फोटा देहनाशनाः ॥ ११२ ॥
 कामलाऽक्षणोर्मुखं पूर्णं शङ्खयोर्मुक्तमांसता ।
 सन्त्रासश्चोष्णताऽङ्गे च यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ११३ ॥
 (अकस्मादनुधावच्च विघृष्टं त्वक्समाश्रयम् ।
 चन्दनोशीरमदिराकुणपध्वाङ्गुगन्धयः ।
 शैवालकुक्कुटशिखाकुङ्कुमालमषीप्रभाः ॥)
 अन्तर्दाहा निरूपमाणः प्राणनाशकरा व्रणाः ।
 यो वातजो न शूलाय स्यान्न दाहाय पित्तजः ॥ ११४ ॥
 कफजो न च पूयाय मर्मजश्च रुजे न यः ।
 अचूर्णश्चूर्णकीर्णाभो यत्राकस्माच्च दृश्यते ॥ ११५ ॥

१. पशुकाः=पार्श्वस्थानि । २. गोसर्गे=प्रभाते ।

३. प्रवालगुटिका=विद्रुमगुलिका ।

रूपं शक्तिध्वजादीनां सर्वास्तान्वर्जयेद् व्रणान्^१ ।
 विष्मूत्रमारुतवहं कृमिणं च 'भगन्दरम्'^२ ॥ ११६ ॥
 घट्टयन् जानुना जानु पादाबुध्यम्य पातयन् ।
 योऽपास्यति मुहुर्वक्रमातुरो न स जीवति ॥ ११७ ॥
 दन्तैश्छिन्दन्नखाग्राणि तैश्च केशांस्तृणानि च ।
 भूमिं काष्ठेन विलिखन्^३ लोष्टं लोष्टेन ताडयन् ॥ ११८ ॥
^४हृष्टरोमा सान्द्रमूत्रः शुष्ककासी ज्वरी च यः ।
 मुहुर्हसन् मुहुः क्ष्वेडन्^५ शय्यां पादेन हन्ति यः ॥ ११९ ॥
 मुहुश्छिद्राणि^६ विमृशन्नातुरो न स जीवति ।
 मृत्यवे सहसाऽऽर्त्तस्य^७ तिलकव्यङ्गपिप्लवः ॥ १२० ॥
 मुखे, दन्तनखे पुष्पं,^८ जठरे विविधाः सिराः ।
 ऊर्ध्वश्वासं गतोष्माणं शूलोपहतवङ्क्षणम् ॥ १२१ ॥
 शर्म चानधिगच्छन्तं बुद्धिमान् परिवर्जयेत् ।

१. लोष्टम्=मृत्पिण्डम् । २. हृष्टरोमा = सरोमाद्वः ।

३. क्ष्वेडन्=शब्दं कुर्वन् ।

४. मुहुः पुनः २ छिद्राणि=तन्ध्राणि परिचारकादीनामपराधान् ,
 विमृशन्=परामृशन् धोषयन् , नासिकादीनि खानि मुहुः स्पृशंश्च ।

५. आर्त्तस्य सहसा मुखे-उत्पन्नाः, तिलकाश्च व्यङ्गाश्च पिप्लवश्च
 मृत्यवे सम्पद्यन्ते, 'जडु(डु)लः कालकः पिप्लुरित्यमरः, शरीरस्थं
 कृष्णचिह्नं पिप्लुः ।

६. दन्ताश्च नखाश्च-अनयोः समाहारो दन्तनखं तस्मिन्
 प्राप्यङ्गत्वादेकवद्भावः, पुष्पमिव पुष्पं, विकसितत्वं सुगन्धित्वञ्च,
 मृत्यवे, उदरे-नानावर्णा नानासंस्थानाः सिराश्च मृत्यवे सम्पद्यन्ते ।

विकारा यस्य^१ वर्धन्ते प्रकृतिः परिहीयते ॥ १२२ ॥
 सहसा सहसा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम् ।
 यमुद्दिश्यातुरं वैद्यः सम्पादयितुमौषधम् ॥ १२३ ॥
 यतमानो न शक्नोति दुर्लभं तस्य जीवितम् ।
 विज्ञातं बहुशः सिद्धं विधिवच्चावचारितम् ॥ १२४ ॥
 न सिध्यत्यौषधं यस्य नास्ति तस्य चिकित्सितम् ।
 भवेद्यस्यौषधेऽन्ने वा^२ कल्प्यमाने विपर्ययः ॥ १२५ ॥
 अकस्माद्द्वर्णगन्धादेः स्वस्थोऽपि न स जीवति ।
 निवाते सेन्धनं यस्य^३ ज्योतिश्चाप्युपशाम्यति ॥ १२६ ॥
 आतुरस्य गृहे यस्य भिद्यन्ते वा पतन्ति वा ।
 अतिमात्रममन्त्राणि^४ दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १२७ ॥
 यं नरं सहसा रोगो दुर्बलं परिमुञ्चति ।
 संशयप्राप्तमात्रेयो जीवितं तस्य मन्यते ॥ १२८ ॥

वैद्यं शास्ति—

कथयेन्न च पृष्टोऽपि दुःश्रवं मरणं भिषक् ।
 गतासोर्बन्धुमित्राणां न चेच्छेत्तं चिकित्सितम् ॥ १२९ ॥
 यमदूतपिशाचाद्यैर्यत्परासुरुपास्यते ।
 धनद्विरौषधवीर्याणि तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ १३० ॥

१. यस्य विकाराः सहसा वर्धन्ते, प्रकृतिः सहसा परिहीयते,
 तस्य जीवितं मृत्युः सहसा हरति—इत्यन्वयः ।

२. कल्प्यमाने = सम्पाद्यमाने सति ।

३. ज्योतिः = दीपादिः । ४. अमन्त्राणि = पात्राणि ।

आयुर्वेदफलं कृत्स्नं यदायुर्ज्ञे प्रतिष्ठितम् ।

रिष्टज्ञानाऽऽहतस्तस्मात्सर्वदैव भवेद्भिषक् ॥ १३१ ॥

मरणं^१ प्राणिनां दृष्टमायुःपुण्योभयक्षयात् ।

^२तयोरप्यक्षयाद्दृष्टं विषमाऽपरिहारिणाम् ॥ १३२ ॥

इति शारीरस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

^१अथातो दूतादिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः^२ ।

^३‘पाखण्डाश्रमवर्णानां सवर्णाः कर्मसिद्धये ।

१. प्राणिनां मरणं (मुनिभिः) आयुःक्षयात् , पुण्यक्षयात् , आयुःपुण्योभयक्षयाद्—दृष्टम् ।

२. तयोः=आयुःपुण्ययोरक्षणदपि दृष्टम् , केषामित्याह—विषमम्=अग्नि-जल-शृङ्गि-शस्त्र-गर्त—वृक्षारोहणादिकमपमृत्युहेतुं न परिहरन्ति न वर्जयन्ति तच्छरीरास्तेषां विषमाऽपरिहारिणाम्=प्रज्ञापराधिनाम् । इति ।

३. अथ=अन्तरङ्गदुर्निमित्तविज्ञानानन्तरम् यतः बहिरङ्गदुर्निमित्तज्ञानापेक्षितम् अतः दूतादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः शरीरमिति परम्परासंबन्धेन ।

४. चरकसंहिताया-इन्द्रियस्थाने द्वादशाध्याये ।

५. पाखण्डः पणवतिभेदभिन्नो व्रात्यविशेषः—इत्यरुणः, आश्रमाः ब्रह्मचारि-प्रभृतयः, वर्णाः ब्राह्मणादयस्तेषां समानवर्णाः

त एव विपरीताः स्युर्दूताः कर्मविपत्तये ॥ १ ॥
 दीनं भीतं द्रुतं त्रस्तं रुक्षाऽमङ्गलवादिनम् ।
 शस्त्रिणं दण्डिनं षण्ढं मुण्डशमश्रुजटाधरम् ॥ २ ॥
 अमङ्गलाह्वयं क्रूरकर्माणं मलिनं स्त्रियम् ।
 अनेकं व्याधितं व्यङ्गं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥ ३ ॥
 तैलपङ्काङ्कितं जीर्णविवर्णाद्रैकवाससम् ।
 खरोष्ट्रमहिषारूढं काष्ठलोष्टादिमर्दिनम् ॥ ४ ॥
 नानुगच्छेद्भिषग्दूतमाह्वयन्तं च दूरतः ।
 अशस्तचिन्तावचने नग्ने छिन्दति भिन्दति ॥ ५ ॥
 जुह्वाने पावकं पिण्डान् पितृभ्यो निर्वपत्यपि ।
 सुप्ते मुक्तकचेऽभ्यक्ते रुदत्यप्रयते तथा ॥ ६ ॥
 वैद्ये दूता मनुष्याणामागच्छन्ति सुमूर्षताम्^१ ।
^२विकारसामान्यगुणे देशे कालेऽथवा भिषक् ॥ ७ ॥
 दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ।
 स्पृशन्तो नाभिनासास्य-केशरोमनखद्विजान् ॥ ८ ॥

सवर्णास्त एव दूताः कार्यसिद्धिसूचकाः, विपरीताः विपत्तिसूचकाः
 इति भावः ।

१. सुमूर्षताम् = आसन्नमरणानाम्, (आशङ्कयां सन्) न
 तु-इच्छायाम्-अनभिप्रेतत्वात् । त्रियतेर्लुङ्लिङोश्चेति नियमात्पूर्वब-
 त्सन-इति नात्मनेपदम् ।

२. विकारेण = रोगेण सामान्यस्तुल्यो गुणो यस्य तादृशे देशे,
 तादृशे काले वा यथा—कफजे रोगे-अनूपो देशः, प्रातः कालश्च,
 विकारसामान्यगुणः, एवमन्यद् योजनीयम् ।

गुह्यपृष्ठस्तनग्रीवा-जठरानामिकाङ्गुलीः ।
 कार्पासबुससीसास्थि-कपालमुशलोपलम् ॥ ९ ॥
 मार्जनीशूर्पचैलान्त-भस्माङ्गारदशातुपान् ।
 रज्जूपान्तुलापाशमन्यद्वा भग्नविच्युतम् ॥ १० ॥
 तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहरन्ति मरिष्यताम् ।
 तथाऽर्धरात्रे मध्याह्ने सन्ध्ययोः पर्ववासरे ॥ ११ ॥
 पष्ठीचतुर्थीनवमी-राहुकेतूदयादिषु ।
 भरणीकृत्तिकाऽऽश्लेषापूर्वाऽऽर्द्रापंच्यनैर्ऋते ॥ १२ ॥
 यस्मिंश्च दूते ब्रुवति वाक्यमातुरसंश्रयम् ।
 पश्येन्नमित्तमशुभं तं च नानुव्रजेद्भिषक् ॥ १३ ॥
 तद्यथा विकलः प्रेतः प्रेतालङ्कार एव वा ।
 छिन्नं दग्धं विनष्टं वा तद्वादीनि वचांसि वा ॥ १४ ॥
 रसो वा कटुकस्तीव्रो गन्धो वा कौणपो महान् ।
 स्पर्शो वा विषुलः क्रूरो यद्वाऽन्यदपि तादृशम् ॥ १५ ॥
 तत्सर्वमभितो वाक्यं वाक्यकालेऽथवा पुनः ।
 दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ॥ १६ ॥
 हाहाक्रन्दितमुत्क्रुष्टमाक्रुष्टं स्वलनं क्षुतम् ।
 वस्त्राऽऽतपन्न-पादत्र-व्यसनं व्यसनीक्षणम्^१ ॥ १७ ॥
 चैत्यध्वजानां पात्राणां पूर्णानां च निमज्जनम् ।
 हतानिष्टप्रवादाश्च दूषणं भस्मपांसुभिः ॥ १८ ॥
 पथश्छेदोऽहिमार्जार-गोधा-सरट^२वानरैः ।

१. व्यसनिनां दुःखिनां शोण्वतामीक्षणं दर्शनम् न शोभनम् ।

२. सरटः कृकलासः स्यात् ।

१ दीप्तां प्रति दिशं वाचः क्रूराणां मृगपक्षिणाम् ॥ १९ ॥
 कृष्णधान्यगुडोदश्वि-ह्ववणासवचर्मणाम् ।
 सर्षपाणां वसातैल-नृणपङ्केन्धनस्य च ॥ २० ॥
 क्लीवक्रूरश्वपाकानां जालवागुरयोरपि ।
 छर्दितस्य पुरीषस्य पूतदुर्दर्शनस्य च ॥ २१ ॥
 निःसारस्य व्यवायस्य कार्पासादेररेरपि ।
 शयनासनयानानामुत्तानानां तु दर्शनम् ॥ २२ ॥
 न्युब्जानामितरेषां च पात्रादीनामशोभनम् ।
 पुंसंज्ञाः पक्षिणो वामाः स्त्रीसंज्ञा दक्षिणाः शुभाः ॥ २३ ॥
 प्रदक्षिणं खगमृगा यान्तो, नैवं श्वजम्बुकाः ।
 अयुग्माश्च मृगाः शस्ताः ॥ शस्ता नित्यं च दर्शने ॥ २४ ॥
 चाषभासभरद्वाज-नकुलच्छागबर्हिणः ।
 अशुभं सर्वथोलूक-विडालसरटेक्ष्णम् ॥ २५ ॥
 प्रशस्ताः कीर्त्तने कोलगोधाहिशशजाहकाः ।
 न दर्शने न विरुते, वानरर्क्षावतोऽन्यथा ॥ २६ ॥
 धनुरैन्द्रं च^१ लालाटमशुभं, शुभमन्यतः ।
 अग्निपूर्णानि पात्रानि भिन्नानि विशिखानि च ॥ २७ ॥
 दध्यक्षतादि निर्गच्छद् वक्ष्यमाणं च मङ्गलम् ।
 वैद्यो मरिष्यतां वेश्म प्रविशन्नेव पश्यति ॥ २८ ॥

१. दीप्ताम् = आदित्याधिष्ठितदिशम्प्रति = अभिमुखं शृगाला-
 दीनां वाशनम्-अत एव कालिदासः, 'भास्करश्च दिशमध्युवास याम्,
 तां श्रिताः परिभयं बवाशिरे इति । २० स० ११ ।

२. लालाटस्य सम्मुखं लालाटम्, (शैषिकोऽण्)

दूताद्यसाधु दृष्ट्वैवं त्यजेदार्तमतोऽन्यथा ।

करुणाशुद्धसन्तानो यत्नतस्तमुषाचरेत् ॥ २९ ॥

शुभशकुनमाह—

दध्यक्षतेक्षुनिष्पाव-प्रियङ्गुमधुसर्पिषाम् ।

यावकाञ्जनभृङ्गारघण्टादीपसरोरुहाम् ॥ ३० ॥

दूर्वाद्रीमत्स्यमांसानां लाजानां फलभक्षयोः ।

रत्नेभ्यर्णकुम्भानां कन्यायाः स्यन्दनस्य च ॥ ३१ ॥

नरस्य वर्धमानस्य देवतानां नृपस्य च ।

शुक्लानां सुमनोवाल-चामराम्बरवाजिनाम् ॥ ३२ ॥

शङ्खसाधुद्विजोष्णीष-तोरणस्वस्तिकस्य च ।

भूमेः समुद्रतायाश्च वह्नेः प्रज्वलितस्य च ॥ ३३ ॥

मनोज्ञस्यान्नपानस्य पूर्णस्य शकटस्य च ।

नृभिर्धेन्वाः सवत्साया वडवायाः स्त्रिया अपि ॥ ३४ ॥

जीवजीवक-सारङ्ग-सारस-प्रियवादिनाम् ।

हंसानां शतपत्राणां बद्धस्यैकपशोस्तथा ॥ ३५ ॥

रुचकादर्शसिद्धार्थ-रोचनानां च दर्शनम् ।

गन्धः सुसुरभिर्वर्णः सुशुक्लो मधुरो रसः ॥ ३६ ॥

गोपतेरनुकूलस्य स्वनस्तद्वद्ववामपि ।

मृगपक्षिनराणां च शोभिनां शोभना गिरः ॥ ३७ ॥

छत्रध्वजपताकानामुत्क्षेपणमभिष्टुतिः ।

भेरीमृदङ्गशङ्खानां शब्दाः पुण्याहनिःस्वनाः ॥ ३८ ॥

१. जीवजावः खगान्तरे, द्रुमभेदे चकोरे च-इति हैमः ।
स्वार्थे कन् ।

वेदाध्ययनशब्दाश्च सुखो वायुः प्रदक्षिणः ।
 पथि वेश्मप्रवेशे च विद्यादारोग्यलक्षणम् ॥ ३९ ॥
 इत्युक्तं 'दूतशकुनं'॥स्वप्नानूर्ध्वं प्रचक्षते^१ ।
 स्वप्ने मद्यं सह प्रेतैर्यः पिबन् कृष्यते शुना ॥ ४० ॥
 स मर्त्यो मृत्युना शीघ्रं 'ज्वररूपेण' नीयते ।
 रक्तमाल्यवपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया ॥ ४१ ॥
 सोऽ'स्त्रपित्तेन'॥महिषश्ववराहोद्भृगर्दभैः ।
 यः प्रयाति दिशं याम्यां मरणं तस्य 'यक्ष्मणा' ॥ ४२ ॥
 लता कण्टकिनी वंशस्तालो वा हृदि जायते ।
 यस्य तस्याशु 'गुल्मेन'॥यस्य वह्निमनर्चिषम् ॥ ४३ ॥
 जुह्वतो घृतसिक्तस्य नम्रस्योरसि जायते ।
 पदमं स नश्ये'त्कुष्ठेन'॥चण्डालैः सह यः पिबेत् ॥ ४४ ॥
 स्नेहं बहुविधं स्वप्ने स 'प्रमेहेण' नश्यति ।
 'उन्मादेन' जले मज्जेद्यो नृत्यन् राक्षसैः सह ॥ ४५ ॥
 'अपस्मारेण' यो मर्त्यो नृत्यन् प्रेतेन नीयते ।
 यानं खरोष्ट्रमार्जार-कपिशार्दूलसूकरैः ॥ ४६ ॥
 यस्य प्रेतैः शृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते मुखे ।
 अपूपशङ्कुलीर्जग्ध्वा विबुद्धस्तद्विधं वमन् ॥ ४७ ॥

१. सर्वेन्द्रियव्युपरतौ मनोऽनुपरतं यदा ।

विषयेभ्यस्तदा स्वप्नं, नानारूपं प्रपश्यति ॥

श्लेष्माऽऽवृतेषु स्रोतःसु श्रमादुपरतेषु च ।

इन्द्रियेषु स्वकर्मभ्यो निद्रा विशति देहिनम् ॥

इति निद्रा-स्वप्नयोर्भेदः, संग्रहे-उक्तः ।

न जीवति ॥ अक्षिरोगाय सूर्येन्दुग्रहणेक्षणम् ।
 सूर्याचन्द्रमसोः पातदर्शनं दृग्विनाशनम् ॥ ४८ ॥
 मूर्ध्नि वंशलतादीनां सम्भवो वयसां तथा^१ ।
 निलयो मुण्डता काक-गृध्राद्यैः परिवारणम् ॥ ४९ ॥
 तथा प्रेतपिशाचस्त्री-द्रविडाऽऽन्ध-गवाऽशनैः^२ ।
 सङ्गो वेत्रलतावंश-तृणकण्टकसङ्कटे ॥ ५० ॥
 श्वभ्रशमशानशयनं, पतनं पांसुभस्मनोः ।
^३मज्जनं जलपङ्कादौ शीघ्रेण स्रोतसा हतिः ॥ ५१ ॥
 नृत्यवादित्रगीतानि रक्तस्रग्भस्त्रधारणम् ।
 वयोङ्गवृद्धिरभ्यङ्गो विवाहः शमश्रुकर्म^४ च ॥ ५२ ॥
 पक्वान्नस्नेहमद्याशः प्रच्छर्दनविरेचने ।
 हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्वन्धपराजयौ ॥ ५३ ॥
 उपानद्युगनाशश्च प्रपातः पादचर्मणोः ।
 हर्षो भृशं प्रकुपितः पितृभिश्चावभर्त्सनम्^५ ॥ ५४ ॥
 प्रदीपग्रहनक्षत्र-दन्तदैवतचक्षुषाम् ।
 पतनं वा विनाशो वा, भेदनं पर्वतस्य च ॥ ५५ ॥
 कानने रक्तकुसुमे पापकर्मनिवेशने ।
 चितान्धकारसम्बाधे जनन्यां च प्रवेशनम् ॥ ५६ ॥

१. तथा वयसां = पक्षिणां, निलयः = निवासः-इत्यन्वयः ।

२. गवाशनाः = गोमांसभक्षकास्तैः परिवारणमिति सम्बन्धस्तथापदलभ्यः । ३. मज्जनं = ब्रुडनम् । ४. शमश्रुकर्म = क्षौरम् ।

५. अवभर्त्सनं = तर्जनम् ।

पातः प्रासादशैलादेर्मत्स्येन ग्रसनं तथा ।
 काषायिणामसौम्यानां नम्रानां दण्डधारिणाम् ॥ ५७ ॥
 रक्ताक्षणां च कृष्णानां दर्शनं जातु नेप्यते ।
 कृष्णा पापाऽऽननाऽऽहारा दीर्घकेशनखस्तनी^१ ॥ ५८ ॥
 विरागमालयवसना स्वप्ने कालनिशा मता ।
 मनोवहानां पूर्णत्वात्क्षोतसां प्रबलैर्मलैः ॥ ५९ ॥
 दृश्यन्ते दारुणाः स्वप्ना रोगी यैर्याति पञ्चताम्^२ ।
 अरोगः संशयं प्राप्य कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ६० ॥
 दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्तथा ।
 भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः 'सप्तविधो' मतः ॥ ६१ ॥
 तेष्वाम्ना निष्फलाः पञ्च^३ यथास्वप्रकृतिर्दिवा ।
 विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽतिष्ठपूर्वरात्रे चिरात्फलम् ॥ ६२ ॥
 दृष्टः करोति तुच्छं चङ्गोसर्गे तदहर्महत् ।
 निद्रया वाऽनुपहतः प्रतीपैर्वचनैस्तथा ॥ ६३ ॥
 याति^४ पापोऽपफलतां दानहोमजपादिभिः ।

१. दीर्घाः केशाः नखाः स्तनौ च यस्याः सा 'स्वाङ्गाच्चोपसर्ज्ज-
 नादसंयोगोपधात्'-इति ङीप् । २. रोगी पञ्चतां याति प्राप्नोति—
 अरोगः कश्चिदेव प्रमुच्यते-इत्यन्वयः ।

३. न केवलं पञ्चैव निष्फलाः किन्तु यथास्वप्रकृतिः=वातिक-
 पैत्तिक-श्लैष्मिक-प्रकृति—स्वभावसिद्धः, दिवादृष्टः, विस्मृतः, अति-
 दीर्घः, अतिह्रस्वश्चेति स्वप्नाः निष्फला-इत्यन्वयः ।

४. पापमशुभफलमस्यास्तीति मत्वर्थीयोऽच् पापः स्वप्नः दाना-
 दिभिः पुण्यैरल्पफलतां याति, तयोर्बाध्यबाधकभावात् ।

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव यः पुनः ॥ ६४ ॥
 पश्येत्सौम्यं शुभं तस्य शुभमेव फलं भवेत् ।
 देवान् द्विजान् गोवृषभान् जीवतः सुहृदो नृपान् ॥ ६५ ॥
 साधून् यशस्विनो वह्निमिदं^१ स्वच्छान् जलाशयान् ।
 कन्याः कुमारकान् गौरान् शुक्लवस्त्रान्सुतेजसः ॥ ६६ ॥
 नराशनं दीप्ततनुं समन्तादुधिरोक्षितम् ।
 यः पश्येत्क्षभते यो वा छत्रादर्शविषामिषम् ॥ ६७ ॥
 शुक्लाः सुमनसो^२ क्स्त्रममेध्यालेपनं फलम् ।
 शैलप्रासादसफल-वृक्ष-सिंहनरद्विपान् ॥ ६८ ॥
 आरोहेद्भोऽश्वयानं च, तरेन्नद-हृदोदधीन्^३ ।
 पूर्वोत्तरेण गमनमगम्यागमनं मृतम्^४ ॥ ६९ ॥
 सम्बाधान्निःसृतिर्देवैः पितृभिश्चाऽभिनन्दनम् ।
 रोदनं पतितोत्थानं द्विषतां चावमर्दनम् ॥ ७० ॥
 यस्य स्यादायुरारोग्यं वित्तं बहु च सोऽश्नुते^५ ।
 मङ्गलाचारसम्पन्नः^६ परिवारस्तथाऽऽतुरः ॥ ७१ ॥

१. इदं = प्रदीप्तं, अिहन्धी—दीप्तौ क्तः ।

२. सुमनसः = पुष्पाणि ।

३. नदाश्च नद्यश्च नदाः 'पुमान् स्त्रियाः' इत्येकशेषः पुनः
 नदाश्च हृदश्च—उदधिश्चेति द्वन्द्वः, ४. मृतम् = शवम् ।

५. यस्य पूर्वोक्तद्विषदवमर्दनान्तं स्यात्स्वप्ने, स बहु प्रभूतम्
 आयुः, आरोग्यम्, वित्तञ्च अश्नुते—इत्यन्वयः ।

६. यः परिवारः, तथा—आतुरः कर्त्ता मङ्गलाचारसम्पन्नः, श्रद्धा-
 वान्, अनुकूलः प्रचुरद्रव्यसञ्चयवान् सः बहु आयुः—आरोग्यं वित्तञ्च

श्रद्धधानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसङ्ग्रहः ।
 सत्त्वलक्षणसंयोगो भक्तिर्वैद्यद्विजातिषु ॥ ७२ ॥
 चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम्^१ ।
 इत्यत्र^२ जन्ममरणं यतः सम्यगुदाहृतम् ॥ ७३ ॥
 शरीरस्य ततः स्थानं शारीरमिदमुच्यते ॥ ७३इ ॥'

इति शारीरस्थाने षष्ठोऽध्यायः ।

अश्नुते-इति पूर्वोणाऽन्वयः, 'मङ्गलाचारसम्पन्नः, सातुरो वैश्विको जनः । श्रद्धधानोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंग्रहः' इति चरके ।

१. सत्त्वस्याऽऽन्तरधर्मस्य, शुभलक्षणस्य संयोगः, वैद्येषु द्विजेषु गुर्वादिषु देवेषु गवादिषु च भक्तिः = पूज्यबुद्धिः, चिकित्सायाम् = उपक्रमे-अनिर्वेदः = उत्साहः, तस्य = मङ्गलाचारसम्पन्नस्य यदारोग्यं स्वास्थ्यं तस्य चिह्नम् तदिति व्यस्तं वा लक्षणाभिप्रायेण नपुंसकम् ।

२. अत्र = स्थाने यतः शरीरस्य जन्म च मरणञ्च सम्यगुदाहृतं ततः-इदं स्थानं शारीरमुच्यते-इति समाप्तम् ।

अष्टाङ्गहृदयम्



निदानस्थानम्

प्रथमोऽध्यायः ।

^१अथातः सर्वरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मदुरात्रेयादयो ^२महर्षयः ।

^३रोगः पाप्मा ज्वरो ^४व्याधिर्विकारो दुःखमामयः ।

यच्चाऽऽतङ्कगदाऽऽवाधाः शब्दाः पर्यायवाचिनः^५ ॥ १ ॥

^६निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

१. अथ-हेतुलिङ्गोपधसूचक-शरीररूपाधारसूचक-स्थान-द्वय-
निरूपणानन्तरं यतः प्रतीकार्यस्वरूपज्ञानमपेक्षितम्-अतो रोगनिदानं
व्याख्यास्यामः, तत्रापि सामान्यज्ञानं विशेषज्ञानकारणमिति सर्वरोग-
निदानमादौ व्याख्यास्यामः-इति सङ्गतिः ।

२. आत्रेयादयः-पुनर्वसुप्रभृतयः, महान्तश्च ते ऋषयस्त्रिका-
लक्षा मुनयः-इति-मया संक्षिप्यमाणं ह-प्रसिद्धासु स्व-स्व-संहितासु-
आहुः स्म स्वशिष्येभ्यः, इति स्वतन्त्रस्य समूलकत्वेन प्रामाण्यबोध-
नाय । ३. ज्वरशब्दः सामान्यतो रोगवाची, रोगपतिवाची च,
विशेषतः । ४. पर्यायवाचिनः = समानार्थकाः ।

५. नितरां दीयते स्वसेविने कार्यस्वरूपं घटादिकं येन तन्नि-
दानं-मुख्यं कारणम्-मृत्पिण्डादिकम् [निदानन्त्वादिकारणम्]

सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ २ ॥

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।

निदानमाहुः पर्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ३ ॥

उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।

लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद् व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ४ ॥

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ ५ ॥

^१हेतुव्याधिविपर्यस्त-विपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ६ ॥

अत्र तु—दधित्रपुसम्भुज्यमानं भोक्त्रे ज्वरं नितरां ददाति—जनयति—
इत्थं समन्वयः कर्तव्यः, सर्वे मिथ्याऽऽहारविहारा रोगनिदान-
भूताः, पूर्वं = रोगस्वरूपोपलब्धेः प्राग्भावि यद्रूपं तत्पूर्वरूपम् ।
ज्वरे जृम्भादिकम् । रूप्यते—शायते—नेनेति रूपं = स्वरूपम् । यथा
ज्वरे—सन्तापः । उपशयनं = रोचनम्—इति उपशयः सुखजनक—
उपयोगः । सम्यक् प्राप्तिः = निवृत्तिः सम्प्राप्तिः इति । पञ्च रोगनिर्ण-
योपायाः ।

१. हेतुश्च व्याधिश्च हेतुव्याधी—इति द्वन्द्वसमासः । हेतुव्याधी च
हेतुव्याधी च हेतुव्याधयः—इत्येकशेषः, विपर्यस्ताश्च विपर्यस्तार्थकारिणश्च,
विपर्यस्त-विपर्यस्तार्थकारिणः, हेतुव्याधिभिः विपर्यस्त-विपर्यस्तार्थका-
रिणः, हेतुव्याधिविपर्यस्त-विपर्यस्तार्थकारिणः, तेषाम्, औषधञ्च, अन्नञ्च,
विहारश्च, औषधान्नविहारास्तेषां सुखमावहति करोतीति सुखाऽऽ-
वहः सुखजनकस्तम् उपयुज्यते सेव्यते—इति उपयोगस्तं व्याधेरुप-
शयं विद्यात्—जानीयात्— जिज्ञासुभिषक् कर्ता, कथं स सुखावहः—

विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।
 विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्याऽभिसंज्ञितः ॥ ७ ॥
 यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।
 निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ ८ ॥
 सङ्ख्याविकल्पप्राधान्य-बलकालविशेषतः ।
 सा भिद्यते, यथाऽन्नैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ९ ॥
 दोषाणां समवेतानां विकल्पोऽंशांशकल्पना ।
 स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १० ॥
 हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।
 नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ ११ ॥
 इति प्रोक्तो निदानार्थःः व्यासेनोपदेक्ष्यति ।
 सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ १२ ॥

इत्याह-इ-यतः स उपशयः, सात्म्यम् इति स्मृतः कथितः, आत्म-
 ना = शरीरेन्द्रियसत्त्वयुक्तन जोवेन सह वर्तते-इति सात्मा-उप-
 कारकस्तस्य भावः सात्म्यम्—इत्यन्वर्थत्वात् । एवञ्च हेतुना, व्या-
 धिना, हेतुव्याधिना, विषयस्तानां = विपरीतानाम् औषधान्नविहार-
 णाम्, तथा-विपरीतकार्यकराणाम् = औषधान्नविहाराणाम् । अन्व-
 येऽष्टादशविध उपशयः । क्रमेणोदाहरणानि चक्रे द्रष्टव्यानि ।

उपशयनामानि विपरीतोदाहरणानि

- (१) हेतु-विपरीतौषधम् शीतकफजे ज्वरे शुण्ठ्यादिकमुष्णम् ।
- (२) हेतु-विपरीतान्नम्, अमाऽनिलजे ज्वरे रसौदनः ।
- (३) हेतु-विपरीतो विहारः, दिवास्वप्नोत्थकफे रात्रिजागरणम् ।

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।
 अहितं त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥ १३ ॥
 तिक्तोपणकषायाल्प-रूक्षप्रमितभोजनैः ।
 धारणोदीरणनिशा-जागरात्युच्चभाषणैः ॥ १४ ॥
 क्रियातियोगभीशोक-चिन्ताव्यायाममैथुनैः ।
 ग्रीष्माहोरात्रिभुक्तान्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥ १५ ॥
 पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्ण-पटुक्रोधविदाहिभिः ।
 शरन्मध्याह्नरात्र्यर्ध-विदाहसमयेषु च ॥ १६ ॥
 स्वाद्वम्ललवणस्निग्ध-गुर्वभिष्यन्दिशीतलैः ।
 आस्यास्वप्नसुखाजीर्ण-दिवास्वप्नातिबृंहणैः ॥ १७ ॥
 प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्र-वसन्तयोः ।
 पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्माऽद्वन्द्व तु सङ्करात् ॥ १८ ॥
 मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः ।
 सङ्कोर्णाजीर्णविषम-विरुद्धाध्यशनादिभिः ॥ १९ ॥
 व्यापन्नमद्यपानीय-शुष्कशकाऽममूलकैः ।

- (४) व्याधि-विपरीतोषधम्, अतीसारं स्तम्भनं पाठादि ।
 (५) व्याधि-विपरीतान्नम्, „ „ मसूरादि ।
 (६) व्याधि-विपरीतो विहारः, उदावर्त्त-प्रवाहणम् ।
 (७) हेतुव्याधि-वि० औषधम्, वातशोथे-वातहरं शोथहरञ्च दश-
 मूलम् ।
 (८) हेतुव्याधि-वि० अन्नम्, शीतज्वरे-उष्णा, ज्वरघ्नी च यवागूः ।
 (९) हेतुव्याधि-वि० विहारः, स्निग्धदिवास्वप्नजायां तन्द्रायां रूक्षं
 तन्द्राविपरीतञ्च रात्रिजागरणम् ।

पिण्याकमृद्यवसुरा-पूतिशुष्ककृशामिपैः ॥ २० ॥
 दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथाऽन्नपरिवर्तनात् ।
 ऋतोर्दुष्टात्पुरोवाताद् ग्रहावेशाद्विषाद् गरात् ॥ २१ ॥
 दुष्टान्नात् पर्वताश्लेषाद् ग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् ।
 मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानां च निषेवणात् ॥ २२ ॥
 स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिथ्योपचारतः ।
 प्रतिरोगमिति क्रुद्धा^१ रोगाधिष्ठानगामिनीः ॥ २३ ॥
 रसायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते^२ ॥ २३½ ॥
 इति निदानस्थाने प्रथमोऽध्यायः ।

-----(*)-----

विपरीतार्थकार्युदाहरणानि ।

- (१) पित्तप्रधाने पच्यमाने शोथ पित्तकर उष्ण उपनाहः,
- (२) " " " विदाह्यन्नम् ।
- (३) वातोन्मादे सन्त्रासनम् ।
- (४) छर्द्या वमनकरं मदनफलम् ।
- (५) अतीसारे विरेककारकं क्षीणम् । च० चि० १९-६२ ।
- (६) छर्द्या वमनसाध्यायां वमनार्थं प्रवाहणम् ।
- (७) अग्निना प्लुष्टे (दग्धे)-अगुर्वादीनां लेपः ।
- (८) मद्यपानोत्थे मदोत्थये, मदकारकं मद्यम् ।
- (९) व्यायामजनितसमूढवाते, जलप्रतरणादिरूपो व्यायामः ।

१. रोगाणामधिष्ठानानि रसात्तृड्मांसादीनि स्थानानि तानि गच्छन्ति तच्छीलास्ताः, रसायनीः-रसवद्वा नाडीः प्रपद्य ।

२. विकुर्वते-विकारं अनयन्ति, धात्वर्थेन कर्मण उपसंग्रहाद्-

द्वितीयोऽध्यायः ।

^१अथातो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः^२ ॥

‘ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोऽशनोऽन्तकः ।

क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी^३ रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥ १ ॥

जन्मान्तयोर्मोहमयः^४ सन्तापात्माऽपचारतः ।

विविधैर्नामभिः क्रूरो^५ नानायोनिषु वर्तते ॥ २ ॥

स जायतेऽष्टधा दोषैः पृथङ्मिश्रैः समागतैः^६ ।

आगन्तुश्च^७ मलास्तत्र^८ स्वैः स्वैर्दुष्टाः प्रदूषणैः ॥ ३ ॥

^९आमाशयं प्रविश्याऽऽममनुगम्य पिधाय च ।

स्रोतांसि, पक्तिस्थानाच्च निरस्य ज्वलनं बहिः ॥ ४ ॥

अकर्मकः (अकर्मकाच्चेति तद्ध) विकृता भवन्ति—इत्यर्थस्तु न कर्त्तव्यः
क्रुद्धा—इत्यनेनैव गतार्थत्वात् । इति ।

१. अथ = सर्वरोगसाधारणनिदाननिरूपणानन्तरम्, यतः सर्व-
रोगप्रधानत्वेन ज्वरः स्मृतिविषयः अतः—ज्वरनिदानं व्याख्यास्याम-
इति सङ्गतिः । २. स्वसंहितासु ज्वराधिकारेषु—आहुः स्मेत्यर्थः ।

३. आद्युत्पत्तिस्मरणार्थं साभिप्रायं नामद्वयम् ।

४. स्वरूपकथनमिदम्, अपचारत—इति निदानसूत्रम् ।

५. गजतुरगादिषु, नानाजातिषु ।

६. मिश्रैः = द्वन्द्वीभूतैः । समागतैः = सङ्गीभूतैः ।

७. ‘अन्ये तु कुर्वते—’ इत्युक्ते, (सू० अ० १ श्लो १५)

८. नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय—इति स्मृतः ।

सह तेनाभिसर्पन्तस्तपन्तः सकलं वपुः ।
 कुर्वन्तो गात्रमस्युष्णं ज्वरं निर्वर्तयन्ति ते ॥ ५ ॥
 स्रोतोविबन्धात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते ।
 तस्य प्राग्रूपमालस्यमरतिर्गात्रगौरवम् ॥ ६ ॥
 आस्यवैरस्यमरुचि-जृम्भा-सास्त्राकुलाक्षिता ।
 अङ्गमर्दोऽविपाकोऽरूपप्राणता बहुनिद्रता ॥ ७ ॥
 रोमहर्षो विनमनं पिण्डिकोद्वेष्टनं क्लमः ।
 हितोपदेशेष्वक्षान्तिः प्रीतिरम्लपटूषणे ॥ ८ ॥
 द्वेषः स्वादुषु भक्ष्येषु तथा बालेषु वृड्भृशम् ।
 शब्दाग्निशीतवाताम्बु-च्छायोष्णेष्वनिमित्ततः ॥ ९ ॥
 इच्छा द्वेषश्च तदनु ज्वरस्य व्यक्तता भवेत् ।
 आगमाऽपगम-क्षोभ-मृदुता वेदनोष्मणाम् ॥ १० ॥
 वैषम्यं तत्र तत्राङ्गे तास्ताः स्युर्वेदनाश्रलाः ।
 पादयोः सुप्तता स्तम्भः पिण्डिकोद्वेष्टनं श्रमः ॥ ११ ॥
 विश्लेष इव सन्धीनां साद ऊर्बोः कटीग्रहः ।
 पृष्ठं क्षोदमिवाप्नोति निष्पीड्यत इवोदरम् ॥ १२ ॥
 क्षिद्यन्त इव चास्थीनि पार्श्वगानि विशेषतः ।
 हृदयस्य ग्रहस्तोदः प्राजनेनेव वक्षसः ॥ १३ ॥
 स्कन्धयोर्मथनं बह्वोर्भेदः पीडनमंसयोः ।
 अशक्तिर्भक्षणे हन्वोज्जम्भणं कर्णयोः स्वनः ॥ १४ ॥
 निस्तोदः शङ्खयोर्मूर्ध्नि वेदना विरसास्यता ।
 कषायास्यत्वमथवा मलानामप्रवर्तनम् ॥ १५ ॥
 रूक्षारुणत्वगास्याक्षि-नखमूत्रपुरीषता ।

प्रसेकरोचकाश्रद्धाऽविपाकास्वेदजागराः ॥ १६ ॥
 कण्ठौष्ठशोषस्तृट् शुष्कौ च्छर्दिकासौ विपादिता ।
 हर्षो रोमाङ्गदन्तेषु वेपथुः क्षवथोर्ग्रहः ॥ १७ ॥
 भ्रमः प्रलापो धर्मेच्छा विनामश्चानिलज्वरे^१ ।
^२युगपद्व्याप्तिरङ्गानां प्रलापः कटुवक्रता ॥ १८ ॥
 नासास्यपाकः शीतेच्छा भ्रमो मूर्च्छा मदोऽरतिः ।
 विट्स्त्रंसः पित्तवमनं रक्तष्टीवनमम्लकः ॥ १९ ॥
 रक्तकोठोद्गमः पीतहरितत्वं त्वगादिषु ।
 स्वेदो निश्वासवैगन्ध्यमतितृष्णा च^३पित्तजे^२ ॥ २० ॥
^१विशेषादरुचिर्जाड्यं स्रोतोरोधोऽल्पवेगता ।
 प्रसेको सुखमाधुर्यं हृल्लेपश्चासपीनसाः ॥ २१ ॥
 हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः श्वैत्यं त्वगादिषु ।
 अङ्गेषु शीतपिटिकास्तन्द्रोदर्दः^३कफोद्भवे^२ ॥ २२ ॥
 काले यथास्वं सर्वेषां प्रघृत्तिर्बृद्धिरेव वा ।
 निदानोक्ताऽनुपशयो विपरीतोपशायिता ।
 यथास्वं लिङ्गसंसर्ग ज्वरः^३संसर्गजः^३अपि च ॥ २३ ॥

१. अनिलज्वरे वेदनोष्मणाम्—आगमाऽपगम-क्षोभमृदुताः, वैषम्यम्—इत्यादि-विनामश्चेत्यन्तानि लिङ्गानि—इति ।

२. पित्तजे ज्वरे-युगपत्समकालमङ्गानां शिरःप्रभृतीनां व्याप्तिः= ज्वरपरिपूर्णता-इत्यादि-तृष्णा चेत्यन्तानि लिङ्गानि इत्यन्वयः ।

३. कफोद्भवे ज्वरे विशेषादित्यारभ्य--उदर्द इत्यन्तानि लिङ्गानि ।

शिरोऽर्तिमूर्च्छावमिदाहमोह-

कण्ठास्यशोषारतिपर्वभेदाः ।

उन्मिद्रतातृड्भ्रमरोमहर्षा-

जृम्भातिवाक्त्वं च 'चलास्सपित्तात्' ॥ २४ ॥

तापहान्यरुचिपर्वशिरोरूक्,

पीनसश्वसनकासविबन्धाः ।

शीतजाड्यतिमिरभ्रमतन्द्राः

'श्लेष्मवात'जनितज्वरलिङ्गम् ॥ २५ ॥

शीतस्तम्भस्वेददाहाऽव्यवस्था,

तृष्णाकासश्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः ।

मोहस्तन्द्रालिप्ततित्तास्यता च

ज्ञेयं रूपं 'श्लेष्मपित्तज्वरस्य' ॥ २६ ॥

१ सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः ।

तद्वच्छीतं महानिद्रा^५ दिवा, जागरणं निशि ॥ २७ ॥

सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदोऽति नैव वा ।

गीतनर्तनहास्यादिविकृतेहाप्रवर्तनम् ॥ २८ ॥

१. सपित्तात् = पित्तसंसृष्टात्-चलात्-वातात्, वातपित्तादित्यर्थः, उपजातिः प्रथमा, इयमेव-आख्यानकीत्युच्यते ।

२. स्वागतावृत्तम् ।

३. शीतञ्च स्तम्भश्च स्वेदश्च दाहश्च-एतेषामन्यवस्था अनियमः ।

शालिनीवृत्तम् । ४. सर्वजः सन्निपातजः ।

५. दिवा-दिवसे, महानिद्रा-गाढनिद्रा, निशि-रात्रौ जागरणं-निद्रामङ्गः ।

साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपद्मणी ।
 अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वमूर्धपर्वस्थिरुभ्रमः ॥ २९ ॥
 सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवाक्षितः ।
 परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुः स्रस्ताङ्गसन्धिता ॥ ३० ॥
 रक्तपित्तकफष्ठीवो लोलनं शिरसोऽतिरूक् ।
 'कोटानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनम् ॥ ३१ ॥
 हृदयथा मलसंसङ्गः प्रवृत्तिर्वाऽल्पशोऽति वा ।
 स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापिता ॥ ३२ ॥
 दोषपाकश्चिरात्तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम् ।
 सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हतौजसम् ॥ ३३ ॥
 'वायुना कफरुद्धेन पित्तमन्तःप्रपीडितम् ।
 व्यवायित्वाच्च सूक्ष्मस्वाद्वहिर्मारगं प्रवर्तते ॥
 तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे ।'
 दोषे विबद्धे नष्टेऽनौ सर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
 असाध्यः ऋसोऽन्यथा कृच्छ्रो भवेद्वैकल्यदोऽपि वा ॥ ३४ ॥
 अन्यच्च 'सन्निपातोत्थो यत्र पित्तं पृथक् स्थितम् ।
 त्वचि कोष्ठेऽथवा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा ॥ ३५ ॥
 तद्वद्वातकफौ शीतं, दाहादिर्दुस्तरस्तयोः ।
 शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यन्दितशोषिते ॥ ३६ ॥
 शीते शान्तेऽम्लको मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते ।

१. वरदीदृष्टकाशः, कण्डूमान् लोहितोऽस्रकफपित्तात् । क्षणि-
 कोत्पादविनाशः 'कोठ' इति निगद्यते तज्ज्ञैः । २. अन्यच्चेति सामा-
 न्यतो नपुंसकम्, सन्निपातोत्थः, ज्वर इति शेषः ।

दाहादौ पुनरन्ते स्युस्तन्द्राष्टीववमिकलमाः ॥ ३७ ॥
 आगन्तुरभिघाताभिषङ्गशापाभिचारतः ।
 चतुर्धाऽत्र क्षतच्छेददाहाद्यैरभिघातजः ॥ ३८ ॥
 श्रमाच्च क्षतस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन् ।
 सव्यथाशोफवैवर्ण्यं, सरुजं कुरुते ज्वरम् ॥ ३९ ॥
 ग्रहावेशौषधिविषक्रोधभीशोककामजः ।
 अभिषङ्गाद् ऽग्रहेणास्मिन्नकस्माद्भासरोदने ॥ ४० ॥
 ओषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुवमथुः क्षवः ।
 विषान्मूर्च्छातिसारास्य-श्यावतादाहहृद्गदाः ॥ ४१ ॥
 क्रोधात्कम्पः शिरोरुक् च ऽप्रलापो भयशोकजे ।
 कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ही-निद्रा-धी-भ्रति-क्षयः ॥ ४२ ॥
 ग्रहादौ सन्निपातस्य भयादौ मरुतस्त्रये ।
 कोपः कोपेऽपि पित्तस्य ऽथौ तु शापाऽभिचारजौ ॥ ४३ ॥
 सन्निपातज्वरौ घोरौ तावसह्यतमौ मतौ ।
 तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानस्य^१ तप्यते ॥ ४४ ॥
 पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटवृद्धभ्रमैः ।
 सदाहमूर्च्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥ ४५ ॥
 इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः ऽसमासाद् द्विविधस्तु सः ।
 शारीरो' मानसः' सौम्य'स्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः ॥ ४६ ॥
 प्राकृतो' वैकृतः' साध्यो'ऽसाध्यः' सामो' निरामकः' ।
 पूर्वं शरीरे शरीरे तापो, मनसि मानसे ॥ ४७ ॥

१. आभिचारिकैर्मन्त्रैः यस्य नामोद्देशेन इविःप्रक्षेपः स ह्य-
मान—उच्यते ।

पवने योगवाहिस्वाच्छीतिं श्लेष्मयुते भवेत् ।
 दाहः पित्तयुते, मिश्रं मिश्रेऽन्तःसंश्रये पुनः ॥ ४८ ॥
 ज्वरेऽधिकं विकाराः स्युरन्तः क्षोभो मलग्रहः ।
 बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च सुसाध्यता ॥ ४९ ॥
 वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् ।
 वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च प्राकृतोऽनिलात् ॥ ५० ॥
 वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।
 कुर्यात् पित्तं च शरदि तस्य चानुबलं कफः ॥ ५१ ॥
 तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नाऽनशनाद्भयम् ।
 कफो वसन्ते तमसि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५२ ॥
 बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।
 सर्वथा विकृतिज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः ॥ ५३ ॥
 ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमग्लानिर्बहुमूत्रता ।
 न प्रवृत्तिर्न विड् जीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः ॥ ५४ ॥
 ज्वरवेगोऽधिकं तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः ।
 मलग्रहवृत्तिरुत्प्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ५५ ॥
 जीर्णताऽऽमविपर्यासात्सप्तरात्रं^१ च लङ्घनात् ।
 ज्वरः पञ्चविधः प्रोक्तो मलकालबलाबलात् ॥ ५६ ॥
 प्रायशः सन्निपातेन भूयसा तूपदिश्यते ।
 सन्ततः सततोऽन्येषु स्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ५७ ॥
 धातुमूत्रशकृद्वाहिस्त्रोतसां व्यापिनो मलाः ।

१. सप्ताहेन तु पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः ।

निरामश्वाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोष्टमेऽहनि । चरकः ।

तापयन्तस्तनुं सर्वा तुल्यदृष्यादिवर्धितः ॥ ५८ ॥
 बलिनो गुरवः स्तब्धा विशेषेण रसाश्रिताः ।
 सन्ततं निष्प्रतिद्वन्द्वा ज्वरं कर्तुः सुदुःसहम् ॥ ५९ ॥
 मलं ज्वरोष्मा धातून्वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः ।
 'सर्वाकारं रसादीनां शुद्ध्याऽशुद्ध्याऽपि वा क्रमात् ॥ ६० ॥
 वातपित्तकफैः सप्त दश द्वादश वासरान् ।
 प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च बधाय च ॥ ६१ ॥
 इत्यग्निवेशस्य मतं, हारीतस्य पुनः स्मृतिः ।
 'द्विगुणा सप्तमी यावन्नवम्येकादशी तथा ॥ ६२ ॥
 एषा त्रिदोषमर्यादा मोक्षाय च बधाय च ।
 'शुद्धयशुद्धौ ज्वरः कालं दीर्घमप्यनुवर्तते ॥ ६३ ॥
 कृशानां व्याधिमुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम् ।
 अल्पोऽपि दोषो दृष्यादेर्लब्ध्वाऽन्यतमतो बलम् ॥ ६४ ॥

१. स सन्तत-ज्वरः सर्वाकारं-निःशेषं यथा स्यात्तथा ज्वरोष्मणा
 रसादीनां-मोक्षाय=त्यागाय, दृष्याणां शुद्ध्या करणभूतया, प्रायः
 वातेन सप्तवासरान् मर्यादामनुयाति, पित्तेन दश, कफेन द्वादश ।
 अशुद्ध्या तु बधाय=रोगिमारणाय पूर्वोक्तामेव मर्यादामनुयाति
 इत्यग्निवेशस्य मतम् तथा च-'वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः ।
 श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकेन गच्छति'-इति ।

२. द्विगुणा सप्तमी-चतुर्दशदिनानि, द्विगुणा नवमी-अष्टादश-
 दिनानि, मतद्वयमेतत्प्रमाणं, बलाऽबलभेदेन, लोके तथैव दृष्टत्वात् ।

३. शुद्धिसहिता अशुद्धिः शुद्धयशुद्धिः, तस्यां सत्याम् ।

सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षयवृद्धिभाक् ।
 दोषः प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् वमी ॥ ६५ ॥
 निवर्तते पुनश्चैष प्रत्यनीकबलाऽबलः ।
 क्षीणे दोषे ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते ॥ ६६ ॥
 लीनत्वात्कार्यवैवर्ण्यं-जाड्यादीनादधाति सः ।
 'आसन्नविघृतास्यत्वात्स्रोतसां रसबाहिनाम् ॥ ६७ ॥
 आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिर्दोषेण जायते ।
 'सन्ततः' सततस्तेन' विपरीतो विपर्ययान् ॥ ६८ ॥
 'विषमो' विषमारम्भ-क्रियाकालोऽनुषङ्गवान् ।
 दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति 'सततं' ज्वरम् ॥ ६९ ॥
 अहोरात्रस्य स द्विः स्यात् ॥ सकृदन्येष्टु'राश्रितः ।
 तस्मिन्मांसवहा नाडीः ॥ मेदोनाडीस्तृतीयके ॥ ७० ॥
 ग्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः ।
 स पृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहान्तरः स्मृतः ॥ ७१ ॥
 'चतुर्थको' मले मेदो-मज्जास्थान्यतमस्थिते ।
 मज्जस्थ एवेत्यपरे प्रभावं स तु दर्शयेत् ॥ ७२ ॥
 द्विधा कफेन जङ्घाभ्यां स पूर्व शिरसाऽनिलात् ।
 अस्थिमज्जोभयगते चतुर्थकविपर्ययः ॥ ७३ ॥

१. आ समन्तात् सन्नं सादं प्राप्तम्, विवृतञ्च आस्यं, मुखं येषां, रसबाहिनां स्रोतसां तेषां भावस्तस्मात् ।

२. विषमज्वरं लक्षयति-विषमः=अव्यवस्थितः, आरम्भः प्रवृत्तिः क्रिया=कम्पादिका, कालः=अहोरात्रविभागो यस्य स विषमः=विषमज्वरः ।

त्रिधा, द्वयहं ज्वरयति दिनमेकं तु मुञ्चति ।
 बलाबलेन दोषाणामन्नचेष्टादिजन्मना ॥ ७४ ॥
 ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा ।
^१दोषदूष्यत्वं-होरात्र-प्रकृतीनां बलाज्वरः ॥ ७५ ॥
 मनसो विषयाणां च कालं तं तं प्रपद्यते ।
 धातून् प्रक्षोभयन् दोषो ^२मोक्षकाले विलीयते ॥ ७६ ॥
 ततो नरः श्वसन् स्विद्यन् कूजन् वमति चेष्टते ।
 वेपते प्रलपत्युष्णैः शीतैश्चाङ्गैर्हतप्रभः ॥ ७७ ॥
 विसंज्ञो ज्वरवेगार्तः सक्रोध इव वीक्षते ।
 सदोषशब्दं च शकृद् द्रवं सृजति वेगवत् ॥ ७८ ॥
 देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः^३
 पाको मुखे करणसौष्टवमव्यथस्त्वम् ।
 स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगि मनोऽञ्जलिप्सा
 कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ७९ ॥
 इति निदानस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ।

१. दोषाः = वातपित्तकफाः दूष्याः = रसाऽसृक्प्रभृतयः, ऋतवः =
 शिशिरादयः, अहोरात्रः-षष्टिदण्डात्मकः-कालः, प्रकृतिः=सात्त्विका-
 दिः एतेषां बलात् तथा मनसः चित्तस्य बलात् तथा विषयाणां =
 शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां बलात्-ज्वरः तं तं कालं प्रपद्यते ।

२. मोक्षकाले = त्यागकाले ।

३. विशेषेणाऽपगतः = निवृत्तः, क्लमश्च मोहश्च तापश्च यस्य
 तादृशः सन् देहो लघुर्भवति इत्यादीनि-विगतः-ज्वरो यस्य ज्वर-
 निर्मुक्तस्य लक्षणानि चिह्नानि । वसन्ततिलकं वृत्तम् । इति ।

तृतीयोऽध्यायः ।

^१अथातो रक्तपित्त-कासनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘भृशोष्णतीक्ष्णकट्वम्ल-लवणादिविदाहिभिः ।

कोद्रवोद्दालकैश्चान्नैस्तद्युक्तैरतिसेवितैः ॥ १ ॥

कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्च्छिते ।

ते मिथस्तुल्यरूपस्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम् ॥ २ ॥

पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ।

गन्धवर्णानुवृत्तेश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥

प्रभवस्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत् ।

शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छ्वा धूमकोऽम्लकः ॥ ४ ॥

^२छर्दिश्छर्दितबैभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ।

लोहलोहितमत्स्याम-गन्धास्यत्वं स्वरक्षयः ॥ ५ ॥

रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ।

नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् ॥ ६ ॥

स्वप्ने तद्दर्शित्वं ^३भवत्यस्मिन् भविष्यति ।

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मह्योनिगुदैरधः ॥ ७ ॥

१. अथ-ज्वरनिरूपणानन्तरं यतः ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते, कासश्च ज्वरे रक्तपित्ते च प्रधानोपद्रवः, अतस्तन्निदानमेव व्याख्यास्यामः । २. छर्दिः-भ्रमनम्, छर्दिते बैभत्स्यं छर्दितबैभत्स्यं-जुगुप्सा ।

३. तद्दर्शित्वं-रक्तवर्णदर्शित्वम् ।

कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्तते ।
 ऊर्ध्वं साध्यं कफाद् यस्मात्तद्विरेचनसाधनम् ॥ ८ ॥
 बह्वौषधं च, पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ।
 अनुबन्धी कफो यश्च तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् ॥ ९ ॥
 कषायाः स्वादवोऽप्यस्य विशुद्धश्लेष्मणो हिताः ।
 किमु तिक्ताः कषाया वा ये निसर्गात्कफापहाः ॥ १० ॥
 अधो याप्यं ^१चलाद्यस्मात्तत्प्रच्छर्दनसाधनम् ।
 अल्पौषधं च पित्तस्य वमनं न वरौषधम् ॥ ११ ॥
 अनुबन्धी चलो यश्च शान्तयेऽपि न तस्य तत् ।
 कषायाश्च हितास्तस्य मधुरा एव केवलम् ॥ १२ ॥
 कफमारुतसंसृष्टमसाध्यमुभयायनम् ।
 अशक्यप्रतिलोम्यत्वाद्भावादौषधस्य च ॥ १३ ॥
 न हि संशोधनं किञ्चिदस्त्यस्य प्रतिलोमगम् ।
 शोधनं प्रतिलोमं च रक्तपित्ते भिषग्जितम् ॥ १४ ॥
 एवमेवोपशमनं सर्वशो नास्य विद्यते ।
 संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वजिच्छमनं हितम् ॥ १५ ॥
 तत्र दोषानुगमनं सिरास्र ^२इव लक्षयेत् ।
 उपद्रवांश्च ^३विकृतिज्ञानतस्तेषु चाधिकम् ॥ १६ ॥
 आशुकारी यतः कासस्तमेवातः प्रवक्ष्यति ।

१. यस्मात्तत् = अधोगं रक्तपित्तं, चलाद्य = वाताद् उत्पद्यते—
 तच्च-प्रच्छर्दनं साधनं यस्मिन् इति योजना ।

२. सिरास्र इव = सिराव्यवविध्युक्तं इव, दोषाणामनुगमनं लक्षयेत् ।

३. उपद्रवांश्च विकृतिज्ञानतो लक्षयेत्-इति-सम्बन्धः ।

कासं निरूपयति—

पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥ १७ ॥
 क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ।
 तेषां भविष्यतां रूपं कण्ठे कण्ठूररोचकः ॥ १८ ॥
 शूकपूर्णभकण्ठस्वम् तत्राधो विहृतोऽनिलः ।
 ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन् कण्ठे च संसजन् ॥ १९ ॥
 शिरःस्रोतांसि सम्पूर्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्निव ।
 क्षिपन्निवाक्षिणी पृष्ठमुरःपार्श्वे च पीडयन् ॥ २० ॥
 प्रवर्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः ।
 हेतुभेदात्प्रतीघातभेदो वायोः सरंहसः ॥ २१ ॥
 यदुजाशब्दवैषम्यं कासानां जायते ततः ।
 कुपितो वातलैर्वातः शुष्कोरः कण्ठवक्रताम् ॥ २२ ॥
 हृत्पाश्चोरः शिरःशूलं मोहक्षोभस्वरक्षयान् ।
 करोति शुष्कं कासं च महावेगरुजास्वनम् ॥ २३ ॥
 सोऽङ्गहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाऽल्पतां व्रजेत् ।
 पित्तात्पीताक्षिकफता तित्तास्यत्वं ज्वरो भ्रमः ॥ २४ ॥
 पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्यं धूमकोऽम्लकः ।
 प्रततं कासवेगेन ज्योतिषामिव दर्शनम् ॥ २५ ॥
 कफादुरोऽल्परुद्धमूर्धहृदयं स्तिमितं गुरु ।
 कण्ठोपलेपः सदनं पीनसच्छर्द्धरोचकाः ॥ २६ ॥
 रोमहर्षो घनस्निग्धश्चेतश्लेष्मप्रवर्तनम् ।
 युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् ॥ २७ ॥
 उरस्यन्तःक्षते वायुः पित्तेनानुगतो बली ।

कुपितः कुस्ते कासं कफं तेन सशोणितम् ॥ २८ ॥
 पीतं श्यावं च शुष्कं च ग्रथितं कुथितं बहु ।
 छीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ॥ २९ ॥
 सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।
 पर्वभेदज्वरश्वास-तृण्णा-वैस्वर्यकम्पवान् ॥ ३० ॥
 पारावत इवाकूजन् पार्श्वशूली ततोऽस्य च ।
 क्रमाद्वीर्यं रुचिः पक्ता बलं वर्णश्च हीयते ॥ ३१ ॥
 क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं स्याच्च पृष्ठकटीग्रहः ।
 वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मिणः ॥ ३२ ॥
 कुर्वन्ति यक्ष्मायतनैः कासं छीवेत्कफं ततः ।
 पूतिपूयोपमं पीतं विस्त्रं हरितलोहितम् ॥ ३३ ॥
 लुब्धयेते-इव पार्श्वे च हृदयं पततीव च ।
 अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः ॥ ३४ ॥
 स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दशननेत्रता ।
 ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ॥ ३५ ॥
 इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः ।
 याप्यो वा बलिनां, तद्वत् क्षतजोऽभिनवौ तु तौ ॥ ३६ ॥
 सिध्येतामपि सानाध्यात् ऋसाध्या दोषैः पृथक् त्रयः ।
 मिश्रा याप्या द्वयात्सर्वे जरसा स्थविरस्य च ॥ ३७ ॥
 कासाच्छ्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो^१ गदाः ।
 भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं^२ त्वरया जयेत् ॥ ३८ ॥
 इति निदानस्थाने तृतीयोऽध्यायः ।

१. स्वरसादादयः = स्वरभङ्गादयः । २. तम्-कासम्, आशुकारी

चतुर्थोऽध्यायः ।

१ अथातः श्वासहिध्मानिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘कासवृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः ।

आमातिसारवमथुविषपाण्डुज्वरैरपि ॥ १ ॥

रजोधूमानिलैर्मर्म-घातादतिहिमाश्विना ।

क्षुद्रकस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः ॥ २ ॥

कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः ।

प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टः स्रोतांसि दूषयन् ॥ ३ ॥

उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ।

प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता ॥ ४ ॥

आनाहः शङ्खभेदश्च ऋतत्रायासातिभोजनैः ।

प्रेरितः प्रेरयेत् ‘क्षुद्रं’ स्वयं संशमनं मरुत् ॥ ५ ॥

तमकश्वासं लक्षयति—

प्रतिलोमं सिरा गच्छन्नुदीर्य पवनः कफम् ।

परिगृह्य शिरोग्रीवमुरः पार्श्वे च पीडयन् ॥ ६ ॥

कासं घुर्धुरकं मोहमरुचिं पीनसं तृपम् ।

यतः कास-इत्यारभ्य दर्शितस्वरूपम् ।

१. अथ कासनिरूपणानन्तरं यतः उपेक्षितात्कासात् श्वासो भव-
तीत्युक्तमतः स्मृतिविषयत्वे सति उपेक्षाऽनर्हत्वरूपया प्रसङ्गसङ्कत्या
श्वास एव निरूप्यते, तत्सजातीया हिक्का (हिध्मा) चेति पूर्वाऽपराऽ
ध्याययोः सङ्गतिः ।

करोति तीव्रवेगं च श्वासं प्राणोपतापिनम् ॥ ७ ॥
 प्रताम्येत्तस्य वेगेन निष्ठयूतान्ते क्षणं सुखी ।
 कृच्छ्राच्छ्रयानः श्वसिति निषण्णः स्वास्थ्यमृच्छति ॥ ८ ॥
 उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमर्तिमान् ।
 विशुष्कास्यो मुहुःश्वासी काङ्क्षत्युष्णं सवेपथुः ॥ ९ ॥
 मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
 स याप्यस्तमकः, साध्यो नवो वा बलिनो भवेत् ॥ १० ॥
 ज्वरमूर्च्छायुतः शीतैः शाम्येत्प्रतमकस्तु सः ।

छिन्नश्वासः ।

‘छिन्ना’च्छ्वसिति विच्छिन्नं मर्मच्छेदरुजादितः ॥ ११ ॥
 सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहनिरोधवान् ।
 अधोदग्विप्लुताक्षश्च ^१मुह्यन् रक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥
 शुष्कास्यः प्रलपन् दीनो ^२नष्टच्छायो विचेतनः ।

महाश्वासः ।

^३महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्रथन् ॥ १३ ॥
 उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ।
 प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ॥ १४ ॥
 वक्षः समाक्षिपन् बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ।
 शुष्ककण्ठो मुहुर्मुह्यन् कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक् ॥ १५ ॥

१. विप्लुतेऽनवस्थिते अक्षिणी यस्य ।

२. नष्टा छाया = कान्तिर्यस्य, विगता चेतना यस्य ।

३. महता श्वासेन दीनः = आर्त्तः सन्, महता नादेन क्रथन् =
 कण्ठं श्वसिति-इति योजना ।

ऊर्ध्व-श्वासमाह—

दीर्घमूर्ध्वं श्वसित्यूर्ध्वञ्च च प्रत्याहरत्यधः ।

श्लेष्मावृतमुखस्रोताः क्रुद्धगन्धवहादितः ॥ १६ ॥

ऊर्ध्वदृग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परितः क्षिपन् ।

मर्मसु च्छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् ॥ १७ ॥

एते सिद्धयेयुरव्यक्ताः ^१व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ।

अथ हिध्मानिदानम् ।

^२स्वासैकहेतुप्राग्रूप-सङ्ख्याप्रकृतिसंश्रयाः ॥ १८ ॥

हिध्माः ऋभक्तोद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च ।

गम्भीरा च ऋमरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः ॥ १९ ॥

रुक्षीक्ष्णखरासात्म्यैरन्नपानैः प्रपीडितः ।

करोति हिध्मामरुजां मन्दशब्दां क्षवानुगाम् ॥ २० ॥

शमं साध्यन्नपानेन या प्रयाति स साऽन्नजा ^३ ।

आयासात्पवनः क्षुद्रः 'क्षुद्रां' हिध्मां प्रवर्तयेत् ॥ २१ ॥

जत्रुमूलप्रविस्तृता-मल्पवेगां मृदुं च सा ।

वृद्धिमायास्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् ॥ २२ ॥

१. एते = तमकादयः, क्षुद्रस्य साध्यत्वात्, तथा च-चरकः-
'स साध्य-उक्तो बलिनः, सर्वे चाव्यक्तलङ्गाः'-इति ।

२. श्वासैरेके = समानाः, श्वासैके = श्वासतुल्याः, 'एकोऽन्यार्थे
प्रधाने च प्रथमे केवले तथा । साधारणे समानेऽल्पे संख्यायाञ्च
निगद्यते', हेतुश्च, प्राग्रूपञ्च, सङ्ख्या च, प्रकृतिश्च, संश्रयश्च यासां
ताः हिध्माः = हिक्काः, तथा । ३. अन्नजा = भक्तोद्भवा ।

यमलामाह—

चिरेण यमलैर्बेगैराहारे या प्रवर्तते ।

परिणामोन्मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति ॥ २३ ॥

कम्पयन्ती शिरोग्रीवमाध्मातस्यातिवृष्यतः ।

प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतिजृम्भणः ॥ २४ ॥

‘यमला’ वेगिनी हिध्मा परिणामवती च सा ।

महाहिध्मा—

स्तब्धभ्रूशङ्खयुग्मस्य सास्त्रविप्लुतचक्षुषः ॥ २५ ॥

स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं सञ्ज्ञां च मुष्णती ।

रुन्धती मार्गमन्नस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् ॥ २६ ॥

पृष्ठनो नमनं शोषं ‘महाहिध्मा’ प्रवर्तते ।

महामूला महाशब्दा महावेगा महाबला ॥ २७ ॥

गम्भीरा—

पक्काशयाद्वा नाभेर्वा पूर्ववद्वा प्रवर्तते ।

तद्रूपा सा मुहुः कुर्याज्जृम्भामङ्गप्रसारणम् ॥ २८ ॥

गम्भीरेणानुनादेन ‘गम्भीरा’ ऋतासु^१ साधयेत् ।

आद्ये द्वे, वर्जयेदन्त्ये सर्वलिङ्गां च वेगिनीम् ॥ २९ ॥

सर्वाश्च सञ्चितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ।

१. तासु पञ्चसु हिध्मासु आदौ भवे आद्ये द्वे—अन्नजा-क्षुद्रे साधयेत्, अन्ते भवे—अन्त्ये द्वे महती—गम्भीरे वर्जयेत्—नोपक्रमेत् तयो-
रसाध्यत्वात्, तथा सर्वलिङ्गां = समग्रलक्षणोपेताम्, वेगिनीं = यम-
लाञ्च वर्जयेदिति । सञ्चिताऽऽमादेस्तु—सर्वादयः = सर्वा एव वर्जयेत् ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदक्षतस्य वा ॥ ३० ॥

^१सर्वेऽपि रोगा नाशाय न त्वेवं शीघ्रकारिणः ।

हिध्माश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ ॥ ३१ ॥^२

इति निदानस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

^३अथातो राजयक्ष्मादिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

राजयक्ष्मपरिचयः संज्ञाश्च ।

^४अनेकरागानुगतो ^५बहुरोगपुरोगमः ।

राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः ॥ १ ॥

१. रोगाःसर्वेऽपि (न केवलं हिध्माश्वासौ) नाशाय सम्पद्यन्ते, एवन्तु = हिध्माश्वासप्रकारेण तु—शीघ्रकारिणो न केऽपि यथा हिक्का-श्वासौ, हि तौ मृत्युकाले = अन्तकाल एव कृतः आलयो निवासो या-भ्यां तथा स्तः । इति ।

२. अथ = श्वासादिनिरूपणानन्तरं, यतः कासजन्याः क्षयादयः अवसरप्राप्ताः—अतस्तन्निदानं व्याख्यास्यामः । ‘कासाच्छ्वासक्षयच्छ-दिस्वरसादादयो गदाः—इति प्रतिज्ञातत्वात् ।

३. अनेके बहवो रोगा ज्वरास्तीसार-कास-गण्डमालाप्रभृतयः, तैरनुगतः, कृतानुगतः, जनित-इत्यर्थः, बहवः = गुल्मास्तीसार-स्वर-भक्नोदावर्त्तादयः, पुरोगमाः = अग्नेसराः—उत्तरकालजन्या यस्य

व्युत्पत्तिः ।

नक्षत्राणां द्विजानां च^१ राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ।

यच्च राजा च यक्ष्मा च^२ राजयक्ष्मा ततो मतः ॥ २ ॥

देहौषधक्षयकृतेः क्षयस्तत्सम्भवाच्च सः ।

रसादिशोषणाच्छोषो रोगराट् तेषु राजनात् ॥ ३ ॥

अथ राजयक्ष्मनिदानम् ।

^३साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसङ्क्षयः ।

अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥ ४ ॥

तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्य सर्वतः ।

शरीरसन्धीनाविशय तान् सिराश्च प्रपीडयन् ॥ ५ ॥

मुखानि स्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविवृत्य वा ।

सर्पन्नुर्ध्वमधस्तिर्यग्यथास्वं जनयेद्भदान् ॥ ६ ॥

तादृशो राजयक्ष्मा, स च क्षयः, शोषः, रोगराट्-इति नामभिः, स्मृतिविषयीकृतो मुनिभिः, तथा च—अनेकरोगजन्यत्वे सति बहु-रोगजनकत्वं राजयक्ष्मत्वमिति फलितम्, (परिचयार्थमिदम्) ।

१. 'द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः', राज्ञः = चन्द्रस्य, यक्ष्मा = रोगो राज-यक्ष्मा-इति षष्ठीतत्पुरुषः ।

२. राजा चासौ यक्ष्मा चेति कर्मधारयः । 'रोहिण्यामतिसक्तस्य, शरीरं नाऽनुरक्षतः, आजगामाल्पतामिन्द्रोर्देहः स्नेह-परिक्षयात्' । च० चि० अ० ८।४ ।

३. 'अयथाबलमारम्भं, वेगसन्धारणं, क्षयम्, यक्ष्मगः कारणं विद्याच्चतुर्थं विपमाशनम्' । च० चि० ८।२३ ।

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं क्षवः ।
 प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं वह्निदेहयोः ॥ ७ ॥
 स्थाल्यमन्त्रान्नपानादौ शुचावप्यशुचीक्ष्णम्^१ ।
 मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः^२ ॥ ८ ॥
 हृल्लासश्छर्दिररुचिरश्नतोऽपि बलक्षयः ।
 पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽक्ष्णोरतिशुक्लता ॥ ९ ॥
 बाह्वोः प्रमाणजिज्ञासा काये बैभत्स्यदर्शनम् ।
 स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणित्वं मूर्धगुण्ठनम् ॥ १० ॥
 नखकेशातिवृद्धिश्च, ॐस्वप्ने चाभिभवो भवेत् ।
 पतङ्गकृकलासाहि-कपिश्वापदपक्षिभिः ॥ ११ ॥
 केशास्थितुषभस्मादि-राशौ समधिरोहणम् ।
 शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ॥ १२ ॥
 ज्योतिर्गिरीणां पततां ज्वलतां च महीरुहाम् ।

एकादशरूपाणि ।

पीनस-श्वास-कासांऽस-मूर्ध-स्वर-रुजोऽरुचिः ॥ १३ ॥
 ऊर्ध्वं, विड्भ्रंशसंशोषावधः, च्छर्दिश्च कोष्ठगे ।
 तिर्यक्स्थे पार्श्वरुदोषे, सन्धिगे भवति ज्वरः ॥ १४ ॥
 रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मिणः ।

उपद्रवाः ।

^३तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठोद्ध्वंसमुरोरुजम् ॥ १५ ॥

१. अनेन सर्वत्र जुगुप्साविषयता दर्शिता, भवति तादृशी मतिः
 क्षयपूर्वरूपे । २. भवति च तादृशी घटना—अदृष्टप्रातिकूल्यात् ।

३. तेषां = पूर्वोक्तानामेकादशरूपाणाम्, उपद्रवन्ति = उपाग-

जृम्भाऽङ्गमर्दनिष्ठीव-वह्निसादाऽऽस्यपूतिताः ।

तत्र वाताच्छिरःपार्श्वशूलमांसाङ्गमर्दनम् ॥ १६ ॥

कण्ठोद्ध्वंसः स्वरभ्रंशः ॥ पित्तात्पादांसपाणिषु ।

दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मदः ॥ १७ ॥

कफादरोचकश्छर्दिः कासो मूर्धाङ्गगौरवम् ।

प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरसादोऽल्पवह्निता ॥ १८ ॥

१ दोषैर्मन्दानलत्वेन सोपलेपैः कफोल्बणैः ।

चलन्ति रोगोपरीति-उपद्रवाः, रोगोपरि जायमाना रोगाः । प्रथम-
जातो रोगः, पश्चाज्जान उपद्रव-इति विवेकः ।

१. यद्विमणो धातुपुष्ट्यभावं युक्तिमाह-दोषैरित्यादिना मन्दाऽ-
नलत्वेन हेतुना कफोल्बणैः कफाधिकैः, अत एव सोपलेपैः सावरणैः,
दोषैः = वातादिभिः, स्रोतसां = रसवाहि-मार्गाणां मुखेषु = द्वारेषु,
रुद्धेषु = आवृतेषु सत्सु-अत एव धातूनां = रक्तादीनाम्, ऊष्मसु =
वाष्पेषु, स्वल्पकेषु = सुतरामनीवाल्पेषु सत्सु (अल्पे-इति कन्)
स्वस्थाने = कोष्ठे एव, विशेषेण पित्त-जनकत्वेन दह्यमानो विदह्य-
मानः = मध्यमपाकावस्थां प्राप्नुवन्, न तु परिणतावस्थां प्राप्नुवन्
रसः = प्रथमो धातुः कर्ता तान् २ कण्ठोद्ध्वंसादीन् उपद्रवान् =
प्रधानरोगोत्तरकालजान्, चिकित्साविघातकान् रोगोपरि रोगान्
कुर्यात् = कर्तुमर्हेत्, परिपक्वाभावात्, (अर्हे कृत्यतृचश्चेति
लिङ्) अत एव तादृशरसजम्-असृक् च = रुधिरमपि मांसादोन् =
मांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्ररूपान्, धातून्, अगच्छत् = अप्राप्नुवत्
सत्-ऊर्ध्वं धीवने, प्रधावति प्रवर्तते, केवलं रुधिरं धीवनसहितं वा
मुखान्निःसरतीत्यर्थः ।

स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातूष्मस्वलपकेषु च ॥ १९ ॥
 विदह्यमानः स्वस्थाने रसस्तांस्तानुपद्रवान् ।
 कुर्यादगच्छन्मांसादीनसृक् चोर्ध्वं प्रधावति ॥ २० ॥
 पच्यते कोष्ठ एवान्नमन्नपक्त्रैव चास्य^१ यत् ।
 प्रायोऽस्मान्मलतां यातं नैवालं धातुपुष्टये ॥ २१ ॥
 रसोऽप्यस्य न रक्ताय मांसाय कुत एव तु ।
 उपस्तब्धः स शकृता केवलं वर्तते क्षयी ॥ २२ ॥
 लिङ्गेष्वल्पेष्वपि क्षीणं व्याध्यौषधबलाद्धमम् ।
 वर्जयेत्^२ साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा^३ ॥ २३ ॥
 'क्षीणमांसबलं जह्यात्पूर्वलिङ्गैरुपद्रुतम् ।
 प्रत्याख्याय नरं चाशु द्रव्यवन्तमुपाचरेत् ॥'

अथ स्वरभेदनिदानम् ।

दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात् षष्ठश्च मेदता ।
 स्वरभेदो भवेत्^४ तत्र क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः ॥ २४ ॥

१. अस्य क्षयिणः (भुक्तम्) अन्नम् यत् = यस्मात्कोष्ठे एव =
 आमाशय-पक्वाशयरूपे जठरे एव न तु धात्वाशयेषु, अन्नपक्वा एव =
 जाठराग्निना एव न तु धातूष्मभिः, अस्मात्कारणात्-प्रायः बहुधा,
 मलताम् = किट्वं, यातं = प्राप्तं, धातूनां = रक्तादीनां पुष्टये =
 वर्द्धनाय, अलं = समर्थं नैव भवति, किन्तु किञ्चित्स्थितये, समर्थं
 भवति-अत एव वर्षद्वयमधिकं वा क्षयी जीवति । एवादिपदसार्थक्य
 प्रदर्शनपूर्वकं व्याख्यातम् । १९-२१ ।

* सर्वत्र विषयविभागविज्ञानायेदं चिह्नम् ।

२. अन्यथा = अक्षीणं, व्याध्यौषधिवलसहम् ।

शूकपूर्णाऽऽमकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात् ।
 पित्तात्तालुगले दाहः शोष उक्तावसूयनम् ॥ २५ ॥
 लिम्पन्निव कफात्कण्ठं मन्दः खुरखुरायते ।
 स्वरो विबद्धः सर्वैस्तु सर्वलिङ्गः क्षयात्कषेत् ॥ २६ ॥
 धूमायतीव चात्यर्थम् मेदसा श्लेष्मलक्ष्णः ।
 कृच्छूलक्ष्याक्षरश्च अत्र सर्वैरन्त्यं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

अथारोचकनिदानम् ।

अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः ।
 सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥ २८ ॥
 कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात् ।
 सर्वोत्थे विरसं शोक-क्रोधादिषु यथामलम् ॥ २९ ॥

अथ छर्दिनिदानम् ।

छर्दिर्दोषैः पृथक्सर्वैर्द्विष्टैरथैश्च पञ्चमी ।
 उदानो विकृतो दोषान् सर्वास्वप्यूर्ध्वमस्यति ॥ ३० ॥
 तासूक्त्वलेशस्यलावण्यप्रसेकारुचयोऽग्रगाः ।
 नाभिपृष्ठं रुजन् वायुः पार्श्वे चाहारमुत्तिपेत् ॥ ३१ ॥
 ततो विच्छिन्नमल्पाल्पं कषायं फेनिलं वमेत् ।
 शब्दोद्गारयुतं कृष्णमच्छं कृच्छ्रेण वेगवत् ॥ ३२ ॥
 कासास्यशोपहन्मूर्ध-स्वरपीडाक्लमान्वितः ।
 पित्तात्तारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम् ॥ ३३ ॥

१. अत्र = पट्सु स्वरभेदेषु मध्ये-सर्वेस्त्रिभिः सन्निपतितैर्जातं स्वरभङ्गम्, अन्त्यश्च = मेदोभवश्च, स्वरभेदं वर्जयेत्साध्याभावा-
 न्नोपक्रमेदिति ।

सासृगम्लं कटूष्णं च तृणमूर्च्छातापदाहवत् ।
 कफात् स्निग्धं घनं शीतं श्लेष्मतन्तुगवाक्षितम् ॥ ३४ ॥
 मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम् ।
 मुखश्चयथुमाधुर्यतन्द्रा-हृन्नासकासवान् ॥ ३५ ॥
 सर्वलिङ्गा मलैः सर्वैः रिष्टोक्ता या च तां त्यजेत् ।
 पूर्यमेध्याशुचिद्विष्ट-दर्शनश्रवणादिभिः ॥ ३६ ॥
 तप्ते चित्ते हृदि क्लिष्टे छर्दिद्विष्टार्थयोगजा ।
 वातादीनेव विमृशेत्कृमिन्तृणाऽऽमदौहृदे ॥ ३७ ॥
 शूलवेपथुहल्लासैर्विशेषात् कृमिजां वदेत् ।
 कृमिहृद्रोगलिङ्गैश्च स्मृताः पञ्च तु हृद्रदाः ॥ ३८ ॥

अथ हृद्रोगनिदानम् ।

तेषां गुल्मनिदानोक्तैः^१ समुत्थानैश्च सम्भवः ।
 वातेन शूलयतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव्र च ॥ ३९ ॥
 भिद्यते शुण्यति स्तब्धं हृदयं शून्यताद्भवः ।
 अकस्माद्दीनता शोको भयं शब्दासहिष्णुता ॥ ४० ॥
 वेपथुर्वेष्टनं मोहः श्वासरोधोऽल्पनिद्रता ।
 पित्तातृष्णा भ्रमो मूर्च्छा दाहः स्वेदोऽम्लकः कृमः ॥ ४१ ॥
 छर्दनं चाम्लपित्तस्य धूमकः पीतता ज्वरः ।
 श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धं भारिकं साशमगर्भवत् ॥ ४२ ॥
 कासाग्निसादनिष्ठीव-निद्रालस्यारुचिज्वराः ।
 सर्वलिङ्गस्त्रिभिर्दोषैः कृमिभिः श्यावनेत्रता ॥ ४३ ॥

१. मुनिभिरुक्तैः, अत्र तु—एकादशाध्याये वक्ष्यमाणैः, समु-
 त्थानैः = कारणैः, समुम्भवः = उत्पत्तिः ।

तमःप्रवेशो हृत्सासः शोषः कण्डूः कफस्तुतिः ।
हृदयं प्रततं चात्र क्रकचेनेव दार्यते ॥ ४४ ॥
चिकित्सेदामयं घोरं तं शीघ्रं शीघ्रकारिणम् ।

अथ तृष्णानिदानम् ।

वातापित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्रसक्षयात् ॥ ४५ ॥
पृष्ठी स्यादुपसर्गाच्च वातपित्ते तु कारणम् ।
सर्वासु तत्प्रकोपो हि सौम्यधातुप्रशोषणात् ॥ ४६ ॥
सर्वदेहभ्रमोत्कम्प-तापतृड्दाहमोहकृत् ।
जिह्वामूलगलक्लोम-तालुतोयवहाः सिराः ॥ ४७ ॥
संशोष्य तृष्णा जायन्ते तासां सामान्यलक्षणम् ।
मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः ॥ ४८ ॥
कण्ठोष्ठजिह्वाकार्कश्यं जिह्वानिष्क्रमणं क्लमः ।
प्रलापश्चित्तविभ्रंशस्तृड्ग्रहोक्तास्तथाऽऽमयाः ॥ ४९ ॥
मारुतात् क्षामता दैन्यं शङ्खतोदः शिरोभ्रमः ।
गन्धाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्रावलक्ष्याः ॥ ५० ॥
शीताम्बुपानाद् वृद्धिश्च पित्तान्मूर्च्छाऽऽस्यतिक्ता ।
रक्तेक्षणत्वं प्रततं शोषो दाहोऽतिधूमकः ॥ ५१ ॥
कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम् ।
स्रोतःसु स कफस्तेन पङ्कवच्छोष्यते ततः ॥ ५२ ॥
शूकैरिवाचितः कण्ठो निद्रा मधुरवक्त्रता ।

१. सौम्यस्य शरीरगतस्य रसादेः प्रकर्षेण शोषणात् ।

२. 'शोषाऽङ्गसाद-बाधिर्य-स+मोह-भ्रम-हृद्गदाः । तृष्णाया
निग्रहाद्'-इत्युक्ता रोगाः चतुर्थेऽध्याये सूत्रस्थाने ।

आध्मानं शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्द्यरोचकाः ॥ ५३ ॥
 आलस्यमविपाकश्च सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणा ।
 आमोद्भवा च, भक्तस्य संरोधाद्वातपित्तजा ॥ ५४ ॥
 उष्णक्लान्तस्य सहसा शीताम्भो भजतस्तृषम् ।
 ऊष्मा रुद्धो गतः कोष्ठं यां कुर्यात्पित्तजैव सा ॥ ५५ ॥
 या च पानातिपानोत्था, तीक्ष्णाग्नेः स्नेहजा च या ।
 स्निग्धगुर्वम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा ॥ ५६ ॥
 तृष्णा रसक्षयोक्तेन ^१लक्षणेन क्षयात्मिका ।
 शोषमेहज्वराद्यन्य-दीर्घरोगोपसर्गतः ॥ ५७ ॥
 या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिका स्मृता ॥ ५८ ॥
 इति निदानस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ।

—(५)—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो ^२मदात्ययादिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

तीक्ष्णोष्णरूक्षसूक्ष्माम्लं व्यवाय्याशुकरं लघु ।

विकाशि विशदं मद्यमोजसोऽस्माद्विपर्ययः ^३ ॥ १ ॥

१. रसे रौक्ष्यमित्यादिनिदिष्टेन लक्षणन । इति ।

२. अथ = राजयक्ष्मादिनिरूपणानन्तरं, यतः = राजयक्ष्मवत्
 त्रिदोषोत्पन्नो मदान्यथोऽपि, अतस्तन्निदानं व्याख्यास्यामः, इति
 प्रसङ्गसङ्गतिः ।

३. विपर्ययः = विपरीतता-यथा-मन्द-शीत-स्निग्ध-सान्द्र-

तीक्ष्णादयो विपेऽप्युक्ताश्चित्तोपप्लाविनो गुणाः ।
 जीवितान्ताय जायन्ते विपे तूत्कर्षवृत्तिः ॥ २ ॥
 तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यं मन्दादीनोजसो गुणान् ।
 दशभिर्दश सङ्क्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥ ३ ॥
 आद्ये मदेऽऽ द्वितीये तु प्रमादायतने स्थितः ।
 दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्यधिमुच्यते ॥ ४ ॥
 मध्यमोत्तमयोः सन्धिं प्राप्य राजसतामसः ।
 निरङ्कुश इव व्यालो न किञ्चिन्नाचरेज्जडः ॥ ५ ॥
 इयं भूमिरवद्यानां ^१दौःशील्यस्येदमास्पदम् ।
 एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्देशिकः ^२परम् ॥ ६ ॥
 निश्चेष्टः शववच्छेते 'तृतीये' तु मदे स्थितः ।
 मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम् ॥ ७ ॥
 धर्माधर्मे सुखं दुःखमर्थानर्थं हिताहितम् ।
 यदासक्तो न जानाति कथं तच्छीलयेद्बुधः ॥ ८ ॥
 मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः ।
 सोन्मादमदमूर्च्छायाः सापस्मारापतानकाः ॥ ९ ॥
 यत्रैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत् ।
 अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा ॥ १० ॥
 मद्यं त्रिवर्ग-धी-धैर्य-लज्जादेरपि नाशनम् ।

मधुर-स्थिर-चिरकृद-गुरु-श्लक्ष्ण-पिच्छिलत्वमिति-तीक्ष्णादिभि-
 र्मद्यगुणैः विपरीता ओजसो गुणाः क्रमशः ।

१. अवद्यानां = निन्दितकृत्यानाम् ।

२. देशिकः = उपदेष्टा, परमिति क्रियाविशेषणम् ।

नातिमाद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः ॥ ११ ॥
 स्निग्धाः सत्त्ववयoyुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः ।
 मेदःकफाधिका मन्दवातपित्ता दृढाग्नयः ॥ १२ ॥
 विपर्ययेऽतिमाद्यन्ति विश्रब्धाः कुपिताश्च ये ।
 मद्येन चाम्लरूक्षेण^१साजीर्णं बहुनाऽति च ॥ १३ ॥
 वातात्पित्तात्कफात्सर्वैश्चत्वारः स्युर्मदात्ययाः^२ ।
 सर्वेऽपि सर्वैर्जायन्ते व्यपदेशस्तु भूयसा^३ ॥ १४ ॥
 सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ।
 विड्भेदः प्रतप्तं तृष्णा सौम्याग्नेयो ज्वरोऽरुचिः ॥ १५ ॥
 शिरःपार्श्वास्थिरुक्, कम्पो मर्मभेदस्त्रिकग्रहः ।
 उरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः ॥ १६ ॥
 स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः ।
 प्रलापरच्छर्दिस्त्वलेशो भ्रमो दुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १७ ॥
 विशेषाजागरश्वास-कम्पमूर्धरूजोऽनिलात् ।
 स्वप्ने भ्रमस्युत्पतति प्रेतैश्च सह भाषते ॥ १८ ॥

१. अत्यम्लरूक्षेण, अति बहुना, इति-अति-शब्दस्योभयत्र सम्बन्ध उचितत्वात् सर्वस्य मद्यस्य अम्लत्वात्, मात्रया पाने माद-
 कत्वाऽभावात् ।

२. मदस्य = मदसुखस्य अत्ययो ध्वंसः, मदात्ययः = अयुक्ति-
 पीत-मद्यजन्यो रोगः, युक्त्या पाने तु न रोगः । 'हर्षमूर्जं मुदं
 पुष्टिमारोग्यं पौरुषं परम् । युक्त्या पीतं करोत्याशु, मद्यं मदसुखाऽऽ-
 वहम्' । इति चरकोक्तेः, (च० चि० २४।६१) ।

३. प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् ।

पित्ताद्वाहज्वरस्वेदमोहातीसारतृड्भ्रमाः ।
 देहो हरितहारिद्रो रक्तनेत्रकपोलता ॥ १९ ॥
 श्लेष्मणा छर्दिहृन्नासनिद्रोदर्दाङ्गौरवम् ।
 सर्वजे सर्वलिङ्गत्वम् ॥ मुक्त्वा मद्यं पिबेत्तु यः^१ ॥ २० ॥
 सहसाऽनुचितं वाऽन्यत्तस्य 'ध्वंसक-विषयौ' ।
 भवेतां मारुतात्कष्टौ दुर्बलस्य विशेषतः ॥ २१ ॥
 ध्वंसके श्लेष्मनिष्ठीवः कण्ठशोषोऽतिनिद्रता ।
 शब्दासहत्वं तन्द्रा च ॥ विषयेऽङ्गशिरोऽतिरूक् ॥ २२ ॥
 हृत्कण्ठरोगः सम्मोहः कासस्तृष्णा वभिर्ज्वरः ।

मद्यनिवृत्तिगुणाः ।

निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकत् ॥ २३ ॥
 विकारैः स्पृश्यते जातु न स शरीरमानसैः ।

अथ मद-मूर्च्छाय-संन्यासाः ।

रजोमोहाहिताहार-परस्य स्युस्त्रयो गदाः ॥ २४ ॥
 रसासृक्चेतनावाहि-स्रोतोरोधसमुद्भवाः ।
 मद-मूर्च्छाय-संन्यासा^२ यथोत्तरबलोत्तराः ॥ २५ ॥

१. यः पुरुषः मद्यं = मद्यपानं मुक्त्वा = त्यक्त्वा पुनः सहसा अनुचितं वा पिबेत् तस्य ध्वंसको विषयश्चेति द्वौ रोगौ भवेतामिति सम्बन्धः ।

२. रजोगुणपरस्य रसवाहि-स्रोतोरोधसमुद्भवो मदो गदः, मोह-परस्य रुधिरवाहिस्रोतोरोधसमुद्भवः, मूर्च्छायो गदः, अहिताऽऽहार-परस्य चेतनावाहिस्रोतोरोधसमुद्भवः संन्यासो गदः, ते च त्रयः गदा यथोत्तरं बलाधिकाः स्युः ।

ॐ अथ मदनिदानम् । ॐ

मदोऽत्र दोषैः सर्वैश्च रक्त-मद्य-विषैरपि ।

सक्तानल्पद्रुताभाषश्चलः स्वलितचेष्टितः ॥ २६ ॥

रूक्षश्यावारुणतनुर्मदं 'बातोद्भवे' भवेत् ।

'पित्तेन' क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः ॥ २७ ॥

स्वल्पसम्बद्धवाक्पाण्डुः 'कफाद्' ध्यानपरोऽलसः ।

सर्वात्मा 'सन्निपातेन' ॐ रक्तास्तब्ध्याङ्गदृष्टिता ॥ २८ ॥

पित्तलिङ्गं च ॐ मद्येन विकृतेहास्वराङ्गता^१ ।

विषे कम्पोऽतिनिद्रा च सर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तु सः ॥ २९ ॥

लक्ष्यंल्लक्ष्णोत्कर्षाद् वातादीन् शोणितादिषु ।

ॐ अथ मूर्च्छायनिदानम् । ॐ

अरुणं कृष्णनीलं वा खं पश्यन्प्रविशेत्तमः ॥ ३० ॥

शीघ्रं च प्रतिबुध्येत हृत्पीडा वेपथुभ्रमः ।

कार्श्यं श्यावारुणा छाया 'मूर्च्छायै' 'मारुतात्मके' ॥ ३१ ॥

'पित्तेन' रक्तं पीतं वा नभः पश्यन् विशेत्तमः ।

विबुध्येत च सस्वेदो दाहवृत्तापपीडितः ॥ ३२ ॥

भिन्नवि^२नीलपीताभो रक्तपीताकुलेक्षणः ।

'कफेन' मेघसङ्काशं पश्यन्नाकाशमाविशेत् ॥ ३३ ॥

१. ईहा च, स्वरश्च, अङ्गानि च, इति द्वन्द्वः, विकृतानि-ईहास्व-
राङ्गानि यस्य तस्य भावः, विकृतचेष्टावत्त्वम्, विकृतस्वरवत्त्वम्,
विकृताङ्गवत्त्वमित्यर्थः ।

२. 'मूर्च्छायै' शब्दोऽदन्तो 'मूर्च्छायै' वाची ।

तमश्चिराच्च बुध्येत सहल्लासः प्रसेकवान् ।
 गुरुभिः स्तिमितैरङ्गैरार्द्रचर्मावनद्धवत् ॥ ३४ ॥
 सर्वाकृतिस्त्रिभिर्दोषैरपस्मार इवापरः ।
 पातयत्याशु निश्चेष्टं विना वीभत्सचेष्टितैः ॥ ३५ ॥

ॐ अथ सन्न्यासनिदानम् । ॐ

दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम्^१ ।
 स्वयमेवोपशाम्यन्ति, सन्न्यासो नौषधैर्विना ॥ ३६ ॥
 वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला मलाः ।
 संन्यासं सन्निपतिताः प्राणायतनसंश्रयाः ॥ ३७ ॥
 कुर्वन्ति, तेन पुरुषः काष्ठीभूतो मृतोपमः ।
 म्रियेत शीघ्रं, शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते ॥ ३८ ॥
 अगाधे ग्राहवहुलं सलिलौघ इवाऽतटे ।
 सन्न्यासे विनिमज्जन्तं नरमाशु निवर्तयेत् ॥ ३९ ॥
 मद-मान-रोष-तोष-प्रभृतिभिररिभिर्निजैः^२ परिष्वङ्गः ।
 युक्तायुक्तं च समं युक्तिवियुक्तेन मयेन ॥ ४० ॥

१. देहिनां दोषेषु = वातादिषु, कृतवेगेषु, सत्सु मदाः = वाता-
 दिजास्त्रयः, मूर्च्छायाश्च त्रयः स्वयमेव = औषधं विनैव, उपशा-
 म्यन्ति = स्वजनकदोषवोपशमानन्तरमेवोपरता भवन्ति । (कारण-
 नाशात्कार्यनाशः) इति न्यायात् । बहुवचनं व्यक्त्यभिप्रायेण ।
 सन्न्यासस्तु सन्निपातजन्यः, वाग्देहमनसां चेष्टाप्रतिबन्धकः प्राणाय-
 तनस्थः, अतः-चेष्टोत्तेजकैरौषधैर्विना न शाम्यति, निर्व्यापारत्वात् ।

२. निजैः = स्वमनोवृत्तिभिः ।

पुनर्मद्यपाने युक्तिमाह—

बल-काल-देश-सात्म्य-प्रकृति-सहायाऽऽमय-वयांसि ।

प्रविभज्य तदनुरूपं यदि पिबति ततः पिबत्यमृतम्^१ ॥४१॥



सप्तमोऽध्यायः ।

^१अथातोऽर्शां निदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘अरिवत्प्राणिनो मांसकीलका विशसन्ति यत् ।

^२अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः ॥ १ ॥

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दृश्य विविधाकृतीन् ।

मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि तान् जगुः ॥ २ ॥

सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद् द्वेधा समासतः ।

१. ‘किन्तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽस्मृतम् । (च. चि. अ २४।५९,) इति ।

२. अथ = मदात्ययनिरूपणानन्तरम्, यतस्तत्र अरिपरिष्वङ्गः श्रुतः, अतः अरिसदृशानामर्शसामेव स्मृतिविषयतया तेषां निदानं व्याख्यास्यामः, प्रसङ्गसङ्गतिः ।

३. अरिवच्छसन्ति = हिंसन्ति-इति नियमे सर्वधातुभ्यः असुन्-इत्युणादि-सूत्रेणाऽसुनि पृषोदरादित्वादिकारलोपे—अर्शांसि—इत्यत्रत्य-ग्रन्थप्रक्रिया । उणादिषु तु—ऋ-गतावित्यस्मात्सर्वधातुभ्यः असुन्नित्यनुवृत्तौ ‘व्याधौ शुट् च’ शुडागमे गुणे साधितमर्शस् प्रातिपदिकम् ।

शुष्कस्ताविविभेदाच्चः॥गुदः स्थूलान्त्रसंश्रयः^१ ॥ ३ ॥

अर्धपञ्चाङ्गुलस्तस्मिंस्तिष्ठोऽध्यर्धाङ्गुलाः स्थिताः ।

वलयः, प्रवाहिणी तासामन्तर्मध्ये विसर्जनी ॥ ४ ॥

बाह्या संवरणी तस्या गुदौष्ठो वहिरङ्गुले ।

यवाध्यर्धः प्रमाणेन रोमाण्यत्र ततः परम् ॥ ५ ॥

^२तत्र हेतुः सहोत्थानां वलीबीजोपतप्तता ।

अर्शसां, बीजतस्मिस्तु मातापित्रपचारतः ॥ ६ ॥

दैवाच्च, ताभ्यां^३ कोपो हि सन्निपातस्य तान्यतः ।

१. गुदलक्षणमिदम्, 'गुदं स्थूलान्त्रसंश्रयम्, अर्धपञ्चाङ्गुलं तस्मिन्', इति पठनीयम्, गुदशब्दस्य नपुंसकत्वात् ।

२. तत्र = द्विविधाऽर्शः मध्ये, वलीबीजोपतप्तता = गुदवली-जनक-शुक्रशोणितरूपस्य बीजस्य उपतप्तता = रोगदुष्टवातादिदूषितत्वम्, अयं भावः, बीजं सर्वशरीर-व्यापि, मातापित्रोर्यस्मिन्नङ्गे यो रोगः, तदङ्गाश्रितं बीजं तद्रोगजनकवातपित्तकफैः उपतप्तम् = रुग्णं स देव-तद्रोगविशिष्ट-तदवयववर्ती सन्ततिं जनयति, बीजस्यैव रुग्णत्वात् सन्तते रुग्णत्वं, सर्वेषु सहजेषु, रोगेषु, तदवयवनिःसृतबीजस्य, तदवयवारम्भकत्वं, सामानाधिकरण्यात् । 'कारणगुणाः कार्यगुणमारभन्ते'-इति न्यायात् । उपतप्तिः = उपतापो = रोगः, प्रकृते तु-अर्शसां गुदवलिस्थत्वेन-अर्शोक्तामातापितृगुदनिष्पीडित-शुक्रशोणितारब्ध-स्वतनुजन्म-गुदवलि-त्रयस्याऽर्शोव त्वमिति लक्षणसमन्वयः ।

३. हि = यस्मात् ताभ्यां दैव-मातापित्रपचाराभ्याम्, सन्निपातस्य कोपः अतः, तानि = सहजान्यर्शांसि-असाध्यानि, उक्तं न्यायमितिदिशति-एवमाख्याता-इति ।

असाध्यान्येवमाख्याताः सर्वरोगाः कुलोद्भवाः ॥ ७ ॥
 सहजानि विशेषेण रूक्षदुर्दर्शनानि च ।
 अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च ॥ ८ ॥
 शुष्काणि वातश्लेष्मभ्यामार्द्राणि त्वस्त्रपित्ततः ॥ ९ ॥
 दोषप्रकोपहेतुस्तु^१ प्रागुक्तस्तेन सादिते^२ ।
^३अग्नौ, मलेऽतिनिचिते, पुनश्चातिव्यवायतः ॥ १० ॥
 यानसङ्घोभविषम-कठिनोत्कटकासनात् ।
 बस्तिनेत्राश्मलोष्टोर्वी-तलचैलादिघट्टनात् ॥ ११ ॥
 भृशं शीताम्बुसंस्पर्शात्प्रततातिप्रवाहणात् ।
 वातमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात् ॥ १२ ॥
 ज्वरगुल्मातिसाराम-ग्रहणीशोफपाण्डुभिः ।
 कर्शनाद्विषमाभ्यश्च चेष्टाभ्यो, योपितां पुनः ॥ १३ ॥
 आमगर्भप्रपतनाद्गर्भवृद्धिप्रपीडनात् ।
 ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मलम् ॥ १४ ॥
 पायोर्वलीषु तं धत्ते तास्वभिष्यणमूर्तिषु ।
 जायन्तेऽर्शासिञ्जितत्पूर्वलक्षणं मन्दवद्विता ॥ १५ ॥
 विष्टम्भः सक्थिसदनं पिण्डिकोद्वेष्टनं भ्रमः ।
 सादोऽङ्गे नेत्रयोः शोफः शकृद्भेदोऽथवा ग्रहः ॥ १६ ॥
 मारुतः प्रचुरो मूढः प्रायो नाभेरधश्चरन् ।
 सरुक् सपरिकर्तश्च कृच्छ्राग्निर्गच्छति स्वनन् ॥ १७ ॥
 अन्त्रकूजनमाटोपः क्षामतोद्गारभूरिता ।

१. प्रागुक्तः = 'तत्प्रकोपस्य च प्राक्तं विवधाहित-सेवनम्' ।

२. सादिते = मन्दीकृते । ३. अग्नौ = जाठराग्नौ ।

प्रभूतं मूत्रमल्पा विट्, अश्रद्धा धूमकोऽम्लकः ॥ १८ ॥
 शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्याभिन्नवर्णता ।
 तन्द्रेन्द्रियाणां दीर्घल्यं क्रोधो दुःखोपचारता ॥ १९ ॥
 आशङ्का ग्रहणीदोषपाण्डुगुल्मोदरेषु^१ च ।
 एतान्येव विवर्धन्ते जातेषु हतनामसु^२ ॥ २० ॥
 निवर्तमानोऽपानो हि तैरधोमार्गरोधतः ।
 क्षोभयन्ननिलानन्यान् सर्वेन्द्रियशरीरगान् ॥ २१ ॥
 तथा मूत्रशकृत्पित्तकफान् धातून् साशयान् ।
 मृदनात्यग्निं ततः सर्वो भवति प्रायशोऽर्शसः ॥ २२ ॥
 कृशो भृशं हतोत्साहो दीनः क्षामोऽतिनिष्प्रभः ।
 असारो विगतच्छायो जन्तुजुष्ट इव द्रुमः ॥ २३ ॥
 कृत्स्नैरुपद्रवैर्ग्रस्तो यथोक्तैर्मर्मपीडनैः ।
 तथा कासपिपासास्य-वैरस्य-श्वासपीनसैः ॥ २४ ॥
 क्लृमाङ्गभङ्गवमथु-क्षवथुश्चयथुज्वरैः ।
 क्लैब्यवाधिर्यतैर्मिर्य-शर्कराऽश्मरिपीडितः ॥ २५ ॥
 क्षामभिन्नस्वरो ध्यायन्मुहुः स्तीवन्नरोचकी ।
 सर्वपर्वास्थिहन्नाभि-पायुवङ्गणशूलवान् ॥ २६ ॥
 गुदेन स्रवता पिच्छां पुलाकोदकसन्निभाम् ।
 विवद्धमुक्तं शुष्कार्द्रं पक्कामं चान्तराऽन्तरा ॥ २७ ॥

१. विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथा च ग्रहणीदोषादिविषयिणी आशङ्का भवतीत्यर्थः ।

२. हतनामसु = अर्शःसुः । 'दुर्नामिकाऽर्शसी'त्यमरः, 'दुर्नामप्रति-
 निधिः'हतनाम-शब्दः ।

पाण्डु पीतं हरिद्रक्तं पिच्छिलं चोपवेश्यते ।

वाताऽशोसि लक्षयति—

गुदाङ्कुरा 'बह्वनिलाः' शुष्काश्चिमिचिमान्विताः ॥ २८ ॥

श्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विपमाः परुषाः खराः ।

मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः ॥ २९ ॥

विम्बीककन्धुखजूर-कार्पासीफलसन्निभाः ।

केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः ॥ ३० ॥

शिरःपार्श्वोसकटयूर-वङ्कणाभ्यधिकन्यथाः ।

क्षवथूद्गारविष्टम्भ-हृद्ग्रहारोचकप्रदाः ॥ ३१ ॥

कासश्वासान्निवैषम्य-कर्णनादभ्रमावहाः ।

^१तैरार्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ३२ ॥

रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ।

कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्र-नेत्रवक्त्रश्च जायते ॥ ३३ ॥

गुल्मप्लीहोदराष्टीला-सम्भवस्तत एव च ।

पित्ताशोसि—

'पित्तोत्तरा' नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः ॥ ३४ ॥

तन्वस्त्रस्ताविणो विस्त्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ।

शुकजिह्वायकृत्खण्ड-जलौकावक्त्रसन्निभाः ॥ ३५ ॥

दाहपाकज्वरस्वेद-तृणमूर्च्छाऽरुचिमोहदाः ।

सोष्माणो^२द्रवनीलोष्ण-पीतरक्तामवर्चसः ॥ ३६ ॥

१. तैः = वाताधिकैर्गुदाङ्कुरैः ।

२. द्रवञ्च, नीलञ्च, उष्णञ्च, पीतञ्च, रक्तञ्च, आमञ्च वर्चः = पुरीषं येषु (सत्सु) इति बहुव्रीहिः ।

१ यवमध्या हरित्पीत-हारिद्रत्वङ्नखादयः ।

कफाशांसि—

‘श्लेष्मोल्बणा’ महामूला घना मन्दरुजः सिताः ॥ ३७ ॥

उच्छूनोपचिताः स्निग्धाः

स्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ।

पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः

कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ॥ ३८ ॥

करीर-पनसाऽस्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ।

वङ्गणानाहिनः पायु-बस्तिनाभिविकर्तिनः ॥ ३९ ॥

सकासश्वासहृत्तास-प्रसेकाऽरुचिपीनसाः ।

मेहकृच्छ्रशिरोजाड्य-शिशिरज्वरकारिणः ॥ ४० ॥

क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दि-रामप्रायविकारदाः ।

वसाभ-सकफ-प्राज्य-पुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ ४१ ॥

न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ।

संसृष्टलिङ्गाः संसर्गाद्दृढनिचयात्सर्वलक्षणाः^२ ॥ ४२ ॥

१. यवमध्याः = यवमध्यसंस्थानाः, तथा-हरितः = दूर्वावर्णाः, पीताः = कुनटीवर्णाः, हारिद्राः = हरिद्रा-वर्णाः, (पीतस्यैवाऽगाढता) त्वङ्नख-नयनविष्णुमूत्रादयोऽप्येव-तादृशाः पित्तोत्तरा गुदाङ्कुरा भवन्ति ।

२. यद्यपि, बह्वनिलाः, पित्तोत्तराः श्लेष्मोल्बणाः, इति विशेषणैः सर्वेषामर्शसां त्रिदोषजत्वं सूचितम्, तथापि ‘व्यपदेशस्तु भूयसा’ इति न्यायाद् भेदः, ततश्च—त्रयाणां दोषाणां समानकोपे, निचयः = सन्निपातः, न्यूनाऽधिकभावे पूर्वोक्ता भेदाः ।

'रक्तोत्बणा' गुदे कीलाः पित्ताऽऽकृतिसमन्विताः ।
 वटप्ररोहसदृशा गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः ॥ ४३ ॥
 तेऽस्यर्थं दुष्टमुष्णं च गाढविट्कप्रपीडिताः ।
 स्रवन्ति सहसा रक्तं, तस्य/चातिप्रवृत्तितः ॥ ४४ ॥
 भेकाभः पीड्यते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः ।
 हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः ॥ ४५ ॥
 'मुद्गकोद्रवजूर्णाह्न-करीरचणकादिभिः ।
 रुक्षैः सङ्ग्राहिभिर्वायुः स्वे स्थाने कुपितो बली ॥ ४६ ॥
 अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन् ।
 पुरीषं वातविण्मूत्र-सङ्गं कुर्वीत दारुणम् ॥ ४७ ॥
 तेन तीव्रा रुजा^१कोष्ठं पृष्टहृत्पाश्वर्गगा भवेत् ।
 आध्मानमुदरावेष्टो हृल्लासः परिकर्तनम् ॥ ४८ ॥
 बस्तौ च सुतरां शूलं गण्डश्वयथुसम्भवः ।
 पवनस्योर्ध्वगामित्वं ततश्छर्द्यरुचिज्वराः ॥ ४९ ॥
 हृद्रोगग्रहणीदोष-मूत्रसङ्गप्रवाहिकाः ।
 बाधिर्यतिमिरश्वास-शिरोरुक्कासपीनसाः ॥ ५० ॥
 मनोविकारस्तृष्णाऽस्त्र-पित्तगुल्मोदरादयः ।
 ते ते च वातजा रोगा जायन्ते भृशदारुणाः ॥ ५१ ॥
 दुर्नाम्नामित्युदावर्तः^२ परमोऽयमुपद्रवः ।^३

१. स्त्री रुग्, रुजा, चोपताप, रोग, व्याधि, गदाऽऽमयाः'

२. इति = आध्मानादिजननप्रकारेण दुर्नाम्नाम् = अर्शसां,
 क्षुब्धादित्वाण्णत्वाऽभावः, अयं प्रसिद्धश्छर्द्यम्लपित्ताभ्यां साम्यत्वेन
 सन्देहजनकः, उदावर्तः परमो महानुपद्रवः ।

वाताभिभूतकोष्ठानां तैर्विनाऽपि स^१ जायते ॥ ५२ ॥
 सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरे बलौ ।
 स्थितानि तान्यसाध्यानि, याप्यन्तेऽग्निबलादिभिः ॥ ५३ ॥
 द्वन्द्वजानि द्वितीयायां बलौ यान्याश्रितानि च ।
 'कृच्छ्रसाध्यानि' तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥ ५४ ॥
 बाह्यायां तु बलौ जातान्येकदोषोत्ब्रणानि च ।
 अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पतितानि च ॥ ५५ ॥
 मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वंऽनाभिजानि तु ।
 गण्डूपदास्यरूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च ॥ ५६ ॥
 व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।
 कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलं तु तं विदुः ॥ ५७ ॥
 वातेन तोदः पारुष्यं पित्तादसितरक्तता ।
 श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता ॥ ५८ ॥
 अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् ।
 तान्याशु हि गुदं नृणां नृगर्जनाग्नौ नरम् ॥ ५९ ॥

इति निः

ायः ।

१. सः = उदावर्तः

२. केचित्तु-भूयांसं
 पत्यपथं, गल-तालु-मु-
 चरकः । मांसाङ्कुरत्वसा
 व्यवहारस्तेषु कैश्चित्कृतस

-अर्शसां, शिश्नम
 र्मानि. त्वक् चेति
 त्वाच्च समाननाम्ना
 ष्वपीति । इति ।

अष्टमोऽध्यायः ।

१ अथातोऽतीसारग्रहणीदोषनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘दोषव्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः ।

अतीसारः॥ स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः ॥ १ ॥

कृश-शुष्काऽऽमिषाऽसात्म्य-तिलपिष्टविरूढकैः ।

मद्यरूक्षातिमात्रान्नेरशोभिः स्नेहविभ्रमात् ॥ २ ॥

कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितोऽनिलः ।

विस्त्रंसयत्यधोऽब्धातुं १ हत्वा तेनैव चानलम् ॥ ३ ॥

व्यापद्यानुशकृत्कोष्ठं पुरीषं द्रवतां नयन् ।

प्रकल्पतेऽतिसाराय॥लक्षणं तस्य भाविनः ॥ ४ ॥

तोदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रसादो मलग्रहः ।

आध्मानमविपाकश्च॥ तत्र वातेन विड्जलम् ॥ ५ ॥

अल्पाल्पं शब्दशूलाढ्यं विबद्धमुपवेश्यते ।

रूक्षं सफेनमच्छं च ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥

तथा दग्धगुडाभासं सपिच्छापरिकर्तिकम् ।

शुष्कास्यो अष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिष्टनन् ३ ॥ ७ ॥

१ अथाऽशौनिरूपणानन्तरं, यतः-‘अशौऽतिसारग्रहणीविकाराः, प्रायेण चान्धोऽन्यनिदानभूताः’ अतः-अतीसारग्रहणीरोगयोर्निदानं व्याख्यास्यामः । २. शरीरस्थं जलम् ।

३. विनिष्टनम् = आर्त्तशब्दं कुर्वन्-उपवेश्यते, वातेनेति - पूर्वेणाऽन्वयः ।

'पित्तेन' पीतमसितं हारिद्रं शाद्वलप्रभम् ।
 सरक्तमतिदुर्गन्धं तृग्मूर्च्छास्वेददाहवान् ॥ ८ ॥
 सशूलं पायुसन्तापपाकवान् 'श्लेष्मणा' घनम् ।
 पिच्छिलं तन्तुमच्छ्वेतं स्निग्धमामं कफान्वितम् ॥ ९ ॥
 अभीक्ष्णं गुरु दुर्गन्धं विवद्धमनुबद्धरूक् ।
 निद्रालुरलसोऽन्नद्वि-डल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ॥ १० ॥
 सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुबस्तिगुदोदरः ।
^१कृतेऽप्यकृतसंज्ञश्च॥ सर्वात्मा सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥
 भयेन क्षोभिते चित्ते सपित्तो द्रावयेच्छकृत् ।
 वायुस्ततोऽतिसार्येत क्षिप्रमुष्णं द्रवं प्लवम् ॥ १२ ॥
 वातपित्तसमं लिङ्गैराहुः॥तद्वच्च शोकतः ।
 अतीसारः समासेन द्विधा सामो निरामकः ॥ १३ ॥
 सासृङ्गनिरस्रः॥ तत्राद्ये ^२गौरवाद्प्लु मज्जति ।
 शकृद् दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ॥ १४ ॥
^३विपरीतो निरामस्तु॥ कफात्पक्वोऽपि मज्जति ।

१. कृतेऽपि पुरीषोत्सर्गे न कृत इति सञ्ज्ञा सञ्ज्ञानं चेतना यस्य तादृशः सन्नुपवेक्ष्यते श्लेष्मणा कर्त्ता, अतिसारकी कर्म ।

२. आद्ये = सामेऽतीसारे, शकृत्पुरीषं गौरवात्कारणादप्लु = जलेषु मज्जति = बुडति'-इत्यन्वयः ।

३. 'विपरीतं निरामे तु, कफात्पक्वेऽपि मज्जति' इति-पाठे सन्दर्भशुद्धिः, आद्ये-इति प्रक्रान्तत्वेन-अतीसारे-इत्यस्य शकृत्-इत्यस्य नपुंसकलिङ्गस्य चानुवृत्तेः कफात् कारणाद् गौरवात्, पक्वे-ऽपि=निरामेऽप्यतीसारेऽपि शकृत्=पुरीषं मज्जति-इत्यन्वयात् ।

अथ ग्रहणीरोगः—

१अतीसारेषु यो नातियत्नवान् ग्रहणीगदः ॥ १५ ॥
तस्य स्यादग्निविध्वंसकरैरन्यस्य सेवितैः ।

ग्रहणीतोऽतिसारस्य भेदः—

सामं शकृच्चिरामं वा जीर्णे येनातिसार्यते ॥ १६ ॥
सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ।

अतीसाराद् ग्रहणी भिन्ना—

सामं सान्नमजीर्णेऽन्ने जीर्णे पक्वं तु नैव वा ॥ १७ ॥

अकस्माद्वा मुहुर्बद्धमकस्माच्छिथिलं मुहुः ।

चिरकृद् ग्रहणीदोषः सञ्चयाच्चोपवेशयेत्^१ ॥ १८ ॥

२स चतुर्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ।

प्राग्रूपं तस्य सदनं चिरात्पचनमम्लकः ॥ १९ ॥

प्रसेको वक्रवैरस्यमरुचिस्तृट् क्लमो भ्रमः ।

आनद्धोदरता छदिः कर्णक्वेडोऽन्त्रकूजनम् ॥ २० ॥

सामान्यं लक्षणं काश्यं धूमकस्तमको ज्वरः ।

मूर्च्छा शिरोरुग्विष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः ॥ २१ ॥

१. यो नरः, अतीसारेषु सत्सु, नाति यत्नवान् = अतीसार-
प्रतीकारतत्परः न भवेत्, तस्य ग्रहणी-गदः स्यात्, प्रथमं निदान-
मिदम् । अन्यस्य = अतीसार-रहितस्य नरस्य, सेवितैः = परिशीलितैः,
अग्निविध्वंसकरैः = अग्निमान्द्यकरैरन्नपानादिभिः ग्रहणीगदः ग्रहणी-
रोगः, स्याद् इति द्वितीयं निदानम् । च. चि. अ. १५।४१-४४ ।

२. उपवेशयेत् = पुरीषोत्सर्गं कारयेत् । ३. सः = ग्रहणीगदः ।

तत्राऽनिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।
 पार्श्वोरुवङ्कणग्रीवारुजाऽभीक्ष्णं विसूचिका ॥ २२ ॥
 रसेषु गृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णा परिकर्तिका ।
 जीर्णे जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं समश्नुते ॥ २३ ॥
 वातहृद्रोगगुरुमार्शः-प्लीहपाण्डुत्वशङ्कितः ।
 चिराद् दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वामं शब्दफेनवत् ॥ २४ ॥
 पुनःपुनः सृजेद्वर्चः पायुरुक्श्वासकासवान् ।
 'पित्तेन' नीलं पीताभं पीताभः सृजति द्रवम् ॥ २५ ॥
 पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठ-दाहारुचितृडर्दितः ।
 'श्लेष्मणा' पच्यते दुःखमन्नं छर्दिरोचकः ॥ २६ ॥
 आस्योपदेहनिष्ठीव-कासहृल्लासपीनसाः ।
 हृदयं मन्यते स्थानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥ २७ ॥
 उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं स्त्रीष्वहर्षणम् ।
 भिन्नामश्लेष्मसंसृष्ट-गुरुवर्चःप्रवर्तनम् ॥ २८ ॥
 अकृशस्यापि दौर्बल्यम् ॥ सर्वजे सर्वसङ्करः ।
 विभागोऽङ्गस्य ये चोक्ता ^१विषमाद्यास्त्रयोऽन्ययः ॥ २९ ॥
 तेऽपि स्युर्ग्रहणीदोषाः समस्तु ^२स्वास्थ्यकारणम् ।
 वातव्याध्यश्मरीकुष्ठ-मेहोदरभगन्दराः ।
 अर्शोसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः ॥ ३० ॥
 इति निदानस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ।

१. विषमः, तीक्ष्णः, मन्दः, इति त्रयोऽन्ययः, तेऽपि ग्रहणीदोषाः=
 ग्रहणीजनकाः स्युः । २. समस्तु-अग्निः स्वास्थ्यहेतुः । इति ।

नवमोऽध्यायः ।

१अथातो मूत्राघातनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘बस्ति-बस्तिशिरो-मेढू-कटी-वृषण-पायवः ।

१एकसम्बन्धनाः प्रोक्ता गुदास्थिविवराश्रयाः ॥ १ ॥

अधोमुखोऽपि बस्तिर्हि मूत्रवाहिसिरामुखैः ।

पार्श्वेभ्यः पूर्यते सूक्ष्मैः स्यन्दमानैरनारतम् ॥ २ ॥

१यैस्तैरेव प्रविश्यैनं दोषाः कुर्वन्ति विंशतिम् ।

मूत्राघातान् प्रमेहांश्च कृच्छ्रान्मर्मसमाश्रयान् ॥ ३ ॥

बस्तिवङ्क्षणमेढ्वर्तियुक्तोऽल्पाल्पं मुहुर्मुहुः ।

मूत्रयेद्वातजे कृच्छ्रेऽपैत्ते पीतं सदाहरूक् ॥ ४ ॥

रक्तं वाऽऽकफजे बस्तिमेढूगौरवशोफवान् ।

सपिच्छं सविबन्धं चऽऽसर्वैः सर्वात्मकं मलैः ॥ ५ ॥

यदा वायुमुखं बस्तेरावृत्य परिशोषयेत् ।

१. अथ = पुरीषाऽऽघात-कराऽतीसार-ग्रहणीनिदानानन्तरं
यतः-एकसम्बन्धनत्वेन मूत्राघातकररोगाः स्मृतिविषयाः, अतस्त-
निदानं निरूपयिष्यामः ।

२. एकं संबन्धनं = ग्रन्थनं येषान्ते, यतः, गुदास्थिविवरमाश्रया
येषां तादृशाः, हेतुगर्भं विशेषणम् ।

३. यैः मूत्रवाहिसिरामुखैः, अधोमुखोऽपि बस्तिः पूर्यते तैरेव
सिरामुखैः दोषाः एनं = बस्तिं प्रविश्य, विंशतिं मूत्राघातान्, विंशतिं,
प्रमेहांश्च कुर्वन्ति-इत्यन्वयः ।

मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात् ॥ ६ ॥
 सञ्जायतेऽश्मरी घोरा पित्ताद् गोरिव रोचना ।
 श्लेष्माश्रया च सर्वा स्याद् अथाऽस्याः पूर्वलक्षणम् ॥ ७ ॥
 वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ।
 मूत्रे च वस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ॥ ८ ॥
 सामान्यलिङ्गं रुद्धनाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु ।
 त्रिशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने ॥ ९ ॥
 तद्वथपायात्सुखं मेहेदृच्छं ^१गोमेदकोपमम् ।
 तत्सङ्क्षोभात् क्षते सास्त्रम्, आयासाच्चातिरुग्भवेत् ॥ १० ॥
 तत्र वाताद्भृशार्त्यार्त्तो दन्तान् खादति वेपते ।
 मृद्नाति मेहनं, नाभिं पीडयत्यनिशं कण्ठम् ॥ ११ ॥
 सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ।
 श्यावा रुक्षाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव ॥ १२ ॥
 पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ।
 भङ्गातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी ॥ १३ ॥
 वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ।
 अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता ॥ १४ ॥
 एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा ।
 आश्रयोपचयात्पत्वाद् ग्रहणाहरणे सुखाः ॥ १५ ॥
 शुक्राश्मरी तु महतां ^२जायते शुक्रधारणात् ।

१. गोमेदकोऽष्टमं रत्नम्, अतिशोणम् ।

२. महतां = यूनां सञ्जात-शुक्राणां न तु- बालानाम् ।

स्थानाच्च्युतममुक्तं हि^१ मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ १६ ॥
 शोषयत्युपसङ्गृह्य शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ।
 वस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वमुष्कश्चयथुकारिणी ॥ १७ ॥
^२तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ।
 पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन् अश्मर्येव च शर्करा ॥ १८ ॥
 अणुशो वायुना भिन्ना, सा त्वस्मिन्ननुलोमगे ।
 निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विवध्यते ॥ १९ ॥
 मूत्रसन्धारिणः कुर्याद्बुद्ध्वा वस्तेर्मुखं मरुत ।
 मूत्रसङ्गं रुजं कण्डूं, कदाचिच्च स्वधामतः ॥ २० ॥
 प्रच्याव्य वस्तिमुद्वृत्तं गर्भाभं स्थूलविप्लुतम् ।
 करोति तत्र रुदाहस्यन्दनोद्वेष्टनानि च ॥ २१ ॥
 बिन्दुशश्च प्रवर्तत, मूत्रं वस्तौ तु पीडिते ।
 धारया, द्विविधोऽप्येष वातवस्तिरिति स्मृतः ॥ २२ ॥
 दुस्तरः, दुस्तरतरो द्वितीयः प्रबलानिलः ।
 शकृन्मार्गस्य वस्तेश्च वायुरन्तरमाश्रितः ॥ २३ ॥
 अष्टीलाभं घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम् ।
 वाताष्टीलेति साऽऽध्मान-विण्मूत्रा-ऽनिलसङ्गकृत् ॥ २४ ॥
 विगुणः कुण्डलीभूतो वस्तौ तीव्रव्यथोऽनिलः ।

१. मुष्कयोः = वृषणयोः, अन्तरे = मध्ये ।

२. तस्यां = शुक्राश्मर्या-जातमात्रायां सत्यान्तु न तु जीर्णायाम्,
 अस्मिन् अवकाशे = शुक्राश्मरीस्थाने = वृषणद्वये-इत्यर्थः, शनैः कर-
 तलेन पीडिते-सति शुक्रमूत्रे-रेतः, ऐति = निर्गच्छति बहिः, अथवा
 विलीयते = विशेषेण लीनं भवति ।

आविश्य^१ मूत्रं भ्रमति सस्तम्भोद्वेष्टगौरवः ॥ २५ ॥
 मूत्रमल्पालपमथवा विमुञ्चति शकृत्सृजन् ।
 'वातकुण्डलिकेत्येषा'^२ मूत्रं तु विधृतं चिरम् ॥ २६ ॥
 न निरेति विबद्धं वा 'मूत्रातीतं' तदल्परुक् ।
 विधारणात्प्रतिहतं वातोदावर्तितं यदा ॥ २७ ॥
 नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्तदा ।
 कुर्यात्तीव्ररुगाध्मानमपक्तिमलसङ्ग्रहम् ॥ २८ ॥
 'तन्मूत्रजठरम्' छिद्रवैगुण्येनानिलेन वा ।
 आक्षिप्तमल्पं मूत्रं तु वस्तौ नालेऽथवा मणौ ॥ २९ ॥
 स्थित्वा स्रवेच्छन्नैः पश्चात्सरुजं वाऽथवाऽरुजम् ।
 'मूत्रोत्सङ्गः' स विच्छिन्नतच्छेषगुरुशेषसः ॥ ३० ॥
 अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
 अश्मरीतुल्यरुग् ग्रन्थि 'मूत्रग्रन्थिः' स उच्यते ॥ ३१ ॥
 मूत्रितस्य स्त्रियं^३ यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
 स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥ ३२ ॥
 भस्मोदकप्रतीकाशं 'मूत्रशुक्रं' तदुच्यते ।
 रुक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा ॥ ३३ ॥
 मूत्रस्रोतोऽनुपर्येति संसृष्टं शकृता तदा ।
 मूत्रं विट् तुल्यगन्धं 'स्याद् विड्विघातं' तमादिशेत् ॥ ३४ ॥
 पित्तं व्यायामतीक्ष्णोष्णभोजनाध्वातपादिभिः ।

१. विगुणादिविशेषणविशिष्टोऽनिलः कर्त्ता मूत्रमाविश्य =
 क्षोभयित्वा वस्तौ भ्रमति-इत्यन्वयः ।

२. यातीति यान्, तस्य यातः, गच्छतः शत्रन्तात्पक्षी ।

प्रवृद्धं वायुना क्षिप्तं बन्धुपस्थातिदाहवत् ॥ ३५ ॥
 मूत्रं प्रवर्तयेत्पीतं सरक्तं रक्तमेव वा ।
 उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्राद्-‘उष्णवातं’ वदन्ति तम् ॥ ३६ ॥
 रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
 ‘मूत्रक्षयं’ सरुदाहं जनयेतां ‘तदाह्वयम्’ ॥ ३७ ॥
 पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ।
 कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥ ३८ ॥
 सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ।
 शुष्कं समस्तवर्णं वा ‘मूत्रसादं’ वदन्ति तम् ॥ ३९ ॥
 इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राऽप्रवृत्तिजाः^१ ।
 निदानलक्षणैरूर्ध्वं वक्ष्यन्तेऽतिप्रवृत्तिजाः ॥ ४० ॥

दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 ‘प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश, पित्ततः ।
 षट्, चत्वारोऽनिलात्, ऋतेषां मेदोमूत्रकफावहम् ॥ १ ॥

१. अल्पा प्रवृत्तिरप्रवृत्तिः, मूत्रस्याऽप्रवृत्तिर्जायते यैः, रोगैस्ते मूत्राऽप्रवृत्तिजाः । इति ।

२. अथ मूत्राघातादिनिरूपणानन्तरं यतः प्रमेहो मूत्र-विकार-
 लिङ्गकः-अतस्तन्निदानं व्याख्यास्यामः ।

अन्नपानक्रियाजातं^१ यत्प्रायस्तत्प्रवर्तकम् ।

^२स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम् ॥ २ ॥

नवधान्यसुरानूप-मांसेक्षुगुडगोरसम् ।

एकस्थानासनरतिः शयनं विधिवर्जितम् ॥ ३ ॥

बस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान् ^३दूषितः कफः ।

दूषयित्वा वपुःक्लेद-स्वेदमेदोरसामिषम् ॥ ४ ॥

^४पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम् ।

धातून् बस्तिमुपानीय तत्क्षयंऽपि च मारुतः^५ ॥ ५ ॥

साध्य-याप्य-परित्याज्या मेहास्तेनैव^६ तद्भवाः ।

१. यद्—अन्नपान-क्रिया (चेष्टा) जातं, स्वाद्वम्लेत्यादिनोक्तं मेदो-मूत्र-कफाऽऽवहं, प्रायः तदन्नपानक्रियाजातं, तेषां = प्रमेहाणां प्रवर्तकं = कारणम्—इत्यन्वयः ।

२. तदेवान्नपानं दर्शयति—स्वाद्वम्लेत्यादिना ।

३. पूर्वोक्तैः कारणैः, दूषितः कफः, ।वस्ति = मूत्राशयमाश्रित्य वपुःक्लेदञ्च, स्वेदञ्च, मेदञ्च, रसञ्च, आमिषं = मांसं च, दूषयित्वा, प्रमेहान् कुरुते ।

४. पित्तं-कर्तृ-कफादौ-कफक्लेदस्वेदमेदोरूपे, सौम्यधातौ, क्षीणे सति मूत्र-संश्रयं = मूत्राशयाश्रितं रक्तमपि = रुधिरमपि दूषयित्वा-अपिशब्दात् पूर्वोक्तान्-दूष्यान्-दूषयित्वा प्रमेहान् कुरुते ।

५. मारुतः कर्त्ता—तस्य पित्तस्य क्षये, अपिशब्दात् कफादीनां क्षये सति धातून्-वसा-मज्ज-लसीकौजोरूपान् बस्ति = मूत्राशयमुपानीय चकारात् दूषयित्वा प्रमेहान् कुरुते ।

६. तेनैव = पूर्वोक्तेन दूष्यतारतम्येन हेतुना तेभ्यः कफ-पित्त-

समाऽसमक्रियतया महात्ययतयाऽपि च^१ ॥ ६ ॥

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

^२दोषदृष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ७ ॥

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ।

कफजान् मेहान् लक्षयति—

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥ ८ ॥

‘मेहत्युदकमेहेन’ किञ्चिच्चाविलपिच्छिलम् ।

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं ‘चेक्षुमेहतः’ ॥ ९ ॥

सान्द्रीभवेत्पर्युषितं^३ ‘सान्द्रमेही’ प्रमेहति ।

‘सुरामेही’ सुरातुल्यमुपर्यच्छमघो घनम् ॥ १० ॥

संहृष्टरोमा ‘पिष्टेन’ पिष्टवद्बहुलं सितम् ।

शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा ‘शुक्रमेही’ प्रमेहति ॥ ११ ॥

मूर्त्ताणून् ‘सिकतामेही’ सिकतारूपिणो मलान् ।

वातेभ्यो भवाः प्रमेहाः क्रमात् साध्याः कफजाः, याप्याः पित्तजाः,
त्याज्याः पवनजाः ।

१. अपि च—समक्रियतया, असमक्रियतया, महात्ययतया, च
साध्याः, याप्याः, परित्याज्याः = असाध्या बोध्याः ।

२. कफः सपित्तः पवनश्च दोषाः, भेदोऽस्रशुक्राम्बु-वसा-
लसीकाः । मज्जा रसौजः पिशितञ्च दृष्याः, प्रमेहिणां विंशतिरेव
मेहाः । च० चि० ६।१।

३. यत् सान्द्रमेही प्रमेहति, तत्पर्युषितं सत्, सान्द्रीभवेदित्य-
न्वयः, (सान्द्रीभवेत्पर्युषितं मूत्रं यत्सान्द्रमेहिनः) इति पठितु-
मुचितम् ।

‘शीतमेही’ सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ १२ ॥

शनैःशनैः ‘शनैर्मेही’ मन्दं मन्दं प्रमेहति ।

लालातन्तुयुतं मूत्रं ‘लालामेहेन’ पिच्छिलम् ॥ १३ ॥

पित्तजानाह—

गन्धवर्णरसस्पर्शैः ‘क्षारेण’ क्षारतोयवत् ।

‘नीलमेहेन’ नीलाभं० ‘कालमेही’ मषीनिभम् ॥ १४ ॥

‘हारिद्रमेही’ कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ।

विस्त्रं ‘माज्जिष्टमेहेन’ मज्जिष्टासलिलोपमम् ॥ १५ ॥

विस्त्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं ‘रक्तमेहतः’ ।

वातजानाह—

‘वसामेही’ वसामिश्रं वसां वा मूत्रयेन्मुहुः ॥ १६ ॥

मज्जानं मज्जमिश्रं वा ‘मज्जमेही’ मुहुर्मुहुः ।

हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ १७ ॥

सलसीकं विवद्वं च ‘हस्तिमेही’ प्रमेहति ।

‘मधुमेही’ मधुसमम् ० जायते ^१स किल द्विधा ॥ १८ ॥

क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषाऽऽवृतपथेऽथवा ।

आवृतो दोषलिङ्गानि ^२सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥

क्षीणः क्षणास्क्षणात् पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ।

कालेनोपेक्षिताः सर्वे यद्यान्ति मधुमेहताम् ॥ २० ॥

१. सः=मधुमेहः, वायौ, धातुक्षयात् क्रुद्धे, अथवा दोषैरावृतपथे सति द्विधा भवति ।

२. सः=आवृतमार्गो वायुः, लिङ्गानि=वातावरकदोषलक्षणानि-वातशोणितनिदानोक्तानि ।

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विव मेहति ।

१सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २१ ॥

उपद्रवानाह—

अविपाकोऽरुचिश्लर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ।

‘उपद्रवाः’ प्रजायन्ते मेहानां ‘कफजन्मनाम्’ ॥ २२ ॥

बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।

दाहस्तृष्णाऽम्लको मूर्च्छा विड्भेदः ‘पित्तजन्मनाम्’ ॥ २३ ॥

‘वातिकाना’मुदावर्त-कण्ठहृद्ग्रहलोलताः ।

शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २४ ॥

प्रमेहिणां पिटिका ।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।

मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ २५ ॥

विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।

सन्धिर्मर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २६ ॥

अन्तोन्नता मध्यनिम्ना श्यावा क्लेदरूजाऽन्विता ।

शरावमानसंस्थाना पिटिका स्याच्छराविका ॥ २७ ॥

अवगाढाऽतिनिस्तोदा महावास्तुपरिग्रहा ।

श्लक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिटिका ‘कच्छपी’ मता ॥ २८ ॥

१. सर्वे = विंशति-विधाः प्रमेहा-इति पक्षनिर्देशः, मधुमेहाख्याः—इति साध्यनिर्देशः, तत्र उपेक्षितत्वे सति सर्वेषां कालान्तरे मधुमेहत्वेन परिणमनात्, सर्वेषु प्रायो मधुरमेहवत्त्वात्, शरीरस्य मधुरस्वभावाच्चेति हेतुसमुच्चयेन सर्वेषां मधुमेहाख्याः साध्यन्ते ‘मधुमेहिनो वा’ च० चि० ६।५७।

स्तब्धा सिराजालवती क्षिग्धस्त्रावा महाशया ।
 रुजानिस्तोदबहुला सूक्ष्मच्छिद्रा च 'जालिनी' ॥ २९ ॥
 अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।
 महती पिटिका नीला विनता 'विनता' स्मृता ॥ ३० ॥
 दहती त्वचमुस्थाने भृशं कष्टा विसर्पिणी ।
 रक्तकृष्णातितृट्स्फोटदाहमोहज्वरा 'ऽलजी' ॥ ३१ ॥
 मानसंस्थानयोस्तुल्या मसूरेण 'मसूरिका' ।
 सर्षपामानसंस्थाना क्षिप्रपाका महारुजा ॥ ३२ ॥
 'सर्षपा' सर्षपातुल्य-पिटिकापरिवारिता ।
 'पुत्रिणी' महती भूरि-सुसूक्ष्मपिटिकावृता ॥ ३३ ॥
 विदारीकन्दवद् वृत्ता कठिना च 'विदारिका' ।
 विद्रधिर्वच्यतेऽन्यत्र ऋतत्राद्यं पिटिकान्नयम् ॥ ३४ ॥
 पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः ।
 सद्वाः पित्तोल्बणास्त्वन्याः सम्भवन्त्यल्पमेदसः ॥ ३५ ॥
 तासु मेहवशाच्च स्याद्दोषोद्रेको यथायथम् ।
 प्रमेहेण विनाऽप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ।
 तावच्च नोपलक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ॥ ३६ ॥
 हारिद्रवर्णं रक्तं वा मेहप्राग्रूपवर्जितम् ।
 यो मूत्रयेन्न तं मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः ॥ ३७ ॥
 स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे
 शय्यासनस्वप्नसुखाभिषङ्गः ।

१. इदं पञ्चद्वयम्-किञ्चिदेव परिवर्तितम्—च० चि० अ०

हन्नेग्रजिह्वाश्रवणोपदेहो

घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ ३८ ॥

शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो

माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।

भविष्यतो मेहगणस्य रूपं

मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ ३९ ॥

^१दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं

मधूपमं स्याद् द्विविधो विचारः ।

सन्तर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात्

क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ४० ॥

^२सपूर्वरूपाः कफपित्तेहाः

क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ।

साध्या न ते, पित्तकृतास्तु याप्याः

साध्यास्तु, मेदो यदि नातिदुष्टम् ॥ ४१ ॥

इति निदानस्थाने दशमोऽध्यायः ।



१. अत्र तु-पादव्यत्ययमात्रम् च० चि० ६।५५।

२. साध्य-याप्य-परित्याज्या-इत्यस्याऽपवादमाह-सपूर्वेति,
च० चि० ६।५६। यदि मेदो नातिदुष्टं-तर्हि सर्वे मेहाः साध्या-
इति भावः, अत एव-'सिद्धानि तैलानि घृतानि चैव, देवानि
मेहेष्वनिलात्मकेषु' इति च० चि० ६।३४।

एकादशाऽध्यायः ।

१अथाऽतो विद्रधि-वृद्धि-गुल्म-निदानं व्याख्यास्यामः
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ विद्रधिनिदानम् ।

भुक्तैः पर्युषितात्युष्ण-रूक्षशुष्कविदाहिभिः ।
जिह्वाशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः ॥ १ ॥
दुष्टत्वङ्मांसमेदोऽस्थि-स्नायवसृक्कण्डराश्रयः ।
यः शोफो बहिरन्तर्वा महामूलो महारूजः ॥ २ ॥
वृत्तः स्यादायतो यो वा स्मृतः षोढा स विद्रधिः ।
दोषैः पृथक्समुदितैः शोणितेन क्षतेन च ॥ ३ ॥
बाह्योऽत्र तत्र तत्राङ्गे दारुणो ग्रथितोन्नतः ।
आन्तरो दारुणतरो गम्भीरो गुल्मवद्धनः ॥ ४ ॥
वल्मीकवत्समुच्छ्रायी शीघ्रघात्यग्निशस्त्रवत् ।
नाभिवस्तिथकृष्ण्लीह-क्लोमहृत्कुक्षिवङ्क्षणे ॥ ५ ॥
स्याद्वृक्कयोरपाने च वातात्तत्राऽतितीव्ररूक् ।
श्यावारुणश्चिरोत्थान-पाको विषमसंस्थितिः ॥ ६ ॥
व्यधच्छेदभ्रमानाह-स्यन्दसर्पणशब्दवान् ।
रक्तताम्रासितः पित्तात्तृप्मोहज्वरदाहवान् ॥ ७ ॥

१. अथ = प्रमेहनिरूपणानन्तरं यतस्तत्र विद्रधिर्वक्ष्यतेऽन्यत्र-
इति प्रतिशतम्-अतस्तन्निदानं प्राप्तावसरं तत्सादृश्याद् वृद्धिगु-
ल्मयोश्च ।

क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च० पाण्डुः कण्डूयुतः कफात् ।
 सोऽस्त्वलेशशीतकस्तम्भ-जम्भारोचकगौरवः ॥ ८ ॥
 चिरोत्थानविदाहश्च० सङ्कीर्णः सस्निपाततः ।
 सामर्थ्याच्चाऽत्र विभजेद्वाह्याभ्यन्तरलक्षणम् ॥ ९ ॥
 कृष्णस्फोटानृतः श्यावस्तीव्रदाहरूजाज्वरः ।
 पित्तलिङ्गोऽसृजा बाह्यः स्त्रीणामेव तथान्तरः ॥ १० ॥
 शस्त्राद्यैरभिघातेन क्षते वाऽपथ्यकारिणः ।
 क्षतोष्मा वायुविक्षिप्तः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥ ११ ॥
 पित्तासृग्लक्षणं कुर्याद्विद्रधिं भूर्युपद्रवम् ।
 तेषूपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः ॥ १२ ॥
 नाभ्यां हिध्मा भवेद्वस्तौ मूत्रं कृच्छ्रेण पृति च ।
 श्वासो यकृति रोधस्तु प्लीह्युच्छ्वासस्य तृट् पुनः ॥ १३ ॥
 गलग्रहश्च क्लोमि स्यात्सर्वाङ्गप्रग्रहो हृदि ।
 प्रमोहस्तमकः कासो हृदये घट्टनं व्यथा ॥ १४ ॥
 कुक्षिपार्श्वान्तरांसार्तिः कुक्षावाटोपजन्म च ।
 सक्थनोर्ग्रहो वङ्गणयोर्वृक्कयोः कटिपृष्ठयोः ॥ १५ ॥
 पार्श्वयोश्च व्यथा पायौ पवनस्य निरोधनम् ।
 आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोफवदादिशेत् ॥ १६ ॥
 नाभेरूर्ध्वं मुखात्पक्वाः प्रस्रवन्त्यधरे गुदात् ।
 उभाभ्यां नाभिजो० विद्याहोषं क्लेदाच्च विद्रधौ ॥ १७ ॥
 यथास्वं व्रणवत् ० तत्र विवर्ज्यः सस्निपातजः ।
 पक्वो हृन्नाभिबस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव वा ॥ १८ ॥
 पक्वश्चान्तः स्रवन्वक्रात् स्त्रीणस्योपद्रवान्वितः ।

स्तनविद्रधिमाह—

एवमेव स्तनसिरा विवृताः प्राप्य योषिताम् ॥ १९ ॥

सूतानां गर्भिणीनां वा सम्भवेच्छ्वयधुर्घनः ।

स्तने सदुग्धेऽदुग्धे वा बाह्यविद्रधिलक्षणः ॥ २० ॥

नाडीनां सूक्ष्मवक्रत्वात्कन्यानां तु^१ न जायते ।

अथ वृद्धिवर्ध्मनिदानम् ।

कुट्टो रुद्धगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन् ॥ २१ ॥

मुष्कौ वङ्क्ष्णतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ।

प्रपीड्य धमनीवृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥ २२ ॥

दोषाऽस्त्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः ।

मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्वेतुभेदस्तु केवलम् ॥ २३ ॥

कातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरूक् ।

पक्षोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्वाहोष्मपाकवान् ॥ २४ ॥

कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्ठमान् कठिनोऽक्षरूक् ।

कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गश्च रक्ततः ॥ २५ ॥

कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ।

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ॥ २६ ॥

अम्भोमिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरूक् मृदुः ।

मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च वलयं फलकोशयोः ॥ २७ ॥

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ।

^१धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्त्तनैः ॥ २८ ॥

१. कन्याऽत्राऽविवृतस्तनसिरा, जातोपयमा-अजातोपयमा वा ।

२. 'न वेगान् धारयेद्दीमान्', 'न वेगान् ईरयेद्दलान्' इत्युक्तेः ।

क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ।
 पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ।
 कुर्याद्वृद्धरुणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्रयथुं तदा ॥ २९ ॥

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि-

माध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः ।

प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान् प्रयाति

प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ३० ॥

अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ।

अथ गुल्मरोगनिदानम् ।

रूक्षकृष्णारुणसिरातन्तुजालगवाक्षितः ॥ ३१ ॥
 गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संस्पृष्टैर्निचयं गतैः ।
 आर्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥ ३२ ॥
 ज्वरच्छर्द्यतिसाराद्यैर्वमनाद्यैश्च कर्मभिः ।
 कर्शितो वातलान्यत्ति शीतं वाऽम्बु बुभुक्षितः ॥ ३३ ॥
 यः पिबत्यनु चाक्षानि लङ्घनं प्लवनादिकम् ।
 सेवते देहसङ्क्षोभि च्छर्दिं वा समुदीरयेत् ॥ ३४ ॥
 अनुदीर्णान्-उदीर्णान्वा वातादीन् विमुञ्चति ।
 स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोधनं वा निषेवते ॥ ३५ ॥
 शुद्धो वाऽऽशुविदाहीनि भजते स्यन्दनानि वा ।
 वातोत्खणास्तस्य मलाः पृथक् क्रुद्धा द्विशोऽथवा ॥ ३६ ॥
 सर्वे वा रसयुक्ता वा महास्रोतोऽनुशायिनः ।
 ऊर्ध्वाधोमार्गमावृत्य कुर्वते शूलपूर्वकम् ॥ ३७ ॥
 स्पर्शोपलभ्यं गुल्ममाख्यमुत्प्लुतं ग्रन्थिरूपिणम् ।

कर्शनात्कफविट्पित्तैर्मार्गस्यावरणेन वा ॥ ३८ ॥
 वायुः कृताशयः कोष्ठे रौच्यात्काठिन्यमागतः ।
 स्वतन्त्रः स्वाश्रये दुष्टः परतन्त्रः पराश्रये ॥ ३९ ॥
 पिण्डितत्वादमूर्त्तोऽपि मूर्त्तत्वमिव संश्रितः ।
 'गुल्म' इत्युच्यते वस्ति-नाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः ॥ ४० ॥
 वातान्मन्याशिरःशूलं ज्वरप्लीहान्त्रकूजनम् ।
 व्यधः सूच्येव विट्सङ्गः कृच्छ्रादुच्छ्वसनं मुहुः ॥ ४१ ॥
 स्तम्भो गात्रे मुखे शोषः काश्यं विषमवह्निता ।
 रुक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च ॥ ४२ ॥
 अनिरूपितसंस्थान-स्थानवृद्धिच्यव्यथः ।
 पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति तुद्यते ॥ ४३ ॥
 पित्ताद्वाहोऽम्लको मूर्च्छाविड्भेदस्वेदतृड्ज्वराः ।
 हारिद्रत्वं त्वगाद्येषु गुल्मश्च स्पर्शनासहः ॥ ४४ ॥
 दूयते, दीप्यते सोष्मा स्वस्थानं दहतीव च ।
 कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिशिरज्वरः ॥ ४५ ॥
 पीनसालस्यहृल्लास-कासशुक्लत्वगादिताः ।
 गुल्मोऽवगाढः कठिनो गुरुः सुप्तः स्थिरोऽल्परुक् ॥ ४६ ॥
 स्वदोषस्थानधामानः स्वे स्वे काले च रुक्कुराः ।
 प्रायःॐ त्रयस्तु द्वन्द्वोत्था गुल्माः संस्पृष्टलक्षणाः ॥ ४७ ॥
 सर्वजस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः ।
 सोऽसाध्योॐ रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते ॥ ४८ ॥
 १ श्रुतौ वा नवसूता वा यदि वा योनिरोगिणी २ ।

१. श्रुतौ = गर्भप्रदणयोग्यकाले । २. योनिरोगिणी = प्रदरादिमती ।

सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः ॥ ४९ ॥
 निरुणद्धयार्तं योन्यां^१ प्रतिमासमवस्थितम् ।
 कुक्षिं करोति तद्वर्भ-लिङ्गमाविष्करोति च ॥ ५० ॥
 हृल्लासदौहदस्तन्य-दर्शनं क्षामतादिकम् ।
 क्रमेण वायुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत् ॥ ५१ ॥
 शोणितं कुरुते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजान् ।
 रुक्स्तम्भदाहातीसार-तृड्ज्वरादीनुपद्रवान् ॥ ५२ ॥
 गर्भाशये च सुतरां शूलं दुष्टासृगाश्रये ।
 योन्याश्च स्त्रावदौर्गन्ध्यतोदस्यन्दनवेदनाः ॥ ५३ ॥
 न चाङ्गैर्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान् ।
^२पिण्डीभूतः स एवास्याः कदाचित्स्पन्दते चिरात् ॥ ५४ ॥
 न चास्या वर्धते कुक्षिर्गुल्म एव तु वर्धते ।
 स्वदोषसंश्रयो गुल्मः सर्वो भवति तेन सः ॥ ५५ ॥
 पाकं चिरेण भजते नैव वा, विद्रधिः पुनः ।
 पच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयत्वतः ॥ ५६ ॥
 अतः शीघ्रविदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते ।
 गुल्मेऽन्तराश्रये बस्तिकुक्षिहृत्प्लीहवेदनाः ॥ ५७ ॥
 अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम् ।
 अतो विपर्ययो बाह्ये कोष्ठाङ्गेषु तु नातिरूक् ॥ ५८ ॥
 वैवर्ण्यमवकाशस्य बहिरुन्नतताऽधिकम् ।

१. योन्यां = गर्भाशये । २. 'यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैरिति'
 यरकः । इति ।

आनाहलक्षणम्—

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम् ॥ ५९ ॥
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन 'तमानाहं' प्रचक्षते ।

अष्टीला-प्रत्यष्टीले—

घनोऽष्टीलोपमो ग्रन्थिरष्टीलोर्ध्वं समुन्नतः ॥ ६० ॥
आनाहलिङ्गस्तिर्यक्तु प्रत्यष्टीला तदाकृतिः ।

तूनीप्रतून्यौ—

पक्काशयाद् गुदोपस्थं वायुस्तीव्ररुजः प्रयान् ।
तूनी, प्रतूनी तु भवेत्स एवातो विपर्यये ॥ ६१ ॥

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्ध-

तृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।

आटोपमाध्मनमपक्तिशक्ति-

मासञ्जगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ६२ ॥

इति निदानस्थाने एकादशोऽध्यायः ।



द्वादशोऽध्यायः ।

१ अथाऽत उदरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ, सुतरामुदराणि तु ।

अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥ १ ॥

१. अथ = आनाद्विनिरूपणेनोदरस्मृत्यन्तरमत ऊर्ध्वमुदरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

ऊर्ध्वाधो धातवो रुद्ध्वा वाहिनीरम्बुवाहिनीः ।
 प्राणान्ग्यपानान् सन्दूष्य कुर्युस्त्वङ्मांससन्धिगाः ॥ २ ॥
 आध्माप्य कुक्षिमुदरम् , अष्टधा तच्च भिद्यते ।
 पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीह-बद्ध-क्षतोदकैः ॥ ३ ॥
 तेनार्त्ताः शुष्कताल्वोष्ठाः शूनपादकरोदराः ।
 नष्टचेष्टाबलाहाराः कृशाः प्रध्मातकुक्षयः ॥ ४ ॥
 स्युः प्रेतरूपाः पुरुषाःॐ भाविनस्तस्य लक्षणम् ।
 क्षुब्धाशोऽन्नं चिरात्सर्वं सविदाहं च पच्यते ॥ ५ ॥
 जीर्णाजीर्णं न जानाति सौहित्यं सहते न च ।
 क्षीयते बलतः शश्चच्छ्वसित्यल्पेऽपि चेष्टिते ॥ ६ ॥
 वृद्धिर्विशोऽप्रवृत्तिश्च किञ्चिच्छ्रोफश्च पादयोः ।
 ख्वस्ति सन्धौ ततता लघ्वल्पाभोजनैरपि ॥ ७ ॥
 राजीजन्म वलीनाशो जठरेॐ जठरेषु तु ।
 सर्वेषु तन्द्रा सदनं मलसङ्गोऽल्पवह्निता ॥ ८ ॥
 दाहः श्वयथुराध्मानमन्ते सलिलसम्भवः ।
 सर्वं त्वतोयमरुणमशोफं नातिभारिकम् ॥ ९ ॥
 १ गवाक्षितं सिराजालैः सदा गुडगुडायते ।
 नाभिमन्त्रं च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥ १० ॥
 मारुतो हृत्कटीनाभिपायुवङ्गुणवेदनः ।
 सशब्दो निश्चरेद्वायुर्विड्बन्धो मूत्रमल्पकम् ॥ ११ ॥
 नातिमन्दोऽनलो लौल्यं न च स्याद्विरसं सुखम् ।
 तत्र 'वातोदरे' शोफः पाणिपान्मुष्ककुक्षिषु ॥ १२ ॥

१. सजातगवाक्षम् , निरन्तरमाक्रान्तमित्यर्थः

कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक् पर्वभेदनम् ।
 शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसङ्ग्रहः ॥ १३ ॥
 श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिर्हासवत् ।
 सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णसिराततम् ॥ १४ ॥
 आध्मातद्वतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
 वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ १५ ॥
 'पित्तोदरे' ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता ।
 भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादाबुदरं हरित् ॥ १६ ॥
 पीतताम्रसिरानङ्गं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।
 धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १७ ॥
 'श्लेष्मोदरे'ऽङ्गसदनं स्वापश्वयथुगौरवम् ।
 निद्रोत्कलेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १८ ॥
 उदरं स्तिमितं श्लेष्मणं शुक्लराजीततं महत् ।
 चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १९ ॥
 त्रिदोषकोपनैस्तेस्तैः^१ स्त्रीदत्तैश्च रजोमलैः ।
 गरदूषीविषाद्यैश्च सरक्ताः सञ्चिता मलाः ॥ २० ॥
 कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाः शोषमूर्च्छाभ्रमान्वितम् ।
 कुर्यु'खिलिङ्गमुदरं'क्षीप्रपाकं सुदारुणम् ॥ २१ ॥
 बाधते तच्च सुतरां शीतवाताभ्रदर्शने ।
 अत्याशितस्य सङ्क्षोभाद्यानयानादिचेष्टितैः ॥ २२ ॥
 अतिव्यवायकर्माध्वमनम्याधिकर्शनैः ।
 वामपार्श्वश्रितः प्लीहा च्युतः स्थानाद्विवर्धते ॥ २३ ॥

१. अपरक्ताः स्त्रियो यदि गूढं ददयुस्तैः ।

शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत् ।
 सोऽष्टीलेवातिकठिनः प्राक्ततः कूर्मपृष्ठवत् ॥ २४ ॥
 क्रमेण वर्धमानश्च कुक्ष्याबुदरमावहेत् ।
 श्वासकासपिपासास्य-वैरस्याध्मानरुज्वरैः ॥ २५ ॥
 पाण्डुत्वच्छर्दिमूच्छर्त्ति-दाहमोहैश्च संयुतम् ।
 अरुणाभं विवर्णं वा नीलहारिद्रराजिमत् ॥ २६ ॥
 उदावर्तरुगानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
 गौरवारुचिकाठिन्यैविद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २७ ॥
 प्लीहवद्वक्षिणात्पार्श्वात् कुर्याद्यकृदपि च्युतम् ।
 पचमवालैः सहान्नेन भुक्तैर्बद्धायने गुदे ॥ २८ ॥
 दुर्नामभिरुदावर्तैरन्यैर्वान्त्रोपलेपिभिः ।
 वर्चःपित्तकफान् रुद्ध्वा करोति कुपितोऽनिलः ॥ २९ ॥
 अपानो जठरं, तेन स्युर्दाहज्वरतृत्तवाः ।
 कासश्वासोरुसदनं शिरोहन्नाभिपायुरुक् ॥ ३० ॥
 मलसङ्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम् ।
 स्थिरं नीलारुणसिराराजिवद्धेमराजि वा ॥ ३१ ॥
 नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ।
 अस्थ्यादिशल्यैः सान्नेश्चेद्भुक्तैरस्यशनेन वा ॥ ३२ ॥
 भिद्यते पच्यते वाऽन्त्रं तच्छिद्रैश्च स्रवन्वहिः ।
 आम एव गुदादेति ततोऽल्पारुपं स विडूषः ॥ ३३ ॥
 तुल्यः कुणपगन्धेन पिच्छिलः पीतलोहितः ।
 शेषश्चापूर्य जठरं जठरं घोरमावहेत् ॥ ३४ ॥
 वर्धते तदधो नाभेराशु चैति 'जलात्मताम्' ।

उद्रिक्तदोषरूपं च व्याप्तं च श्वासतृड्भ्रमैः ॥ ३५ ॥
 'छिद्रोदरमि'दं प्राहुः परिस्त्रावीति चापरे ।
 प्रवृत्तस्नेहपानादेः सहसाऽऽमाम्बुपायिनः ॥ ३६ ॥
 अत्यम्बुपानान्मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य वा ।
 रुद्ध्वाऽम्बुमार्गाननिलः कफश्च जलमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥
 वर्धयेतां तदेवाम्बु तस्स्थानादुदराश्रितौ ।
 ततः स्यादुदरं तृष्णागुदस्रुतिरुजायुतम् ॥ ३८ ॥
 कासश्वासारुचियुतं नानावर्णसिराततम् ।
 तोयपूर्णद्वितिस्पर्शशब्दप्रक्षोभवेपथु ॥ ३९ ॥
 'दकोदरं' महत्सिग्धं स्थिरमावृत्तनाभि तत् ।
 उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः ॥ ४० ॥
 पाकाद् द्रवा द्रवीकुर्युः सन्धिस्त्रोतोमुखान्यपि ।
 स्वेदश्च बाह्यस्त्रोतःसु विहतस्तिर्यगास्थितः ॥ ४१ ॥
 तदेवोदकमाध्माप्य पिच्छां कुर्यात्तदा भवेत् ।
 गुरुदरं स्थिरं वृत्तमाहतं च न शब्दवत् ॥ ४२ ॥
 मृदु व्यपेतराजीकं नाभ्यां स्पृष्टं च सर्पति ।
 तदनूदकजन्मास्मिन्कुचिबृद्धिस्ततोऽधिकम् ॥ ४३ ॥
 सिरान्तर्धानमुदकजटरोक्तं च लक्षणम् ।
 घातपित्तकफप्लीह-सञ्चिपातोदकोदरम् ॥ ४४ ॥
 कृच्छ्रं यथोत्तरम् ऋपक्षात्परं प्रायोऽपरे^१हतः ।
 सर्वं च जातसलिलं^२ रिष्टोक्तोपद्रवान्वितम् ॥ ४५ ॥

१. अपरे = बद्धक्षतोदरे प्रायः-हतः = मारयतः ।

२. शरीरस्थाने पञ्चमाध्याये द्रष्टव्यम् ।

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छृतमं मतम् ।

बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ ४६ ॥

अथ निदानस्थाने द्वादशोऽध्यायः ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

^१अथातः पाण्डुरोगशोफविसर्पनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ पाण्डुरोगनिदानम् ।

पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः ।

तत्रानिलेन बलिना क्षिप्तं पित्तं हृदि स्थितम् ॥ १ ॥

धमनीर्दश सम्प्राप्य व्याप्नुवत्सकलां तनुम् ।

श्लेष्मस्वग्रक्तमांसानि प्रद्रूष्यान्तरमाश्रितम् ॥ २ ॥

त्वङ्मांसयोस्तत्कुरुते त्वचि वर्णान् पृथग्विधान् ।

पाण्डुहारिद्रहरितान् पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम् ॥ ३ ॥

यतोऽतः पाण्डुरित्युक्तः स रोगः ऋतेन गौरवम् ।

धातूनां स्याच्च शैथिल्यमोजसश्च गुणक्षयः ॥ ४ ॥

ततोऽरूपरक्तमेदस्को निःसारः स्याच्छ्लथेन्द्रियः ।

मृद्यमानैरिवाङ्गैर्ना द्रवता हृदयेन च ॥ ५ ॥

शूनाक्षिकूटः सदनः कोपतः घृवनोऽरूपवाक् ।

अन्नद्विट् शिशिरद्वेषी शीर्णरोमा हतानलः ॥ ६ ॥

१. दोषसङ्घातजत्वं पूर्वापररोगाणां सङ्गतिः ।

सन्नसविथर्ज्वरी श्वासी कर्णक्ष्वेडी भ्रमी भ्रमी ।

१ स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात् ॥ ७ ॥

प्राग्भूपमस्य हृदयस्पन्दनं रूक्षता त्वचि ।

अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पवह्निता ॥ ८ ॥

सादः श्रमः ॥ 'अनिला' तत्र गात्रस्कतोदकम्पनम् ।

कृष्णरूक्षारुणसिरानखविण्मूत्रनेत्रता ॥ ९ ॥

शोफाऽऽनाहाऽऽस्यवैरस्यविट्शोषाः पार्श्वमूर्धरूक् ।

'पित्ता' द्रवितपीताभसिरादित्वं ज्वरस्तमः ॥ १० ॥

तृट्स्वेदमूर्च्छाशीतेच्छा दौर्गन्ध्यं कटुवक्रता ।

वर्चोभेदोऽम्लको दाहः ॥ कफाच्छुक्लसिरादिता ॥ ११ ॥

तन्द्रा लवणवक्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः ।

कासश्छर्दिश्च ॥ निचयान्मिश्रलिङ्गोऽतिदुःसहः ॥ १२ ॥

'मृत्' कषायाऽनिलं पित्तमूषरा मधुरा कफम् ।

दूषयित्वा, रसादींश्च रौक्ष्याद् भुक्तं विरुक्ष्य च ॥ १३ ॥

स्रोतांस्यपक्वैवापूर्य कुर्याद्द्रुद्ध्वा च पूर्ववत् ।

पाण्डुरोगं, ततः शूननाभिपादास्यमेहनः ॥ १४ ॥

पुरीषं कृमिमन्मुञ्चेद्भिन्नं सासृक्कफं नरः ।

यः पाण्डुरोगी सेवेत पित्तलं तस्य 'कामलाम्' ॥ १५ ॥

कोष्ठशाखाश्रयं पित्तं दग्ध्वाऽसृङ्घ्रांसमावहेत् ।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वङ्नखवक्रशकृत्तया ॥ १६ ॥

दाहाविपाकतृष्णावान् भेकाभो दुर्बलेन्द्रियः ।

१. स पाण्डुरोगः वात-पित्त-कफ-सन्निपात-मृदुसंक्षणजत्वेन पञ्चधा ।

भवेत्पित्तोत्त्वणस्यासौ पाण्डुरोगादृतेऽपि च ॥ १७ ॥
 उपेक्षया च शोफाद्या सा कृच्छ्रा 'कुम्भकामला' ।
 हरितश्यावपीतत्वं पाण्डुरोगे यदा भवेत् ॥ १८ ॥
 वातपित्ताद् भ्रमस्तृष्णा स्त्रीष्वहर्षो मृदुर्ज्वरः ।
 तन्द्रा बलानलभ्रंशो लोढरं^१ तं 'हलीमकम्' ॥ १९ ॥
 अलसं चेति शंसन्ति ॥ तेषां पूर्वमुपद्रवाः ।

अथ शोफनिदानम् ।

शोफप्रधानाः कथिताः, स एवातो निगद्यते ॥ २० ॥
 पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःसिराः ।
 नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्याच्चङ्मांससंश्रयम् ॥ २१ ॥
 उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ।
 सर्वं^२ हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् ॥ २२ ॥
 दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ।
 द्विधा वा निजमागन्तुं सर्वाङ्गैकाङ्गजं च तम् ॥ २३ ॥
 पृथून्नतग्रथितता-विशेषैश्च त्रिधा विदुः ।
 सामान्यहेतुः शोफानां, दोषजानां विशेषतः ॥ २४ ॥
 व्याधिकर्मोपवासादि-क्षीणस्य भजतो द्रुतम् ।
 अतिमात्रमथान्यस्य गुर्वम्लस्निग्धशीतलम् ॥ २५ ॥
 लवणक्षारतीक्ष्णोष्णं शाकाम्बु स्वप्नजागरम् ।
 मृद्ग्राभ्यमांसवल्लूरमजीर्णश्रममैथुनम् ॥ २६ ॥

१. तं हलीमकं लोढरम्, अलसञ्चेति शंसन्ति मुनयः स्व-
 सिद्धिताम् ।

पदातेर्मार्गगमनं यानेन क्षोभिणाऽपि वा ।
 श्वासकासातिसाराशो-जठरप्रदरज्वराः ॥ २७ ॥
 विसूच्यलसकच्छर्दिगर्भवीसर्पपाण्डुताः ।
 अन्ये च मिथ्योपक्रान्तास्तैर्दोषा वक्षसि स्थिताः ॥ २८ ॥
 ऊर्ध्वं शोफमधोवस्तौ मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः ।
 सर्वाङ्गगाः सर्वगतं प्रत्यङ्गेषु तदाश्रयाः ॥ २९ ॥
 तत्पूवरूपं दवधुः सिरायामोऽङ्गगौरवम् ।
 वाताच्छोफश्चलो रूक्षः खररोमारुणासितः ॥ ३० ॥
 सङ्कोचस्पन्दहर्षार्तितोदभेदप्रसुप्तिमान् ।
 क्षिप्रोत्थानशमः शीघ्रमुन्नमेत्पीडितस्तनुः ॥ ३१ ॥
 स्निग्धोष्णमर्दनैः शाम्येद्वात्रावल्पो दिवा महान् ।
 त्वक् च सर्षपलिप्तेव तस्मिंश्चिमिचिमायते ॥ ३२ ॥
 पीतरक्तासिताभासः पित्तादाताग्नरोन्नकृत् ।
 शीघ्रानुसारप्रशमो-मध्ये प्राग्जायते तनुः ॥ ३३ ॥
 सतृड्दाहज्वरस्वेद-द्रवक्लेदमदभ्रमः ।
 शीताभिलाषी विड्भेदी गन्धी स्पर्शासहो मृदुः ॥ ३४ ॥
 कण्डूमान् पाण्डुरोमत्वक् , कठिनः शीतलो गुरुः ।
 स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः स्स्यानो निद्राच्छर्द्यभिसादकृत् ॥
 आक्रान्तो नोन्नमेत्कृच्छ्र-शमजन्मा निशाबलः ।
 स्रवेन्नासृक्चिरात्पिच्छां कुशशस्त्रादिविक्षतः ॥ ३६ ॥
 स्पर्शोष्णकाङ्क्षी च कफात् ऋथस्त्वं द्वन्द्वजास्त्रयः ।
 सङ्कराद्धेतुलिङ्गानाम् ऋनिचयान्निचयात्मकः ॥ ३७ ॥
 अभिघातेन शस्त्रादि-च्छेदभेदक्षतादिभिः ।

हिमानिलोदध्यनिलैर्भस्मात्-कपिकच्छुजैः ॥ ३८ ॥
 रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान् ।
 भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ ३९ ॥
 विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ।
 दंष्ट्रादन्तनखापातादविषप्राणिनामपि ॥ ४० ॥
 विषमूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसङ्करात् ।
 विषबृक्षानिलस्पर्शाद्भ्रूयुगावचूर्णनात् ॥ ४१ ॥
 मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः ।
 नवोऽनुपद्रवः 'शोफः' साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ ४२ ॥

अथ विसर्पनिदानम्—

स्याद्विसर्पोऽभिघातान्तैर्दोषैर्दूष्यैश्च शोफवत् ।
 व्यधिष्ठानं च तं प्राहुर्बाह्यान्तरुभयाश्रयात् ॥ ४३ ॥
 यथोत्तरं च दुःसाध्याः क्लृप्तत्र दोषा यथायथम् ।
 प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः ॥ ४४ ॥
 देहे शीघ्रं विसर्पन्ति तेऽन्तरन्तःस्थिता बहिः ।
 बहिःस्था द्वितये द्विस्था विद्यात्तत्रान्तराश्रयम् ॥ ४५ ॥
 मर्मोपतापात्सम्मोहादयनानां विघट्टनात् ।
 तृष्णातियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥ ४६ ॥
 आशु चाग्निबलभ्रंशाद् क्लृप्ततो बाह्यं विपर्ययात् ।
 तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्ययः ॥ ४७ ॥
 शोफस्फुरणनिस्तोदभेदाऽऽयामार्तिहर्षवान् ।
 पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥ ४८ ॥
 कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।

स्वदोषलिङ्गैश्च्रीयन्ते सर्वे स्फोटैरुपेक्षिताः ॥ ४९ ॥
 ते पक्वमिन्नाः स्वं स्वं च विभ्रति घ्नणलक्षणम् ।
 वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छाऽतीसारतृड्भ्रमैः ॥ ५० ॥
 अस्थिभेदाऽग्निसदनतमकाऽरोचकैर्युतः ।
 करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् ॥ ५१ ॥
 यं यं देशं विसर्पश्च ^१ विसर्पति भवेत्स सः ।
 शान्ताङ्गाराऽसितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते ॥ ५२ ॥
 अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ।
 मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ ५३ ॥
 व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ।
 हिध्मां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न वा ॥ ५४ ॥
 क्वचिच्छर्माऽरतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ।
 चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम् ॥ ५५ ॥
 दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प^२ उच्यते ।
 कफेन रुद्धः पवनो भिच्चा तं बहुधा कफम् ॥ ५६ ॥
 रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्सिरास्नावमांसगम् ।
 दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ ५७ ॥
 ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुज्वराम् ।
 श्वासकासातिसारास्य-शोषहिध्मावमिभ्रमैः ॥ ५८ ॥
 मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ।

१. विसर्पतीति विसर्पः, सुप्ल-गतौ पचाद्यच् । सर्पणं सर्पः भावे
 घञ्, विविधः सर्पः प्रसारोऽस्य विसर्पः इत्यपि विग्रहः क्वचिद-
 पेक्षितः, 'उपसर्गस्य घञ्यमनुष्ये बहुलमिति, दीर्घे-वीसर्प-इत्यपि ।

इत्ययं 'ग्रन्थिर्वीसर्पः' कफमारुतकोपजः ॥ ५९ ॥
 कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रातन्द्राशिरोरुजः ।
 अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ ६० ॥
 मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थनां पिपासेन्द्रियगौरवम् ।
 आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति ॥ ६१ ॥
 प्रायेणामाशये गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ।
 पिट्कैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपाण्डुरैः ॥ ६२ ॥
 मेचकाभोऽसितः स्निग्धो मलिनः शोफवान् गुरुः ।
 गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ ६३ ॥
 पङ्कवच्छूर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुसिरागणः ।
 शवगन्धिश्च वीसर्प 'कर्दमाख्य' मुशन्ति तम् ॥ ६४ ॥
 'सर्वजो'लक्ष्णैः सर्वैः सर्वधात्वतिसर्पणः ।
 बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥ ६५ ॥
 विसर्पं मारुतः कुर्यात् कुलत्थसदृशैश्चितम् ।
 स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यं श्यावलोहितम् ॥ ६६ ॥
 पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वन्द्वजाश्चानुपद्रवाः ।
 असाध्यौ क्षतसर्वोत्थौ सर्वे चाक्रान्तमर्मकाः ॥ ६७ ॥
 शीर्णस्नायुसिरामांसाः प्रक्लिन्नाः शवगन्धयः ॥ ६७ ॥

इति निदानस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ।



चतुर्दशोऽध्यायः ।

‘अथाऽतः कुष्ठश्चित्रकृमिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ कुष्ठरोगनिदानम्—

‘मिथ्याऽऽहारविहारेण विशेषेण विरोधिना^१ ।

साधुनिन्दा-वधाऽन्यस्व-हरणाद्यैश्च सेवितैः ॥ १ ॥

पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैश्चेरिता मलाः ।

सिराः प्रपद्य तिर्यग्गास्त्वग्लसीकासृगामिषम् ॥ २ ॥

दूषयन्ति श्लथीकृत्य निश्चरन्तस्ततो बहिः ।

त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः, कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ ३ ॥

कालेनोपेक्षितं यस्मात्सर्वं कुण्णाति तद्वपुः ।

प्रपद्य धातून्त्याप्यान्तः सर्वान् सङ्क्लेद्य चावहेत् ॥ ४ ॥

सस्वेदक्लेदसङ्कोथान् कृमीन्सूक्ष्मान्सुदारुणान् ।

लोमत्वक्स्नायुधमनी-तरुणास्थीनि यैः क्रमात् ॥ ५ ॥

भक्षयेत् शिवत्रमस्माच्च कुष्ठं बाह्यमुदाहृतम् ।

कुष्ठानि सप्तधा, दोषैः पृथङ्निश्चैः समागतैः ॥ ६ ॥

सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु ‘व्यपदेशोऽधिकस्त्वतः’ ।

‘वातेन’ कुष्ठं कापालं, पित्तादौदुम्बरं, कफात् ॥ ७ ॥

मण्डलाख्यं विचर्त्तुं च, ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ।

चर्मैककुष्ठकिटिभ-सिध्मालसविपादिकाः ॥ ८ ॥

१. विसर्पकुष्ठयोस्तुल्यहेतुत्वं सङ्गतिः ।

२. विरोधिना = दुग्धमत्स्यादिना ।

वातरलेष्मोद्भवाः, श्लेष्मपित्ताद्द्रुशतारुषी ।
 पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ ९ ॥
 सर्वैः स्यात्काकणं, पूर्व त्रिकं दद्रु सकाकणम् ।
 पुण्डरीकर्क्षजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ १० ॥
 अतिश्लक्ष्णखरस्पर्श-स्वेदास्वेदविवर्णताः ।
 दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः ॥ ११ ॥
 व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।
 रुढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ॥ १२ ॥
 रोमहर्षोऽसृजः काण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ।
 कृष्णारुणकपालाभं रूक्षं सुप्तं खरं तनु ॥ १३ ॥
 विस्तृतासमपर्यन्तं दूषितैर्लोमभिश्चितम् ।
 तोदाढ्यमल्पकण्डूकं 'कापालं' शीघ्रसर्पि च ॥ १४ ॥
 पक्कोदुम्बरताम्रत्वग्रोमगौरसिराचितम् ।
 बहलं बहुलक्लेदरक्तं दाहरुजाधिकम् ॥ १५ ॥
 आशूत्थानावदरणक्रिमिं विद्या 'दुदुम्बरम्' ।
 स्थिरं स्यान्नं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तमनाशुगम् ॥ १६ ॥
 अन्योन्यसक्तमुत्सङ्गं बहुकण्डूक्षुतिक्रिमि ।
 श्लक्ष्णपीताभपर्यन्तं मण्डलं 'परिमण्डलम्' ॥ १७ ॥
 सकण्डूपिटिका श्यावा लसीकाढ्या 'विचर्चिका' ।
 परुषं तनु रक्तान्तमन्तःश्यावं समुन्नतम् ॥ १८ ॥
 सतोददाहरुक्क्लेदं कर्कशैः पिटिकैश्चितम् ।
 श्लक्ष्णजिह्वाकृति 'प्रोक्तमृक्षजिह्वं' बहुक्रिमि ॥ १९ ॥
 हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्मैः एकाग्र्यं महाश्रयम् ।

अस्वेदं मत्स्यशकलसन्निभम्॥ किटिभं पुनः ॥ २० ॥
 रुक्षं किणखरस्पर्शं कण्डूमत्परुषासितम् ।
 सिध्मं रुक्षं बहिः, स्निग्धमन्तर्घृष्टं रजः किरित् ॥ २१ ॥
 श्लक्ष्णस्पर्शं तनु श्वेतताम्रं दौर्गन्धिकपुष्पवत् ।
 प्रायेण चोर्ध्वकाये स्याद् ॥ गण्डैः कण्डूयुतैश्चितम् ॥ २२ ॥
 रक्तैरलसकम्॥ पाणिपाददार्यो विपादिकाः ।
 तीव्रास्त्यो मन्दकण्ड्वश्च सरागपिटिकाचिताः ॥ २३ ॥
 दीर्घप्रताना दूर्वावदतसीकुसुमच्छविः ।
 उत्सन्नमण्डला दद्रुः कण्डूमत्यनुषङ्गिणी ॥ २४ ॥
 स्थूलमूलं सदाहार्तिं रक्तश्यावं बहुव्रणम् ।
 शतारुः क्लेदजन्तवाढ्यं प्रायशः पर्वजन्म च ॥ २५ ॥
 रक्तान्तमन्तरा पाण्डु कण्डूदाहरुजान्वितम् ।
 सोत्सेधमाचितं रक्तैः पद्मपत्रमिवांशुभिः ॥ २६ ॥
 घनभूरिलसीकासृक्प्रायमाशु विभेदि च ।
 पुण्डरीकम्॥ तनुत्वग्भिश्चितं स्फोटैः सितारुणैः ॥ २७ ॥
 विस्फोटम्॥ पिटिका पामा कण्डूक्लेदरुजाधिकाः ।
 सूक्ष्माः श्यावारुणा बह्व्यः प्रायः स्फिक्पाणिकूर्परे ॥ २८ ॥
 सस्फोटमस्पर्शसहं कण्डूषातोददाहवत्^१ ।
 रक्तं दलच्छर्मदलम्॥ काकणं तीव्रदाहरुक् ॥ २९ ॥
 पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणन्तीफलोपमम् ।
 कुष्ठलिङ्गैर्युतं सवैर्नैकवर्णं ततो भवेत् ॥ ३० ॥
 दोषभेदीयविहितैरादिशैलिलङ्गकर्मभिः ।

१. कण्डूश्च-ऊषा च-तोदश्च-दाहश्चेति द्वन्द्वः । ऊष-रुजायाम् ।

कुष्ठेषु दोषोत्त्वणताम् ॥ सर्वदोषोत्त्वणं त्यजेत् ॥ ३१ ॥
 रिष्टोक्तं यच्च यच्चाऽस्थि मज्जशुक्रसमाश्रयम् ।
 याप्यं मेदोगतम् ॥ कृच्छ्रं पित्तद्वन्द्वस्त्रमांसगम् ॥ ३२ ॥
 अकृच्छ्रं कफवाताढ्यं त्वक्स्थमेकमलं च यत् ।
 तत्र त्वचि स्थिते कुष्ठे तोदवैवर्ण्यरूक्षताः ॥ ३३ ॥
 स्वेदस्वापश्चयथवः शोणिते, पिशिते पुनः ।
 पाणिपादाश्रिताः स्फोटाः क्लेदः सन्धिषु चाधिकम् ॥ ३४ ॥
 कौण्ठ्यं गतिक्षयोऽङ्गानां दलनं स्याच्च, मेदसि ।
 नासाभङ्गोऽस्थिमज्जस्थे नेत्ररागः स्वरक्षयः, ॥ ३५ ॥
 क्षते च कृमयः, शुक्ले स्वदाराऽपत्यबाधनम् ।
 यथापूर्वं च सर्वाणि स्युर्लिङ्गान्यसृगादिषु ॥ ३६ ॥

अथ श्वित्ररोगनिदानम् ।

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं दारुणं, च तत् ।
 निर्दिष्टमपरिस्त्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३७ ॥
 वाताद्रूक्षारुणं, पित्तात्तम्रं कमलपत्रवत् ।
 सदाहं रोमविध्वंसि, कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ३८ ॥
 सकण्डु च क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् ।
 वर्णेनैवेदगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३९ ॥
 अशुक्लरोमाऽबहुलमसंसृष्टं मिथो नवम् ।
 अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं, वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४० ॥
 गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् ।
 स्पशैकाहारशय्यादि-सेवनात्प्रायशो गदाः ॥ ४१ ॥
 सर्वे सञ्चारिणो, नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ।

अथ कृमिरोगनिदानम् ।

कृमयस्तु द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तभेदतः ॥ ४२ ॥
 बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ।
 नामतो विंशतिविधाः ॥ बाह्यास्तत्राऽसृगुद्भवाः ॥ ४३ ॥
 तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ।
 बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिप्ताश्च नामतः ॥ ४४ ॥
 द्विधा ते, कोठपिटिका, कण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ।
 कुष्ठैकहेतवोऽन्तर्जाः, श्लेष्मजास्तेषु चाधिकम् ॥ ४५ ॥
 मथुराज्जगुडक्षीर-दधिसक्त्तुनवौदनैः ।
 शकृज्जा बहुविड्धान्य-पर्णशाकोलुकादिभिः^१ ॥ ४६ ॥
 कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः ।
 पृथुव्रध्ननिभाः केचित् केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥ ४७ ॥
 रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।
 श्वेतास्ताम्रावभासाश्च, नामतः सप्तधा तु ते ॥ ४८ ॥
 अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महाकुहाः^२ ।
 चुरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥ ४९ ॥
 हल्लासमास्यस्त्रवणमविपाकमरोचकम् ।
 मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्यक्ष्वधुपीनसान् ॥ ५० ॥
 रक्तवाहिशिरोत्थाना रक्तजा जन्तवोऽणवः ।
 अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिद्दर्शनाः ॥ ५१ ॥
 केशादा लोमविध्वंसा लोमद्वीपा उदुम्बराः ।
 पट् ते कुष्ठैककर्माणः सहस्रैरसमातरः ॥ ५२ ॥

१. उलुकं = हरितावस्थं शिम्बीधान्यम् । २. गुहाः, पा० ।

पक्काशये पुरीषोऽथा जायन्तेऽधोविसर्पिणः ।
 वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुखाः ॥ ५३ ॥
 तदाऽऽस्योद्गारनिःश्वासा विङ्गन्धानुविधायिनः ।
 पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥ ५४ ॥
 ते पञ्च नाम्ना क्रमयः ककेरूकमकेरूकाः ।
 सौसुरादाः सल्लूनाख्या लेलिहा, जनयन्ति च ॥ ५५ ॥
 विङ्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुप्यपाण्डुताः ।
 रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विनिर्गमात् ॥ ५६ ॥'

इति निदानस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ।

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 सर्वार्थानर्थकरणे विश्वस्यास्यैककारणम् !
 १ अदुष्टदुष्टः पवनः शरीरस्य विशेषतः ॥ १ ॥
 स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः ।
 स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरन्तकः ॥ २ ॥

१. अदुष्टः पवनः—अस्य विश्वस्य सर्वार्थकरणे—एकं कारणम् ,
 दुष्टः पवनः—अस्य विश्वस्य, सर्वानर्थकरणे—एकं कारणम् , शरीरस्य
 तु—अदुष्टदुष्टः पवनः सर्वार्थाऽनर्थकरणे—विशेषतः—एकमद्वितीयं कार-
 णम्—चरके वातकलाकलीयेऽध्याये स्पष्टं द्रष्टव्यम् ।

तददुष्टौ प्रयत्नेन यतितव्यमतः ^१सदा ।
 तस्योक्तं दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम् ॥ ३ ॥
 समासाद्व्यासतो दोषभेदीये नाम धाम च ।
 प्रत्येकं पञ्चधा चारो व्यापारश्च ॥ इह वैकृतम् ॥ ४ ॥
 तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम् ।
 धातुक्षयकरैर्वायुः कुप्यत्यतिनिषेवितैः ॥ ५ ॥
 चरन् स्रोतःसु रिक्तेषु भृशं तान्येव पूरयन् ।
 तेभ्योऽन्यदोषपूर्णैः प्राप्य वाऽऽवरणं वली ॥ ६ ॥
 तत्र पक्काशये क्रुद्धः शूलानाहान्त्रकूजनम् ।
 मलरोधाश्मवर्ध्मांश्चिकित्सीकटौघहम् ॥ ७ ॥
 करोत्यधरकायेषु तांस्तान्कृच्छ्रानुपद्रवान् ।
 आमाशये तृड्वमथु-श्वासकासविसूचिकाः ॥ ८ ॥
 कण्ठोपरोधमुद्गारान् व्याधीनूर्ध्वं च नाभितः ।
 श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं ॥ त्वचि स्फुटनरुद्धणे ॥ ९ ॥
 रक्ते तीव्रा रुजः स्वापं तापं रागं विवर्णताम् ।
 अरुण्यक्षस्य विष्टम्भमरुचिं कृशतां भ्रमम् ॥ १० ॥
 मांसमेदोगतो ग्रन्थीस्तोदाढ्यान् कर्कशान् भ्रमम् ।
 गुर्वङ्गं चातिरुक्स्तब्धं मुष्टिदण्डहतोपमम् ॥ ११ ॥
 अस्थिस्थः सक्थिसन्ध्यस्थिशूलं तीव्रं बलक्षयम् ।
 मज्जस्थोऽस्थिषु सौषिर्यमस्वप्नं स्तब्धतां रुजम् ॥ १२ ॥
 शुक्रस्य शीघ्रमुत्सर्गं सङ्गं विकृतिमेव वा ।

१. यतः स विश्वकर्मादिगुणविशिष्टः-अतः सदा तददुष्टौ = तस्य
 वायोरकोपे विषये-अनीव यत्नः कर्त्तव्यः-इत्यर्थः ।

तद्वद्गर्भस्य शुक्रस्थः सिरास्वाध्मानरिक्तते ॥ १३ ॥
 तत्स्थः स्नावस्थितः कुर्याद्गृध्रस्यायामकुब्जताः ।
 वातपूर्णदृतिस्पर्शं शोफं सन्धिगतोऽनिलः ॥ १४ ॥
 प्रसारणाऽऽकुञ्चनयोः प्रवृत्तिं च सवेदनाम् ।
 सर्वाङ्गसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभञ्जनम् ॥ १५ ॥
 स्तम्भमाक्षेपणं स्वापं सन्ध्याकुञ्चनकम्पनम् ।
 यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽभ्येति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
 तदाङ्गमाक्षिपत्येष व्याधि'राक्षेपकः' स्मृतः ।
 अधः प्रतिहतो वायुर्वज्रत्यूर्ध्वं हृदाश्रयाः ॥ १७ ॥
 नाडीः प्रविश्य, हृदयं शिरः शङ्खौ च पीडयन् ।
 आक्षिपेत्परितो गात्रं धनुर्वक्षाऽस्य नामयेत् ॥ १८ ॥
 कृच्छ्रादुच्छ्वसिति स्तब्धस्तमीलितदृक्ततः ।
 कपोत इव कूजेच्च निःसंज्ञः सोऽ'पतन्त्रकः' ॥ १९ ॥
 स एव चाऽपतानाऽऽख्यो मुक्ते तु मरुता हृदि ।
 अश्नुवीत मुहुः स्वास्थ्यं मुहुरस्वास्थ्यमावृते ॥ २० ॥
 गर्भपातसमुत्पन्नः शोणितातिस्त्रवोत्थितः ।
 अभिघातसमुत्थश्च दुश्चिकित्स्यतमो हि सः ॥ २१ ॥
 मन्ये संस्तभ्य वातोऽन्तरायच्छन् धमनीर्यदा ।
 व्याप्नोति सकलं देहं, जत्रुरायम्यते तदा ॥ २२ ॥
 अन्तर्धनुरिवाङ्गं च वेगैः स्तम्भं च नेत्रयोः ।
 करोति जृम्भां दशनं दशनानां कफोद्वमम् ॥ २३ ॥
 पार्श्वयोर्वेदनां वाक्यहनुपृष्ठशिरोग्रहम् ।
 'अन्तरायाम' इत्येष 'बाह्यायामश्च' तद्विधः ॥ २४ ॥

देहस्य बहिरायामात्पृष्ठतो नीयते शिरः ।
 उरश्चोत्क्षिप्यते तत्र कन्धरा चावमृद्यते ॥ २५ ॥
 दन्तेष्वास्ये च वैवर्ण्यं प्रस्वेदः स्वस्तगात्रता ।
 'बाह्यायामं' धनुस्तम्भं ब्रुवते वेगिनं च तम् ॥ २६ ॥
 व्रणं मर्माश्रितं प्राप्य समीरणसमीरणात् ।
 व्यायच्छन्ति तनुं दोषाः सर्वाभापादमस्तकम् ॥ २७ ॥
 तृप्यतः पाण्डुगात्रस्य 'व्रणायामः' स वर्जितः ।
 गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपकेषु च ॥ २८ ॥
 जिह्वातिलेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः ।
 कुपितो हनुमूलस्थः संसयित्वाऽनिलो हनू ॥ २९ ॥
 करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।
^१हनुसंसः स, तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ३० ॥
 वाग्वाहिनीसिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ।
 'जिह्वास्तम्भः' स, तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ३१ ॥

अर्दितम्—

शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रभाषणात् ।
 उन्नास-वक्रक्षत्रथु-खरकार्मुककर्पणात् ॥ ३२ ॥
 विषमादुपधानाच्च कठिनानां च चर्वणात् ।
 वायुर्विवृद्धस्तैस्तैश्च वातलैरुर्ध्वमास्थितः ॥ ३३ ॥
 वक्रीकरोति वक्रार्धमुक्तं हसितमीक्षितम् ।
 ततोऽस्य कम्पते मूर्च्छा, वाक्सङ्गः स्तब्धनेत्रता ॥ ३४ ॥

१. हनुस्तम्भ—इति पाठान्तरम् ।

दन्तचालः स्वरभ्रंशः श्रुतिहानिः क्षवग्रहः ।
 गन्धाज्ञानं स्मृतेर्मोहस्त्रासः सुप्तस्य जायते ॥ ३५ ॥
 निष्ठीवः पार्श्वतो यायादेकस्याक्ष्णो निमीलनम् ।
 जत्रोरुर्ध्वं रुजा तीव्रा शरीरार्धेऽधरेऽपि वा ॥ ३६ ॥
 तमाहुरदितं, केचिदेकायाममथापरे ।
 रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराः सिराः ॥ ३७ ॥
 रुक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः ।
 गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः सिराः स्नायूर्विशोष्य च ॥ ३८ ॥
 पक्षमन्यतरं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन् ।
 कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ ३९ ॥
 'एकाङ्गरोगं' तं केचिदन्ये 'पक्षवधं' विदुः ।
 'सर्वाङ्गरोगं' तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ ४० ॥
 शुद्धवातहतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः ।
 कृच्छ्रस्त्वन्येन संसृष्टो विवर्ज्यः क्षयहेतुकः ॥ ४१ ॥
 आमबद्धायनः कुर्यात्संस्तभ्याङ्गं कफान्वितः ।
 असाध्यं हतसर्वेहं दण्डवद् 'दण्डकं' मरुत् ॥ ४२ ॥
 असमूलस्थितो वायुः सिराः सङ्कोच्य तत्रगाः ।
 बाहुप्रस्पन्दितहरं जनयत्य'वन्बाहुकम्' ॥ ४३ ॥
 तलं प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा बाहुपृष्ठतः ।
 बाहुचेष्टापहरणी 'विश्वाची' नाम सा स्मृता ॥ ४४ ॥
 वायुः कट्यां स्थितः सक्थनः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ।
 तदा 'खञ्जो' भवेज्जन्तुः, 'पङ्क्तुः' सक्थनोर्द्वयोरपि ॥ ४५ ॥
 कम्पते गमनारम्भे खञ्जन्निव च याति यः ।

'कलायखञ्जं' तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥ ४६ ॥
 शीतोष्णद्रवसंशुष्क-गुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
 जीर्णाजीर्णं तथाऽऽयाससङ्क्षोभस्वप्नजागरैः ॥ ४७ ॥
 सश्लेष्ममेदः पवनमामसत्यर्थसञ्चितम् ।
 अभिभूयेतरं दोषमूरु चेत्प्रतिपद्यते ॥ ४८ ॥
 सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन तत् ।
 तदा स्कभ्नाति, तेनोरु स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ४९ ॥
 परकीयाविव गुरु स्यातामतिभृशव्यथौ ।
 ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राच्छूर्ध्वरुचिज्वरैः ॥ ५० ॥
 संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ।
 'तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातमथापरे' ॥ ५१ ॥
 वातशोणितजः श्लेफो जानुमध्ये महारुजः ।
 ज्ञेयः 'क्रोष्टुकशीर्षश्च' स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५२ ॥
 रुक् पादे विपमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।
 वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ ५३ ॥
 पार्श्विण प्रत्यङ्गुलीनां या कण्डरा मारुतादिता ।
 सक्थ्युत्क्षेपं निगृह्णाति 'गृध्रसीं' तां प्रचक्षते ॥ ५४ ॥
 'विश्वाची गृध्रसी चोक्ता 'खल्ली' तीव्ररुजान्विता ।
 हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां च प्रसुप्तवत् ॥ ५५ ॥
 'पादहर्षः' स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः ।
 पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ॥ ५६ ॥
 विशेषतश्चङ्क्रमिते 'पाददाहं' तमादिशेत् ॥ ५६ ॥
 इति निदानस्थाने पञ्चदशोऽध्यायः ।

१. विश्वाची=तलम्-इत्यत्र ४४ श्लोके, अव्यवहित पूर्वे 'गृध्रसी'

षोडशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातशोणितनिदानं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
'विदाह्यन्नं विरुद्धं च तत्तच्चासृक्प्रदूषणम् ।
भजतां विधिहीनं च स्वप्नजागरमैथुनम् ॥ १ ॥
प्रायेण सुकुमाराणामचङ्क्रमणशीलिनाम् ।
अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते ॥ २ ॥
वातलैः शीतलैर्वायुवृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः ।
तादृशेनासृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदूषयेत् ॥ ३ ॥
आढ्यरोगं, खुडं, वातबलासं, वातशोणितम् ।
तदाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति ॥ ४ ॥
विशेषाद्यानयानाद्यैः प्रलम्बौ तस्य लक्षणम् ।
भविष्यतः कुष्ठसमं तथा सादः श्लथाङ्गता ॥ ५ ॥
जानुजङ्घोरुकटथंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु ।
कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः ॥ ६ ॥
भूत्वा भूत्वा प्रणश्यन्ति मुहुराविर्भवन्ति च ।
पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ॥ ७ ॥
आखोरिव विषं क्रुद्धं कृस्नं देहं विधावति ।

चोक्ता—तीव्रपीडायुते ते द्वे 'खल्ली' संज्ञां लभेते ।

१. अथ वातव्याधिनिरूपणानन्तरं यतो वातव्याधिभेदे वात-
शोणिताऽऽख्ये रोगे बहुवक्तव्यमस्ति अतस्तन्निदानं पृथग् व्याख्या-
स्यामः ।

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः ॥ ८ ॥
 कालान्तरेण गम्भीरं सर्वान् धातून्भिद्रवत् ।
 कण्ड्वादिसंयुतोत्ताने त्वक्ताम्रश्यावलोहिता ॥ ९ ॥
 सायामा भृशदाहोषाः गम्भीरेऽधिकपूर्वरूक् ।
 श्वयथुर्ग्रथितः पाकी वायुः सन्ध्यस्थिमज्जसु ॥ १० ॥
 छिन्दश्चिव चरत्यन्तर्वक्त्रीकुर्वश्च वेगवान् ।
 करोति खञ्जं पङ्क्तुं वा शरीरे सर्वतश्चरन् ॥ ११ ॥
 वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ।
 शोफस्य रौक्ष्यकृष्णत्व-श्यावतावृद्धिहानयः ॥ १२ ॥
 धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरूक् ।
 शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥ १३ ॥
 रक्ते शोफोऽतिरूक् तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते^१ ।
 स्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ॥ १४ ॥
 पित्ते विदाहः सम्मोहः स्वेदो मूर्च्छा मदः सतृट् ।
 स्पर्शाक्षमत्वं रुग्णागः शोफपाको भृशोष्मता ॥ १५ ॥
 कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।
 कण्डूर्मन्दा च रुग्ः द्वन्द्वसर्वलिङ्गं च सङ्करे ॥ १६ ॥
 एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ।
 त्रिदोषजं त्यजेत्त्रावि स्तब्धमर्बुदकारि च ॥ १७ ॥
 रक्तमार्गं निहन्त्याशु शाखासन्धिषु मारुतः ।
 निविश्यान्योन्यमाचार्य^२ वेदनाभिर्हरत्यसून् ॥ १८ ॥

१. अनुकरणशब्दोऽयम् । २. अन्योन्यं रक्तं कर्तृ वार्तं, वातः कर्ता रक्तम्—आचार्य = सर्वतः प्रचार्य ।

वायौ पञ्चात्मके प्राणो रौच्यव्यायामलङ्घनैः ।
 अत्याहाराभिघाताध्व-वेगोदीरणधारणैः ॥ १९ ॥
 कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रवर्तयेत् ।
 पीनसार्दिततृट्कास-श्वासादींश्चामयान्बहून् ॥ २० ॥
 उदानः क्षवथूद्गारच्छर्दिनिद्रावधारणैः ।
 गुरुभारातिरुदितहास्याद्यैर्विकृतो गदान् ॥ २१ ॥
 कण्ठरोधमनोभ्रंशच्छर्द्यरोचकपीनसान् ।
 कुर्याच्च गलगण्डादींस्तांस्तान् जत्रूर्ध्वसंश्रयान्^१ ॥ २२ ॥
 व्यानोऽतिगमनध्यानक्रीडाविषमचेष्टितैः ।
 विरोधिरुक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः ॥ २३ ॥
 पुंस्त्वोत्साहबलभ्रंशफोफचित्तोत्प्लवज्वरान् ।
 सर्वाङ्गरोगनिस्तोदरोमहर्षाङ्गसुप्तताः ॥ २४ ॥
 कुष्ठं विसर्पमन्यांश्च कुर्यात्सर्वाङ्गान् गदान् ।
 समानो विषमाजीर्ण-शीतस्फूर्णीर्णभोजनैः ॥ २५ ॥
 करोत्यकालशयन-जागराद्यैश्च दूषितः ।
 शूलगुल्मग्रहण्यादीन् पक्वामाशयजान् गदान् ॥ २६ ॥
 अपानो रुक्षगुर्वक्षवेगघातातिवाहनैः ।
 यानयानासनस्थान-चङ्क्रमैश्चातिसेवितैः ॥ २७ ॥
 कुपितः कुरुते रोगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान् ।
 मूत्रशुक्रप्रदोषार्शो-गुदभ्रंशादिकान्बहून् ॥ २८ ॥

१. जत्रुणः = कुक्ष्यसन्धेरूर्ध्वमुत्तमाङ्गं संश्रयन्ते-इति-जत्रू-
 र्ध्वसंश्रयास्तान्, (स्कन्धो भुजशिरोऽसोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी)
 अमरः ।

सर्वं च मारुतं सामं तन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।

स्निग्धत्वारोचकाऽलस्यशैत्यशोफाऽग्निहानिभिः ॥ २९ ॥

कटुरुक्षाभिलाषेण तद्विधोपशयेन च ।

युक्तं विद्यान्निरामं तु तन्द्रादीनां विपर्ययात् ॥ ३० ॥

वाताऽऽवरणानि ।

‘वायोरावरणं’ चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते ।

लिङ्गं ‘पित्तावृते’ दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः ॥ ३१ ॥

कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहः शीतकामता ।

शैत्यगौरवशूलानि कट्वाद्युपशयोऽधिकम् ॥ ३२ ॥

लङ्घनायासरूक्षोष्णकामता च ‘कफावृते’ ।

‘रक्तावृते’ सदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरजा भृशम् ॥ ३३ ॥

भवेच्च रागी श्वयधुः, जायन्ते मण्डलानि च ।

‘मांसेन’ कठिनः शोफो विवर्णः पिटिकास्तथा ॥ ३४ ॥

हर्षः पिपीलिकानां च सञ्चार इव जायते ।

चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफो गात्रेष्वरोचकः ॥ ३५ ॥

आढ्यवात इति ज्ञेयः, स कृच्छ्रो ‘मेदसाऽऽवृते’ ।

स्पर्शम् ‘अस्थ्यावृते’ऽत्युष्णं, पीडनं चाभिनन्दति ॥ ३६ ॥

सूच्येव तुद्यतेऽत्यर्थमङ्गं सीदति शूल्यते ।

‘मज्जावृते’ विनमनं जृम्भणं परिवेष्टनम् ॥ ३७ ॥

शूलं च, पीड्यमानेन पाणिभ्यां लभते सुखम् ।

‘शुक्रावृते’ऽतिवेगो वा न वा निष्फलताऽपि वा ॥ ३८ ॥

भुक्ते कुक्षौ रुजा जीर्णे ‘शाम्यत्यन्नावृतेऽनिले’ ।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं बस्तौ ‘मूत्रावृते’ भवेत् ॥ ३९ ॥

'विडावृते' विबन्धोऽधः स्वस्थाने परिक्रन्तति ।
 व्रजत्याशु जरां स्नेहो, भुक्ते चानह्यते नरः ॥ ४० ॥
 शकृत्पीडित'मन्नेन' दुःखं शुष्कं चिरात्सृजेत् ।
 'सर्वधात्वावृते' वायौ श्रोणीवङ्क्षणपृष्ठरुक् ॥ ४१ ॥
 विलोमो मारुतोऽस्वस्थं हृदयं पीड्यतेऽति च ।
 भ्रमो मूर्च्छा रुजा दाहः 'पित्तेन' प्राण आवृते ॥ ४२ ॥
 बिदग्धेऽन्ने च वमनम् ऋउदानेऽपि भ्रमादयः ।
 दाहोऽन्तरूर्जोभ्रंशश्च ऋदाहो व्याने च सर्वगः ॥ ४३ ॥
 क्लमोऽङ्गचेष्टासङ्गश्च ससन्तापः सवेदनः ।
 समान ऊष्मोपहतिरतिस्वेदोऽरतिः सतृट् ॥ ४४ ॥
 दाहश्च स्याद्, अपाने तु मले हारिद्रवर्णता ।
 रुजोऽतिवृद्धिस्तापश्च योनिमेहनपायुषु ॥ ४५ ॥
 'श्लेष्मणा' त्वावृते प्राणे सादस्तन्द्राऽरुचिर्वमिः ।
 छीवनक्षवधूद्वार-निःश्वासोच्छ्वाससङ्ग्रहः ॥ ४६ ॥
 उदाने गुरुगान्त्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः ।
 बलवर्णप्रणाशश्चऋव्याने पर्वास्थिवाग्रहः ॥ ४७ ॥
 गुरुताऽङ्गेषु सर्वेषु ^१स्खलनं च गतौ भृशम् ।
 समानेऽतिहिमाङ्गत्वमस्वेदो मन्दवह्निता ॥ ४८ ॥
 अपाने सकफं मूत्रशकृतः स्यात्प्रवर्तनम् ।
 इति द्वाविंशतिविधं 'वायोरावरणं' विदुः ॥ ४९ ॥
 प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वन्ति यथाक्रमम् ।
 सर्वेऽपि 'विंशतिविधं' विद्यादावरणं च तत् ॥ ५० ॥

१. स्खलितमिति पाठे, भावे क्तः—अतः समानोऽर्थः ।

निःश्वासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः ।
 हृद्रोगो मुखशोषश्च^१ प्राणेनोदान आवृते ॥ ५१ ॥
 उदानेनाऽऽवृते प्राणे वर्णौजोबलसङ्क्षयः ।
 दिशाऽनया^२ च विभजेत्सर्वमावरणं भिषक् ॥ ५२ ॥
 स्थानान्यवेक्ष्य वातानां वृद्धिं हानिं च कर्मणाम् ।
 प्राणादीनां च पञ्चानां मिश्रमावरणं मिथः ॥ ५३ ॥
 पित्तादिभिर्द्वादशभिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः ।
 मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्रणाभिरनेकधा ॥ ५४ ॥
^३तारतम्यविकल्पाच्च यात्यावृतिरसङ्क्षयताम् ।
 तां लक्षयेदवहितो यथास्वं लक्षणोदयात् ॥ ५५ ॥
 शनैःशनैश्चोपशयाद् गूढामपि मुहुर्मुहुः ।
 विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते ॥ ५६ ॥
 स्यात्तयोः पीडनाद्भानिरायुषश्च बलस्य च ।
 आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाता वा वत्सरं स्थिताः ॥ ५७ ॥
 प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वाऽनुपक्रमाः ।
 विद्रधि-प्लीह-हृद्रोग-गुल्माऽग्निसदनाऽऽदयः ।
 भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥ ५८ ॥
 इति श्रीसिंहगुप्तसुनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्गहृदयसंहितायां
 तृतीयं निदानस्थानं समाप्तम् ॥
 समाप्तमिदं निदानस्थानम् ॥

-
१. प्राणेन = हृदयस्थेन वातेन, उदाने = कण्ठदेशस्थे वाते ।
 २. अनया दिशा = अनया रीत्या । ३. तारतम्यम्-न्यूनाऽधिकभा-
 वेन कक्षाकल्पनम्-आवृतः, आवृततरः, आवृततमः, इत्यादिरीत्या ।
 इति श्रीतारादत्तपन्तविरचिता निदानस्थान-भागीरथी समाप्ता ।

अष्टाङ्गहृदयम्



चिकित्सास्थानम्



प्रथमोऽध्यायः ।

१ अथाऽतो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘आमाशयस्थो हत्वाऽग्निं सामो मार्गान् पिधाय यत् ।

विदधाति ज्वरं दोषस्तस्मात्कुर्वीत लङ्घनम्^१ ॥ १ ॥

प्राग्मूपेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् ।

बलाधिष्ठानमारोग्यमारोग्यार्थं क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

लङ्घनैः क्षपिते दोषे दीप्तेऽग्नौ लाघवे सति ।

स्वास्थ्यं क्षुत्तृड् रुचिः पक्तिर्बलमोजश्च जायते ॥ ३ ॥

तत्रोत्कृष्टे समुत्कृष्टे कफप्राये चले मले ।

१. अथ चिकित्सयानां रोगाणां स्वरूपज्ञानानन्तरं यतश्चिकित्सा
ज्ञातव्या, अतः चिकित्सास्थानं प्रारभ्यते, तत्रापि सर्वरोगप्रधानस्य
ज्वरस्य चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

२. ‘ज्वरे लङ्घनमेवादायुपदिष्टमृते ज्वरात् ।

क्षयाऽनिलभयक्रोध-कामशोकश्रमोद्भवात्’ ॥ च०चि० ३१।३९।

सहस्रासप्रसेकाऽन्न-द्वेष-कासविसूचिके ॥ ४ ॥
 सद्योभुक्तस्य सञ्जाते ज्वरे सामे विशेषतः ।
 वमनं वमनार्हस्य शस्तं, कुर्यात्तदन्यथा ॥ ५ ॥
 श्वासातिसारसम्मोह-हृद्रोगविषमज्वरान् ।
 पिप्पलीभिर्युतान् गालान्^१ कलिङ्गैर्मधुकेन वा ॥ ६ ॥
 उष्णाम्भसा समधुना पिबेत्सलवणेन वा ।
 पटोलनिम्बककोट-वेत्रपत्रोदकेन वा ॥ ७ ॥
 तर्पणेन रसेनेक्षोर्मधैः कल्पोदितानि वा ।
 'वमनानि' प्रयुञ्जीत बलकालविभागवित् ॥ ८ ॥
 कृतेऽकृते वा वमने ज्वरी कुर्याद्विशोषणम् ।
 दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमाय च ॥ ९ ॥
 आमेन भस्मनेवाग्नौ छन्नेऽन्नं न विपच्यते ।
 तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥ १० ॥
^२तृष्णगलपालपमुष्णाम्बु पिबेद्वातकफज्वरे ।
 तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ११ ॥
 उदीर्य चाऽग्निं स्रोतांसि मृदूकृत्य विशोधयेत् ।
 लीनपित्तानिलस्वेदशकृन्मूत्रानुलोमनम् ॥ १२ ॥
 निद्राजाड्यारुचिहरं प्राणानामवलम्बनम् ।
 विपरीतमतः शीतं दोषसङ्घातवर्धनम् ॥ १३ ॥
 उष्णमेवङ्गुणत्वेऽपि युञ्ज्यान्नैकान्तपित्तले ।

१. गालान् = मदनान्-इति-अरुणः ।

२. तृष्णग्-इत्यत्र 'स्वपितृषोर्नजिङ्' इति नजिङ्प्रत्ययः, तृष्णा-
वान् ।

उद्विक्तपित्ते दध्नुदाहमोहातिसारिणि ॥ १४ ॥
 विषमद्योत्थिते ग्रीष्मे क्षतक्षीणेऽस्रपित्तिनि ।
 घनचन्दनशुण्ठयम्बुपर्पटोशीरसाधितम् ॥ १५ ॥
 शीतं तेभ्यो हितं तोयं पाचनं तृड्ज्वरापहम् ।
 ऊष्मा पित्तादृते^१ नास्ति ज्वरो नास्यूष्मणा विना ॥ १६ ॥
 तस्मात्पित्तविरुद्धानि त्यजेत् पित्ताधिकेऽधिकम् ।
 स्नानाभ्यङ्गप्रदेहांश्च परिशेषं च लङ्घनम् ॥ १७ ॥
 अजीर्णं ह्रव शूलघ्नं सामे तीव्ररुचि ज्वरे ।
 न पिबेदौषधं तद्वि भूय एवाममावहेत् ॥ १८ ॥
 आमामिभूतकोष्ठस्य क्षीरं विषमहेरिव ।
 सोदरदपीनसश्वासे जङ्घापर्वास्थिशूलिनि ॥ १९ ॥
 वातश्लेष्मात्मके स्वेदः प्रशस्तः, स प्रवर्तयेत् ।
 स्वेदमूत्रशकृद्वातान् कुर्यादग्नेश्च पाटवम् ॥ २० ॥
 स्नेहोक्तमाचारविधिं सर्वशश्चानुपालयेत् ।
 लङ्घनं स्वेदनं कालो यवागूस्तिक्तको रसः ॥ २१ ॥
 मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्थं क्रमेण वा ।
 शुद्धवात-क्षयाऽऽगन्तु-जीर्ण-ज्वरिषु लङ्घनम् ॥ २२ ॥
 नेष्यते ॥ तेषु हि हितं शमनं यन्न कर्शनम् ।
 तत्र सामज्वराकृत्या जानीयादविशोषितम् ॥ २३ ॥
 द्विविधोपक्रमज्ञानमवेक्षेत च लङ्घने ।
 युक्तं लङ्घितलिङ्गैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत् ॥ २४ ॥

१. पित्ताद्-श्रुते = पित्तं विना ।

यथास्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः ।
 तस्याग्निर्दीप्यते ताभिः समिद्धिरिव पावकः ॥ २५ ॥
 षडहं वा मृदुत्वं वा ज्वरो यावदवाप्नुयात् ।
 प्राग्ग्लापेयां सुजरां सशुण्ठीधान्यपिप्पलीम् ॥ २६ ॥
 ससैन्धवां तथाम्लार्थी तां पिबेत्सहदाडिमाम् ।
 सृष्टविड् बहुपित्तो वा सशुण्ठीमाक्षिकां हिमाम् ॥ २७ ॥
 बस्तिपार्श्वशिरःशूली व्याघ्रीगोक्षुरसाधिताम् ।
 पृश्निपर्णीबला-बिल्व-नागरोत्पलधान्यकैः ॥ २८ ॥
 सिद्धां ज्वरातिसार्यम्लां पेयां दीपनपाचनीम् ।
 ह्रस्वेन पञ्चमूलेन हिक्कास्वश्वासकासवान् ॥ २९ ॥
 पञ्चमूलेन महता कफार्तो यवसाधिताम् ।
 विबद्धवर्चाः सयवा पिप्पल्यामलकैः कृताम्^१ ॥ ३० ॥
 यबागुं सपिपा भृष्टां मलदोपानुलोमनीम् ।
 चविकापिप्पलीमूल-द्राक्षाऽऽमलकनागरैः ॥ ३१ ॥
 कोष्ठे विबद्धे सरुजि पिबेत्तु परिकर्तनि ।
^२कोल-वृक्षाम्ल-कलशी^३धावनी-श्रीफलैः-कृताम् ॥ ३२ ॥
 अस्वेदनिद्रस्तृणार्तः सितामलकनागरैः ।
 सिताबदरमृद्धीका-सारिवामुस्तचन्दनैः ॥ ३३ ॥
 तृष्णाच्छर्दिपरीदाह-ज्वरघ्नीं क्षौद्रसंयुताम् ।
 कुर्यात्पेयौषधैरेव रसयूषादिकानपि ॥ ३४ ॥

१. श्रुतामिति प्राचीनः पाठः । शृ-पाके ।

२. कलशी = सिंहपुच्छी, धावनी = कण्टकारी, श्रीफलमत्र बिल्वम् ।

मद्योद्भवे मद्यनित्ये पित्तस्थानगते कफे ।
 ग्रीष्मे तयोर्वाधिकयोस्तृट्छर्दिदाहपीडिते ॥ ३५ ॥
 ऊर्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेयां नेच्छन्ति ॥ तेषु तु ।
 ज्वरापहैः फलरसैरद्भिर्वा लाजतर्पणम् ॥ ३६ ॥
 पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं ॥ ततो जीर्णं च तर्पणे^१ ।
 यवाग्वामोदनं क्षुद्धानशनीयाद्भृष्टतण्डुलम् ॥ ३७ ॥
 दकलावणिकैर्यूपै रसैर्वा मुद्गलावजैः ।
 इत्ययं षडहो नेयो बलं दोषं च रक्षता ॥ ३८ ॥
 ततः पक्वेषु दोषेषु लङ्घनाद्यैः प्रशस्यते ।
 कषायो दोषशेषस्य पाचनः शमनो^२ यथा ॥ ३९ ॥
 तिक्तः पित्ते विशेषेण प्रयोज्यः कटुकः कफे ।
 पित्तश्लेष्महरत्वेऽपि कषायस्तु न शस्यते ॥ ४० ॥
 नवज्वरे मलस्तम्भात्कषायो विषमज्वरम् ।
 कुरुतेऽरुचिहृह्लासहिध्माऽऽध्मानादिकानपि ॥ ४१ ॥
 सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये दशाहतः ।
 केचिन्मध्वन्नभुक्तस्य योज्यमामोल्बणे न तु ॥ ४२ ॥
 तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगादयो यतः ।
 दोषेऽथवाऽतिनिचिते तन्द्रास्तैमित्यकारिणि ॥ ४३ ॥

१. तर्पणे जीर्णे, यवागूं यवाग्वां जीर्णायां क्षुद्धान् = बुभुक्षवान्
 सन् दकलावणिकैः = उदकलवणपाचितैः - यूपैः = मुद्गादिरसैः, वा मुद्ग-
 लावजै रसैः, सह भृष्टा मर्जिता तण्डुला यस्मिन् कर्मणि यथा स्यात्
 तथा सिद्धमोदनमशनीयादिति क्रमः ।

२. शमनोऽथवा—इति पाठान्तरम् ।

अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।
 मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च मला यदा ॥ ४४ ॥
 अचिरज्वरितस्यापि भेषजं योजयेत्तदा ।
 मुस्तया पर्पटं युक्तं शुण्ठया दुःस्पर्शयाऽपि वा ॥ ४५ ॥
 वाक्यं शीतकषायं वा पाठोशीरं सवालकम् ।
 पिबेत्तद्वच्च भूनिम्ब-गुडूचीमुस्तनागरम् ॥ ४६ ॥
 यथायोगमिमे योज्याः कषाया दोषपाचनाः ।
 ज्वरारोचकनृणाऽऽस्य-वैरस्याऽपक्तिनाशनाः ॥ ४७ ॥
 कलिङ्गकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥ ४८ ॥
 पटोलं सारिवा मुस्ता पाठा कटुकरोहिणी ।
 पटोल-निम्ब-त्रिफला-मृद्वीका-मुस्त-वत्सकाः ॥ ४९ ॥
 किराततिक्तममृतां चन्दनं विश्वभेषजम् ।
 धात्री-मुस्ताऽऽमृता-चौद्रमर्धश्लोकसमापनाः^१ ॥ ५० ॥
 पञ्चैते सन्ततादीनां पञ्चानां शमना मताः ।
 दुरालभाऽमृता मुस्ता नागरं 'वातजे' ज्वरे ॥ ५१ ॥
 अथवा पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभेषजम् ।
 कनीयः पञ्चमूलं च 'पित्ते' शक्रयवा घनम् ॥ ५२ ॥
 कटुका चेति सचौद्रं मुस्ता पर्पटकं यथा ।
 सधन्वयासभूनिम्बं वत्सकाद्यो गणः 'कफे' ॥ ५३ ॥
 अथवा वृष-गाङ्गेयीशृङ्गवेर-दुरालभाः ।
 रुग्निबन्धानिलश्लेष्म-युक्ते दीपनपाचनम् ॥ ५४ ॥

१. अर्द्धश्लोके = अर्द्धपद्ये समापनं समाप्तिर्येषान्ते पञ्च कथाः
 क्रमात् पञ्चानामित्यन्वयः ।

अभया-पिप्पलीमूल-शम्पाक-कटुका-घनम् ।
 द्राक्षामधूकमधुकं रोधकाशर्म्यसारिवाः ॥ ५५ ॥
 मुस्तामलकहीबेर-पद्मकेसरपद्मकम् ।
 मृणालचन्दनोशीर-नीलोत्पलपरूपकम् ॥ ५६ ॥
 फाण्टो हिमो वा द्राक्षादिर्जातीकुसुमवासितः ।
 युक्तो मधुसितालाजैर्जयत्यनिलपित्तजम् ॥ ५७ ॥
 ज्वरं मदात्ययं छर्दिं मूच्छां दाहं श्रमं भ्रमम् ।
 ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं च पिपासां कामलामपि ॥ ५८ ॥
 पाचयेत्कटुकां पिष्ट्वा^१ कर्परेऽभिनवे शुचौ ।
 निष्पीडितो घृतयुतस्तद्रसो ज्वरदाहजित् ॥ ५९ ॥
 कफवाते वचा तिक्तापाठाऽऽरग्वधवत्सकाः ।
 पिप्पलीचूर्णयुक्तो वा काथश्छिन्नोद्भवोद्भवः ॥ ६० ॥
 व्याघ्रीशुण्ठ्यमृताकाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
 वातश्लेष्मज्वरश्वास-कासपीनसशूलजित् ॥ ६१ ॥
 पथ्याकुस्तुम्बरीमुस्ता-शुण्ठीकटूतृणपर्पटम् ।
 सकट्फल-वचाभार्ङ्गीदेवाह्वं मधुहिङ्गुमत् ॥ ६२ ॥
 कफवातज्वरेष्वेव कुक्षिहृत्पाशर्ववेदनाः ।
 कण्ठामयास्यश्वयथु-कासश्वासास्त्रियच्छति ॥ ६३ ॥
 आरग्वधवादिः सत्तौद्रः कफपित्तज्वरं जयेत् ।
 तथा तिक्तावृषोशीर-त्रायन्तीत्रिफलाऽमृताः ॥ ६४ ॥
 सन्निपातज्वरे व्याघ्री-देवदारुनिशाघनम् ।

१. कर्परे = हण्डिकादौ मृत्पात्रे, न तु कपालेऽनुचितत्वात् ।
 (कर्परस्तु-कटादे स्याच्छस्त्रभेद-कपालयोः-इति हैमः)

पटोलपत्रनिम्बत्वक्-त्रिफलाकटुकायुतम् ॥ ६५ ॥
 नागरं पौष्करं मूलं गुडूची कण्टकारिका ।
 सकासश्वासपार्श्वार्तौ वातश्लेष्मोत्तरे ज्वरे ॥ ६६ ॥
 मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परूषकम् ।
 सोशीरतिक्ता त्रिफला काशमर्यं कल्पयेद्धिमम् ॥ ६७ ॥
 कषायं तं पिबन् काले ज्वरान्सर्वानपोहति^१ ।
 बद्धविट् कटुकाद्राक्ष-त्रायन्तीत्रिफलागुडान् ।
 जीर्णौषधोऽन्नं पेयाद्यमाचरेच्छ्लेष्मवाज्ज तु^२ ॥ ६९ ॥
 पेया कफं वर्धयति पङ्कं पांसुषु वृष्टिवत् ।
 श्लेष्माभिष्यण्णदेहानामतः^३ प्रागपि योजयेत् ॥ ७० ॥

१. अपोहति = नाशयति, ऊह-वितर्कं भ्वा० आ० 'उपसर्गादस्य-
 त्यहोर्वे' ति वाच्यम्' इति परस्मैपदम् ।

२. श्लेष्मवांस्तु-पेयाद्यं द्रवं नाऽचरेत् = न भक्षयेत्, किन्तु
 यूषान्-भक्षयेत् । (चर-गतिभक्षणयोः) यतः पेया कफं वर्धयति =
 शुष्कं सन्तं द्रवीकृत्य पूरयति-यथा पांसुषु पतिता वृष्टिः (पङ्कं वर्ध-
 यति) पांसून् पङ्कतां नयति तद्वत्, (वर्धच्छेदनपूरणयोश्चुरादिः,
 वृधु-वृद्धौ भ्वादिः-आ० (नहि पेया कफमुत्पादयति नापि
 वर्धयति, किन्तु शुष्कं द्रवीकरोति (अत एव-यथा वृष्टिर्नदीजलम्-
 इति नोक्तमित्यरुणाभिप्रायः ।

३. अतः पूर्वोक्तात्कारणात् प्रागपि प्रथमपथ्यावसरेऽपि, श्लेष्म-
 णा = स्रवता कफेन अभिष्यण्णः क्लिन्नः देहो येषां तेषां ज्वरिणां
 कुलत्थादिकृतान् लघून् षट्ठन् स्रवणान् यूषान् योजयेत् । 'श्लेष्माऽ-
 भिष्यन्दिदेहानामि'ति पाठः सुगमः । स्यन्दू-प्रस्रवणे ।

यूषान् कुलत्थचणक-दाडिमादिकृतान् लघून् ।
 रूक्षांस्तित्तरसोपेतान् हृद्यान् रुचिकरान् पटून् ॥ ७१ ॥
 रक्ताद्याः शालयो जीर्णाः षष्टिकाश्च ज्वरे हिताः ।
 श्लेष्मोत्तरे वीततुषास्तथा वात्यकृता यवाः ॥ ७२ ॥
 ओदनस्तैः शृतो द्विस्त्रिः प्रयोक्तव्यो यथायथम् ।
 दोषदूष्यादिबलतो ज्वरघ्नकाथसाधितः ॥ ७३ ॥
 मुद्गाद्यैर्लघुभिर्यूषाः कुलत्थैश्च ज्वरापहाः ।
 कारवेल्लक-कर्कोट-बालमूलकपर्पटैः ॥ ७४ ॥
 वार्ताकनिम्बकुसुम-पटोलफलपल्लवैः ।
 अत्यन्तलघुभिर्मौसैर्जाङ्गलैश्च हिता रसाः ॥ ७५ ॥
 व्याघ्रीपरुषतर्कारी-द्राक्षाऽऽमलकदाडिमैः ।
 संस्कृताः पिप्पलीशुण्ठीधान्यजीरकसैन्धवैः ॥ ७६ ॥
 सितामधुभ्यां प्रायेण संयुता वा कृताऽकृताः ।
 अनम्लतक्रसिद्धानि रुच्यानि व्यञ्जनानि च ॥ ७७ ॥
 अच्छान्यनलसम्पन्नानि अनुपानेऽपि योजयेत् ।
 तानि कथितशीतं च वारि मद्यं च सात्म्यतः ॥ ७८ ॥
 सज्वरं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेद्बुधु ।
 श्लेष्मक्षयविबुद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७९ ॥
 यथोचितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधतः ।
 १ प्रागल्पवह्निर्भुञ्जानो न ह्यजीर्णेन पीड्यते ॥ ८० ॥
 सर्पिःपानकालमाह—
 कषायपानपथ्यान्नैर्दशाह-इति लङ्घिते ।

सर्पिर्दद्यात्कफे मन्दे 'वातपित्तोत्तरे' ज्वरे ॥ ८१ ॥
 पक्वेषु दोषेष्वमृतं, तद्विषोपममन्यथा^१ ।
 दशाहे स्यादतीतेऽपि ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ ८२ ॥
 लङ्घनादिक्रमं तत्र कुर्यादाकफसङ्क्षयात् ।
 देहधात्वबलत्वाच्च ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ॥ ८३ ॥
 रूक्षं हि तेजो ज्वरकृत्तेजसा रूक्षितस्य च ।
 वमनस्वेदकालाम्बुकषायलघुभोजनैः ॥ ८४ ॥
 यः स्यादतिबलो धातुः सहचारी सदागतिः ।
 तस्य संशमनं सर्पिर्दीप्तस्येवाम्बु वेश्मनः ॥ ८५ ॥
 वातपित्तजितामग्र्यं संस्कारमनुरुध्यते ।
 सुतरां तद्धृतो दद्याद्यथास्वौषधसाधितम् ॥ ८६ ॥
 विपरीतं ज्वरोऽप्याणं जयेत्पित्तं च शैत्यतः ।
 स्नेहाद्वातं घृतं तुल्ययोगसंस्कारतः कफम् ॥ ८७ ॥
 पूर्वं कषायाः सघृताः सर्वे योज्या यथामलम् ।
 त्रिफलापिचुमन्दत्वङ्मधुकं बृहतीद्वयम् ।
 समसूरदलं काथः सघृतो ज्वरकासहा ॥ ८८ ॥

पिप्पलीन्द्रयवधावनितित्ता-

सारिवाऽऽमलकतामलकीभिः ।

बिल्वमुस्तहिमपालनिसेव्यै-

द्राक्ष्याऽतिविषया स्थिरया च ॥ ८९ ॥

घृतमाशु निहन्ति साधितं ज्वरमग्निं विषमं हलीमकम् ।
 अरुचिं भृशतापमंसयोर्वमथुं पार्श्वशिरोरुजं क्षयम् ॥ ९० ॥

१. अन्यथा = दोषेषु-अपक्वेषु ।

तैल्वकं पवनजन्मनि ज्वरे
 योजयेच्चिबृतया विथोजितम् ।
 तिक्तकं वृषघृतं च पैत्तिके
 यच्च पालनिकया^१ शृतं हविः ॥ ९१ ॥
 विडङ्गसौवर्चलचन्यपाठा-
 व्योषाग्निसिन्धूद्भवयावशूकैः ।
 पलांशकैः क्षीरसमं घृतस्य
 प्रस्थं पचेज्जीर्णकफज्वरघ्नम् ॥ ९२ ॥

गुडूच्या रसकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
 मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धा ज्वरच्छिदः ॥ ९३ ॥
 जीर्णे घृते च भुञ्जीत मृदु मांसरसौदनम् ।
 बलं ह्यलं दोषहरं परं तच्च बलप्रदम् ॥ ९४ ॥
 कफपित्तहरा मुद्ग-कारवेल्लादिजा रसाः ।
 प्रायेण तस्मान्न हिता जीर्णे वातोत्तरे ज्वरे ॥ ९५ ॥
 शूलोदावर्तविष्टम्भजनना ज्वरवर्धनाः ।
 न शाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरः कुर्वीत शोधनम् ॥ ९६ ॥
 शोधनार्हस्य, वमनं^२ प्रागुक्तं तस्य योजयेत् ।
 आमाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम् ॥ ९७ ॥
 पक्वे तु शिथिले दोषे ज्वरे वा विषमद्यजे ।
 मोदकं त्रिफलाश्यामा-त्रिवृत्पिप्पलि^३केसरैः ॥ ९८ ॥

१. पालनिका = त्रायन्ती, हविर्घृतम् ।

२. प्रागुक्तम् = 'पिप्पलाभिर्युतान् गालान्-इति श्लो० ६-८

३. ह्रस्वद्वन्द्वोऽनुरोधात् ।

ससितामधुभिर्दद्याद्द्वयोषाद्यं वा विरेचनम् ।
 आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ॥ ९९ ॥
 त्रिफलां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ।
 विरिक्तानां च संसर्गा मण्डपूर्वा यथाक्रमम् ॥ १०० ॥
 च्यवमानं ज्वरोत्क्लिष्टमुपेक्षेत मलं सदा ।
 पक्वोऽपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्ठे कृतास्पदः ॥ १०१ ॥
 अतिप्रवर्तमानं वा पाचयन्सङ्ग्रहं नयेत् ।
 आमसङ्ग्रहणे दोषा दोषोपक्रम ईरिताः ॥ १०२ ॥
 पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ।
 प्रसुप्तं कृष्णसर्पं स कराग्रेण परामृशेत् ॥ १०३ ॥
 ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम् ।
 कामं तु पयसा तस्य^१ निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ १०४ ॥
 क्षीरोचितस्य ग्रक्षीण-श्लेष्मणो दाहतृड्वतः ।
 क्षीरं पित्तानिलार्तस्य पथ्यमप्यतिसारिणः ॥ १०५ ॥
 तद्वपुर्लङ्घनोत्तप्तं प्लुष्टं वनमिवाग्निना ।
 दिव्याम्बु जीवयेत्तस्य ज्वरं चाशु नियच्छति ॥ १०६ ॥
 संस्कृतं शीतमुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेव वा ।
 विभज्य काले युञ्जीत ज्वरिणं हन्त्यतोऽन्यथा ॥ १०७ ॥
 पयः सशुण्ठीखर्जूरमृद्वीकाशर्कराधृतम् ।
 शृतशीतं मधुयुतं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ १०८ ॥
 तद्वद् द्राक्षाबलायष्टी-सारिवाकणचन्दनैः ।
 चतुर्गुणेनाम्भसा वा पिप्पल्या वा शृतं पिबेत् ॥ १०९ ॥

१. निरूहैः कषायवस्तिभिः ।

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पाश्वशूलाच्चिरज्वरात् ।
 मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ ११० ॥
 शृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन^१ वा ज्वरात् ।
 धारोष्णं वा पयः पीत्वा विवृद्धानिलवर्चसः ॥ १११ ॥
 सरक्तपिच्छातिसृतेः सतृट्शूलप्रवाहिकात् ।
 सिद्धं शुण्डीवलान्याघ्नी-गोकण्टकगुडैः पयः ॥ ११२ ॥
 शोफमूत्रशकृद्घात-विवन्धज्वरकासजित् ।
 वृश्चीव-बिल्व-वर्षाभू-साधितं ज्वरशोफनुत् ॥ ११३ ॥
 शिंशिपासारसिद्धं वा क्षीरमाशु ज्वरापहम् ।
 निरुहस्तु बलं वह्निं विज्वरत्वं मुदं रुचिम् ॥ ११४ ॥
 दोषे युक्तः करोत्याशु पक्वे पक्काशयं गते ।
 पित्तं वा कफपित्तं वा पक्काशयगतं हरेत् ॥ ११५ ॥
 स्त्रंसनं त्रीनपि मलान् बस्तिः पक्वाशयाश्रयान् ।
 प्रक्षीणकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ॥ ११६ ॥
 दीप्ताग्नेर्बद्धशकृतः प्रयुञ्जीतानुवासनम्^२ ।
 पटोलनिम्बच्छदन-कटुकाचतुरङ्गुलैः ॥ ११७ ॥
 स्थिराबलागोक्षुरकमदनोशीरबालकैः ।
 पयस्यर्धोदके क्वाथं क्षीरशेषं विमिश्रितम् ॥ ११८ ॥
 कल्पितैर्मुस्त-मदन-कृष्णा-मधुक-वत्सकैः ।
 बस्तिर्मधुघृताभ्यां च पीडयेज्ज्वरनाशनम् ॥ ११९ ॥
 चतस्रः पर्णिनीर्यष्टी-फलोशीरनृपद्रुमान् ।

१. बालबिल्वेन = बिल्वशलाढुना ।

२. अनुवासनं = स्नेहबस्तिः ।

क्वाथयेत्कल्कयेद्यष्टी-शताङ्गाफलिनीफलम् ॥ १२० ॥
 मुस्तं च बस्तिः सगुडचौद्रसर्पिर्ज्वरापहः ।
 जीवन्तीं मदनं मेदां पिप्पलीं मधुकं वचाम् ॥ १२१ ॥
 ऋद्धिं रास्नां बलां बिल्वं शतपुष्पां शतावरीम् ।
 पिप्पुा क्षीरं जलं सर्पिस्तैलं चैकत्र साधितम् ॥ १२२ ॥
 ज्वरेऽनुवासनं दद्याद्यथास्नेहं यथामलम् ।
 ये च सिद्धिषु वच्यन्ते बस्तयो ज्वरनाशनाः ॥ १२३ ॥
 शिरोरुग्गौरवश्लेष्म-हरमिन्द्रियबोधनम् ।
 जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्यान्नस्यं विरेचनम् ॥ १२४ ॥
 स्नेहिकं शून्यशिरसो दाहार्ते पित्तनाशनम् ।
 धूमगण्डूपकवलान् यथादोषं च कल्पयेत् ॥ १२५ ॥
 प्रतिश्यायास्यवैरस्यशिरःकण्ठामयापहान् ।
 अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम् ॥ १२६ ॥
 धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ।
 यथोपशयसंस्पर्शान् शीतोष्णद्रव्यकल्पितान् ॥ १२७ ॥
 अभ्यङ्गालेपसेकादीन् 'ज्वरे जीर्णे त्वगाश्रिते' ।
 कुर्यादञ्जनधूमांश्च तथैवाऽऽगन्तुजेऽपि' तान् ॥ १२८ ॥
 दाहे सहस्रधौतेन सर्पिषाऽभ्यङ्गमाचरेत् ।
 सूत्रोक्तैश्च गणैस्तैस्तै, मधुराम्लकषायकैः ॥ १२९ ॥
 दूर्वादिभिर्वा पित्तघ्नैः शोधनादिगणोदितैः ।
 शीतवीर्यैर्हिमस्पर्शैः काथकल्कीकृतैः पचेत् ॥ १३० ॥
 तैलं सक्षीरमभ्यङ्गात्सद्यो दाहज्वरापहम् ।
 शिरो गात्रं च तैरेव नाऽतिपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ १३१ ॥

तत्काथेन परीपेकमवगाहं च योजयेत् ।
 तथाऽऽरनालसलिल-क्षीरशुक्तघृतादिभिः ॥ १३२ ॥
 कपित्थमातुलिङ्गाम्ल-विदारीरोधदाडिमैः ।
 बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टजेन वा ॥ १३३ ॥
 लिप्तेऽङ्गे दाहरुङ्गमोहाश्छर्दिस्तृष्णा च शाम्यति ।
 यो वर्णितः पित्तहरो दोषोपक्रमणे क्रमः ॥ १३४ ॥
 तं च शीलयतः शीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः ।

तगरादितैलम् ।

वीर्योष्णैरुष्णसंस्पर्शैस्तगरागुरुकुङ्कुमैः ॥ १३५ ॥
 कुष्ठस्थौणेयशैलेय-सरलामरदारुभिः ।
 नख-रास्ना-मुर-वचा-चण्डैलाद्वयचोरकैः ॥ १३६ ॥
 पृथ्वीका-शिग्रु-सुरसा-हिंसा-ध्यामक-सर्षपैः ।
 दशमूलाऽमृतैरण्ड-द्वय-पत्तूर-रोहिषैः ॥ १३७ ॥
 तमाल-पत्र-भूनिम्ब-शल्लकी-धान्य-दीप्यकैः ।
 मिशि-माष-कुलत्थाम्नि-प्रकीर्यानाकुलीद्वयैः ॥ १३८ ॥
 अन्यैश्च तद्विधैर्द्रव्यैः शीते तैलं ज्वरे पचेत् ।
 कथितैः कलिकतैर्युक्तैः सुरासौवीरकादिभिः ॥ १३९ ॥
 तेनाभ्यञ्ज्यात्सुखोष्णेन तैः सुपिष्टैश्च लेपयेत् ।
 कवोष्णैस्तैः परीपेकमवगाहं च कल्पयेत् ॥ १४० ॥
 केवलैरपि तद्वच्च शुक्तगोमूत्रमस्तुभिः ।
 १ आरग्वधादिवर्गं च पानाभ्यञ्जनलेपनैः ॥ १४१ ॥

१. आरग्वधेन्द्रयवेत्यादिनोक्तम्—अष्टाङ्गे सू० १५।१.७।

धूपानगरुजान् यांश्च ^१वक्ष्यते विषमज्वरे ।
 अग्न्यनग्निकृतान्स्वेदान् स्वेदिभेषजभोजनम् ॥ १४२ ॥
 गर्भभूवेशमशयनं कुथाकम्बलरत्नलकान् ।
 निर्धूमदीप्तैरङ्गारैर्हसन्तीश्च हसन्तिकाः ॥ १४३ ॥
 मद्यं सन्ध्यूषणं तक्रं कुलत्थग्रीहिकोद्वान् ।
 संशीलयेद्वेपथुमान् यच्चाऽन्यदपि पित्तलम् ॥ १४४ ॥
 दयिताः स्तनशालिन्यः पीना विभ्रमभूषणाः ।
 यौवनासवमत्ताश्च तमालिङ्गेयुरङ्गनाः ॥ १४५ ॥
 वीतशीतं च विज्ञाय तास्ततोऽपनयेत्पुनः ।

सन्निपातचिकित्सा ।

वर्धनेनैकदोषस्य क्षणो नोच्छ्रितस्य च ॥ १४६ ॥
^१कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यकक्षाजयेन्मलान् ।
 सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः ॥ १४७ ॥
 शोफः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ।
 रक्तावसेचनैः शीघ्रं सर्पिःपानैश्च तं जयेत् ॥ १४८ ॥

१. अगरुजान् यांश्च धूपान् विषमज्वराधिकारे वक्ष्यते (ग्रन्थ-
 कारः) तांश्च कल्पयेदित्यन्वयः ।

२. कफश्च स्थानञ्च तयोरानुपूर्वी = क्रमस्तया, तदुक्तम्—सन्नि-
 पाते ज्वरे पूर्वं कुर्याद्रामकफापहम्, पश्चात् श्लेष्मणि सङ्क्षीणे, शम-
 येत्पित्तमारुतौ । इति । 'स्थानजयेद्धि पूर्वम्' इति च, अन्येषु तु-
 ज्वरेषु वातस्याऽनुजयेत्पित्तं पित्तस्याऽनुजयेत् कफम्, इति सामान्य-
 वचनस्य प्रवृत्तिर्बोद्ध्या । च० चि० अ० ३।२८७ टि० ।

। कफपित्तघ्नैर्नावनैः कवलग्रहैः ।

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरो यस्य न शाम्यति ॥ १४९ ॥

शाखानुसारी, तस्याशु मुञ्चेद्वाहोः क्रमात्सिराम् ।

अयमेव विधिः कार्यो विषमेऽपि यथायथम् ॥ १५० ॥

ज्वरे विभज्य वातादीन् यश्चानन्तरमुच्यते ।

पटोलकटुकामुस्ताप्राणदामधुकैः कृताः ॥ १५१ ॥

त्रिचतुःपञ्चशः क्वाथा विषमज्वरनाशनाः ।

योजयेन्निफलां पथ्यां गुडूचीं पिप्पलीं पृथक् ॥ १५२ ॥

तैस्तैर्विधानैः सगुडैर्भल्लातकमथाऽपि वा ।

लङ्कनं बृंहणं चाऽपि ज्वरागमनवासरे ॥ १५३ ॥

प्रातः सतैलं लशुनं प्राग्भक्तं वा तथा घृतम् ।

जीर्णं तद्वदधिपयस्तक्रं सर्पिश्च पट्पलम् ॥ १५४ ॥

^१कल्याणकं पञ्चगव्यं तिक्ताख्यं ^२वृषसाधितम् ।

त्रिफलाकोलतर्कारीक्वाथदध्ना शृतं घृतम् ॥ १५५ ॥

तिल्वकत्वक्कृतावापं विषमज्वरजित्परम् ।

सुरां तीक्ष्णं च यन्मद्यं शिखितित्तिरिक्कुक्कुटान् ॥ १५६ ॥

मांसं मध्योष्णवीर्यं च सहान्नेन प्रकामतः ।

सेवित्वा तदहः स्वप्यादथवा पुनरुल्लिखेत् ॥ १५७ ॥

सर्पिषो महतीं मात्रां पीत्वा तच्छर्दयेत्पुनः ।

नीलिनीमजगन्धां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥ १५८ ॥

१. कल्याणकं घृतम्—उन्मादप्रतिषेधोक्तम् । .पञ्चगव्यमपस्मार-
चिकित्सोक्तम्, तिक्ताख्यं कुष्ठप्रतीकारोक्तम्, वृषसाधितं रक्तपित्तो-
क्तम्, घृतम् । २. वृषोऽटरूपः सिंहास्यः ।

पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः ।

^१मनोह्वा सैन्धवं कृष्णा तैलेन नयनाञ्जनम् ॥ १५९ ॥

योज्यं हिङ्गुसमा व्याघ्री-वसा नस्यं ससैन्धवम् ।

पुराणसर्पिः सिंहस्य वसा तद्वत्ससैन्धवा ॥ १६० ॥

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी ।

सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपो विड् वा बिडालजा ॥ १६१ ॥

पुर-ध्याम-वचा-सर्ज-निम्बाऽर्काऽगरुदारुभिः ।

धूपो ज्वरेषु सर्वेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः ॥ १६२ ॥

धूपनस्याञ्जनत्रासा ये चोक्ताश्चित्तवैकृते^२ ।

^३दैवाश्रयं च भैषज्यं ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति^४ ॥ १६३ ॥

विशेषाद्विषमान्प्रायस्ते ह्यागन्त्वनुबन्धजाः ।

यथास्वं च सिरां विध्येदशान्तौ 'विषमज्वरे' ॥ १६४ ॥

केवलानिलवीसर्प-विस्फोटाभिहतज्वरे ।

सर्पिःपानं हिमालेप-सेकमांसरसाशनम् ॥ १६५ ॥

कुर्याद्यथास्वमुक्तं च रक्तमीक्षादिसाधनम् ।

१. मनोह्वा = मनःशिला । २. चित्तवैकृते = उन्मादेऽपस्मारे च ।

३. दैवाश्रयं भैषज्यं शान्तिकषौष्टिकादिकं चरकोक्तम्—सोमं सानुचरं देवम्—इत्यारभ्य-जपहोमप्रदानेन, वेदानां श्रवणेन च, ज्वरादिमुच्यते शीघ्रम्, साधूनां दर्शनेन च-इत्यन्तेनोक्तम् चर० चि० ३ अ० ३११-३१५ ।

४. व्यपोहति 'उपसर्गादस्यत्यूह्योर्वेति वाच्यमि'ति, ऊह-वितर्के इत्यस्मात्परस्मैपदम् ।

'ग्रहोत्थे' भूतविद्योक्तं बलिमन्त्रादिसाधनम् ॥ १६६ ॥
 ओषधीगन्धजे' पित्तशमनं विषजिद्विपे ।
 हृष्टैरर्थैर्मनोज्ञैश्च यथादोषशमेन च ॥ १६७ ॥
 हिताहितविवेकैश्च ज्वरं क्रोधादिजं जयेत् ।
 क्रोधजो याति कामेन शान्तिं क्रोधेन कामजः ॥ १६८ ॥
 भयशोकोद्भवौ ताभ्यां भीशोकाभ्यां तथेतरौ ।
 शापार्थवर्णमन्त्रोत्थे विधिर्देवव्यपाश्रयः ॥ १६९ ॥
 ते ज्वराः केवलाः पूर्वं व्याप्यन्तेऽनन्तरं मलैः ।
 तस्माद्दोषानुसारेण तेष्वहारादि कल्पयेत् ॥ १७० ॥
 न हि ज्वरोऽनुबध्नाति मारुताद्यैर्विना कृतः ।
 ज्वरकालं स्मृतिं चास्य हारिभिर्विषयैर्हरेत् ॥ १७१ ॥
 करुणाद्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम् ।
 त्यजेदाबललाभाच्च व्यायामस्नानमैथुनम् ॥ १७२ ॥
 गुर्वसाल्प्यविदाह्यन्नं यच्चान्यज्ज्वरकारणम् ।
 न विज्वरोऽपि सहसा^१ सर्वाङ्गीनो भवेत्तथा ।
 निवृत्तोऽपि ज्वरः शीघ्रं व्यापादयति दुर्बलम् ॥ १७३ ॥
 सद्यः प्राणहरो यस्मात्तस्मात्तस्य विशेषतः ।
 तस्यां तस्यामवस्थायां तत्तत्कुर्याद्विषग्जितम्^२ ॥ १७४ ॥

१. सर्वाणि च तानि अन्नानि सर्वान्नानि = पथ्याऽपथ्यरूपाणि, तानि भक्षयति-इति सर्वाङ्गीनः ।

२. भिषजः जयन्ति अनेनेति भिषग्जितम् = औषधम् । बाहुल-
 कात्करणे क्तः । कृतो बहुलम्-इति भाष्योक्तेः ।

ओषधयो मणयश्च सुमन्त्राः
 साधुगुरुद्विजदैवतपूजाः ।
 प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च
 ग्रन्थपि विष्णुकृतं ज्वमुग्रम्^१ ॥ १७५ ॥
 इति चिकित्सास्थाने प्रथमोऽध्यायः ।



द्वितीयोऽध्यायः ।

^१अथातो रक्तपित्तचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'ऊर्ध्वगं बलिनोऽवेगमेकदोषानुगं नवम् ।
 रक्तपित्तं सुखे काले साधयेन्निरुपद्रवम् ॥ १ ॥
 अधोगं यापयेद्रक्तं यच्च दोषद्वयानुगम् ।
 शान्तं शान्तं पुनः कुप्यन्मार्गान्मार्गान्तरं च यत् ॥ २ ॥
 'अतिप्रवृत्तं मन्दाग्नेस्त्रिदोषं द्विपथं त्यजेत् ।
 ज्ञात्वा निदानमयनं मलावनुमलौ बलम् ।
 देशकालाद्यवस्थां च रक्तपित्ते प्रयोजयेत् ॥'
 लङ्घनं बृंहणं चादौ शोधनं शमनं तथा ।

१. उग्रं = भयङ्करम्, उग्रकृतञ्च, उग्रः कपदीं श्रीकण्ठः । शीताऽ-
 भिप्रायो वैष्णवज्वरः, उष्णामिप्रायो माहेश्वरज्वरः । दोषकवृत्तमिदं
 भभभाद्गौ । इति ।

२. अथ ज्वरचिकित्सानन्तरं यतः ज्वरसन्तापजम्भं रक्तपित्तम्
 अतस्तस्य प्रतीकारं विशेषेण कथयिष्यामः ।

सन्तर्पणोत्थं बलिनो बहुदोषस्य साधयेत् ॥ ३ ॥
 ऊर्ध्वभागं विरेकेण वमनेन त्वधोगतम् ।
 शमनैर्बृंहणैश्चान्यल्लङ्घ्यबृंह्यानवेक्ष्य च ॥ ४ ॥
 ऊर्ध्वं प्रवृत्ते शमनौ रसौ तिक्तकषायकौ ।
 उपवासश्च निःशुण्ठीषडङ्गोदकपायिनः ॥ ५ ॥
 अधोगे रक्तपित्ते तु बृंहणो मधुरो रसः ।
 ऊर्ध्वगे तर्पणं योज्यं, प्राक्च पेया त्वधोगते ॥ ६ ॥
 अश्नतो बलिनोऽशुद्धं न धार्यं तद्धि रोगकृत् ।
 धारयेदन्यथा शीघ्रमग्निवच्छीघ्रकारि तत् ॥ ७ ॥
 त्रिवृच्छ्यामाकषायेण कल्केन च सशर्करम् ।
 साधयेद्विधिवल्लेहं लिह्यात्पाणितलं ततः ॥ ८ ॥
 त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
 मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तशोफज्वरापहः ॥ ९ ॥
 त्रिवृत्समसिता तद्वत् पिप्पलीपादसंयुता ।
 वमनं ^१फलसंयुक्तं तर्पणं ससितामधु ॥ १० ॥
 ससितं वा जलं क्षौद्रयुक्तं वा मधुकोदकम् ।
 क्षीरं वा रसमिक्षोर्वाऽऽशुद्धस्यानन्तरो विधिः ॥ ११ ॥
 यथास्वं मन्थपेयादिः प्रयोज्यो रक्षता बलम् ।
 मन्थो ज्वरोक्तो द्राक्षादिः पित्तघ्नैर्वा फलैः कृतः ॥ १२ ॥
 मधुखर्जूरमृद्वीका-परूषकसिताम्भसा ।

१. वमने निरुपपद-फलशब्दः मदनफलस्य (मैनफल)
 वाचकः, तदाह-“फल-नाम विशेषतः स्वतो, लभतेन्येषु फलेषु सत्स्वपि”
 च० सि० ११।१४।

मन्थो वा पञ्चसारेण सघृतैर्लाजसक्तुभिः ॥ १३ ॥
 दाडिमामलकाम्लो वा मन्दाग्न्यम्लामिलापिणाम् ।
 कमलोत्पलकिञ्जल्कपृश्निपर्णीप्रियङ्गुकाः ॥ १४ ॥
 उशीरं शावरं रोध्नं शृङ्गवेरं कुचन्दनम् ।
 ह्रीवेरं धातकीपुष्पं विल्वमध्यं दुरालभा ॥ १५ ॥
 अर्धाधैर्विहिताः पेया, वक्ष्यन्ते पादयौगिकाः ।
 भूनिम्बसेव्यजलदा, मसूराः पृश्निपर्ण्यपि ॥ १६ ॥
 विदारिगन्धा मुद्गाश्च, बला सर्पिर्हरेणुका ।
 जाङ्गलानि च मांसानि शीतवीर्याणि साधयेत् ॥ १७ ॥
 पृथक्पृथग्जले तेषां यवागूः कल्पयेद्रसे ।
 शीताः सशर्कराक्षौद्रास्तद्वन्मांसरसानपि ॥ १८ ॥
 ईषदम्लाननम्लान्वा घृतभृष्टान्सशर्करान् ।
 शूकशिम्बीभवं धान्यं रक्तं शाकं च शस्यते ॥ १९ ॥
 अन्नस्वरूपविज्ञाने यदुक्तं लघु शीतलम् ।
 पूर्वोक्तमम्बु पानीयं पञ्चमूलेन वा शृतम् ॥ २० ॥
 लघुना शृतृशीतं वा मध्वरभो वा फलाम्बु वा ।
 शशः सवास्तुकः शस्तो विबन्धे तित्तिरिः पुनः ॥ २१ ॥
 उदुम्बरस्य निर्यूहे साधितो मारुतेऽधिके ।
 प्लक्षस्य बर्हिणस्तद्वन्न्यग्रोधस्य च कुक्कुटः ॥ २२ ॥
 यत्किञ्चिद्रक्तपित्तस्य 'निदानं' तच्च वर्जयेत् ।
 वासारसेन फलिनी मृद्रोघ्राञ्जनमाक्षिकम् ॥ २३ ॥
 पित्तासृक् शमयेत्पातं निर्यासो वाऽटरूपकात् ।
 शर्करामधुसंयुक्तः केवलो वा शृतोऽपि वा ॥ २४ ॥

वृषः सद्यो जयत्यस्त्रं स ह्यस्य परमौषधम्^१ ।
 पटोलमालतीनिम्ब-चन्दनद्वयपद्मकम् ॥ २५ ॥
 रोध्रो वृषस्तण्डुलीयः कृष्णामृन्मदयन्तिका ।
 शतावरी गोपकन्या काकोल्यौ मधुयष्टिका ॥ २६ ॥
 रक्तपित्तहराः क्वाथास्त्रयः^२ समधुशर्कराः ।
 पलाशवलकक्वाथो वा सुशीतः शर्करान्वितः ॥ २७ ॥
 पिबेद्वा मधुसर्पिर्भ्यां गवाश्वशकृतो रसम् ।
 सक्षौद्रं ग्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शकृत् ॥ २८ ॥
 अतिनिःसृत रक्तश्च क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ।
 जाङ्गलं भक्षयेद्वाजमामपित्तयुतं यकृत् ॥ २९ ॥
 चन्दनोशीरजलदलाजमुद्रकणायवैः ।
 बलाजले पर्युषितैः कषायो रक्तपित्तहा ॥ ३० ॥
 प्रसादश्चन्दनाम्भोजसेव्य-मृद्भृष्टलोष्टजः ।
 सुशीतः ससिताक्षौद्रः शोणितातिप्रवृत्तिजित् ॥ ३१ ॥
 आपोध्य वा नवे कुम्भे प्लावयेदिक्षुगण्डिकाः ।
 स्थितं तद्गुप्तमाकाशे रात्रिं प्रातः शृतं जलम् ॥ ३२ ॥
 मधुमृद्वीकजाम्भोजकृतोत्तंसं च तद्गुणम् ।
 ये च पित्तज्वरे चोक्ताः कषायास्तांश्च योजयेत् ॥ ३३ ॥
 कषायैर्विविधैरेभिर्दीप्तेऽग्नौ विजिते कफे ।

१. तदुक्तं—वासायां विद्यमानायामाशयां जीवितस्य च ।

किमर्थं रक्तपित्ती च क्षयी कासी च सीदति ॥ इति ।

२. पटोल-मालती-प्रभृतिभिः पथाद्वैरक्तास्त्रयः क्वाथाः ।

रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः ॥ ३४ ॥

युञ्ज्याच्छागं शृतं तद्वद्भव्यं पञ्चगुणेऽम्भसि ।

पञ्चमूलेन लघुना शृतं वा ससितामधु ॥ ३५ ॥

जीवकर्षभकद्राक्षाबलागोक्षुरनागरैः ।

पृथक्पृथक् शृतं क्षीरं सघृतं सितयाऽथवा ॥ ३६ ॥

गोकण्टकाऽभीरशृतं पर्णिनीभिस्तथा पयः ।

हन्त्याशु रक्तं सरुजं विशेषान्मूत्रमार्गगम् ॥ ३७ ॥

विष्णुमार्गगे विशेषेण हितं मोचरसेन तु ।

^१वटप्ररोहैः शुङ्गैर्वा शुण्ठयुदीच्योत्पलैरपि ॥ ३८ ॥

रक्तातिसारदुर्नाम-चिकित्सां चाऽत्र योजयेत् ।

पीत्वा कषायान् पयसा भुञ्जीत पयसैव च ॥ ३९ ॥

कषाययोगैरेभिर्वा विपक्वं पाययेद्घृतम् ।

समूलमस्तकं क्षुण्णं वृषमष्टगुणेऽम्भसि ॥ ४० ॥

पक्त्वाऽष्टांशावशेषेण घृतं तेन विपाचयेत् ।

पुष्पगर्भं च तच्छीतं सक्षौद्रं पित्तशोणितम् ॥ ४१ ॥

पित्तगुल्मज्वरश्वास-कासहृद्रोगकामलाः ।

तिमिरभ्रमवीसर्प-स्वरसादांश्च नाशयेत् ॥ ४२ ॥

पालाशवृन्तस्वरसे तद्गर्भं च घृतं पचेत् ।

सक्षौद्रं तच्च रक्तघ्नं तथैव त्रायमाणया ॥ ४३ ॥

रक्ते सपिच्छे सकफे ग्रथिते कण्ठमार्गगे ।

१. वटस्य = न्यग्रोधस्य-प्ररोहैरवरोहैः, शुङ्गैः = सम्पुटितनव-
पल्लवैः । शृङ्गैरिति पाठेऽपि शुङ्गा एव ग्राह्याः शुङ्गशब्दः उपनिषत्सु
प्रयुक्तः । 'वटावरोहैर्बटशुङ्गकैर्वा' इति चरकः चि० अ० ४।८६।

लिङ्गान्माक्षिकसर्पिभ्यां क्षारमुत्पलनालजम् ॥ ४४ ॥
 पृथक्पृथक् तथाभोजरेणुश्यामामधूकजम् ।
 गुदागमे विशेषेण शोषिते बस्तिरिष्यते ॥ ४५ ॥
 घ्राणगे रुधरे शुद्धे नावनं चानुषेचयेत् ।
 कषाययोगान् पूर्वोक्तान् क्षीरेच्चादिरसाऽऽप्लुतान् ॥ ४६ ॥
 क्षीरादीन्ससितांस्तोयं केवलं वा जलं हितम् ।
 रसो दाडिमपुष्पाणामाम्रोत्थः शाद्वलस्य वा ॥ ४७ ॥
 कल्पयेच्छीतवर्गं च प्रदेहाभ्यञ्जनादिषु ।
^१यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तश्च भेषजम् ।
 रक्तपित्ते हितं तच्च क्षतक्षीणे हितं च यत् ॥ ४८ ॥
 इति चिकित्सास्थाने द्वितीयोऽध्यायः ।



तृतीयोऽध्यायः ।

^२अथाऽतः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘केवलानिलजं’^३ कासं स्नेहैरादावुपाचरेत् ।

१. यच्च पित्तज्वरे बहिर्भेषजं = प्रलेपादिकम्-अन्तर्भेषजं पेया
 लेह्यादिकम्, प्रोक्तं = प्रसिद्ध्या कथितं तद् रक्तपित्ते हितम्, यच्च
 क्षतक्षीणे प्रोक्तम्-तच्च रक्तपित्ते हितमित्यतिदेशः । इति ।

२. अथ = रक्तपित्तचिकित्सानन्तरं यतः रक्तपित्तोपद्रवेषु कास
 आशुकारी-अतः, तस्य चिकित्सितमेव व्याख्यास्यामः । ३. रूक्षस्या-
 निलजं कासमादौ स्नेहैरुपाचरेदिति, चरकः, चि. १८।३२ ।

वातघ्नसिद्धैः स्निग्धैश्च पेयायूषरसादिभिः ॥ १ ॥

लेहैर्धूमैस्तथाभ्यङ्गैः स्वेदसेकावगाहनैः ।

बस्तिभिर्वद्धविड्वातं^१ सपित्तं त्वौर्ध्वभक्तिकैः ॥ २ ॥

घृतैः क्षीरैश्च सकफं जयेत्स्नेहविरचनैः ।

अथ स्नेहाः ।

गुह्वचीकण्टकारीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे ॥ ३ ॥

प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्ध्विदीपनः ।

क्षाररास्नावचाहिष्णुपाठायष्ट्याह्वधान्यकैः ॥ ४ ॥

द्विशानैः सर्पिषः प्रस्थः पञ्चकोलयुतैः पचेत् ।

दशमूलस्य निर्यूहे पीतो मण्डानुपायिना ॥ ५ ॥

सकासश्वासहृत्पार्श्वग्रहणीरोगगुल्मनुत् ।

द्रोणेऽपां साधयेद्द्राक्षादशमूलशतावरीः ॥ ६ ॥

पलोन्मिता द्विकुडवं कुलत्थं बदरं यवम् ।

तुलार्धं चाजमांसस्य तेन साध्यं घृताढकम् ॥ ७ ॥

समक्षीरं पलांशैश्च जीवनीयैः समीक्ष्य तत् ।

प्रयुक्तं वातरोगेषु पाननावन-वस्तिभिः ॥ ८ ॥

पञ्चकासान् शिरःकम्पं योनिवङ्गणवेदनाम् ।

सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलान् जयेत् ॥ ९ ॥

^२विदार्यादिगण-क्वाथ-कल्कसिद्धं च कासजित् ।

१. बद्धौ विड्वातो यस्मिन्कासे तं कासं बस्तिभिर्जयेत् । सपित्तं वातप्रधानं कासम्-और्ध्वभक्तिकैः = भोजनोपरिपीतैः वातघ्नसिद्धैः घृतैः क्षीरैश्च जयेत् । सकफं वातकासं स्नेहविरचनैर्जयेत् ।

२. विदार्यादिगणस्य क्वाथेन कल्केन वा सिद्धं घृतं कासं जयति=

अशोकबीजस्रवक-जन्तुधनाञ्जनपद्मकैः ॥ १० ॥
 सबिडैश्च घृतं सिद्धं तच्चूर्णं वा घृतप्लुतम् ।
 लिङ्गात्पयश्चानुपिबेदाजं कासाभिपीडितः ॥ ११ ॥
 विडङ्गं नागरं रास्ना पिप्पली हिङ्गुसैन्धवम् ।
 भार्ङ्गी शारश्च तच्चूर्णं पिबेद्वा घृतमात्रया ॥ १२ ॥
 सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिध्माहताग्निषु ।
 'दुरालभां शृङ्गवेरं शठीं द्राक्षां सितोपलाम् ॥ १३ ॥
 लिङ्गात्कर्कटशृङ्गीं च कासे तैलेन वातजे ।
 दुःस्पर्शां पिप्पलीं मुस्तां भार्ङ्गीं कर्कटकीं शठीम् ॥ १४ ॥
 पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितान्यवलेहयेत् ।
 तद्वत्सकृष्णां शुण्ठीं च सभार्ङ्गीं तद्वदेव च ॥ १५ ॥
 पिबेच्च कृष्णां कोष्णेन सलिलेन ससैन्धवाम् ।
 मस्तुना ससितां शुण्ठीं दध्ना वा कणरेणुकाम् ॥ १६ ॥
 पिबेद्बदरमज्जो वा मदिरादधिमस्तुभिः ।
 अथवा पिप्पलीकल्कं घृतभृष्टं ससैन्धवम् ॥ १७ ॥
 कासी सपीनसो धूमं स्नेहिकं विधिना पिबेत् ।
 हिध्माश्वासोक्तधूमांश्च क्षीरमांसरसाशनः ॥ १८ ॥
 ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमपष्टिकान् ।
 रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्वितान् ॥ १९ ॥
 यवानी-पिप्पली-बिल्वमध्य-नागर-चित्रकैः ।
 रास्नाऽज्जाजीपृथक्पर्णीपलाशशठिपौष्करैः ॥ २० ॥

अभिमवतीति कासजित् । जि जि — अभिमवे ।

१. दुरालभा = यवासः । शृङ्गवेरम् = आर्द्रकम् । शठी = कचूरः ।

सिद्धां स्निग्धाम्ललवणां पेयामनिलजे पिबेत् ।
 कटिहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिध्माप्रणाशिनीम् ॥ २१ ॥
 दशमूलरसे तद्वत् पञ्चकोलगुडान्विताम् ।
 पिबेत्पेयां समतिलां क्षैरेयीं वा ससैन्धवाम् ॥ २२ ॥
 मात्स्यकौक्कुटवाराहैर्मसैर्वा साज्यसैन्धवाम् ।
 वास्तुको वायसीशाकं कासघ्नः सुनिषण्णकः ॥ २३ ॥
 कण्टकार्याः फलं पत्रं बालं शुष्कं च मूलकम् ।
 स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः, क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ २४ ॥
 दधिमस्त्वारनालाम्ल-फलाम्बुमदिराः पिबेत् ।

अथ पित्तकासः ।

‘पित्तकासे’ तु सकफे वमनं सर्पिषा हितम् ॥ २५ ॥
 तथा मदनकाशमर्य^१ मधुककथितैर्जलैः ।
 फलयष्ट्याङ्गकल्कैर्वा विदारीक्षुरसाप्लुतैः ॥ २६ ॥
 पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
 युञ्ज्याद्विरेकाय युतां घनश्लेष्मणि तित्तकैः ॥ २७ ॥
 हृतदोषो हिमं स्वादु स्निग्धं संसर्जनं भजेत् ।
 घने कफे तु शिशिरं रुचं तित्तोपसंहितम् ॥ २८ ॥
 लेहः पैत्ते सिताधान्रीक्षौद्रद्राक्षाहिमोत्पलैः ।
 सकफे साब्दमरिचः, सघृतः सानिले हितः ॥ २९ ॥
 मृद्धीकार्धशतं त्रिंशत्पिप्पलीः शर्करा पलम् ।
 लेहयेन्मधुना गोर्वा^२ क्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥ ३० ॥

१, मधुकं = यष्टिमधु ।

२. वा = अथवा क्षीरमेव पिबति क्षीरपस्तस्य क्षीरमात्राशिनः

त्वगोलाव्योषमृद्धीकापिप्पलीमूलपौष्करैः ।
 लाजमुस्ताशठीरास्नाधात्रीफलविभीतकैः ॥ ३१ ॥
 शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिल्लहो हृद्रोग-कासहा ।
 मधुरैर्जङ्गलरसैर्यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ३२ ॥
 मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ।
 घनश्लेष्मणि लेहाश्च तिक्तका मधुसंयुताः ॥ ३३ ॥
 शालयः स्युस्तनुकफे पष्टिकाश्च रसादिभिः ।
 शर्कराम्भोऽनुपानार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसाः पयः ॥ ३४ ॥
 काकोलीबृहतीमेदाद्वयैः सवृषणागरैः ।
 पित्तकासे रसक्षीरपेयायूषान् प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥
 द्राक्षां कणां पञ्चमूलं तृणाल्यं च पचेज्जले ।
 तेन क्षीरं शृतं शीतं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ३६ ॥
 साधितां तेन पेयां वा सुशीतां मधुनाऽन्विताम् ।
 शठीहीवेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ॥ ३७ ॥
 पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्च्छितम् ।
 शर्करां जीवकं मुद्गमाषपर्ण्यां दुरालभाम् ॥ ३८ ॥
 कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः क्षीरेणाष्टगुणेन तत् ।
 पानभोजनलेहेषु प्रयुक्तं पित्तकासजित् ॥ ३९ ॥
 लिङ्गाद्वा चूर्णमेतेषां कषायमथवा पिबेत् ।

सतः गोः = अप्रसूतायाः अरुग्णायास्तरुणाया वन्यतृण-चरण-
 परायाः शकृतः = पटपूतस्य गोमयस्य रसं कोष्णं मधुना पिबेत्
 पित्तकासीत्येको योगः ।

अथ कफकासः ।

‘कफकासी’ पिबेदादौ सुरकाष्ठात्प्रदीपितात् ॥ ४० ॥
 स्नेहं परिस्त्रुतं व्योषयवक्षारावचूर्णितम् ।
 स्निग्धं विरेचयेद्दूर्ध्वमधो मूर्ध्नि च युक्तितः ॥ ४१ ॥
 तीक्ष्णैर्विरेकैर्बलिनं संसर्गां चास्य योजयेत् ।
 यवमुद्रकुलत्थान्नैरुष्णरुचैः कटूत्कटैः ॥ ४२ ॥
 कासमर्दकवार्ताकव्याघ्रीक्षारकणान्वितैः ।
 धान्वबैल्वरसैः स्नेहैस्तिलसर्षपनिम्बजैः ॥ ४३ ॥
 दशमूलाम्बु घर्मांम्बु मद्यं मध्वग्बु वा पिबेत् ।
 मूलैः पौष्करशम्पाकपटोलैः संस्थितं निशाम् ॥ ४४ ॥
 पिबेद्द्वारि सहस्रौद्रं कालेष्वाप्तस्य वा त्रिषु ।
 ‘पिप्पली पिप्पलीमूलं’ शृङ्गवेरं बिभीतकम् ॥ ४५ ॥
 शिखिकुक्कुटपिच्छानां मपी क्षारो यवोद्भवः ।
 विशाला पिप्पलीमूलं त्रिवृता च मधुद्रवाः ॥ ४६ ॥
 कफकासहरा लेहास्त्रयः श्लोकार्धयोजिताः ।
 मधुना मरिचं लिङ्घान्मधुनैव च जोङ्गकम् ॥ ४७ ॥
 पृथग्रसांश्च मधुना व्याघ्रीवार्ताकभृङ्गजान् ।
 कासघ्नस्याश्वशकृतः सुरसस्यासितस्य च ॥ ४८ ॥
 देवदारुशठीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभाः ।
 पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्री सितोपला ॥ ४९ ॥
 लाजा सितोपला सर्पिः शृङ्गी धात्रीफलोद्भवा ।

१. पिप्पलीप्रभृतिभिः श्लोकार्धैर्योजिता मधुना द्रवाः किलन्नाः-
 त्रयो लेहाः कफजं कासं हरन्तीत्यर्थः ‘हरतेरनुषमनेऽच्’ ।

भधुतैलयुता लेहास्त्रयो वातानुगे कफे ॥ ५० ॥
 द्वे पले दाडिमादष्टौ गुडाद्वयोषात्पलत्रयम् ।
 रोचनं दीपनं स्वर्यं पीनसश्वासकासजित् ॥ ५१ ॥
 गुडश्चरौषणकणादाडिमं श्वासकासजित् ।
 क्रमात्पलद्वयार्धार्धकर्षार्धार्धपलोन्मितम् ॥ ५२ ॥
 पिबेज्ज्वरोक्तं पथ्यादि सशृङ्गीकं च पाचनम् ।
 अथवा दीप्यकत्रिवृद्विशालाघनपौष्करम् ॥ ५३ ॥
 सकणं कथितं मूत्रे कफकासी जलेऽपि वा ।
 तैलभृष्टं च वैदेहीकल्काक्षं ससितोपलम् ॥ ५४ ॥
 पाययेत्कफकासघ्नं कुलिथसलिलाप्लुतम् ।
 दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ॥ ५५ ॥
 पुष्कराद्दशठीबिस्वसुरसाव्योषहिङ्गुभिः ।
 पेयानुपानं तत्सर्पिर्वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ५६ ॥
 निर्गुण्डीपत्रनिर्याससाधितं कासजित् घृतम् ।
 घृतं रसे विडङ्गानां व्योषगर्भं च साधितम् ॥ ५७ ॥
 पुनर्नवशिवाटिका-सरलकासमर्दामृता-
 पटोलबृहतीफणिज्जकरसैः पयःसंयुतैः ।
 घृतं त्रिकटुना च सिद्धमुपयुज्य सञ्जायते
 न कासविषमज्वरक्षयगुदाङ्कुरेभ्यो भयम् ॥ ५८ ॥
 समूलफलपत्रायाः कण्टकार्या रसाढके ।
 घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशठिदाडिमैः ॥ ५९ ॥
 सौवर्चलयवश्चरमूलामलकपौष्करैः ।

१. वैदेहीकल्कस्य = पिप्पलीपिष्टस्याऽक्षं = कर्षम् ।

वृश्चीवबृहतीपथ्यायवानीचित्रकद्विभिः ॥ ६० ॥
 मृद्वीकाचव्यवर्षाभूदुरालम्भाम्लवेतसैः ।
 शृङ्गीतामलकीभाङ्गीरिस्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ६१ ॥
 कल्कैस्तत्सर्वकासेषु श्वासहिध्मासु चेप्यते ।
 पचेद्व्याघ्रीतुलां क्षुण्णां वाहेऽपामाढकस्थिते ॥ ६२ ॥
 क्षिपेत् पूते तु सञ्चूर्ण्य व्योषरास्नाऽमृतामिकान् ।
 शृङ्गीभाङ्गीघनग्रन्थिधन्वयासान् पलार्धकान् ॥ ६३ ॥
 सर्पिषः षोडशपलं चत्वारिंशत्पलानि च ।
 मत्स्यण्डिकायाः शुद्धायाः पुनश्च तदधिश्येत् ॥ ६४ ॥
 दूर्वालेपिनि शीते च पृथग् द्विकुडवं क्षिपेत् ।
 पिप्पलीनां तवक्षीर्या माक्षिकस्याऽनवस्य^१ च ॥ ६५ ॥
 लेहोऽयं गुल्महृद्गदुर्नामश्वासकासजित् ।
 शमनं च पिबेद् धूमं शोधनं वहले^२ कफे ॥ ६६ ॥
^३मनःशिलालमधुकर्मासीमुस्तेजुदीत्वचः ।
 धूमं कासघ्नविधिना पीत्वा क्षीरं पिबेदनु ॥ ६७ ॥
 निष्ठयूतान्ते गुडयुतं कोष्णं धूमो निहन्ति सः ।
 वातश्लेष्मोत्तरान् कामानचिरेण चिरन्तनान् ॥ ६८ ॥

१. तवक्षीरी = तुगाक्षीरी । २. अनवस्य = पुराणस्य ।

३. वहले = घने ।

४. मनःशिलादीनां धूमं कासघ्नविधिना (सूत्रोक्तेन) पीत्वा अनु = पश्चात् निष्ठयूतान्ते पुराण-गुडयुतं मन्दोष्णं दुग्धं पिबेत् । सः = क्षीराऽनुपानसहितो धूमः कर्त्ता वातकफोत्तरान् चिरकाल-जातान् कासान् शीघ्रं हन्ति = नाशयति ।

तमकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबन्धजः ।
 पित्तकासक्रियां तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥
 कफानुबन्धे पवने कुर्यात्कफहरां क्रियाम् ।
 पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोः पित्तनाशनीम् ॥ ७० ॥
 वातश्लेष्मात्मके शुष्के स्निग्धं चार्द्रं विरुद्धानम् ।
 कासे कर्म सपित्ते तु कफजे तिक्तसंयुतम् ॥ ७१ ॥
 अथ क्षतजः कासः

उरस्यन्तःक्षते सद्यो ^१लाक्षां क्षौद्रयुतां पिबेत् ।
 क्षीरेण शालीन् जीर्णेऽद्यात्क्षीरेणैव सशर्करान् ॥ ७२ ॥
 पार्श्वबस्त्यादिरुक्चारूपपित्ताग्निस्तां सुरायुताम् ।
 भिन्नविट्कः समुस्तातिविषापाठां सवत्सकाम् ॥ ७३ ॥
 लाक्षां सर्पिर्मधूच्छिष्टं जीवनीयं गणं सिताम् ।
 त्वक्क्षीरीसंमितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलः पिबेत् ॥ ७४ ॥
 इक्ष्वारिकाविष(स)ग्रन्थिपद्मकेसरचन्दनैः ।
 शृतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं क्षती पिबेत् ॥ ७५ ॥
 यवानां चूर्णमामानां क्षीरे सिद्धं घृतान्वितम् ।
 ज्वरदाहे सिताक्षौद्रसक्तून्वा पयसा पिबेत् ॥ ७६ ॥
 कासवांश्च पिबेत्सर्पिर्मधुरौषधसाधितम् ।
 गुडोदकं वा कथितं सक्षौद्रमरिचं हिमम् ॥ ७७ ॥
 चूर्णमामलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम् ।
 रसायनविधानेन पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥
 कासी पर्वास्थिशूली च लिङ्गात्सघृतमाक्षिकाः ।

१. 'लाक्षा सप्तः क्षतघ्नानाम्', इति सूत्रात् सैव प्रथममुचिता ।

मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीवलाः ॥ ७९ ॥

मधुगुटिकाः ।

त्रिजातमर्धकर्षांशं पिप्पल्यर्धपलं सिता ।

द्राक्षामधूकखर्जूरं पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ८० ॥

मधुना 'गुटिका' धनन्ति

ता वृष्याः पित्तशोणितम् ।

कास-श्वासाऽरुचिच्छर्दि-

मूर्च्छाहिध्मावमि^१भ्रमान् ॥ ८१ ॥

क्षतक्षयस्वरभ्रंशप्लीहाशोफाढ्यमारुतान् ।

रक्तनिष्ठीवहृत्पाश्वरुक्पिपासाज्वरानपि ॥ ८२ ॥

वर्षाभूशर्करारक्तशालितुण्डुलजं रजः ।

रक्तघ्नीवी पिवेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोघृतैः ॥ ८३ ॥

मधूकमधुकक्षीरसिद्धं वा तण्डुलीयकम् ।

यथास्वमार्गविसृते रक्ते कुर्याच्च भेषजम् ॥ ८४ ॥

^२मूढवातस्त्वजामेदः सुराभृष्टं ससैन्धवम् ।

क्षामः क्षीणः क्षतोरस्को मन्दनिद्रोऽग्निदीप्तिमान् ॥ ८५ ॥

शृतक्षीरसरेणाद्यात्सघृतक्षौद्रशर्करम् ।

शर्करां यवगोधूमं जीवकर्षभकौ मधु ॥ ८६ ॥

शृतक्षीरानुपानं वा लिङ्ग्यात्क्षीणः क्षतः कृशः ।

१. मद-इति पाठान्तरम् ।

२. मूढवातस्तु पुरुषः सुरया मृष्टम्—अजाया मेदः ससैन्धव-
मद्यादित्यन्वयः ।

१ क्रव्यात्पिशितनिर्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ॥ ८७ ॥
 पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तं मांसशोणितवर्धनम् ।
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्ष्मशालप्रियङ्गुभिः ॥ ८८ ॥
 तालमस्तकजम्बूत्वक्प्रियालैश्च सपद्मकैः ।
 साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादद्याज्जातेन सर्पिषा ॥ ८९ ॥
 शाक्योदनं क्षतोरस्कः क्षीणशुक्रबलेन्द्रियः ।
 वातपित्तादितेऽभ्यङ्गो गात्रभेदे घृतैर्मतः ॥ ९० ॥
 तैलैश्चानिलरोगध्नैः पीडिते मातरिश्वना ।
 हृत्पार्श्वार्तिषु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः ॥ ९१ ॥
 कुर्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्ताविरोधि यत् ।
 यष्ट्याह्वानागबलयोः क्वाथे क्षीरसमे घृतम् ॥ ९२ ॥
 पयस्यापिप्पलीवांशीकल्कैः सिद्धं क्षते हितम् ।

अमृतप्राशघृतम् ।

जीवनीयो गणः शुण्ठी वरी वीरा पुनर्नवा ॥ ९३ ॥
 बला भाङ्गी स्वगुसर्दिः^१ शठी तामलकी कणा ।
 शृङ्गाटकं पयस्या च पञ्चमूलं च यल्लघु ॥ ९४ ॥
 द्राक्षाऽक्षोढादि च फलं मधुरस्निग्धबृंहणम् ।
 तैः पचेत्सर्पिषः प्रस्थं कर्षांशैः श्लक्ष्णकल्कितैः ॥ ९५ ॥

१. क्रव्यम् = आममांसमदन्ति ते क्रव्यादः श्येनादयः, 'अदोऽ-
 नन्ने विट्' 'क्रव्ये च' तेषां पिशितस्य = मांसस्य निर्यूहं = रसम् ।

२. स्वगुप्ताह्वा-इति अरुणः । स्वगुप्ता = आत्मगुप्ता जडा व्यङ्गा
 कपिच्छूश्च मर्कटी ।

क्षीरधात्रीविदारीक्षुच्छागमांसरसान्वितम् ।
 प्रस्थार्धं मधुनः शीते शर्करार्धतुलारजः ॥ ९६ ॥
 पलार्धकं च मरिचत्वगेलापत्रकेसरम् ।
 विनीय चूर्णितं तस्माल्लिह्यान्मात्रां यथाबलम् ॥ ९७ ॥
 'अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम्' ।
 सुधामृतरसं प्राश्यं क्षीरमांसरसाशिना ॥ ९८ ॥
 नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्शितान् ।
 स्त्रीप्रसक्तान् कृशान् वर्णस्वरहीनांश्च ब्रूहयेत् ॥ ९९ ॥
 कासहिष्माज्वरश्वासदाहतृष्णाऽस्त्रपित्तनुत् ।
 पुत्रदं च्छर्दिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥ १०० ॥

श्वदंष्ट्रादिघृतम् ।

श्वदंष्ट्रोक्षीरमज्जिष्ठाबलाकाशमर्यकटुतृणम् ।
 दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ १०१ ॥
 पालिकानि पचेत्तेषां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
 कल्कैः स्वगुप्ताजीघन्तीमेदकर्षभजीवकैः ॥ १०२ ॥
 शतावर्यर्द्धिमृद्धीकाशर्कराश्रावणीविसैः ।
 प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ १०३ ॥
 मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शः कासशोषक्षयापहः ।
 धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रिजानां बलमांसदः ॥ १०४ ॥

मधुकादिघृतम् ।

मधुकाष्टपलद्राक्षाप्रस्थकाथे पचेद्घृतम् ।
 पिपल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च शीतले ॥ १०५ ॥
 पृथगाष्टपलं क्षौद्रशर्कराभ्यां विमिश्रयेत् ।

समसक्तु क्षतक्षीणरक्तगुल्मेषु तद्धितम् ॥ १०६ ॥

धात्र्यादिघृतम् ।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात् ।

गन्ध्याजयोश्च पयसोः ^१प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०७ ॥

सिद्धपूते सिताक्षौद्रं द्विप्रस्थं विनयेत्ततः ।

यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमेहक्षयापहम् ॥ १०८ ॥

वयःस्थापनमायुष्यं मांसशुक्रबलप्रदम् ।

घृतस्य लेहनपाने ।

घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिङ्गाद्वाताधिके पिबेत् ॥ १०९ ॥

लीढं निर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्दन्ति नानलम् ।

आक्रामत्यनिलं पीतमूष्माणं निरुणद्धि च ॥ ११० ॥

क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येव घृतानि तु ।

त्वक्क्षीरीपिप्पलीलाजचूर्णैः पानानि योजयेत् ॥ १११ ॥

सर्पिर्गुडान्समध्वंशान् कृत्वा दद्यात्पयोऽनु च ।

रेतो वीर्यं बलं पुष्टिं तैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ११२ ॥

कूष्माण्डकरसायनम् ।

वीतत्वगस्थिकूष्माण्डतुलां स्विञ्चां पुनः पचेत् ।

घट्टयन् सर्पिषः प्रस्थे क्षौद्रवर्णेऽत्र च क्षिपेत् ॥ ११३ ॥

१. प्रस्थं प्रस्थमिति वीप्सायां द्वित्वम्, तथाच—धात्र्यादिरसस्य प्रस्थम्—घृतस्य प्रस्थम्—गोपयसः प्रस्थम्—अजापयसश्च प्रस्थमिति प्रस्थचतुष्टयमेकीकृत्य विपाचयेत्, सिद्धे च तस्मिन्पूते सति प्रस्थमितां सितां प्रस्थमितं मधु च प्रक्षिपेत् ।

खण्डाच्छतं कणाशुण्ठयोर्द्विपलं जीरकादपि ।
 त्रिजातधान्यमरिचं पृथगर्धपलांशकम् ॥ ११४ ॥
 अवतारितशीते च दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
 खजेनामथ्य च स्थाप्यं तन्निहन्त्युपयोजितम् ॥ ११५ ॥
 कासहिध्माज्वरश्चासरक्तपित्तक्षतक्षयान् ।
 उरःसन्धानजननं मेघास्मृतिबलप्रदम् ॥ ११६ ॥
 अश्विभ्यां विहितं ह्यं 'कूष्माण्डकरसायनम् ।'

नागबलादिप्रयोगः ।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्धकर्षाभिवर्धितम् ॥ ११७ ॥
 पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरघृत्तिरनन्नभुक् ।
 एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्वलवर्णकरः परम् ॥ ११८ ॥
 'मण्डूकपर्ण्याः कल्पोऽयं यष्ट्या विश्वौषधस्य च ।

नागबलाघृतम् ।

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ॥ ११९ ॥
 तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरेण पाचयेत् ।
 पलाधिकैश्चातिबलाबलायष्टीपुनर्नवैः ॥ १२० ॥
 प्रपौण्डरीककाशमर्यप्रियालकपिकच्छुभिः ।
 अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः ॥ १२१ ॥
 काकोलीक्षीरकाकोलीक्षीरशुक्लाद्विजीरकैः ।
 'एतन्नागबलासर्पिः' पित्तरक्तक्षतक्षयान् ॥ १२२ ॥
 जयेत्तृड्भ्रमदाहांश्च बलपुष्टिकरं परम् ।

१. नागबला-प्रयोगमतिदिशति, मण्डूकपर्ण्या-इत्यादिना ।

वर्ण्यमायुष्यमोजस्यं वलीपलितनाशनम् ॥ १२३ ॥

उपयुज्य च षण्मासान् वृद्धोऽपि तरुणायते ।

^१दीप्तेऽग्नौ विधिरेष स्यान्मन्दे दीपनपाचनः ॥ १२४ ॥

यक्ष्मोक्तः क्षतिनां शस्तो ग्राही शकृति तु द्रवे ।

अगस्त्यहरीतकीमाह—

दशमूलं स्वयङ्गुप्तां शङ्खपुष्पीं शर्ठीं बलाम् ॥ १२५ ॥

हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ।

भाङ्गीं पुष्करमूलं च द्विपलांशाद् यवाढकम् ॥ १२६ ॥

हरीतकीशतं चैव जले पञ्चाढके पचेत् ।

यवस्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ॥ १२७ ॥

पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ।

तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ १२८ ॥

लेहं द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ।

तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्बलवर्धनम् ॥ १२९ ॥

पञ्चकासान् क्षयं श्वासं सहिध्मं विषमज्वरम् ।

मेहगुल्मग्रहण्यशोहद्रोगारुचिपीनसान् ॥ १३० ॥

‘अगस्तिविहितं’ धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम्^२ ।

अथ वसिष्ठोक्तं रसायनम् ।

दशमूलं बलां मूर्वा हरिद्रे पिप्पलीद्वयम् ॥ १३१ ॥

पाठाऽश्वगन्धापामार्गस्वगुप्ताऽतिविषाऽमृतम् ।

१. दीप्ताग्न्याऽपेक्षया नियमविधिमाह—दीप्तेऽग्न्यादित्यादिपद्येन ।

२. चरकै चि० अ० १८।५७ किञ्चिदेव पाठभेदः ।

बालबिल्वं त्रिवृहन्तीमूलं पत्रं च चित्रकात् ॥ १३२ ॥
 पयस्यां कुटजं हिंसां पुष्पं सारं च बीजकात् ।
 बोटस्थविरभङ्गातविकङ्कतशतावरीः ॥ १३३ ॥
 पूतीकरञ्जशम्पाकचन्द्रलेखासहाचरम् ।
 सौभाग्ननकनिम्बत्वगिष्ठुरं च पलांशकम् ॥ १३४ ॥
 पथ्यासहस्रं सशतं यवानां चाढकद्वयम् ।
 पचेदष्टगुणे तोये यवस्वेदेऽवतारयेत् ॥ १३५ ॥
 पूते क्षिपेत्सपथ्यं च तत्र जीर्णगुडात्तुलाम् ।
 तैलाज्यधात्रीरसतः प्रस्थं प्रस्थं ततः पुनः ॥ १३६ ॥
 अधिश्रयेन्मृदावग्नौ दर्वीलेपेऽवतार्य च ।
 शीते प्रस्थद्वयं क्षौद्रात्पिप्पलीकुडवं क्षिपेत् ॥ १३७ ॥
 चूर्णीकृतं त्रिजाताञ्च त्रिपलं निखनेत्ततः ।
 धान्ये पुराणकुम्भस्थं मासं खादेच्च पूर्ववत् ॥ १३८ ॥
 रसायनं 'वसिष्ठोक्तमे' तत्पूर्वगुणाधिकम् ।
 स्वस्थानां निःपरीहारं सर्वर्तुषु च शस्यते ॥ १३९ ॥

सैन्धवादिचूर्णम् ।

पालिकं सैन्धवं शुण्ठी द्वे च सौवर्चलात्पले ।
 कुडवांशानि वृक्षाम्लं दाडिमं पत्रमार्जकम् ॥ १४० ॥
 एकैकां मरिचाऽऽजाज्योर्धान्यकाद् द्वे चतुर्थिके ।
 शर्करायाः पलान्यत्र दश द्वे च प्रदापयेत् ॥ १४१ ॥
 कृत्वा चूर्णमतो मात्रामन्नपानेषु दापयेत् ।
 रुच्यं तद्दीपनं बल्यं पार्श्वार्तिश्वासकासजित् ॥ १४२ ॥

खाण्डवः ।

एकां षोडशिकां^१ धान्याद् द्वे द्वे चाऽजाजिदीप्यकात् ।
 ताभ्यां दाडिमवृक्षाम्लैर्द्विर्द्विः सौवर्चलात्पलम् ॥ १४३ ॥
 शुण्ठ्याः कर्षं कपित्थस्य मध्यात्पञ्च पलानि च ।
 तच्चूर्णं षोडशपलैः शर्कराया विमिश्रयेत् ॥ १४४ ॥
 'खाण्डवोऽयं' प्रदेयः स्यादन्नपानेषु पूर्ववत् ।
 विधिश्च यक्ष्मविहितो यथावस्थं क्षते हितः ॥ १४५ ॥
 निवृत्ते क्षतदोषे तु कफे वृद्धे उरः शिरः ।
 दास्यते कासिनो यस्य स धूमानापिबेदिमान् ॥ १४६ ॥
 द्विमेदाद्विबलायष्टीकल्कैः क्षौमे सुभाविते ।
 वर्ति कृत्वा पिबेद् धूमं जीवनीयघृतानुपः ॥ १४७ ॥
 मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरनागरैः ।
 तद्वदेवाऽनुपानं तु शर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ १४८ ॥
 पिष्ट्वा मनःशिलां तुल्यामार्द्रया वटशुङ्गया ।
 ससर्पिष्कं पिबेद् धूमं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४९ ॥
 'क्षयजे' बृंहणं पूर्वं कुर्यादग्नेश्च वर्धनम् ।
 बहुदोषाय सस्नेहं मृदु दद्याद्विरेचनम् ॥ १५० ॥
^२शम्पाकेन त्रिवृतया मृद्वीकारसयुक्तया ।

१. षोडशिकाम् = पलम्-द्वे पलाद्धे पलं मुष्टिः, प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका । बिल्वं षोडशिका चाऽऽग्रम्-इति मानपरिभाषा च० क० अ० १२ श्लो० ९२ ।

२. शम्पाकेन = चतुरङ्गुलेन (अमलतास) इति प्रसिद्धेन ।
 त्रिवृतया = निसोत-इति प्रसिद्धया ।

पथ्याशुण्ठीघनगुडैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ॥ १७२ ॥
 सर्वेषु श्वासकासेषु केवलं वा विभीतकम्^१ ।
 पत्रकल्कं घृतभृष्टं तिल्वकस्य सशर्करम् ॥ १७३ ॥
 पेया वोल्कारिका छर्दितृट्कासाऽऽमातिसारनुत् ।
 कण्टकारीरसे सिद्धो मुद्गयूषः सुसंस्कृतः ॥ १७४ ॥
 सगौरामलकः साम्लः सर्वकासभिषग्जितम् ।
 वातघ्नोपधनिःक्वाथे क्षीरं यूषान् रसानपि ॥ १७५ ॥
 वैष्किरान् प्रातुदान् वैलान् दापयेत्क्षयकासिने^२ ।
 'क्षतकासे' च ये धूमाः सानुपाना निदर्शिताः ॥ १७६ ॥
 'क्षयकासेऽपि' ते योज्याः वक्ष्यते यच्च यक्ष्मणि ।
 बृंहणं दीपनं चाग्नेः स्रोतसां च विशोधनम् ॥ १७७ ॥
 व्यत्यासात्क्षयकासिभ्यो बल्यं सर्वं प्रशस्यते ।
 सन्निपातोद्भवो घोरः 'क्षयकासो' यतस्ततः ।
 यथादोषबलं तस्य सन्निपातहितं हितम् ॥ १७८ ॥
 इति चिकित्सास्थाने तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः श्वासहिध्माचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुस्त्रेयादयो महर्षयः ।

१. विभीतकम् = कर्षफलम् (बहेडा) इति प्रसिद्धम् ।

२. अथ = कासनिरूपणानन्तरं, यतः कासोपेक्षया श्वासो जायते
 अतः, जन्यजनकभावादिति सम्बन्धः । श्वसनं श्वासः, श्वसन्ति-

१ 'श्वासहिष्मा यतस्तुल्यहेत्वाद्याः साधनं ततः ॥ १ ॥
 तुल्यमेव तदार्तं^१ च पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत् ।
 स्निग्धैर्लवणतैलाक्तं तैः खेषु ग्रथितः कफः ॥ २ ॥
 सुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठं प्रासः सुनिर्हरः ।
 स्रोतसां स्यान्मृदुत्वं च मारुतस्यानुलोमता ॥ ३ ॥
 स्विन्नं च भोजयेदन्नं स्निग्धमानूपजै रसैः ।
 दध्युत्तरेण वा दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ॥ ४ ॥
 विशेषात्कास-वमथु-हृद्ग्रह-स्वरसादिने ।
 पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रयुक्तं वाताविरोधि यत् ॥ ५ ॥
 निर्हते सुखमाप्नोति सकफे दुष्टविग्रहे ।
 स्रोतःसु च विशुद्धेषु चरस्यविहतोऽनिलः ॥ ६ ॥
 धमानोदावर्ततमके मातुलुङ्गाम्लवेतसैः ।
 हिङ्गुपीलुबिडैर्युक्तमन्नं स्यादनुलोमनम् ॥ ७ ॥
 ससैन्धवं फलाम्लं वा कोष्णं दद्याद्विरेचनम् ।
 एते हि कफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः ॥ ८ ॥
 तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थमूर्ध्वाधः शोधनं हितम् ।

अनेन वा श्वस-प्राणनेऽदादिः । हि-इति अव्यक्तं धमति शब्दायते
 अयं रोगः कर्त्तति, ध्मा-शब्दाऽग्निसंयोगयोरित्यस्माद्-आतोऽनुप-
 सर्गे कः, हिष्मा = हिक्का ।

१. श्वासहिक्कयोर्निदानं समानम्, आद्यशब्दात्-पूर्वरूपादयः
 तदुक्तम्-श्वासैकहेतुप्रागरूप-संख्याप्रकृतिसंश्रयाः, हिष्माः-इति-
 नि० ४।१८। अतश्चिकित्सासमाना-इत्यर्थः ।

२. तदार्तं = श्वासहिक्काभ्यां पीडितम् ।

उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्बहज्जलम् ॥ ९ ॥
 यथाऽनिलस्तथा तस्य मार्गमस्माद्विशोधयेत् ।
 अशान्तौ कृतसंशुद्धेर्धूमैर्लीनं मलं हरेत् ॥ १० ॥

धूमानाह—

हरिद्रापत्रमेरण्डमूलं द्राक्षां मनःशिलाम् ।
 सदेवदार्वलं मांसीं पिप्प्ला वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥
 तां घृताक्तां पिबेद्धूमं यवान्वा घृतसंयुतान् ।
 मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं वा गुरु वाऽगुरु ॥ १२ ॥
 चन्दनं वा तथा शृङ्गं बालान्वा स्नावजान्वावाम्^१ ।
 ऋक्षगोधाकुरङ्गैश्चर्मशृङ्गसुराणि वा ॥ १३ ॥
 गुग्गुलुं वा मनोह्वां वा शालनिर्यासमेव वा ।
 शङ्खकीं गुग्गुलुं लोहं पद्मकं वा घृतप्लुतम् ॥ १४ ॥
 अवश्यं^२ स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम् ।
 स्वेदयेत्ससिताक्षरैः सुखोष्णस्नेहसेचनैः ॥ १५ ॥
 उत्कारिकोपनाहैश्च स्वेदाध्यायोक्तभेषजैः ।
 उरः कण्ठं च मृदुभिः सामे त्वामविधिं चरेत् ॥ १६ ॥

१. गवां स्नावजान् = गलकम्बलजान्, बालान् = रौमाणि वा पिबेदिति । अत्र सर्वत्र सूत्रोक्तो धूमपानविधिरुपतिष्ठते तथाच—शरा-
 वपुटस्थितत्वादिकमग्निदग्धत्वञ्चाऽर्थात्प्रतीयते ।

२ स्वेदाऽर्हाणामस्वेदार्हाणाञ्च श्वासहिक्कावताम्—उरः कण्ठञ्च
 क्षणं नतु चिरं मृदुभिः 'भेषजैः', अवश्यं स्वेदयेत्, सामे तु—आम-
 विधिं कुर्यादिति सम्बन्धः ।

अतियोगोद्धतं वातं दृष्ट्वा पवननाशनैः ।
 स्निग्धै रसाद्यैर्नात्युष्णैरभ्यङ्गैश्च शमं नयेत् ॥ १७ ॥
 अनुस्विलष्टकफास्विन्नदुर्बलानां हि शोधनात् ।
 वायुर्लब्धास्पदो मर्म संशोष्याऽऽशु हरेदसून् ॥ १८ ॥
 कषायलेपस्नेहाद्यैस्तेषां संशमयेदतः ।
 क्षीणक्षतातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान् ॥ १९ ॥
 मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिध्माश्वासानुपाचरेत् ।
 कुलत्थदशमूलानां क्वाथे स्युर्जाङ्गला रसाः ॥ २० ॥
 यूषाश्च शिम्बुवार्ताकिकासघ्नवृषमूलकैः ।
 पल्लवैर्निम्बकुलकबृहतीमातुलुङ्गजैः ॥ २१ ॥
 व्याघ्रीदुरालभाशृङ्गीबिल्वमध्यत्रिकण्टकैः ।
 'सामृतामिकुलत्थैश्च यूषः स्यात्कथितैर्जले ।
 तद्वद्रास्नाबृहत्याऽतिबलामुद्गैः सचित्रकैः ॥'
 पेया च चित्रकाजाजीशृङ्गीसौवर्चलैः कृता ॥ २२ ॥
 दशमूलेन वा कासश्वासहिध्मारुजापहा ।
 दशमूलशठीरास्नाभार्ङ्गीबिल्ववर्द्धिपुष्करैः ॥ २३ ॥
 कुलीरशृङ्गीचपलातामलक्यमृतौषधैः ।
 पिबेत्कषायं जीर्णेऽस्मिन्पेयां तैरेव साधिताम् ॥ २४ ॥
 शालिषष्टिकगोधूम-यवमुद्वकुलत्थभुक् ।
 कासहृद्ग्रहपार्श्वार्ति-हिध्माश्वासप्रशान्तये ॥ २५ ॥
 सक्तून् वाऽर्काङ्कुरक्षीर-भावितानां समाक्षिकान् ।
 बवानां वृक्षमूलादिनिःक्वाथलुलितान् पिबेत् ॥ २६ ॥
 अन्ने च योजयेत् चारं हिङ्गवाज्यविडदाडिमान् ।

सपौष्करशठीव्योष-मातुलुङ्गाम्लवेतसान् ॥ २७ ॥
 दशमूलस्य वा क्वाथमथवा देवदारुणः ।
 पिबेद्वा वारुणीमण्डं हिध्माश्वासी पिपासितः ॥ २८ ॥
 पिप्पलीपिप्पलीमूल-पथ्याजन्तुघ्नचित्रकैः ।
 कल्कितैर्लेपिते रुढे निःक्षिपेद् घृतभाजने ॥ २९ ॥
 तक्रं मासस्थितं तद्धि दीपनं श्वासकासजित् ।
 पाठां मधुरसां दारु सरलं निशि संस्थितम् ॥ ३० ॥
 सुरामण्डेऽल्पलवणं पिबेत्प्रसृतिसंमितम् ।
 भाङ्गीशुण्ठयौ सुखाम्भोभिः क्षारं वा मरिचान्वितम् ॥ ३१ ॥
 स्वक्वाथपिष्टां लुलितां बाष्पिकां पाययेत वा ।
 स्वरसः सप्तपर्णस्य पुष्पाणां वा शिरीषतः ॥ ३२ ॥
 हिध्माश्वासे मधुकणायुक्तः, पित्तकफानुगे ।
 उत्कारिका तुगाकृष्णामधूलीघृतनागरैः ॥ ३३ ॥
 पित्तानुबन्धे योक्तव्याः पवने त्वनुबन्धिनि ।
 श्वाविच्छ्रशामिषकणाघृतशल्यकशोणितैः ॥ ३४ ॥
 (सुवर्चलारसव्योपसर्पिर्भिः सहितं पयः ।
 अनु शाल्योदनं पेयं वातपित्तानुबन्धिनि ॥ ३५ ॥
 चतुर्गुणाम्बुसिद्धं वा छागं सगुडनागरम् ।)
 पिप्पलीमूलमधुकगुडगोऽश्वशकृद्रसान् ।
 हिध्माभिष्यन्दकासघ्नान् लिह्यान्मधुघृतान्वितान् ॥ ३६ ॥
 गो-गजाऽश्व-वराहोष्ट्र-खरमेषाजविडूरसम् ।
 समध्वेकैकशो लिह्याद्बहुश्लेष्माऽथवा पिबेत् ॥ ३७ ॥
 चतुष्पाच्चर्मरोमास्थिस्तुरशृङ्गोद्भवां मपीम ।

तथैव वाजिगन्धाया^१ लिह्यात् श्वासी कफोल्बणः ॥ ३८ ॥
 शटी-पुष्करधात्रीर्वा पौष्करं वा कणान्वितम् ।
 गैरिकाञ्जनकृष्णां वा स्वरसं वा कपित्थजम् ॥ ३९ ॥
 रसेन वा कपित्थस्य धात्रीसैन्धवपिप्पलीः ।
 घृतक्षौद्रेण वा पथ्याविडङ्गोषणपिप्पलीः ॥ ४० ॥
 कोललाजामलद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा ।
 गुडतैलनिशाद्राक्षाकणारासनोषणानि वा ॥ ४१ ॥
 पिबेद्रसाम्बुमद्याम्लैर्लेहौषधरजांसि वा ।
 जीवन्तीमुस्तसुरसत्वगेलाद्वयपौष्करम् ॥ ४२ ॥
 चण्डातामलकीलोहभार्गीनागरबालकम् ।
 कर्कटाख्या शटी कृष्णा नागकेसरचोरकम् ॥ ४३ ॥
 उपयुक्तं यथाकामं चूर्णं द्विगुणशर्करम् ।
 पार्श्वरुज्वरकासघ्नं हिध्माश्वासहरं परम् ॥ ४४ ॥
 शटी तामलकी भार्ङ्गी चण्डाबालकपौष्करम् ।
 शर्कराष्टगुणं चूर्णं हिध्माश्वासहरं परम् ॥ ४५ ॥
 तुल्यं गुडं नागरं च भक्षयेन्नावयेत वा ।
 लशुनस्य पलाण्डोर्वा मूलं गृञ्जनकस्य वा ॥ ४६ ॥
 चन्दनाद्वा रसं दद्यान्नारीक्षीरेण नावनम् ।
 स्तन्येन मक्षिकाविष्टामलक्तकरसेन वा ॥ ४७ ॥
 कणासौवर्चलक्षारवयस्याहिङ्गुचोरकैः ।
 सकायस्थैर्घृतं मस्तुदशमूलरसे पचेत् ॥ ४८ ॥
 तत्पिबेज्जीवनीयैर्वा लिह्यात्समधुसाधितम् ।

१. वाजिगन्धायाः = अश्वगन्धायाः, मषीमिति सम्बन्धः ।

तेजोवस्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥
 भूतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्रकः शठी ।
 पटुद्वयं तामलकी जीवन्ती बिल्वपेशिका ॥ ५० ॥
 वचा पत्रं च तालीसं कर्षांशैस्तैर्विपाचयेत् ।
 हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पीतमाशु निहन्ति तत् ॥ ५१ ॥
 शाखानिलाशोऽग्रहणीहिध्माहृत्पाशर्ववेदनाः ।
 अर्धोशेन पिबेत्सर्पिः क्षारेण पटुनाऽथवा ॥ ५२ ॥
^१धान्वन्तरं घृतघृतं दाधिकं हृषुपादि वा ।
 शीताम्बुसेकः सहसा त्रासविक्षेपभीशुचः ॥ ५३ ॥
 हर्षेण्योच्छ्वाससंरोधा हितं कीटैश्च दंशनम् ।
 यत्किञ्चिक्फवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।
 तत्सेव्यं प्रायशो यच्च सुतरां मारुतापहम् ॥ ५४ ॥
 सर्वेषां बृंहणे हृत्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।
 नात्यर्थं शमनेऽपायो भृशोऽशक्यश्च कर्षणे ॥ ५५ ॥
 शमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत् ।
^२कासश्वासक्षयच्छर्दिहिध्माश्चान्योन्यभेषजैः ॥ ५६ ॥
 इति चिकित्सास्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।

१. धान्वन्तरं घृतम् = दशमूलमित्यादिना प्रमेहोक्तम् । वृष-
 घृतम् = वासाघृतं रक्तपित्तोक्तम्, दाधिकं = दध्नः सरेण वा-इति
 गुल्मोक्तम्, हृषुपादि च गुल्मोक्तम्, अ० १४।११।१२ ।

२. कासादीनामौषधानि परस्परमतिदिशति-कासेति । चतुर्थः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

^१अथाऽतो राजयक्ष्मादिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘बलिनो बहुदोषस्य ^२स्निग्धस्विन्नस्य शोधनम् ।

ऊर्ध्वाधो यक्ष्मिणः कुर्यात्सस्नेहं यन्न कर्शनम् ॥ १ ॥

^३पयसा फलयुक्तेन मधुरेण रसेन वा ।

सर्पिष्मत्या यवाग्वा वा वमनद्रव्यसिद्ध्या ॥ २ ॥

वमेद् विरेचनं दद्यान्नृपदुमान् ^४ ।

शर्करामधुसर्पिभिः पयसा तर्पणेन वा ॥ ३ ॥

१. अथ = श्वासहिकाचिकित्सानन्तरं यतः उपेक्षितात्कासात्-
श्वासयक्ष्मादयो जायन्ते अतः अवसरसङ्गत्या क्षयचिकित्सितं निरूप्यते, उक्तं हि निदाने-कासाच्छ्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः,
भवन्त्युपेक्षया-इति । पूर्वाध्यायान्तेऽपि स्मृतिविषयत्वं क्षयस्य ।

२. बहुदोषस्य-न तु स्वल्पदोषस्य, तत्रापि बलिनः = यथोचित-
बलवतः न तु दुर्बलस्य यक्ष्मिणः = यक्ष्मोपतापवतः, पूर्वं स्निग्धः,
पश्चात् स्विन्नः, स्निग्धस्विन्नः, तस्य ऊर्ध्वशोधनम् वमनं कफपित्त-
शुद्ध्यर्थम् , अधःशोधनम् = विरेचनं-तच्च-आमाशय-पक्वाशय-
शुद्ध्यर्थम् मल्लिष्कशुद्ध्यर्थम् शिरोविरेचनञ्च । तच्च शोधनं सस्नेहं
न तु रूक्षं यच्च न कर्शनं देहस्य कुशलाकारकं न भवेत् तत्कुर्यात् ।

३. संशोधकद्रव्याकाङ्क्षायामाह—पयसेत्यादिना, फलयुक्तेन =
मदनफल-समन्वितेन ।

४. नृपद्रुमः = राजवृक्षः कर्णिकारः, आरग्वधौ राजवृक्षः शम्पा

द्राक्षाविदारीकाशमर्यमांसानां वा रसैर्युतान् ।
 शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ॥ ४ ॥
 हृद्यानि चाऽन्नपानानि वातघ्नानि लघूनि च ।
 शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गं समोषितम्^१ ॥ ५ ॥
 आजं क्षीरं घृतं मांसं कव्यान्मांसं च शोषजित् ।
 काकोलकवृकद्वीपिगवाश्वनकुलोरगम् ॥ ६ ॥
 गृध्रभासखरोष्ट्रं च हितं छद्मोपसंहितम्^२ ।
 ज्ञातं जुगुप्सितं तद्धि छर्दिषे न बलौजसे ॥ ७ ॥
 मृगाद्याः पित्तकफयोः पवने प्रसहादयः ।
^३वेसवारीकृताः पथ्या रसादिषु च कल्पिताः ॥ ८ ॥

(म्या) कश्चतुरङ्गुलः । प्रग्रहः कृतमालश्च कर्णिकारोऽवघातकः ।
 च० क० अ० ८ ।

१. समोषितम् = हायनाऽतीतं, न नवं गुरुत्वात् । नाऽप्यतिपुरा-
 णम्—रूक्षत्वेन वायुकारकत्वात् । 'शूकधान्यं शमीधान्यं समातीतं
 प्रशस्यते'—इत्यादिचरकात् । 'समातीतानि धान्यानि कल्पनीयानि
 शुष्यताम्' इति च, च० चि० अ० ८। १८१ ।

२. छद्मना = रुचिकरत्वव्यपदेशेन, एतच्च मांससात्माय—
 निर्मांसकुलप्रसूताय तु—आजं क्षीरं घृतं च प्रयोज्यं, न मांसमसा-
 त्म्यत्वेन जुगुप्सितत्वात् ।

३. अनस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् । कृष्णामरिच-
 संयुक्तं वेसवार-इति स्मृतः । शाकादिषूपयोज्यो वेसवारो भिन्नः,
 च० चि० अ० ८।७५ टि० द्रष्टव्यम् ।

भृष्टाः' सर्पपतैलेन सर्पिषा वा यथायथम् ।
 रसिका मृदवः स्निग्धा मृदुद्रव्याभिसंस्कृताः ॥ ९ ॥
 हिता मौलककौलत्थास्तद्व्यूषाश्च साधिताः ।
 सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ १० ॥
 सदाडिमं सामलकं स्निग्धमाजं रसं पिबेत् ।
 तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ११ ॥
 पिबेच्च सुतरां मद्यं जीर्णं स्रोतोविशोधनम् ।
 पित्तादिषु विशेषेण मध्वरिष्टाऽच्छ्वारुणीः ॥ १२ ॥
 सिद्धं वा पञ्चमूलेन तामलक्याऽथवा जलम् ।
 पर्णिनीभिश्चतसृभिर्धान्यनागरकेण वा ॥ १३ ॥
 कल्पयेच्चानुकूलोऽस्य तेनान्नं शुचि यत्नवान् ।
 दशमूलेन पयसा सिद्धं मांसरसेन वा ॥ १४ ॥
 वलागर्भं घृतं योज्यं क्रव्यान्मांसरसेन वा ।
 सत्तौद्रं पयसा सिद्धं सर्पिर्दशगुणेन वा ॥ १५ ॥
 जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च ।
 पुष्कराह्वं शठीं कृष्णां व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ १६ ॥
 नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम् ।
 कल्कीकृत्य घृतं पक्वं 'रोगराजहरं' परम् ॥ १७ ॥
 घृतं खर्जूरमृद्धीकामधुकैः सपरुषकैः ।
 सपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वासज्वरापहम् ॥ १८ ॥
 दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् ।
 सपिप्पलीकं सत्तौद्रं तत्परं स्वरबोधनम् ॥ १९ ॥
 शिरःपार्श्वसंशूलघ्नं कासश्वासज्वरापहम् ।

पञ्चभिः पञ्चमूलैर्वा शृताद्यदुदियाद् घृतम् ॥ २० ॥
 पञ्चानां पञ्चमूलानां रसे क्षीरचतुर्गुणे ।
 सिद्धं सर्पिर्जयत्येतद्यक्षिमणः सप्तकं^१ बलम् ॥ २१ ॥
 पञ्चकोलयवक्षारषट्पलेन पचेद् घृतम् ।
 प्रस्थोन्मितं तुल्यपयः स्रोतसां तद्विशोधनम् ॥ २२ ॥
 गुल्मज्वरोदरप्लीहग्रहणीपाण्डुपीनसान् ।
 श्वासकासाऽग्निसदनश्चयथूर्ध्वानिलाञ्जयेत् ॥ २३ ॥
^२रास्नाबलागोक्षुरक-स्थिरावर्षाभुवारिणि ।
 जीवन्तीपिप्पलीगर्भं सक्षीरं शोषजिद् घृतम् ॥ २४ ॥
 अश्वगन्धाशृताक्षीराद् घृतं च ससितापयः ।
 साधारणामिषतुलं तोयद्रोणद्वये पचेत् ॥ २५ ॥
 तेनाष्टभागशेषेण ^३जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
 साधयेत्सर्पिपः प्रस्थं वातपित्तमयापहम् ॥ २६ ॥
 'मांससर्पिरिदं' पीतं युक्तं मांसरसेन वा ।
 कासश्वासस्वरभ्रंशशोषहृत्पाश्वशूलजित् ॥ २७ ॥
 एलाजमोदान्निफलासौराष्ट्रीव्योषचित्रकान्
 सारानरिष्टगायत्रीशालबीजकसम्भवान् ॥ २८ ॥

१. 'पीनसद्वासकासांऽसमूर्धस्वररुजोरुऽचिः', इति सप्तकं बलम् ।
२. रास्नादीनां द्वन्द्वे—वारिशब्देन षष्ठी समासे, ततः सप्तमी,
'वर्षाभु' शब्दोऽत्र दुप्रत्ययान्तः, मितद्रव्यदेराकृतिगणत्वात् ।
३. जीवकर्षभकौ, मेदा-महामेदा, काकोली-क्षीरकाकोली,
मुद्रपणी-माषपण्यौ, जीवन्ती, मधुकम्-इति-दशेमानि जीवनीयानि
भवन्ति । च० सू० ४।१५।

भस्मातकं विडङ्गं च पृथगष्टपलोन्मितम् ।
 सलिले षोडशगुणे षोडशांशस्थिते पचेत् ॥ २९ ॥
 पुनस्तेन घृतप्रस्थं सिद्धे चास्मिन्पलानि षट् ।
 तवक्षीर्याः क्षिपेन्निशस्सिताया द्विगुणं मधु ॥ ३० ॥
 घृताग्निजाताग्निपलं ततो लीढं खजाऽऽहतम् ।
 पयोऽनुपानं तत्प्राह्णे रसायनमयन्त्रणम् ॥ ३१ ॥
 मेध्यं चक्षुष्यमायुष्यं दीपनं हन्ति चाचिरात् ।
 मेहगुल्मक्षयव्याधिपाण्डुरोगभगन्दरान् ॥ ३२ ॥
 ये च सर्पिर्गुडाः प्रोक्ताः क्षते योज्याः क्षयेऽपि ते ।
 त्वगेलापिप्पलीक्षीरीशर्करा द्विगुणाः क्रमात् ॥ ३३ ॥
 चूर्णिता भक्षिताः क्षौद्रसर्पिषा चाऽवलेहिताः ।
 स्वर्याः कासक्षयश्वासपार्श्वरूक्षफनाशनाः ॥ ३४ ॥
 विशेषात्स्वरसादेऽस्य नस्यधूमादि योजयेत् ।
 तत्राऽपि वातजे कोष्णं पिबेदुत्तरभक्तिकम् ॥ ३५ ॥
 कासमर्दकवार्ताकीमार्कवस्वरसैर्घृतम् ।
 साधितं कासजित्स्वर्यं सिद्धमार्तगलेन वा ॥ ३६ ॥
 बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।
 तैलं वा मधुकद्राक्षापिप्पलीकृमिनुत्फलैः ॥ ३७ ॥
 हंसपाद्याश्च मूलेन पक्वं नस्तो निषेचयेत् ।
 सुखोदकानुपानं च ससर्पिष्कं गुडौदनम् ॥ ३८ ॥
 अशनीयात्पायसं चैवं स्निग्धं स्वेदं नियोजयेत् ।
 पित्तोद्भवे पिबेत्सर्पिः शृतशीतपयोऽनुपः ॥ ३९ ॥
 क्षीरिवृक्षाङ्कुरकाथकल्कसिद्धं समाक्षिकम् ।

अशनीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकरपायसम् ॥ ४० ॥
 बलाविदारिगन्धाभ्यां विदार्या मधुकेन च ।
 सिद्धं सलवणं सर्पिर्नस्थं स्वर्यमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥
 प्रपौण्डरीकं मधुकं पिप्पली बृहती बला ।
 साधितं क्षीरसर्पिश्च तत्स्वर्यं नावनं परम् ॥ ४२ ॥
 लिङ्गान्मधुरकाणां^१ च चूर्णं मधुघृताप्लुतम् ।
 पिबेत्कटूनि मूत्रेण कफजे रुक्षभोजनः ॥ ४३ ॥
 कट्फलामलकव्योषं लिङ्गात्तैलमधुप्लुतम् ।
 व्योषक्षाराग्निचविकाभार्ङ्गपथ्यामधूनि वा ॥ ४४ ॥
 यवैर्यवागूं यमके^२ कणाधारीकृतां पिबेत् ।
 भुक्त्वाऽद्यापिप्पलीं शुण्ठीं तीक्ष्णं वा वमनं भजेत् ॥ ४५ ॥
 शर्कराक्षौद्रमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह ।
 पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ४६ ॥
 विचित्रमन्त्रमरुचौ हितैरुपहितं हितम् ।
 बहिरन्तर्मुजा चित्तनिर्वाणं हृद्यमौषधम् ॥ ४७ ॥
 द्वौ कालौ दन्तधवनं भक्षयेन्मुखधावनैः ।
 कषायैः क्षालयेदास्यं धूमं प्रायोगिकं पिबेत् ॥ ४८ ॥
 तालीसचूर्णवटकाः सकर्पूरसितोपलाः ।
 शशाङ्गकिरणाख्याश्च भक्षया रुचिकरा भृशम् ॥ ४९ ॥
 वातादरोचके तत्र पिबेच्चूर्णं प्रसन्नया ।
 हरेणुकृष्णाकृमिजिद्-द्राक्षासैन्धवनागरात् ॥ ५० ॥

१. मधुरकाणां = मधुररस-वर्गपठितानाम् ।

२. यमके = मिश्रिते घृत-तैले ।

एलाभाङ्गीयवक्षारहिङ्गुयुक्तघृतेन वा ।
 छर्दयेद्वा वचाम्भोभिः ॐपित्ताच्च गुडवारिभिः ॥ ५१ ॥
 लिङ्गाद्वा शर्करासर्पिलवणोत्तममाक्षिकम् ।
 कफाद्वमेन्निम्बजलैर्दीप्यकारग्वधोदकम् ॥ ५२ ॥
 पानं समध्वरिष्टाश्च तीक्ष्णाः समधुमाधवाः ।
 पिबेच्चूर्णं च पूर्वोक्तं हरेण्वाद्युष्णवारिणा ॥ ५३ ॥
 एलात्वङ्नागकुसुमतीक्ष्णकृष्णामहौषधम् ।
 भागवृद्धं क्रमाच्चूर्णं निहन्ति समशर्करम् ॥ ५४ ॥
 प्रसेकारुचिहृत्पाश्वकासश्वासगलामयान् ।
 यवानीतित्तिडीकाम्लवेतसौषधदाडिमम् ॥ ५५ ॥
 कृत्वा कोलं च कर्पाशं सितायाश्च चतुष्पलम् ।
 धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गं चार्धकार्षिकम् ॥ ५६ ॥
 पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
 चूर्णमेतत्परं रुच्यं ग्राहि हृद्यं, हिनस्ति च ॥ ५७ ॥
 विबन्धकासहृत्पाश्वलीहाशोऽग्रहणीगदान् ।

तालीसादिचूर्णम् ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली कणा ॥ ५८ ॥
 यथोत्तरं भागवृद्धया त्वगेले चार्धभागिके ।
 तद्रुच्यं दीपनं चूर्णं कणाऽष्टगुणशर्करम् ॥ ५९ ॥
 कासश्वासारुचिच्छर्दिप्लीहहृत्पाश्वशूलनुत् ।
 पाण्डुज्वरातिसारघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ६० ॥
 अर्कामृताक्षारजले शर्वरीमुषितैर्यवैः ।
 प्रसेके कल्पितान्सक्तून् भक्ष्यांश्चाद्याद्वली वमेत् ॥ ६१ ॥

कटुतिक्तैस्तथाऽशूल्यं भक्षयेज्जाङ्गलं पलम् ।
 शुष्कांश्च भक्ष्यान् सुलघूंश्चणकादिरसानुपः ॥ ६२ ॥
 श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेन वायुः श्लेष्माणमस्यति ।
 'कफप्रसेकं' तं विद्वान्स्निग्धोष्णैरेव निर्जयेत् ॥ ६३ ॥
 'पीनसेऽपि' क्रममिमं वमथौ च प्रयोजयेत् ।
 विशेषात्पीनसेऽभ्यङ्गान् स्नेहस्वेदांश्च शीलयेत् ॥ ६४ ॥
 स्निग्धानुत्कारिकापिण्डैः शिरःपार्श्वगलादिषु ।
 लवणाम्लकटूष्णांश्च रसान् स्नेहोपसंहितान् ॥ ६५ ॥
 शिरोंऽसपार्श्वशूलेषु यथादोषविधिं चरेत् ।
 औदकानूपपिशितैरुपनाहाः सुसंस्कृताः ॥ ६६ ॥
 तत्रेष्टाः सचतुःस्नेहाःॐ दोषसंसर्गं दृष्यते ।
 प्रलेपो नतयष्ट्याह्न-शताह्वाकुष्ठचन्दनैः ॥ ६७ ॥
 बलारास्नातिलैस्तद्वत्सर्पिर्मधुकोत्पलैः ।
 पुनर्नवाकृष्णगन्धाबलावीराविदारिभिः ॥ ६८ ॥
 नावनं धूमपानानि स्नेहाश्चौत्तरभक्तिकाः ।
 तैलान्यभ्यङ्गयोगीनि वस्तिकर्म तथा परम् ॥ ६९ ॥
 शृङ्गाद्यैर्वा यथादोषं दुष्टमेषां हरेदसृक् ।
 प्रदेहः सघृतैः श्रेष्ठः पद्मकोशीरचन्दनैः ॥ ७० ॥
 दूर्वामधुकमज्जिष्ठाकेसरैर्वा घृतप्लुतैः ।
 वटादिसिद्धतैलेन शतधौतेन सर्पिषा ॥ ७१ ॥
 अभ्यङ्गः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकाम्बुना ।
 प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते ॥ ७२ ॥
 तस्यातिसारग्रहणीविहितं हितमौषधम् ।

पुरीषं यत्नतो रक्षेच्छुष्यतो राजयक्ष्मिणः ॥ ७३ ॥
 सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विड्बलम् ।
 मांसमेवाशनतो युक्त्या मार्द्विकं पिबतोऽनु च ॥ ७४ ॥
 अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम् ।
 सुरां समण्डां मार्द्विकमरिष्टान् सीधुमाधवान् ॥ ७५ ॥
 यथार्हमनुपानार्थं पिबेन्मांसानि भक्षयन् ।
 स्रोतोविबन्धमोक्षार्थं वलौजःपुष्टये च तत् ॥ ७६ ॥
 स्नेहक्षीराम्बुकोष्ठेषु स्वभ्यक्तमवगाहयेत् ।
 उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहैर्भूयोऽभ्यक्तं मुखैः करैः ॥ ७७ ॥
 मृद्नीयात्सुखमासीनं सुखं चोद्वर्तयेत्परम् ।
 जीवन्तीं शतवीर्यां च विकसां सपुनर्नवाम् ॥ ७८ ॥
 अश्वगन्धामपामागं तर्कारीं मधुकं बलाम् ।
 विदारिं सर्षपान् कुष्ठं तण्डुलानतसीफलम् ॥ ७९ ॥
 माषांस्तिलांश्च किप्वं च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
 यवचूर्णं त्रिगुणितं दध्ना युक्तं समाक्षिकम् ॥ ८० ॥
 'एतदुद्वर्तनं' कार्यं पुष्टिर्वर्णबलप्रदम् ।
 गौरसर्षपकल्केन स्नानीयौषधिभिश्च सः ॥ ८१ ॥
 क्षायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयोपसाधितैः ।
 गन्धमाल्यादिकैर्भूषामलक्ष्मीनाशनीं भजेत् ॥ ८२ ॥
 'सुहृदां दर्शनं गीतवादित्रोत्सवसंश्रुतिः ॥

१. सुहृदां दर्शनमित्यादिकं पूजितं = प्रशस्तम् । अथर्वोक्तं =
 चतुर्थवेदोक्तम् = शान्तिकपौष्टिकञ्च प्रशस्तम् ।

बस्तयः क्षीरसर्पिषि मद्यं मांसं सुशीलता ॥ ८३ ॥
 दैवव्यपाश्रयं तत्तदथर्वोक्तं च पूजितम् ॥ ८३ई ॥'

इति चिकित्सास्थाने पञ्चमोऽध्यायः ।

पष्ठोऽध्यायः ।

१अथाऽतश्छर्दिहृद्रोगानृणाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'आमाशयोत्क्लेशभवाः प्रायश्छर्द्यो हितं ततः ।
 लङ्घनं प्रागृते^१वायोर्वमनं तत्र योजयेत् ॥ १ ॥
 बलिनो बहुदोषस्य व्रमतः प्रततं बहु ।
 ततो विरेकं क्रमशो हृद्यं मद्यैः फलाम्बुभिः ॥ २ ॥
 क्षीरैर्वा सह, स^२ ह्यूर्ध्वं गतं दोषं नयत्यधः ।
 शमनं चौषधं रूक्षदुर्बलस्य तदेव तु ॥ ३ ॥
 परिशुष्कं प्रियं सात्म्यमन्नं लघु च शस्यते ।
 उपवासस्तथा यूषा रसाः काम्बलिकाः खलाः ॥ ४ ॥
 शाकानि लेहभोज्यानि रागखाण्डवपानकाः ।
 भक्ष्याः शुष्का विचित्राश्च फलानि स्नानघर्षणम् ॥ ५ ॥

१. अथ राजयक्ष्मचिकित्सानिरूपणानन्तरं यतश्छर्द्यादयस्तदु-
 पद्रवा अतस्तच्चिकित्सितं निरूप्यते ।

२. वायो ऋते = वायुच्छर्दिं विना प्राक् = प्रथमं लङ्घनं योजये-
 दिति सम्बन्धः । ३. सः = विरेकः ।

गन्धाः सुगन्धयो गन्धफलपुष्पाक्षपानजाः ।
 भुक्तमात्रस्य सहसा मुखे शीताम्बुसेचनम् ॥ ६ ॥
 हन्ति मारुतजां छर्दिं सर्पिः पीतं ससैन्धवम् ।
 किञ्चिदुष्णं विशेषेण सकासहृदयद्रवाम् ॥ ७ ॥
 व्योषत्रिलवणाढ्यं वा सिद्धं वा दाडिमाम्बुना ।
 सशुण्ठीदधिधान्येन शृतं तुल्याम्बु वा पयः ॥ ८ ॥
 व्यक्तसैन्धवसर्पिर्वा फलाम्लो वैष्किरो रसः ।
 स्निग्धं च भोजनं शुण्ठीदधिदाडिमसाधितम् ॥ ९ ॥
 कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम् ।
 पित्तजायां विरेकार्थं द्राक्षेक्षुस्वरसैस्त्रिवृत् ॥ १० ॥
 सर्पिर्वा तैस्त्वकं योज्यं, वृद्धं च श्लेष्म-धाम-नाम् ।
 ऊर्ध्वमेव हरेत् पित्तं स्वादुतिक्तैर्विशुद्धिमान् ॥ ११ ॥
 पिबेन्मन्थं यवागूं वा लाजैः समधुशर्कराम् ।
 मुद्गजाङ्गलजैरद्याद्वयजनैः शालिषष्टिकम् ॥ १२ ॥
 मृद्भृष्टलोष्टप्रभवं सुशीतं सलिलं पिबेत् ।
 मुद्गोशीरकणाधान्यैः सह वा संस्थितं निशाम् ॥ १३ ॥
 द्राक्षारसं रसं वेक्षोर्गुह्यम्बुपयोऽपि वा ।
 जम्ब्वाम्रपल्लवोशीरवटशुङ्गवरोहजः ॥ १४ ॥
 क्वाथः क्षौद्रयुतः पीतः शीतो वा विनियच्छति ।
 छर्दिं ज्वरमतीसारं मूर्च्छां तृष्णां च दुर्जयाम् ॥ १५ ॥
 धात्रीरसेन वा शीतं पिबेन्मुद्गदलाम्बु वा ।
 कोलमज्जसितालाजमक्षिकाविट्कणाञ्जनम् ॥ १६ ॥
 लिङ्गास्त्रौद्रेण पथ्यां वा द्राक्षां वा बदराणि वा ।

'कफजायां' वमेन्निम्बकृष्णापीडितसर्पपैः ॥ १७ ॥
 युक्तेन कोष्णतोयेन, दुर्बलं चोपवासयेत् ।
 आरग्वधादिनिर्यूहं शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ १८ ॥
 मन्थान् यवैर्वा बहुशश्छर्दिघ्नौषधभावितैः ।
 कफघ्नमन्नं हृद्यं च रागाः सार्जकभूस्तृणाः ॥ १९ ॥
 लीढं मनःशिलाकृष्णामरिचं बीजपूरकात् ।
 स्वरसेन कपिस्थाच्च सक्षौद्रेण वर्मि जयेत् ॥ २० ॥
 खादेत्कपित्थं सव्योषं मधुना वा दुरालभाम् ।
 अनुकूलोपचारेण याति द्विष्टार्थजा शमम् ॥ २१ ॥
 कृमिजा कृमिहृद्रोगगदितैश्च भिषग्जितैः ।
 यथास्वं परिशेषाश्च तत्कृताश्च तथा मयाः ॥ २२ ॥

छर्दिप्रसङ्गेन हि मातरिश्वा

धातुक्षयात्कोपमुपैत्यवश्यम् ।

कुर्यादतोऽस्मिन् वमनातियोग-

प्रोक्तं विधिं स्तम्भनबुंहणीयम् ॥ २३ ॥

सर्पिर्गुडा मांसरसा घृतानि

कल्याणक-श्यूषण-जीवनानि ।

पयांसि पथ्योपहितानि लेहा-

श्छर्दिं प्रसक्तां प्रशमं नयन्ति ॥ २४ ॥

अथ हृद्रोगचिकित्सा ।

हृद्रोगे 'वातजे' तैलं मस्तुसौवीरतक्रवत् ।

पिबेत्सुखोष्णं सविडं गुल्मानाहार्तिजिह्व तत् ॥ २५ ॥

तैलं च लवणैः सिद्धं समूत्राम्लं तथागुणम् ।

बिल्वं रास्नां यवान्कोलं देवदारुं पुनर्नवाम् ॥ २६ ॥
 कुलत्थान्पञ्चमूलं च पक्त्वा तस्मिन्पचेज्जले ।
 तैलं तन्नावने पाने वस्तौ च विनियोजयेत् ॥ २७ ॥
 शुण्ठी-वयस्था-लवण-कायस्था-हिङ्गु-पौष्करैः ।
 पथ्यया च शृतं पार्श्वहृद्दुजागुल्मजिद् घृतम् ॥ २८ ॥
 सौवर्चलस्य द्विपले पथ्यापञ्चाशदन्विते ।
 घृतस्य साधितः प्रस्थो हृद्रोगश्वासगुल्मजित् ॥ २९ ॥
 पुष्कराङ्ग-शठी-शुण्ठी बीजपूर-जटाऽभयाः ।
 पीताः कल्कीकृताः चारघृताम्ललवणैर्युताः ॥ ३० ॥
 विकर्तिकाशूलहराः काथः कोष्णश्च तद्गुणः ।
 यवानीलवणचारवचाऽजाज्यौषधैः कृतः ॥ ३१ ॥
 सपूतिदारुबीजाङ्गविजयाशठिपौष्करैः ।
 पञ्चकोलशठीपथ्यागुडबीजाङ्गपौष्करम् ॥ ३२ ॥
 वारुणीकल्कितं भृष्टं यमके लवणान्वितम् ।
 हृत्पार्श्वयोनिशूलेषु खादेद् गुल्मोदरेषु च ॥ ३३ ॥
 स्निग्धाश्चेह हिताः स्वेदाः संस्कृतानि घृतानि च ।
 लघुना पञ्चमूलेन शुण्ठ्या वा साधितं जलम् ॥ ३४ ॥
 वारुणीदधिमण्डं वा धान्याम्लं वा पिबेत्तृषि ।
 सायामस्तम्भशूलाभे हृदि मारुतदूषिते ॥ ३५ ॥
 क्रियैषा सद्रवायामग्रमोहे तु हिता रसाः ।
 स्नेहाद्यास्तित्तिरिक्कौञ्चशिखिवर्तकदन्तजाः ॥ ३६ ॥
 बलातैलं सहद्रोगः पिबेद्वा 'सुकुमारकम्' ।
 यष्ट्याङ्गशतपाकं वा 'महास्नेहं' तथोत्तमम् ॥ ३७ ॥

रास्नाजीवकजीवन्तीबलाव्याघ्रीपुनर्नवैः ।
 भाङ्गीस्थिरावचाव्योषैर्महास्नेहं विपाचयेत् ॥३८॥
 दधिपादं तथाम्लैश्च लाभतः स निषेवितः ।
 तर्पणो बृंहणो बल्यो वातहृद्रोगनाशनः ॥ ३९ ॥
 दीप्तेऽग्नौ सद्रवायामे हृद्रोगे वातिके हितम् ।
 क्षीरं दधि गुडः सर्पिरौदकानूपमामिषम् ॥ ४० ॥
 एतान्येव च वर्ज्यानि 'हृद्रोगेषु' चतुर्ष्वपि ।
 शेषेषु स्तम्भजाड्यामसंयुक्तेऽपि च 'वातिके' ॥ ४१ ॥
 कफानुबन्धे तस्मिंस्तु रुक्षोष्णामाचरेत्क्रियाम् ।
 'पैत्ते' द्राक्षेक्षुनिर्याससिताक्षौद्रपरूषकैः ॥ ४२ ॥
 युक्तो विरेको हृद्यः स्यात् क्रमः शुद्धे च पित्तहा ।
 क्षतपित्तज्वरोक्तं च बाह्यान्तःपरिमार्जनम् ॥ ४३ ॥
 कट्वीमधुककल्कं च पिबेत्ससितमग्भसा ।
 श्रेयसीशर्कराद्राक्षजीवकर्षभकोत्पलैः ॥ ४४ ॥
 बलाखर्जरकाकोलीमेदायुग्मैश्च साधितम् ।
 सक्षीरं माहिषं सर्पिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥ ४५ ॥
 प्रपौण्डरीकमधुकनिम्बग्रन्थिकसेरुकाः ।
 सशुण्ठीशैवलास्ताभिः सक्षीरं विपचेद् धृतम् ॥ ४६ ॥
 शीतं समधु तच्चेष्टं स्वादुवर्गकृतं च यत् ।
 वस्ति च दद्यात्सक्षौद्रं तैलं मधुकसाधितम् ॥ ४७ ॥
 'कफोद्भवे' वमेत्स्विन्नः पिचुमन्द-वचाग्बुना ।
 कुलथधन्वोत्थरसतीक्ष्णमध्यवाशनः ॥ ४८ ॥
 पिबेच्चूर्णं वचाहिङ्गुलवणद्वयनागरात् ।

सैला-यवानीक-कणा-यवक्षारात् सुखाम्बुना ॥ ४९ ॥
 फलधान्याम्लकौलथ-यूषमूत्रासवैस्तथा ।
 पुष्कराह्वाभयाशुण्ठीशठीरास्नावचाकणाः ॥ ५० ॥
 क्वाथं तथाऽभयाशुण्ठीमाद्रीपीतद्रुकट्फलात् ।
 क्वाथे रौहीतकाश्चत्थखदिरोदुम्बरार्जुने ॥ ५१ ॥
 सपलाशवटे ब्योषत्रिवृच्चूर्णान्विते कृतः ।
 सुखोदकानुपानस्य लेहः कफविकारहा ॥ ५२ ॥
 श्लेष्मगुल्मोदिताऽऽज्यानि क्षारांश्च विविधान् पिबेत् ।
 प्रयोजयेच्छिलाह्वं वा ब्राह्मं चात्र रसायनम् ॥ ५३ ॥
 तथामलकलेहं वा प्राश्यं वाऽगस्तिनिर्मितम् ।
 स्याच्छूलं यस्य भुक्तेऽन्ने जीर्यत्यल्पं जरां गते ॥ ५४ ॥
 शाम्येत्सकुष्ठकृमिजिह्ववणद्वयतिल्वकैः ।
 सदेवदार्वातिविषैश्चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ५५ ॥
 यस्य जीर्णेऽधिकं स्नेहैः स विरेच्यः फलैः पुनः ।
 जीर्यत्यन्ने तथा मूलैस्तीक्ष्णैः शूले सदाधिके ॥ ५६ ॥
 प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः कुप्यत्यामाशये गतः ।
 तस्यानुलोमनं कार्यं शुद्धिलङ्घनपाचनैः ॥ ५७ ॥
 कृमिघ्नमौषधं सर्वं 'कृमिजे' हृदयामये ।

अथ तृष्णारोगचिकित्सा ।

तृष्णासु वातपित्तघ्नो विधिः प्रायेण युज्यते ॥ ५८ ॥
 सर्वासु शीतो बाह्यान्तस्तथा शमनशोधनम् ।
 दिव्याम्बु शीतं सक्षौद्रं तद्वद्भौमं च तद्गुणम् ॥ ५९ ॥
 निर्वापितं तप्तलोष्टकपालसिकतादिभिः ।

सशर्करं वा कथितं पञ्चमूलेन वा जलम् ॥ ६० ॥
 दर्भपूर्वेण मन्थश्च प्रशस्तो लाजसक्तुभिः ।
 वाढ्यश्चामयवैः शीतः शर्करामाक्षिकान्वितः ॥ ६१ ॥
 यवागूः शालिभिस्तद्वत्कोद्रवैश्च चिरन्तनैः ।
 शीतेन शीतवीर्यैश्च द्रव्यैः सिद्धेन भोजनम् ॥ ६२ ॥
 हिमाम्बुपरिषिक्तस्य पयसा ससितामधु ।
 रसैश्चानम्ललवणैर्जाङ्गलैर्घृतभर्जितैः ॥ ६३ ॥
 मुक्तादीनां तथा यूषैर्जीविनीयरसान्वितैः ।
 नस्यं क्षीरघृतं सिद्धं शीतैरिक्तोस्तथा रसः ॥ ६४ ॥
 निर्वापणाश्च गण्डूषाः सूत्रस्थानोदिता हिताः ।
 दाहज्वरोक्ता लेपाद्या निरीहत्वं मनोरतिः ॥ ६५ ॥
 महासरिद्ध्रदादीनां दर्शनस्मरणादि च ।
 तृष्णायां 'पवनोत्थायां' सगुडं दधि शस्यते ॥ ६६ ॥
 रसाश्च बृंहणाः शीता विदार्यादिगणाम्बु वा ।
 'पित्तजायां' सितायुक्तः पक्कोदुम्बरजो रसः ॥ ६७ ॥
 तत्काथो वा हिमस्तद्वत्सारिवादिगणाम्बु वा ।
 तद्विधैश्च गणैः शीतकषायान् ससितामधून् ॥ ६८ ॥
 मधुरैरौषधैस्तद्वत् क्षीरिवृक्षैश्च कल्पितान् ।
 बीजपूरकमृद्वीकावटवेतसपल्लवान् ॥ ६९ ॥
 मूलानि कुशकाशानां यष्ट्याह्वं च जले शृतम् ।
 ज्वरोदितं वा द्राक्षादि पञ्चसाराम्बु वा पिबेत् ॥ ७० ॥
 'कफोद्भवायां' वमनं निम्बप्रसववारिणा ।
 बिल्वाढकीपञ्चकोलदर्भपञ्चकसाधितम् ॥ ७१ ॥

जलं पिबेद्रजन्या वा सिद्धं सक्षौद्रशर्करम् ।
मुद्गयूषं च सव्योषपटोलीनिम्बषल्लवम् ॥ ७२ ॥
यवान्नं तीक्ष्णकवल-नस्य-लेहांश्च शीलयेत् ।
‘सर्वैरामाच्च’ तद्धन्त्री क्रियेष्टा वमनं तथा ॥ ७३ ॥
ज्यूषणारुष्करवचाफलाम्लोष्णाम्बुमस्तुभिः ।
अन्नात्ययान्मण्डमुष्णं हिमं मन्थं च कालवित् ॥ ७४ ॥
तृषि ‘श्रमा’न्मांसरसं मद्यं वा ससितं पिबेत् ।
आतपात्ससितं मन्थं यवकोलाम्बुसक्तुभिः ॥ ७५ ॥
सर्वाण्यङ्गानि लिम्पेच्च तिलपिण्याककाञ्जिकैः ।
शीतस्नानात्तु मद्याम्बु पिबेत्तृष्मान् गुडाम्बु वा ॥ ७६ ॥
मद्यादर्धजलं मद्यं स्नातोऽम्ललवणैर्युतम् ।
स्नेहात्तीक्ष्णतराग्निस्तु स्वभावशिशिरं जलम् ॥ ७७ ॥
स्नेहादुष्णाम्बु जीर्णात्तु जीर्णान्मण्डं पिपासितः ।
पिबेत्स्निग्धान्नतृषितो हिमस्पर्धि गुडोदकम् ॥ ७८ ॥
गुर्वाद्यन्नेन तृषितः पीत्वोष्णाम्बु तदुल्लिखेत् ।
‘क्षयजायां’ क्षयहितं सर्वं बृंहणमौषधम् ॥ ७९ ॥
कृशदुर्बलरूक्षाणां क्षीरं छागो रसोऽथवा ।
क्षीरं च सोर्ध्ववातायां क्षयकासहरैः शृतम् ॥ ८० ॥
रोगोपसर्गजातायां धान्याम्बु ससितामधु ।
पाने प्रशस्तं सर्वा च क्रिया रोगाद्यपेक्षया ॥ ८१ ॥
तृष्यन् पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलं यदि ।
मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं ततः ॥ ८२ ॥

सात्त्व्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णां तस्य जयेत्पुरः ।

तस्यां जितायामन्योऽपि शक्यो व्याधिश्रिकित्सितुम् ॥८३॥

इति चिकित्सास्थाने षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

^१अथातो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत्’^२ ।

कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ १ ॥

पित्तमारुतपर्यन्तः प्रायेण हि मदात्ययः ।

हीनमिथ्यातिपीतेन यो व्याधिरुपजायते ॥ २ ॥

समपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।

मद्यस्य विषसादृश्याद् विषं तूत्कर्षवृत्तिभिः ॥ ३ ॥

तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्योगाद्विषान्तरमपेक्षते ।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना ॥ ४ ॥

मद्येनाक्षरसक्लेदो विदग्धः क्षारतां गतः ।

यान्कुर्यान्मदतृणमोहज्वरान्तर्दाहविभ्रमान् ॥ ५ ॥

मद्योत्किलष्टेन दोषेण रुद्धः स्रोतःसु मारुतः ।

१. अथ वातपित्तप्रधानतृष्णानिरूपणानन्तरम्—यतो मदात्य-
योऽपि वातपित्तप्रधानोऽतस्तच्चिकित्सितं निरूप्यते ।

२. प्रतिकारयेत् = प्रतिकारं कुर्यात्, अत एव तस्येति षष्ठी,
कृद्योगस्य गम्यमानत्वात् ।

सुतीव्रा वेदना याश्च शिरस्यस्थिषु सन्धिषु ॥ ६ ॥
 जीर्णममद्यदोषस्य प्रकाङ्क्षालाघवे सति ।
 यौगिकं विधिवद्युक्तं मद्यमेव निहन्ति तान् ॥ ७ ॥
 क्षारो हि याति माधुर्यं शीघ्रमम्लोपसंहितः ।
 मद्यमम्लेषु च श्रेष्ठं दोषविप्यन्दनादलम् ॥ ८ ॥
 तीक्ष्णोष्णाद्यैः पुरा प्रोक्तैर्दीपनाद्यैस्तथा गुणैः ।
 सात्म्यत्वाच्च तदेवास्य धातुसाम्यकरं परम् ॥ ९ ॥
 सप्ताहमष्टरात्रं वा कुर्यात्पानात्ययौषधम् ।
 जीर्यत्येतावता पानं कालेन विपथाश्रितम् ॥ १० ॥
 परं ततोऽनुबध्नाति यो रोगस्तस्य भेषजम् ।
 यथायथं प्रयुज्जीत कृतपानात्ययौषधः ॥ ११ ॥
 तत्र 'वातोल्बणे', मद्यं दद्यात्पिष्टकृतं युतम् ।
 बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमदीप्यकैः ॥ १२ ॥
 यवानीहपुषाजाजीव्योषत्रिलवणार्द्रकैः ।
 शूल्यैर्मोसैर्हरितकैः स्नेहवद्भिश्च सप्ततुभिः ॥ १३ ॥
 उष्णस्निग्धाम्ललवणा मेध्यमांसरसा हिताः ।
 आम्राऽऽम्रातकपेशीभिः संस्कृता रागखाण्डवाः ॥ १४ ॥
 गोधूममाषविकृतिर्मृदुश्चित्रा मुखप्रिया ।
 आर्द्रिकार्द्रककुलमाषसुक्तमांसादिगर्भिणी ॥ १५ ॥
 सुरभिर्लवणा शीता निगदा वाऽच्छ्ववारुणी ।
 स्वरसो दाडिमात् काथः पञ्चमूलात्कनीयसः^१ ॥ १६ ॥
 शुण्ठी धान्यात्तथा मस्तुसुक्ताम्भोऽच्छाम्लकाब्जिकम् ।

१. कनीयसः पञ्चमूलात् = लघुपञ्चमूलात् ।

अभ्यङ्गोद्धर्तनस्नानमुष्णं प्रावरणं घनम् ॥ १७ ॥
 घनश्चागुरुजो धूपः पङ्कश्चागुरुकुङ्कुमः ।
 कुचोरुश्रोणिशालिन्यो यौवनोष्णाङ्गयष्टयः ॥ १८ ॥
 हर्षेणालिङ्गने युक्ताः प्रियाः संवाहनेषु च ।
 'पित्तोल्बणे' बहुजलं शार्करं मधुना युतम् ॥ १९ ॥
 रसैर्दाडिमखर्जूरभव्यद्राक्षापरूषकैः ।
 सुशीतं ससितासक्तु योज्यं ताटक् च पानकम् ॥ २० ॥
 स्वादुवर्गकषायैर्वा युक्तं मद्यं समाक्षिकम् ।
 शालिषष्टिकमशनीयाच्छशाजैणकपिञ्जलैः ॥ २१ ॥
 सतीनमुद्गामलकपटोलीदाडिमैरपि ।
 'कफपित्तं' समुच्छिष्टमुल्लिखेत्तृड्विदाहवान् ॥ २२ ॥
 पीष्वाऽम्बु शीतं मद्यं वा भूरीक्षुरससंयुतम् ।
 द्राक्षारसं वा संसर्गी तर्पणादिः परं हितः ॥ २३ ॥
 तथाऽग्निर्दीप्यते तस्य दोषशेषान्नपाचनः ।
 कासे सरक्तनिष्ठीवे पार्श्वस्तनरुजासु वा ॥ २४ ॥
 तृष्णायां सविदाहायां सोत्क्लेशे हृदयोरसि ।
 गुडूचीभद्रमुस्तानां पटोलस्याथवा रसम् ॥ २५ ॥
 सशृङ्गवेरं युञ्जीत तित्तिरिप्रतिभोजनम् ।
 तृप्यते चाऽतिबलवद्वातपित्ते समुद्धते ॥ २६ ॥
 दद्याद् द्राक्षारसं पानं शीतं दोषानुलोमनम् ।
 जीर्णेऽद्यान्मधुराम्लेन छागमांसरसेन च ॥ २७ ॥
 १ तृप्यत्पशः पिबेन्मद्यं मदं रक्षन् बहूदकम् ।
 १. तृषि सत्याम्, अल्पं-मन्दं मदं रक्षन् बहूदकं मद्यं पिबेत् ।

मुस्तदाडिमलाजाम्बु जलं वा पर्णिनीश्रुतम् ॥ २८ ॥
 पटोल्युत्पलकन्दैर्वा स्वभावादेव वा हिमम् ।
 मद्यातिपानादब्धातौ क्षीणे तेजसि चोद्धते ॥ २९ ॥
 यः शुष्कगलताल्वोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेष्टते ।
 पाययेत्कामतोऽम्भस्तं निशीथपवनाहतम् ॥ ३० ॥
 कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ।
 पञ्चाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ ३१ ॥
 त्वचं प्राप्तश्च पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्च्छितः ।
 दाहं प्रकुरुते घोरं तत्राऽतिशिशिरो विधिः ॥ ३२ ॥
 अशाम्यति रसैस्तृप्ते 'रोहिणीं' व्यधयेत्सिराम् ।
 उल्लेखनोपवासाभ्यां 'जयेच्छ्लेष्मोल्बणं' पिबेत् ॥ ३३ ॥
 शीतं शुण्ठीस्थिरोदीच्यदुःस्पर्शान्यतमोदकम् ।
 निरामं क्षुधितं काले पाययेद्बहुमाक्षिकम् ॥ ३४ ॥
 शार्करं मधु वा जीर्णमरिष्टं सीधुमेव च ।
 रुक्षतर्पणसंयुक्तं यवानीनागरान्वितम् ॥ ३५ ॥
 यूषेण यवगोधूमं तनुनाऽल्पेन भोजयेत् ।
 उष्णाम्लकटुतिक्तेन कौलस्थेनाल्पसर्पिषा ॥ ३६ ॥
 शुष्कमूलकजैश्छागै रसैर्वा धन्वचारिणाम् ।
 साम्लवेतसवृक्षाम्लपटोलव्योषदाडिमैः ॥ ३७ ॥
 प्रभूतशुण्ठीमरिचहरितार्द्रकपेशिकम् ।
 बीजपूररसाद्यम्लभृष्टनीरसवर्तितम् ॥ ३८ ॥
 करीरकरमर्दादिरोचिष्णु बहुशालनम् ।
 प्रव्यक्ताष्टाङ्गलवणं विकल्पितनिमर्दकम् ॥ ३९ ॥

यथाम्नि भक्षयन्मांसं माधवं निगदं पिबेत् ।
 सितासौवर्चलाजाजीतित्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ ४० ॥
 त्वगेलामरिचार्धशमष्टाङ्गलवणं^१ हितम् ।
 स्रोतोविशुद्ध्यग्निकरं 'कफप्राये' मदात्यये ॥ ४१ ॥
 रूक्षोष्णोद्वर्तनोद्धर्षस्नानभोजनलङ्घनैः ।
 सकामाभिः सह स्त्रीभिर्युक्त्या जागरणेन च ॥ ४२ ॥
 मदात्ययः 'कफप्रायः' शीघ्रं समुपशाम्यति ।
 'यदिदं कर्म निर्दिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति ॥ ४३ ॥
 सन्निपाते दशविधे तच्छेषेऽपि विकल्पयेत् ।
 त्वङ्नागपुष्पमगधामरिचाजाजिधान्यकैः ॥ ४४ ॥
 परूषकमधूकैलासुराह्वैश्च सितान्वितैः ।
 सकपित्थरसं हृद्यं पानकं शशिवोधितम् ॥ ४५ ॥
 मदात्ययेषु सर्वेषु पेयं रुच्यग्निदीपनम् ।
 नाविज्ञोभ्य मनो मद्यं शरीरमविहन्य वा ॥ ४६ ॥
 कुर्यान्मदात्ययं तस्मादिष्यते हर्षणी क्रिया ।

१. कफप्राये मदात्यये अष्टौ—अङ्गानि भागा यस्य तत् तादृशं
 सितादिसहितं लवणं हितम्, स्रोतसां विशेषेण शोधकम् जाठराग्ने
 बर्द्धकम् ।

२. यत् तत्र वातोल्वणे मधम्, पित्तोल्वणे बहुजलम्, उल्लेख-
 नोपवासाभ्याम् जयेत् श्लेष्मोल्वणम्, इदं त्रिविधं कर्म पृथग्दोष-
 बलं प्रति, निर्दिष्टं, कर्मप्रतिनिर्दिष्टं पृथग्दोषबलं त्रिविधं तत्कर्म शेषे =
 अवशिष्टे दशविधे सन्निपातेऽपि-विविधभेदं कृत्वा कल्पयेद् भिषक् ।
 अतिदेशः । च० चि० २४ । १८९ ।

संशुद्धिशमनाद्येषु मददोषः कृतेष्वपि ॥ ४७ ॥
 न चेच्छाम्येत्कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ।
 तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ॥ ४८ ॥
 ग्रीष्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ।
 मद्यक्षीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेव पुष्यति ॥ ४९ ॥
 ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतं च मद्यतः ।
 पयसा विजिते रोगे बले जाते निवर्तयेत् ॥ ५० ॥
 क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।
 न बिट्क्षयध्वंसकोत्थैः स्पृशेतोपद्रवैर्यथा ॥ ५१ ॥
 तयोस्तु स्यादघृतं क्षीरं बस्तयो बृंहणाः शिवाः ।
 अभ्यङ्गोद्धर्तनस्नानमन्नपानं न वातजित् ॥ ५२ ॥
^१युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरुपजायते ।
 अतोऽस्य वक्ष्यते योगो यः सुखायैव केवलम् ॥ ५३ ॥
^२आश्विनं या महत्तेजो बलं सारस्वतं च या ।
 दधात्यैन्द्रं च या वीर्यं प्रभावं वैष्णवं च या ॥ ५४ ॥
 अस्त्रं मकरकेतोर्या पुरुषार्थो बलस्य या ।
 सौत्रामण्यां द्विजमुखे या हुताशे च हूयते ॥ ५५ ॥
 या सर्वौषधिसम्पूर्णान्मथ्यमानात्सुरासुरैः ।
 महोदधेः समुद्भूता श्री-शशाङ्काऽऽमृतैः सह ॥ ५६ ॥

१. युक्तं = युक्तिप्रयुक्तं मद्यमस्य युक्तमद्यः, तस्य । २. अश्विनो-
 रिदमाश्विनं महत्तेजं = दीप्तिं सारस्वत्या इदं सारस्वतं बलम् =
 उत्साहम्, इन्द्रसंबन्धि वीर्यं = शक्तिम्, वैष्णवं प्रभावं या सुरा
 दधाति—तां सुरां पानप्रवृत्तौ सत्यां तु विधिना पिबेदिति दूरेणान्वयः ।

मधु-माधव-मैरेय-सीधु-गौडाऽऽसवादिभिः ।
 मदशक्तिमनुज्झन्ती या रूपैर्बहुभिः स्थिता ॥ ५७ ॥
 यामासाद्य विलासिन्यो यथार्थं नाम बिभ्रति ।
 कुलाङ्गनाऽपि यां पीत्वा नयत्युद्धतमानसा ॥ ५८ ॥
 अनङ्गालिङ्गितैरङ्गैः काऽपि चेतो मुनेरपि ।
 तरङ्गभङ्गभृकुटीतर्जनैर्मानिनीमनः ॥ ५९ ॥
 एकं प्रसाद्य कुरुते या द्वयोरपि निर्वृतिम् ।
 यथाकामं भटावाप्तिपरिहृष्टाप्सरोगणे ॥ ६० ॥
 तृणवत्पुरुषा युद्धे यामासाद्य त्यजन्त्यसून् ।
 यां शीलयित्वाऽपि चिरं बहुधा बहुविग्रहाम् ॥ ६१ ॥
 नित्यं हर्षातिवेगेन तत्पूर्वमिव सेवते ।
 शोकोद्वेगारतिभयैर्यां दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥ ६२ ॥
 गोष्ठीमहोत्सवोद्यानं न यस्याः शोभते विना ।
 स्मृत्वा स्मृत्वा च बहुशो वियुक्तः शोचते यया ॥ ६३ ॥
 अप्रसन्नाऽपि या प्रीत्या प्रसन्ना स्वर्ग एव या ।
 अपीन्द्रं मन्यते दुःस्थं हृदयस्थितया यया ॥ ६४ ॥
 अनिर्देश्यसुखास्वादा स्वयंवेद्यैव या परम् ।
 इति चित्रास्ववस्थासु प्रियामनुकरोति या ॥ ६५ ॥
 प्रियाऽतिप्रियतां याति यत्प्रियस्य विशेषतः ।
 या प्रीतिर्या रतिर्या वाग् या पुष्टिरिति च स्तुता ॥ ६६ ॥
 देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः ।
 पानप्रवृत्तौ सत्यां तां सुरां तु विधिना पिबेत् ॥ ६७ ॥
 सम्भवन्ति च ये रोगा मेदोऽनिलकफोद्भवाः ।

विधियुक्तादृते मद्यात्ते न सिध्यन्ति दारुणाः ॥ ६८ ॥
 अस्ति देहस्य साऽवस्था यस्यां पानं निवार्यते ।
 अन्यत्र मद्याग्निगदाद्विविधौषधसम्भृतात् ॥ ६९ ॥
 आनूपं जाङ्गलं मांसं विधिनाऽप्युपकल्पिताम् ।
 मद्यं सहायमप्राप्य सम्यक् परिणमेत्कथम् ॥ ७० ॥
 सुतीव्रमारुतव्याधिघातिनो लशुनस्य च ।
 मद्यमांसवियुक्तस्य प्रयोगः स्यात्कियान् गुणः ॥ ७१ ॥
 निगूढशल्याहरणे शस्त्रक्षाराग्निकर्मणि ।
 पीतमद्यो विषहते सुखं वैद्यविकल्थनाम्^१ ॥ ७२ ॥
 अनलोत्तेजनं रुच्यं शोकश्रमविनोदकम् ।
 न चाऽतः परमस्त्यन्यदारोग्यबलपुष्टिकृत् ॥ ७३ ॥
 रक्षता जीवितं तस्मात्प्रेयमात्मवता सदा ।
^२आश्रितोपाश्रितहितं परमं धर्मसाधनम् ॥ ७४ ॥
 स्नातः प्रणम्य सुरविप्रगुरुन्यथास्वं
 वृत्तिं विधाय च समस्तपरिग्रहस्य ।
 आपानभूमिमथ गन्धजलाभिषिक्ता-
 माहारमण्डपसमीपगतां श्रयेत् ॥ ७५ ॥
 स्वास्तृतेऽथ शयने कमनीये भृत्यमित्ररमणीसमवेतः ।
 स्वं यशः कथकचारणसङ्घैरुद्धतं निशमयन्नतिलोकम् ॥ ७६ ॥

१. विकल्थनां = कदर्थनाम् = पीडनाम् ।

२. आश्रिताः = साक्षात्संबन्धिनः, उपाश्रिताः = परम्परया
संबन्धिनः ।

विलासिनीनां च विलासशोभि

गीतं सनृत्यं कलतूर्यघोषैः ।

काञ्चीकलापैश्चलकिङ्किणीकैः

क्रीडाविहङ्गैश्च कृतानुनादम् ॥ ७७ ॥

मणिकनकसमुत्थैरावनेयैर्विचित्रैः

सजलविविधलेखक्षौमवस्त्रावृताङ्गैः ।

अपि मुनिजनचित्तहोभसम्पादिनीभि-

श्चकितहरिणलोलप्रेक्षणीभिः प्रियाभिः ॥ ७८ ॥

स्तननितम्बकृतादतिगौरवा-

दलसमाकुलमीश्वरसम्भ्रमात् ।

इति गतं दधतीभिरसंस्थितं

तरुणचित्तविलोभनकर्मणम् ॥ ७९ ॥

यौवनासवमत्ताभिर्विलासाधिष्ठितात्मभिः ।

सञ्चार्यमाणं युगपत्तन्वङ्गीभिरितस्ततः ॥ ८० ॥

तालवृन्तनलिनीदलानिलैः

शीतलीकृतमतीवशीतलैः ।

दर्शनेऽपि विदधद्वशानुगं

स्वादितं किमुत चित्तजन्मनः ॥ ८१ ॥

चूतरसेन्दुमृगैः कृतवासं मल्लिकयोज्ज्वलया च सनाथम् ।

स्फाटिकशुक्तिगतं सतरङ्गं कान्तमनङ्गमिवोद्बहदङ्गम् ॥ ८२ ॥

तालीसाद्यं चूर्णमेलादिकं वा

दृढं प्राश्य प्राग्वयःस्थापनं वा ।

तत्प्रार्थिभ्यो भूमिभागे सुमृष्टे

तोयोन्मिश्रं दापयित्वा ततश्च ॥ ८३ ॥

धृतिमान् स्मृतिमाश्रित्यमन्यूनाधिकमाचरन्^१ ।

उचितेनोपचारेण सर्वमेवोपपादयन् ॥ ८४ ॥

जितविकसितासितसरो-

जनयनसङ्क्रान्तिवर्धितश्रीकम् ।

कान्तामुखमिव सौरभ-

हतमधुपगणं पिबेन्मद्यम् ॥ ८५ ॥

पीत्वैवं चषकद्वयं परिजनं संमान्य सर्वं ततो

गत्वाऽऽहारभुवं पुरः सुभिषजो भुञ्जीत भूयोऽत्र च ।

मांसापूपघृताद्र्जादिहरितैर्युक्तं ससौवर्चलै-

र्द्विस्त्रिर्वा निशि वाल्पमेव वनितासञ्चालनार्थं पिबेत् ॥ ८६ ॥

रहसि दयितामङ्गे कृत्वा भुजान्तरपीडनात् ,

पुलकिततनुं जातस्वेदां सकम्पपयोधराम् ।

यदि सरभसं सीधूद्धारं न पाययते कृती

किमनुभवति क्लेशप्रायं ततो गृहतन्त्रताम् ॥ ८७ ॥

वरतनुवक्त्रसङ्गतिमुगन्धितरं सरकं

द्रुतमिव पद्मरागमणिमासवरूपधरम् ।

भवति रतिश्रमेण च मदः पिबतोऽल्पमपि-

क्षयमत ओजसः परिहरन् स शयीत परम् ॥ ८८ ॥

१. न्यूनञ्च-अधिकञ्च न्यूनाऽधिकं न न्यूनाधिकम्—इति नन्समासः । नित्यं समया मात्रया पिबेदित्यर्थः ।

१ इत्थं युक्त्या पिबन्मद्यं न त्रिवर्गाद्विहीयते ।
 असारसंसारसुखं परमेवाधिगच्छति ॥ ८९ ॥
 ऐश्वर्यस्योपभोगोऽयं स्पृहणीयः सुरैरपि ।
 अन्यथा हि विपत्सु स्यात्पश्चात्तापेन्धनं धनम् ॥ ९० ॥
 उपभोगेन रहितो भोगवानिति निन्द्यते ।
 निर्मितोऽतिकदर्योऽयं विधिना निधिपालकः ॥ ९१ ॥
 तस्माद्व्यवस्थया पानं पानस्य सततं हितम् ।
 जित्वा विषयलुब्धानामिन्द्रियाणां स्वतन्त्रताम् ॥ ९२ ॥
 विधिर्वसुमतामेष भविष्यद्वसवस्तु ये ।
 यथोपपत्ति तैर्मद्यं पातव्यं मात्रया हितम् ॥ ९३ ॥
 यावद्दृष्टेर्न सम्भ्रान्तिर्यावज्ज्ञोभते मनः ।
 तावदेव विरन्तव्यं मद्यादात्मवता सदा ॥ ९४ ॥
 अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानवासधूपानुलेपनैः ।
 स्निग्धोष्णैर्भावितश्चान्नैः पानं 'वातोत्तरः' पिबेत् ॥ ९५ ॥
 शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः ।
 'पैत्तिको' भावितश्चान्नैः पिबन्मद्यं न सीदति ॥ ९६ ॥
 उपचारैरशिशिरैर्यवगोधूमभुक् पिबेत् ।
 'श्लैष्मिको' जाङ्गलैर्मसैर्मद्यं मरिचकैः सह ॥ ९७ ॥
 तत्र वाते हितं मद्यं प्रायः पैष्टिकगौडिकम् ।
 पित्ते साम्भो मधु कफे मार्द्वीकारिष्टमाधवम् ॥ ९८ ॥
 प्राक् पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं, भुक्तस्योपरि पैत्तिकः ।
 वातिकस्तु पिबेन्मध्ये, समदोषो यथेच्छया ॥ ९९ ॥

१. युक्तिपीतस्य मद्यस्य फलं वदति-इत्थमित्यादिन्त ।

मर्देषु वातपित्तघ्नं प्रायो मूर्च्छासु चेष्यते ।
 सर्वत्रापि विशेषेण पित्तमेवोपलक्ष्येत् ॥ १०० ॥
 शीताः प्रदेहा मणयः सेका व्यजनमास्ताः ।
 सिताद्राक्षेक्षुखर्जूरकाशमर्यः स्वरसाः पयः ॥ १०१ ॥
 सिद्धं मधुरवर्गेण, रसा यूषाः सदाडिमाः ।
 षष्टिकाः शालयो रक्ता यवाः सर्पिश्च जीवनम् ॥ १०२ ॥
 कल्याणकं महातिक्तं षट्पलं पयसाऽग्निकः ।
 पिप्पल्यो वा शिलाह्वं वा रसायनविधानतः ॥ १०३ ॥
 त्रिफला वा प्रयोक्तव्या सघृतक्षौद्रशर्करा ।
 प्रसक्तवेगेषु हितं मुखनासावरोधनम् ॥ १०४ ॥
 पिबेद्वा मानुषीक्षीरं तेन दद्याच्च नावनम् ।
 मृणालबिसकृष्णा वा लिह्यात्क्षौद्रेण साभयाः ॥ १०५ ॥
 दुरालभं वा मुस्तां वा शीतेन सलिलेन वा ।
 पिबेन्मरिचकोलास्थिमज्जोक्षीराहिकेसरम् ॥ १०६ ॥
 धात्रीफलरसे सिद्धं पथ्याक्काथेन वा घृतम् ।
 कुर्यात्क्रियां यथोक्तां च यथादोषबलोदयम् ॥ १०७ ॥
 पञ्च कर्माणि चेष्टानि सेचनं शोणितस्य च ।
 सत्त्वस्यालम्बनं ज्ञानमगृद्धिर्विषयेषु च ॥ १०८ ॥
 'मदेष्वातिप्रवृद्धेषु 'मूर्च्छायेषु' च योजयेत् ।
 तीक्ष्णं सन्न्यासविहितं, विषघ्नं विषजेषु च ॥ १०९ ॥

१. मदमूर्च्छासन्न्यासाः प्रायः समानाः, परन्तु-मदमूर्च्छायौ
 कृतवेगौ स्वयमपि शाम्यतः, सन्न्यासस्तु-उपायैर्विना न शाम्यति-
 ते चातिशीघ्रं प्रयोज्या-इत्याह-आशु-इति ।

आशु प्रयोज्यं 'सन्न्यासे' सुतीक्ष्णं नस्यमञ्जनम् ।
 धूमप्रधमनं तोदः सूचीभिश्च नखान्तरे ॥ ११० ॥
 केशानां लुञ्चनं दाहो दंशो दशनवृश्चिकैः ।
 कट्वम्लगालनं वक्त्रे कपिकच्छ्ववघर्षणम् ॥ १११ ॥
 उत्थितो लब्धसंज्ञश्च लशुनस्वरसं पिबेत् ।
 खादेत्सव्योषलवणं बीजपूरककेसरम् ॥ ११२ ॥
^१लध्वन्नप्रतितीक्ष्णोष्णमद्यात्स्रोतोविशुद्धये ।
 विस्मापनैः संस्मरणैः प्रियश्रवणदर्शनैः ॥ ११३ ॥
 पटुभिर्गीतिवादित्रिशब्दैर्व्यायामशीलनैः ।
 स्नंसनोल्लेखनैर्धूमैः शोणितस्यावसेचनैः ॥ ११४ ॥
 उपाचरेत्तं प्रततमनुबन्धभयात्पुनः ।
^२तस्य संरक्षितव्यं च मनः प्रलयहेतुतः ॥ ११५ ॥
 इति चिकित्सास्थाने सप्तमोऽध्यायः ।



अष्टमोऽध्यायः ।

^१अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'काले साधारणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम् ।
 विशुद्धकोष्ठं लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम् ॥ १ ॥

१. लध्वन्नप्रति = अल्पलध्वन्नं, तच्च तीक्ष्णोष्णमिति अरुणः ।
 सुप्प्रतिना मात्रार्थे-इति समासः । २. तस्य = मद-मूर्च्छाय-सन्न्यास-
 वतः । ३. अथ = मदात्ययनिरूपणानन्तरं यतः मदादयो रिपुसदृशाः,

शुचिं कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविष्मूत्रमव्यथम् ।
 शयने फलके वाऽन्य-नरोत्सङ्गे व्यपाश्रितम् ॥ २ ॥
 पूर्वैण कायेनोत्तानं प्रत्यादित्यगुदं ^१समम् ।
 समुन्नतकटीदेशमथ यन्त्रणवाससा ॥ ३ ॥
 सक्थनोः शिरोधरायां च परिचितमृजुस्थितम् ।
 आलम्बितं परिचरैः सर्पिषाऽभ्यक्तपायवे ॥ ४ ॥
 ततोऽस्मै सर्पिषाऽभ्यक्तं निदध्यादृजु यन्त्रकम् ।
 शनैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात् ॥ ५ ॥
 यन्त्रे प्रविष्टं दुर्नाम प्लोतगुण्ठितयाऽनु च ।
 शलाकयोत्पीड्य भिषग् यथोक्तविधिना दहेत् ॥ ६ ॥
 क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षारेण ज्वलनेन वा ।
 महद्वा बलिनश्छित्त्वा वीतयन्त्रमथातुरम् ॥ ७ ॥
 स्वभ्यक्तपायुजघनमवगाहे निधापयेत् ।
 निर्वातमन्दिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत् ॥ ८ ॥
 एकैकमिति सप्ताहाः सप्ताहात्समुपाचरेत् ।
 प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः ॥ ९ ॥
 बद्धर्शसः ॐसुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता ।
 रुचिरन्नेऽग्निपटुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः ॥ १० ॥
 बस्तिशूले त्वधो नाभेल्लेपयेच्छूलक्षणकल्कितैः ।
 वर्षाभू-कुष्ठ-सुरभि-मिशि-लोहाऽमराह्वयैः ॥ ११ ॥

अतस्तच्चिकित्सानिरूपणानन्तरं रिपुसदृशानामर्शसां चिकित्सां
 व्याख्यास्यामः । १. प्रत्यादित्यम् = आदित्याऽभिमुखं गुदं यस्य
 तम्, प्रकाशार्थमिदम् ।

शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः ।
 वरणाऽलम्बुषैरण्ड-गोकण्टकपुनर्नवैः ॥ १२ ॥
 सुषवीसुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत् ।
 सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम् ॥ १३ ॥
 युञ्जीतान्नं शकृद्भेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान् ।
 अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान् कफवातजान् ॥ १४ ॥
 संस्तम्भकण्डूखशोफानभ्यज्य गुदकीलकान् ।
 बिल्वमूलाम्रिकक्षारकुष्ठैः सिद्धेन सेचयेत् ॥ १५ ॥
 तैलेनाऽहिविडालोष्प-वराहवसयाऽथवा ।
 स्वेदयेदनु पिण्डेन द्रवस्वेदेन वा पुनः ॥ १६ ॥
 सक्तूनां पिण्डिकाभिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा ।
 रास्नाया हपुषाया वा पिण्डैर्वा काण्यगन्धिकैः ॥ १७ ॥
 अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम् ।
 मार्जारचर्म सर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम् ॥ १८ ॥
 तथाऽश्वगन्धा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम् ।
 धान्याभ्लपिष्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकं मृदु ॥ १९ ॥
 लेपितं छायाया शुष्कं वर्तिर्गुदजशातनी ।
 सजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते ॥ २० ॥
 गुञ्जासूरणकूष्माण्डबीजैर्वर्तिस्तथागुणा ।
 स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकल्कितैः ॥ २१ ॥
 कृकवाकुशकृत्कृष्णानिशागुञ्जाफलैस्तथा ।
 स्नुक्क्षीरपिष्टैः षड्ग्रन्थाहलिनीवारणास्थिभिः ॥ २२ ॥
 कुलीरशृङ्गीविजयाकुष्ठारुष्करतुत्यकैः ।

शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिम्बजैः ॥ २३ ॥
 पीलुमूलेन बिल्वेन हिङ्गुना च समन्वितैः ।
 कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैन्धवं गुडः ॥ २४ ॥
 अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम् ।
 आर्कं पयः स्नुहीकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः ॥ २५ ॥
 करञ्जो वस्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ।
 आनुवासनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः ॥ २६ ॥
 एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलान्यभ्यञ्जनानि च ।
 धूपनालेपनाभ्यङ्गैः प्रस्रवन्ति गुदाङ्कुराः ॥ २७ ॥
 सञ्चितं दुष्टरुधिरं ततः सम्पद्यते सुखी ।
 अवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक् ॥ २८ ॥
 अर्शोभ्यो जलजाशस्त्रसूचीकूर्चैः पुनः पुनः ।
 शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरुपशाम्यति ॥ २९ ॥
 रक्ते दुष्टे, भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।
 यो जातो गोरसः क्षीराद्वह्निचूर्णावचूर्णितात् ॥ ३० ॥
 पिबंस्तमेव तेनैव भुञ्जानो गुदजान् जयेत् ।
 कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत् ॥ ३१ ॥
 अशनन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनामभिः^१ ।
 गुदश्वयथुशूलार्तो मन्दाग्निगौलिमकान् पिबन् ॥ ३२ ॥
 हिङ्गवादीननुतक्रां वा खादेद्गुडहरीतकीम् ।
 तक्रेण वा पिबेत्पथ्यावेह्लाग्निकुटजत्वचः ॥ ३३ ॥
 कलिङ्गमगधाज्योतिःसूरणान् वांश्शवर्धितान् ।

१. हतनामभिः = दुर्नामभिः = अर्शोभिः ।

कोष्णाम्बुना वा त्रिपटुव्योषहिङ्गस्वग्लवेतसम् ॥ ३४ ॥
 युक्तं बिल्व-कपित्थाभ्यां महौषधबिडेन वा ।
 आरुष्करैर्यवान्या वा प्रदद्यात्तक्रतर्पणम् ॥ ३५ ॥
 दद्याद्वा हपुषाहिङ्गुचित्रकं तक्रसंयुतम् ।
 मासं तक्रानुपानानि खादेत्पीलुफलानि वा ॥ ३६ ॥
 पिबेदहरहस्तक्रं निरञ्जो वा प्रकामतः ।
 अत्यर्थमन्द-कायाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत् ॥ ३७ ॥
 सप्ताहं वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा ।
 बलकालविकारज्ञो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
 सायं वा लाजसक्तूनां दद्यात्तक्रावलेहिकाम् ।
 जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेयां ससैन्धवाम् ॥ ३९ ॥
 तक्रानुपानं सस्नेहं तक्रौदनमतः परम् ।
 यूपै रसैर्वा तक्राढ्यैः शालीन् भुञ्जीत मात्रया ॥ ४० ॥
 रुक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।
 तक्रं दोषाम्निबलवन्निविधं तत्प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥
 न विरोहन्ति गुदजाः पुनस्तक्रसमाहताः ।
 निषिक्तं तद्विदहति भूमावपि तृणोलुपम् ॥ ४२ ॥
 स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसो धातूनुपैति यः ।
 तेन पुष्टिर्बलं वर्णः परं तुष्टिश्च जायते ॥ ४३ ॥
 वातश्लेष्मविकाराणां शतं च विनिवर्तते ।
 मथितं भाजने क्षुद्रवृहतीफललेपिते ॥ ४४ ॥

१. गुदजाः = अशांसि, तक्रसमाहताः = तक्रदग्धाः, 'न तक्रदग्धाः
 प्रभवन्ति रोगाः'—इत्युक्तेः ।

निशां पर्युषितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम् ।
 धान्योपकुञ्चिकाऽजाजीहपुषापिप्पलीद्वयैः ॥ ४५ ॥
 कारवीप्रन्थिकशठीयवान्यग्नियवानकैः ।
 चूर्णितैर्धृतपात्रस्थं नात्यम्लं तक्रमासुतम् ॥ ४६ ॥
 तक्रारिष्टं पिबेज्जातं व्यक्ताम्लकटु कामतः ।
 दीपनं रोचनं वर्ण्यं कफवातानुलोमनम् ॥ ४७ ॥
 गुदश्चयथुकण्ड्वर्तिनाशनं बलवर्धनम् ।
 त्वचं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ॥ ४८ ॥
 तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहरं पिबेत् ।
 भाङ्गर्यास्फोतामृतापञ्चकोलेष्वप्येष ^१संविधिः ॥ ४९ ॥
 पिष्टैर्गजकणापाठाकारवीपञ्चकोलकैः ।
 तुम्बवर्वाजाजीधनिकाबिल्वमध्यैश्च कल्पयेत् ॥ ५० ॥
 फलाम्लान् यमकस्नेहान् पेयायूषरसादिकान् ।
 एभिरेवौषधैः साध्यं वारि सर्पिश्च दीपनम् ॥ ५१ ॥
 क्रमोऽयं भिन्नशकृतां, वच्यते 'गाढवर्चसाम्' ।
 स्नेहाढ्यैः सक्तुभिर्युक्तां लवणां वारुणीं पिबेत् ॥ ५२ ॥
 लवणा एव वा तक्रसीधुधान्याम्लवारुणीः ।
 प्राग्भक्तं यमके भृष्टान् सक्तुभिश्चावचूर्णितान् ॥ ५३ ॥
 करञ्जपञ्चवान् खादेद्वातवर्चोऽनुलोमनान् ।
 सगुडं नागरं पाठां गुड-क्षार-घृतानि वा ॥ ५४ ॥
 गोमूत्राध्युषितामद्यात्सगुडां वा हरीतकीम् ।
 पथ्याशतद्वयान्मूत्रद्रोणेनाऽऽमूत्रसङ्ख्यात् ॥ ५५ ॥

१. एष संविधिः = कुम्भप्रलेपविधिः ।

पक्कान् खादेत्समधुनी द्वे द्वे, हन्ति कफोज्ञवान् ।
 दुर्नाम-कुष्ठ-श्वयथु-गुल्म-मेहोदर-क्रिमीन् ॥ ५६ ॥
 ग्रन्थ्यर्बुदापचीस्थौल्य-पाण्डुरोगाऽऽब्ध्यमारुतान् ।
 अजशृङ्गीजटाकल्कमजामूत्रेण यः पिबेत् ॥ ५७ ॥
 गुडवार्ताकभुक्तस्य नश्यन्त्याशु गुदाङ्कुराः ।
 श्रेष्ठारसेन त्रिवृतां पथ्यां तक्रेण वा सह ॥ ५८ ॥
 पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टां गुडान्विताम् ।
 अथवा सत्रिवृद्वन्तीं भक्षयेदनुलोमनीम् ॥ ५९ ॥
 हते गुदाश्रये दोषे गुदजा यान्ति सङ्क्षयम् ।
 दाडिमस्वरसाजाजी-यवानीगुडनागरैः ॥ ६० ॥
 पाठया वा युतं तक्रं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
 सीधुं वा गौडमथवा सच्चित्रकमहौषधम् ॥ ६१ ॥
 पिबेत्सुरां वा हपुषापाठासौवर्चलान्विताम् ।
 दशादिदशकैर्द्धाः पिप्पलीद्विपिचुं तिलान् ॥ ६२ ॥
 पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहुताशयोः ।
 दुःस्पर्शकेन बिल्वेन यवान्या नागरेण वा ॥ ६३ ॥
 एकैकेनाऽपि संयुक्ता पाठा हन्त्यर्शसां रुजम् ।

अभयाऽरिष्टः ।

सलिलस्य ^१वहे पक्त्वा प्रस्थार्धमभयात्वचम् ॥ ६४ ॥
 प्रस्थं धात्र्या दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः ।
 विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥ ६५ ॥

१. वहे = द्रोणचतुष्टये ।

द्विपलांशं पृथक्पादशेषे पूते गुडात्तुले ।
 दत्त्वा प्रस्थं च धातक्याः स्थापयेद् घृतभाजने ॥ ६६ ॥
 पक्षात्स शीलितोऽरिष्टः करोत्यग्निं, निहन्ति च ।
 गुदजग्रहणीपाण्डुकुष्ठोदरगरज्वरान् ॥ ६७ ॥
 श्वयथुप्लीहहृद्रोगगुल्मयक्ष्मवमिक्रिमीन् ।
 जलद्रोणे पचेदन्तीदशमूलवराग्निकान् ॥ ६८ ॥
 पालिकान्पादशेषे तु क्षिपेद्गुडतुलं परम् ।
 पूर्ववत्सर्वमस्य स्यादानुलोमितरस्त्वयम् ॥ ६९ ॥
 पचेद्दुरालभाप्रस्थं द्रोणेऽपां प्रासृतैः^१ सह ।
 दन्तीपाठाऽग्निविजयावासामलकनागरैः ॥ ७० ॥
 तस्मिन् सिताशतं दद्यात्पादस्थेऽन्यच्च पूर्ववत् ।
 लिम्पेत्कुम्भं तु फलिनीकृष्णाचव्याज्यमाक्षिकैः ॥ ७१ ॥
 प्राग्भक्तमानुलोभ्याय फलाम्लं वा पिबेद् घृतम् ।
 चव्यचित्रकसिद्धं वा यवक्षारगुडान्वितम् ॥ ७२ ॥
 पिप्पलीमूलसिद्धं वा सगुडक्षारनागरम् ।
 पिप्पलीपिप्पलीमूलधानकादाडिमैर्वृतम् ॥ ७३ ॥
 दध्ना च साधितं वातशकृन्मूत्रविबन्धहृत् ।
 पलाशक्षारतोयेन त्रिगुणेन पचेद् घृतम् ॥ ७४ ॥
 वत्सकादिप्रतीवापमर्शोर्धनं दीपनं परम् ।
 पञ्चकोलाभयाक्षारयवानीबिडसैन्धवैः ॥ ७५ ॥
 सपाठाधान्यमरिचैः सविस्वैर्दधिमद् घृतम् ।
 साधयेत् तज्जयत्याशु गुदवङ्गणवेदनाम् ॥ ७६ ॥

१. प्रासृतैः = द्विपलिकैः ।

प्रवाहिकां गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।
 पाठाजमोदधनिकाश्वदंष्ट्रापञ्चकोलकैः ॥ ७७ ॥
 सविल्वैर्दधि चाङ्गेरीस्वरसे च चतुर्गुणे ।
 हन्त्याज्यं सिद्धमानाहं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ७८ ॥
 गुदभ्रंशार्तिगुदजग्रहणीगदमारुतान् ।
 शिखितित्तिरिलावानां रसानग्लान् सुसंस्कृतान् ॥ ७९ ॥
^१दक्षाणां वर्तकानां वा दद्याद्विड्वातसङ्ग्रहे ।

आहारं निरूपयति—

वास्तुकाग्नित्रिवृद्दन्तीपाठाम्लीकादिपल्लवान् ॥ ८० ॥
 अन्यच्च कफवातघ्नं शाकं च लघु भेदि च ।
 सहिष्णु यमके भृष्टं सिद्धं दधिसरैः सह ॥ ८१ ॥
 धनिकापञ्चकोलाभ्यां पिष्टाभ्यां दाडिमाग्लुना ।
^२आद्रिकायाः किसलयैः शकलैरार्द्रकस्य च ॥ ८२ ॥
 युक्तमङ्गारधूपेन हृद्येन सुरभीकृतम् ।
 सजीरकं समरिचं बिडसौवर्चलोत्कटम् ॥ ८३ ॥
 वातोत्तरस्य रूक्षस्य मन्दाग्नेर्बद्धवर्चसः ।
 कल्पयेद्भक्षशाल्यन्नव्यञ्जनान् ^३शाकवद् रसान् ॥ ८४ ॥
 गोगोधाङ्गागलोष्ट्राणां विशेषात्क्रव्यभोजिनाम् ^४ ।

१. दक्षी = वन्यः कुक्कुटः ।

२. आद्रिकायाः = धनिकायाः, किसलयैः पल्लवैर्युक्तमित्यरुणः ।

३. रक्तशाल्यन्नस्य भक्षस्य व्यञ्जनं = तेमनाख्यं कल्पयेत् =
 शाकसंस्कारेण कुर्यादित्यरुणः । ४. क्रव्यभोजिनाम् = आममांस-
 भक्षिणाम् ।

पानं निरूपयति ।

१ मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम् ॥ ८५ ॥

अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाऽल्पकं शृतम् ।

धान्येन धान्यशुण्ठीभ्यां कण्टकारिकयाऽथवा ॥ ८६ ॥

अन्ते भक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोऽनुलोमनम् ।

अनुलोमनमाह—

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले ॥ ८७ ॥

गुदे शाम्यन्ति गुदजाः पावकश्चाभिवर्धते ।

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरुक्षिताः ॥ ८८ ॥

विलोमवाताः शूलार्तास्तेष्विष्टमनुवासनम् ।

पिप्पलीं मदनं बिल्वं शताह्वां मधुकं वचाम् ॥ ८९ ॥

कुष्ठं शटीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ।

पिप्पू तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम् ॥ ९० ॥

अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ।

गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ॥ ९१ ॥

कटथूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्गणाश्रयम् ।

पिच्छास्त्रावं गुदे शोफं वातवर्चोविनिग्रहम् ॥ ९२ ॥

उत्थानं बहुशो यच्च जयेत्तच्चानुवासनात् ।

निरुहं वा प्रयुञ्जीत सक्षीरं पाञ्चमूलिकम् ॥ ९३ ॥

समूत्रस्नेहलवणं कल्कैर्युक्तं फलादिभिः ।

अथ रक्तार्शसां वीचय मारुतस्य कफस्य वा ॥ ९४ ॥

१. मदिरादिकं—पानीयं = पातव्यं वस्तु दद्यात् । अथवा शृतम्—
अल्पकं पानीयं = जलमेव पानीयं = पानार्हं = पानार्थं दद्यात् ।

अनुबन्धं, ततः स्निग्धं रूक्षं वा योजयेद्विमम् ।
 शकृच्छयावं खरं रूक्षमधो निर्याति नानिलः ॥ ९५ ॥
 कट्यूरुगुदशूलं च हेतुर्यदि च रूक्षणम् ।
 तत्रानुबन्धो वातस्य, श्लेष्मणो यदि विट् श्लथा ॥ ९६ ॥
 श्वेता पीता गुरुः स्निग्धा, सपिच्छः^१ स्तिमितो गुदः ।
 हेतुः स्निग्धगुरुर्विद्याद्यथास्वं चास्रलक्षणात् ॥ ९७ ॥
 दुष्टेऽस्त्रे शोधनं कार्यं लङ्घनं च यथावलम् ।
 यावच्च दोषैः कालुष्यं स्नुतेस्तावदुपेक्षणम् ॥ ९८ ॥
 दोषाणां पाचनार्थं च वह्निसन्पुक्षणाय च ।
 सङ्ग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तेरुपाचरेत् ॥ ९९ ॥
 यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोत्बणस्य वा ।
 स्नेहैस्तच्छोधयेद्युक्तैः पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ १०० ॥
 यत्तु पित्तोत्बणं रक्तं धर्मकाले प्रवर्तते ।
 स्तम्भनीयं तदेकान्ताज्ञ चेद्वातकफानुगम् ॥ १०१ ॥
 'सकफेऽस्त्रे पिबेत्पाक्यं शुण्ठीं कुटजवल्कलम् ।
 किराततित्तकं शुण्ठीं धन्वयासं कुचन्दनम् ॥ १०२ ॥
 दार्वीत्वङ्निम्बसेव्यानि त्वचं वा दाडिमोद्भवाम् ।
 कुटजत्वक्फलं तार्क्ष्यं मात्तिकं घुणवल्गुभाम् ॥ १०३ ॥
 पिबेत्तण्डुलतोयेन कल्कितं वा मयूरकम् ।
 तुलां दिव्याम्भसि पचेदार्द्रायाः कुटजत्वचः ॥ १०४ ॥
 नीरसायां त्वचि क्वाथे दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान् ।

१. सपिच्छः-इति पाठे गुदविशेषणम् । गुदस्य पुंस्त्वं चिन्त्यम् ।

समङ्गाफलिनीमोचरसान्मुष्टयंशकान्समान् ॥ १०५ ॥
 तैश्च शक्रयवान्पूते ततो दर्वीप्रलेपनम् ।
 पक्त्वाऽवलेहं लीढ्वा च तं यथाग्निबलं पिबेत् ॥ १०६ ॥
 पेयां मण्डं पयश्छागं गव्यं वा छागदुग्धभुक् ।
 लेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीसारपायुजान् ॥ १०७ ॥
 बलवद्रक्तपित्तं च स्रवदूर्ध्वमधोऽपि वा ।
 कुटजत्वक्तुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषिताम् ॥ १०८ ॥
 कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तार्क्ष्यशैलं कटुत्रयम् ।
 रोध्रद्वयं मोचरसं बलां दाडिमजां त्वचम् ॥ १०९ ॥
 बिल्वकर्कटिका मुस्तं समङ्गां धातकीफलम् ।
 पलोन्मितं दशपलं कुटजस्यैव च त्वचः ॥ ११० ॥
 त्रिंशत्पलानि गुडतो घृतात्पूते च विंशतिः ।
 तत्पक्वं लेहतां यातं धान्ये पक्षस्थितं लिहन् ॥ १११ ॥
 सर्वांशोऽग्रहणीदोष-श्वासकासान्नियच्छति ।
 रोध्रं तिलान्मोचरसं समङ्गां चन्दनोत्पलम् ॥ ११२ ॥
 पाययित्वाऽजदुग्धेन शालींस्तेनैव भोजयेत् ।
 यष्ट्याह्नपञ्चकानन्तापयस्याक्षीरमोरटम् ॥ ११३ ॥
 ससितामधु पातव्यं शीततोयेन तेन वा ।
 रोध्रकट्वङ्गकुटजसमङ्गाशालमलीत्वम् ॥ ११४ ॥
 हिमकेसरयष्ट्याह्न-सेव्यं वा तण्डुलाम्बुना ।
 यवानीन्द्रयवाः पाठा बिल्वं शुण्ठी रसाञ्जनम् ॥ ११५ ॥
 चूर्णंश्च, चले, हितः शूले प्रवृत्ते चाऽति शोणिते ।
 दुग्धिकाकण्टकारीभ्यां सिद्धं सर्पिः प्रशस्यते ॥ ११६ ॥

अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्फलोत्पलैः ।
 सकेसरैर्यवचारदाडिमस्वरसेन वा ॥ ११७ ॥
 शर्कराऽम्भोजकिञ्जल्कसहितं सह वा तिलैः ।
 अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति ॥ ११८ ॥
 छागानि नवनीताज्यक्षीरमांसानि जाङ्गलः ।
 अनग्लो वा कदग्लो वा सवास्तुकरसो रसः ॥ ११९ ॥
 रक्तशालिः सरो दध्नः षष्टिकस्तरुणी सुरा ।
 १ तरुणश्च सुरामण्डः शोणितस्यौषधं परम् ॥ १२० ॥
 पेयायूषरसाद्येषु पलाण्डुः केवलोऽपि वा ।
 स जयत्युल्बणं रक्तं मास्तं च प्रयोजितः ॥ १२१ ॥
 वातोल्बणानि प्रायेण भवन्त्यस्तेऽतिनिःसृते ।
 अर्शांसि, तस्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत् ॥ १२२ ॥
 दृष्ट्वाऽस्त्रपित्तं प्रबलमवलौ च कफानिलौ ।
 शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रशान्तये ॥ १२३ ॥
 यदा चैवं शमो न स्यात् स्निग्धोष्णैस्तर्पयेत्ततः ।
 रसैः कोष्णैश्च सर्पिर्भिरवपीडकयोजितैः ॥ १२४ ॥
 सेचयेत्तं कवोष्णश्च कामं तैलपयोधृतैः ।
 यवासकुशकाशानां मूलं पुष्पं च शाल्मलेः ॥ १२५ ॥
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ-शुङ्गाश्च द्विपलोन्मिताः ।
 त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थे च साधयेत् ॥ १२६ ॥
 क्षीरशेषे कषाये च तस्मिन्पूते विमिश्रयेत् ।
 कल्कीकृतं मोचरसं समङ्गां चन्दनोत्पलम् ॥ १२७ ॥

१. तरुणो नूतनः सुराया मण्डः = सुराया- उपरितनः सरः ।

प्रियङ्गुं कौटजं बीजं कमलस्य च केसरम् ।
 'पिच्छाबस्तिरयं' सिद्धः सघृतक्षौद्रशर्करः ॥ १२८ ॥
 प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ।
 यष्ट्याह्वपुण्डरीकेण तथा मोचरसादिभिः ॥ १२९ ॥
 क्षीरद्विगुणितः पक्वो देयः स्नेहोऽनुवासनम् ।
 मधुकोत्पलरोध्राम्बुसमङ्गा बिल्वचन्दनम् ॥ १३० ॥
 चविकातिविषा मुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रजः^१ ।
 दार्वात्स्वङ्नागरं मांसी चित्रको देवदारु च ॥ १३१ ॥
 चाङ्गेरीस्वरसे सर्पिः साधितं तैस्त्रिदोषजित् ।
 अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारूचौ ॥ १३२ ॥
 मूत्रकृच्छ्रे गुदभ्रंशे बस्त्यानाहे प्रवाहणे ।
 पिच्छास्रावेऽर्शसां शूले देयं तत्परमौषधम् ॥ १३३ ॥
 व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयेत् ।
 नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शः कृतान् गदान् ॥ १३४ ॥
 उदावर्तार्तमभ्यज्य तैलैः शीतज्वरापहैः ।
 सुस्त्रिगधैः स्वेदयेत्पिण्डैर्वर्तिमस्मै गुदे ततः ॥ १३५ ॥
 अभ्यक्तां तत्कराङ्गुष्ठसन्निभामनुलोमनीम् ।
 दद्याच्छ्यामात्रिवृद्धन्तीपिप्पलीनीलिनीफलैः ॥ १३६ ॥
 विचूर्णितैर्द्विलवणैर्गुण्डगोमूत्रसंयुतैः ।
 तद्वन्मागधिकाराठगृहधूमैः ससर्षपैः ॥ १३७ ॥
 एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाड्या विनिर्धमेत् ।

१. अल्पया मात्रया निरुह्यो बस्तिरेव पिच्छाबस्तिरुच्यते ।

२. यवाग्रजः = यवशूकजः क्षार-इत्यस्य विशेषणम् ।

तद्विघाते सुतीक्ष्णं तु वस्ति स्निग्धं प्रपीडयेत् ॥ १३८ ॥
 ऋजूकुर्याद्गुदसिरा-विण्मूत्रमरुतोऽस्य सः^१ ।
 भूयोऽनुबन्धे वातघ्नैर्विरेच्यः स्नेहरेचनैः ॥ १३९ ॥
 अनुवास्यश्च रौक्ष्याद्धि सङ्गो मारुतवर्चसोः ।
 त्रिकटुत्रिपटुश्रेष्ठादन्यरूपकरचित्रकम् ॥ १४० ॥
 जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमन्तर्धूमं विपाचयेत् ।
 शरावसन्धौ मृस्त्रिसे चारः, कल्याणकाह्वयः^२ ॥ १४१ ॥
 स पीतः सर्पिषा युक्तो भक्ते वा स्निग्धभोजना ।
 उदावर्तविबन्धाशोऽगुल्मपाण्डूदरक्रिमीन् ॥ १४२ ॥
 मूत्रसङ्गाशमरीशोऽफहृद्रोगग्रहणीगदान् ।
 मेहप्लीहरुजानाहश्वासकासांश्च नाशयेत् ।
 सर्वं च कुर्याद्यत्प्रोक्तमर्शासां गाढवर्चसाम् ॥ १४३ ॥

द्रोणेऽपां^२ पूतिवल्क-

द्वितुलमथ पचेत्पादशेषे च तस्मिन्
 देयाऽशीतिर्गुडस्य
 प्रतनुकरजसो व्योषतोऽष्टौ पलानि ।
 एतन्मासेन जातं
 जनयति परमामूष्मणः पक्तिशक्तिं
 शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं

प्रजयति गुदजप्लीहगुल्मोदराणि ॥ १४४ ॥

१. स वस्तिः, अस्य = आतुरस्य गुदसिरा-विण्-मूत्र-मरुतः
 कर्मभूतान् ऋजूकुर्याद् = अनुलोमयेत् । गुदशिरो-इति पाठे शिरः =
 अग्रम् । २. पूतिकरस्य वल्कस्य = त्वचः, द्वितुलम् = पलशतद्वयम् ।

पचेत्तुलां पूतिकरञ्जवल्काद्
 द्वे मूलतश्चित्रककण्टकार्योः ।
 द्रोणत्रयेऽपां चरणावशेषे
 पूतेऽशतं तत्र गुडस्य दद्यात् ॥ १४५ ॥
 पलिकं च सुचूर्णितं त्रिजात-
 त्रिकटुग्रन्थिकदाडिमाशमभेदम् ।
 पुरपुष्करमूलधान्यचव्यं
 हपुषामार्द्रकमम्लवेतसं च ॥ १४६ ॥
 शीतीभूतं सौद्रविंशस्युपेत-
 मार्द्रद्राक्षाबीजपूरार्धकैश्च ।
 युक्तं कामं गण्डिकाभिस्तथेक्षोः
 सर्पिः पात्रे मासमात्रेण जातम् ॥ १४७ ॥
^१ चुक्रं क्रकचमिवेदं दुर्नाम्नां वह्निदीपनं परमम् ।
 पाण्डुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाशमकृच्छ्रघ्नम् ॥ १४८ ॥
 द्रोणं पीलुरसस्य वस्त्रगलितं न्यस्तं हविर्भाजने
 युञ्जीत द्विपलैर्मदामधुफलाखर्जूरधत्रीफलैः ।
 पाठामाद्रिदुरालभासलविदुलव्योषत्वगेलोस्त्रकैः
 स्पृष्ट्वाकोललवङ्गवेह्लचपलामूलाम्भिकैः पालिकैः ॥ १४९ ॥
 गुडपलशतयोजितं निवाते,
 निहितमिदं प्रपिबंश्च पञ्चमात्रात् ।

जलद्रोणे पचेत् । स्रग्धरा छन्दः ।

१. चुक्रम् = शुक्तम् कालान्तरेण चुक्रवदम्लत्वात् चुक्रमित्युक्तम् ।

निशमयति गुदाङ्कुरान् , सगुल्मा-

ननलबलं प्रबलं करोति चाशु ॥ १५० ॥

एकैकशो दशपले दशमूलकुम्भ-

पाठाद्वयार्क-घुणवल्लभ-कट्फलानाम् ।

दग्धे शृतेऽनु कलशेन जलेन पक्वे

पादस्थिते गुडतुलां पलपञ्चकं च ॥ १५१ ॥

दद्यात्प्रत्येकं न्योपचव्याभयानां

वह्नेर्मुष्टी द्वे द्वे यवक्षारतश्च ।

दर्वीमालिम्पन् हन्ति लीढो गुडोऽयं

गुल्मप्लीहाशः कुष्ठमेहाम्रिसादान् ॥ १५२ ॥

तोयद्रोणे चित्रकमूलतुलार्धं

साध्वं याक्त्वापदजलस्थमपीदम् ।

अष्टौ दत्त्वा जीर्णगुडस्य पलानि

क्वाथ्यं भूयः सान्द्रतया सममेतत् ॥ १५३ ॥

त्रिकटुकमिसिपथ्याकुष्ठमुस्तावराङ्ग-

क्रिमिरिपुदहनैलाचूर्णकीर्णोऽवलेहः ।

जयति गुडजकुष्ठप्लीहगुल्मोदराणि

प्रबलयति हुताशं शश्वदभ्यस्यमानः ॥ १५४ ॥

गुडन्योपवरावेल्लतिलारुष्करचित्रकैः ।

अर्शोसि हन्ति गुटिका त्वग्विकारं च शीलिता ॥ १५५ ॥

मृल्लिप्तं सौरणं कन्दं पक्त्वाऽग्नौ पुटपाकवत् ।

अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ १५६ ॥

मरिचपिप्पलिनागरचित्रकान्

क्रमबिवर्धितभागसमाहृतान् ।

शिखिचतुर्गुणसूरणयोजितान्

कुरु गुडेन गुडान् गुदजच्छिदः ॥ १५७ ॥

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य^१

भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।

महौषधाद् द्वौ मरिचस्य चैको

गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ १५८ ॥

पथ्यानागरकृष्णाकरजवेल्हाग्निभिः सितातुल्यैः ।

वडवामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १५९ ॥

कलिङ्गलाङ्गलीकृष्णावह्वयपामार्गतण्डुलैः ।

भूनिम्बसैन्धवगुडैर्गुडा गुदजनाशनाः ॥ १६० ॥

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवां-

श्रिरबित्त्वमहापिचुमन्दयुतान् ।

पिव सप्तदिनं मथितालुडितान्

यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान्^२ ॥ १६१ ॥

शुष्केषु भल्लातकमग्रथमुक्तं

भैषज्यमार्द्रेषु तु वत्सकत्वक् ।

सर्वेषु सर्वर्तुषु कालशेय-

मर्शःसु बल्यं च मलापहं च ॥ १६२ ॥

भित्त्वा विबन्धानुलोमनाय

यन्मारुतस्याऽग्निबलाय यच्च ।

१. सूरणो द्विविधः-ग्राम्यो वन्यश्च, वन्यो नितरामर्शोष्णः ।

२. पायुरुहान् = गुदाङ्कुरान् = अर्शोसि ।

तदन्नपानौषधमर्शसेन,
 सेव्यं, विवर्ज्यं विपरीतमस्मात् ॥ १६३ ॥
 अर्शोऽतिसारग्रहणीविकाराः
 प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ।
^१सन्नेऽनले सन्ति, न सन्ति दीप्ते
 रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥ १६४ ॥
 इति चिकित्सास्थानेऽष्टमोऽध्यायः ।



नवमोऽध्यायः ।

^२अथातोऽतीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'अतीसारो हि भूयिष्ठं भवत्यामाशयान्वयः ।
 हत्वाऽग्निं, वातजेऽप्यस्मात् ^३प्राक् तस्मिन्नङ्गनं हितम् ॥ १ ॥
 शूलानाहप्रसेकार्तं वामयेदतिसारिणम् ।
 दोषाः 'सञ्जिचिता' ये च विदग्धाहारमूर्च्छिताः ॥ २ ॥

१. सन्ने = मन्दे, अनले = जाठराऽनले । इति ।

२. अथ = अर्शोऽनिरूपणानन्तरं यतो मन्दाग्निमूलकोऽतीसारः
 अतस्तच्चिकित्सां निरूपयिष्यामः ।

३. अस्मात् = मन्दाग्निपूर्वकमामाशयाऽऽश्रयत्वात्, तस्मिन्—
 अतीसारं रोगे वातजेऽपि किमुत कफादिजे प्राक् = प्रथमं, लङ्घनम् =
 उपवासः, हितम् = दोषपाचकत्वेन जाठरानलदीपकम् ।

अतिसाराय^१ कल्पन्ते, ^२तेषूपेक्षैव भेषजम् ।
 भृशोत्क्लेशप्रवृत्तेषु स्वयमेव चलात्मसु^३ ॥ ३ ॥
 प्रयोज्यं न तु सङ्ग्राहि पूर्वमामातिसारिणि ।
 अपि चाध्मानगुरुताशूलस्तैमित्यकारिणि ॥ ४ ॥
 प्राणदा^३ प्राणदा दोषे विबद्धे सम्प्रवर्तिनी ।
 पिबेत्प्रकथितास्तोये 'मध्यदोषो' विशोषयन् ॥ ५ ॥
 भूतीकपिप्पलीशुण्ठीवचाधान्यहरीतकीः ।
 अथवा बिल्वधनिकामुस्तानागरबालकम् ॥ ६ ॥
 बिडपाठावचापथ्याकृमिजिन्नागराणि वा ।
 शुण्ठीघनवचामाद्रीबिल्ववत्सकहिङ्गु वा ॥ ७ ॥
 शस्यते त्वल्पदोषाणाम्^३ उपवासोऽतिसारिणाम् ।
 वचाप्रतिविषाभ्यां वा मुस्तापर्पटकेन वा ॥ ८ ॥
 ह्रीबेरनागराभ्यां वा विपक्वं पाययेज्जलम् ।
 युक्तेऽन्नकाले क्षुत्तामं लघ्वन्नं प्रतिभोजयेत् ॥ ९ ॥
 तथा स शीघ्रं प्राप्नोति रुचिमग्निबलं बलम् ।
 तक्रेणावन्तिसोमेन यवाग्वा तर्पणेन वा ॥ १० ॥
 सुरया मधुना चाऽथ यथासात्म्यमुपाचरेत् ।
 भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं ग्राहिदीपनपाचनैः ॥ ११ ॥

१. अतिसारात्मना परिणता भवन्ति 'कल्पि-सम्पद्यमाने च'
 इति चतुर्थी ।

२. तेषु = विदग्धाहारप्रकुपितेषु दोषेषु-उपेक्षा = उपेत्य ईक्षा =
 विचार्यकारिता = उपवासः, पथ्याशित्वं, लघुभोजित्वमेव भेषजम् =
 व्याधिहरम् । ३. प्राणदा = हरीतकी, प्राणदा = प्राणदात्री ।

बालविल्वशठीधान्यहिङ्गुवृक्षाम्लदाडिमैः ।
 पलाशहपुषाऽजाजीयवानीविडसैन्धवैः ॥ १२ ॥
 लघुना पञ्चमूलेन पञ्चकोलेन पाठया ।
 शालिपर्णीबलाविल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ॥ १३ ॥
 दाडिमांस्त्रिहिता पेया कफपित्ते समुत्बले ।
 अभयापिप्पलीमूलविल्वैर्वातानुलोमनी ॥ १४ ॥
 विबद्धं दोषबहुलं दीप्ताग्निर्योऽतिसार्यते ।
 कृष्णाविडङ्गत्रिफलाकषायैस्तं विरेचयेत् ॥ १५ ॥
 पेयां युञ्ज्याद्विरिक्तस्य वातघ्नैर्दीपनैः कृताम् ।
 आमे परिणते यस्तु दीप्तेऽग्नाद्युपवेश्यते ॥ १६ ॥
 सफेनपिच्छं सरुजं सविवन्धं पुनः पुनः ।
 अल्पाल्पमल्पं समलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम् ॥ १७ ॥
 दधितैलघृतक्षीरैः स शुण्ठीं सगुडं पिबेत् ।
 स्विन्नानि गुडतैलेन भक्षयेद्द्वदराणि वा ॥ १८ ॥
 गाढविड्विहितैः शाकैर्बहुस्नेहैस्तथा रसैः ।
 क्षुधितं भोजयेदेनं दधिदाडिमसाधितैः ॥ १९ ॥
 शाल्योदनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम् ।
 शुण्ठ्या मूलकपोतायाः पाठायाः स्वस्तिकस्य वा ॥ २० ॥
 स्नुषायवानीकर्कारुक्षीरिणीचिर्भटस्य वा ।
 उपोदिकाया जीवन्त्या बाकुल्या वास्तुकस्य वा ॥ २१ ॥
 सुवर्चलायाश्चुङ्चोर्वा लोणिकाया रसैरपि ।
 कूर्मवर्तकलोपाकशिखितित्तिरिकौवकुटैः ॥ २२ ॥
 बिल्वमुस्ताक्षिभैषज्यधातकीपुष्पनागरैः ।

पक्कातिसारजित्तक्रे यवागूर्दाधिकी तथा ॥ २३ ॥
 कपित्थकच्छुराफञ्जीयूथिकावटशेलुजैः ।
 दाडिमीशणकार्पासीशाल्मलीमोचपल्लवैः ॥ २४ ॥
 कल्को बिल्वशलाट्टूनां तिलकल्कश्च तत्समः ।
 दध्नः सरोऽम्लः सस्नेहः खलो हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ २५ ॥

अपराजितमाह—

मरिचं धनिकाजाजीतित्तिडीकशठीबिडम् ।
 दाडिमं धातकीपाठान्निफलापञ्चकोलकम् ॥ २६ ॥
 यावशूकं कपित्थाम्रजम्बूमध्यं सदीप्यकम् ।
 पिष्टैः षड्गुणबिल्वैस्तैर्दध्नि मुद्गरसे गुडे ॥ २७ ॥
 स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽयमपराजितः ।
 दीपनः पाचनो ग्राही रुच्यो बिम्बशि-नाशनः^१ ॥ २८ ॥
 कोलानां बालबिल्वानां कल्कैः शालियवस्य च ।
 मुद्गमाषतिलानां च धान्ययूषं प्रकल्पयेत् ॥ २९ ॥
 ऐकध्यं यमके भृष्टं दधिदाडिमसारिकम् ।
 वर्चःक्षये शुष्कमुखं शाल्यन्नं तेन भोजयेत् ॥ ३० ॥
 दध्नः सरं वा यमके भृष्टं सगुडनागरम् ।
 सुरां वा यमके भृष्टां व्यञ्जनार्थं प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥
 फलाम्लं यमके सृष्टं यूषं गृञ्जनकस्य वा ।
 भृष्टान्वा यमके सक्तून् खादेद् व्योषावचूर्णितान् ॥ ३२ ॥
 माषान् सुसिद्धांस्तद्वद्वा घृतमण्डोपसेवनान् ।
 रसं सुसिद्धं पूतं वा छागमेषान्तराधिजम् ॥ ३३ ॥

१. बिम्बशिनाशनः = प्रवाहिकाघ्नः ।

पचेद्वाडिमसाराम्लं सधान्यस्नेहनागरम् ।
 रक्तशाल्योदनं तेन भुञ्जानः प्रपिबंश्च तम् ॥ ३४ ॥
 वर्चःक्षयकृतराशु विकारैः परिमुच्यते ।
 बालबिल्वं गुडं तैलं पिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ३५ ॥
 लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूलः सप्रवाहिकः ।
 वल्कलं शाबरं पुष्पं धातक्या बदरीफलम् ॥ ३६ ॥
 पिबेद्दधिसरक्षौद्रकपित्थस्वरसाप्लुतम् ।
 विबद्धवातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः ॥ ३७ ॥
 सरक्तपिच्छस्तृणार्तः क्षीरसौहित्यमर्हति ।
 यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥
 शृतमेरण्डमूलेन बालबिल्वेन वा पुनः ।
 पयस्युत्काथ्य मुस्तानां विंशतिस्त्रिगुणेऽम्भसि ॥ ३९ ॥
 क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ।
 पिप्पल्याः पिबतः सूक्ष्मं रजो मरिचजन्म वा ॥ ४० ॥
 चिरकालानुषक्ताऽपि नश्यत्याशु 'प्रवाहिका' ।
 निरामरूपं शूलार्तं लङ्घनाद्यैश्च कर्षितम् ॥ ४१ ॥
 रुक्मकोष्ठमपेक्ष्याग्निं सत्तारं पाययेद् घृतम् ।
 सिद्धं दधिसुरामण्डे दशमूलस्य चाम्भसि ॥ ४२ ॥
 सिन्धूत्थपञ्चकोलाभ्यां तैलं सद्योऽर्तिनाशनम् ।
 षड्भिः शुण्ठ्याः पलैर्द्वाभ्यां द्वाभ्यां ग्रन्थ्यग्निसैन्धवात् ॥ ४३ ॥
 तैलप्रस्थं पचेद्दध्ना निःसारकरुजापहम् ।
 एकतो मांसदुग्धाज्यं पुरीषग्रहशूलजित् ॥ ४४ ॥
 पानानुवासनाभ्यङ्गप्रयुक्तं तैलमेकतः ।

तद्धि वातजितामग्र्यं शूलं च विगुणोऽनिलः ॥ ४५ ॥

धात्वन्तरोपमर्दाद्वै चलो व्यापी स्वधामगः ।

तैलं मन्दानलस्याऽपि युक्त्या शर्मकरं परम् ।

वायवाशये सतैले हि बिम्बिशी(सी) नावतिष्ठते ॥ ४६ ॥

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु

दोषान्तरेष्वीरण एकवीरे ।

को निष्टनन् प्राणिति कोष्ठशूली

नान्तर्बहिस्तैलपरो यदि स्यात् ॥ ४७ ॥

गुदस्त्रभ्रंशयोर्युञ्ज्यात्सक्षीरं साधितं हविः ।

रसे कोलाम्लचाङ्गेर्योर्दधि पिष्टे च नागरे ॥ ४८ ॥

तैरेव चाम्लैः संयोज्य सिद्धं सुश्लक्ष्णकल्कितैः ।

धान्योषणबिडाजाजीपञ्चकोलकदाडिमैः ॥ ४९ ॥

योजयेत्स्नेहवस्ति वा दशमूलेन साधितम् ।

शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया चित्रकेण वा ॥ ५० ॥

प्रवाहणे गुदभ्रंशे, मूत्राघाते कटिग्रहे ।

मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं वाऽप्यनुवासनम् ॥ ५१ ॥

प्रवेशयेद्गुदं ध्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु ।

कुर्याच्च गोफणाबन्धं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा ॥ ५२ ॥

पञ्चमूलस्य महतः क्वाथं क्षीरे विपाचयेत् ।

उन्दुरं चान्त्ररहितं तेन वातघ्नकल्कवत् ॥ ५३ ॥

तैलं पचेद् गुदभ्रंशं पानाभ्यङ्गेन तज्जयेत् ।

पैत्ते तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लङ्घनम् ॥ ५४ ॥

तृणमान् पिबेत् षडङ्गाम्बु सभूनिम्बं ससारिवम् ।

पेयादि क्षुधितस्यान्नमग्निसन्धुक्षणं हितम् ॥ ५५ ॥
 बृहत्यादिगणाभीरुद्विबलाशूर्पपर्णिभिः ।
 पाययेदनुबन्धे तु सत्तौद्रं तण्डुलाम्भसा ॥ ५६ ॥
 वत्सकस्य फलं पिष्टं सवल्कं सधुणप्रियम् ।
 पाठावत्सकबीजत्वग्-दार्वाग्रन्थिकशुण्ठि वा ॥ ५७ ॥
 काथं वाऽतिविषावित्ववत्सकोदीच्यमुस्तजम् ।
 अथवाऽतिविषामूर्वानिशेन्द्रयव-तार्क्ष्यजम् ॥ ५८ ॥
 समध्वतिविषाशुण्ठीमुस्तेन्द्रयवकटफलम् ।
 पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा रसं पिबेत् ॥ ५९ ॥
 यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जाठरामयम् ।
 मुस्ताकषायमेवं वा पिबेन्मधुसमायुतम् ॥ ६० ॥
 सत्तौद्रं शाल्मलीवृन्तकषायं वा हिमाह्वयम् ।
 किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ॥ ६१ ॥
 कटक्कटेरीं ह्रीवेरं विल्वमध्यं दुरालभाम् ।
 तिलान् मोचरसं रोध्रं समङ्गां कमलोत्पलम् ॥ ६२ ॥
 नागरं धातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुत्पलम् ।
 अर्धश्लोकैः स्मृता योगाः सत्तौद्रास्तण्डुलाम्बुना ॥ ६३ ॥
 निशेन्द्रयवरोध्रैला-काथः पक्कातिसारनुत् ।
 रोध्राम्बुष्टाप्रियङ्ग्वादिगणांस्तद्वत् पृथक् पिबेत् ॥ ६४ ॥
 कट्वङ्गवल्कयष्टयाह्व-फलनीदाडिमाङ्कुरैः ।
 पेयाविलेपीखलकान् कुर्यात्सदधिदाडिमान् ॥ ६५ ॥
 तद्वद्विधित्वविल्वाम्रजम्बुमध्यैः प्रकल्पयेत् ।
 अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे, तेन चेच्छ्रमः ॥ ६६ ॥

दोषाधिक्यान्न जायेत वलिनं तं विरेचयेत् ।
 व्यत्यासेन शकृद्रक्तमुपवेशयेत योऽपि वा ॥ ६७ ॥
 पलाशफलनिर्यूहं युक्तं वा पयसा पिबेत् ।
 ततोऽनु कोष्णं पातव्यं क्षीरमेव यथावलम् ॥ ६८ ॥
 प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः ।
 पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विशोधनी ॥ ६९ ॥
 संसर्ग्या क्रियमाणायां शूलं यद्यनुवर्तते ।
 स्नुतदोषस्य तं शीघ्रं यथावह्वयनुवासयेत् ॥ ७० ॥
 शतपुष्पावरीभ्यां च बिल्वेन मधुकेन च ।
 तैलपादं पयोयुक्तं पक्कमन्वासनं घृतम् ॥ ७१ ॥
 अशान्तावित्यतीसारे 'पिच्छावस्तिः' परं हितः ।
 परिवेष्ट्य कुशैराद्रैराद्रवृन्तानि शालमलेः ॥ ७२ ॥
 कृष्णमृत्तिकयाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना ।
 मृच्छोषे तानि सङ्क्षुब्ध तत्पिण्डं मुष्टिसम्मितम् ॥ ७३ ॥
 मर्दयेत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः ।
 नतयष्ट्याह्वकल्काज्यक्षौद्रतैलवताऽनु च ।
 स्नातो भुञ्जीत पयसा जाङ्गलेन रसेन वा ॥ ७४ ॥
 पित्तातिसारज्वरशोफगुल्म-
 समीरणास्त्रग्रहणीविकारान् ।
 जयत्ययं शीघ्रमतिप्रवृत्तिं
 विरेचनास्थापनयोश्च वस्तिः ॥ ७५ ॥
 फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम् ।
 वत्सकादिसमायुक्तं साम्बद्यादि समाक्षिकम् ॥ ७६ ॥

निरुद्धिनरामं दीप्ताग्नेरपि सास्त्रं चिरोत्थितम् ।
 नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७७ ॥
 त्वक्पिण्डादीर्घवृन्तस्य श्रीपर्णीपत्रसंवृतात् ।
 मृत्तिसादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं हिमम् ॥ ७८ ॥
 अतीसारी पिबेद्युक्तं मधुना सितयाऽथवा ।
 एवं क्षीरद्रुमत्वग्भिस्तत्प्ररोहैश्च कल्पयेत् ॥ ७९ ॥
 कट्वङ्गत्वग्घृतयुता स्वेदिता सलिलोष्मणा ।
 सक्षौद्रा हन्त्यतीसारं बलवन्तमपि द्रुतम् ॥ ८० ॥
 पित्तातिसारी सेवेत पित्तलान्येव यः पुनः ।
 रक्तातिसारं कुरुते तस्य पित्तं सत्तृड्ज्वरम् ॥ ८१ ॥
 दारुणं गुदपाकं च, तत्र च्छागं पयो हितम् ।
 पद्मोत्पलसमङ्गाभिः शृतं मोचरसेन वा ॥ ८२ ॥
 सारिवायष्टिरोध्रैर्वा प्रसवैर्वा वटादिजैः ।
 सक्षौद्रशर्करं पाने भोजने गुदसेचने ॥ ८३ ॥
 तद्वद्रसादयोऽनम्लाः साज्याः पानान्नयोर्हिताः ।
 काशमर्यफलयूषश्च किञ्चिदम्लः सशर्करः ॥ ८४ ॥
 पयस्यधोदके छागे ह्रीबेरोत्पलनागरैः ।
 पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्णीरसान्विता ॥ ८५ ॥
 प्राग्भक्तं नवनीतं वा लिङ्गान्मधुसितायुतम् ।
 बलिन्यस्त्रेऽस्त्रमेवाजं मार्गं वा घृतभर्जितम् ॥ ८६ ॥
 क्षीरानुपानं क्षीराशी त्र्यहं क्षीरोद्भवं घृतम् ।
 कपिञ्जलरसाशी वा लिहन्नारोग्यमश्नुते ॥ ८७ ॥
 पीत्वा शतावरीकल्कं क्षीरेण क्षीरभोजनः ।

रक्तातिसारं हन्त्याशु तथा वा साधितं घृतम् ॥ ८८ ॥
 लाक्षानागरवैदेहीकटुकादार्विवल्लैः ।
 सर्पिः सेन्द्रयवैः सिद्धं पेयामण्डवचारितम् ॥ ८९ ॥
 अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ।
 कृष्णमृच्छङ्खयष्ट्याह्वसौद्रासृक्तण्डुलोदकम् ॥ ९० ॥
 जयत्यस्रं प्रियङ्गुश्च तण्डुलाम्बुमधुप्लुता ।
 कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्करापाञ्चभागिकः ॥ ९१ ॥
 आज्ञेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ।
 पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं चन्दनं तण्डुलाम्बुना ॥ ९२ ॥
 दाहतृष्णाप्रमेहेभ्यो रक्तस्त्रावाच्च मुच्यते ।
 गुदस्य दाहं पाके वा सेकलेपा हिता हिमाः ॥ ९३ ॥
 अल्पाऽल्पं बहुशो रक्तं सशूलमुपवेश्यते ।
 यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छ्राच्चरति वा न वा ॥ ९४ ॥
 पिच्छाबस्तिं तदा तस्य^१ पूर्वोक्तमुपकल्पयेत् ।
 पल्लवान् जर्जरीकृत्य शिंशिपाकोविदारयोः ॥ ९५ ॥
 पचेद्यवांश्च स क्वाथो घृतक्षीरसमन्वितः ।
 पिच्छास्रुतौ 'गुदभ्रंशे' प्रवाहणरूजासु च ॥ ९६ ॥
 पिच्छाबस्तिः प्रयोक्तव्यः क्षतक्षीणबलावहः ।
 प्रपौण्डरीकसिद्धेन सर्पिषा चाऽनुवासनम् ॥ ९७ ॥
 रक्तं विट्सहितं पूर्वं पश्चाद्वा योऽतिसार्यते ।
 शतावरीघृतं तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ ९८ ॥
 शर्करार्धांशकं लीढं नवनीतं नवोद्धृतम् ।

सौद्रपादं जयेच्छीघ्रं तं विकारं हिताशिनः ॥ ९९ ॥
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्य वासयेत् ।
 अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाम्भसा पचेत् ॥ १०० ॥
 तदर्धशर्करायुक्तं लेहयेत्सौद्रपादिकम् ।
 अधो वा यदि वाऽप्यूध्वं यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ १०१ ॥
 श्लेष्मातिसारे वातोक्तं विशेषादामपाचनम् ।
 कर्तव्यमनुबन्धेऽस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम् ॥ १०२ ॥
 बिल्वकर्कटिकामुस्तप्राणदाविश्वभेषजम् ।
 वचाविडङ्गभूतीकधानकाऽमरदारु वा ॥ १०३ ॥
 अथवा पिप्पलीमूल-पिप्पलीद्वयचित्रकान् ।
 पाठाऽग्निवत्सकग्रन्थि-तिक्ताशुण्ठीवचाऽभयाः ॥ १०४ ॥
 कथिता यदि वा पिष्टाः श्लेष्मातीसारभेषजम् ।
 सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गु^१ प्रतिविषाऽभयाः ॥ १०५ ॥
 पिबेच्छ्लेष्मातिसारातश्चूर्णिताः कोष्णवारिणा ।
 मध्यं लीढ्वा कपित्थस्य सव्योषसौद्रशर्करम् ॥ १०६ ॥
 कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात् ।
 कणां मधुयुतां लीढ्वा तक्रं पीत्वा सचित्रकम् ॥ १०७ ॥
 भुक्त्वा वा बालबिल्वानि व्यपोहत्युदरामयम् ।
 पाठा-मोचरसाऽम्भोज-धातकीबिल्वनागरम् ॥ १०८ ॥
 सुकृच्छ्रमप्यतीसारं गुडतक्रेण नाशयेत् ।
 यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ १०९ ॥
 मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसौवर्चलैः समैः ।

१. प्रतिविषा = अतिविषा (अतीस) ।

बृहत्तमलघातकीकृष्णाबिल्वदाडिमदीप्यकैः ॥ ११० ॥

त्रिगुणैः षड्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ।

चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मोदरामयान् ॥ १११ ॥

कासश्वासाग्निसादार्शःपीनसारोचकाञ्जयेत् ।

दाडिमाष्टकः ।

कर्षोन्मिता तवक्षीरी ^१चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ॥ ११२ ॥

यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशकम् ।

पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ॥ ११३ ॥

गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं 'दाडिमाष्टकः' ।

भोज्यो वातातिसारोक्तैर्यथावस्थं खलादिभिः ॥ ११४ ॥

सविडङ्गः समरिचः सकपित्थः सनागरः ।

चाङ्गेरीतक्रकोलाम्लः 'खलः' श्लेष्मातिसारजित् ॥ ११५ ॥

क्षीणे श्लेष्मणि पूर्वोक्तमम्लं लाक्षादिषट्पलम् ।

पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् ॥ ११६ ॥

वातश्लेष्मविबन्धे च स्रवस्यतिकफेऽपि वा ।

शूले प्रवाहिकायां वा पिच्छावस्तिः प्रशस्यते ॥ ११७ ॥

वचाबिल्वकणाकुष्ठशताह्वालवणान्वितः ।

बिल्वतैलेन तैलेन वचाद्यैः साधितेन वा ॥ ११८ ॥

बहुशः कफवातार्ते कोष्णेनान्वासनं हितम् ।

क्षीणे कफे गुदे दीर्घकालातीसारदुर्बले ॥ ११९ ॥

अनिलः प्रबलोऽवश्यं स्वस्थानस्थः प्रजायते ।

स बली संहसा हन्यात्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ॥ १२० ॥

१. तवक्षीरी = तुगाक्षीरी (वंशलोचन) ।

वायोरनन्तरं पित्तं पित्तस्याऽनन्तरं कफम् ।
जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमः ॥ १२१ ॥
भीशोकाभ्यामपि चलः^१ शीघ्रं कुप्यत्यतस्तथोः ।
कार्या क्रिया वातहरा हर्षणाश्वासनानि च ॥ १२२ ॥

उष्णाघलक्षणम्—

यस्योच्चाराद्विना मूत्रं^२ पवनो वा प्रवर्तते ।
दीप्तान्नेर्लघुकोष्ठस्य शान्तस्तस्योदरामयः ॥ १२३ ॥
इति चिकित्सास्थाने नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

^३अथाऽतो ग्रहणीदोषचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
‘ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत्’^४ ।

-
१. चलः = सदागतिः = वातः । २. पवनः = अपानः । इति ।
३. अथ = अतीसारचिकित्सानन्तरं यतः—अतीसारोपेक्षया
ग्रहणी सम्भवति समान-निदाना च, अतस्तच्चिकित्सा निरूप्यते ।
४. ग्रहणीमाश्रितं दोषं विदग्धाऽऽहारमूर्च्छितम् ।
सविष्टम्भप्रसेकार्त्ति-विदाहाऽरुचिगौरवैः ॥
आमलिङ्गान्वितं दृष्ट्वा सुखोष्णेनाऽम्बुनोद्धरेत् ।
फलानां वा कषायेण पिप्पलीसर्पपैस्तथा ॥

अतीसारोक्तविधिना^१ तस्यामं च विपाचयेत् ॥ १ ॥
 अन्नकाले यवाग्वादि पञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
 वितरेत्पटुलध्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपनान् ॥ २ ॥
 दद्यात्सातिविषां पेयामामे साम्लां सनागराम् ।
 पानेऽतिसारविहितं वारि तक्रं सुरादि च ॥ ३ ॥
 ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राहिलाघवात् ।
 पथ्यं मधुरपाकित्वान्नं च पित्तप्रदूषणम् ॥ ४ ॥
 कषायोष्णविकाशित्वाद्वृक्षत्वाच्च कफे हितम् ।
 वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ५ ॥
 चतुर्णां प्रस्थमम्लानां त्र्यूषणाच्च पलत्रयम् ।
 लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ ६ ॥
 तच्चूर्णं शाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेद् ।
 कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाशर्वाभयशूलनुत् ॥ ७ ॥
 नागरातिविषामुस्तं पाक्यमामहरं पिबेत् ।
 उष्णाम्बुना वा तत्कल्कं नागरं वाऽथवाऽभयाम् ॥ ८ ॥
 ससैन्धवं वचादिं वा तद्वन्मदिरयाऽथवा ।
 वर्चस्यामे सप्रवासे पिबेद्वा दाडिमाम्बुना ॥ ९ ॥
 बिडेन लवणं पिष्टं बिल्वचित्रकनागरम् ।
 सामे कफानिले कोष्ठे-रुक्करे कोष्णवारिणा ॥ १० ॥
 कलिङ्गहिङ्गवतिविषा-वचासौवर्चलाभयम् ।
 छर्दिहृद्रोगशूलेषु पेयमुष्णेन वारिणा ॥ ११ ॥

१. लानं पक्वाऽऽशयस्थं वाऽऽप्यामं स्नाव्यं सदीपनैः ।

शरीराऽनुगते सामे रसे लङ्घन-पाचनम् ॥ ७५ ॥

पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णं मरिचसंयुतम् ।
 पिप्पलीं नागरं पाठां सारिवां बृहतीद्वयम् ॥ १२ ॥
 चित्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपञ्चकम् ।
 चूर्णीकृतं दधिसुरातन्मण्डोष्णाम्बुकाञ्जिकैः ॥ १३ ॥
 पिबेदग्निविवृद्धयर्थं कोष्ठवातहरं परम् ।
^१पट्टनि पञ्च द्वौ क्षारौ मरिचं पञ्चकोलकम् ॥ १४ ॥
 दीप्यकं हिङ्गु गुलिका बीजपूररसे कृता ।
 कोलदाडिमतोये वा परं पाचनदीपनी ॥ १५ ॥
 तालीसपत्रचविकामरिचानां पलं पलम् ।
^२कृष्णा-तन्मूलयोर्द्वे द्वे पले शुण्ठीपलत्रयम् ॥ १६ ॥
 चतुर्जातमुशीरं च कर्पाशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
 गुडेन वटकान्कृत्वा त्रिगुणेन सदा भजेत् ॥ १७ ॥
 मद्य-यूष-रसाऽरिष्टमस्तु-पेयापयोऽनुपः ।
 वातश्लेष्मात्मनां छर्दिग्रहणीपार्श्वहृद्गुजाम् ॥ १८ ॥
 ज्वरश्चयथुपाण्डुत्वगुल्मपानात्ययाशंसाम् ।
 प्रसेकपीनसश्वासकासानां च निवृत्तये ॥ १९ ॥
 अभयां नागरस्थाने दद्यादत्रैव विड्ग्रहे ।
 छर्द्यादिषु च पैत्तेषु चतुर्गुणसितान्विताः ॥ २० ॥
 पक्वेन वटकाः कार्या गुडेन सितयाऽपि वा ।
 परं हि वह्निसम्पर्काह्वयिमानं भजन्ति ते ॥ २१ ॥
 अथैनं परिपक्वाममारुतग्रहणीगदम् ।
 दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदल्पशो भिषक् ॥ २२ ॥

१. पट्टनि = लवणाः । २. पिप्पली-पिप्पलीमूलयोः ।

किंचित्सन्धुक्षिते त्वग्रौ सक्तविष्णून्मामृतम् ।
 द्वयहं त्र्यहं वा संस्नेह्य स्विन्नाभ्यक्तं निरुहयेत् ॥ २३ ॥
 तत एरण्डतैलेन सर्पिषा तैलवकेन वा ।
 सक्षारेणाऽनिले शान्ते स्रस्तदोषं विरेचयेत् ॥ २४ ॥
 शुद्धरूक्षाशयं वद्धवर्चस्कं चाऽनुवासयेत् ।
 दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेन तं ततः ॥ २५ ॥
 निरुद्धं च विरिक्तं च सम्यक्चाऽप्यनुवासितम् ।
 लघ्वन्नप्रतिसंयुक्तं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ २६ ॥
 पञ्चमूलाभयाव्योषपिप्पलीमूलसैन्धवैः ।
 राज्ञाक्षारद्वयाजाजीविङ्गशटिभिर्घृतम् ॥ २७ ॥
 शुक्तेन मातुलुङ्गस्य स्वरसेनाद्रकस्य वा ।
 शुष्कमूलककोलाम्लचुक्रिकादाडिमस्य च ॥ २८ ॥
 तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ।
 काञ्जिकेन च तत्पक्वमग्निदीप्तिकरं परम् ॥ २९ ॥
 शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम् ।
 सबीजपूरकरसं सिद्धं वा पाययद्घृतम् ॥ ३० ॥
 तैलमभ्यञ्जनार्थं च सिद्धमेभिश्चलाऽपहम्^१ ।
 एतेषामौषधानां वा पिबेच्चूर्णं सुखाम्बुना ॥ ३१ ॥
 वातश्लेष्मावृते सामे कफे वा वायुनोद्धते ।
 अग्नेर्निर्वापकं पित्तं^२ रेकेण वमनेन वा ॥ ३२ ॥
 हत्वा तिक्तलघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः ।
 अञ्जैः सन्धुक्षयेदग्निं चूर्णैः स्नेहैश्च तिक्तकैः ॥ ३३ ॥

१. चलापहं वातशमनम् । २. रेकेण = विरेकेण ।

पटोलनिम्बत्रायन्तीतिक्तातिक्तकपर्पटम् ।
 कुटजत्वक्फलं मूर्वा मधुशिग्रुफलं वचा ॥ ३४ ॥
 दार्वीत्वक्पद्मकोशीरयवानीमुस्तचन्दनम् ।
 सौराष्ट्रयतिविषान्योषत्वगेलापत्रदारु च ॥ ३५ ॥
 चूर्णितं मधुना लेह्यं पेयं मध्वैर्जलेन वा ।
 हृत्पाण्डुग्रहणीरोग-गुल्मशूलारुचिज्वरान् ॥ ३६ ॥
 कामलां सन्निपातं च मुखरोगांश्च नाशयेत् ।
 भूनिम्बकटुकामुस्ता-त्र्यूपणेन्द्रयवान् समान् ॥ ३७ ॥
 द्वौ चित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान् षोडश चूर्णयेत् ।
 गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् ॥ ३८ ॥
 कामलाज्वरपाण्डुत्व-मेहारुच्यतिसारजित् ।
 नागरातिविषामुस्ता-फठाबिल्वं रसाञ्जनम् ॥ ३९ ॥
 कुटजत्वक्फलं तिक्ता धातकी च कृतं रजः ।
 क्षौद्रतण्डुलवारिभ्यां पैत्तिके ग्रहणीगदे ॥ ४० ॥
 प्रवाहिकाऽर्शोगुदरुग्-रक्तोत्थानेषु चेष्यते ।

चन्दनाद्यं घृतम्० च०

'चन्दनं पद्मकोशीरं पाठां मूर्वा कुटन्नटम् ॥ ४१ ॥
 षडग्रन्थासारिवाऽऽस्फोता-सप्तपर्णाऽऽटरूपकान् ।
 पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्ष्मपीतनम् ॥ ४२ ॥
 कटुकां रोहिणीं मुस्तां निम्बं च द्विपलांशकान् ।
 द्रोणेऽपां साधयेत्तेन पचेत्सर्पिः पिचून्मितैः ॥ ४३ ॥
 किराततिक्तेन्द्रयव-वीरामागधिकोत्पलैः ।
 पित्तग्रहण्यां तत्पेयं कुष्ठोक्तं तिक्तकं च यत् ॥ ४४ ॥

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां तीक्ष्णैः प्रच्छर्दने कृते ।
कट्वम्ललबणक्षारैः क्रमादग्निं विवर्धयेत् ॥ ४५ ॥
पञ्चकोलाभयाधान्य-पाठागन्धपलाशकैः ।
बीजपूरप्रवालैश्च सिद्धैः पेयादि कल्पयेत् ॥ ४६ ॥

मधूकाऽऽसवः ।

द्रोणं मधूकपुष्पाणां विडङ्गं च ततोऽर्धतः ।
चित्रकस्य ततोऽर्धं च तथा भल्लातकाढकम् ॥ ४७ ॥
मञ्जिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत् ।
द्रोणशेषं सुतं शीतं मध्वर्धाढकसंयुतम् ॥ ४८ ॥
एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन च रूषिते ।
कुम्भे मासं स्थितं जातमासवं तं प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
ग्रहणीं दीपयत्येष बृंहणः पित्तरक्तनुत् ।
शोषकुष्ठकिलासानां प्रमेहाणां च नाशनः ॥ ५० ॥

लघुमधूकासवः ।

मधूकपुष्पस्वरसं शृतमर्धक्षयीकृतम् ।
क्षौद्रपादयुतं शीतं पूर्ववत्सन्निधापयेत् ॥ ५१ ॥
तत्पिबन् ग्रहणीदोषान् जयेत्सर्वान् हिताशनः ।
तद्वद्द्राक्षेच्छुखर्जूरस्वरसानासुतान् पिबेत् ॥ ५२ ॥

हिङ्गवादिक्षारः ।

‘हिङ्गुतिक्तावचामाद्रीपाठेन्द्रयवगोक्षुरम् ।
पञ्चकोलं च कर्षांशं पलांशं पटुपञ्चकम् ॥ ५३ ॥
घृततैलद्विकुडवे दध्नः प्रस्थद्वये च तत् ।
आपोऽथ काथयेदग्नौ मृदावनुगते रसे ॥ ५४ ॥

अन्तर्धूमं ततो दग्ध्वा चूर्णीकृत्य घृताप्लुतम् ।
 पिबेत्पाणितलं तस्मिन् जीर्णे स्यान्मधुराशनः ॥ ५५ ॥
 वातश्लेष्मामयान् सत्रान् हन्याद्विषगरांश्च सः ।^१
 भूनिम्बं रोहिणीं तिक्तां पटोलं निम्बपर्पटम् ॥ ५६ ॥
 दग्ध्वा माहिषमूत्रेण पिबेदग्निविवर्धनम् ।,
 द्वे हरिद्रे वचा कुष्ठं चित्रकः कटुरोहिणी ॥ ५७ ॥
 मुस्ता च छागमूत्रेण 'सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः' ।,
 चतुःपलं सुधाकाण्डाग्निपलं लवणत्रयात् ॥ ५८ ॥
 वार्ताकिकुडवं चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ।
 दग्ध्वा रसेन वार्ताकाद् गुटिका भोजनोत्तराः ॥ ५९ ॥
 भुक्तमन्नं पचन्त्याशु कासश्वासाशसां हिताः ।
 विसूचिका-प्रतिश्याय-हृद्रोगशमनाश्च ताः ॥ ६० ॥
 मातुलुङ्गशटीरास्ना-कटुत्रयहरीतकीः ।
 स्वर्जिकायावशूकाख्यौ क्षारौ पञ्च षट्पलं च ॥ ६१ ॥
 सुखाम्बुपीतं तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
 श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे सवाते^१ तैर्घृतं पचेत् ॥ ६२ ॥
^२धान्वन्तरं षट्पलं च भल्लातकघृताभयम् ।
 विडकाचोषलवणस्वर्जिकायावशूकजान् ॥ ६३ ॥
 सप्तलां कण्टकारीं च चित्रकं चैकतो दहेत् ।

१. तैः = मातुलुङ्गादिभिः ।

२. धान्वन्तरं घृतम् प्रमेहे-दशमूलेत्यादिनोक्तम्, षट्पलं यक्ष्मणि पञ्चकोलेत्यादिनोक्तम्, भल्लातकघृतं-गुल्मे-भल्लातकमित्युक्तम् । आभयं घृतम्-उदरे-हरीतकीसूक्ष्मरज-इत्यादिनोक्तम् ।

सप्तकृत्वः स्नुतस्याऽस्य क्षारस्याऽर्धाढके पचेत् ॥ ६४ ॥
 आढकं सर्पिषः पेयं तदग्निबलवृद्धये ।
 निचये पञ्चकर्माणि युञ्ज्याच्चैतद्यथाबलम् ॥ ६५ ॥
 प्रसेके श्लैष्मिकेऽल्पाग्नेर्दीपनं रुक्षतित्तकम् ।
 योज्यं कृशस्य, व्यत्यासात्स्निग्धरूक्षं कफोदये ॥ ६६ ॥
 क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम् ।
 दीपनं बहुपित्तस्य तित्तं मधुरकैर्युतम् ॥ ६७ ॥
 स्नेहोऽम्ललवणैर्युक्तो बहुवातस्य शस्यते ।
 स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ॥ ६८ ॥
 नालं स्नेहसमिद्धस्य शमायान्नं सुगुर्वपि ।
 योऽल्पाग्नित्वात्कफे क्षीणे वर्चः पक्वमपि श्लथम् ॥ ६९ ॥
 मुञ्चेद् यद् द्वयौषधयुतं^१ स पिबेदल्पशो घृतम् ।
 तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मणि नियोजितः ॥ ७० ॥
 समानो दीपयत्यग्निमग्नेः सन्धुक्तको हि सः ।
 पुरीषं यश्च कृच्छ्रेण कठिनत्वाद्विमुञ्चति ॥ ७१ ॥
 स घृतं लवणैर्युक्तं नरोऽन्नावग्रहं पिबेत् ।
 रौक्ष्यान्मन्देऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैः पिबेत् ॥ ७२ ॥
 क्षारचूर्णासवारिष्टान् मन्दे स्नेहातिपानतः ।
 उदावर्तात्प्रयोक्तव्या निरूहस्नेहवस्तयः ॥ ७३ ॥
 दोषाऽतिवृद्धयामन्देऽग्नौ संशुद्धोऽन्नविधिं चरेत् ।
 व्याधिमुक्तस्य मन्देऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम् ॥ ७४ ॥
 अध्वोपवासक्षामत्वैर्यवाग्वा पाययेद् घृतम् ।

१. द्वाभ्यां सन्धव-शुण्ठीभ्यां युतम् ।

अन्नावपीडितं बल्यं दीपनं बृंहणं च तत् ॥ ७५ ॥
 दीर्घकालप्रसङ्गात्तु क्षामक्षीणकृशान्नरान् ।
 प्रसहानां रसैः साम्लैर्भोजयेत्पिशिताशिनाम् ॥ ७६ ॥
 लघूष्णकटुशोधित्वाद् दीपयन्त्याशु तेऽनलम् ।
 मांसोपचितमांसत्वात्परं च बलवर्धनम् ॥ ७७ ॥
 स्नेहासवसुरारिष्टचूर्णकाथहिताशनैः ।
 सम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते ॥ ७८ ॥
 दीप्तो यथैव स्थाणुश्च बाह्योऽग्निः सारदारुभिः ।
 सस्नेहैर्जायते तद्वदाहारैः कोष्ठगोऽनलः ॥ ७९ ॥
 नाऽभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात् ।
 यथा निरिन्धनो वह्निरल्पो वाऽतीन्धनावृतः ॥ ८० ॥

अत्यग्निमाह—

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पत्रनानुगम् ।
 प्रवृद्धं वर्धयत्यग्निं तदाऽसौ सानिलोऽनलः ॥ ८१ ॥
 पक्त्वाऽन्नमाशु धातूँश्च सर्वानोजश्च सङ्क्षिपन् ।
 मारयेत्साशनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु ताम्यति ॥ ८२ ॥
 तृट्कासदाहमूर्च्छाद्या व्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः ।
 तमत्यग्निं गुरुस्निग्धमन्दसान्द्रहिमस्थिरैः ॥ ८३ ॥
 अन्नपानैर्नयेच्छान्तिं दीप्तमग्निमिवाम्बुभिः ।
 मुहुर्मुहुर्जीर्णेऽपि भोज्यान्यस्योपहारयेत् ॥ ८४ ॥
 निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न विपादयेत् ।
 कृशरां पायसं स्निग्धं पैष्टिकं गुडवैकृतम् ॥ ८५ ॥
 अशनीयादौदकानूपपिशितानि भृतानि च ।

मत्स्यान्विशेषतः श्लक्ष्णान् स्थिरतोयचराश्च ये ॥ ८६ ॥

आविकं सुभृतं मांसमद्यादत्यग्निवारणम् ।

पयः सहमधूच्छिष्टं घृतं वा तृषितः पिबेत् ॥ ८७ ॥

गोधूमचूर्णं पयसा बहुसर्पिःपरिप्लुतम् ।

आनूपरसशुक्तान्वा स्नेहांस्तैलविवर्जितान् ॥ ८८ ॥

श्यामात्रिवृद्धिपक्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ।

असकृत्पित्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥ ८९ ॥

यत्किञ्चिद्गुरु मेघं च श्लेष्मकारि च भोजनम् ।

सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा च स्वपनं दिवा ॥ ९० ॥

आहारमग्निः पचति, दोषानाहारवर्जितः, ।

धातून् क्षीणेषु दोषेषु, जीवितं धातुसङ्ख्ये ॥ ९१ ॥

^१ एतत्प्रकृत्यैव विरुद्धमन्नं

संयोगसंस्कारवशेन चेदम् ।

इत्याद्यविज्ञाय यथेष्टचेष्टा-

श्चरन्ति यत्साऽग्निबलस्य शक्तिः ॥ ९२ ॥

१. एतद्-अन्नं प्रकृत्या = स्वभावेन विरुद्धम् = अपथ्यम्-कर-
मर्द—लकुचादिकम्, संयोगवशेन विरुद्धम्—क्षीरमम्लेनेत्यादिनो-
क्तम्, संस्कार-वशेन विरुद्धम्—हारितमांसं हारिद्रशूलप्रोतमित्यादि-
नोक्तम्-आदिना—मात्राविरुद्धं-समघृतमधु, कालविरुद्धम्-पात्रविरु-
द्धमित्यादि, अविज्ञाय = अवुद्ध्वा यद्-यथेष्टचेष्टाः सन्तो जनाः
चरन्ति = विचरन्ति भक्षयन्ति च सा-अग्निबलस्य शक्तिः = साम-
र्थ्यम्, तस्माद् अग्निं पालयेदिति सम्बन्धः इति ।

तस्मादग्निं पालयेत्सर्वयत्नै-

स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव ।

दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगसङ्घै-

र्युक्ते तु स्यान्नीरुजो दीर्घजीवी ॥ १३ ॥

इति चिकित्सास्थाने दशमोऽध्यायः ।



एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘कृच्छ्रे वातघ्नतैलाक्तमधोऽनाभेः ‘समीरजे’ ।

सुस्निग्धैः स्वेदयेदङ्गं पिण्डसेकावगाहनैः ॥ १ ॥

दशमूलबलैरण्डयवाऽभीरुपुनर्नवैः ।

कुलत्थकोलपत्तूरवृश्चीवोपलभेदकैः ॥ २ ॥

तैलसर्पिर्वराहर्क्षवसाः कथितकल्कितैः ।

सपञ्चलवणाः सिद्धाः पीताः शूलहराः परम् ॥ ३ ॥

द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिण्डोपनाहने ।

सहतैलफलैर्युञ्ज्यात् साम्लानि स्नेहवन्ति च ॥ ४ ॥

सौवर्चलाढ्यां मदिरां पिबेन्मूत्ररुजापहाम् ।

‘पैत्ते’ युञ्जीत शिशिरं, सेकलेपावगाहनम् ॥ ५ ॥

पिबेद्वरीं गोक्षुरकं विदारीं सकसेरुकाम् ।

तृणाख्यं पञ्चमूलं च पाकं समधुशर्करम् ॥ ६ ॥

वृषकं त्रपुसैर्वारु लट्वाबीजानि कुङ्कुमम् ।

द्राक्षाऽम्भोभिः पिबन् सर्वान् मूत्राघातानपोहति ॥ ७ ॥

^१एवार्बुबीजयष्ट्याह्मदार्वावा तण्डुलाम्बुना ।

तोयेन कल्कं द्राक्षायाः पिबेत्पयुपितेन वा ॥ ८ ॥

‘कफजे’ वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णकटुभोजनम् ।

यवानां विकृतीः क्षारं कालशेयं च शीलयेत् ॥ ९ ॥

पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा ।

सारसास्थिश्वदंष्ट्रैलाव्योषं वा मधुमूत्रवत् ॥ १० ॥

स्वरसं कण्टकार्या वा पाययेन्माक्षिकान्वितम् ।

शितिवारकबीजं वा तक्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ११ ॥

धव-सप्ताह्न-कुटजं गुडूचीचतुरङ्गुलम् ।

कटुकैलाकरञ्जं च पाक्यं समधुसाधितम् ॥ १२ ॥

तैर्वा पेयां प्रवालं वा चूर्णितं तण्डुलाम्बुना ।

सतैलं पाटलाक्षारं सप्तकृत्वोऽथवा सुतम् ॥ १३ ॥

पाटलीयावशूकाभ्यां पारिभद्रतिलादपि ।

क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोषकसंयुताम् ॥ १४ ॥

पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान् पृथक् पृथक् ।

सन्निपातात्मके सर्वं यथावस्थमिदं हितम् ॥ १५ ॥

अश्मन्यथ चिरोत्थाने वातवस्त्यादिकेषु च ।

‘अश्मरी’ दारुणो व्याधिरन्तकप्रतिमो मतः ॥ १६ ॥

तरुणो भेषजैः साध्यः, ^२प्रवृद्धश्छेदमर्हति ।

१. एवार्बुः = कर्कटी, ईवार्बुः—इत्यपि, ऊवार्बुमिव बन्धनादिति वेदे ऊकारादिरपि दृश्यते । २. प्रवृद्धः—अश्मरीरोगः, छेदं = शस्त्र-कर्म अर्हति न तु भेषजैः साध्यः ।

तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १७ ॥
 पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तको वरी ।
 कपोतवङ्कातिबलाभल्लूकोशीरकच्छकम् ॥ १८ ॥
 वृक्षादनी शाकफलं व्याघ्री गुण्ठत्रिकण्टकम् ।
 यवाः कुलत्थाः कोलानि वरुणः कतकात्फलम् ॥ १९ ॥
 ऊषकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ।
 भिनत्ति वातसम्भूतां तत्पीतं शीघ्रमश्मरीम् ॥ २० ॥
 गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् ।
 मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणाऽश्मभेदनम् ॥ २१ ॥
 कुशः काशः शरो गुण्ठ इत्कटो मोरटोऽश्मभित् ।
 दर्भो विदारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ॥ २२ ॥
 भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरः सकुरण्टकः ।
 पुनर्नवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद् घृतम् ॥ २३ ॥
 पिष्टेन त्रपुसादीनां बीजेनैन्दीवरेण वा ।
 मधुकेन शिलाजेन तत्पित्ताश्मरिभेदनम् ॥ २४ ॥
 वरुणादिसमीरघ्नौ गणावेला हरेणुका ।
 गुग्गुलुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः ससुराह्वयः ॥ २५ ॥
 तैः कल्कितैः कृतावापमूपकादिगणेन च ।
 भिनत्ति कफजामाशु साधितं घृतमश्मरीम् ॥ २६ ॥
 क्षारक्षीरयवाग्वादि द्रव्यैः स्वैः स्वैश्च कल्पयेत् ।
 पिचुकङ्कोल्लकतकशाकेन्दीवरजैः फलैः ॥ २७ ॥
 पीतमुष्णाम्बु सगुडं शर्करापातनं परम् ।
 क्रौन्चोष्ट्रासभास्थीनि श्वदंष्ट्रा तालपत्रिका ॥ २८ ॥

अजमोदा कदम्बस्य मूलं बिल्वस्य चौषधम् ।
 पीतानि शर्करां भिन्दुः सुरयोष्णोदकेन वा ॥ २९ ॥
^१नृत्यकुण्डलबीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
 अविक्षीरेण सप्ताहं पीतमश्मरिपातनम् ॥ ३० ॥
 काथश्च शिग्रमूलोत्थः कटूष्णोऽश्मरिपातनम् ।
 तिलापामार्गकदलीपलाशयवसम्भवः ॥ ३१ ॥
 क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ।
 कपोतवङ्कामूलं वा पिबेदेकं सुरादिभिः ॥ ३२ ॥
 तस्मिद्धं वा पिबेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः ।
 हरीतक्यस्थिसिद्धं वा साधितं वा पुनर्नवैः ॥ ३३ ॥
 क्षीराक्षभुग् बर्हिशिखामूलं वा तण्डुलाम्बुना ।
 मूत्राघातेषु विभजेदतः शेषेष्वपि क्रियाम् ॥ ३४ ॥
 बृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणीकृतगोक्षुरे ।
 तोयं पयो वा सर्पिर्वा सर्वमूत्रविकारजित ॥ ३५ ॥
 देवदारुं घनं मूर्वा यष्टीमधु हरीतकीम् ।
 मूत्राघातेषु सर्वेषु सुराक्षीरजलैः पिबेत् ॥ ३६ ॥
 रसं वा धन्वयासस्य कषायं ककुभस्य वा ।
 सुखाम्भसा वा त्रिफलां पिष्ट्वां सैन्धवसंयुताम् ॥ ३७ ॥
 व्याघ्रीगोक्षुरककाथे यवागूं वा सफाणिताम् ।

१. नृत्यकुण्डलबीजानां = तुवरीबीजानामित्यरुणः ।

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।

अविक्षीरेण सप्ताहमश्मरीभेदनं परम् ॥ इति सुश्रुते ॥

क्वाथे वीरतरादेर्वा ताम्रचूडरसेऽपि वा ॥ ३८ ॥

अद्याद्वीरतराद्येन भावितं वा शिलाजतु ।

मद्यं वा निगदं पीत्वा रथेनाश्वेन वा व्रजेत् ॥ ३९ ॥

शीघ्रवेगेन, सङ्क्षोभात्तथाऽस्य च्यवतेऽश्मरी ।

सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः ॥ ४० ॥

रेकार्थं तैल्वकं सर्पिर्वस्तिकर्म च शीलयेत् ।

विशेषादुत्तरान् बस्तीन्^१ शुक्राश्मर्यां च शोधिते ॥ ४१ ॥

तैर्मूत्रमार्गे बलवान् शुक्राशयविशुद्धये ।

पुमान् सुतृप्तो वृष्याणां मांसानां कुक्कुटस्य च ॥ ४२ ॥

कामं सकामाः सेवेत प्रमदा मददायिनीः ।

सिद्धेरुपक्रमैरेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा^१ मिषक् ॥ ४३ ॥

१. तदा = उपक्रमै रोगाऽशान्तौ, मिषक्—

हे राजन् ! रोगस्य—अस्य—अमुकपुत्रस्य अमुकस्य अक्रियायां मृत्युनिश्चितः, क्रियायां प्रवृत्तितायां बहुशः सिद्ध—शस्त्रकार्यस्य, निश्चितस्यापि = निष्पन्नक्रियाक्रमस्यापि—वैद्यस्य—(ईदृशोऽयं रोगी जीविष्यति न वा—ईदृशस्थाने शस्त्रप्रचारे, जीविष्यति न वा) इत्याकारकः सन्देहो भवेत्—इत्याकारकं निवेदनं राजसविषे सम्प्रेष्य तदनुमतिलाभानन्तरं रोगि—संरक्षकानुमतौ साधु—शस्त्रकर्म कुर्यात्, अनेनैवायुर्वेदोपदेशेन—राजतः प्राप्तप्रमाणपत्राः परिनिष्ठिता मिषजः शस्त्रकर्म कुर्युरिति सिद्ध्यति । अतस्तादृशाः पाठालयाः स्थाप्याः येभ्यः प्राप्ताधिकारा एव वैद्या जगति प्रचरैशुरिति च लभ्यते—अतएव—वैद्याभास कुत्सायां राज्ञां प्रमादादेते प्रचरन्ति, इति चरकः । इति व्यवहारशुद्धिः ।

इति राजानमापृच्छद्य शस्त्रं साध्ववचारयेत् ।
अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः, क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ४४ ॥
निश्चितस्याऽपि वैद्यस्य बहुशः सिद्धकर्मणः ।

उपक्रममाह—

अथाऽऽतुरमुपस्निग्धं शुद्धमीपच्च कर्शितम् ॥ ४५ ॥
अभ्यक्तस्विन्नवपुषमभुक्तं कृतमङ्गलम् ।
आजानुफलकस्थस्य नरस्याङ्गे व्यपाश्रितम् ॥ ४६ ॥
पूर्वेण कायेनोत्तानं निषण्णं वस्त्रचुम्भले^१ ।
ततोऽस्याकुञ्चिते जानुकूर्परे वाससा दृढम् ॥ ४७ ॥
सहाश्रयमनुप्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ।
नाभेः समन्तादभ्यज्यादधस्तस्याश्च वामतः ॥ ४८ ॥
मृदित्वा मुष्टिनाऽक्रामेद् यावदश्मर्यधोगता ।
तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९ ॥
अदक्षिणे गुदेऽङ्गुल्यौ प्रणिधायाऽनुसेवनीम्
आसाद्य वलयं ताभ्यामश्मरीं गुदमेढ्योः ॥ ५० ॥
कृत्वान्तरे तथा बस्तिं निर्वलीकमनायतम् ।
उत्पीडयेदङ्गुलिभ्यां यावद्ग्रन्थिरिवोज्जतम् ॥ ५१ ॥
शल्यं स्यात्सेवनीं मुक्त्वा यवमात्रेण पाटयेत् ।
अश्ममानेन, न यथा भिद्यते सा तथा हरेत् ॥ ५२ ॥
समग्रं सर्पवक्त्रेण, स्त्रीणां बस्तिस्तु पार्श्वगः ।

१. वस्त्रचुम्भले = कुण्डलीकृतवस्त्राऽऽसने, स्खलनाभावार्थं कुण्डलीकरणम् ।

गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्सङ्गवत्ततः ॥ ५३ ॥
 न्यसेदतोऽन्यथा ह्यासां मूत्रस्रावी व्रणो भवेत् ।
 मूत्रप्रसेकक्षणनान्नरस्याऽप्यपि चैकधा ॥ ५४ ॥
 बस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न तु द्विधा ।
 विशल्यमुष्णपानीयद्रोण्यां तमवगाहयेत् ॥ ५५ ॥
 तथा न पूर्यतेऽस्त्रेण बस्तिः पूर्णे तु पीडयेत् ।
 मेढान्तः क्षीरिवृक्षाम्बुः॥मूत्रसंशुद्धये ततः ॥ ५६ ॥
 कुर्याद् गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिबेत् ।
 द्वौ कालौ सघृतां कोष्णां यवागूं मूत्रशोधनैः ॥ ५७ ॥
 ज्यहं दशाहं पयसा गुडाद्वयेनाऽल्पमोदनम् ।
 भुञ्जीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रसैर्जाङ्गलचारिणाम् ॥ ५८ ॥
 क्षीरिवृत्तकपायेण व्रणं प्रक्षाल्य, लेपयेत् ।
 प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वनयनौषधैः ॥ ५९ ॥
 व्रणाभ्यङ्गे पचेत्तैलमेभिरेव निशान्वितैः ।
 दशाहं स्वेदयेच्चैनं स्वमार्गं सप्तरात्रतः ॥ ६० ॥
 मूत्रे त्वगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना ।
 स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुप्रायैरुपाचरेत् ॥ ६१ ॥
 तं बस्तिभिः॥न चारोहेद्वर्षं रुद्धव्रणोऽपि सः^१ ।
 नग-नागाऽश्व-वृक्ष-स्त्री-रथान् , नाप्सु प्लवेत च ॥ ६२ ॥

१. सः = अश्मर्यातुरः परिपूर्णव्रणोऽपि संवत्सरपर्यन्तं पर्वतादीन्
 नारोहेत् , अप्सु च न तरेत् । क्रियासमुच्चायकश्चकारः । सः-इति
 दिर्न पठनीयम् ।

मूत्रशुक्रवहौ बस्तिवृषणौ सेवनीं गुदम् ।
मूत्रप्रसेकं योनिं च शस्त्रेणाऽष्टौ ^१विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥
इति चिकित्सास्थाने एकादशोऽध्यायः ।



द्वादशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
'मेहिनो बलिनः कुर्यादादौ वमनरेचने ।
स्निग्धस्य सर्षपाऽरिष्ट-कुसुम्भाऽक्ष-करञ्जकैः' ॥ १ ॥
तैलैस्त्रिकण्टकाद्येन यथास्वं साधितेन वा ।
स्नेहेन मुस्तदेवाह्व-नागरप्रतिवापवत् ॥ २ ॥
सुरसादिक्षायेण दद्यादास्थापनं ततः ।
न्यग्रोधादेस्तु पित्तार्तं रसैः शुद्धं च तर्पयेत् ॥ ३ ॥
मूत्रग्रहरुजागुरुम-क्षयाद्यास्वपतर्पणात् ।
ततोऽनुबन्धरक्षार्थं शमनानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

१. अष्टौ = मूत्रवहादीनि मर्माणि शस्त्रेण = शस्त्रकर्मणा रहितानि कुर्यात् । २. अथ बस्त्याश्रयमूत्राघातादिकित्सानन्तरं यतः प्रमेहोऽपि बस्तिदूषणमूलकोऽतस्तच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

३ अत्र-'निकुम्भाक्षकरञ्जकै'रिति पाठः पुस्तकेषु निकुम्भस्यो पविषसद्वृत्तेनानुचितत्वात् प्रमेहे स्नेहनार्थं सुश्रुतसम्मतं कुसुम्भ-तैलमेव ग्रहीतुं युक्तमिति विवेकिनः ।

असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत् ।
 धात्रीरसप्लुतां प्राह्णे हरिद्रां माक्षिकान्विताम् ॥ ५ ॥
 दार्वीसुराह्वत्रिफला-मुस्ता वा कथिता जले ।
 चित्रकत्रिफलादार्वीकलिङ्गान् वा समाक्षिकान् ।
 मधुयुक्तं गुडूच्या वा रससामलकस्य वा ॥ ६ ॥

रोध्राभयातोयदकटफलानां
 पाठाविडङ्गार्जुनधान्यकानाम् ।
 गायत्रिदार्वीकृमिहृद्गुचानां
^१कफे त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ७ ॥
 उशीररोध्रार्जुनचन्दनानां
 पटोलनिम्बामलकामृतानाम् ।
 रोध्राम्बुकालीयकधातकीनां
^२पित्ते त्रयः क्षौद्रयुताः कषायाः ॥ ८ ॥

यथास्वमेभिः पानान्नं यवगोधूमभावनाम् ।
 वातोत्बन्धेषु स्नेहांश्च प्रमेहेषु प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥
 अपूपसक्तुवाट्यादिर्यवानां विकृतिर्हिता ।
 गवाश्वगुदशुक्तानामथवा वेणुजन्मनाम् ॥ १० ॥
 तृणधान्यानि मुद्गाद्याः शालिजीर्णः सषष्टिकः ।
 श्रीकुक्कुटोऽम्लः खलकस्तिलसर्षपकिट्टजः ॥ ११ ॥
 कपित्थं तिन्दुकं जम्बुस्तत्कृता रागखाण्डवाः ।

१. 'हरीतकीकटफलमुस्तलोध्रम्' च० चि० ६।२७ इत्यादिभ्यः
 परिगृहीताः त्रयः कषायाः । तत्र तु-प्रत्येकस्य दश २ पादैः प्रदिष्टाः ।

२. इदमपि चरकस्थापितप्रमेहप्रकरणात्संगृहीतम् चि० ६।३०

तिक्तं शाकं मधु श्रेष्ठा भक्ष्याः शुष्काः संसक्तवः ॥ १२ ॥
 धन्वमांसानि शून्यानि परिशुष्कान्ययस्कृतिः ।
 मध्वरिष्टासवा जोर्णाः सीधुः पक्करसोद्भवः ॥ १३ ॥
 तथाऽसनादिसाराम्बु दर्भाभ्यो मास्तिकोदकम् ।
 वासितेषु वराक्षाथे शर्वरीं शोषितेष्वहः ॥ १४ ॥
 यवेषु सुकृतान्सक्तून् सक्षौद्रान् सीधुना पिबेत् ।
 शालसप्ताह्वकम्पिल्ल-वृक्षकाक्षकपित्तजम् ॥ १५ ॥
 रौहीतकं च कुसुमं मधुनाऽद्यात्सुचूर्णितम् ।
 कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्वात्रीरसेन वा ॥ १६ ॥
 त्रिकण्टकनिशारोध्रसोमवल्कवचाऽर्जुनैः ।
 पद्मकाशमन्तकारिष्ट-चन्दनाऽगुरुदीप्यकैः ॥ १७ ॥
 पटोलमुस्तमज्जिष्ठा-माद्रीभल्लातकैः पचेत् ।
 तैलं 'वातकफे' पित्ते घृतं, मिश्रेषु मिश्रकम् ॥ १८ ॥
 धान्वन्तरं घृतम् ।
 दशमूलं शठीं दन्तीं सुराह्वं द्विपुनर्नवम् ।
 मूलं स्त्रुगर्कयोः पथ्यां भूकदम्बमरुष्करम् ॥ १९ ॥
 करञ्जवरुणमन्मूलं पिप्पल्याः पौष्करं च यत् ।
 पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्थतः ॥ २० ॥
 श्रींश्चाष्टगुणिते तोये विपचेत्पादवर्तिना ।
 तेन द्विपिप्पलीचव्यवचानिचुलरोहिषैः ॥ २१ ॥
 त्रिवृद्धिङ्गकम्पिल्लभाङ्गीबिल्वैश्च साधयेत् ।
 प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वास्तन्मेहान् पिटिका विषम् ॥ २२ ॥
 पाण्डुषिद्धिगुल्मार्शःशोफशोषगरोदरम् ।

श्वासं कासं वमिं वृद्धिं प्लीहानं वातशोणितम् ॥ २३ ॥

कुष्ठोन्मादावपस्मारं 'धान्वन्तरमिदं घृतम्' ।

रोध्रासवः ।

रोध्रमूर्वाशठीवेल्ल-भार्ङ्गानतनखप्लवान् ॥ २४ ॥

कलिङ्गकुष्ठक्रमुकप्रियङ्गवतिविषाऽग्निकान् ।

द्वे विशाले चतुर्जातिं भूनिम्बं कटुरोहिणीम् ॥ २५ ॥

यवानीं पौष्करं पाठां ग्रन्थि चव्यं फलत्रयम् ।

कर्षाशमम्बुकलशे पादशेषे सूते हिमे ॥ २६ ॥

द्वौ प्रस्थौ माक्षिकात्क्षिप्त्वा रक्षेत्पक्षमुपेक्षया ।

'रोध्रासवोऽयं' मेहार्शः-शिवत्रकुष्ठारुचिक्रिमीन् ॥ २७ ॥

पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलतां च नियच्छति ।

अयस्कृतिः ।

साधयेदसनादीनां^१ पलानां विंशतिं पृथक् ॥ २८ ॥

द्विवहेऽपां क्षिपेत्तत्र पादस्थे द्वे शते गुडात् ।

क्षौद्राढकार्धं पलिकं वस्सकादि च कल्कितम् ॥ २९ ॥

तत्क्षौद्रपिप्पलीचूर्णप्रदिग्धे घृतभाजने ।

स्थितं दृढे जतुसृते यवराशौ निधापयेत् ॥ ३० ॥

खदिराङ्गारतप्तानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत् ।

तनूनि तीक्ष्णलोहस्य पत्राण्यालोहसङ्गत्यात् ॥ ३१ ॥

'अयस्कृतिः' स्थिता पीता पूर्वस्मादधिका गुणैः ।

रुद्धमुद्धर्तनं गाढ व्यायामो निशि जागरः ॥ ३२ ॥

१. असनतिनिशभूजेश्वेनवाहप्रकार्या- इत्यादि० सू० १५ ।

यच्चाऽन्यच्छ्लेष्ममेदोघ्नं बहिरन्तश्च यद्वितम् ।
 सुभावितां सारजलैस्तुलां पीत्वा शिलोद्भवात् ॥ ३३ ॥
 साराम्बुनैव भुञ्जानः शालिं जाङ्गलजै रसैः ।
 सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहूपद्रवानपि ॥ ३४ ॥
 गण्डमालाऽर्बुदग्रन्थि-स्थौल्यकुष्ठभगन्दरान् ।
 कृमिश्लीपदशोफांश्च परं चैतद्रसायनम् ॥ ३५ ॥
 अधनश्छत्रपादत्ररहितो मुनिवर्तनः ।
 योजनानां शतं यायात् खनेद्वा सलिलाशयान् ॥ ३६ ॥
 गोशकृन्मूत्रवृत्तिर्वा गोभिरेव सह व्रजेत् ।
 बृंहयेदौषधाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम् ॥ ३७ ॥
^१शराविकाष्ठाः पिटिकाः शोफवत् समुपाचरेत् ।
 अपक्वा व्रणवत्पक्वाःॐ तासां प्राग्रूप एव च ॥ ३८ ॥
 क्षीरिवृक्षाम्बु पानाय बस्तमूत्र च शस्यते ।
 तीक्ष्ण च शोधनं, प्रायो दुर्विरेच्या हि मेहिनः ॥ ३९ ॥
 तैलमेलादिना ^२कुर्याद्व्रणेन व्रणरोपणम् ।
 उद्धर्तने कषायं तु वर्गे गारवधादिना ॥ ४० ॥
 परिषेकोऽसनाद्यन पानान्ने वत्सकादिना ।
 पाठाचित्रकशार्ङ्गघ्नासारिवाकण्टकारिकाः ॥ ४१ ॥

१. शराविका, कच्छटिका, जालिनी, सषेरी, तथा, अलजी, विनताख्या च विद्रवी चेति सप्तमी । च० सू० १७।८३ ।

२. एलायुग्मगुरुष्केत्यादि० सू० १५।४३ सर्वे गणाः अस्मिन्न-
 ध्याये द्रष्टव्याः ।

सप्ताहं कौटजं मूलं सोमवलकं नृपद्रुमम् ।
 सञ्चूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वच्चूर्णं 'नवायसम्' ॥ ४२ ॥
 मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः ।
^१शिलाजतुतुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः ॥ ४६ ॥

इति चिकित्सास्थाने द्वादशोऽध्यायः ।



त्रयोदशोऽध्यायः ।

^२अथातो विद्रधिबृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 अथ विद्रधिरोगचिकित्सितम् ।
 'विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत् समुपाचरेत् ।
 प्रततं च हरेद्रक्तं, पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ॥ १ ॥
 पञ्चमूलजलैर्धौतं वातिकं लवणोत्तरैः ।
 भद्रादिवर्गयष्ट्याह्व-तिलैरालेपयेद् व्रणम् ॥ २ ॥
 वैरेचनिकयुक्तेन त्रैबृतेन विशोध्य च ।
 विदारीवर्गसिद्धेन त्रैबृतेनैव रोपयेत् ॥ ३ ॥

१. शिलाजतुनः—तुलां पलशतम् क्रमशः संवत्सरपर्यन्तं
 त्रिफलाकाथेन मधुना च सह मात्रया—अद्यात्—ककाराष्टकञ्च
 वर्जयेत् । इति । २. अथ = प्रमेहचिकित्सितानन्तरं यतो विद्रधिः
 प्रमेहप्रधानोपद्रवभूतः अतस्तच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः । बृद्धिञ्च
 साहचर्यात्, व्याख्या० ।

क्षालितं क्षीरितोयेन लिम्पेद्यष्टयमृतातिलैः ।
 पैसं घृतेन सिद्धेन मज्जिष्ठोशीरपद्मकैः ॥ ४ ॥
 पयस्याद्विनिशाश्रेष्ठा-यष्टीदुग्धैश्च रोपयेत् ।
 न्यग्रोधादिप्रवालत्वक्फलैर्वाक्ल कफजं पुनः ॥ ५ ॥
 आरग्वधाम्बुना धौतं सक्तुकुम्भनिशातिलैः ।
 लिम्पेत्कुलत्थिकादन्ती-त्रिवृच्छ्यामाऽग्नितिल्वकैः ॥ ६ ॥
 ससैन्धवैः सगोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ।
 रक्तागन्तुद्भवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ७ ॥
 वरुणादिगणक्वाथमपक्वंऽभ्यन्तरस्थिते ।
 ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाह्णे विद्रधौ पिबेत् ॥ ८ ॥
 घृतं विरेचनद्रव्यैः सिद्धं ताभ्यां च पाययेत् ।
 निरूहं स्नेहवस्ति च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥
 पानभोजनलेपेषु ^१मधुशिग्रुः प्रयोजितः ।
 दत्तावापो यथादोषमपक्वं हन्ति विद्रधिम् ॥ १० ॥
 त्रायन्तीत्रिफलानिम्ब-कटुकामधुकं समम् ।
 त्रिवृत्पटोलमूलाभ्यां चत्वारोऽंशाः पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥
 मसूराक्षिस्तुषादष्टौ तक्काथः सघृतो जयेत् ।
 विद्रधीगुल्मवीसर्प-दाहमोहमदज्वरान् ॥ १२ ॥
 तृणमूर्च्छाच्छर्दिहृद्रोग-पित्तासृक्कुष्ठकामलाः ।
 कुडवं त्रायमाणायाः साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ॥ १३ ॥
 कुडवं तद्रसाद्वात्रीस्वरसात्क्षीरतो घृतात् ।
 कर्षोऽंशं कल्कितं तिक्तात्रायन्तीधन्वयासकम् ॥ १४ ॥

१. मधुशिग्रुः = रक्तशोभाजनः (मुनग्गा-इति प्रसिद्धः)

मुस्तातामलकीवीरा-जीवन्तीचन्दनोत्पलम् ।
 पचेदेकत्र संयोज्य तद्धृतं पूर्ववद्गुणैः ॥ १५ ॥
 द्राक्षामधूकं खर्जूरं विदारी सशतावरी ।
 परूषकाणि त्रिफला तत्काथे पाचयेद्दधृतम् ॥ १६ ॥
 क्षीरेक्षुधात्रीनिर्यासे प्राणदाकल्कसंयुतम् ।
 तच्छीतं शर्कराक्षौद्रपादिकं पूर्ववद्गुणैः ॥ १७ ॥
 हरेच्छृङ्गादिभिरसृक् सिरया वा यथान्तिकम् ।
 विद्रधि पच्यमानं च कोष्ठस्थं बहिरुन्नतम् ॥ १८ ॥
 ज्ञात्वोपनाहयेत् शूले स्थिते तत्रैव पिण्डिते ।
 तत्पार्श्वपीडनात्सुप्तौ दाहादिष्वल्पकेषु च ॥ १९ ॥
 पक्कः स्याद्विद्रधिं भित्त्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ।
 अन्तर्भागस्य चाप्येतच्चिह्नं पक्कस्य विद्रधेः ॥ २० ॥
 पक्कः खोतांसि सम्पूर्य स यात्यूर्ध्वमधोऽथवा ।
 स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताशिनः ॥ २१ ॥
 दशाहं द्वादशाहं वा रक्षेद्भिषगुपद्रवान् ।
 असम्यग्वहति क्लेदे^१ वरुणादिसुखाम्भसा ॥ २२ ॥
 पाययेन्मधुशिग्रं वा यवागूं तेन वा कृताम् ।
 यवकोलकुलत्थोत्थयूषैरन्नं च शस्यते ॥ २३ ॥
 ऊर्ध्वं दशाहान्नायन्तीसर्पिषा तैलवकेन वा ।
 शोधयेद्वलतः शुद्धः सक्षौद्रं तिक्तकं पिबेत् ॥ २४ ॥
 सर्वशो गुल्मवच्चैनं यथादोषमुपाचरेत् ।

१. वरुणादिः सू० १५।११-२२ वरण-इत्यरुणः । वरणे वरुणः
 सेतुस्तिक्तशकः कुमारकः । अमरः ।

प्रवावस्थासु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रधीषु च ॥ २५ ॥
 कषायैर्यौगिकैर्युज्यात् स्वैः स्वैस्तद्वच्छिलाजतु ।
 पक्वं च वारयेद्यत्नात् , सिद्धिः पक्वे हि दैविकी ॥ २६ ॥
 अपि चाऽऽशु विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते ।
 सति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम् ॥ २७ ॥
 'स्तनजे' व्रणवत्सर्वं न त्वेनमुपनाहयेत् ।
 पाटयेत्पालयन् स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकौ ॥ २८ ॥
 सर्वास्वामाद्यवस्थासु निर्दुहीत च तत्स्तनम् ।

[अथ वृद्धि रोगचिकित्सितम् ।]

शोधयेत्त्रिवृतास्निग्धं वृद्धौ स्नेहैश्चलात्मके ॥ २९ ॥
 कोशाम्रतिल्वकैरण्डसुकुमारकमिश्रकैः ।
 ततोऽनिलघ्ननिर्यूहकल्कस्नेहैर्निरूहयेत् ॥ ३० ॥
 रसेन भोजितं यष्टितैलेनान्वासयेदनु ।
 स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः, पक्वे भित्त्वा व्रणक्रियाः ॥ ३१ ॥
 पित्तरक्तोद्भवे वृद्धावामपक्वे यथायथम् ।
 शोफव्रणक्रियां कुर्यात् , प्रतप्तं च हरेदसृक् ॥ ३२ ॥
 गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं श्लेष्मिके पीतदारुजम् ।
 विम्लापनादृते चाऽत्र श्लेष्मग्रन्थिक्रमो हितः ॥ ३३ ॥
 पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते व्रणशोधनम् ।
 सुमनोऽरुष्कराङ्गोह्य-सप्तपर्णेषु साधितम् ॥ ३४ ॥
 पटोलनिम्बरजनी-विडङ्गकुटजेषु च ।
 मेदोजं मूत्रपिष्टेन सुस्विन्नं सुरसादिना ॥ ३५ ॥
 शिरोविरेकद्रव्यैर्वा वर्जयन्फलसेवनीम् ।

दारयेद्वृद्धिपत्रेण सम्यङ्मेदसि सूद्धते ॥ ३६ ॥
 व्रणं माक्षिककासीस-सैन्धवप्रतिसारितम् ।
 सीव्यंदभ्यञ्जनं चाऽस्य योज्यं मेदोविशुद्धये ॥ ३७ ॥
 मनःशिलैलासुमनो-ग्रन्थिभञ्जातकैः कृतम् ।
 तैलमाव्रणसन्धानात्स्नेहस्वेदौ च शीलयेत् ॥ ३८ ॥
 मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् ।
 विध्येदधस्तात्सेवन्या स्त्रावयेच्च यथोदरम् ॥ ३९ ॥
 व्रणं च स्थगिकाबद्धं रोपयेद् अन्त्रहेतुके ।
 फलकोशमसम्प्राप्ते चिकित्सा वातवृद्धिवत् ॥ ४० ॥
 पचेत्पुनर्नवतुलां तथा दशपलाः पृथक् ।
 दशमूलपयस्याश्च गन्धैरण्डशतावरीः ॥ ४१ ॥
 द्विदर्भशरकाशेषु-मूलपोटगलान्विताः ।
 वहेऽपामष्टभागस्थे तत्र त्रिंशत्पलं गुडात् ॥ ४२ ॥
 प्रस्थमेरण्डतैलस्य द्वौ घृतात्पयसस्तथा ।
 आवपेद् द्विपलांशं च कृष्णातन्मूलसैन्धवम् ॥ ४३ ॥
 यष्टीमधुकमृद्वीका-यवानीनागराणि च ।
 तत्सिद्धं 'सुकुमाराख्यं' सुकुमारं रसायनम् ॥ ४४ ॥
 वातातपाध्वयानादि-परिहार्येष्वयन्त्रणम् ।
 प्रयोज्यं सुकुमाराणामीश्वराणां सुखात्मनाम् ॥ ४५ ॥
 नृणां स्त्रीवृन्दभर्तृणामलक्ष्मी-कलि-नाशनम् ।
 सर्वकालोपयोगेन कान्तिलावण्यपुष्टिदम् ॥ ४६ ॥
 वर्ध्म-विद्रधि-गुल्माऽर्शो-योनिमेढ्रानिलार्तिषु ।
 शोफोदरखुडप्लीह-विड्विबन्धेषु चोत्तमम् ॥ ४७ ॥

रायाद्वर्ध्म न चेच्छान्ति स्नेहरेकानुवासनैः ।
 बस्तिकर्म पुरः कृत्वा वङ्गणस्थं ततो दहेत् ॥ ४८ ॥
 अग्निना मार्गरोधार्थं मरुतःॐ अर्धेन्दुवक्रया ।
 अङ्गुष्ठस्योपरि स्त्राव-पीतं तन्तुसमं च यत् ॥ ४९ ॥
 उत्क्षिप्य सूच्या तत्तिर्यग्दहेच्छिच्चा यतो गदः ।
 ततोऽन्यपार्श्वेऽन्ये त्वाहुर्दहेद्वाऽनामिकाङ्गुलेः ॥ ५० ॥
 गुल्मेऽन्यैर्वातकफजे प्लीहि चायं विधिः स्मृतः ।
 कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाच्यां च यतो गदः ॥ ५१ ॥
 इति चिकित्सास्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ।

चतुर्दशोऽध्यायः ।

१ अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'गुल्मं बद्धशकृद्वातं वातिकं तीव्रवेदनम् ।
 रुक्षशीतोद्भवं तैलैः साधयेद्वातरोगिकैः' ॥ १ ॥
 पानाऽन्नाऽन्वासनाऽभ्यङ्गैः स्निग्धस्य स्वेदमाचरेत् ।
 आनाहवेदनास्तम्भविबन्धेषु विशेषतः ॥ २ ॥
 स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुत्खणम् ।

१. अथ = अन्त्रवृद्धिचिकित्सानन्तरं यतः समानयोगक्षेमतया
 निदानेऽयं क्रम आदृतः—अतो वातप्रधान-कारणकगुल्मचिकित्सितं
 व्याख्यास्यामः । २. वातरोगचिकित्सितोक्तैर्योगैः ।

भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ३ ॥

स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोर्ध्वनाभिजे ।

पक्काशयगते बस्तिरुभयं जठराश्रये ॥ ४ ॥

दीप्तेऽग्नौ वातिके गुल्मे विबन्धेऽनिलवर्चसोः ।

बृंहणान्यन्नपानानि स्निग्धोष्णानि प्रदापयेत् ॥ ५ ॥

पुनःपुनः स्नेहपानंॐ निरूहाः सानुवासनाः ।

प्रयोज्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षिणः ॥ ६ ॥

बस्तिकर्म परं विद्याद् गुल्मघ्नं, तद्धि मारुतम् ।

स्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति ॥ ७ ॥

तस्मादभीक्ष्णशो गुल्मा निरूहैः सानुवासनैः ।

प्रयुज्यमानैः शाम्यन्ति वातपित्तकफात्मकाः ॥ ८ ॥

हिङ्गुवादि घृतम्—

हिङ्गुसौवर्चलव्योष-बिडदाडिमदीप्यकैः ।

पुष्कराजाजिधान्याम्ल-वेतसक्षारचित्रकैः ॥ ९ ॥

शठीवचाजगन्धैलासुरसैर्दधिसयुतैः ।

शूलानाहहरं सर्पिः साधयेद् 'वातगुल्मिनाम्' ॥ १० ॥

हपुषादिघृतम्—

हपुषोषणपृथ्वीकापञ्चकोलकदीप्यकैः ।

साजाजिसैन्धवेर्दध्ना दुग्धेन च रसेन च ॥ ११ ॥

दाडिमान्मूलकात्कोलात्पचेत्सर्पिर्निहन्ति तत् ।

वातगुल्मोदरानाह-पार्श्वहृत्कोष्ठवेदनाः ॥ १२ ॥

योन्मशोऽग्रहणीदांघ-कासरवासारुचिज्वरान् ।

दाधिकं घृतम्—

दशमूलं बलां कालां सुषवीं द्वौ पुनर्नवौ^१ ॥ १३ ॥
 पौष्करैरण्डरास्नाश्व-गन्धभाङ्गर्यमृताशठीः ।
 पचेद्गन्धपलाशं च द्रोणेऽपां द्विपलोन्मितम् ॥ १४ ॥
 यवैः कोलैः कुलत्थैश्च माषैश्च प्रास्थिकैः सह ।
 काथेऽस्मिन् दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५ ॥
 स्वरसैर्दाडिमात्रातमातुलुङ्गोद्भवैर्युतम् ।
 तथा तुषाम्बुधान्याम्लयुतैः श्लक्ष्णैश्च कल्कितैः ॥ १६ ॥
 भार्ङ्गीतुम्बुरुषङ्ग्रन्थाग्रन्थिरास्नाऽग्निधान्यकैः ।
 यवानकयवान्यम्लवेतसासितजीरकैः ॥ १७ ॥
 अजाजीहिङ्गुहपुषाकारवीवृषकोषकैः ।
 निकुम्भकुम्भमूवंभपिप्पलावेल्लदाडिमैः ॥ १८ ॥
 श्वदध्नात्रपुसैर्वाखबीजहिंसाऽश्मभेदकैः ।
 मिशिद्विह्वारसुरससारिवानीलिनीफलैः ॥ १९ ॥
 त्रिकटुत्रिपटूपेतैर्दाधिकं तद्वयपोहति ।
 रांगानाशुतर पूर्वान्कष्टानापि च शीलितम् ॥ २० ॥
 अपस्मारगरान्मादमूत्राघातानिलामयान् ।

१. 'पुनर्नवा तु शोथघ्नी' इत्यमरादकोषेभ्यः, खील्लिङ्गः पुनर्न-
 वाशब्दः कथमत्र पुंलिङ्गः प्रयुज्यते । चरके तु—सर्वत्र ख लिङ्गः,
 'पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान्' । 'पुनर्नवे द्वे च बले सपाठ' चि० स्थाने
 २२ अध्याये । रक्तशुक्लभेदेन पुनर्नवा द्विधा । रक्ता स्थिरमूला,
 शुक्ला २ वर्षा २ ।

श्यूषणादिकं घृतम्—

श्यूषणत्रिफलाधान्यचविकावेल्लचित्रकैः ॥ २१ ॥

कल्कीकृतैर्घृतं पक्वं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ।

लशुनाद्यं घृतम्—

तुलां लशुनकन्दानां पृथक्पञ्चपलांशकम् ॥ २२ ॥

पञ्चमूलं महच्चाम्बुभारार्धे तद्विपाचयेत् ।

पादशेषं तदर्धेन दाडिमस्वरसं सुराम् ॥ २३ ॥

धान्याम्लं दधि चादाय पिष्टांश्चार्धपलांशकान् ।

श्यूषणत्रिफलाहिङ्गुयवानीचन्यदीप्यकान् ॥ २४ ॥

साम्लवेतससिन्धूथदेवदारुन्पचेद्घृतात् ।

तैः प्रस्थं तत्परं सर्ववातगुल्मविकारजित् ॥ २५ ॥

षट्पलं वा पिबेत् सर्पिर्यदुक्तं राजयक्ष्मणि ।

प्रसन्नया वा क्षीरार्थः सुरया दाडिमेन वा ॥ २६ ॥

घृते मारुतगुल्मघ्नः कार्प्यो दध्नः सरेण वा ।

वातगुल्मे कफो वृद्धो हत्वाऽग्निमरुचिं यदि ॥ २७ ॥

हल्लासं गौरवं तन्द्रां जनयेदुल्लिखेत्तु तम् ।

शूलानाहविबन्धेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ॥ २८ ॥

निर्यूहचूर्णवटकाः प्रयोज्या घृतभेषजैः ।

कोलदाडिमघर्माग्वु-तक्रमद्याम्लकाञ्जिकैः ॥ २९ ॥

मण्डेन वा पिबेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्य वा पुरः ।

चूर्णानि मातुलुङ्गस्य भावितान्यसकृद्व्रसे ।

कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् कफवातयोः ॥ ३० ॥

हिङ्गवादिचूर्णम्—

हिङ्गुवचाविजयापशुगन्धा-दाडिमदीप्यकधान्यकपाठाः ।
पुष्करमूलशठीहपुषाऽग्नि-चारयुगत्रिपटुत्रिकटूनि ॥ ३१ ॥

साजाजिचव्यं सहतित्तिडीकं
सवेतसाम्लं विनिहन्ति चूर्णम् ।

हरपार्श्ववस्तित्रिकयोनिपायु-
शूलानि वाय्वामकफोद्भवानि ॥ ३२ ॥

कृच्छ्रान् गुल्मान्वातविण्मूत्रजङ्गं
कण्ठे बन्धं हृद्ग्रहं पाण्डुरोगम् ।

अन्नाऽश्रद्धाप्लीहदुर्नामहिध्मा-
वर्ध्माध्मानश्वासकासाग्निसादान् ॥ ३३ ॥

भागवृद्धं चूर्णम्—

लवण-यवानी-दीप्यक-कण-नागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।
सर्वसमानहरीतकिचूर्णं 'वैश्वानरः' साक्षात् ॥ ३४ ॥

हिङ्गवष्टकम्—

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।

प्रथमकवलभोज्यः सर्पिषा चूर्णकोऽयं
जनयति जठराग्निं वातगुल्मं निहन्ति ॥ ३५ ॥

व्याधिशार्दूलः—

हिङ्गुग्राबिडशुण्ठ्यजाजिविजया-वाट्याभिधानामयै-
श्चूर्णः कुम्भनिकुम्भशूलसहितैर्भागोत्तरं वर्धितैः ।

पीतः कोष्णजलेन कोष्ठजरुजो गुल्मोदरादीनयं
'शार्दूलः' प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगौघानिव ॥३६॥

नाराचचूर्णम्—

सिन्धूत्थपथ्याकणदीप्यकानां

चूर्णानि तोयैः पिबतां कवोष्णैः ।

प्रयाति नाशं कफवातजन्मा

नाराचनिभिन्न इवामयौघः ॥ ३७ ॥

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि

व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।

दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं

गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ ३८ ॥

त्रिगुणोत्तरं भेषजम्—

हिङ्गुत्रिगुणं सैन्धवमस्मात्रिगुणं तु तैलमैरण्डम् ।

तत्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम् ॥ ३९ ॥

^१मातुलङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं बिडसैन्धवम् ।

सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरूजापहम् ॥ ४० ॥

शुण्ठ्याः कर्षं गुडस्य द्वौ धौतात्कृष्णतिलात्पलम् ।

खादन्नेकत्र सञ्चूर्ण्य कोष्णक्षीरानुपो जयेत् ॥ ४१ ॥

वातहृद्रोगगुल्मार्शोयोनिशूलशकृद्ग्रहान् ।

पिबेदेरण्डतैलं तु ^२वातगुल्मी प्रसञ्जया ॥ ४२ ॥

१, फलपूरो बीजपूरो रुचको मातुलङ्गके । (विजौरा निम्ब)

२. एरण्डतैलन्तु-वातघ्नम्-अतो वातगुल्मी पिबेत् । वायौ-

श्लेष्मण्यनुबले वायौ पित्ते तु पयसा सह ।
 विवृद्धं यदि वा पित्तं सन्तापं वातगुल्मिनः ॥ ४३ ॥
 कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहैरानुलोमिकैः ।
 तापानुवृत्तावेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत् ॥ ४४ ॥
 साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।
 क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाचयेत् ॥ ४५ ॥
 वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
 हृद्रोगं विद्रधिं शोषं साधयत्याशु तत्पयः ॥ ४६ ॥
 तैलं प्रसन्नागोमूत्रमारनालं यवाग्रजः ।
 गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत् ॥ ४७ ॥
 चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीकाथः परं हितः ।
 शूलानाहविबन्धेषु सहिष्णुबिडसैन्धवः ॥ ४८ ॥
 पुष्करैरण्डयोर्मूलं यवधन्वयवासकम् ।
 जलेन कथितं पीतं कोष्ठदाहरूजापहम् ॥ ४९ ॥
 वाट्याक्षैरण्डदर्भाणां मूलं दारु महौषधम् ।
 पीतं निःकाथ्य तोयेन कोष्ठपृष्ठांसशूलजित् ॥ ५० ॥
 शिलाजं पयसाऽनल्पपञ्चमूलशृतेन वा ।
 वातगुल्मी पिबेद्वाट्यमुदावर्तं तु भोजयेत् ॥ ५१ ॥
 स्निग्धं पैप्पलिकैर्यूषैर्मूलकानां रसेन वा ।

श्लेष्मण्यनुगते = कफानुगते सति प्रसन्नया = सुरया सह एरण्डतैलं
 पिबेत् । पित्ते तु = पित्तानुगे वायौ तु, पयसा = क्षीरेण सह-एरण्ड-
 तैलं पिबेत् ।

बद्धविष्मारुतोऽश्नीयात्क्षीरेणोष्णेन यावकम् ॥ ५२ ॥
 कुल्माषान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेद्भ्रूवणोत्तरान् ।
 नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकम्पिल्लकैः सह ॥ ५३ ॥
 समलाय घृतं देयं सबिडक्षारनागरम् ।
 नीलिनीं त्रिफलां रास्नां बलां कटुकरोहिणीम् ॥ ५४ ॥
 पचेद्विडङ्गं व्याघ्रीं च^१ पालिकानि जलाढके ।
 रसेऽष्टभागशेषे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५५ ॥
 दध्नः प्रस्थेन संयोज्य^२ सुधाक्षीरपलेन च ।
 ततो घृतपलं दद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् ॥ ५६ ॥
 जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च भोजयेद्रसभोजनम् ।
 गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ५७ ॥
 श्वित्रं प्लीहानमुन्मादं हन्त्येतन्नीलिनीघृतम् ।
 कुक्कुटाश्च मयूराश्च तित्तिरिक्क्रौञ्चवर्तकाः ॥ ५८ ॥
 शालयो मदिराः सर्पिर्वातगुल्मचिकित्सितम् ।
 मितमुष्णं द्रवं स्निग्धं भोजनं वातगुल्मिनाम् ॥ ५९ ॥
 समण्डा-वारुणी-पानं तप्तं वा धान्यकैर्जलम् ।

पैत्तिक-गुल्मचिकित्सा ।

स्निग्धोष्णेनोदिते गुल्मे 'पैत्तिके' स्नंसनं हितम् ॥ ६० ॥
 द्राक्षाऽभयागुडरसं कम्पिल्लं वा मधुद्रुतम् ।
 कल्पोक्तं रक्तपित्तोक्तं गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः ॥ ६१ ॥
 परं संशमनं सर्पिस्तिक्तं वासाघृतं शृतम् ।

१. पालिकानि प्रत्येकं पलपरिमितानि नपुंसकैकशेषः ।

२. सुधा = सीदुण्डः ।

१तृणाख्यपञ्चकक्षाथे जीवनीयगणेन वा ॥ ६२ ॥
 शृतं तेनैव वा क्षीरं २न्यग्रोधादिगणेन वा ।
 तत्राऽपि स्त्रंसनं युञ्ज्याच्छीघ्रमात्ययिके भिषक् ॥ ६३ ॥
 वैरेचनिकसिद्धेन सर्पिषा पयसाऽपि वा ।
 रसेनामलकेक्षणां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६४ ॥
 पथ्यापादं पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ।
 पिबेद्वा तैल्वकं सर्पिर्यच्चोक्तं पित्तविद्रधौ ॥ ६५ ॥
 द्राक्षां पयस्यां मधुकं चन्दनं पद्मकं मधु ।
 पिबेत्तण्डुलतोयेन पित्तगुल्मोपशान्तये ॥ ६६ ॥
 द्विपलं त्रायमाणाय जलद्विप्रस्थसाधितम् ।
 अष्टभागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिबेत् ॥ ६७ ॥
 पिबेदुपरि तस्योष्णं क्षीरमेव यथाबलम् ।
 तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ॥ ६८ ॥
 दाहेऽभ्यङ्गो घृतः शीतः साज्यैर्लेपो हिमौषधैः ।
 स्पर्शः सरोरुहां पत्रैः पान्त्रैश्च प्रचलज्जलैः ॥ ६९ ॥
 विदाहपूर्वरूपेषु शूले वह्नेश्च मार्दवे ।
 बहुशोऽपहरेद्रक्तं, पित्तगुल्मे विशेषतः ॥ ७० ॥
 छिन्नमूला विदहन्ते न गुल्मा यान्ति च क्षयम् ।
 रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चाऽस्ति रुक् ॥ ७१ ॥
 हृतदोषं परिम्लानं जाङ्गलैस्तर्पितं रसैः ।
 समाश्वस्तं सशेषार्तिं सर्पिरभ्यासयेत्पुनः ॥ ७२ ॥

१. तृणाख्यं पित्तजिह्वं दर्भ—काशेक्षु-शर-शालिभिः । सू०
 ६१६९ । २. न्यग्रोधादि सू० १५-४१-४२ ।

रक्तपित्तातिवृद्धत्वाक्रियामनुपलभ्य वा ।
 गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ७३ ॥
 शालिर्गन्ध्याजपयसा पटोली जाङ्गलं घृतम् ।
 धात्रीपरुषकं द्राक्षा खर्जूरं दाडिमं सिता ॥ ७४ ॥
 भोज्यं, पानेऽम्बु बलया बृहत्याद्यैश्च साधितम् ।

कफजगुल्मचिकित्सा ।

‘श्लेष्मजे वामयेत्पूर्वमवम्यमुपवासयेत् ॥ ७५ ॥
 तिक्तोष्णकटुसंस्पर्शा वह्निं सन्धुष्येत्ततः ।
 हिङ्गवादिभिश्च द्विगुणक्षारहिङ्गवम्लवेतसैः ॥ ७६ ॥
 निगूढं यदि वोन्नद्धं स्तिमितं कठिनं स्थिरम् ।
 आनाहादियुतं गुल्मं संशोध्य विनयेदनु ॥ ७७ ॥
 घृतं सक्षारकटुकं पातव्यं कफगुल्मिनाम्^१ ।
 सव्योषक्षारलवणं सहिङ्गुविडदाडिमम् ॥ ७८ ॥
 कफगुल्मं जयत्यासु दशमूलशृतं घृतम् ।

भस्मातकघृतम् ।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलं पलोन्मितम् ॥ ७९ ॥
 अल्पं तोयाढके साध्यं पादशेषेण तेन च ।
 तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेदक्षसम्मितैः ॥ ८० ॥
 विडङ्गहिङ्गुसिन्धूत्थ-यावशूकशठीविडैः ।

(१) कफगुल्मिनां कर्तृणां पातव्यं = पानार्हम् । ‘कृत्यानां कर्तरि वा’ इति विकल्पेन षष्ठी-तृतीये । अत एव ‘कफगुल्मिना’-इत्यपि पाठः ।

सखीपिरास्नायष्ट्याह्व-षड्ग्रन्थाकणनागरैः ॥ ८१ ॥

एतद् 'भल्लातकघृतं' कफगुल्महरं परम् ।

प्लीहपाण्ड्वामयश्वास-ग्रहणीरोगकासनुत ॥ ८२ ॥

ततोऽस्य गुल्मे देहे च समस्ते स्वेदमाचरेत् ।

सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते ॥ ८३ ॥

या क्रिया क्रियते याति सा सिद्धिं न विरुद्धि ।

घटिकाप्रयोगः ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते ॥ ८४ ॥

यथोक्तां 'घटिकां' न्यस्येद् गृहीतेऽपनयेच्च ताम् ।

वस्त्रान्तरं ततः कृत्वा छित्त्वा गुल्मं प्रमाणवित् ॥ ८५ ॥

विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभं प्रपीडयेत् ।

प्रमृज्याद् गुल्ममेवैकं न त्वन्त्रहृदयं स्पृशेत् ॥ ८६ ॥

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य वा ।

श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेत्ततः ॥ ८७ ॥

एवं च विसृतं स्थानात्कफगुल्मं विरेचनैः ।

सस्नेहैर्बस्तिभिश्चैनं शोधयेद्वाशमूलिकैः ॥ ८८ ॥

मिश्रकस्नेहः ।

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाद्यैः पालिकैः पचेत् ।

एरण्डतैलहविषोः प्रस्थौ पयसि षड्गुणे ॥ ८९ ॥

(१) विमार्गश्च-अजपदञ्च आदर्शश्च-एतेषामितरेतर-योगः । वि-
मार्गश्चर्मकाराणां चर्मणि रेखा-छेदादिकरणार्थं दारुमुष्टिर्यन्त्रविशेषः,
अजपदं = अज-खुरप्रान्तं क्रियायोगि, आदर्शस्य = काचस्य धारा
क्रियायोगिनी-इति योगीन्द्रः । च० चि० अ० ५ ॥ ४० ॥

सिद्धोऽयं 'मिश्रकः स्नेहो' गुल्मिनां खंसनं परम् ।
 वृद्धि-विद्रधि-शूलेषु वातव्याधिषु चाऽमृतम् ॥ ९० ॥
 पिबेद्वा नीलिनीसर्पिर्मात्रया द्विपलीकया ।
 तथैव 'सुकुमाराख्यं'^१ घृतान्यौदरिकाणि वा ॥ ९१ ॥
 दन्तीहरीतक्यः ।

द्रोणेऽम्भसः पचेद्दन्त्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।
 चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्रसे स्नुते ॥ ९२ ॥
 द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गुडम् ।
 तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः ॥ ९३ ॥
 कणाकर्षौ तथा शुण्ठ्याः सिद्धे लेहे तु शीतले ।
 मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जाताच्चतुर्थिकाम्^२ ॥ ९४ ॥
 अतो हरीतकीमेकां^३ सावलेहपलामदन् ।
 सुखं विरिच्यते स्निग्धो^४ दोषप्रस्थमनामयः ॥ ९५ ॥
 गुल्महृद्रोगदुर्नाम-शोफाऽऽनाहगरोदरान् ।
 कुष्ठोत्क्लेशारुचिप्लीह-ग्रहणीविषमज्वरान् ॥ ९६ ॥
 भ्रन्ति 'दन्तीहरीतक्यः' पाण्डुतां च सकामलाम् ।
 सुधाक्षीरद्रवं चूर्णं^५ त्रिवृतायाः सुभावितम् ॥ ९७ ॥

१. सुकुमाराख्यं घृतं विद्रधि-प्रकरणोक्तम् ।

२. पलं मुष्टिः, प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका । ३. अवलेहस्य पलेन सहितामेकां हरीतकीमदन् = भक्षयम् । ४. दोषप्रकोपहेतोर्मलस्य प्रस्थं = सार्द्धत्रयोदशपलं मलं सुखं पीडारहितं विरिच्यते स्वयमेव विरिक्तम्भवति । ५. त्रिवृतायाश्चूर्णं सुधायाः = स्नुह्याः क्षीरेण

कार्षिकं मधुसर्पिभ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।
 कुष्ठश्यामात्रिवृद्धन्ती-विजयाक्षारगुग्गुलुम् ॥ ९८ ॥
 गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा ।
 निरूहान्कल्पसिद्धयुक्तान् योजयेद् गुल्मनाशनान् ॥ ९९ ॥
 कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गुरुम् ।
 गूढमांसं जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥ १०० ॥
 एकान्तरं द्वयन्तरं वा विश्रमय्याऽथवा व्यहम् ।
 शरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥
 अशोऽश्मरीग्रहणयुक्ताः 'क्षारा' योज्याः कफोत्वणे ।
 देवदारुत्रिवृद्धन्तीकटुकापञ्चकोलकम् ॥ १०२ ॥
 स्वर्जिकायावशूकाख्यौ श्रेष्ठापाठोपकुञ्चिकाः ।
 कुष्ठं सर्पसुगन्धां च द्वयक्षांशं पटुपञ्चकम् ॥ १०३ ॥
 पालिकं चूर्णितं तैल-वसा-दधि-घृताऽऽप्लुतम् ।
 घटस्यान्तः पचेत्पक्वमग्निवर्णे घटे च तम् ॥ १०४ ॥
 क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत् ।
 गुल्मोदावर्तवर्ध्माशो-जठरग्रहणीकृमीन् ॥ १०५ ॥
 अपस्मारगरोन्माद-योनिशुक्रामयाश्मरीः ।
 'क्षारागदोऽयं' शमयेद्विषं चाखुभुजङ्गजम् ॥ १०६ ॥
 श्लेष्माणं मधुरं स्निग्धं रसक्षीरघृताशिनः ।
 क्षित्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारत्वात्पातयत्यधः ॥ १०७ ॥

द्रवम् = आर्द्रं सत् पुनश्च सुधाक्षीरेणैव सुष्ठु भावितं कर्षप्रमाणं मधु-
 सर्पिभ्यां लीढ्वा = आस्वाद्य ।

मन्देऽग्नावरुचौ सात्त्विकैर्मद्यैः सस्नेहमभ्यताम् ।

योजयेदासवारिष्टान्निगदान् मार्गशुद्धये ॥ १०८ ॥

अन्नपानमाह—

शालयः षष्टिका जीर्णाः कुलत्था जाङ्गलं पलम् ।

चिरबिल्वाम्रितर्कारीयवानीवरणाङ्कुराः ॥ १०९ ॥

शिग्रोस्तरुणमूलानि बालं शुष्कं च मूलकम् ।

बीजपूरकहिङ्गवल्ग्वेतसत्तारदाडिमम् ॥ ११० ॥

व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ।

धान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीबिडचूर्णितम् ॥ १११ ॥

पञ्चमूलशृतं वारि जीर्णं मार्द्विकमेव वा ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः ॥ ११२ ॥

सुरा गुल्मं जयत्याशु जाङ्गलश्च विमिश्रितः ।

वमनैर्लङ्घनैः स्वेदैः सर्पिःपानैर्विरेचनैः ॥ ११३ ॥

बस्तिक्षारासवारिष्टैर्गौलिमकैः पथ्यभोजनैः ।

श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति ॥ ११४ ॥

तस्य दाहं हते रक्ते कुर्यादन्ते शरादिभिः ।

दाहविधिः—

अथ गुल्मं सपर्यन्तं वाससाऽन्तरितं भिषक् ॥ ११५ ॥

नाभिवस्त्यन्त्रहृदयं रोमराजीं च वर्जयन् ।

नातिगाढं परिमृशेच्छरेण ज्वलताऽथवा ॥ ११६ ॥

लोहेनारणिकोत्थेन दारुणा तैन्दुकेन वा ।

ततोऽग्निवेगे शमिते शीतैर्ब्रण इव क्रिया ॥ ११७ ॥

आमान्वये तु पेयाद्यैः सन्धुष्याग्निं विलङ्घिते ।

स्वं स्वं कुर्यात्कमं मिश्रं मिश्रदोषे च कालवित् ॥ ११८ ॥

रक्तगुल्मचिकित्सामाह—

गतप्रसवकालायै नार्यै गुल्मेऽस्त्रसम्भवे ।

स्निग्धस्विन्नशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ११९ ॥

तिलकाथो घृतगुडव्योपभाङ्गीरजोन्वितः ।

पानं रक्तभवे गुल्मे, नष्टे पुष्पे च योपितः, ॥ १२० ॥

भाङ्गीकृष्णाकरज्जत्वग्-ग्रन्थिकाऽमरदारुजम् ।

चूर्णं तिलानां काथेन पीतं गुल्मरूजापहम् ॥ १२१ ॥

पलाशक्षारपात्रे द्वे, द्वे पात्रे तैलसर्पिषोः ।

गुल्मशैथिल्यजननीं पक्त्वा मात्रां प्रयोजयेत् ॥ १२२ ॥

न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम् ।

क्षारेण युक्तं पललं सुधाक्षीरेण वा ततः ॥ १२३ ॥

ताभ्यां वा भावितान्दद्याद्योनौ कटुकमत्स्यकान् ।

वराहमत्स्यपित्ताभ्यां ^१नक्तकान्वा सुभावितान् ॥ १२४ ॥

किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनौ विशुद्धये ।

रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मधुसर्पिषा ॥ १२५ ॥

लशुनं मदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यै प्रयोजयेत् ।

बस्तिं सक्षीरगोमूत्रं सक्षारं दाशमूलिकम् ॥ १२६ ॥

अवर्तमाने रुधिरे हितं गुल्मप्रभेदनम् ।

यमकाभ्यक्तदेहायाः प्रवृत्ते समुपेक्षणम् ॥ १२७ ॥

रसौदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरुणी सुरा ।

१. नक्तकान् = वस्त्रखण्डान् ।

रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु 'रक्तपित्तहराः' क्रियाः ॥ १२८ ॥

कार्या, वात-रुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः ।

^१आनाहादाबुदावर्त-बलासघ्न्यौ यथायथम् ॥ १२९ ॥

इति चिकित्सास्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ।



पञ्चदशोऽध्यायः ।

^२अथाऽत उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

'दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।

सम्भवत्युदरं, तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ १ ॥

पाययेत्तैलमैरण्डं समूत्रं सपयोऽपि वा ।

मासं द्वौ वाऽथवा गव्यं मूत्रं माहिषमेव वा ।

पिबेद् , गोक्षीरभुक् स्याद्वा ^३करभीक्षीरवर्तनः ।

दाहानाहातितृणमूर्च्छांपरीतस्तु विशेषतः ॥ ३ ॥

रूक्षाणां बहुवातानां दोषसंशुद्धिकाङ्क्षिणाम् ।

स्नेहनीयानि सर्पिषि जठरघ्नानि योजयेत् ॥ ४ ॥

षट्पलं दशमूलाम्बु-मस्तुद्वयाढकसाधितम् ।

नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽऽढकम् ॥ ५ ॥

१. आनाहे-आध्माने च सति, बलासः = कफः । इति ।

२. अथ = वातप्रधान-गुल्मचिकित्सानन्तरं यतो वायुप्रधानत्वे नोदराणि स्मृतिविषयाणि-अतस्तच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

३. करभ्याः = उष्ट्र्याः क्षीरमेव वर्तनं = जीबिका यस्य तादृशः ।

मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।
 कफमारुतसम्भूते गुल्मे च परमं हितम् ॥ ६ ॥
 चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले ।
 कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सत्तारं जठरी पिबेत् ॥ ७ ॥
 यवकोलकुस्थानां पञ्चमूलस्य चाम्भसा ।
 सुरासौवीरकाभ्यां च सिद्धं वा पाययेद् घृतम् ॥ ८ ॥
 एभिः स्निग्धाय सज्जाते बले शान्ते च मारुते ।
 स्रस्ते दोषाशये दद्यात्कल्पदिष्टं विरेचनम् ॥ ९ ॥

षट्ठोलमूलादिचूर्णम् ।

षट्ठोलमूलं त्रिफलां निशां वेल्लं च कार्ष्णिकम् ।
 कम्पिह्व-नीलिनी-कुम्भ-भागान् द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ १० ॥
 पिबेत्सन्ध्याय मूत्रेण पेयां पूर्वं ततो रसैः ।
 विरिक्तो जाङ्गलैरद्यात्ततः षड्दिवसं पयः ॥ ११ ॥
 शृतं पिबेद्द्वयोषयुतं पीतमेवं पुनःपुनः ।
 हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ १२ ॥
 गवाक्षीं शङ्खिनीं दन्तीं तिल्वकस्य त्वचं वचाम् ।
 पिबेत्कर्कन्धुमृद्धीकाकोलाभोमूत्रसीधुभिः ॥ १३ ॥

नारायणश्चूर्णः ।

यवानी हपुषा धान्यं शतपुष्पोपकुञ्चिका ।
 कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शठी वचा ॥ १४ ॥
 चित्रकाजाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम् ।
 द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ १५ ॥
 विडङ्गं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा ।

त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला च चतुर्गुणा ॥ १६ ॥
 एष 'नारायणो' नाम ^१चूर्णो रोगगणापहः ।
 नैनं प्राप्याऽभिवर्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः ॥ १७ ॥
 तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्वदराम्बुना ।
 आनाहवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ^२ ॥ १८ ॥
 दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाग्भोभिरर्शसैः ।
 परिकर्ते सवृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ १९ ॥
 भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
 हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे ॥ २० ॥
 दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
 यथाह स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २१ ॥

हपुषादिकं चूर्णम् ।

हपुषां काञ्चनक्षीरीं त्रिफलां नीलिनीफलम् ।
 त्रायन्तीं रोहिणीं तिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम् ॥ २२ ॥
 सैन्धवं काल-लवणं पिप्पलीं चेति चूर्णयेत् ।
 दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ २३ ॥
 पेयोऽयं ^३सर्वगुल्मेषु प्लीहि सर्वोदरेषु च ।
 शिवत्रे कुष्ठेष्वजरके ^४सदने विषमेऽनले ॥ २४ ॥
 शोफार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके ।
 वातपित्तकफांश्चाशु विरेकेण प्रसाधयेत् ॥ २५ ॥

१. चूर्णो धूलौ क्षारभेदे, चूर्णानि वासयुक्तिषु । मेदिनी । चरके
 तु-‘पतन्नारायणं नाम चूर्णमिति’ नपुंसकप्रयोगः । चि० १३।१२८

२. प्रसन्ना = सुराभेदः । ३. अयम् = चूर्णः । ४. अजरके = अजीर्णे ।

नीलिनीं निचुलं व्योषं क्षारो लवणपञ्चकम् ।
 चित्रकं च पिबेच्चूर्णं सर्पिषोदरगुल्मनुत् ॥ २६ ॥
^१पूर्ववच्च पिबेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽन्तरान्तरा ।
 कारभं गव्यमाजं वा दद्यादात्ययिके गदे ॥ २७ ॥
 स्नेहमेव विरेकार्थं दुर्बलेभ्यो विशेषतः ।

हरीतकीघृतम् ।

हरीतकीसूक्ष्मरजःप्रस्थयुक्तं घृताढकम् ॥ २८ ॥
 अम्रौ विलाप्य मथितं खजेन यवपल्लके ।
 निधापयेत्ततो मासादुद्धृतं गालितं पचेत् ॥ २९ ॥
 हरीतकीनां क्वाथेन दध्ना चाम्लेन संयुतम् ।
 उदरं गरमष्ठीलामानाहं गुल्मविद्रधिम् ॥ ३० ॥
 हन्येतत्कुष्ठमुन्मादमपस्मारं च पानतः ।
 स्नुक्क्षीरयुक्ताद्गोक्षीराच्छृतशीतात्खजाऽऽहतात् ॥ ३१ ॥
 यजातमाज्यं 'स्नुक्क्षीरसिद्धं' तच्च ^२ तथागुणम् ।
 क्षीरद्रोणं सुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि ॥ ३२ ॥
 जातं मथिरवा तत्सर्पिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणम् ^३ ।
 तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत् ॥ ३३ ॥
 स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च ।
 एषां चाऽनु पिबेत्पेयां रसं स्वादु पयोऽथवा ॥ ३४ ॥

१. पूर्ववत् = पटोलमूलमित्याद्युक्तवत् ।

२. तथा = हरीतकीघृतवद् गुणाः = उदरगराष्ठीलादिहृन्ननरूपा यस्य तत् । ३. ते = उदरादिहृन्ननरूपा गुणा यस्य तद् ।

घृते जीर्णे विरिक्तश्च कोष्णं नागरसाधितम् ।
 पिबेदम्बु ततः पेयां ततो यूषं कुलत्थजम् ॥ ३५ ॥
 पिबेद्रूक्षस्यहं त्वेवं भूयो वा प्रतिभोजितः ।
 पुनः पुनः पिबेत्सर्पिरानुपूर्व्याऽनयैव च ॥ ३६ ॥
 'घृतान्येतानि' सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक् ।
 गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च शान्तये ॥ ३७ ॥
 पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम् ।
 तैल्वकं नीलिनीसर्पिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत् ॥ ३८ ॥
 हृतदोषः क्रमादशनन् लघुशाल्योदनं प्रति ।
 उपयुञ्जीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये ॥ ३९ ॥
 हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।
 सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम् ॥ ४० ॥
 पिप्पलीं वर्धमानां वा क्षीराशी वा शिलाजतु ।
 तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा ॥ ४१ ॥
 चित्रकाऽमरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत् ।
 मासं युक्तस्तथा ^१हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ४२ ॥
 विडङ्गं चित्रको दन्ती चव्यं व्योषं च तैः पयः ।
 कल्कैः कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत् ॥ ४३ ॥
 भोज्यं भुञ्जीत वा मासं स्नुहीक्षीरघृतान्वितम् ।
 उत्कारिकां वा स्नुक्क्षीर-पीतपथ्याकणा-कृताम् ॥ ४४ ॥
 पार्श्वशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रहं च समीरणः ।

यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारान्वितं पिबेत् ॥ ४५ ॥
 पक्वं वा टिण्टुकबलापलाशतिलनालजैः ।
 क्षारैः कदल्यपामार्गन्तर्कारीजैः पृथक्कृतैः ॥ ४६ ॥
 कफे वातेन पित्ते वा ताभ्यां वाऽप्यावृतेऽनिले ।
 बलिनः स्वौषधयुतं तैलमेरण्डजं हितम् ॥ ४७ ॥
 देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
 साश्वकर्णैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं बहिः ॥ ४८ ॥
 वृश्चिकालीवचाशुण्ठीपञ्चमलपुनर्नवात्^१ ।
 वर्षाभूधान्यकुष्ठाच्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत् ॥ ४९ ॥
 विरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं साल्वणादिभिः ।
 वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाऽऽध्मापयेत्पुनः ॥ ५० ॥
 सुविरिक्तस्य यस्य स्यादाध्मानं पुनरेव तम् ।
 सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरुहैः समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥
 सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मापयति यं नरम् ।
 तीक्ष्णाः सक्षारगोमूत्राः शस्यन्ते तस्य बस्तयः ॥ ५२ ॥
 इति सामान्यतः प्रोक्ताः सिद्धा जठरिणां क्रियाः ।
 'वातोदरे'ऽथ बलिनं विदार्यादिशृतं घृतम् ॥ ५३ ॥
 पाययेत्तु ततः स्निग्धं स्वेदिताङ्गं विरेचयेत् ।
 बहुशुस्तैल्वकेनैनं सर्पिषा मिश्रकेण वा ॥ ५४ ॥
 कृते संसर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत् ।

१. वृश्चिकालीप्रभृतीनां समाहार—द्वन्द्वे—एकवद्भावे नपुंसकत्वे
 ह्रस्वः ।

प्रागुत्तलेशान्निवर्तत बले लब्धे क्रमात्पयः ॥ ५५ ॥
 यूषै रसैर्वा मन्दाम्ल-लवणैरेधितानलम् ।
 सोदावर्तं पुनः स्निग्धं स्विन्नमास्थापयेत्ततः ॥ ५६ ॥
 तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाशमूलिकबस्तिना ।
 तिलोरुबूकतैलेन वातघ्नाम्लश्रुतेन च ॥ ५७ ॥
 स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु ।
 रूचं बद्धशकृद्वातं दीप्ताग्निमनुवासयेत् ॥ ५८ ॥
 अविरेच्यस्य शमना बस्तिक्षीरघृतादयः ।
 बलिनं स्वादुसिद्धेन 'पैत्ते' संस्नेह्य सर्पिषा ॥ ५९ ॥
 श्यामात्रिभण्डीत्रिफलाविपक्वेन विरेचयेत् ।
 सितामधुघृताढ्येन निरूहोऽस्य ततो हितः ॥ ६० ॥
 न्यग्रोधादिकपायेण स्नेहबस्तिश्च तच्छृतः ।
 दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरबस्तिभिः ॥ ६१ ॥
 जाते त्वग्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत् ।
 क्षीरेण सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकश्रुतेन तम् ॥ ६२ ॥
 सातलात्रायमाणाभ्यां श्रुतेनाऽऽरग्वधेन वा ।
 सकफे वा समूत्रेण सत्तिक्ताज्येन सानिले ॥ ६३ ॥
 पयसाऽन्यतमेनैषां विदार्यादिश्रुतेन वा ।
 भुञ्जीत, जठरं चाऽस्य पायसेनोपनाहयेत् ॥ ६४ ॥
 पुनः क्षीरं पुनर्वस्ति पुनरेव विरेचनम् ।
 क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन् यतः पित्तोदरं जयेत् ॥ ६५ ॥
 वत्सकादिविपक्वेन 'कफे' संस्नेह्य सर्पिषा ।

१. सातला = वर्तुलदण्डः सेहुण्डः ।

स्विन्नं स्नुवक्षीरसिद्धेन बलवन्तं विरेचितम् ॥ ६६ ॥
 संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तेरन्नैः कफापहैः ।
 मूत्रव्यूषणतैलाढ्यो निरुहोऽस्य ततो हितः ॥ ६७ ॥
 मुष्ककादिकषायेण स्नेहवस्तिश्च तच्छृतः ।
 भोजनं व्योषदुग्धेन कौलस्थेन रसेन वा ॥ ६८ ॥
 स्तैमित्यारुचिहृत्तासैर्मन्देऽग्नौ मद्यपाय च ।
 दद्यादरिष्टान् सारांश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे ॥ ६९ ॥
 हिङ्गूपकुल्यै^१ त्रिफलां देवदारु निशाद्वयम् ।
 भस्मातकं शिग्रुफलं^२ कटुकां तिक्तकं वचाम् ॥ ७० ॥
 शुण्ठीं मार्द्वीं घनं कुष्ठं सरलं पटुपञ्चकम् ।
 दाहयेज्जर्जरीकृत्य दधिस्नेहचतुष्कवत् ॥ ७१ ॥
 अन्तर्धूमं ततः क्षाराद् विडालपदकं^३ पिबेत् ।
 मदिरादधिमण्डोष्ण-जलारिष्टसुरासवैः ॥ ७२ ॥
 उदरं गुल्ममष्टीलां तून्वी^४ शोफं विसूचिकाम् ।
 प्लीहहृद्गोगुदजानुदावर्तं च नाशयेत् ॥ ७३ ॥
 जयेदरिष्टगोमूत्रचूर्णायस्कृतिपानतः ।
 सक्षारतैलपानैश्च दुर्बलस्य कफोदरम् ॥ ७४ ॥
 उपनाडं ससिद्धार्थकिण्वैर्बीजैश्च मूलकात् ।
 कल्कितैरुदरस्वेदमभीक्ष्णं चाऽत्र योजयेत् ॥ ७५ ॥

१. उपकुल्या = पिप्पली । २. शिग्रुफलं = श्वेतमरिचत्वेन प्रसिद्धम् । ३. विडालपदकं = कर्षमात्रम् । ४. तूनीं प्रतूनीं चेति द्विवचन-
 बललभ्यम् ।

'सन्निपातोदरे' कुर्यान्नातिक्षीणबलानले ।
 दोषोद्रेकानुरोधेन प्रत्याख्याय क्रियामिमाम् ॥ ७६ ॥
 दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं पाने च शस्यते ।
 क्रियानिबृत्ते जठरे त्रिदोषे तु विशेषतः ॥ ७७ ॥
 दद्यादापृच्छथ तज्ज्ञातीन्^१ पातुं मद्येन कल्कितम् ।
 मूलं काकादनीगुञ्जा-करवीरक-सम्भवम् ॥ ७८ ॥
 पानभोजनसंयुक्तं दद्याद्वा स्थावरं विषम् ।
 यस्मिन्वा कुपितः सर्पो विमुञ्चति फले विषम् ॥ ७९ ॥
 तेनास्य दोषसङ्घातः स्थिरो लीनो विमार्गगः ।
 बहिः प्रवर्तते भिक्षो विषेणाशु प्रमाथिना ॥ ८० ॥
 तथा व्रजत्यगदतां शरीरान्तरमेव वा^२ ।
 हृतदोषं तु शीताम्बुस्नतं तं पाययेत्पयः ॥ ८१ ॥
 पेयां वा त्रिवृतः शाकं मण्डूक्या वास्तुकस्य वा ।
 कालशाकं यवाख्यं वा खादेत्स्वरससाधितम् ॥ ८२ ॥
 निरम्ललवणस्नेहं स्विन्नास्विन्नमनश्नभुक् ।
 मासमेकं ततश्चैवं तृषितः स्वरसं पिबेत् ॥ ८३ ॥
 एवं विनिर्हते शाकैर्दोषे मासात् परं ततः ।
 दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृत्कारभं पयः ॥ ८४ ॥
 प्लीहोदरे यथादोषं स्निग्धस्य स्वेदितस्य च ।

१. तस्य सन्दिग्धसाध्यरोगवतो ज्ञातीन् संरक्षकान् । आपृच्छथ-व्यवहारशुद्ध्यर्थमिदम् ।

२. वा इति पदं सन्दिग्धसाध्यत्व-सूचकम् । शरीरान्तरं देहान्तरम् (नाऽमृत्वा देहान्तरं लभ्यते) ।

सिरां भुक्तवतो दध्ना वामबाहौ विमोक्षयेत् ॥ ८५ ॥
 लब्धे बले च भूयोऽपि स्नेहपीतं विशोधितम् ।
 समुद्रशुक्तिजं क्षारं पयसा पाययेत्तथा ॥ ८६ ॥
 भ्रमलस्रुतं बिडकणाचूर्णाढ्यं नक्तमालजम् ।
 सोभाञ्जनस्य वा क्थं सैन्धवाग्निकणान्वितम् ॥ ८७ ॥
 हिङ्गवादिचूर्णक्षाराज्यं युञ्जीत च यथाबलम् ।
 पिप्पली नाग^१दन्ती समांशं द्विगुणाऽभयम् ॥ ८८ ॥
 बिडार्धाशयुतं चूर्णमिदमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
 विडङ्गं चित्रकं सक्तून् सघृतान् सैन्धवं वचाम् ॥ ८९ ॥
 दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत् ।
 तैलोन्मिश्रैर्बदरक-पत्रैः संमदितैः समुपनद्धः^२ ।
 मुशलेन पीडितोऽनु याति प्लीहा पयोभुजो नाशम् ॥ ९० ॥
^३रोहीतकलताः क्लृप्ताः खण्डशः साऽभया जले ।
 मूत्रे वाऽऽसुनुयात्तत्तु सप्तरात्रस्थितं पिबेत् ॥ ९१ ॥
 कामलाप्लीहगुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम् ।
 रोहीतकत्वचः कृत्वा ^३पलानां पञ्चविंशतिम् ॥ ९२ ॥
 कोलद्विप्रस्थसंयुक्त कषायमुपकल्पयेत् ।
 पालिकैः पञ्चकोलैस्तु तैः समस्तैश्च तुल्यया ॥ ९३ ॥
 हरीतकीत्वचा पिष्टेर्धृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 प्लीहाभिवृद्धिं शमयत्येतदाशु प्रयोजितम् ॥ ९४ ॥

१. समुपनद्धः प्लाहा-इति सम्बन्धः, गीतिः ।

२. रोही रोहीतकः प्लीहशत्रुर्दाडिमपुष्पकः ।

३. क्लृप्त्वा-इति पाठः ।

कदल्यास्तिलनालानां क्षारेणेक्षुरकस्य च ।
 तैलं पक्वं जयेत्पानात्प्लीहानं कफवातजम् ॥ ९५ ॥
 अशान्तौ गुल्मविधिना योजयेदग्निकर्म च ।
 अप्राप्तपिच्छासलिले प्लीह्नि वातकफोल्बणे ॥ ९६ ॥
 'पैत्तिके' जीवनीयानि सर्पाणि क्षीरबस्तयः ।
 रक्तावसेकः संशुद्धिः क्षीरपानं च शस्यते ॥ ९७ ॥
 'यकृति' प्लीहवत्कर्म दक्षिणे तु भुजे सिराम् ।
 स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम् ॥ ९८ ॥
 सतैललवणं दद्यान्निरुहं सानुवासनम् ।
 षरिस्त्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चास्मै विरेचनम् ॥ ९९ ॥
 उदावर्तहरं कर्म कार्यं यच्चानिलापहम् ।
 छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥ १०० ॥
 जातं जातं जलं स्राव्यमेवं तद्यापयेद्विषक् ।
 अपां दोषहराण्यादौ योजयेदुदकोदरे ॥ १०१ ॥
 मूत्रयुक्तानि तीक्ष्णानि विविधक्षारवन्ति च ।
 दीपनीयैः कफघ्नेश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥ १०२ ॥
 क्षारं क्षागकरीषाणां शृतं मूत्रेऽग्निना पचेत् ।
 घनीभवात् तस्मिंश्च कषाशं चूर्णितं क्षिपेत् ॥ १०३ ॥
 पिप्पलीपिप्पलीमूलं शुण्ठीलवणपञ्चकम् ।
 निकुम्भकुम्भत्रिफलास्वर्णक्षीरीविषाणिकाः ॥ १०४ ॥
 स्वर्जिकाक्षारषड्ग्रन्थासातलायवशूकजम् ।

१. समानयोगक्षेमत्वात्प्लीहोक्तं कर्माऽतिदिशति-यकृतीति, अप-
 षादमाह-सिरान्तु दक्षिणे भुजे मोचयेत्तु वामे ।

कोलाभा गुटिकाः कृत्वा ततः सौवीरकाऽऽप्लुताः ॥ १०५ ॥
 पिबेदजरके शोफे प्रवृद्धे चोदकोदरे ।
 इत्यौषधैरप्रशमे त्रिषु बद्धोदरादिषु ॥ १०६ ॥
 प्रयुञ्जीत भिषक् शस्त्रमार्तबन्धु-नृपाऽर्थितः^१ ।

शस्त्रविधिमाह—

स्निग्धस्विन्नतनोर्नाभेरधो बद्धक्षतान्त्रयोः ॥ १०७ ॥
 पाटयेदुदरं मुक्त्वा वामतश्चतुरङ्गुलात् ।
 चतुरङ्गुलमानं तु निष्कास्यान्त्राणि तेन च ॥ १०८ ॥
 निरीक्ष्याऽपनयंद्वालमललेपोपलादिकम् ।
 'छिद्रे' तु शल्यमुद्धृत्य विशोध्यान्त्रं परिस्रवम् ॥ १०९ ॥
 मर्कोटर्दशयेच्छिद्रं, तेषु लग्नेषु चाहरेत् ।
 कायं मूर्ध्नोऽनु, चान्त्राणि यथास्थानं निवेशयेत् ॥ ११० ॥
 अक्तानि मधुसर्पिभ्यामथ सीव्येद्वहिर्वणम् ।
 ततः कृष्णमृदाऽऽलिप्य बध्नीयाद्यष्टिमिश्रया ॥ १११ ॥
 निवातस्थः पयोवृत्तिः स्नेहद्रोण्यां वसेत्ततः ।
 सजले जठरे तैलैरभ्यक्तस्याऽनिलापहैः ॥ ११२ ॥
 स्विन्नस्योष्णाम्बुनाऽऽकृत्वा मुदरे परिवेष्टिते ।
 बद्धच्छिद्रोदितस्थाने विध्येदङ्गुलिमात्रकम् ॥ ११३ ॥
 निधाय तस्मिन्नाडीं च स्नावयेदर्धमम्भसः ।
 अथाऽस्य नाडीमाकृष्य तैलेन लवणेषु च ॥ ११४ ॥

१. आर्तबन्धवश्च नृपश्च तैरर्थितः सन् शस्त्रं प्रयुञ्जीत न तु स्वयम् ।

व्रणमभ्यज्य बद्ध्वा च वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
 तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा यावदाषोडशं दिनम् ॥ ११५ ॥
 तस्य विश्रम्य विश्रम्य स्त्रावयेदल्पशो जलम् ।
 निवेष्टयेद्वाढतरं जठरं वाससा श्लथम् ॥ ११६ ॥
 निःस्रुते लङ्घितः पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ।
 स्यात्क्षीरवृत्तिः पण्मासांस्त्रीन्पेयां पयसा पिबेत् ॥ ११७ ॥
 त्रींश्चाऽन्यान्पयसैवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा ।
 अल्पशोऽस्नेहलवणं जीर्णं श्यामाककोद्रवम् ॥ ११८ ॥
 प्रयतो वत्सरेणैवं विजयेत जलोदरम् ।
 वर्ज्येषु यन्त्रितो दिष्टे नात्यदिष्टे जितेन्द्रियः ॥ ११९ ॥
 सर्वमेवोदरं प्रायो दोषसङ्घातजं यतः ।
 अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वा प्रशस्यते ॥ १२० ॥
 बह्निर्मन्दत्वमायाति दोषैः कुक्षौ प्रपूरिते ।
 तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १२१ ॥
 सपञ्चमूलान्यल्पाम्लपटुस्नेहकटूनि च ।
 भावितानां गवां मूत्रे षष्टिकानां च तण्डुलैः ॥ १२२ ॥
 यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ।
 पिबेदिक्षुरसं चानु जठराणां निवृत्तये ॥ १२३ ॥
 त्वं स्वं स्थानं व्रजन्त्येषां वातपित्तकफास्तथा ।
 अत्यर्थोष्णाम्ललवणं रूक्षं ग्राहि हिमं गुरु ॥ १२४ ॥
 गुडं तैलकृतं शाकं वारि पानावगाहयोः ।
 आयासाध्वदिवास्वप्नयानानि न परित्यजेत् ॥ १२५ ॥
 नात्यर्थसान्द्रं मधुर तक्रं पाने प्रशस्यते ।

सकणालवणं वाते, पित्ते सोषणशर्करम् ॥ १२६ ॥

यवानीसन्धवाजाजीमधुव्योषैः 'कफोदरे' ।

ज्यूषणक्षारलवणैः संयुतं 'निचयोदरे' ॥ १२७ ॥

मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।

प्लीहि, बद्धे तु हृषायवानीपट्वजाजिभिः ॥ १२८ ॥

सकृष्णामाक्षिकं छिद्रे व्योषवत्सलिलोदरे ।

गौरवारोचकानाह-मन्दवह्नयतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥

तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्पते ।

प्रयोगाणां च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत् ॥ १३० ॥

स्थैर्यकृत्सर्वधातूनां बल्यं दोषानुबन्धहृत् ।

^१भेषजापचिताङ्गानां क्षीरमेवामृतायते ॥ १३१ ॥

इति चिकित्सास्थाने पञ्चदशोऽध्यायः ।

षोडशोऽध्यायः ।

^२अथाऽतः पाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

^३'पाण्ड्वामयी पिबेत्सर्पिरादौ' कल्याणकाह्वयम् ।

१. भेषजसेवनेन-अपचितानि = कृशानि- अङ्गानि येषां तेषां कृते क्षीरमेव अमृतमिवाचरति--अतः सर्वेषां प्रयोगाणामनुक्षीरं प्रयोजयेदिति सम्बन्धः । इति ।

२. अथ = उदरचिकित्सानन्तरं यतो निदानोक्ता सङ्गतिरवलम्बिता अतः पाण्डुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

३. कल्याणकं घृतं प्रसिद्धम्, पञ्चगव्यं घृतमपस्मारचिकित्ति-

पञ्चगव्यं महातिक्तं शृतं वाऽऽरग्वधादिना ॥ १ ॥

दाडिमादिघृतम् ।

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम् ।

चित्रकाच्छृङ्गबेराञ्च पिप्पल्यर्धपलं च तैः ॥ २ ॥

कलिकतैर्विंशतिपलं घृतस्य सलिलाढके ।

सिद्धं हृत्पाण्डुगुल्मार्शः-ग्लीहवातकफार्तिनुत् ॥ ३ ॥

दीपनं श्वासकासघ्नं मूढवातानुलोमनम् ।

दुःखप्रसविनीनां च बन्ध्यानां च प्रशस्यते ॥ ४ ॥

स्नेहितं वामयेत्तीक्ष्णैः पुनः स्निग्धं च शोधयेत् ।

पयसा मूत्रयुक्तेन बहुशः केवलेन वा ॥ ५ ॥

^१दन्तीफलरसे कोष्णे काशमर्याञ्जलिमासुतम् ।

द्राक्षाञ्जलिं वा मृदितं तत् पिबेत् पाण्डुरोगवित् ॥ ६ ॥

मूत्रेण पिष्टां पथ्यां वा तस्मिद्धं वा फलत्रयम् ।

स्वर्णक्षीरीत्रिवृच्छ्यामाभद्रदारुमहौषधम् ॥ ७ ॥

तोक्तम्, महातिक्तं कुष्ठ-चिकित्साप्रकरणे, आरग्वधादिगणः सूत्र-स्थाने पञ्चदशाध्याये । आदौ घृतपान-विधानेन पाण्डु-रोगे प्रथमं पित्तचिकित्सा कर्तव्या कुपितस्य पित्तस्य दशधमनीव्याप्ति-पूर्वक-श्लेष्मादि-दूषकत्वस्य शाम्यत्वात्, तदनन्तरं तत्प्रेरकस्य वातस्य च शाम्यत्वाद् दाडिमादि घृतं विधीयते-दाडिमादिति ।

१. चरके तु-दन्तीफलरसे कोष्णे काशमर्याञ्जलिना शृतम् । द्राक्षाञ्जलिं मृदित्वा वा दद्यात् पाण्ड्वामयापहम् । चि० १६ । ५६ । इति पाठः समुपलभ्यतेऽधुना तत्र विचारणीयं कीदृशोऽयं योग इति । पुष् = अभिषवे, शृ = पाके ।

गोमूत्राञ्जलिना पिष्टं शृतं तेनैव वा पिबेत् ।
 साधितं क्षीरमेभिर्वा पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥ ८ ॥
 मूत्रे स्थितं वा सप्ताहं पयसाऽयोरजः पिबेत् ।
 जीर्णे क्षीरेण भुञ्जीत रसेन मधुरेण वा ॥ ९ ॥
 शुद्धश्चोभयतो लिह्यात्पथ्यां मधुघृतद्रुताम् ।
 विशालां कटुकां मुस्तां कुष्ठं दारु कलिङ्गकाः ॥ १० ॥
 कर्षांशा द्विपिचुर्मूर्वा कर्षार्धोशा वृणप्रिया ।
 पीत्वा तच्चूर्णमम्भोभिः सुखैर्लिह्यात्ततो मधु ॥ ११ ॥
 पाण्डुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम् ।
 गुल्माऽऽनाहाऽऽमवातांश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत् ॥ १२ ॥
 वासागुडूचीत्रिफलाकट्वीभूनिम्बनिम्बजः ।
 क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्ति पाण्डु-पित्तास्र-कामलाः ॥ १३ ॥

नवायसं चूर्णम् ।

१ व्योषाम्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुल्यमयोरजः ।
 चूर्णितं तक्रमध्वाज्यकोष्णाम्भोभिः प्रयोजितम् ॥ १४ ॥
 कामलापाण्डुहृद्गोगकुष्ठाशौमेहनाशनम् ।
 गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतः समान् ॥ १५ ॥
 पिप्पलीद्विगुणान्दद्याद् गुटिकां पाण्डुरोगिणे ।

मण्डूरवटकाः ।

ताप्यं दाढ्यास्त्वचं चक्षुं ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ १६ ॥

१. त्रिकटु-चित्रक-विडङ्ग-त्रिफला-मुस्ता नव-व्यक्तयः, नव-
भागाः अयोरजसः ।

व्योषादिनवकं चैतच्चूर्णयेद् द्विगुणं ततः ।
 मण्डूरं चाञ्जननिभं सर्वतोऽष्टगुणेऽथ तत् ॥ १७ ॥
 पृथग्विपक्वे गोमूत्रे वटकीकरणक्षमे ।
 प्रक्षिप्य वटकान्कुर्यात्तान्वादेत्तक्रभोजनः ॥ १८ ॥
 एते 'मण्डूरवटकाः' प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ।
 कुष्ठान्यजरकं शोफमूरुस्तम्भमरोचकम् ॥ १९ ॥
 अर्शासि कामलां मेहान् प्लीहानं शमयन्ति च ।

ताप्यादिचूर्णम् च० चि० १६।७८

ताप्याऽद्रिजतु-रौप्यायोमलाः पञ्चपलाः पृथक् ॥ २० ॥
 चित्रकत्रिफलान्योषविडङ्गैः पालिकैः सह ।
 शर्कराष्टपलोन्मिश्राश्चूर्णिता मधुना द्रुताः ॥ २१ ॥
 पाण्डुरोगं विषं कासं यक्ष्माणं विषमंज्वरम् ।
 कुष्ठान्यजरकं मेहं शोफं श्वासमरोचकम् ॥ २२ ॥
 विशेषाद्भन्त्यपस्मारं कामलां गुदजानि च ।

शिलाजतुवटकाः ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः ॥ २३ ॥
 भावितानि दशाहानि रसैर्द्वित्रिगुणानि वा ।
 शिलाजतुपलान्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥ २४ ॥
 त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्याः पलोन्मिताः ।
 निदिग्ध्याः फलमूलाभ्यां पलं युक्त्या त्रिजातकम् ॥ २५ ॥
 मधुत्रिपलसंयुक्तं कुर्यादक्षसमान्गुडान् ।
 दाडिमाञ्जुपयःपक्षिरसतोयसुरासवान् ॥ २६ ॥
 तान् भक्षयित्वाऽनुपिबेभिरन्नो भुक्त एव वा ।

पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकाशोभगन्दरम् ॥ २७ ॥
 हन्मूत्रपूतीशुक्रान्निदोषशोषगरोदरम् ।
 कासासृग्दरपित्तासृक् शोफगुल्मगलामयान् ॥ २८ ॥
 मेहबध्मभ्रमान् हन्युः सर्वदोषहराः शिवाः ।

द्राक्षादिचूर्णम्—

द्राक्षाप्रस्थं कणाप्रस्थं शर्करार्धतुलं तथा ॥ २९ ॥
 द्विपलं मधुकं शुण्ठीं त्वक्क्षीरीं च विचूर्णितम् ।
 धात्रीफलरसद्रोणे तत्क्षिप्त्वा लेहवत्पचेत् ॥ ३० ॥
 शीतान्मधुप्रस्थयुताद् लिह्यात्पाणितलं ततः ।
 हलीमकं पाण्डुरोगं कामलां च नियच्छति ॥ ३१ ॥
 कनीयः पञ्चमूलाम्बु शस्यते पानभोजने ।
 पाण्डूनां कामलार्तानां मृद्वीकाऽऽमलकाद्रसः ॥ ३२ ॥
 इति सामान्यतः प्रोक्तं पाण्डुरोगभिषग्विज्ञितम् ।
 विकल्प्य योज्यं विदुषा पृथग्दोषबलं प्रति ॥ ३३ ॥
 स्नेहप्रायं पवनजे, तिक्तशीतं तु पैत्तिके, ।
 श्लैष्मिके कटुरुक्षोष्णं, विमिश्रं सान्निपातिके, ॥ ३४ ॥
 मृदं^१ निर्घातयेत्कायात्तीक्ष्णैः संशोधनैः पुरः ।
 बलाधानानि सर्पौषि शुद्धे कोष्ठे तु योजयेत् ॥ ३५ ॥
 व्योषबिल्वद्विरजनीन्निफलाद्विपुनर्नवम् ।
 मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ ३६ ॥

१. निपातयेच्छरीरात्तु मृत्तिकां भक्षितां भिषक् । च० चि०

वृश्चिकाली च भार्गवी च सत्तीरैस्तैः शृतं घृतम् ।
 सर्वान्प्रशमयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ ३७ ॥
 तद्वत्केसरयष्ट्याह्वपिप्पलीक्षीरशाद्वलैः ।
 मृद्द्वेषणाय तल्लौल्ये वितरेद्भावितां मृदम् ॥ ३८ ॥
 वेल्हाग्निनिम्बप्रसवैः पाठया मूर्वयाऽथवा ।
 मृद्भेदभिन्नदोषाऽनु-गमाद्योज्यं च भेषजम् ॥ ३९ ॥
 'कामलायां' तु पित्तघ्नं पाण्डुरोगाविरोधि यत् ।
 पथ्याशनरसे पथ्यावृन्तार्धशतकल्कितः ॥ ४० ॥
 प्रस्थः सिद्धो घृताद् गुल्म-कामलापाण्डुरोगनुत् ।
 आरग्वधं रसेनेक्षोर्विदार्याऽऽमलकस्य वा ॥ ४१ ॥
 सन्धूषणं बिल्वमात्रं^१ पाययेत्कामलापहम् ।
 पिबेत्त्रिकुम्भकल्कं वा द्विगुणं शीतवारिणा ॥ ४२ ॥
 कुम्भस्य चूर्णं सत्तौद्रं त्रैफलेन रसेन वा ।
 त्रिफलाया गुडूच्या वा दाढ्या निम्बस्य वा रसम् ॥ ४३ ॥
 प्रातः प्रातर्मधुयुतं 'कामलाताय' योजयेत् ।
 शिलागैरिकधात्रीभिः कामलापहमञ्जनम् ॥ ४४ ॥
 तिलपिष्टनिभं यस्तु कामलावान्मृजेन्मलम् ।
 कफरुद्धपथं तस्य पित्तं कफहरैर्जयेत् ॥ ४५ ॥
 रुक्मशीतगुरुस्वादु-व्यायाम-चलनिग्रहैः ।
 कफसम्भूर्च्छितो पायुर्यदा पित्तं बहिः क्षिपेत् ॥ ४६ ॥
 हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः ।
 भवेत्साटोपविष्टम्भो गुरुणा हृदयेन च ॥ ४७ ॥

१. विश्वमात्रं = पलमितम्, (विश्वपत्रमिति चरकः) चि० १६।५९

दौर्बल्याऽल्पाग्निपार्श्वार्ति-हिध्माश्वासारुचिज्वरैः ।
 क्रमेणाल्पेऽनुषज्येत पित्ते शाखासमाश्रिते ॥ ४८ ॥
 रसैस्तं रुक्कट्वम्लैः शिखितित्तिरिदक्षजैः ।
 शुष्कमूलकजैर्यूषैः कुलत्थोत्थैश्च भोजयेत् ॥ ४९ ॥
 भृशाम्लतीक्ष्णकटुक-लवणोष्णं च शस्यते ।
 सबीजपूरकरसं लिह्याद्वयोपं, तथाऽऽशयम् ॥ ५० ॥
 स्वं पित्तमेति, तेनाऽस्य शकृदप्यनुरज्यते ।
 वायुश्च याति प्रशमं सहाटोपाद्युपद्रवैः ॥ ५१ ॥
 निवृत्तोपद्रवस्याऽस्य कार्यः कामलिको विधिः ।
 गोमूत्रेण पिबेत्कुम्भ-कामलायां शिलाजतु ॥ ५२ ॥
 मासं माचिकधातुं वा किट्टं चापि हिरण्यजम् ।
 गुडूचीस्वरसत्तीर-साधितेन हलीमकी ॥ ५३ ॥
 महिषीहविषा स्निग्धः पिबेद्वात्रीरसेन तु ।
 त्रिवृतां तद्विरिक्तोऽद्यात्स्वादु पित्तानिलापहम् ॥ ५४ ॥
 द्राक्षालेहं च पूर्वोक्त सर्पांषि मधुराणि च ।
^१यापनान्क्षीरवस्तींश्च शीलयेत्सानुवासनान् ॥ ५५ ॥
 मार्द्वीकारिष्टयोगांश्च पिबेद्युक्त्याऽग्निवृद्धये ।
^२कासिकं वाऽभयालेहं पिप्पलीमधुक बलाम् ॥ ५६ ॥

१. यापनाश्च-वस्तयः सर्वकालदेयाः, च० सि० १२.१५ इत्युप-
 क्रम्य विहिताः द्वादशयापनसंज्ञकाः अन्वर्थनमानो वस्तयः, अत
 एव प्राणरक्षिण—इति टीकाकृतः ।

२. कासिकं = कासाऽधिकारोक्तम्, अगस्त्यहरीतकी लेहम् । इति ।

पयसा च प्रयुञ्जीत यथादोषं यथाबलम् ।

पाण्डुरोगेषु कुशलः शोफोक्तं च क्रियाक्रमम् ॥ ५७ ॥

इति चिकित्सास्थाने षोडशोऽध्यायः ।



सप्तदशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः श्वयथुचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘सर्वत्र सर्वाङ्गसरे दोषजे श्वयथौ पुरा ।

सामे विशोषितो^२ भुक्त्वा लघु कोष्णाम्भसा पिबेत् ॥ १ ॥

नागरातिविपादारु-विडङ्गेन्द्रयवोषणम् ।

अथवा विजयाशुण्ठीदेवदारुपुनर्नवम् ॥ २ ॥

^३नवायसं वा दोषाढ्यः शुद्धं मूत्रहरीतकीः ।

^४वराक्षाथेन कटुका-कुम्भाऽयस्यूषणानि वा ॥ ३ ॥

अथवा गुग्गुलुं तद्वज्रतु वा शैलसम्भवम्^५ ।

मन्दाग्निः शीलयेदाम-गुरुभिन्नविबद्धविट् ॥ ४ ॥

१. अथ = पाण्डुरोग-चिकित्सा-निरूपणानन्तरं यतः ‘शोफो-
क्तश्च क्रियाक्रमम्’—इति वचनेन, शोफः स्मृतिविषयीभूतः, अतस्त-
त्प्रतीकारं विशेषेण निरूपयिष्यामः ।

२. विशोषितः सन् लघु भुक्त्वा-इत्यन्वयः ।

३. नवाऽऽयसचूर्णः पाण्डुरोगे । ४. वरा = त्रिफला ।

५. शैलसम्भवं जतु = शिलाजतु ।

तक्रं सौवर्चलव्योष-क्षौद्रयुक्तं गुडाभयाम् ।
 तक्रानुपानामथवा तद्वद्वा गुडनागरम् ॥ ५ ॥
 आर्द्रकं वा समगुडं^१ प्रकुञ्चार्धविवर्धितम् ।
 परं पञ्चपलं मासं यूषक्षीररसाशनः ॥ ६ ॥
 गुल्मोदरार्शः श्वयथुप्रमेहान्
 श्वासप्रतिश्याऽलसकाऽविपाकान् ।
 सकामलाशोफमनोविकारान्
 कासं कफं चैव जयेत्प्रयोगः^२ ॥ ७ ॥
 घृतमार्द्रकनागरस्य कल्क-
 स्वरसाभ्यां पयसा च साधयित्वा ।
 श्वयथुक्षवथूदराग्निसादै-
 रभिभूतोऽपि पिबन् भवत्यरोगः ॥ ८ ॥
 निरामो बद्धशमलः^३ पिबेच्छ्वयथुपीडितः ।
 त्रिकटुत्रिवृतादन्तीचित्रकैः साधितं पयः ॥ ९ ॥
 मूत्रं गोर्वा महिष्या वा सक्षीरं क्षीरभोजनः ।
 सप्ताहं मासमथवा स्यादुष्णीक्षीरवर्तनः ॥ १० ॥
 यवानकं यवक्षारं यवानीं पञ्चकोलकम् ।
 मरिचं दाडिमं पाठां धानकामल्लवेतसम् ॥ ११ ॥
 बालबिल्वं च कर्षोशं साधयेत्सलिलाढके ।
 तेन पक्वो घृतप्रस्थः शोफार्शोगुल्ममेहहा ॥ १२ ॥

१ प्रकुञ्चः = पलम् ऽ-प्रकुञ्चाद्धः २) दो तोला = आषा छटाक
 अर्धपलम् । २. एष समगुडाऽऽर्द्रकप्रयोगो गुल्मादीन्-जयेत् ।
 ३. बद्धं शमलं—पुरीषं यस्य सः ।

दध्नश्चित्रकगर्भाद्वा घृतं तत्तत्क्रसंयुतम् ।
 पक्वं सचित्रकं तद्वद्गुणैः॥युज्याच्च कालवित् ॥ १३ ॥
 धान्वन्तरं महातिक्तं कल्याणमभयाघृतम् ।

कंसहरीतकी—

दशमूलकषायस्य ^१कंसे पथ्याशतं पचेत् ॥ १४ ॥
 दत्त्वा गुडतुलां तस्मिन् लेहे दद्याद्विचूर्णितम् ।
 त्रिजातकं त्रिकटुकं किञ्चिच्च यवशूकजम् ॥ १५ ॥
 प्रस्थार्धं च हिमे क्षौद्रात् तन्निहन्युपयोजितम् ।
 प्रवृद्धशोफ-ज्वरमेहगुल्म-काश्यामवाताम्लकरक्तपित्तम् ।
 वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोष-श्वासारुचिप्लीहगरोदरं च ^२॥ १६ ॥
 पुराणयवशाल्यन्नं दशमूलाग्बुसाधितम् ।
 अल्पमल्पपटुस्नेहं 'भोजनं' श्रयथोर्हितम् ॥ १७ ॥
 क्षारव्योषान्वितैर्मौद्गैः कौलथैः सकणै रसैः ।
 तथा जाङ्गलजैः कूर्मगोधाशल्यकजैरपि ॥ १८ ॥
 अनम्लं मथितं 'पाने' मद्यान्यौषधवन्ति च ।
 अजाजीशठिजीवन्ती-कारवीपौष्कराग्निकैः ॥ १९ ॥
 बिल्वमध्ययवक्षारबुक्षाम्लैर्वदरोन्मितैः ।
 कृता 'पेया'ऽऽज्यतैलाभ्यां युक्तिभृष्टा परं हिता ॥ २० ॥
 शोफातिसारहृद्रोग-गुल्माशोऽल्पाग्निमेहिनाम् ।
 गुणैस्तद्वच्च पाठायाः पञ्चकोलेन साधिता ॥ २१ ॥

१. कंसे = प्रस्थाष्टके, (कंसः प्रस्थाष्टकान्तथा) च०क० १२।९४।

२. चरके चि० १२।५०।५२ कंसहरीतकी द्रष्टव्या ।

शैलेयकुष्ठस्थौणेय-रेणुकागरुपद्मकैः ।
 श्रीवेष्टकनखस्पृक्का-देवदारुप्रियङ्गुभिः ॥ २२ ॥
 मांसीमागधिकावन्यधान्यध्यामकवालकैः ।
 चतुर्जातकतालीसमुस्तागन्धपलाशकैः ॥ २३ ॥
 कुर्यादभ्यञ्जने 'तैलं लेपं' स्नानाय तूदकम् ।
 'स्नानं' वा निम्बवर्षाभू-नक्तमालार्कवारिणा ॥ २४ ॥
 'एकाङ्गशोफे' वर्षाभूकरवीरक-किंशुकैः ।
 विशालात्रिफलारोध्र-नलिकादेवदारुभिः ॥ २५ ॥
 हिंसाकोशातकी-माद्रीतालपर्णीजयन्तिभिः ।
 स्थूल-काकादनी-शाल-नाकुलीवृषपर्णिभिः ॥ २६ ॥
 बृद्धयर्द्धिहस्तिकर्णैश्च सुखोष्णैर्लेपनं हितम् ।
 अथाऽनिलोत्थे श्रयथौ मासार्धं त्रिवृतं पिबेत् ॥ २७ ॥
 तैलमेरण्डजं वातविड्विबन्धे तदेव तु ।
 प्राग्भक्तं पयसा युक्तं रसैर्वा कारयेत्तथा ॥ २८ ॥
 स्वेदाभ्यङ्गान्समीरघ्नान् लेप'मेकाङ्गो'पुनः ।
 मातुलुङ्गाग्निमन्थेन शुण्ठीहिंसाऽमराह्वयैः ॥ २९ ॥
 'पैत्ते' तिक्तं पिबेत्सर्पिर्न्यग्रोधाद्येन वा शृतम् ।
 क्षीरं, तृड्दाहमोहेषु लेपाभ्यङ्गाश्च शीतलाः ॥ ३० ॥
 पटोलमूलत्रायन्ती-यष्ट्याह्वकटुकाभयाः ।
 दारु दार्वी हिमं दन्ती विशाला निचुलं कणा ॥ ३१ ॥
 तैः क्वाथः सघृतः पीतो हन्त्यन्तस्तापतृड्भ्रमान् ।
 ससन्निपातवीसर्प-शोफदाहविषज्वरान् ॥ ३२ ॥
 आरग्वधादिना सिद्धं तैलं 'श्लेष्मोद्भवे' पिबेत् ।

स्रोतोविबन्धे मन्देऽग्नावरुचौ स्तिमिताशयः ॥ ३३ ॥

क्षारचूर्णासवारिष्ट-मूत्रतक्राणि शीलयेत् ।

कृष्णापुराणपिण्याक-शिग्रुत्वक्सिकतातसीः ॥ ३४ ॥

प्रलेपोन्मर्दने युञ्ज्यात्सुखोष्णा मूत्रकल्किताः ।

स्नाने मूत्राग्भसी सिद्धे^१ कुष्ठतर्कारिचित्रकैः ॥ ३५ ॥

कुलत्थनागराभ्यां वा, चण्डागुरु विलेपने ।

कालाजशृङ्गीसरलबस्तगन्धाहया ह्वाः ॥ ३६ ॥

एकैषिका च लेपः स्वाच्छ्वयथावेकगात्रगे ।

यथादोषं यथासङ्गं शुद्धिं रक्तावसेचनम् ।

कुर्वीत मिश्रदोषे तु दोषोद्रेकबलात्क्रियाम् ॥ ३७ ॥

अजाजि-पाठा-घन-पञ्चकोल-

व्याघ्री-रजन्यः सुखतोयपीताः ।

शोफं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं

निघ्नन्ति भूनिम्ब-महौषधे च ॥ ३८ ॥

अमृताद्वितयं शिवाटिका सुरकाष्ठं सपुरं सगोजलम् ।

श्वयथूदरकुष्ठपाण्डुता-कृमिमेहोर्ध्वकफानिलापहम् ॥ ३९ ॥

इति निजमधिकृत्य पथ्यमुक्तं

क्षतजनिते क्षतजं विशोधनीयम् ।

क्षुतिहिमघृतलेपसेकरैः

विषजनिते विषजिच्च शोफ इष्टम् ॥ ४० ॥

१. कुष्ठतर्कारिचित्रकैः सिद्धे=कथिते गोमूत्र-जले स्नाने युञ्ज्या-
दिति सम्बन्धः । •

१ ग्राम्याऽऽब्जाऽऽनूपं पिशितमबलं शुष्कशाकं तिलाक्षम्
गौडं पिष्टान्नं दधि सलवणं विज्जलं मद्यमम्लम् ।
धानावल्लूरंसमशनमथो गुर्वसात्स्यं विदाहि
स्वप्नं चारात्रौ श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ४१ ॥'

इति चिकित्सास्थाने सप्तदशोऽध्यायः ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

२ अथाऽतो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

'आदावेव विसर्पेषु हितं लङ्घनरूक्षणम् ।

१. ग्राम्यं=ग्रामभवजम् आब्जं=जलचरजम्-आनूपम्=काच्छं
पिशितमित्यस्य विशेषणानि, अबलमित्युभयत्र विशेषणं, शुष्कमूल-
कादेः सबलत्वात् । तिलसंसृष्टमन्नं तिलाऽन्नम् = कृसरम्, नवान्न-
मिति चरके, गौडं = गुडविकारं, धानाः = अङ्कुरितान् भृष्टान् यवान्
वल्लूरं = शुष्कमांसं, समशनं = पथ्याऽपथ्यस्य वस्तुनः सहभोजनम्,
आरात्रौ = दिवसे, स्वप्नं = निद्रां शोथी वर्जयेत्, स्पष्टमन्यत् ।

कुसुमितलतावेष्टिता वृत्तम्-अष्टादशाक्षरा जातिः । पञ्च षट्
सप्तभिर्यतिः, म-त-न-य-य-य-इति गणनियमः । स्याद् भूतत्वंश्वैः
कुसुमितलतावेष्टिता म्त्तौ नयौ यौ । इति लक्षणम् । चरके चिकि-
त्सास्थाने द्वादशाध्याये विंशतितमं पद्यमिदम् ॥

२. अथ = शीघ्रचिकित्सा-निरूपणानन्तरं यतः चिकित्सा-सादृ-

रक्तावसेको वमनं विरेकः स्नेहनं न तु^१ ॥ १ ॥
 प्रच्छर्दनं विसर्पघ्नं^२ सयष्टीन्द्रयवं फलम् ।
 पटोलपिप्पलीनिम्बपल्लवैर्वा समन्वितम् ॥ २ ॥
 रसेन युक्तं त्रायन्त्या द्राक्षायास्त्रैफलेन वा ।
 विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं पयसा सर्पिषाऽथवा ॥ ३ ॥
 योज्यं कोष्ठगते दोषे विशेषेण विशोधनम् ।
 अविशोध्यस्य दोषेऽल्पे शमनं चन्दनोत्पलम् ॥ ४ ॥
 मुस्तनिम्बपटोलं वा पटोलादिकमेव वा ।
 सारिवामलकोशीरमुस्तं वा कथितं जले ॥ ५ ॥
 दुरालभां पर्पटकं गुडूचीं विश्वभेषजम् ।
 पाक्यं शीतकषायं वा तृष्णाचीसर्पवान् पिबेत् ॥ ६ ॥
 दार्वीपटोलकटुकामसूरत्रिफलास्तथा ।
 सनिम्बयष्टीत्रायन्तीः कथिता घृतमूर्च्छिताः ॥ ७ ॥
 शाखादुष्टे तु रुधिरे रक्तमेवादितो हरेत् ।
 त्वङ्ग्रांसस्नायुसङ्क्लेदो रक्तक्लेदाद्धि जायते ॥ ८ ॥
 निरामे श्लेष्मणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम् ।
 घृतं तिक्तं महातिक्तं शृतं वा त्रायमाणया ॥ ९ ॥
 निहर्तेऽस्त्रे विशुद्धेऽन्तर्दोषे त्वङ्ग्रांससन्धिगे ।

श्यादुत्सेधत्वसादृश्याच्च विसर्पः स्मृतिविषयीभूतः अतस्तच्चिकित्सां
 व्याख्यास्यामः । १. चरके चिकित्सास्थाने २१।४४-४९ द्रष्टव्यम् ।

२. मधुयष्टिकुटजफल-सहित-मदनफलं वा = अथवा पटोलादिभिः
 पृथक् २ समन्वितं मदनफलं विसर्पनाशक-वमनकरम् । च०
 चि० २१।५१

बहिः क्रियाः प्रदेहाद्याः सद्यो वीसर्पशान्तये ॥ १० ॥
 शताह्वामुस्तवाराही-वंशार्तगलधान्यकम् ।
 सुराह्वा कृष्णगन्धा च कुष्ठं वा लेपनं 'चले' ॥ ११ ॥
 न्यग्रोधादिगणः 'पित्ते' तथा पद्मोत्पलादिकम् ।
 न्यग्रोधपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः ॥ १२ ॥
 विसग्रन्थिश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ।
 पद्मिनीकर्दमः शीतः पिष्टं मौक्तिकमेव वा ॥ १३ ॥
 शङ्खः प्रवालं शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ।
 त्रिफलापद्मकोशीर-समङ्गाकरवीरकम् ॥ १४ ॥
 नलमूलान्यनन्ता च लेपः 'श्लेष्मविसर्पहा ।
 धवसप्ताह्वखदिर-देवदारुकुरण्टकम् ॥ १५ ॥
 समुस्तारग्वधं लेपो वर्गो वा वरुणादिकः ।
 आरग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ॥ १६ ॥
 इन्द्राणीशाककाकाह्वा-शिरीषकुसुमानि च ।
 सेकत्रणाभ्यङ्गहविलेपचूर्णान् यथायथम् ॥ १७ ॥
 एतैरेवौषधैः कुर्याद्वायौ 'लेपा' घृताधिकाः ।
 कफस्थानगते सामे पित्तस्थानगतेऽथवा ॥ १८ ॥
 अशीतोष्णा हिता रूक्षा, रक्तपित्ते घृतान्विताः ।
 अस्यर्थशीतास्तनवस्तनुवस्त्रान्तरास्थिताः ॥ १९ ॥
 योज्याः क्षणे क्षणेऽन्येऽन्ये, मन्दबीर्यास्त एव च, ।
 संसृष्टदोषे संसृष्टमेतत्कर्म प्रशस्यते ॥ २० ॥
 शतधौतघृतेना^१ऽग्निं प्रदिह्यात्केवलेन वा ।

सेचयेद् घृतमण्डेन शीतेन मधुकाम्बुना ॥ २१ ॥
 शीताम्भसाऽम्भोजजलैः क्षीरेणेश्वरसेन वा ।
 पानलेपनसेकेषु महातिक्तं परं हितम् ॥ २२ ॥
 'ग्रन्थ्याख्ये' रक्तपित्तघ्नं कृत्वा सम्यग्यथोदितम् ।
 कफानिलघ्नं कर्मेष्टं पिण्डस्वेदोपनाहनम् ॥ २३ ॥
 ग्रन्थिवीसर्पशूले तु तैलेनोष्णेन सेचयेत् ।
 दशमूलविपक्वेन तद्वन्मूत्रैर्जलेन वा ॥ २४ ॥
 सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्ट्या कृष्णगन्धया ।
^१नक्तमालत्वचा शुष्कमूलकैः कलिनाऽथवा ॥ २५ ॥

ग्रन्थिभेदको लेपः—

दन्तीचित्रकमूलत्वक् सौधार्कपयसी गुडः ।
 भस्मातकास्थिकासीसं 'लेपो' भिन्द्याच्छिलामपि ॥ २६ ॥
 बहिर्मागार्गाश्रितं ग्रन्थिं किं पुनः कफसम्भवम् ।
 दीर्घकालस्थितं ग्रन्थिमेभिर्भिन्द्याच्च भेषजैः ॥ २७ ॥

ग्रन्थिभेदकान्यौषधानि—

मूलकानां कुलत्थानां यूषैः सत्तारदाडिमैः ।
 गोधूमान्नैर्यवान्नेश्च ससीधुमधुशार्करैः ॥ २८ ॥
 सत्तौद्रैर्वाण्णीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ।
 त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पल्याः क्षौद्रसंयुतैः ॥ २९ ॥
 देवदारुगुडूच्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च ।
 मुस्तभस्मातसक्तूनां प्रयोगैर्मात्सिकस्य च ॥ ३० ॥

धूमैर्विरेकैः शिरसः पूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ।
 तत्सायोहेमलवण-पाषाणादिप्रपीडनैः ॥ ३१ ॥
 आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिर्विविधाभिर्बले स्थितः ।
 ग्रन्थिः पाषाणकठिनो 'यदि नैवोपशाम्यति' ॥ ३२ ॥
 अथास्य 'दाहः' चारेण शरैर्हन्नाऽपि वा हितः ।
 पाकिभिः पाचयित्वा तु पाटयित्वा तमुद्धरेत् ॥ ३३ ॥
 मोक्षयेद्बहुशश्चाऽस्य रक्तमुत्क्लेशमागतम् ।
 पुनश्चापहते रक्ते वातश्लेष्मजिदौषधम् ॥ ३४ ॥
 प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यां बाह्यान्तर्ब्रणवत्क्रिया ।
 दार्वाविडङ्गकम्पिल्लैः 'सिद्धं तैलं' व्रणे हितम् ॥ ३५ ॥
 दूर्वास्वरससिद्धं तु 'कफपित्तोत्तरे घृतम् ।
 'एकतः सर्वकर्माणि रक्तमोक्षणमेकतः' ॥ ३६ ॥
 विसर्पो नह्यसंसृष्टः सोऽम्लपित्तेन जायते ।
 रक्तमेवाश्रयश्चास्य बहुशोऽस्त्रं हरेदतः^१ ॥ ३७ ॥
 न घृतं बहु दोषाय देयं यन्न विरेचनम् ।
 तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्वप्नप्रक्तपिशितं पचेत् ॥ ३८ ॥
 इति चिकित्सास्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ।

१. 'यानीहोक्तानि कर्माणि विसर्पाणां निवृत्तये । एकतस्तानि स्त्राणि रक्तमोक्षणमेकतः', चरकः चि० २१।१४१। न केवलं विसर्पे, रक्तमोक्षणं परमाऽवश्यकम्-अपि तु-सर्वेषु रक्तविकारजेषु-वातशो-
 णितादिषु कुष्ठेषु पिटिकासु च स्फुरद्-असृक् प्रथममेव निर्मोच-
 यितव्यम् ।

एकोनविंशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘कुष्ठिनं स्नेहपानेन ^२पूर्वं सर्वमुपाचरेत् ।

तत्र वातोत्तरे तैलं ^३घृतं वा साधितं हितम् ॥ १ ॥

दशमूलाऽऽमृतैरण्डशार्ङ्गष्टामेपशृङ्गिभिः ।

पटोलादिघृतम् ।

पटोलनिम्बकटुका-दार्वापाठादुरालभाः ॥ २ ॥

पर्यटं त्रायमाणां च पलांशं पाचयेदपाम् ।

द्वयाढकेऽष्टांशशेषेण तेन कर्पोन्मितैस्तथा ॥ ३ ॥

त्रायन्तीमुस्तभूनिम्ब-कलिङ्गकणचन्दनैः ।

सर्पिषो द्वादशपलं पचेत्तत्तित्तकं जयेत् ॥ ४ ॥

पित्तकुष्ठ-परीसर्प-पिटिका-दाह-तृड्-भ्रमान् ।

कदापि वैद्यैः प्रमादो न कर्त्तव्यः, अन्यथा वहवोऽसंख्या विकारा भवन्तीत्यनुभूयतेऽधुनैवाऽनेन शरीरेण । ‘कुर्याद्रक्तविकारेषु रक्त-पित्तहरीं क्रियाम्, इति च न विस्मर्त्तव्यम् । रक्तपित्तमूलका एव हि प्रायो रक्तविकाराः । इति ।

१. अथ = रक्त—विकारजविसर्पचिकित्सानिरूपणानन्तरं यतः रक्तादिविकारकः कुष्ठः स्मृतिविषयो भूतोऽतस्तच्चिकित्सितम् ० ।

२ वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं इलेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोक्षो, रक्तस्य विरेचनं चाग्रे । च० चि० ७।३९ ।

३. ‘स्नेहस्य पानमिध्ं शुद्धे कोष्ठे प्रवाहिते रक्ते’ च० चि० ७।४२ ।

कण्डूपाण्ड्वामयान् गण्डान् दुष्टनाडीव्रणाऽपचीः ॥ ५ ॥
 विस्फोट-विद्रधी-गुल्म-शोफोन्मादमदानपि ।
 हृद्रोग-तिमिर-व्यङ्ग-ग्रहणी-श्वित्र-कामलाः ॥ ६ ॥
 भगन्दरमपस्मारमुदरं प्रदरं गरम् ।
 अशोऽस्रपित्तमन्यांश्च सुकृच्छ्रान् पित्तजान् गदान् ॥ ७ ॥
 सप्तच्छदः पर्पटकः शम्पाकः कटुका वचा ।
 त्रिफला पद्मकं पाठा रजन्यौ सारिवे कणे ॥ ८ ॥
 निम्ब-चन्दन यष्ट्याह्व-विशालेन्द्रयवाऽमृताः ।
 किराततिक्तकं सेव्यं वृषो मूर्वा शतावरी ॥ ९ ॥
 पटोलाऽतिविषामुस्ता-त्रायन्तीधन्वयासकम् ।
 तैर्जलेऽष्टगुणे सर्पिर्द्विगुणामलकीरसे ॥ १० ॥
 सिद्धं तिक्ता'न्महातिक्त'गुणैरभ्यधिकं मतम् ।
 कफोत्तरे घृतं सिद्धं निम्ब-सप्ताह्व-चित्रकैः ॥ ११ ॥
 कुष्ठोषणवचाशालप्रियालचतुरङ्गुलैः ।
 सर्वेषु चारुष्करजं तौवरं सार्षपं पिबेत् ॥ १२ ॥
 स्नेहं घृतं वा कृमिजित्पथ्याभल्लातकैः शृतम् ।
 आरग्वधस्य मूलेन शतकृत्वः शृतं घृतम् ॥ १३ ॥
 पिबन्कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखदिरं जलम् ।
 एभिरेव यथास्वं च स्नेहैरभ्यञ्जनं हितम् ॥ १४ ॥
 स्निग्धस्य शोधनं योज्यं विसर्पे यदुदाहृतम् ।
 ललाटहस्तपादेषु सिराश्चाऽस्य विमोक्षयेत् ॥ १५ ॥
 प्रच्छानमल्पके कुष्ठे शृङ्गाद्याश्च यथायथम् ।
 स्नेहैराप्याययेच्चैनं कुष्ठध्नैरन्तरान्तरा ॥ १६ ॥

मुक्तरक्तविरिक्तस्य रिक्तकोष्ठस्य कुण्ठिनः ।

प्रभञ्जनस्तथा ह्यस्य न स्याद्देहप्रभञ्जनः ॥ १७ ॥

कुष्ठापहं घृतम् ।

वासाऽमृता-निम्ब-वरा-पटोल-

व्याघ्रीकरञ्जोदककल्कपक्वम् ।

सर्पिर्विसर्पज्वरकामलाऽस्र-

कुष्ठापहं 'वज्रक'मामनन्ति ॥ १८ ॥

त्रिफलात्रिकटुद्विकण्टकारी-

कटुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।

सवचाऽतिविषाऽग्निकैः सपाठैः

पित्तुभागेनैववज्रदुग्धमुष्टया ॥ १९ ॥

पिष्टैः सिद्धं सर्पिषः प्रस्थमेभिः

क्रूरे कोष्ठे स्नेहनं रेचनं च ।

कुष्ठशिवत्रण्णीहवर्ध्माश्मगुल्मान्

हन्त्याकृच्छ्रांस्तन्'महावज्रकाख्यम्' ॥ २० ॥

दन्त्याढकमपां द्रोणे पक्त्वा तेन घृतं पचेत् ।

धामार्गव-पले पीतं तदूर्ध्वाधो विशुद्धिकृत् ॥ २१ ॥

आवर्तकीतुलां द्रोणे पचेदष्टांशशेषितम् ।

तन्मूलैस्तत्र निर्यूहे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२ ॥

पीत्वा तदेकदिवसान्तरितं सुजीर्णे

भुञ्जीत कोद्रवसुसंस्कृतकाञ्जिकेन ।

कुष्ठं किलासमपचीं च विजेतुमिच्छन्

इच्छन्प्रजां च विपुलां ग्रहणं स्मृतिं च ॥ २३ ॥

१यतेर्लेलीतकवसा २क्षौद्रजातीरसान्विता ।

कुष्ठघ्नी समसर्पिर्वा सगायत्र्यसनोदका ॥ २४ ॥

शालयो यवगोधूमाः कोरदूपाः प्रियङ्गवः ।

मुद्गा मसूरास्तुवरी तिक्तशाकानि जाङ्गलम् ॥ २५ ॥

वरा-पटोल-खदिर-निम्बाऽरुष्करयोजितम् ।

मथान्यौषधगर्भाणि मथितं चेक्षुराजिमत् ॥ २६ ॥

अन्नपानं हितं कुष्ठे, नत्वस्तलवणोपणम् ।

दधि-दुग्ध-गुडाऽऽनूप-तिल-माषांस्त्यजेत्तराम् ॥ २७ ॥

३पटोलमूत्रनिफलाविशालाः

पृथक्त्रिभागापचितत्रिशाणाः ।

स्युस्त्रायमाणा कटुरोहिणी च

भागार्धिके नागरपादयुक्ते ॥ २८ ॥

एतत्पलं जर्जरितं विपक्वं जले पिबेद्दोषविशोधनाय ।

जीर्णे रसैर्धन्वमृगद्विजानां पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ २९ ॥

कुष्ठं किलासं ग्रहणीप्रदोष-

मर्शोसि कृच्छ्राणि हलीमकं च ।

१. यतेः = ब्रह्मचर्यस्थितस्य ।

२. लेलीतकस्य = तदाख्यस्याऽसुरस्थ वसा = नवनीताख्यो गन्धकः । लेलीतक-प्रयोगो रसेन जात्या समाक्षिकः परमः । सप्त-दशकुष्ठघाती, माक्षिकधातुश्च मूत्रेण । च० चि० ७।७०।

३. मूलं पटोलस्य तथा गवाक्ष्याः—चरकस्य चि० ७-६२-६४ किञ्चित्परिवर्त्य पाठः ।

षड्रात्रियोगेन निहन्ति चैतद्
 हृद्वस्तिशूलं विषमज्वरं सः ॥ ३० ॥
 विडङ्गसारामलकाभयानां
 पलत्रयं त्रीणि पलानि कुम्भात् ।
 गुडस्य च द्वादश मासमेव
 जितात्मनां हन्त्युपयुज्यमानः ॥ ३१ ॥
 कुष्ठं शिवत्रं श्वासकासोदराशौ-
 मेहप्लीहप्रन्थ्यरुजन्तुगुल्मान् ।
 सिद्धं योगं प्राह यक्षो मुमुक्षो-
 भिक्षोः प्राणान्माणिभद्रः किलेमम् ॥ ३२ ॥
 भूनिम्ब-निम्ब-त्रिफला-पद्मकाऽतिविषा-कणाः ।
 मूर्वा-पठोली-द्विनिशा-पाठा-तिक्तेन्द्रवारुणीः ॥ ३३ ॥
 सकलिङ्गवचास्तुल्या द्विगुणाश्च यथोत्तरम् ।
 लिह्याहन्तीत्रिवृद्ब्राह्मीश्वर्णिता मधुसर्पिषा ॥ ३४ ॥
 कुष्ठमेहप्रसुप्तीनां परमं स्यात्तदौषधम् ।
 वराविडङ्गकृष्णा वा लिह्यात्तैलाढ्यमाक्षिकैः ॥ ३५ ॥
^१काकोदुम्बरिका-वेष्ट-निम्बाब्दव्योषकल्कवान् ।
 हन्ति वृक्षकनिर्यूहः पानात्सर्वोस्त्वगामयान् ॥ ३६ ॥
 कुटजाऽग्नि-निम्ब-नृपतरु-खदिराऽसनसप्तपर्ण-निर्यूहे ।
 सिद्धा मधुघृतयुक्ता कुष्ठघ्नीर्भक्षयेदभयाः ॥ ३७ ॥
 दार्वीखदिरनिम्बानां त्वक्काथः कुष्ठसूदनः ।

निशोत्तमानिम्बपटोलमूल-

तिक्तावचालोहितयष्टिकाभिः ।

कृतः कषायः कफपित्तकुष्ठं

सुसेवितो धर्म इवोच्छिनत्ति ॥ ३८ ॥

एभिरेव न शृतं घृतमुख्यं भेषजैर्जयति मारुतकुष्ठम् ।

कल्पयेत्खदिरनिम्बगुडूची-देवदारुरजनीः पृथगेवम् ॥ ३९ ॥

पाठादार्वीवह्निघुणेष्टाकटुकाभि-

र्मत्रं युक्तं शक्रयवैश्रोणजलं च ।

कुष्ठी पीत्वा मासमरुक् स्याद् गुदकुली

मेही शोफी पाण्डुरजीर्णी कृमिमांश्च^१ ॥ ४० ॥

लाक्षादन्तीमधुरसवरा-द्वीपिपाठाविडङ्गं

प्रत्यक्पुष्पीत्रिकटुरजनी-सप्तपर्णाऽऽटरूपम् ।

रक्ता निम्बं सुरतरुकृतं पञ्चमूल्यौ च चूर्णं

पीत्वा मासं जयति हितभुग्गव्यमूत्रेण कुष्ठम् ॥ ४१ ॥

निशाकणानागरवेह्लतौवरं

सवह्निताप्यं क्रमशो विवर्धितम् ।

^२गवाम्बुपीतं वटकीकृतं तथा

निहन्ति कुष्ठानि सुदारुणान्यपि ॥ ४२ ॥

त्रिकटूत्तमातिलारु-

ष्कराज्यमाक्षिकसितोपला विहिता ।

गुलिका रसायनं स्यात्

कुष्ठजिच्च वृष्या च सप्तसमा ॥ ४३ ॥

चन्द्रशकलाग्निरजनी-

विडङ्गतुवरास्थरुष्करत्रिफलाभिः ।

वटका गुडांशकलृप्ताः

समस्तकुष्ठानि नाशयन्त्यभ्यस्ताः ॥ ४४ ॥

विडङ्गभल्लातकबाकुचीनां

सद्वीपिवाराहिहरीतकीनाम् ।

सलाङ्गलीकृष्णतिलोपकुल्या

गुडेन 'पिण्डी' विनिहन्ति कुष्ठम् ॥ ४५ ॥

शशाङ्कलेखा सविडङ्गमूला

सपिप्पलीका सहुताशमूला ।

सायोमला सामलका सतैला

कुष्ठानि कृच्छ्राणि निहन्ति लीढा ॥ ४६ ॥

पथ्यातिलगुडैः पिण्डी कुष्ठं सारुष्करैर्जयेत् ।

गुडारुष्करजन्तुधनसोमराजीकृताऽथवा ॥ ४७ ॥

विडङ्गाऽद्रिजतु-क्षौद्र-सर्पिण्मत्खादिरं रजः ।

किटिभशिवन्नदद्रुध्नं खादेन्मितहिताशनः ॥ ४८ ॥

सितातैलकृमिघ्नानि धान्ययोमलपिप्पलीः ।

लिहानः सर्वकुष्ठानि जयत्यतिगुरूष्यपि ॥ ४९ ॥

मुस्तादिचूर्णम् ।

मुस्तं व्योषं त्रिफला मज्जिष्ठा दारु पञ्चमूले द्वे ।

सप्तच्छदनिम्बत्वक् सविशाला चित्रको मूर्वा ॥ ५० ॥

चूर्णं ^१तर्पणभागैर्नवभिः संयोजितं समध्वंशम् ।

१. नवभिः—तर्पणभागैः = सक्तुभागैः । च० चि० ७।६५-६७ ।

नित्यं कुष्ठनिबर्हणमेतत्प्रायोगिकं खादन् ॥ ५१ ॥
 श्वयथुं सपाण्डुरोगं शिवश्रं ग्रहणीप्रदोषमशंसि ।
 बध्मभगन्दरपिडका-कण्डूकोठापचीर्हन्ति ॥ ५२ ॥
 रसायनप्रयोगेण तुवरास्थीनि शीलयेत् ।
 भल्लातकं बाकुचिकां वह्निमूलं शिलाह्वयम् ॥ ५३ ॥
 इति दोषे विजितेऽन्त-

स्वक्स्थे शमनं बहिः प्रलेपादि हितम् ।

तीक्ष्णालेपोत्क्रिष्टं

कुष्ठं हि विवृद्धिमेति मल्लिने देहे ॥ ५४ ॥
 स्थिरकठिनमण्डलानां कुष्ठानां पोटलैर्हितः स्वेदः ।
 स्विन्नोत्सन्नं कुष्ठं शस्त्रैर्लिखितं प्रलेपनैर्लिम्पेत् ॥ ५५ ॥
 येषु न शस्त्रं क्रमते स्पृशेन्द्रियनाशनेषु कुष्ठेषु ।
 तेषु निपात्यः क्षारो रक्तं दोषं च विस्त्राव्य^१ ॥ ५६ ॥
 लेपोऽतिकठिने परुषे सुप्ते कुष्ठे स्थिरे पुराणे च ।
 पीतागदस्य कार्यो विषः समन्त्रोऽगदैश्चाऽनु ॥ ५७ ॥
 स्तब्धानि सुप्तसुप्तान्यस्वेदनकण्डूलानि कुष्ठानि ।
 घृष्टानि शुष्कगोमय-फेनक-शस्त्रैः प्रदेह्यानि ॥ ५८ ॥
 मुस्तात्रिफलामदनं करञ्ज आरग्वधकलिङ्गयवाः ।
 सप्ताह्णकुष्ठफलिनीदार्व्यः 'सिद्धार्थकं' स्तानम् ॥ ५९ ॥
 एष कषायो वमनं विरेचनं वर्णकरस्तथोद्धर्षः ।
 त्वग्दोषकुष्ठशोफ-प्रबाधनः पाण्डुरोगघ्नः ॥ ६० ॥

१. रक्तं दोषं च विस्त्राव्य = मोचयित्वा-क्षारो निपात्यः-इत्य-
 न्वयः च० चि० ७।५४।

करवीरनिम्बकुटजाच्छम्पाकाच्चित्रकाच्च मूलानाम् ।

मूत्रे दर्विलेपी क्वाथो लेपेन कुष्ठघ्नः ॥ ६१ ॥

श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जात्फलं त्वचो दाढ्याः ।

सुमनःप्रबालयुक्तो लेपः 'कुष्ठापहः' सिद्धः ॥ ६२ ॥

शैरीषी त्वक्, पुष्पं कार्पास्या, राजवृक्षपत्राणि ।

पिष्टा च काकमाची ^१चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः ॥ ६३ ॥

व्योषसर्पपनिशागृहधूमैर्यावशूकपटुचित्रककुष्ठैः ।

कोलमात्रगुटिकार्धविषांशाः श्वित्रकुष्ठहरणो वरलेपः ॥ ६४ ॥

^१निम्बं हरिद्रे सुरसं पटोलं

कुष्ठाश्वगन्धे सुरदारु शिग्रुः ।

ससर्पपं तुम्बुरुधान्यवन्यं

चण्डा च चूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ ६५ ॥

तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं शरीरं

तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत ।

तेनास्य कण्डूः पिटिकाः सकोठाः

कुष्ठानि शोफाश्च शमं व्रजन्ति ॥ ६६ ॥

मुस्ताऽमृतासङ्गकटङ्कटेरी

कासीसकम्पिलककुष्ठरोध्राः ।

१. शिरीषत्वक्—कार्पासीपुष्पं—कर्णिकार—पत्रं, काकमाची फलम्—इति त्वक्—पुष्प—पत्र—फल—रूपत्वेन चतुर्विधत्वम् । च० त्रि० ७।९६ ।

२. 'कुष्ठं हरिद्रे सुरसम्पटोलमि'त्यादिकं चरके सूत्रस्थाने ३-८-११

गन्धोपलः सर्जरसो विडङ्गः

मनःशिलाले करवीरकत्वक् ॥ ६७ ॥

तैलाक्तगात्रस्य कृतानि चूर्णा-

न्येतानि दद्यादवचूर्णनार्थम् ।

दद्रुः सकण्डूः किटिभानि पामा

विचर्चिका चेति तथा न सन्ति ॥ ६८ ॥

स्नुग्गण्डे सर्षपात्कल्कः कुकूलानलपाचितः ।

लेपाद्विचर्चिकां हन्ति ^१रागवेग इव त्रपाम् ॥ ६९ ॥

मनःशिलाले मरिचानि तैल-

मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।

तथा करञ्जप्रपुनाटबीजं

कुष्ठान्वितं गोसलिलेन ^२पिष्टम् ॥ ७० ॥

गुग्गुलुमरिचविडङ्गैः सर्षपकासीससर्जरसमुस्तैः ।

श्रीवेष्टकालगन्धैर्मनःशिलाकुष्ठकम्पिलैः ॥ ७१ ॥

उभयहरिद्रासहितैश्चाक्रिकतैलेन मिश्रितैरेभिः ।

दिनकरकराभितप्तैः कुष्ठं घृष्टं च नष्टं च ॥ ७२ ॥

मरिचं तमालपत्रं कुष्ठं समनःशिलं सकासीसम् ।

तैलेन युक्तमुषितं सप्ताहं भाजने ताम्रे ॥ ७३ ॥

तेनालिप्तं सिध्मं सप्ताहाद्धर्मसेविनोऽपैति ।

मासान्नवं किलासं स्नानेन विना विशुद्धस्य ॥ ७४ ॥

मयूरकचारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते ।

सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गात्सिध्मनाशनम् ॥ ७५ ॥

वायसजङ्घामूलं वमनीपत्राणि मूलकाढीजम् ।

तक्रेण भौमचारे लेपः सिध्मापहः सिद्धः ॥ ७६ ॥

जीवन्ती मञ्जिष्ठा दार्वा कम्पिल्लकं पयस्तुथम् ।

एष घृततैलपाकः सिद्धः सिद्धे च सर्जरसः ॥ ७७ ॥

देयः समधूच्छिष्टो विपादिका तेन नश्यति ह्यक्ता ।

चर्मैककुष्ठकिटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलसकं च ॥ ७८ ॥

मूलं ^१सप्ताह्वात्त्वक्शिरापाश्वमाराद्-

अर्कान्मालत्याश्चित्रकास्फोटनिम्बात् ।

बीजं कारञ्जं सार्पपं प्रापुनाटं

श्रेष्ठा जन्तुधनं द्यूषणं द्वे हरिद्रे ॥ ७९ ॥

^२तैलं तैलं साधितं तैः समूत्रै-

स्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम् ।

अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्भवानां

नाशायालं 'वज्रकं' वज्रतुल्यम् ॥ ८० ॥

एरण्डतार्च्यघननीपकदम्बभार्ङ्गी

^३कम्पिल्लवेल्हफलिनीसुरवारुणीभिः ।

१. सप्तपर्णस्य मूलं, शिराषकरवीरादीनां त्वक्, करञ्ज-सर्पप-
चक्रमर्दानां बीजम्-श्रेष्ठा = वरा = त्रिफला, जन्तुधनं = विडङ्गम्,
द्यूषणं = त्रिकटु, द्वे हरिद्रे = दारुहरिद्रा हरिद्रा चेति ।

२. तैलं = तिलभवम्, तैलं = स्नेहः ।

३. कम्पिल्लः = विडङ्गफलस्य बाह्यो भागः—त्वक्—पिष्टातको-
भयरूपः (कमीला) इति प्रसिद्धः ।

निर्गुण्ड्यरूपकरसुराहसुवर्णदुग्धा

^१श्रीवेष्टगुगुलुशिलापटुतालविश्वैः ॥ ८१ ॥

तुल्यस्नुगर्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं 'महावज्रम्' ।

अतिशयितवज्रगुणं शिवत्राशोऽग्रन्थिमालाघनम् ॥ ८२ ॥

कुष्ठाश्वमारभृङ्गार्कमूत्रस्नुक्क्षीरसैन्धवैः ।

तैलं सिद्धं विषावापमभ्यङ्गात्कुष्ठजित्परम् ॥ ८३ ॥

कच्छं विचर्चिकां चाऽऽशु कटुतैलं नियच्छति ॥ ८४ ॥

लाक्षा व्योषं प्रापुनाटं च बीजं

सश्रीवेष्टं कुष्ठसिद्धार्थकाश्च ।

तक्रोन्मिश्रः स्याद्भरिद्रा च लेपो

दद्रूषूक्तो मूलकोत्थं च बीजम् ॥ ८५ ॥

चित्रकशोभाञ्जनकौ गुडूच्यपामार्गदेवदारूणि ।

खदिरो धवश्च लेपः श्यामा दन्ती द्रवन्ती च ॥ ८६ ॥

लाक्षारसाञ्जनैलाः पुनर्नवा चेति कुष्ठिनां लेपाः ।

दधिमण्डयुताः पादैः षट् प्रोक्ता मारुतकफघ्नाः ॥ ८७ ॥

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनमृणालानि ।

भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे ॥ ८८ ॥

तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यङ्गो दह्यमानकुष्ठेषु ।

तैलैश्चन्दनमधुकप्रपौण्डरीकोत्पलयुतैश्च ॥ ८९ ॥

क्लेदे प्रपतति चाङ्गे दाहे विस्फोटके च चर्मदले ।

शीताः प्रदेहसेका ब्यधनविरेकौ घृतं तिक्तम् ॥ ९० ॥

खदिर-वृष-निम्ब-कुटजाः

श्रेष्ठा कृमिजित्पिटोलमधुपर्ण्यः ।

अन्तर्बहिः प्रयुक्ताः

कृमिकुष्ठनुदः सगोमूत्राः ॥ ९१ ॥

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुण्ठेषु ।

पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्रथम् ॥ ९२ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्हृतास्त्रदोषाणाम् ।

संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ९३ ॥

दोषे हतेऽपनीते रक्ते बाह्यान्तरे कृते शमने ।

स्नेहे च कालयुक्ते न कुष्ठमतिवर्तते साध्यम् ॥ ९४ ॥

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।

दोषे ह्यतिमात्रहते वायुर्हान्यादबलमाशु ॥ ९५ ॥

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेया-

न्मासान्मासाच्छोधनान्यप्यधस्तात् ।

शुद्धिर्मूर्ध्नि स्यान्निरात्रान्निरात्रात्

षष्ठे षष्ठे मास्यसृङ्मोक्षणं च ॥ ९६ ॥

यो दुर्वान्तो दुर्विरिक्तोऽथवा स्यात्

कुष्ठी दोषैरुद्धतैर्व्याप्यतेऽसौ ।

निःसन्देहं आस्यसाध्यत्वमेवं

तस्मात्कृत्स्नास्त्रिहरेदस्य दोषान् ॥ ९७ ॥

^१व्रत-दम-यम-सेवा-त्यागशीलाभियोगो

१. दैवव्यपाश्रयं चिकित्सितमाह-व्रतेत्यादिना । इति ।

द्विज-सुर-गुरु-पूजा सर्वसत्त्वेषु मैत्री ।
शिव-शिवसुत-तारा-भास्कराऽऽराधनानि
प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयन्ति ॥ १८ ॥
इति चिकित्सास्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ।



विंशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः शिवत्रकृमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ^२ ।

अथ श्वित्ररोगचिकित्सितम्—

‘कुष्ठादपि बीभत्सं यच्छ्रीघ्रतरं च यात्यसाध्यत्वम् ।
श्वित्रम् , अतस्तच्छ्रान्त्यै यतेत भवने यथा दीप्ते ॥ १ ॥
संशोधनं विशेषात्प्रयोजयेत्पूर्वमेव देहस्य ।
श्वित्रे स्नंसनमग्रथं ^३मलयूरस इष्यते सगुडः ॥ २ ॥
तं पीत्वाऽभ्यक्ततनुर्यथाबलं सूर्यपादसन्तापम् ।
सेवेत विरिक्ततनुस्वहं पिपासुः पिबेत्पेयाम् ॥ ३ ॥
श्वित्रेऽङ्गे ये स्फोटा जायन्ते कण्टकेन तान् भिन्द्यात् ।

१. अथ = कुष्ठचिकित्सानन्तरं यतस्ततोऽपि बीभत्सतराणां श्वित्रा-
दीनां साजात्यात् स्मृतिः—अतस्तच्चिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

२. चरके चिकित्सास्थाने सप्तमाध्याये । १६२ । आरभ्य ।

३. मलयूः = मलयूः = जघनेफला-तस्याः फलस्य वल्कलस्य च
रसः सपुराणगुडः, अग्रथं प्रथमप्रयोगार्द्धं, स्नंसनं = विरेचनम् ।

स्फोटेषु निस्त्रुतेषु तु प्रातः प्रातः पिबेत् त्रिदिनम् ॥ ४ ॥

मलयूमसनं प्रियङ्गुं शतपुष्पां चाम्भसा समुत्काथ्य ।

पालाशं वा क्षारं यथाबलं फाणितोपेतम् ॥ ५ ॥

^१फलवत्तृत्तृ-वलकलनिर्यूहेणेन्दुराजिका-कल्कम् ।

पीत्वोष्णस्थितस्य जाते स्फाटे तत्रेण भोजनं निर्लवणम् ॥

गव्यं मूत्रं चित्रक-व्योषयुक्तं

सर्पिःकुम्भे स्थापितं क्षौद्रमिश्रम् ।

पक्षादूर्ध्वं शिवत्रिभिः पेयमेतत्

कार्यं चास्मै कुष्ठदिष्ट विधानम् ॥ ७ ॥

मार्कवमथवा खादेद् भृष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम् ।

बीजकशृतं च दुग्धं तदनुपिबेच्छ्वित्रनाशाय ॥ ८ ॥

पूतीकाऽर्क-व्याधिघात-स्नुहीनां

मूत्रे पिष्टाः पञ्चवा जातिजाश्च ।

घनन्यालेपाच्छ्वित्रदुर्नामदद्रु-

पामाकोठान् दुष्टनाडीव्रणांश्च ॥ ९ ॥

द्वैपं दग्धं चर्म मातङ्गजं वा

श्वित्रे लेपस्तैलयुक्तो वरिष्ठः ।

पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन

क्षारेणाक्तः श्वित्रमेकोऽपि हन्ति ॥ १० ॥

रात्रौ गोमूत्रे वासितान् जर्जराङ्गान्-

अह्नि च्छायायां शोषयेत्स्फोटहेतून्^२ ।

१. फल्गुः = जघनेफला, अक्षवृक्षः = निर्मातकवृक्षः, इन्दुराजिः = बाकुची । २. स्फोटहेतून् = भरलातकान् ।

एवं वारांस्त्रीस्तैस्ततः श्लक्ष्णपिष्टैः

स्नुह्याः क्षीरेण शिवत्रनाशाय लेपः ॥ ११ ॥

अक्षतैलकृतो लेपः कृष्णसर्पोद्भवा मषी ।

शिखिपित्तं तथा दग्धं ह्रीबेरं वा तदाप्लुतम् ॥ १२ ॥

कुडवोऽवल्गुजबीजाद्वरितालचतुर्थभागसम्मिश्रः ।

मूत्रेण गवां पिष्टः 'सवर्णकरणं' परं शिवत्रे ॥ १३ ॥

क्षारे सुदग्धे गजलिण्डजे^१ च,

गजस्य मूत्रेण परिस्रुते च ।

द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं

दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजानाम् ॥ १४ ॥

शिवत्रं जयेच्छिक्कणतां गतेन

तेन प्रलिम्पन्बहुशः प्रघृष्टम् ।

कुण्ठं मषं वा तिलकालकं वा

यद्वा व्रणे स्यादधिमांसजातम् ॥ १५ ॥

भस्मातकद्दीपि^२ सुधार्कमूलं

गुञ्जाफलत्र्यूषणशङ्खचूर्णम् ।

तुस्थं सकुण्ठं लवणानि पञ्च

क्षारद्वयं लाङ्गलिकां च पक्त्वा ॥ १६ ॥

स्नुगर्कदुग्धे घनमायसरथं शलाकया तद्विदधीत लेपम् ।

कुष्ठे किलासे तिलकालकेषु मषेषु दुर्नामसु चर्मकीले ॥ १७ ॥

शुद्धया शोणितमोक्षैर्विरुक्षणेर्भक्षणेश्च सक्तूनाम् ।

१. गजलिण्डजे = हस्तिपुरीषजे ।

२. द्वीपी = व्याघ्रदन्तः । सुधा = स्नुही ।

शिवत्रं ^१कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षीणपापस्य ॥ १८ ॥

अथ कृमिरोगचिकित्सितम् ^२ ।

स्निग्धस्विन्ने गुडक्षीरमत्स्याद्यैः कृमिणोदरे ।

उत्क्लेशितक्रिमिकफे शर्वरीं तां सुखोषिते ॥ १९ ॥

सुरसादिगणं मूत्रे क्वाथयित्वाऽर्धवारिणि ।

तं कषायं कणागालकृमिजित्कल्कयोजितम् ॥ २० ॥

सतैलस्वर्जिकाक्षारं युज्याद्वस्ति, ततोऽहनि ।

तस्मिन्नेव निरूढं तं पाययेत् विरेचनम् ॥ २१ ॥

त्रिवृत्कल्कं फलकणाकषायाऽऽलोडितं ततः ।

ऊर्ध्वाधः शोधिते कुर्यात्पञ्चकोलयुतं क्रमम् ॥ २२ ॥

कटुतिक्तकषायाणां कषायैः परिपेचनम् ।

काले विडङ्गतैलेन ततस्तमनुवासयेत् ॥ २३ ॥

शिरोरोगनिषेधोक्तमाचरे 'न्मूर्धगेष्वनु' ।

उद्रिक्ततिक्तकटुकमल्पस्नेहं च भोजनम् ॥ २४ ॥

विडङ्गकृष्णामरिच-पिप्पलीमूलशिग्रुभिः ।

पिबेत्सस्वर्जिकाक्षारां यवागूं तक्रसाधिताम् ॥ २५ ॥

रसं शिरीषकिणिही-पारिभद्रक-केम्बुकात् ।

पलाशबीजपत्तूर-पूतीकाद्वा पृथक् पिबेत् ॥ २६ ॥

सक्षौद्रं सुरसादीन्वा लिह्यात्क्षौद्रयुतान् पृथक् ।

१. कस्यचिदेवेत्यवधारणेन—सन्दिग्धसाध्यत्वं दर्शितम्, तदेव स्पष्टीकृतं क्षीणपापस्येति ।

२. आदितः सर्वकृमीणामपकर्षणं कार्यं, ततः प्रकृतिविषदतः, अनन्तरं निदानोक्तानां भावानामनुपसेवनम् । च०विमानस्थाने ७।१४

शतकृत्वोऽश्वविट्चूर्णं विडङ्गकाथभावितम् ॥ २७ ॥
 कृमिमान्मधुना लिह्याद्भावितं वा वरा-रसैः ।
 'शिरोगतेषु' कृमिषु चूर्णं प्रधमनं च तत् ॥ २८ ॥
 आखुपर्णीकिसलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।
 पक्त्वा पूपलिकां खादेद् धान्याऽलं च पिबेदनु ॥ २९ ॥
 सपञ्चकोललवणमसान्द्रं तक्रमेव वा ।
 नीपमार्कवनिर्गुण्डी-पल्लवेष्वप्ययं विधिः ॥ ३० ॥
 विडङ्गचूर्णमिश्रैर्वा पिष्टैर्भक्ष्यान् प्रकल्पयेत् ।
 विडङ्गतण्डुलैर्युक्तमर्धशैरातपस्थितम् ॥ ३१ ॥
 दिनमारुष्करं तैलं पाने बस्तौ च योजयेत् ।
 सुराहसरलस्नेहं पृथगेवं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥
 'पुरीषजेषु' सुतरां दद्याद्वस्तिविरेचने ।
 शिरोविरेकं वमनं शमनं 'कफजन्मसु' ॥ ३३ ॥
 'रक्तजानां' प्रतीकारं कुर्यात्कुष्ठचिकित्सितात् ।
 इन्द्रलुप्तविधिश्चात्र विधेयो 'रोमभोजिषु' ॥ ३४ ॥
 क्षीराणि मांसानि घृतं गुडं च
 दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।
 समासतोऽम्लान्मधुरान् रसांश्च
 कृमीन् जिहासुः परिवर्जयेच्च^१ ॥ ३५ ॥
 इति चिकित्सास्थाने विंशोऽध्यायः ।

१. न केवलमुपक्रमानेव कुर्यात् किन्तु-वर्ज्यान्—अपि परि-
 वर्जयेदिति क्रियासमुच्चायकश्चकारः । इति ।

एकविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः^१ ।

‘केवलं निरुपस्तम्भमादौ स्नेहैरुपाचरेत् ।

वायुं, सर्पिर्वसामज्ज^२ तैलपानैर्नरं ततः ॥ १ ॥

स्नेहाक्रान्तं समाश्वास्य पयोभिः स्नेहयेत्पुनः ।

यूषैर्ग्राभ्यौदकानूप-रसैर्वा स्नेहसंयुतैः ॥ २ ॥

पायसैः कृशरैः साम्ललवणैः सानुवासनैः ।

वातघ्नैस्तर्पणैश्चान्नैः सुस्निग्धैः स्नेहयेत्ततः^३ ॥ ३ ॥

स्वभ्यक्तं स्नेहसंयुक्तैः सङ्कराद्यैः पुनः पुनः ।

स्नेहाक्तं स्विन्नमङ्गं तु चक्रं स्तब्धं सवेदनम् ॥ ४ ॥

यथेष्टमानमयितुं सुखमेव हि शक्यते ।

शुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः ॥ ५ ॥

^३शक्यं कर्मण्यतां नेतुं किमु गात्राणि जीवताम् ।

हर्षतोदरुगायामशोफस्तम्भग्रहादयः ॥ ६ ॥

स्विन्नस्याशु प्रशाभ्यन्ति मार्दवं चोपजायते ।

स्नेहश्च धातून् संशुष्कान् पुष्णात्याशु प्रयोजितः ॥ ७ ॥

बलमग्निबलं पुष्टिं प्राणं चाऽस्याभिवर्धयेत् ।

१. चरके चि० २८।७५

२. मज्जन्-शब्दो नान्तः पुल्लिङ्गः राजन् प्रातिपदिकवत्-
मज्जा मज्जानौ मज्जानः । शसि मज्जन् । अल्लोपोऽनः ।

३. शक्यं = शक्यानि, ‘विशेष्यान्वयाऽविवक्षायामेकत्वम्’

असकृत् पुनः स्नेहैः स्वेदैश्च प्रतिपादयेत् ॥ ८ ॥
 तथा स्नेहमृदौ कोष्ठे न तिष्ठन्त्यनिलामयाः ।
 यद्येतेन सदोषत्वात्कर्मणा न प्रशाम्यति ॥ ९ ॥
 मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्भेषजैस्तं विशोधयेत् ।
 घृतं तिल्वकसिद्धं वा सातलासिद्धमेव वा ॥ १० ॥
^१पयसैरण्डतैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम् ।
 जिग्धामल्लवणोष्णाद्यैराहारैर्हि मलश्चितः ॥ ११ ॥
 स्रोतो रुद्ध्वाऽनिलं रुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ।
 दुर्बलो योऽविरेच्यः स्यात्तं निरुहैरुपाचरेत् ॥ १२ ॥
 दीपनैः पाचनीयैर्वा भोज्यैर्वा तद्युतैर्नरम् ।
 संशुद्धस्योत्थिते चाऽग्नौ स्नेहस्वेदौ पुनर्हितौ ॥ १३ ॥
 'आमाशयगते' वायौ वमितप्रतिभोजिते ।
 सुखाम्बुना षड्धरणं ^२ वचादिं वा प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥
 सन्धुचितेऽग्नौ परतो विधिः केवलवातिकः ।
 मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थे सिद्धान् बिल्वशलाटुभिः ^३ ॥ १५ ॥
 बस्तिकर्म त्वधोनाभेः शस्यते चाऽवपीडकः ।
 'कोष्ठगे' क्षारचूर्णाद्या हिताः पाचनदीपनाः ॥ १६ ॥
 'हृत्स्थे' पयः स्थिरासिद्धम् ॥ शिरोबस्तिः 'शिरोगते' ।

१. पयसा = गोदुग्धेन ।

२. दावीं-कलिङ्ग-कटुकाऽतिविषाऽग्निपाठाः, मूत्रेण सूक्ष्मरजसा
 धरणप्रमाणाः, पीता जयन्ति-इति-संग्रहे । पलस्य दशमौ भागः-
 धरणसंज्ञः । ३. आमे फले शलाटुः स्यात् ।

स्नेहिकं नावनं धूमः श्रोत्रादीनां च तर्पणम् ॥ १७ ॥
 स्वेदाभ्यङ्गानि शस्तानि हृद्यं चान्नं 'त्वगाश्रिते' ।
 शीताः प्रदेहा 'रक्तस्थे' विरेको 'रक्तमोक्षणम्' ॥ १८ ॥
 विरेको 'मांसमेदःस्थे' निरूहाः शमनानि च ।
 बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्ज-गतं जयेत् ॥ १९ ॥
 प्रहर्षोऽन्नं च 'शुक्रस्थे' बलशुक्रकरं हितम् ।
 विबद्धमार्गं पृष्ठा तु शुक्रं दद्याद्विरेचनम् ॥ २० ॥
 विरिक्तं प्रतिभुक्तं च पूर्वोक्तां कारयेत्क्रियाम् ।
 'गर्भे' शुष्के तु वातेन बालानां च विशुष्यताम् ॥ २१ ॥
 सिताकाशमर्यमधुकैः सिद्धमुत्थापने पयः ।
 'स्त्रावसन्धिसिराप्राप्ते' स्नेहदाहोपनाहनम् ॥ २२ ॥
 तैलं 'सङ्कुचितेऽभ्यङ्गे' मापसैन्धवसाधितम् ।
 आगारधूमलवणतैलैर्लेपः सुतेऽसृजि' ॥ २३ ॥
 सुप्तेऽङ्गे वेष्टयुक्ते तु कर्तव्यमुपनाहनम् ।
 अथाऽपतानकेनाऽऽर्तमस्त्रस्ताक्षमवेपनम् ॥ २४ ॥
 अस्तब्धमेढ्रमस्वेदं बहिरायामवर्जितम् ।
 अखट्वाघातिनं चैनं त्वरितं समुपाचरेत् ॥ २५ ॥
^१तत्र प्रागेव सुस्निग्धस्विच्चाङ्गे तीक्ष्णनावनम् ।
 स्रोतोविशुद्धये युञ्ज्यादच्छपानं ततो घृतम् ॥ २६ ॥
 विदार्यादिगणकाथ-दधिहीररसैः शृतम् ।
 नाऽतिमात्रं तथा वायुर्व्याप्नोति सहस्रैव वा ॥ २७ ॥
 कुलत्थयवकोलानि भद्रदार्वादिकं गणम् ।

निःक्वाथ्यानूपमांसं च तेनाम्लैः पयसाऽपि च ॥ २८ ॥

स्वादुस्कन्धप्रतीवापं 'महास्नेहं' विपाचयेत् ।

सेकाभ्यङ्गावगाहान्न-पाननस्यानुवासनैः ॥ २९ ॥

स हन्ति वातं ते ते च 'स्नेहस्वेदाः' सुयोजिताः ।

वेगान्तरेषु मूर्धानमसकृच्चास्य रेचयेत् ॥ ३० ॥

अवपीडैः प्रधमनैस्तीक्ष्णैः श्लेष्मनिबर्हणैः ।

^१श्वसनासु विमुक्तासु तथा संज्ञां स विन्दति ॥

सौवर्चलाभयान्योषसिद्धं सर्पिश्रलेऽधिके ॥ ३१ ॥

पलाष्टकं तिल्वकतो, वरायाः प्रस्थं, पलाशं गुरुपञ्चमूलम् ।

सैरण्डसिंहीत्रिवृतं घटेऽपां पक्त्वा पचेत्पादशृतेन तेन ॥ ३२ ॥

दध्नः पात्रे यावश्शूकात्त्रिबिल्वैः

सर्पिःप्रस्थं हन्ति तत्सेव्यमानम् ।

दुष्टान्वातानेकसर्वाङ्गसंस्थान्

योनिव्यापद्-गुल्मबध्मोदरं च ॥ ३३ ॥

विधिस्तिल्वकवज्जेयो ^२शम्पाकाऽशोकयोरपि ।

चिकित्सितमिदं कुर्याच्छुद्धवाताऽपतानके ^३ ॥ ३४ ॥

संसृष्टदोषे संसृष्टं चूर्णयित्वा कफान्विते ।

तुम्बुरुण्यभयाहिङ्गुपौष्करं लवणत्रयन् ॥ ३५ ॥

यवक्वाथाम्बुना पेयं हृत्पार्श्वार्त्यपतन्त्रके ।

१. हृदयाऽऽश्रिताः प्राणवहा नाड्यः 'श्वसनाः' कथ्यन्ते, तासु विमुक्तासु = कफरहितासु । २. शम्पाकश्चतुरङ्गुलः ।

३. अपतानक-नीमीलकाऽपतन्त्रकाः हृदय-रोगाः च० सिद्धि-स्थाने, ९।१२-१५ पर्यन्तं द्रष्टव्याः ।

हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठीं दाडिमं साम्लवेतसम् ॥ २६ ॥
 पिबेद्वा श्लेष्मपवनहृद्रोगोक्तं च शस्यते ।
 आयामयोरर्दितवद्वाह्याभ्यन्तरयोः क्रिया ॥ ३७ ॥
 तैलद्रोण्यां च शयनमान्तरोऽत्र सुदुस्तरः ।
 विवर्णदन्तवदनः स्रस्ताङ्गो नष्टचेतनः ॥ ३८ ॥
 प्रस्विद्यंश्च धनुःस्तम्भी दशरात्रं न जीवति ।
 वेगेष्वतोऽन्यथा जीवेन्मन्देषु विनतो जडः ॥ ३९ ॥
 खञ्जः कुणिः पक्षहतः पङ्गुलो विकलोऽथवा ।
 'हनूस्त्रंसे' हनू स्निग्धस्विन्नौ स्वस्थानमानयेत् ॥ ४० ॥
 उन्नामयेच्च कुशलश्चिबुकं 'विवृते मुखे' ।
 नामयेत्संवृते शेषमेकायामवदाचरेत् ॥ ४१ ॥
 'जिह्वास्तम्भे' यथावस्थं, कार्यं वातचिकित्सितम् ।
 'अर्दिते' नावनं मूर्ध्नि तैलं श्रोत्राक्षितर्पणम् ॥ ४२ ॥
 'संशोफे' वमनं दाहरागयुक्ते सिरान्यधः ।
 स्नेहनं स्नेहसंयुक्तं 'पक्षाघाते' विरेचनम् ॥ ४३ ॥
 'अवबाहौ' हितं नस्यं स्नेहश्चोत्तरभक्तिकः ।

ऊरुस्तम्भचि० ।

'ऊरुस्तम्भे' न च स्नेहो न च संशोधनं हितम् ॥ ४४ ॥
 श्लेष्माममेदोबाहुल्याद्युक्त्या तत्क्षपणान्यतः ।
 कुर्याद् , रूक्षोपचारश्च यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ४५ ॥
 शाकैरलवणैः शस्ताः, किञ्चित्तैलैर्जलैः शृतैः ।
 जाङ्गलैरघृतैर्मासैर्मध्वम्भोऽरिष्टपायिनः ॥ ४६ ॥
 वस्सकादिह्रिद्रादिर्वचादिर्वा ससैन्धवः ।

‘आमवाते’ सुखाम्भोभिः पेयः षड्धरणोऽथवा ॥ ४७ ॥
 लिह्यात्क्षौद्रेण वा ^१श्रेष्ठा-चक्ष्य-तिक्ता-कणा-घनान् ।
 कल्कं समधु वा चक्ष्य-पथ्याऽग्निसुरदारुजम् ॥ ४८ ॥
 मूत्रैर्वा शीलयेत्पथ्यां गुग्गुलुं गिरिसम्भवम् ।
 व्योषाग्निमुस्तत्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ॥ ४९ ॥
 खादन् सर्वान् जयेद्व्याधीन् मेदः श्लेष्माऽऽमवातजान् ।
 शाम्यत्येवं कफाक्रान्तः समेदस्कः प्रभञ्जनः ^२ ॥ ५० ॥
 चारमूत्रान्वितान् स्वेदान् सेकानुद्वर्तनानि च ।
 कुर्याद् दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करब्जफलसर्षपैः ॥ ५१ ॥
 मूलैर्वाऽप्यर्कतर्कारी-निम्बजैः ससुराद्ध्यैः ।
 सक्षौद्रसर्षपाऽपक्व-लोष्टवल्मीकमृत्तिकैः ॥ ५२ ॥
 कफक्षयार्थं व्यायामे ^३सह्ये चनं प्रवर्तयेत् ।
 स्थलान्युल्लङ्घयेन्नारीः शक्तितः परिशीलयेत् ॥ ५३ ॥
 स्थिरतोयं सरः क्षेमं प्रतिद्योतो नदीं तरेत् ।
 श्लेष्ममेदःक्षये चाऽत्र स्नेहादीनवचारयेत् ॥ ५४ ॥
 स्थानदूष्यादि वाऽऽलोच्य कार्या ‘शेषेष्वपि’ ^४क्रिया ।
 सहचरं सुरदारु सनागरं
 कथितमम्भसि तैलविमिश्रितम् ।
 पवनपीडितदेहगतिं पिबेद्
 द्रुतविलम्बितगो भवतीच्छ्रया ॥ ५५ ॥

-
१. श्रेष्ठा = त्रिफला । २. प्रभञ्जनः = वातः ।
 ३. सह्ये = सोढुं शक्ये, एतम् = ऊरुस्तम्भवन्तम् ।
 ४. शेषेष्वपि = अवशिष्टेषु वातव्याधिषु ।

रास्ना-महौषध द्वीपिपिप्पली-शठि-पौष्करम् ।
 पिप्पु विपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरं परम् ॥ ५६ ॥
 निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
 भागान् पृथग्दश पलान् विपचेद्द्वटेऽपाम् ।
 अष्टाङ्गशेषितरसेन पुनश्च तेन
 प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ५७ ॥
 पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या
 द्विचारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
 तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाम्नि
 रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ ५८ ॥
 मन्जिष्ठयाऽतिविषया विषया यवान्या
 संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ।
 तत्सेवितं प्रथमति प्रबलं समीरं
 सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ ५९ ॥
 नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला-
 जत्रूर्ध्वसर्वगदगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
 यक्ष्माऽरुचिश्चसनपीनसकासशोफ-
 हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ ६० ॥
 बलाबिल्वशृते क्षीरे घृतमण्डं विपाचयेत् ।
 तस्य शुक्तिः प्रकुञ्चो वा नस्यं वाते 'शिरोगते' ॥ ६१ ॥
 तद्वस्त्रिद्धा वसा नक्रमस्यकूर्मचुलकजा ।
 विशेषेण प्रयोक्तव्या केवले मातरिश्चनि^१ ॥ ६२ ॥

१. मातरि = दिवि इवयति = चलति-इति मातरिश्वा = सदा-

जीर्णं पिण्याकं पञ्चमूलं पृथक् च
 काथ्यं काथाभ्यामेकतस्तैलमाभ्याम् ।
 क्षीरादष्टांशं पाचयेत्तेन पानाद्
 वाता नश्येयुः श्लेष्मयुक्ता विशेषात्^१ ॥ ६३ ॥

प्रसारिणीतुलाकाथे तैलप्रस्थं पयःसमम् ।
 द्विमेदामिशिमञ्जिष्ठा-कुष्ठरास्नाकुचन्दनैः ॥ ६४ ॥
 जीवकर्षभकाकोली-युगलाऽमरदारुभिः ।
 कल्कितैर्विपचेत्सर्वमारुतामयनाशनम् ॥ ६५ ॥
 समूलशाखस्य सहाचरस्य तुलां समेतां दशमूलतश्च ।
 पलानि पञ्चाशदभीरुतश्च पादावशेषं विपचेद्बहेऽपाम् ॥ ६६ ॥

तत्र सेव्यनखकुण्ठहिमैला-
 स्पृक्प्रियङ्गुनलिकाऽम्बुशिलाजैः ।

लोहिता-नलद-लोहसुराह्वः
 कोपना-मिसि-तुरुष्क नत^२ ॥ ६७ ॥

तुल्यं क्षीरं पालिकैस्तैलपात्रं
 सिद्धं कृच्छ्रान् शीलितं हन्ति वातान् ।

कम्पाक्षेपस्तम्भशोपादियुक्तान्
 गुल्मोन्मादौ पीनसं योनिरोगान् ॥ ६८ ॥

सहाचरतुलावास्तु रसे तैलाढकं पचेत् ।
 मूलकल्काद्दशपलं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥
 अथवा नत-षड्ग्रन्था-स्थिरा-कुष्ठ-सुराह्वयान् ।

गतिः, 'तत्पुरुषे कृति बहुलम्' इति सप्तम्या अलुक् ।

१. वैश्वदेवी वृत्तम् ।

सैलानलदशैलेय-शताहारक्तचन्दनान् ॥ ७० ॥
 सिद्धेऽस्मिन् शर्कराचूर्णादिष्टादशपलं त्रिपेत् ।
 भेडस्य^१ सम्मतं तैलं तत्कृच्छ्राननिलामयान् ॥ ७१ ॥
 वातकुण्डलिकोन्माद-गुल्मबध्मादिकान् जयेत् ।
 बलाशतं^२ छिन्नरुहा-पादं रास्नाष्टभागिकम् ॥ ७२ ॥
 जलाढकशते पक्त्वा शतभागस्थिते रसे ।
 दधिमस्तिवचुनिर्यासशुक्तस्तैलाढकं समैः ॥ ७३ ॥
 पचेत्साजपयोर्धौशैः कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।
 शठीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः ॥ ७४ ॥
 पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णीहरेणुभिः ।
 यष्ट्याहसुरसःत्र्याघ्र-नखर्षभकजीवकैः ॥ ७५ ॥
 पलाशरसकस्तूरी-नीलिकाजातिकोशकैः ।
 स्पृक्काकुङ्कुमशैलेय-जातिका-कट्फलाम्बुभिः ॥ ७६ ॥
 त्वक्कुन्दरुक्-कर्पूर-तुरुष्कश्रीनिवासकैः ।
 लवङ्गनखकङ्कोल-कुष्ठमांसीप्रियङ्गुभिः ॥ ७७ ॥
 स्थौणेयतगरध्याम-वचामदनकप्लवैः ।
 सनागकेसरैः सिद्धे दद्याच्चाऽत्रावतारिते ॥ ७८ ॥
 पत्रकल्कं ततः पूतं विधिना तत्प्रयोजितम् ।
 कासश्वासज्वरच्छर्दि-मूच्छर्द्दिगुल्मक्षतक्षयान् ॥ ७९ ॥
 प्लीहशोषमपस्मारमलक्ष्मीं च प्रणाशयेत् ।
 'बलातैलमिदं' श्रेष्ठं वातव्याधिविनाशनम् ॥ ८० ॥

१. अग्निवेशश्च भेडश्च जतूकर्णः पराशरः । हारीतः क्षारपा-
 पाणिश्च 'संहिताकारका इमे' । २. छिन्नरुहा = गुडूची ।

पाने नस्येऽन्वासनेऽभ्यञ्जने च

^१स्नेहाः काले सम्यगोते प्रयुक्ताः ।

दुष्टान्वातानाशु शान्तिं नयेयु-

र्बन्ध्या नारीः पुत्रभाजश्च कुर्युः ॥ ८१ ॥

स्नेहस्वेदैर्द्रुतः श्लेष्मा यदा पक्काशये स्थितः ।

पित्तं वा दर्शयेद्रूपं बस्तिभिस्तं विनिर्जयेत् ॥ ८२ ॥

इति चिकित्सास्थाने एकविंशोऽध्यायः ।



द्वाविंशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः^३ ॥

‘वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो^४ हरेत् ।

अल्पाल्पं पालयन् वायुं यथादोषं यथाबलम् ॥ १ ॥

स्मृ-राग-तोद-दाहेषु जलौकोभिर्विनिर्हरेत् ।

१. स्नेहाः = पूर्वोक्ता घृततैलादयः ।

२. अथ = वातव्याधिचिकित्सानिरूपणानन्तरं यतः स्मृतिविष-
यीभूतो वातशोणितारख्यो रोगः—अतस्तच्चिकित्सितं निरूप्यते ।

३. चरके चि० २९ तमेऽध्याये ।

४. बहुशः = यावद् विकृतं तावत्, तच्च-हस्ते पादे वा यत्र
प्रधानतया कृतस्थानं तत्र—एव-रक्तमोक्षणविध्यनुसारात्—सार्द्धत्र-
योदशपलादधिकन्तु रक्तमोचनं कदापि न कार्यम्, व्याप्त-प्रसङ्गात् ।

शृङ्गतुम्बैश्चिमिचिमाकण्डूरुगदूयनान्वितम् ॥ २ ॥
 प्रच्छानेन सिराभिर्वा देशाद्देशान्तरं व्रजेत् ।
 अङ्गम्लानौ तु न स्वाव्यं रूक्षं वातोत्तरं च यत् ॥ ३ ॥
 गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पस्नायुसिरामयान् ।
 ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ ४ ॥
 'विरेच्यः' स्नेहयित्वा तु स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ।
 'वातोत्तरे' वातरक्ते पुराणं पाययेद्घृतम् ॥ ५ ॥
 श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिणीजीवकैः समः ।
 सिद्धं सर्षपकैः सर्पिः सक्षीरं 'वातरक्तनुत्' ॥ ६ ॥
 द्राक्षामधूकवारिभ्यां सिद्धं वा ससितोपलम् ।
 घृतं पिबेत्तथा क्षीरं गुडूक्षीस्वरसे शृतम् ॥ ७ ॥
 तैलं पयः शर्करां च पाययेद्वा सुमूर्च्छितम् ।
 बलाशतावरीरास्ना-दशमूलैः सपीलुभिः ॥ ८ ॥
 श्यामैरण्डस्थिराभिश्च वातार्तिघ्नं शृतं पयः ।
 धारोष्णं^१ मूत्रयुक्तं वा क्षीरं दोषानुलोमनम् ॥ ९ ॥
 'पैत्ते' पक्त्वा वरीतिक्तापटोलत्रिफलाऽमृताः ।
 पिबेद्घृतं वा क्षीरं वा स्वादुतिक्तकसाधितम् ॥ १० ॥
 क्षीरेणैरण्डतैलं च प्रयोगेण पिबेन्नरः ।
 बहुदोषो विरेकार्थं जीर्णे क्षीरोदनाशनः ॥ ११ ॥
 कषायमभयानां वा पाययेद्घृतभर्जितम् ।
 क्षीरानुपानं त्रिवृताचूर्णं द्राक्षारसेन वा ॥ १२ ॥

१. मूत्रयुक्तं धारोष्णं क्षीरं वातपित्तकफानामनुकूलताकरम् ।

निर्हरेद्वा मलं तस्य सघृतैः क्षीरवस्तिभिः ।
 नहि वस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ १३ ॥
 विशेषात्पायुपाश्वोरुपर्यास्थिजठरार्तिषु ।
 मुस्तद्राक्षाहरिद्राणां पिबेत्काथं कफोत्त्वणे ॥ १४ ॥
 सक्षौद्रं त्रिफलाया वा ^१गुडूचीं वा यथा तथा ।
 यथाऽर्हन्नेहपीतं च वामितं मृदु रूक्षयेत् ॥ १५ ॥
 त्रिफलादिपिष्टम् ।

त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरीचित्रकं वचाम् ।
 विडङ्गं पिप्पलीमूलं लोमशां वृषकं त्वचम् ॥ १६ ॥
 शृङ्गिं लाङ्गलिकं चव्यं समभागानि पेषयेत् ।
 कल्कैर्लिप्त्वायसीं पात्रीं मध्याह्ने भक्षयेदिदम् ^२ ॥ १७ ॥
 वातास्त्रे सर्वदोषेऽपि परं शूलान्विते हितम् ।
 कोकिलाक्षकनिर्यूहः पीतस्तच्छाकभोजिना ॥ १८ ॥
 कृपाभ्यास इव क्रोधं वातरक्तं नियच्छति ।
 पञ्चमूलस्य धान्या वा रसैर्लेलीतकीं वसाम् ॥ १९ ॥
^३खुडं सुरुढमप्यङ्गे ब्रह्मचारी नियच्छति ।

१. गुडूचीम्=अमृतां पञ्चभिः कषायैररिष्टेनाऽऽसवेन वा केनापि प्रकारेण पिबेत्, दुग्धेन वा मधुना । यकृत्प्लीहशुद्धयर्थं प्रातः घृत-कुमारीरसं हरिद्राचूर्णयुतं पिबेत् तयोरेव रक्तस्य मूलशुद्धौ सर्वशुद्धिः ।

२. इदम्=प्रातरयः पात्रलिप्तं पिष्टं मध्याह्ने भक्षयेत् ।

३. खुड-इति वातरक्तस्य नामान्तरं, सन्धिस्थो वा वातः खुड-इत्युच्यते ।

इत्याभ्यन्तरमुद्दिष्टं कर्म 'बाह्यमतः परम्' ॥ २० ॥
 आरनालाढके तैलं पादसर्जरसं शृतम् ।
 प्रभूते^१ खजितं तोये ज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥ २१ ॥
 समधूच्छिष्टमज्जिण्ठं ससर्जरससारिवम् ।
 पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद् वातरक्तरुजापहम् ॥ २२ ॥
 दशमूलशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् ।
 परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ २३ ॥
 स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वा चतुर्भिः परिषेचयेत् ।
 स्तम्भाऽऽक्षेपकशूलार्तं कोष्णैर्दाहि तु शीतलैः ॥ २४ ॥
 तद्वद्द्रव्याविकच्छागैः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।
 निःकार्थैर्जीवनीयानां पञ्चमूलस्य वा लघोः ॥ २५ ॥
 द्राक्षेक्षुरसमद्यानि दधिमस्त्वभ्लकाञ्जिकम् ।
 सेकार्थं तण्डुलक्षौद्रशर्कराम्भश्च शस्यते ॥ २६ ॥
 प्रियाः प्रियंवदा नार्यश्चन्दनार्द्रकरस्तनाः ।
 स्पर्शशीताः सुखस्पर्शा घ्नन्ति 'दाहं' रुजं क्लमम् ॥ २७ ॥
 सरागे सरुजे दाहे रक्तं हत्वा प्रलेपयेत् ।
 प्रपौण्डरीकमज्जिष्ठा-दार्वाभिधुकचन्दनैः ॥ २८ ॥
 ससितोपलकासेक्षु-मसूरैरकसक्तुभिः ।
 लेपो रुग्दाहवीसर्प-रागशोफनिबर्हणः ॥ २९ ॥
 वातघ्नैः साधितः स्निग्धः कृशरो मुद्गपायसः ।
 तिलसर्षपपिण्डैश्च शूलघ्नमुपनाहनम् ॥ ३० ॥

१. खजितं = मथितं, खज-मन्थे भ्वादिः ।

औदक-प्रसहाऽनूपवेसवाराः सुसंस्कृताः ।
 जीवनीयौषधस्नेह-युक्ताः स्युरूपनाहने ॥ ३१ ॥
 स्तम्भ-तोद-रुगायाम-शोफाऽङ्गग्रहनाशनाः ।
 जीवनीयौषधैः सिद्धाः सपयस्का ^१वसाऽपि वा ॥ ३२ ॥
 घृतं सहचरान्मूलं जीवन्ती च्छागलं पयः ।
 लेपः पिष्ट्वा तिलास्तद्वद् भृष्टाः पयसि निर्वृताः ॥ ३३ ॥
 क्षीरपिष्ट्नुमालेपमेरण्डस्य फलानि वा ।
 कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थं शताह्वां वाऽनिलेऽधिके ॥ ३४ ॥
^२मुस्तक्षारसितापक्वं घृतमभ्यञ्जने हितम् ।
 सिद्धं समधुशुक्तं वा सेकेऽभ्यङ्गे ऋकफोत्तरे ॥ ३५ ॥
 गृहधूमो वचा कुष्ठं शताह्वा रजनीद्वयम् ।
 प्रलेपः शूलनुद्वातरक्ते ऋवातकफोत्तरे ॥ ३६ ॥
 मधुशिग्रोर्हितं तद्वद्बीजं धान्याम्लसंयुतम् ।
 मुहूर्तलिप्तमम्लैश्च सिद्धेद्वातकफोत्तरे ॥ ३७ ॥
 'उत्तानं' लेपनाभ्यङ्गपरिपेकावगाहनैः ।
 विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ ३८ ॥
 'वातश्लेष्मोत्तरे' कोष्णा लेपाद्यास्तत्र शीतलैः ।
 विदाहशोफरुक्कण्डू-विवृद्धिः स्तम्भनाद्भवेत् ॥ ३९ ॥
 'पित्तरक्तोत्तरे' वातरक्ते लेपादयो हिमाः ।
 उष्णैः प्लोषोषरुग्राग-स्वेदावदरणोद्भवैः ॥ ४० ॥

१. वसा = प्रत्यासत्त्या-औदकादीनामेव ।

२. 'मूत्रक्षारसुरा-पक्वमि'ति पाठः ।

मधुयष्ट्यादि तैलम्—

मधुयष्ट्याः पलशतं कषाये पादशेषिते ।

तैलाढकं समक्षीरं पचेत्कल्कैः पलोन्मितैः ॥ ४१ ॥

^१स्थिरा-तामलकी-दूर्वापयस्या-ऽभीरु-चन्दनैः ।

लोह-हंसपदी-मांसी-द्विमेदा-मधुपर्णिभिः ॥ ४२ ॥

काकोली-क्षीरकाकोली शतपुष्पद्विपद्मकैः ।

जीवकर्षभजीवन्ती-त्वक्पत्रनखबालकैः ॥ ४३ ॥

प्रपौण्डरीकमज्जिष्ठा-सारिवैन्द्रीवितुन्नकैः ।

चतुःप्रयोगं ^२वातासृक्पित्तदाहज्वरार्तिनुत् ॥ ४४ ॥

बलातैलम्—

बलाकल्ककषायाभ्यां तैलं क्षीरसमं पचेत् ।

सहस्रशतपाकं तद् वातासृग्वातरोगनुत् ॥ ४५ ॥

रसायनं मुख्यतममिन्द्रियाणां प्रसादनम् ।

जीवनं बृंहणं स्वयं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ४६ ॥

कुपिते मार्गसंरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।

अतिबृद्ध्याऽनिले शस्तं नाऽऽदौ स्नेहनबृंहणम् ॥ ४७ ॥

कृत्वा तत्राढ्यवातोक्तं 'वातशोणितिकं' ततः ।

भेषजं स्नेहनं कुर्याद्यच्च रक्तप्रसादनम् ॥ ४८ ॥

१. स्थिरा = शालिपर्णी, पयस्या = अर्कपुष्पी, अभीरुः—
शतावरी, लोहम् = अगुरु, हंसपदी = त्रिपादी, मधुपर्णी = गुडूची,
ऐन्द्री = विशाला, वितुन्नकं = परिपेलवम्-इत्यरुणः ।

२. चत्वारः प्रयोगाः पान-नस्य-बस्ति-मर्दनरूपा यस्य तत् ।

प्राणादिकोपे ^१युगपद् , यथोद्दिष्टं यथामयम् ।
यथासन्नं च भैषज्यं विकल्प्यं स्याद्यथाबलम् ॥ ४९ ॥
नीते निरामतां 'सामे' स्वेदलङ्घनपाचनैः ।
रूक्षैश्चालेपसेकाद्यैः कुर्यात्केवलवातनुत् ॥ ५० ॥
शोषाऽऽक्षेपण-सङ्कोच-स्तम्भ-स्वपन-कम्पनम् ।
हनुस्त्रंसोऽर्दितं खाब्ज्यं पाङ्गुल्यं खुडवातता ॥ ५१ ॥
सन्धिच्युतिः पक्षवधो मेदोमज्जास्थिगा गदाः ।
एते स्थानस्य गाम्भीर्यात्सिध्येयुर्यत्नतो न वा ॥ ५२ ॥
तस्माज्जयेन्नवानेतान् बलिनो निरुपद्रवान् ।
^२वायौ 'पित्तावृते' शीतामुष्णां च बहुशः क्रियाम् ॥ ५३ ॥
व्यत्यासाद्योजयेत्सर्पिर्जीवनीयं च पाययेत् ।
धन्वमांसं यवाः शालिर्विरेकः क्षीरवान्मृदुः ॥ ५४ ॥
सक्षीरा बस्तयः क्षीरं पञ्चमूलबलाश्रितम् ।
कालेऽनुवासनं तैलं मधुरौषधसाधितम् ॥ ५५ ॥
यष्टीमधुबलातैल-घृतक्षीरैश्च^३ सेचनम् ।
पञ्चमूलकषायेण वारिणा शीतलेन च ॥ ५६ ॥
'कफावृते' यवाञ्चानि जाङ्गला मृगपक्षिणः ।
स्वेदास्तीक्ष्णा निरुहाश्च वमनं सविरेचनम् ॥ ५७ ॥
पुराणसर्पिस्तैलं च तिलसर्षपजं हितम् ।
'संसृष्टे' कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत् ॥ ५८ ॥

१. युगपत् = समकालम् प्राणादीनां पञ्चानां कोपे, यथोद्दिष्टः
वातव्याधिचिकित्सितोक्तम् ।

२. आवृतवातचिकित्सामाह-वायौ पित्तावृते-इत्यादिना ।

कारयेद् 'रक्तसंसृष्टे' वाते शोणितिकीं क्रियाम् ।
 स्वेदाभ्यङ्गरसाः क्षीरं स्नेहो 'मांसावृते' हितः ॥ ५९ ॥
 प्रमेहमेदोवातघ्नम्-'आढ्यवाते' भिषग्जितम् ।
 'महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थे' पूर्वोक्तं 'रेतसावृते' ॥ ६० ॥
 'अन्नावृते' पाचनीयं वमनं दीपनं लघु ।
 'मूत्रावृते' मूत्रलानि स्वेदा उत्तरवस्तयः ॥ ६१ ॥
 एरण्डतैलं 'वर्चःस्थे' वस्तिस्नेहाश्च भेदिनः ।
 कफवाताविरुद्धं यद् यच्च वातानुलोमनम् ॥ ६२ ॥
 'सर्वस्थानावृते' त्वाशु तत्कार्यं मातरिश्चनि ।
 अनभिप्यन्दि च स्निग्धं स्रोतसां शुद्धिकारणम् ॥ ६३ ॥
 पाचना वस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासनाः ।
 प्रसमीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु कायविरेचनम् ॥ ६४ ॥
 रसायनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
 'शिलाह्वस्य' विशेषेण पयसा शुद्धगुग्गुलोः ॥ ६५ ॥
 लेहो वा^१ भार्गवस्तद्वदेकादशसिताशितः ।
 'अपाने त्वावृते' सर्वं दीपनं ग्राहि भेषजम् ॥ ६६ ॥
 वातानुलोमनं कार्यं मूत्राशयविशोधनम् ।
 इति सङ्क्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम् ॥ ६७ ॥
 प्राणादीनां भिषक्कुर्याद् , वितर्क्य स्वयमेव तत् ।

१. महास्नेहः = चतुःस्नेहः = घृत-मज्ज-वसा-तैलैः सिद्धः ।

२. पूर्वोक्तं = वातव्याधौ-शुक्रवातोक्तम् ।

३. शिलाह्वस्य = शिलाजतुनः । ४. भार्गवो लेहः = ज्यवन-
प्राशः ।

‘उदानं’ योजयेद्बुध्वम्-‘अपानं चानुलोमयेत् ॥ ६८ ॥
 ‘समानं’ शमयेद्विद्वान्स्त्रिधा ‘व्यानं’ च योजयेत् ।
 ‘प्राणो’ रक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि तस्स्थितौ देहसंस्थितिः ॥ ६९ ॥
 स्वं स्वं स्थानं नयेदेवं ‘वृतान्’ वातान् विमार्गगान् ।
 सर्वं चावरणं पित्तरक्तसंसर्गवर्जितम् ॥ ७० ॥
 रसायनविधानेन लशुनो हन्ति शीलितः ।
 ‘पित्तावृते’ पित्तहरं मस्तश्चानुलोमनम् ॥ ७१ ॥
 रक्तावृतेऽपि तद्वच्च^१खुडोक्तं यच्च भेषजम् ।
 रक्तपित्तानिलहरं विविधं च रसायनम् ॥ ७२ ॥
^२यथानिदानं निर्दिष्टमिति सम्यक् चिकित्सितम् ।
 आयुर्वेदफलं स्थानमेतत्सद्योऽर्तिनाशनम् ॥ ७३ ॥
^३चिकित्सितं हितं पथ्यं प्रायश्चित्तं भिषग्जितम् ।
 भेषजं शमनं शस्तं पर्यायैः स्मृतमौषधम् ॥ ७४ ॥’
 इति चिकित्सास्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ।
 समाप्तमिदं चिकित्सितं स्थानम् ॥

१. खुडोक्तम् = वातशोणितोक्तम् ।

२. चिकित्सास्थानमुपसंहरति-यथा निदानमिति ।

३. औषधपर्यायानाह-चिकित्सितमित्यादिना ।

इति-श्रीवर्सायत-ग्रामाभिजनवाशीस्थतरादत्तपन्तविरचितायाम्-
 अष्टाङ्गभागीरथ्यां चिकित्सास्थानम् ।

श्री विद्देशः शरणम् ।

अष्टाङ्गहृदयम्



कल्पस्थानम्



प्रथमोऽध्यायः ।

^१अथाऽतो वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

^२‘वमने मदनं श्रेष्ठं त्रिवृन्मूलं विरेचने’ ।

नित्यमन्यस्य तु व्याधिविशेषेण विशिष्टता^३ ॥ १ ॥

फलानि तानि पाण्डुनि न चाऽतिहरितान्यपि ।

आदायाऽहिं प्रशस्तर्त्ते मध्ये ग्रीष्मवसन्तयोः ॥ २ ॥

१. अथ = चिकित्सितस्थान-निरूपणानन्तरं यतश्चिकित्सा पञ्च-
कर्मपूर्विकैव सफला अतः पञ्चकर्म-कल्पनार्थं कल्पस्थानमारभ्यते,
तत्राऽपि ‘अवान्तस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः’ इत्याद्युक्तेः,
वमनस्यैव प्राथम्यम् अतो हेतोर्वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

२. वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमान्याचक्षते, अनपायि-
त्वात् । च० क० १।१३ ।

३. विरेचने त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः च० क० ७।३ ।

४. इह-‘कुष्ठहिता गरागरी, हितमिक्ष्वाकु तु मेहिने मतम् । कुट-

प्रमृज्य कुशमुत्तोल्यां ^१क्षिप्वा बद्ध्वा प्रलेपयेत् ।
 गोमयेनानु मुत्तोल्लीं धान्यमध्ये निधापयेत् ॥ ३ ॥
 मृदुभूतानि मद्येष्टगन्धानि कुशवेष्टनात् ।
 निष्कृष्य निर्गतेऽष्टाहे शोषयेत्तान्यथाऽऽतपे ॥ ४ ॥
 तेषां ततः सुशुष्काणामुद्धृत्य फलपिप्पलीः ^२ ।
 दधिमध्वाज्यपल्लैर्मृदित्वा शोषयेत्पुनः ॥ ५ ॥
 ततः सुगुप्तं संस्थाप्य कार्यकाले प्रयोजयेत् ।
 अथाऽऽदाय ततो मात्रां जर्जरीकृत्य वासयेत् ॥ ६ ॥
 शर्वरीं मधुयष्ट्या वा कोविदारस्य वा जले ।
 कर्बुदारस्य बिम्ब्या वा नीपस्य विदुलस्य वा ॥ ७ ॥
 शणपुण्याः सदापुण्याः प्रत्यक्पुण्युदकेऽथवा ।
 ततः पिबेत्कषायं तं प्रातर्मृदितगालितम् ॥ ८ ॥
 सूत्रोदितेन विधिना साधु तेन तथा वमेत् ।
 श्लेष्मज्वरप्रतिश्याय-गुल्मान्तर्विद्रधीषु च ॥ ९ ॥
 प्रच्छर्दयेद्विशेषेण यावत्पित्तस्य दर्शनम् ।
^३फलपिप्पलिचूर्णं वा क्वाथेन स्वेन भावितम् ॥ १० ॥

जस्य फलं हृदामये, प्रवरं कोठफलञ्च पाण्डुषु ।' च० सि० १११२
 उदरे कृतवेधनं हितम्, मदनं सर्वगदाऽविरोधि तु । च० सि०
 १११३ ।

१. कुशानां मुत्तोल्ली = कुशपूलिकाया अग्रं विबध्य परिवर्त्य
 रचितं शिक्यम् । च० क० १११३ । २. फलपिप्पलीः = बीजानि ।

३. फलपिप्पलीशब्देन मदनफलबीजान्युच्यन्ते, ह्रस्वो बाहुलकात् ।

त्रिभागत्रिफलाचूर्णं^१ कोविदारादिवारिणा ।
 पिबेज्ज्वरारुचिष्ठीव-ग्रन्थ्यपच्यर्बुदोदरी ॥ ११ ॥
 पित्ते कफस्थानगते जीमूतादिजलेन तत् ।
 हृद्वाहेऽधोऽस्त्रपित्ते च क्षीरं तत्पिप्पलीशृतम् ॥ १२ ॥
 क्षैरेयीं वा कफच्छर्दिप्रसेकतमकेषु तु ।
 दध्युत्तरं वा दधि वा तच्छृतक्षीरसम्भवम् ॥ १३ ॥
 फलादिकाथकल्काभ्यां सिद्धं तत्सिद्धदुग्धजम् ।
 सर्पिः कफाभिभूतेऽग्नौ शुण्यद्देहे च वामनम् ॥ १४ ॥
 स्वरसं फलमज्ज्ञो वा भल्लातकविधिश्चतम् ।
 आदर्वीलेपनात्सिद्धं लीढ्वा प्रच्छर्दयेत्सुखम् ॥ १५ ॥
 तं लेहं भक्ष्यभोज्येषु तत्कपायांश्च योजयेत् ।
 वत्सकादिप्रतीवापः कपायः मलमज्जजः ॥ १६ ॥
 निम्बार्कान्यतरङ्गाथ-समायुक्तो नियच्छति ।
 बद्धमूलानपि व्याधीन् सर्वान्सन्तर्पणोद्भवान् ॥ १७ ॥
 राठपुष्पफलश्लक्ष्ण-चूर्णैर्माल्यं सुरूपितम् ।
 वमेन्मण्डरसादीनां तृप्तो जिघ्रन् सुखं सुखी ॥ १८ ॥
 एवमेव फलाभावे कल्प्यं पुष्पं शलाटु वा ।

१. कोविदारादयः = 'कोविदारस्य वा जले-' इत्यादिना पूर्वो-
 क्ताः, च० क० १।१४ ।

२. वत्सकादयः सूत्रस्थाने १५ अध्याये ३३-३४ ।

३. राठस्य = मदनस्य पुष्पफलयोः सूक्ष्मचूर्णैः सु = सुष्ठु =
 सम्यग्, रूपितम् = अवचूर्णितम् ।

^१जीमूताद्याश्च फलवत् ॥ 'जीमूतं' तु विशेषतः ॥ १९ ॥
 प्रयोक्तव्यं ज्वर-श्वास-कास-हिध्माऽदिरोगिणाम् ।
 पयः पुष्पेऽस्य निर्वृत्ते फले पेया पयस्कृता ॥ २० ॥
 लोमशे क्षीरसन्तानं दध्युत्तरमलोमशे ।
 शृते पयसि दध्यम्लं जातं हरितपाण्डुके ॥ २१ ॥
 आसुत्य वारुणीमण्डं पिबेन्मृदितगालितम् ।
 कफादरोचके कासे पाण्डुत्वे राजयक्ष्मणि ॥ २२ ॥
 इयं च कल्पना कार्या^२ तुम्बीकोशातकीष्वपि ।
^३पर्यागतानां शुष्काणां फलानां वेणिजन्मनाम्^४ ॥ २३ ॥
 चूर्णस्य पयसा शुक्तिं वातपित्तादितः पिबेत् ।
 द्वे वा त्रीण्यपि वाऽऽपोथ्य क्वाथे तिक्तोत्तमस्य^५ वा ॥ २४ ॥
^६आरग्वधादिनवकादासुर्यान्यतमस्य वा ।
 विमृद्य पूतं तं क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरी पिबेत् ॥ २५ ॥

१. जीमूतेक्ष्वाकु-धामार्गव-कुटज-कृतवेधनानि, फलेन = तुल्या-
 नि फलवत् । मदनकल्पस्य जीमूतादावतिदेशः । जीमूतकल्पमाह-
 'जीमूतन्तु विशेषतः' इत्यादिना ।

२. तुम्बीकोशातक्यौ तिक्तरसे ग्राह्ये, वमनकल्पत्वात्, न तु,
 शाकार्हे 'मधुर-रसे । ३. पर्यागतानां = सक्क्यक् पक्वानाम् ।

४. वेणिजन्मनां = देवदालीजातानाम् । वेणीशब्दस्य ह्रस्वो
 बाहुलकात् । ५. तिक्तोत्तमस्य = निम्बरस्य ।

६. आरग्वधेन्द्रयव-पाटलि-काकतिक्ता, निम्बाऽमृता-मधुरसा-
 ववृक्ष-पाठाः । सू० १५।१७।

'जीमूतकल्कं' चूर्णं वा पिबेच्छीतेन वारिणा ।
 ज्वरे पैत्ते, कवोष्णेन कफवातात्कफादपि ॥ २६ ॥
 कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्ते कफकर्षिते ।
 'इष्वाकुर्वमने' शस्तः^१ प्रताम्यति च मानवे ॥ २७ ॥
 फलपुष्पविहीनस्य प्रवालैस्तस्य साधितम् ।
 पित्तश्लेष्मज्वरे क्षीरं पित्तोद्विक्ते प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥
 हृतमध्ये फले जीर्णं स्थितं क्षीरं यदा दधि ।
 स्यात्तदा कफजे कासश्वासे वम्यां च पाययेत् ॥ २९ ॥
 मस्तुना वा फलान्मध्यं पाण्डुकुष्ठविषादितः ।
 तेन तक्रं विपक्वं वा पिबेत्समधुसैन्धवम् ॥ ३० ॥
 भावयित्वाऽऽजदुग्धेन बीजं तेनैव वा पिबेत् ।
 विषगुल्मोदरग्रन्थि-गण्डेषु 'श्लीपदेषु' च ॥ ३१ ॥
 सक्तुभिर्वा पिबेन्मन्थं तुम्बीस्वरसभावितैः ।
 कफोद्भवे ज्वरे कासे गलरोगेष्वरोचके ॥ ३२ ॥
 गुल्मे ज्वरे प्रसक्ते च कल्कं मांसरसैः पिबेत् ।
 नरः साधु वमत्येवं न च दौर्बल्यमश्नुते ॥ ३३ ॥
 तुम्ब्याः फलरसैः शुष्कैः सपुष्पैरवचूर्णितम् ।
 छर्दयेन्माल्यमाघ्राय गन्धसम्पत्सुखोचितः ॥ ३४ ॥
^२कासगुल्मोदरगरे वाते श्लेष्माशयस्थिते ।
 कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफसञ्चयजेषु च ॥ ३५ ॥
 'धामार्गवो' गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च ।

१. प्रताम्यति = तमकश्वासेन गलाने ।

२. कासादिषु गदेषु धामार्गव-इष्टः इत्यन्वयः ।

जीवकर्षभकौ वीरा कपिकच्छूः शतावरी ॥ ३६ ॥
 काकोली श्रावणी मेदा महामेदा मधूलिका ।
 तद्रजोभिः पृथग्लेहा धामार्गवरजोऽन्विताः ॥ ३७ ॥
 कासे हृदयदाहे च शस्ता मधुसिताद्रुताः ।
 ते ^१सुखाम्भोऽनुपानाः स्युः पित्तोष्मसहिते कफे ॥ ३८ ॥
^२धान्यतुम्बुरुयूषेण कल्कस्तस्य विषापहः ।
 बिम्ब्याः पुनर्नवाया वा कासमर्दस्य वा रसे ॥ ३९ ॥
 एकं धामार्गवं द्वे वा ^३मानसे मृदितं पिबेत् ।
 तच्छृतक्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः ^४ ॥ ४० ॥
 च्वेडोऽतिकटुतीक्ष्णोष्णः प्रगाढेषु प्रशस्यते ।
 कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ ४१ ॥
 पृथक् फलादिषट्कस्य क्वाथे मांसमनूपजम् ।
 'कोशातक्या' समं सिद्धं तद्रसं लवणं पिबेत् ॥ ४२ ॥
 फलादिपिप्पलीतुल्यं सिद्धं च्वेडरसेऽथवा ।
 च्वेडक्वाथे पिबेत्सिद्धं मिश्रमिञ्जुरसेन वा ॥ ४३ ॥
 'कुटजं' सुकुमारेषु पित्तरक्तकफोदये ।
 ज्वरे विसर्पे हृद्रोगे खुबे कुष्ठे च पूजितम् ॥ ४४ ॥

१. सुखं-सुखस्पर्शं यद्-अम्भः = मन्दोष्णं जलं तद्-अनुपानं
 येषां ते । २. धान्य तुम्बुरु-इति पा० ।

३. मानसे = उन्मादे-अपस्मारे च ।

४. फलादिभिः = मदनफल-देवदाली-कटुतुम्बी-धामार्गव-को-
 शातकी-कुटजबीजैः पृथक् २ साधितं वा सर्पिः कीदृशं-धामार्गवशृत-
 पयोजातम् ।

सर्षपाणां मधूकानां तोयेन लवणस्य वा ।
 पाययेत्कौटजं बीजं युक्तं कृशरयाऽथवा ॥ ४५ ॥
 सप्ताहं वाऽर्कदुग्धाक्तं तच्चूर्णं पाययेत्पृथक् ।
 फलजीमूतकेचवाकु-जीवन्तीजीवकोदकैः ॥ ४६ ॥
 वमनौषधमुख्यानामिति कल्पदिगीरिता^१ ।
 बीजेनानेन मतिमानन्यान्यपि च कल्पयेत् ॥ ४७ ॥
 इति कल्पस्थाने प्रथमोऽध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

^२अथाऽतो विरेचनकल्पं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'कपाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका त्रिवृत् ।
 कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ १ ॥
^३सेदानीमौषधैर्युक्ता वातपित्तकफापहैः ।
 कल्पवैशेष्यमासाद्य जायते सर्वरोगजित् ॥ २ ॥
 द्विधा ख्यातं च तन्मूलं श्यामं श्यामारुणं त्रिवृत् ।
 त्रिवृदाख्यं वरतरं निरपायं सुखं तयोः ॥ ३ ॥

१. कल्पस्य=कल्पनायाः, दिग्=रीतिः ईरिता=कथिता । इति ।
 २. अथ = वमनकल्पज्ञानेन कफपित्तस्थानशुद्धिज्ञानानन्तरं यतः
 आमाशयादि-शुद्धिज्ञानमपेक्षितम्-अतो विरेचनकल्पं व्याख्या-
 स्यामः । त्रिवृत्-कृतमाल-तिल्वक-सुधा-सप्तला-दन्तीप्रभृतयो विरे-
 चनद्रव्याणि । ३. सा पूर्वोक्तगुणा त्रिवृत्-इदानीं-कल्पनावसरे ।

सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च ^१तद्वितम् ।
 मूर्च्छासम्मोहहृत्कण्ठ-कर्षणक्षपणप्रदम् ॥ ४ ॥
 श्यामं तीक्ष्णाशुकारित्वादतस्तदपि शस्यते ।
 क्रूरे कोष्ठे बहौ दोषे क्लेशक्षमिणि चातुरे ॥ ५ ॥
 गम्भीरानुगतं श्लक्ष्णमतिर्यग्विसृतं च यत् ।
 गृहीत्वा विसृजेत्काष्ठं त्वचं शुष्कां निधापयेत् ॥ ६ ॥
 अथ काले तु तच्चूर्णं किञ्चिन्नागरसैन्धवम् ।
 वातामये पिबेदम्लैः पित्ते साज्यसितामधु ॥ ७ ॥
 क्षीरद्राक्षेक्षुकारमर्यस्वादुस्कन्धवरारसैः ।
 कफामये पीलुरसमूत्रमद्याम्लकाञ्जिकैः ॥ ८ ॥
 पञ्चकोलादिचूर्णैश्च युक्त्या-युक्तं कफापहैः ।
 त्रिवृत्कल्ककषायेण साधितः ससितो हिमः ^२ ॥ ९ ॥
 मधुत्रिजातसंयुक्तो लेहो हृद्यं विरेचनम् ।
 अजगन्धा तवक्षीरी विदारी शर्करा त्रिवृत् ॥ १० ॥
 चूर्णितं मधुसर्पिभ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।
 सन्निपातज्वरस्तम्भपिपासादाहपीडितः ॥ ११ ॥
 लिम्पेदन्तस्त्रिवृतया द्विधा कृत्वेक्षुगण्डिकाम् ।
 एकीकृत्य च तत्स्विन्नं पुटपाकेन भक्षयेत् ॥ १२ ॥
 त्वगोलाभ्यां समा नीली तैस्त्रिवृत् तैश्च शर्करा ।
 चूर्णं फलरसक्षौद्रसक्तुभिस्तर्पणं पिबेत् ॥ १३ ॥
 वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पानलेषु च ।

१. तत् = त्रिवृन्मूलम् ।

२. हिमः = शीतकषायः ।

नरेषु सुकुमारेषु ^१निरपायं विरेचनम् ॥ १४ ॥
 विडङ्गतण्डुलवरा-यावशूककणास्त्रिवृत् ।
 सर्वेभ्योऽर्धेन तल्लीढं मध्वाज्येन गुडेन वा १५ ॥
 गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोचकम् ।
 कफवातकृतांश्चान्यान् परिमार्ष्टि गदान्बहून् ॥ १६ ॥
 विडङ्गपिप्पलीमूल-त्रिफलाधान्यचित्रकम् ।
 मरिचेन्द्रयवाजाजी-पिप्पलीहस्तिपिप्पलीः ॥ १७ ॥
 दीप्यकं पञ्चलवणं चूर्णितं कार्षिकं पृथक् ।
 तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ १८ ॥
 धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन् गुडार्धतुलान्वितान् ।
 पक्त्वा मृद्वग्निना खादेत्ततो मात्रामयन्त्रणः ^२ ॥ १९ ॥
 कुष्ठार्शःकामलागुल्म-मेहोदरभगन्दरान् ।
 ग्रहणीपाण्डुरोगांश्च हन्ति पुंसवनश्च सः ॥ २० ॥
 गुडः 'कल्याणको' नाम सर्वेष्वृतुषु यौगिकः ।
 ब्योषत्रिजातकाम्भोद-कृमिघ्नामलकैस्त्रिवृद् ॥ २१ ॥
 सर्वैः समा समसिता सौद्रेण गुटिकाः कृताः ।
 मूत्रकृच्छ्रज्वरच्छर्दि-कासशोषभ्रमक्षये ॥ २२ ॥
 तापे पाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौ शस्ताः सर्वविषेषु च ।
 त्रिवृता कौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ २३ ॥
 सौद्रद्राक्षारसोपेतं 'वर्षाकाले' विरेचनम् ।
 त्रिवृद्दुरालभामुस्ता-शर्करोदीच्यचन्दनम् ॥ २४ ॥

१. निरपायं = निर्विघ्नम् , व्यापद्रहितमित्यर्थः ।

२ अयन्त्रणः = पथ्याऽपथ्य-नियमाऽबद्धः ।

द्राक्षाम्बुना सयष्टथाह्निसातलं 'जलदात्यये' ।
 त्रिवृतां चित्रकं पाठाममार्जी सरलं वचाम् ॥ २५ ॥
 स्वर्णक्षीरीं च 'हेमन्ते' चूर्णमुष्णाम्बुना पिबेत् ।
 त्रिवृता शर्करातुल्या 'ग्रीष्मकाले' विरेचनम् ॥ २६ ॥
 त्रिवृत-त्रायन्ति-हपुषा-सातला-कटुरोहिणीः ।
 स्वर्णक्षीरीं च सञ्चूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत्सहम् ॥ २७ ॥
 एष 'सर्वर्तुको योगः' स्निग्धानां मलदोषहृत् ।
 श्यामात्रिवृद्दुरालम्भा-हस्तिपिप्पलिवत्सकम् ॥ २८ ॥
 नीलिनीकटुकामुस्ता-श्रेष्ठायुक्तं सुचूर्णितम् ।
 रसाज्योष्णाम्बुभिः शस्तं रूक्षाणामपि सर्वदा ॥ २९ ॥
 'ज्वर-हृद्रोग-वातासृग्गुदावर्तादिरोगिषु ।
 'राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः ॥ ३० ॥
 बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे ।
 योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरङ्गुलः ॥ ३१ ॥
 फलकाले परिणतं फलं तस्य समाहरेत् ।
 तेषां गुणवतां भारं सिकतासु विनिक्षिपेत् ॥ ३२ ॥
 सप्तरात्रात्समुद्धृत्य शोषयेदातपे ततः ।
 ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ पात्रे निधापयेत् ॥ ३३ ॥
 द्राक्षारसेन तं दद्याद्वाहोदावर्तपीडिते ।
 चतुर्वर्षे सुखं बाले यावद्द्वादशवार्षिके ॥ ३४ ॥

१. राजवृक्षकल्पमाह-ज्वरेत्यादिना । च० क० ८।४।

२. राजते = दीप्यते पुष्पैर्घृतताटङ्क-इव कृतमाल-इवेति राजा,
 स चासौ वृक्षः = कर्णिकारः, च० क० ८।३।

चतुरङ्गुलमज्जो वा कषायं पाययेद्धिमम् ।
 दधिमण्डसुरामण्डधात्रीफलरसैः पृथक् ॥ ३५ ॥
 सौवीरकेण वा युक्तं कल्केन त्रैवृतेन वा ।
 दन्तीकषाये तन्मज्जो^१ गुडं जीर्णं च निक्षिपेत् ॥ ३६ ॥
 तमरिष्टं स्थितं मासं पाययेत् पक्षमेव वा ।
^२त्वचं तिल्वकमूलस्य त्यक्त्वाऽऽभ्यन्तरवल्कलम् ॥ ३७ ॥
 विशोष्य चूर्णयित्वा च द्वौ भागौ गालयेत्ततः ।
 रोध्रस्यैव कषायेण तृतीयं तेन भावयेत् ॥ ३८ ॥
 कषाये दशमूलस्य तं भागं भावितं पुनः ।
 शुष्कं चूर्णं पुनः कृत्वा ततः पाणितलं पिबेत् ॥ ३९ ॥
 मस्तुमूत्रसुरामण्डकोलधात्रीफलाम्बुभिः ।
 तिल्वकस्य कषायेण कल्केन च सशर्करः ॥ ४० ॥
 सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठं विरेचनम् ।
^३सुधा भिनत्ति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम् ॥ ४१ ॥
 आश्वेव कुष्ठविभ्रंशान्नैव तां कल्पयेदतः ।
 मृदौ कोष्ठेऽबले बाले स्थविरे दीर्घरोगिणि ॥ ४२ ॥
 कल्प्या गुल्मोदरगर-स्वप्नोगमधुमेहिषु ।
 पाण्डौ दूषीविषे शोफे दोषविभ्रान्तचेतसि ॥ ४३ ॥
 सा श्रेष्ठा कण्टकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता ।
 द्विवर्षा वा त्रिवर्षा वा शिशिरान्ते विशेषतः ॥ ४४ ॥

१. शसन्तं रूपम् ।

२. तिल्वक-कल्पमाह-त्वचमित्यादिना-तिल्वको = लोध्रः, च०

क० ८।३। ३. सुधा = सीडुण्डः, च० क० अ० १०।३।

तां पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः ।
 बिल्वादीनां बृहत्योर्वा क्वाथेन सममेकशः ॥ ४५ ॥
 मिश्रयित्वा सुधाक्षीरं ततोऽङ्गारेषु शोषयेत् ।
 पिबेत्कृत्वा तु गुटिकां मस्तुमूत्रसुरादिभिः ॥ ४६ ॥
 त्रिवृतादीन्नाव वरां स्वर्णक्षीरीं सप्तातलाम् ।
 सप्ताहं स्नुक्पयःपीतान् रसेनाज्येन वा पिबेत् ॥ ४७ ॥
 तद्वद्व्योषोत्तमा-कुम्भ-निकुम्भादीन् गुडाम्बुना ।
^१नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शङ्खिन्या निस्तुषीकृतम् ॥ ४८ ॥
 सप्तलायास्तथा मूलं ते तु तीक्ष्णविकापिणी ।
 श्लेष्माऽऽमयोदरगर-श्वयश्वादिषु कल्पयेत् ॥ ४९ ॥
 अक्षमात्रं तयोः पिण्डं मदिरालवणान्वितम् ।
 हृद्रोगे वातकफजे तद्वद् गुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥
^२दन्तिदन्तस्थिरं स्थूलं मूलं दन्तीद्रवन्तिजम् ।
 आताम्रश्यावतीक्ष्णमाशुकारि निकापि च ॥ ५१ ॥
 गुरु प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम् ।
 तत्क्षौद्रपिप्पलीलिप्तं स्वेद्यं मृदुर्भवेष्टितम् ॥ ५२ ॥
 शोष्यं मन्दातपेऽग्न्यकौ हतो ह्यस्य विकाषिताम् ।
 तत्पिबेन्मस्तुमदिरा-न्तक्रपीलुरसासवैः ॥ ५३ ॥
 अभिष्यण्णतनुर्गुल्मी प्रमेही जठरी गरी ।

१. सप्तला-शङ्खिनी-कल्पमाह-नातिशुष्कमित्यादिना, च. क.
अ. ११ ।

२. दन्ती-द्रवन्तीकल्पमाह-दन्तिदन्तस्थिरमित्यादिना-च. क.
अ. १२।३।

गोमृगाजरसैः पाण्डुः कृमिकोष्ठी भगन्दरी ॥ ५४ ॥
 सिद्धं तत्काथकल्काभ्यां दशमूलरसेन च ।
 विसर्पविद्रध्यलजीकक्षादाहान् जयेद्घृतम् ॥ ५५ ॥
 तैलं तु गुल्ममेहाशौविबन्धकफमारुतान् ।
 महास्नेहः शकृच्छुक्रवातसङ्गानिलव्यथाः ॥ ५६ ॥
 विरेचने मुख्यतमा नवैते त्रिवृदादयः^१ ।
 हरीतकीमपि त्रिवृद्विधानेनोपकल्पयेत् ॥ ५७ ॥
 गुडस्याष्टपले पथ्याविंशतिः स्यात्पलं पलम् ।
 दन्तीचित्रकयोः कर्षौ पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ ५८ ॥
 प्रकल्प्य मोदकानेवं दशमे दशमेऽहनि ।
 उष्णाम्भोऽनु पिबेत्खादेत्तान्सर्वान्विधिनाऽमुना ॥ ५९ ॥
 एते निःपरिहाराः स्युः सर्वव्याधिनिबर्हणाः ।
 विशेषाद्ग्रहणीपाण्डुकण्डूकोठार्शसां हिताः ॥ ६० ॥
 अल्पस्याऽपि महार्थत्वं प्रभूतस्याऽल्पकर्मताम् ।
 कुर्यात्संश्लेषविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥ ६१ ॥
^१त्वक्केसराऽऽम्रातक-दाडिमैलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ।
 मद्यैश्च तैस्तैश्च मनोनुकूलैर्युक्तानि देयानि विरेचनानि ॥ ६२ ॥
 इति कल्पस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ।



१. त्रिवृत्, श्यामा, राजवृक्षः, तिल्वकः, सुधा, सप्तला, शङ्खिनी,
 दन्ती, द्रवन्ती एते नव, विरेचने मुख्यतमाः, मुख्यतराः मुख्याः
 अन्येऽपि सन्तीत्याह-हरीतकीमपीति ।

२. विरेचनानां सम्यग् योगकारकानाह-त्वगित्यादिना । इति ।

तृतीयोऽध्यायः ।

^१अथाऽतो वमनविरेचनव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

^२वमनं मृदुकोष्ठेन क्षुब्धताऽल्पकफेन वा ।

अतितीक्ष्णहिमस्तोकमजीर्णे दुर्बलेन वा ॥ १ ॥

पीतं प्रयात्यधस्तस्मिन्निष्ठहानिर्मलोदयः ।

वामयेत्तं पुनः स्निग्धं स्मरन् पूर्वमतिक्रमम् ॥ २ ॥

अजीर्णिनः श्लेष्मवतो व्रजत्यूर्ध्वं विरेचनम् ।

अतितीक्ष्णोष्णलवणमहृद्यमतिभूरि वा ॥ ३ ॥

तत्र पूर्वोदिता व्यापत्सिद्धिश्च न तथापि चेत् ।

आशये तिष्ठति ततस्तृतीयं नावचारयेत् ॥ ४ ॥

अन्यत्र सात्म्याद् हृद्याद्वा भेषजान्निरपायतः ।

^३अस्निग्धस्विन्नदेहस्य पुराणं रूक्षमौषधम् ॥ ५ ॥

दोषानुत्क्लेश्य निर्हर्तुमशक्तं जनयेद्बुद्धान् ।

^४चिद्भ्रंशं श्रयथुं हिध्मां तमसो दर्शनं तृषम् ॥ ६ ॥

पिण्डिकोद्वेष्टनं कण्डूमूर्वोः सादं विवर्णताम् ।

स्निग्धस्विन्नस्य वाऽत्यल्पं दीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम् ॥ ७ ॥

शीतैर्वा स्तब्धमामे वा तमुत्क्लेश्याहरन्मलान्^५ ।

१. अथ = वमन-विरेचन कल्पशानानन्तरं यतस्तदति-योगादि-जन्य—व्यापत्-प्रतीकारो जिज्ञास्यः अतस्तत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।

च० सि० अ० ६। २. चरके क० अ० ६।३८ द्रष्टव्यं क्रमशः ।

३. विभ्रंशमिति पाठान्तरम् । ४. उत्क्लेश्य हरेत्-पा. ।

तानेव जनयेद्रोगानयोगः सर्व एव सः ॥ ८ ॥
 तं तैललवणाभ्यक्तं स्विन्नं संस्तरसङ्करैः^१ ।
 निरुद्धं जाङ्गलरसैर्भोजयित्वाऽनुवासयेत् ॥ ९ ॥
 फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया ।
 स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेन शोधयेत् ॥ १० ॥
 बहुदोषस्य रूक्षस्य मन्दाग्नेरल्पमौषधम् ।
 सोदावर्तस्य चोत्क्लेश्य दोषान्मार्गं निरुध्य तैः ॥ ११ ॥
 भृशमाध्मापयेन्नाभिं पृष्ठपार्श्वशिरोरुजम् ।
 श्वासं विण्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्याच्च दारुणम् ॥ १२ ॥
 अभ्यङ्गस्वेदवर्त्यादिसनिरुहानुवासनम् ।
 उदावर्तहरं सर्वं कर्माऽऽध्मातस्य शस्यते ॥ १३ ॥
 पञ्चमूल्यवच्चारवचाभूतिकसैन्धवैः ।
 यवागूः सुकृता शूलविबन्धानाहनाशनी ॥ १४ ॥
 पिप्पलीदाडिमच्चार-हिङ्गुशुण्ठ्यम्लवेतसाम् ।
 ससैन्धवान्पिबेन्मद्यैः सर्पिपोष्णोदकेन वा ॥ १५ ॥
 प्रवाहिकापरिस्रावे वेदनापरिकर्तने ।
 पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मारुतादयः ॥ १६ ॥
 कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वन्ति हृद्ग्रहम् ।
 हिध्मापार्श्वरुजाकास-दैर्न्यलालाक्षिविभ्रमैः ॥ १७ ॥
 जिह्वां खादति निःसंज्ञो दन्तान्कटकटाययन्^२ ।
 न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु तं भिषक् ॥ १८ ॥

१. स्वेदाऽध्याये प्रसिद्धैः, च. सू. अ. १.४।४.१।४२।

२. अनुकरणशब्दोऽयम् ।

मधुरैः पित्तमूर्च्छार्तिं कटुभिः कफमूर्च्छितम् ।
 पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषं विपाचयेत् ॥ १९ ॥
 कायाऽग्निं च बलं चास्य क्रमेणाऽभिप्रवर्धयेत् ।
 पवनेनाऽतिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ॥ २० ॥
 तस्मै स्निग्धाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ।
 पीतौषधस्य वेगानां निग्रहेण कफेन वा ॥ २१ ॥
 रुद्धोऽति वा विशुद्धस्य गृह्णात्यङ्गानि मारुतः ।
 स्तम्भवेपथुनिस्तोद-सादोद्वेष्टार्तिभेदनैः ॥ २२ ॥
 तत्र वातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि शस्यते ।
 बहुतीक्ष्णं क्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ॥ २३ ॥
 ह्रस्वाऽऽशु विट्पित्तकफान्धातूनास्त्रावयेद् द्रवान् ।
 तत्रातियोगे मधुरैः शेषमौषधमुल्लिखेत् ॥ २४ ॥
 योज्योऽतिवमने रेको, विरेके वमनं मृदु ।
 परिषेकावगाहाद्यैः सुशीतैः स्तम्भयेच्च तम् ॥ २५ ॥
 अञ्जनं चन्दनोशीरमजासृक्शर्करोदकम् ।
 लाजचूर्णैः पिबेन्मन्थमतियोगहरं परम् ॥ २६ ॥
 'वमनस्याऽतियोगे' तु शीताम्बुपरिषेचितः ।
 पिबेत्फलरसैर्मन्थं सघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ २७ ॥
 'सोद्वारायां' भृशं छर्द्या, मूर्वाया धान्यमुस्तयोः ।
 समधूकाञ्जनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ॥ २८ ॥
 'वमतोऽन्तःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहाः ।
 स्निग्धाम्ललवणा हृद्या यूषमांसरसा हिताः ॥ २९ ॥
 फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ।

'निःसृतां' तु तिल-द्राक्षा-कल्कलिप्तां प्रवेशयेत् ॥ ३० ॥
 वाग्ग्रहानिलरोगेषु घृतमांसोपसाधिताम् ।
 यवागूं तनुकां दद्यात्स्नेहस्वेदौ च कालवित् ॥ ३१ ॥
 अतियोगाच्च भैषज्यं ^१'जीवं हरति' शोणितम् ।
 तज्जीवाऽऽदानमित्युक्तमादत्ते जीवितं यतः ॥ ३२ ॥
 शुने काकाय वा दद्यात् ^२तेनान्नमसृजा सह ।
 भुक्ते तस्मिन् वदेज्जीवमभुक्ते पित्तमादिशेत् ॥ ३३ ॥
 शुक्लं वा ^३भावितं वस्त्रमावानं ^४कोष्णवारिणा ।
 प्रक्षालितं ^५विवर्णं स्यात्पित्ते, शुद्धं तु शोणिते ॥ ३४ ॥
 तृष्णामूर्च्छामिदार्तस्य कुर्यादामरणं क्रियाम् ।
 रक्तपित्तातिसारघ्नीं तस्याशु प्राणरक्षणीम् ॥ ३५ ॥
 मृगगोमहिषाजानां ^६सद्यस्कं जीवतामसृक् ।

१. जीवं शोणितं = जीवाख्यं शोणितं, हरति = बहिः प्रापयति,
 तत्र सन्देहः, किमिदं भैषज्याऽतियोगकुपितं रक्तपित्तम्—आहो-
 स्विद् जीवशोणितमिति, अतः—

२. तेन = भैषज्यातियोगाऽऽहतेन, असृजा = रुधिरेण सह
 संसृष्टम् अन्नम् = ओदनं शुने = सारमेयाय काकाय = करटाय वा
 परीक्षार्थं दद्यात् दत्ते तस्मिन्-अन्ने शुना काकेन वा भुक्ते सति
 जीवशोणितं वदेत्, अभुक्ते सति रक्तपित्तं वदेदिति निर्णयः ।
 विचित्रं हि तिरश्चां स्वभाविकं ज्ञानम् ।

३. वा = परीक्षान्तरे । ४. आवानं = शुष्कम् ।

५. विवर्णं = विशिष्टवर्णम्, पाटलमित्यर्थः ।

६. सद्यस्कं = तात्कालिकम् ।

पिबेज्जीवाभिसन्धानं जीवं तद्व्याशु गच्छति^१ ॥ ३६ ॥

तदेव दर्भमृदितं रक्तं बस्तौ निषेचयेत् ।

श्यामाकाशमर्यमधुक-दूर्वोशीरैः शृतं पयः ॥ ३७ ॥

घृतमण्डाञ्जनयुतं बस्तिं वा योजयेद्धिमम् ।

पिच्छाबस्तिं सुशीतं वा घृतमण्डानुवासनम् ॥ ३८ ॥

^२‘गुदं भ्रष्टं, कषायैश्च स्तम्भयित्वा प्रवेशयेत् ।

‘विसंज्ञं’ श्रावयेत्साम-वेणुगीतादिनिस्वनम् ॥ ३९ ॥

इति कल्पस्थाने तृतीयोऽध्यायः ।



चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाऽतो दोषहरणसाकल्यं बस्तिकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः^३ ।

‘बलां गुडूचीं त्रिफलां सरास्त्रां

द्विपञ्चमूलं च पलोन्मितानि ।

अष्टौ फलान्यर्धतुलां च मांसा-

च्छागात्पचेदप्सु चतुर्थशेषम् ॥ १ ॥

पूतो यवानीफलबिल्वकुष्ठ-वचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम् ।

कल्कैर्गुडद्वौद्रघृतैः सतैलैर्युक्तः सुखोष्णो लवणान्वितश्च ॥ २ ॥

१. गच्छति = प्राप्नोति, यच्छति = ददाति-इति पाठद्वयं सङ्गतम् । २. च. सि. ६।८५। इति ।

३. चरके सिद्धिस्थाने तृतीयाध्याये १-३ पद्यादौ ।

बस्तिः परं सर्वगदप्रमाथी
 स्वस्थे हितो जीवनवृंहणश्च ।
 बस्तौ च यस्मिन्पठितो न कल्कः
 सर्वत्र दद्यादमुमेव तत्र ॥ ३ ॥
 द्विपञ्चमूलस्य रसोऽम्लयुक्तः
 सच्छागमांसस्य सपूर्वकल्कः ।
 त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरूहः
 सर्वाऽनिलव्याधिहरः प्रदिष्टः^१ ॥ ४ ॥
 बलापटोलीलघुपञ्चमूल-
 त्रायन्तिकैरण्डयवात्सुसिद्धात् ।
 प्रस्थो रसाच्छागरसार्धयुक्तः
 साध्यः पुनः प्रस्थसमः स यावत् ॥ ५ ॥
 प्रियङ्गुकृष्णाघनकल्कयुक्तः सतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च ।
 स्याद्दीपनो मांसबलप्रदश्च चक्षुर्बलं चोपदधाति सद्यः ॥ ६ ॥
 एरण्डमूलाग्निपलं पलाशात्तथा पलांशं लघुपञ्चमूलम् ।
 रास्नाबलाच्छिन्नरुहाश्चगन्धापुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ ७ ॥
 फलानि चाऽष्टौ सलिलाढकाभ्यां
 विपाचयेदष्टमं^२ शेषितेऽस्मिन् ।

१. चरके सि. अ. ३।३५। द्रष्टव्यम् ।

२. अत्र—‘रास्नाऽश्बगन्धाऽतिबलागुडूची’ति-चरक-पाठः, सि.
 ३।३९। अतो ‘वचा’ इति पाठो न सङ्गतः । वचायाः प्रतिवाप्यत्वाच्च ।

३. अष्टमौ भागः-अष्टमः, भागे-अनुप्रत्ययः ।

वचाशताह्वाहपुषाप्रियङ्गु-

यष्टीकणावत्सकबीजमुस्तम् ॥ ८ ॥

दद्यात्सुपिष्टं सहताद्यशैल-

मक्षप्रमाणं लवणांशयुक्तम् ।

समाक्षिकस्तैलयुतः समूत्रो

बस्तिर्जयेत्तलेखनदीपनोऽसौ ॥ ९ ॥

जङ्घोरुपादत्रिकपृष्ठकोष्ठ-

हृद्गुह्यशूलं गुरुतां विबन्धम् ।

गुल्माश्मबध्मग्रहणीगुदोत्थां-

स्तांस्तांश्च रोगान्कफवातजातान् ॥ १० ॥

यष्ट्याह्वरोध्राभयचन्दनैश्च

शृतं पयोऽग्र्यं कमलोत्पलैश्च ।

सशर्कराक्षौद्रघृतं सुशीतं

‘पित्तामयान्हन्ति’ सजीवनीयम् ॥ ११ ॥

रास्नां वृषं लोहितिकामनन्तां

बलां कनीयस्तृणपञ्चमूल्यौ ।

गोपाङ्गनाचन्दनपद्मकर्द्धि-

यष्ट्याह्वरोध्राणि पलार्धकानि ॥ १२ ॥

निःक्वाथ्य तोयेन रसेन तेन

शृतं पयोऽर्धाढकमम्बुहीनम् ।

जीवन्तिमेदूर्ध्विवरीविदारी

वीराद्विकाकोलि-कसेरुकाभिः ॥ १३ ॥

सितोपलाजीवकपद्मरेणु-प्रपौण्डरीकोत्पलपुण्डरीकैः ।

लोहास्मगुप्तामधुयष्टिकाभिर्नागाह्वमुजातकचन्दनश्च ॥ १४ ॥

पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं

ससैन्धवं शीतलमेव दद्यात् ।

प्रत्यागते धन्वरसेन शालीन्

क्षीरेण वाऽद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥ १५ ॥

दाहातिसारप्रदरास्रपित्त-

हृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरं च ।

सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्

‘सर्वामयान् पित्तकृतान्’ निहन्ति ॥ १६ ॥

१ कोशातकारग्वधदेवदारु-

मूर्वाश्चदंष्ट्राकुटजार्कपाठाः ।

पक्त्वा कुलत्थान्बृहतीं च तोये

रसस्य तस्य प्रसृता दश स्युः ॥ १७ ॥

तान् सर्पपैलामदनैः सकुष्ठै-

रक्षप्रमाणैः प्रसृतैश्च युक्तान् ।

क्षौद्रस्य तैलस्य फलाह्वयस्य

क्षारस्य तैलस्य च सार्षपस्य ॥ १८ ॥

दद्यान्निरूहं ‘कफरोगिताय’

मन्दाग्नये चाऽशनविद्विषे च ।

वक्ष्ये मृदून्स्नेहकृतो निरूहान्

सुखोचितानां प्रसृतैः पृथक् स्युः ॥ १९ ॥

१. च. सि. ३।५६ तो द्रष्टव्यम् ।

'अथेमान्सुकुमाराणां निरुहान् 'स्नेहान्मृदून्' ।
 कर्मणा विप्लुतानां तु वक्ष्यामि प्रसृतैः पृथक् ॥ २० ॥
 क्षीराद् द्वौ प्रसृतौ कार्यौ मधुतैलघृतात् त्रयः ।
 खजेन मथितो वस्तिर्वातघ्नो बलवर्णकृत् ॥ २१ ॥
 एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषाम् ।
 बिल्वादिमूलकाथाद् द्वौ कौलत्थाद् द्वौ स वातजित् ॥ २२ ॥
 पटोलनिम्बभूतीक-रास्नाससच्छदाम्भसः ।
 प्रसृतः पृथगाज्याच्च वस्तिः सर्षपकल्कवान् ॥ २३ ॥
 सपञ्चतित्तोऽभिष्यन्द-कृमिकुष्ठप्रमेहहा ।
 चत्वारस्तैलगोमूत्र-दधिमण्डलकाञ्जिकात् ॥ २४ ॥
 प्रसृताः सर्षपैः पिष्टैर्विट्सङ्गाऽऽनाहभेदनः ।
 पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषाम् ॥ २५ ॥
 एकैकः प्रसृतो वस्तिः कृष्णाकल्को घृषत्वकृत् ।
 'सिद्धवस्तीनतो वक्ष्ये' सर्वदा यान्प्रयोजयेत् ॥ २६ ॥
 निर्व्यापदो बहुफलान् बलपुष्टिकरान् सुखान् ।
 मधुतैले समे कर्षः सैन्धवाद् द्विपिचुर्मिसिः ॥ २७ ॥
 एरण्डमूलकाथेन निरुहो माधुतैलिकः ।
 रसायनं प्रमेहार्शःकृमिगुल्माऽन्त्रवृद्धिनुत् ॥ २८ ॥
 सयष्टिमधुकश्चैष चक्षुष्यो रक्तपित्तजित् ।
 'थापनो' घनकल्केन मधुतैलरसाज्यवान् ॥ २९ ॥

१. च० सि० अ० ८।३ द्रष्टव्यम् ।

२. च० सि. १०।१८ तो द्रष्टव्यम् ।

पायुजङ्घोस्त्वृणयस्तिमेहनशूलजित् ।
 प्रसृतान्शैर्धृतक्षौद्रवसातैलैः प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥
 यापनं सैन्धवार्धार्क्षहपुषार्धपलान्वितम् ।
 एरण्डमूलनिःक्वाथो मधुतैलः ससैन्धवः ॥ ३१ ॥
 एष 'युक्तरथो' बस्तिः सवचापिपलीफलः ।
 स क्वाथो मधु पङ्ग्रन्था शताह्वा हिङ्गु सैन्धवः ॥ ३२ ॥
 सुरदारुवचारास्नावस्तिर्दोषहरः परः ।
 पञ्चमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु ॥ ३३ ॥
 ससैन्धवः समधुकः 'सिद्धवस्तिरिति' स्मृतः ।
 द्विपञ्चमूलत्रिफला-फलवित्त्वानि पाचयेत् ॥ ३४ ॥
 गोमूत्रेण च पिष्टैश्च पाठावत्सकतोयदैः ।
 सफलैः क्षौद्रतैलाभ्यां क्षारेण लवणेन च ॥ ३५ ॥
 युक्तो बस्तिः कफव्याधिपाण्डुरोगविसूचिषु ।
 शुक्रानिलविवन्धेषु वस्त्र्याटोपे च पूजितः ॥ ३६ ॥
 मुस्तापाठामृतैरण्ड-वलारास्नापुनर्नवान् ।
 मज्जिण्ठारग्वधोक्षीर-त्रायमाणाऽक्षरोहिणीः ॥ ३७ ॥
 कनीयः पञ्चमूलं च पालिकं मदनाष्टकम् ।
 जलाढके पचेत्तच्च पादशेषं परिस्तुतम् ॥ ३८ ॥
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं क्षीरशेषं पुनः पचेत् ।
 सपादजाङ्गलरसः ससर्पिर्मधुसैन्धवः ॥ ३९ ॥
 पिष्टैर्यष्टिमिसिश्यामाकलिङ्गकरसाञ्जनैः ।
 बस्तिः सुखोष्णो मांसाग्निबलशुक्रविवर्धनः ॥ ४० ॥
 वातासृज्जोहमेहाशोर्गुल्मविण्मूत्रसङ्ग्रहम् ।

धिपमज्जरवीसर्पबध्माऽऽध्मानप्रवाहिकाः ॥ ४१ ॥
 वङ्कणोरुकटीकुक्षिमन्याश्रोत्रशिरोरुजः ।
 हन्यादसृग्दरोन्माद-शोफकासाश्मकुण्डलान् ॥ ४२ ॥
 चक्षुष्यः पुत्रदो राजा 'यापनानां' रसायनम् ।
 मृगाणां लघुबभ्रूणां दशमूलस्य चाम्भसा ॥ ४३ ॥
 हपुषामिसिगाङ्गेयीकल्कैर्वातिहरः परम् ।
 निरूहोऽत्यर्थवृष्यश्च महास्नेहसमन्वितः ॥ ४४ ॥
 मयूरं पक्षपित्ताऽन्त्र-पाद-विट्-तुण्डवर्जितम् ।
 मधुना पञ्चमूलेन पालिकेन समन्वितम् ॥ ४५ ॥
 पक्त्वा क्षीरजले क्षीरशेषं सघृतमाक्षिकम् ।
 तद्विदारीकणायष्टि-शताह्वाफलकल्कवत् ॥ ४६ ॥
 बस्तिरीषत्पटुयुतः परमं बलशुक्रकृत् ।
 कल्पनेयं पृथक् कार्या तित्तिरिप्रभृतिष्वपि ॥ ४७ ॥
 विष्किरेषु समस्तेषु प्रतुदप्रसहेषु च ।
 जलचारिषु तद्वच्च मत्स्येषु क्षीरवर्जिता^१ ॥ ४८ ॥
 गोधानकुलमार्जारशल्यकोन्दुरजं पलम् ।
 पृथग्दशपलं क्षीरे पञ्चमूलं च साधयेत् ॥ ४९ ॥
 तत्पयः फलवैदेहीकल्कद्विलवणान्वितम् ।
 ससितातैलमध्वाज्यो बस्तिर्योज्यो रसायनम् ॥ ५० ॥
 व्यायाममथितोरस्कक्षीणेन्द्रियबलौजसाम् ।

१. यापनसंज्ञकानां द्वादशवस्तीनां मध्ये राजा = मुख्यः याप-
 नाश्च चरके सिद्धिस्थाने द्वादशाध्याये १६ षोडशात्सूत्रादूर्ध्वम् ।
 २. मत्स्यक्षीरयोः स्वभावविरुद्धत्वात् ।

विबद्धशुक्रविण्मूत्र-खुड-वात^१विकारिणाम् ॥ ५१ ॥
 गजवाजिरथक्षोभ-भग्नजर्जरितात्मनाम् ।
 पुनर्नवत्वं कुरुते वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
 सिद्धेन पयसा भोज्यमात्मगुप्तोच्चटैक्षुरैः ।
 स्नेहांश्चायन्त्रणान् सिद्धान्सिद्धद्रव्यैः प्रकल्पयेत् ॥ ५३ ॥
 दोषघ्नाः सपरीहारा वक्ष्यन्ते 'स्नेहबस्तयः'^२ ।
 दशमूलं बलां रास्नामश्वगन्धां पुनर्नवाम् ॥ ५४ ॥
 गुडूच्येरण्डभूतीकभार्गीवृषकरोहिषम् ।
 शतावरीं सहचरं काकनासां पलांशकम् ॥ ५५ ॥
 यवमापातसीकोलकुलस्थान्प्रसृतोन्मितान् ।
 वहे विपाच्य तोयस्य द्रोणशेषेण तेन च ॥ ५६ ॥
 पचेत्तैलाढकं पेप्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ।
 अनुवासनमित्येतत्सर्ववातविकारनुत् ॥ ५७ ॥
 अनूपानां वसा तद्वज्जीवनीयोपसाधिता ।
 शताह्वाचिरबिल्वाम्लैस्तैलं सिद्धं समीरणे ॥ ५८ ॥
 सैन्धवेनाग्निवर्णेन तप्तं वाऽनिलजिद् घृतम् ।
 जीवन्तीं मदनं मेदां श्रावणीं मधुकं बलाम् ॥ ५९ ॥
 शताह्वर्षभकौ कृष्णां काकनासां शतावरीम् ।
 स्वगुप्तां क्षीरकाकोलीं कर्कटाख्यां शटीं वचाम् ॥ ६० ॥
 पिष्ट्वा तैलघृतं क्षीरे साधयेत्तच्चतुर्गुणे ।
 ब्रंहणं वातपित्तघ्नं बलशुक्राग्निवर्धनम् ॥ ६१ ॥

१. खुडवातः = वातशोणितम्, ग्रन्थिवातश्च ।

२. चरके सि० १२।४३ अत ऊर्ध्वम्—

रजःशुक्रामयहरं पुत्रीयमनुवासनम् ।
 सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलो वचा ॥ ६२ ॥
 ह्रीबेरं मधुकं भार्गी देवदारुसकटफलम् ।
 नागरं पुष्करं मेदा चविका चित्रकः शठी ॥ ६३ ॥
 विडङ्गाऽतिविषा श्यामा हरेणुनीलिनी स्थिरा ।
 बिल्वजामोदचपला दन्ती रास्ना च तैः समैः ॥ ६४ ॥
 साध्यमेरण्डतैलं वा तैलं वा कफरोगनुत् ।
 बध्मोदावर्तगुल्मार्शः प्लीहमेहाढ्यमारुतान् ॥ ६५ ॥
 आनाहमश्मरीं चाशु हन्यात्तदनुवासनम् ।
 साधितं पञ्चमूलेन तैलं बिल्वदिनाऽथवा ॥ ६६ ॥
 कफघ्नं कल्पयेत्तैलं द्रव्यैर्वा कफघातिभिः ।
 फलैरष्टगुणे चाम्ले सिद्धमन्वासनं कफे ॥ ६७ ॥
 मृदुबस्तौ जडीभूते तीक्ष्णोऽन्यो बस्तिरिष्यते ।
 तीक्ष्णैर्विकर्षिते स्निग्धो मधुरः शिशिरो मृदुः ॥ ६८ ॥
 तीक्ष्णत्वं मूत्रपील्वग्नि-लवणक्षारसर्षपैः ।
 प्राप्तकालं विधातव्यं घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ॥ ६९ ॥
 बलकालरोगदोष-प्रकृतीः प्रविभज्य योजितो बस्तिः ।
 स्वैः स्वैरौषधवर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निवर्तयति ॥ ७० ॥
 उष्णार्तानां शीतान् शीतार्तानां तथा सुखोष्णांश्च ।
 तद्योग्यौषधयुक्तान्बस्तीन्सन्तर्क्य^१ युञ्जीत ॥ ७१ ॥
 बस्तीन्ना बृंहणीयान् दद्याद्द्वयाधिषु विशोधनीयेषु ।
 मेदस्विनो विशोध्य ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥ ७२ ॥

१. सन्तर्क्य = सम्यक् तर्कयित्वा = ऊहापोहं कृत्वेत्यर्थः

न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशुद्धदेहानाम् ।
दद्याद्विशोधनीयान् दोषनिवद्वायुपो ये च ॥ ७३ ॥'

इति कल्पस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो बस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः^१ ।
'अस्त्रिगधस्त्रिगधदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः ।
शीताऽल्पस्नेहलवणद्रवमात्रो घनोऽपि वा ॥ १ ॥
बस्तिः सङ्क्षोभ्य तं दोषं दुर्बलत्वादनिर्हरन् ।
करोत्ययोगं, तेन स्याद्वातमूत्रशकृद्ग्रहः ॥ २ ॥
नाभिवस्तिरुजादाहो हल्लेपः श्वयथुर्गुदे ।
कण्डूर्गण्डानि वैवर्ण्यमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥
^१काथद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि ।
उष्णस्य तस्मादेकस्य तत्र पानं प्रशम्यते ॥ ४ ॥
फलवर्त्यस्तथा स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम् ।
बिलत्रमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान् ॥ ५ ॥

१. च० सि० अ० ७ सू० ६ इत्यादावाहुः ।

२. पिबेत् प्रकथितां तोये मध्यदोषो विशोषयन् ॥ ५ ॥

भूतीकपिप्पली शुण्ठी-वचा-धान्य-हरीतकीः, अथवा बिल्व-
धनिका-मुस्ता-नागरवालकम् । चि० अ० ९।६ ।

सुरादिमांस्तत्र बस्तिः स प्राक्पेप्यस्तमानयेत् ।
 युक्तोऽल्पवीर्यो दोषाढ्ये रुन्ने क्रूराशयेऽथवा ॥ ६ ॥
 बस्तिर्दोषावृतो रुद्धमार्गो रुन्द्ध्यात्समीरणम् ।
 सविमार्गोऽनिलः कुर्यादाध्मानं मर्मपीडनम् ॥ ७ ॥
 विदाहं गुदकोष्ठस्य मुष्कवङ्गणवेदनाम् ।
 रुणद्धि हृदयं शूलैरितश्चेतश्च धावति ॥ ८ ॥
 स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्य तत्र वर्ति प्रयोजयेत् ।
 बिल्वादिश्च निरुहः स्यात्पीलुसर्पपमूत्रवान् ॥ ९ ॥
 सरलाऽमरदारुभ्यां साधितं वाऽनुवासनम् ।
 'कुर्वतो वेगसंरोधं' पीडितो वाऽतिमात्रया ॥ १० ॥
 अस्त्रिगधलवणोष्णो वा बस्तिरल्पोऽल्पभेषजः ।
 मृदुर्वा मारुतेनोर्ध्वं विच्छिन्नो मुखनासिकात् ॥ ११ ॥
 निरेति मूर्च्छाहल्लासतृड्दाहादीन्प्रवर्तयन् ।
 'मूर्च्छाविकारं' दृष्ट्वाऽस्य सिञ्चेच्छीताम्बुना मुखम् ॥ १२ ॥
 व्यजेदाक्लमनाशाच्च प्राणायामं च कारयेत् ।
 पृष्ठपाश्वोदरं मृद्यात्करैरुष्णैरधोमुखम् ॥ १३ ॥
 केशेषूत्क्षिप्य 'धुन्वीत' भीषयेद्दद्यालदंष्ट्रिभिः ।
 शस्त्रोत्काराजपुरुषैर्बस्तिरेति तथा ह्यधः ॥ १४ ॥
 पाणिवस्त्रैर्गलापीडं कुर्यान्न त्रियते यथा ।
 प्राणोदाननिरोधाद्धि 'सुप्रसिद्धतरायनः' ॥ १५ ॥

१. हि = प्राणोदानयोर्निरोधात् सुप्रसिद्धतरम् अयनं = स्थानं
 यस्य तादृशः सन्—अपानः पवनस्तं बस्तिं शीघ्रमेव बर्दिनयति—

अपानः पवनो बस्ति तमाश्वेवापकर्षन्ति ।
 कुष्ठक्रमुककल्कं च पाययेताम्लसंयुतम् ॥ १६ ॥
 औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्च बस्ति सोऽस्यानुलोमयेत् ।
 गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं चाधोऽनुलोमनम् ॥ १७ ॥
 पक्काशयस्थिते स्विन्ने निरूहो दाशमूलिकः ।
 यवकोलकुलत्थैश्च विधेयो मूत्रसाधितैः ॥ १८ ॥
 बस्तिर्गोमूत्रसिद्धैर्वा सामृतावंशपल्लवैः ।
 पूतीकरञ्जत्वक्पत्र-शठीदेवाह्वरोहिपैः ॥ १९ ॥
 सतैलगुडसिन्धूत्थ-विरेकौषधकल्कधान् ।
 बिल्वादिपञ्चमूलेन सिद्धो बस्तिरुरः स्थिते ॥ २० ॥
 शिरःस्थे नावनं धूमं प्रच्छाद्यं सर्षपैः शिरः ।
 बस्तिरत्युष्णतीक्ष्णाम्ल-घनोऽतिस्वेदितस्य वा ॥ २१ ॥
 अल्पे दोषे मृदौ कोष्ठे प्रयुक्तो वा पुनः पुनः ।
 अतियोगत्वमापन्नो भवेत्कुक्षिरुजाकरः ॥ २२ ॥
 विरेचनातियोगेन सतुल्याकृतिसाधनः ।
 बस्तिः क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णलवणः पैत्तिकस्य वा ॥ २३ ॥
 गुदं दहन् लिखन् क्षिपवन्करोत्यस्य परिश्रवम् ।
 सविदग्धं स्रवत्यस्तं वर्णैः पित्तं च भूरिभिः ॥ २४ ॥
 बहुशश्चातिवेगेन मोहं गच्छति सोऽसकृत् ।
 रक्तपित्तातिसारघ्नी ^१क्रिया तत्र प्रशस्यते ॥ २५ ॥
 दाहादिषु त्रिवृत्कल्कं मृद्वीकावारिणा पिबेत् ।

अतः-यथा न त्रियते तथा (प्राणोदाननिरोधार्यं) पाणिवस्त्रैर्गला-
 पीडं कुर्यात् । १. रक्तपित्तघ्नी—अतिसारघ्नी च ।

तद्धि पित्तशकृद्वातान्हत्वा दाहादिकाञ्जयेत् ॥ २६ ॥
 विशुद्धश्च पिबेच्छीतां यवागं शर्करायुताम् ।
 युज्याद्वाऽतिविरिक्तस्य क्षीणविट्कस्य भोजनम् ॥ २७ ॥
 माषयूषेण कुलमाषान्पानं दध्यथवा सुराम् ।
 सिद्धिर्बस्त्यापदामेवं, स्नेहबस्तेषु वक्ष्यते ॥ २८ ॥
 शीतोऽल्पो वाऽधिके वाते पित्तेऽयुष्णः कफे मृदुः ।
 अतिभुक्ते गुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा ॥ २९ ॥
 दत्तैस्तैरावृतः स्नेहो नायात्यभिभवादपि ।
 स्तम्भोरुसदनाध्मानज्वरशूलाङ्गमर्दनैः ॥ ३० ॥
 पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्याद् वायुना स्नेहमावृतम् ।
 स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तं रास्ना-पीतद्रु-तैलिकैः ॥ ३१ ॥
 सौवीरकसुराकोल-कुलत्थयवसाधितैः ।
 निरुहैर्निर्हरेत्सम्यक् समूत्रैः पाञ्चमूलिकैः ॥ ३२ ॥
 ताभ्यामेव च तैलाभ्यां सायं भुक्तेऽनुवासयेत् ।
 तृड्दाहरागसम्मोह-वैवर्ण्यतमकज्वरैः ॥ ३३ ॥
 विद्यात्पित्तावृतं स्वादुतिकैस्तं बस्तिभिर्हरेत् ।
 तन्द्राशीतज्वराऽऽलस्य-प्रसेकारुचिगौरवैः ॥ ३४ ॥
 सम्मूर्च्छाग्लानिभिर्विद्याच्छ्लेष्मणा स्नेहमावृतम् ।
 कषायतिक्तकटुकैः सुरागोमूत्रसाधितैः ॥ ३५ ॥
 फलतैलयुतैः साम्लैर्बस्तिभिस्तं विनिर्हरेत् ।
 छर्दिमूर्च्छाऽरुचिग्लानिशूलनिद्राऽङ्गमर्दनैः ॥ ३६ ॥
 आमलिङ्गैः सदाहैस्तं विद्यादत्यशनावृतम् ।
 कटूनां लवणानां च क्वाथैश्चूर्णैश्च पाचनम् ॥ ३७ ॥

मृदुर्विरेकः सर्वं च तन्नामविहितं हितम् ।
 विण्मूत्रानिलसङ्गातिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः ॥ ३८ ॥
 स्नेहं विडावृतं ज्ञात्वा स्नेहस्वेदैः सवर्तिभिः ।
 श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्च निरुहैः सानुवासनैः ॥ ३९ ॥
 निर्हरेद्विधिना सम्यगुदावर्तहरेण च ।
 अभुक्ते शूनपादौ वा पेया मात्राशितस्य वा ॥ ४० ॥
 गुदे प्रणिहितः स्नेहो वेगाद्वावत्यनावृतः ।
 ऊर्ध्वकायं ततः कण्ठादूर्ध्वेभ्यः खेभ्य एत्यपि ॥ ४१ ॥
 मूत्र-श्यामा-त्रिवृत्सिद्धो यवकोलकुलत्थवान् ।
 तत्सिद्धतैलो देयः स्यान्निरुहः सानुवासनः ॥ ४२ ॥
 कण्ठादागच्छतः स्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः ।
 छर्दिघ्नीभिः क्रियाभिश्च तस्य कुर्यान्निरुहणम् ॥ ४३ ॥
 नापक्वं प्रणयेत्स्नेहं गुदं स ह्युपलिम्पति ।
 ततः कुर्यात्स तृणमोहकण्डूशोफान् क्रियाऽत्र च ॥ ४४ ॥
 तीक्ष्णो बस्तिस्तथा तैलमर्कपत्ररसे शृतम् ।
 अनुच्छ्वास्य तु बद्धे वा दत्ते निःशेष एव च ॥ ४५ ॥
 प्रविश्य क्षुभितो वायुः शूलतोदकरो भवेत् ।
 तत्राभ्यङ्गो गुदे स्वेदो वातघ्नान्यशनानि च ॥ ४६ ॥
 द्रुतं प्रणीते निष्कृष्टे सहसोत्क्षिप्त एव वा ।

१. विशा = पुरीषेण-आवृतं विडावृतम् । विट्, विशौ, विशः,
 विष्ठाविशौ स्त्रियौ । २. शूलतोदौ करोति तच्छीलः (कृञो हेतुता-
 च्छील्यनानुलोभ्येपु टः) सुप्यजातौ—इति णिनेर्बाधकोऽयं टः) शूलतो-
 दपर-इति पाठान्तरम् ।

स्यात्कटीगुदजङ्घोरुबस्तिस्तम्भार्तिभेदनम् ॥ ४७ ॥
 भोजनं तत्र वातघ्नं स्वेदाभ्यङ्गाः सबस्तयः ।
 पीड्यमानेऽन्तरा मुक्ते गुदे प्रतिहतोऽनिलः ॥ ४८ ॥
 उरःशिरोरुजं सादमूर्धोश्च जनयेद्वली ।
 बस्तिः स्यात्तत्र विल्वादि-फलश्यामादिमूत्रवान् ॥ ४९ ॥
 अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठत्यायाति वा गलम् ।
 तत्र बस्तिर्विरेकश्च गलपीडादि कर्म च ॥ ५० ॥
 वमनाद्यैर्विशुद्धं च क्षामदेहबलानलम् ।
 यथाण्डं तरुणं, पूर्णं तैलपातं यथा, तथा ॥ ५१ ॥
 भिषक् प्रयत्नतो रक्षेत्सर्वस्मादपचारतः ।
 दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोऽम्ललवणौ रसौ ॥ ५२ ॥
 स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुकौ ततः ।
 अन्योन्यप्रत्यनीकानां रसानां स्निग्धरुक्षयोः ॥ ५३ ॥
 व्यत्यासादुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत् ।
 सर्वसहः स्थिरबलो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः ॥ ५४ ॥
 इति कल्पस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ।

षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो भेषजकल्पं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः^१ ।
 'धन्वे साधारणे देशे समे सन्मृत्तिके शुचौ ।

१. चरके कल्पस्थाने प्रथमाध्याये नवमसूत्रादारभ्य ।

श्मशानचैस्थायतनश्चभ्रवलमीकवर्जिते ॥ १ ॥
 मृदौ प्रदक्षिणजले कुशरोहिषसंस्तृते ।
 अफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपैर्बलवत्तरैः ॥ २ ॥
 शस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरसादिभिः ।
 जन्वजग्धं दवादग्धमविदग्धं च वैकृतैः ॥ ३ ॥
 भूतैश्छायातपाग्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम् ।
 अवगाढमहामूलमुदीचीं दिशमाश्रितम् ॥ ४ ॥
 अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपोषितः ।
 गृह्णीयादौषधं सुस्थं स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥
 सक्षीरं तदसम्पत्तावनतिक्रान्तवत्सरम् ।
 ऋते गुड-घृत-क्षौद्र-धान्य-कृष्णा-विडङ्गतः ॥ ६ ॥
 पयो ^१बाष्कयणं ग्राह्यं विण्मूत्रं तच्च नीरुजम् ।
 वयो बलवतां धातुपिच्छशृङ्गखुरादिकम् ॥ ७ ॥
 कषाययोनयः पञ्च ^२रसा लवणवर्जिताः ।
 रसः कल्कः शृतः शीतः फाण्टश्चेति प्रकल्पना ॥ ८ ॥

१. बाष्कयणी = तरुणवत्सा = षण्-मासवत्सा-गौः (वकीना)
 तस्या इदं बाष्कयणम् पयः क्षीरम् ।

२. मधुरकषायः, अम्लकषायः, तिक्तकषायः, कषायकषायः इति
 वैष्यके-तन्त्रे व्यवहारः । अन्वर्थोऽयं व्यवहारः, यतः खलु मधुरादयः
 स्वकीयै रूपरसगन्धैः स्थानमुपरज्य दोषमुन्मूलयन्ति, लवणस्तु-दोष-
 मेव च्छिन्नन्ति, भिनन्ति च, न तु स्थानं रञ्जयति सामर्थ्याभावात्,
 'रञ्जकत्वमेव कषायत्वम्' सोऽयं कषायो मधुरादीनां स्वरसादिभि-
 र्गुणनात् पञ्चविंशति-प्रकारः, सङ्कुरादिभिरनन्तः ।

पञ्चधैव कषायाणां पूर्वं पूर्वं बलाधिकाः ।
 सद्यःसमुद्धृतात्क्षुण्णाद्यः स्ववेत्पटपीडितात् ॥ ९ ॥
 स्वरसः स समुद्दिष्टः कल्कः पिष्टो द्रवाप्लुतः ।
 चूर्णोऽप्लुतः शृतः क्वाथः शीतो रात्रिं द्रवे स्थितः ॥ १० ॥
 सद्योऽभिषृतपूतस्तु फाण्टः तन्मानकल्पने ।
 युञ्जाद्वाध्यादिबलतस्तथा च वचनं मुनेः ॥ ११ ॥
 'मात्राया न व्यवस्थाऽस्ति व्याधिं कोष्ठं बलं वयः ।
 आलोच्य देशकालौ च योज्या तद्वच्च कल्पना ॥ १२ ॥
 मध्यं तु मानं निर्दिष्टं^१ स्वरसस्य चतुःपलम् ।
 पेप्यस्य कर्षमालोढ्यं तद्द्रवस्य पलत्रये ॥ १३ ॥
 क्वाथं द्रव्यपले कुर्यात्प्रस्थाधं पादशेषितम् ।
 शीतं पले पलैः षड्भिः चतुर्भिश्च ततोऽपरम् ॥ १४ ॥
 स्नेहपाके त्वमानोक्तौ चतुर्गुणविवर्धितम् ।
 कल्कस्नेहद्रवं योज्यम् अधीते शौनकः पुनः ॥ १५ ॥
 स्नेहे सिद्ध्यति शुद्धाम्बुनिःक्वाथस्वरसैः क्रमात् ।
 कल्कस्य योजयेदंशं चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ १६ ॥
 पृथक् स्नेहसमं दद्यात्पञ्चप्रभृति तु द्रवम् ।
 नाङ्गुलिग्राहिता कल्के न स्नेहेऽग्नौ सशब्दता ॥ १७ ॥
 वर्णादिसम्पच्च यदा तदैवं शीघ्रमाहरेत् ।

१. निर्दिष्टं न तु विहितम्, सम्प्रदायस्य हासदर्शनात्, तथा च रस-वीर्य-विपाकान्-भेषजस्य, कोष्ठं बलं वयश्च-रोगिणः, आनु-कूल्यं-देशकालयोः, व्यापत्प्रतीकारक्षमत्वं स्वस्य, मृदुत्व-दारुणत्वे, रोगस्य विचार्य, वैद्यः स्वसमये मात्रां कल्पयेत् । तथैव योगांश्च ।

घृतस्य फेनोपशमः, तैलस्य तु तदुद्भवः ॥ १८ ॥
 लेहस्य तन्तुमत्ताऽप्सु मज्जनं शरणं न च ।
 पाकस्तु त्रिविधो मन्दश्चिक्कणः खरचिक्कणः ॥ १९ ॥
 मन्दः कलकसमे किट्टे चिक्कणो मदनोपमे ।
 किञ्चित्सीदति कृष्णे च वर्त्यमाने च पश्चिमः ॥ २० ॥
 दग्धोऽत ऊर्ध्वं निष्कार्यः स्यादामस्त्वग्निसादकृत् ।
 मृदुर्नस्ये, खरोऽभ्यङ्गे, पाने बस्तौ च चिक्कणः ॥ २१ ॥
 १शाणं पाणितलं मुष्टिं कुडवं प्रस्थमाढकम् ।
 द्रोणं वहं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
 द्विगुणं योजयेदाद्रं कुडवादि तथा द्रवम् ।
 पेणालोडने वारि स्नेहपाके च निर्द्रवे ॥ २३ ॥
 कल्पयेत्सहशान् भागान् प्रमाणं यत्र नोदितम् ।
 कल्कीकुर्याच्च भैषज्यमनिरूपितकल्पनम् ॥ २४ ॥
 द्वौ शाणौ वटकः कोलं बदरं द्रक्कणश्च तौ ।
 अक्षं पिचुः पाणितलं सुवर्णं कवलग्रहः ॥ २५ ॥
 कर्षो बिडालपदकं तिन्दुकं पाणिमानिका ।
 शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे शुक्तिरष्टमिका पिचू ॥ २६ ॥

१. शाणम् ।)) पाणि तलम् १)) मुष्टिम् , ४)) वा ऽ- कुडवम् ऽ।
 प्रस्थम् ऽ१ आढकम् ऽ४ द्रोणम् ।ऽ६ वहम् १॥४४ एवमधुना लेखन-
 व्यवहारश्च विजानीयात् । शाण-कुडव-प्रस्थाऽढक द्रोण-वहाः पुमांसः,
 मुष्टिः स्त्री पाणितलम्—नपुंसकम् ।

२. पिचू = द्वौ कर्षौ = २)) शुक्तिः, अष्टमिका च कथ्यते ।

पलं प्रकुञ्चो बिल्वं च मुष्टिरात्रं चतुर्थिका^१ ।
 द्वे पले प्रसृतस्तौ द्वावञ्जलिस्तौ तु मानिका ॥ २७ ॥
 आढकं भाजनं कंसो द्रोणः कुम्भो घटोऽर्मणम् ।
^२तुलापलशतं तानि ^३विंशतिभार उच्यते ॥ २८ ॥
^४हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यः^५ प्रायो व्याप्ता वसुन्धरा ।
 सौम्यं पथ्यं च ^६तत्राऽऽद्यमाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम्^७ ॥ २९ ॥
 इति कल्पस्थाने षष्ठोऽध्यायः ।

१. चतुर्थिका = चतुर्थो भागः कुडवस्य, एवमष्टमिकाऽष्टमो भागः ।

२. तुला = ५६। पलानां ५-शतम् ।

३. तानि = पलशतानि = विंशतिः ३५१॥ भार उच्यते ।

४. हिमस्तुषारो विद्यते यस्मिन् स हिमवान् = सौम्यः पर्वतः
 विशेषेण-ईन्धे = दीप्यते शिलामयत्वेन विन्ध्यः (अधमादयश्चेति
 शाकटायनसूत्रेण यत् , पृषोदरादित्वाद् ह्रस्वः शिलाप्रचुरः शैलः,
 विन्ध्यश्चासौ शैलश्च विन्ध्यशैलः हिमवाँश्च विन्ध्यशैलश्चेति द्वन्द्वः
 ताभ्याम् प्रायोग्रहणात्समतलव्यवच्छेदः ।

५. तत्र = तयोर्मध्ये—आषम् = आदौ = प्रथमे हिमवति भव-
 माद्यम्-औषधं सौम्यं मृदु पथ्यञ्च, विन्ध्ये भवं वैन्ध्यम् आग्नेयम् =
 तीव्रम् न च तादृक् पथ्यम् । विपूर्वाद्-जिईन्धी-दीप्तावित्यस्माद् यकि
 पृषोदरादित्वात् सिद्धोऽन्वर्थो विन्ध्यशब्दः ततो भवार्थेऽणि वैन्ध्यम्
 'औषधीनां परा भूमिर्हिमवान्-शैलसत्तमः' । च.चि. अ. १ पा. १।३८

इति श्रीतारादन्तपन्तविरचिता कल्पस्थान-मागीरथी ।

अष्टाङ्गहृदयम्

उत्तरस्थानम्

प्रथमोऽध्यायः ।

१ अथाऽतो बालोपचरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘जातमात्रं विशोध्योल्बुधाद् बालं सैन्धवसर्पिषा ।

प्रसूतिक्लेशितं चानु बलातैलेन सेचयेत् ॥ १ ॥

अश्मनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।

अथास्य दक्षिणे कर्णे मन्त्रमुच्चारयेदिमम् ॥ २ ॥

‘अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादभिजायसे’ ।

‘आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां शतम्’ ॥ ३ ॥

‘शतायुः शतवर्षोऽमि दीर्घमायुरवाप्नुहि’ ।

‘नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहश्च त्वाभिरक्षतु’ ॥ ४ ॥

१. अथ = कायचिकित्सारूपप्रथमाङ्ग-निरूपणानन्तरम्-यतो,
बाल-ग्रहोद्धर्वाङ्ग-शल्य-द्रव्य-जरा-वृष-रूपाणि सप्ताऽङ्गानि परिशि-
ष्टानि-अत उत्तरस्थान-मारभ्यते, तत्रापि क्रमोद्दिष्टं बाल-तन्त्रं
(कुमार-भृत्यातन्त्रं) व्याख्यास्यामः ।

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च मूत्रेण चतुरङ्गुलात् ।
 बद्धोर्ध्वं वर्धयित्वा च ग्रीवायामवमज्जयेत् ॥ ५ ॥
 नाभिं च कुष्ठतैलेन सेचयेत्स्नपयेदनु ।
 क्षीरिवृक्षकषायेण सर्वगन्धोदकेन वा ॥ ६ ॥
 कोष्णेन तप्तरजत-तपनीयनिमज्जनैः ।
 ततो दक्षिणतर्जन्या तालून्मयाऽवगुण्ठयेत् ॥ ७ ॥
 शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत् ।
 हरेणुमात्रं मेधायुर्बलार्थमभिमन्त्रितम् ॥ ८ ॥
 ऐन्द्रीब्राह्मीवचाशङ्खपुष्पीकल्कं घृतं मधु ।
 चामीकर-वचा-ब्राह्मी-ताप्य-पथ्या-रजीकृताः ॥ ९ ॥
 लिङ्गान्मधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽथवा ।
 गर्भाम्भः सैन्धववता सर्पिषा वामयेत्ततः ॥ १० ॥
 प्राजापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत् ।
 सिराणां हृदयस्थानां विवृतत्वात्प्रसूतितः ॥ ११ ॥
 तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ।
 प्रथमे दिवसे तस्मात् , त्रिकालं मधुसर्पिषी ॥ १२ ॥
 अनन्तामिश्रिते मन्त्रपाविते प्राशयेच्छिशुम् ।
 द्वितीये लक्ष्मणासिद्धं तृतीये च घृतं ततः ॥ १३ ॥
 प्राङ्निषिद्धस्तनस्यास्य तत्पाणितलसम्मितम् ।
 स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥
 मातुरेव पिबेत्स्तन्यं तत्परं देहवृद्धये ।

१. द्वितीये तृतीये च दिवसे लक्ष्मणासिद्धं घृतमित्यन्वयः ।

स्तन्यधात्र्याबुभे कार्ये ^१तदसम्पदि वत्सले ॥ १५ ॥
 अव्यङ्गे ब्रह्मचारिण्यौ वर्णप्रकृतितः ^२समे ।
 नीरुजे मध्यवयसौ जीवद्वत्से न लोलुपे ॥ १६ ॥
 हिताहारविहारेण यत्नादुपचरेच्च ते ।
 शुक्-क्रोध-लङ्घनाऽऽयासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः ॥ १७ ॥
 स्तन्यस्य सीधुवर्ज्यानि मद्यान्यानूपजा रसाः ।
 क्षीरं क्षीरिण्यौषधयः शोकादीनां विपर्ययः ॥ १८ ॥
 विरुद्धाहारभुक्तायाः ^३क्षुधिताया विचेतसः ।
 प्रदुष्टधातोर्गर्भिण्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः ॥ १९ ॥
 स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।
 हस्वेन पञ्चमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥ २० ॥
 पृष्ठीं निशां विशेषेण कृतरक्षाबलिक्रियाः ।
 जागृत्युर्बान्धवास्तत्र दधतः परमां मुदम् ॥ २१ ॥
 दशमे दिवसे पूर्णे ^४विधिभिः स्वकुलोचितैः ।
 कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चाऽर्चितम् ^५ ॥ २२ ॥
 बिभ्रतोऽङ्गैर्मनोद्वाऽऽल-रोचनाऽगुरुचन्दनम् ।
 नक्षत्रदेवतायुक्तं बान्धवं वा ^६समाक्षरम् ॥ २३ ॥

१. तदसम्पदि = मातुः स्तन्याऽभावे ।

२. वर्णौ = ब्राह्मणादिः, प्रकृतिः = सात्त्विकादिः, ताभ्यां समे = तुल्ये । ३. विरुद्धः संयोगादिविरुद्धः पयोमत्स्यादिः, दुग्धकृसरादिः, आहारो भक्ष्यः पदार्थो भुक्तो = जग्धो यया तस्याः आहिताग्न्यादिः ।

४. पूर्णे = व्यतीते एकादशे-इत्यर्थः । ५. अर्चितं = प्रशस्तम् ।

६. त्रिपुरुषाऽनूकम्—अनरिप्रतिष्ठितं द्वयक्षरं चतुरक्षरं वा

ततः प्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुःपरीक्षणम् ।
 प्रागुदक्शिरसः कुर्याद्बालस्य ज्ञानवान् भिषक् ॥ २४ ॥
 शुचिधौतोपधानानि निर्बलीनि मृदूनि च ।
 शय्यास्तरणवासांसि^१ रक्षोघ्नैर्धूपितानि च ॥ २५ ॥
 काको विशस्तः शस्तश्च धूपने त्रिष्टुतान्वितः ।
 जीवस्वङ्गादिशृङ्गोस्थान् सदा बालः शुभान् मणीन् ॥ २६ ॥
 धारयेदौषधीः श्रेष्ठा ब्राह्मैन्द्रीजीवकादिकाः ।
 हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विशेषात्सततं वचाम्^२ ॥ २७ ॥
 आयुर्मेधास्मृतिस्वास्थ्यकरीं रक्षोऽभिरक्षिणोम् ।
 पञ्चमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत् ॥ २८ ॥
 षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत् ।
 षट्सप्तमाष्टमासेषु नीरुजस्य शुभेऽहनि ॥ २९ ॥
 कर्णौ हिमागमे विध्येद्वाग्यङ्कस्थस्य सान्त्वयन् ।
 प्राग्दक्षिणं कुमारस्य भिषग्वामं तु योषितः ॥ ३० ॥
 दक्षिणेन दधत्सूर्चीं पालिमन्येन पाणिना ।
 मध्यतः कर्णपीठस्य किञ्चिद्गण्डाश्रयं प्रति ॥ ३१ ॥
 जरायुमात्रप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।
 धृतस्य निश्चलं सम्यगलक्तकरसाङ्किते ॥ ३२ ॥
 विध्येद्दैवकृते छिद्रे सकृदेवर्जुलाघवात् ।
 नोर्ध्वं न पार्श्वतो नाधः, सिरास्तत्र हि संश्रिताः ॥ ३३ ॥

नाम कृतं कुर्यान्न तद्धितमिति महाभाष्यम् ।

१. रक्षोघ्नैः = गुरुगुलुप्रभृतिभिः ।

२. वचां विशेषाद्ब्राह्मोष्णां सततं धारयेदित्यन्वयः ।

कालिका मर्मरी रक्ताःऋतद्व्यधाद्रागरुज्वराः ।
 सशोफदाहसंरम्भमन्यास्तम्भाऽपतानकाः ॥ ३४ ॥
 तेषां यथामयं कुर्याद्विभज्याशु चिकित्सितम् ।
 स्थाने व्यधान्न रुधिरं न रुग्णागदिसम्भवः ॥ ३५ ॥
 स्नेहाक्तं सूच्यनुस्यूतं सूत्रं चानु निधापयेत् ।
 आमे तैलेन सिञ्चेच्च, बहलां तद्वदारया ॥ ३६ ॥
 विध्येत्पालीं हितभुजः सञ्चार्याथ स्थवीयसी ।
 वर्तिस्यहात्ततो रुढं वर्धयेत शनैः शनैः ॥ ३७ ॥
 यथैनं जातदशनं 'क्रमेणापनयेत् स्तनात् ।
 पूर्वोक्तं 'योजयेत्क्षीरमन्नं च लघु बृंहणम् ॥ ३८ ॥
 प्रियालमज्जा-मधुक-मधु-लाजा-सितोपलैः ।
 अपस्तन्यस्य संयोज्यः 'प्रीणनो' मोदकः शिशोः ॥ ३९ ॥
 'दीपनो' बालबिल्वैलाशर्करालाजसक्तुभिः ।
 'सङ्ग्रही' धातकीपुष्प-शर्करालाजतर्पणैः ॥ ४० ॥
 रोगांश्चास्य जयेत्सौम्यैर्भेषजैरविषादकैः ।
 अन्यत्रात्ययिकाद्व्याधेर्विरेकं सुतरां त्यजेत् ॥ ४१ ॥
 त्रासयेन्नाविधेयं तं, त्रस्तं गृह्णन्ति हि ग्रहाः^१ ।

१. क्रमेण निवारयेन्न तु सहसा, मातुः सुखार्थमिदं बालकस्य तु मातुः स्तन्यपाने गुण एव, रुग्णां गर्भिणीञ्च वर्जयित्वा ।

२. पूर्वोक्तं यष्टीमधु-पिप्पल्यादिभिः शृतं, बालोपयोगि, गन्धम् आजं वा क्षीरम् । लघु = सुपचं, बृंहणं = पोषकम्—अन्नं च । योजयेत् = पाययेत् = खादयेच्च ।

३. ग्रहाः = बालग्रहाः स्कन्दाऽपस्मार-पतनादयः ।

वस्त्रवातात्परस्पर्शात् पालयेद्ब्रह्मिताम् तम् ॥ ४२ ॥

ब्राह्मयादिघृतम्

ब्राह्मी-सिद्धार्थक-वचा सारिवा-कुष्ठ-सैन्धवैः ।

सकणैः साधितं पीतं वाङ्मेधास्मृतिवृद्धम् ॥ ४३ ॥

आयुष्यं पाप्मरक्षोघ्नं भूतोन्मादनिबर्हणम् ।

वचेन्दुलेखामण्डूकी-शङ्खपुष्पीशतावरीः ॥ ४४ ॥

ब्रह्मसोमामृताब्राह्मीः कल्कीकृत्य पलांशिकाः ।

‘अष्टाङ्गं’ विपचेत्सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥

तत्पीतं धन्यमायुष्यं वाङ्मेधास्मृतिबुद्धिकृत् ।

अजाक्षीराभयान्योष-पाठोग्राशिग्रुसैन्धवैः ॥ ४६ ॥

सिद्धं ‘सारस्वतं’ सर्पिर्वाङ्मेधास्मृतिवृद्धिकृत् ।

वचाऽमृताशठीपथ्या-शङ्खिनीवेल्हनागरैः ॥ ४७ ॥

अपामार्गेण च ‘घृतं’ साधितं पूर्ववद्गुणैः ।

हेम श्वेतवचा कुष्ठम् अर्कपुष्पी सकाञ्चना ॥ ४८ ॥

हेम मत्स्याक्षकः शङ्खः, कैडर्यः कनकं वचा ।

चत्वार एते पादोक्ताः प्राश्या मधुघृतप्लुताः ॥ ४९ ॥

वर्षं लीढा वपुर्मेधा-बलवर्णकराः शुभाः ।

वचा-यष्टयाङ्ग-सिन्धूथ-पथ्या-नागर-दीप्यकैः ॥ ५० ॥

शुद्ध्यते वाग्धविर्लीढैः ‘सकुष्ठकणजीरकैः ॥ ५० ॥

इत्युत्तरस्थाने प्रथमोऽध्यायः ।

१. हविषा सह लीढैरास्वादितैः कुष्ठसहितैः कणजीरकैः वाक् = वाणी शुद्ध्यते = स्वयमेव शुद्धा भवति, नौपायान्तरमपेक्षते (कर्म-वत्कर्मणा तुल्यक्रियः ।

द्वितीयोऽध्यायः ।

'अथाऽतो बालाऽऽमयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'त्रिविधः कथितो बालः' क्षीरान्नोभयवर्तनः ।
 स्वास्थ्यं^१ ताभ्यामदुष्टाभ्यां, दुष्टाभ्यां रोगसम्भवः, ॥ १ ॥
 यदग्निरेकतां याति न च दोषैरधिष्ठितम् ।
 'तद्विशुद्धं'पयः ऋवाताद् दुष्टं' तु प्लवतेऽभसि ॥ २ ॥
 कषायं फेनिलं रुक्षं वर्चोमूत्रविबन्धकृत् ।
 'पित्ताद्'दुष्टम्लकटुकं पीतराज्यप्सु दाहकृत् ॥ ३ ॥
 'कफात्'सलवणं सान्द्रं जले मज्जति पिच्छिलम् ।
 संसृष्टलिङ्गं संसर्गाभिलिङ्गं सान्निपातिकम् ॥ ४ ॥
 यथास्वल्लिङ्गांस्तद्वयाधीन् जनयत्युपयोजितम् ।
 'शिशोस्तीक्ष्णामतीक्ष्णां च रोदनाल्लक्षयेद्भुजम् ॥ ५ ॥
 सोऽयं स्पृशेद् भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाक्षमः ।
 तत्र विद्याद्भुजम् ऋमूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥ ६ ॥

१. अथ = बालपरिचार-ज्ञानानन्तरं यतस्तदामयनिराकरणम-
 पेक्षितम् अतः तत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

२. क्षीरमात्रभोजनः, अन्नमात्रभोजनः, क्षीराऽन्नोभयभोजन-
 इति त्रिविधः । ३. ताभ्यां = क्षीरान्नाभ्याम् ।

४. दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताऽथ रोगिणामित्यत्र विशेषमाह-
 शिशोरिति । तीक्ष्णां रुजं = पीडां तीव्ररोदनात्, अतीक्ष्णां पीडां
 मृदुरोदनादनुमिनुयादित्यर्थः ।

हृदि जिह्वौष्ठदशन-श्वासमुष्टिनिपीडितैः ।
 कोष्ठे विबन्धवमथु-स्तनदंशान्त्रकूजनैः ॥ ७ ॥
 आध्मानपृष्ठनमन-जठरोन्नमनैरपि ।
 बस्तौ, गुह्ये च विष्मूत्र-सङ्गत्रासदिगीक्षणैः ॥ ८ ॥
 'अथ धात्र्याः' क्रियां कुर्याद्यथादोषं यथामयम् ।
 तत्र 'वातात्मके' स्तन्ये दशमूलं ज्यहं पिबेत् ॥ ९ ॥
 अथवाऽग्निवचापाठा-कटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।
 सभार्गीदारुसरल-वृश्चिकालीकणोषणम् ॥ १० ॥
 ततः पिबेदन्यतमं वातव्याधिहरं घृतम् ।
 अनु चाच्छसुरामेवं स्निग्धां मृदु विरेचयेत् ॥ ११ ॥
 बस्तिकर्म ततः कुर्यात्स्वेदादींश्चानिलापहान् ।
 रास्नाऽजमोदासरल-देवदारुरजोऽन्वितम् ॥ १२ ॥
 बालो लिङ्गाद् घृतं तैर्वा विपक्वं ससितोपलम् ।
 पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलीनिम्बचन्दनम् ॥ १३ ॥
 धात्री कुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा ससारिवम् ।
 अथवा त्रिफलामुस्तभूनिम्बकदुरोहिणीः ॥ १४ ॥
 सारिवादिं पटोलादिं पद्मकादिं तथा गणम्^१ ।
 घृतान्येभिश्च सिद्धानि पित्तघ्नं च विरेचनम् ॥ १५ ॥
 शीतांश्चाभ्यङ्गलेपादीन् युञ्ज्यात् क्लेशलेष्मात्मके पुनः ।
 यष्टाङ्गसैन्धवयुतं कुमारं पाययेद् घृतम् ॥ १६ ॥
 सिन्धूत्थपिप्पलीमद्वा पिष्टैः क्षौद्रयुतैरथ ।

१राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ॥ १७ ॥
 सुखमेवं वमेद्वालः ऋतीचणैर्धात्रीं तु वामयेत् ।
 अथाऽचरितसंसर्गी मुस्तादि कथितं पिबेत् ॥ १८ ॥
 तद्वत्तगर-पृथ्वीका-सुरदारु-कलिङ्गकान् ।
 अथवाऽतिविषा-मुस्त-षड्ग्रन्था-पञ्चकोलकम् ॥ १९ ॥
 'स्तन्ये त्रिदोषमलिने' दुर्गन्ध्यामं जलोपमम् ।
 विबद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते ॥ २० ॥
 शकृन्नानान्यथावर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम् ।
 ज्वराऽरोचक-तृट्छर्दि-शुष्कोद्गारविजृम्भकाः ॥ २१ ॥
 अङ्गभङ्गोऽङ्गविक्षेपः कूजनं वेपथुर्भ्रमः ।
 घ्राणाक्षिमुखपाकाद्या जायन्तेऽन्येऽपि, तं गदम् ॥ २२ ॥
 'क्षीरालसक'मित्याहुरस्ययं चातिदारुणम् ।
 तत्राशु धात्रीं बालं च वमनेनोपपादयेत् ॥ २३ ॥
 विहितायां च संसर्ग्यां वचादिं योजयेद्गणम् ।
 निशादिं वाऽथवा माद्रीपाठातिक्ताघनामयान् ॥ २४ ॥
 पाठाशुष्यमृतातिक्त-तिक्तादेवाह्वसारिवाः ।
 समुस्तमूर्वेन्द्रयवाः स्तन्यदोषहराः परम् १ ॥ २५ ॥
 अनुबन्धे यथाव्याधिं प्रतिकुर्वीत कालवित् ।
 दन्तोद्भेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम् ॥ २६ ॥
 विशेषाज्ज्वरविद्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाम् ।
 अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते ॥ २७ ॥

१. राठपुष्पैर्मदनपुष्पैः ।

२. दशेमानि स्तन्यशोधनानि, च० सू० ४।११।

पृष्ठभङ्गे बिडालानां बर्हिणां च शिखोद्गमे ।
 दन्तोद्भवे च बालानां नहि किञ्चिन्न दूयते ॥ २८ ॥
 यथादोषं यथारोगं यथोद्रेकं यथाशयम् ।
 विभज्य देशकालादींस्तत्र योज्यं भिषग्जितम् ॥ २९ ॥
 त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च यत् ।
 अतस्तदेव भैषज्यं, मात्रा त्वस्य कनीयसी ॥ ३० ॥
 सौकुमार्याल्पकायत्वात्सर्वाङ्गाऽनुपसेवनात् ।
 स्निग्धा एव सदा बाला घृतक्षीरनिषेवणात् ॥ ३१ ॥
 सद्यस्तान् वमनं तस्मात्पाययेन्मतिमान् मृदु^१ ।
 स्तन्यस्य^२ तृप्तं वमयेत् क्षीरक्षीराज्जसेविनम् ॥ ३२ ॥
 पीतवन्तं तनुं पेयामन्नादं घृतसंयुताम् ।
 बस्ति साध्ये विरेकेण मर्शेन प्रतिमर्शनम् ॥ ३३ ॥
 युञ्ज्याद्विरेचनादींस्तु धान्या एव^३ यथोदितान् ।
 मूर्वाव्योषवराकोलजम्बुत्वग्दारुसर्षपाः ॥ ३४ ॥
 सपाठा मधुना लीढाः स्तन्यदोषहराः परम् ।
 'दन्तपाली' समधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् ॥ ३५ ॥
 पिप्पल्या धातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा ।
 लावतित्तिरवस्तूररजः पुष्परसप्लुतम् ॥ ३६ ॥

१. मृदु=विना दुःखं हृदिकरं वमनं = वमनहेतुभूतं मदनकुसु-
 मादिकम् ।

२. सम्बन्धमात्रविवक्षायां करणे षष्ठी, नास्मिस्तृप्यति काष्ठाना-
 मिति वत् । वमयेदित्यत्र 'मितां ह्रस्व' इति ह्रस्वः ।

३. धान्या एव न तु स्तनन्धयस्य ।

द्रुतं करोति बालानां दन्तकेसरवन्मुखम् ।
वचाद्विबृहतीपाठाकटुकातिविषाघनैः ॥ ३७ ॥
मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजन्मनि ।

रजन्यादिचूर्णम्—

रजनीदारुसरलश्रेयसीबृहतीद्वयम् ॥ ३८ ॥
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं माक्षिकसर्पिषा ।
ग्रहणीदीपनं श्रेष्ठं मारुतस्यानुलोमनम् ॥ ३९ ॥
अतीसारज्वरश्वास-कामलापाण्डु-कासनुत् ।
बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्णदम् ॥ ४० ॥

समङ्गादिघृतम्—

समङ्गाधातकीरोधकुटञ्जटवलाह्वयैः ।
महासहासुद्रसहा-सुद्रबिल्वशलाटुभिः ॥ ४१ ॥
सकार्पासीफलैस्तोये साधितैः साधितं घृतम् ।
क्षीरमस्तुयुतं हन्ति शीघ्रं दन्तोद्भवोद्भवान् ॥ ४२ ॥
विविधानामयानेतद्-वृद्धकश्यपनिर्मितम् ।
दन्तोद्भवेषु रोगेषु न बालमतियन्त्रयेत्^१ ॥ ४३ ॥
स्वयमप्युपशाम्यन्ति जातदन्तस्य यद्वदाः ।
अस्यहःस्वप्न-शीताऽम्बुश्लैष्मिक-स्तन्यसेविनः ॥ ४४ ॥
शिशोः कफेन रुद्धेषु स्रोतःसु रसवाहिषु ।
अरोचकः प्रतिशयायो ज्वरः कासश्च जायते ॥ ४५ ॥
कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशुक्लमुखेक्षणः ।

१. बालं नाति यन्त्रयेत् = पथ्याहार-विहारादिना नातीव नियमयेत् ।

सैन्धव-व्योष-शार्ङ्गेष्टा-पाठा-गिरिकदम्बकान् ॥ ४६ ॥
 शुष्यतो मधुसर्पिर्भ्यामरुच्यादिषु योजयेत् ।
 अशोकरोहिणीयुक्तं पञ्चकोलं च चूर्णितम् ॥ ४७ ॥
 बदरीधातकीधात्रीचूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम् ।
 स्थिरा-वचा-द्विवृहती-काकोली-पिप्पली-नतैः ॥ ४८ ॥
 निचुलोत्पलवर्षाभू-भार्ङ्गीमुस्तैश्च कार्षिकैः ।
 सिद्धं प्रस्थार्धमाज्यस्य 'स्रोतसां शोधनं' परम् ॥ ४९ ॥
 सिंहाश्वगन्धासुरसा-कणागर्भं च तद्गुणम् ।
 यष्ट्याङ्ग-पिप्पली-रोध्र-पद्मकोत्पलचन्दनैः ॥ ५० ॥
 तालीससारिवाभ्यां च साधितं शोषजिद् घृतम् ।
 शृङ्गीमधूलिकाभार्ङ्गीपिप्पलीदेवदारुभिः ॥ ५१ ॥
 अश्वगन्धाद्विकाकोली-रास्त्रर्षभकजीवकैः ।
 शूर्पपर्णीविडङ्गैश्च कल्कितैः साधितं घृतम् ॥ ५२ ॥
 शशोत्तमाङ्गनिर्यूहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम् ।
 वचा-वयस्था-तगर-कायस्था-चोरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥
 बस्तमूत्रसुराभ्यां च 'तैलमभ्यञ्जने' हितम् ।

लाक्षादितैलम्—

लाक्षारससमं तैलप्रस्थं मस्तु चतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥
 अश्वगन्धानिशादारु-कौन्तीकुष्ठाब्दचन्दनैः ।
 समूर्वारोहिणीरास्त्रा-शताङ्गामधुकैः समैः ॥ ५५ ॥
 सिद्धं 'लाक्षादिकं नाम' तैलमभ्यञ्जनादिदम् ।
 बल्यं ज्वरहृद्यौन्माद-श्वासापस्मारवातनुत् ॥ ५६ ॥
 यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीनां च शस्यते ।

मधुनाऽतिविषाशृङ्गीपिप्पलीर्लेहयेच्छिशुम् ॥ ५७ ॥
 एकां वातिविषां कास-ज्वर-च्छर्दिरुपद्रुतम् ।
 पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तं मधुसर्पिषा ॥ ५८ ॥
 द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ।
 पिप्पलीपञ्चलवण-कृमिजित्पारिभद्रकम् ॥ ५९ ॥
 तद्वह्निह्यात्तथा व्योषं मर्षीं वा रोमचर्मणाम् ।
 लाभतः शल्यक-श्वाविद्रोधर्क्षशिखिजन्मनाम् ॥ ६० ॥

वमिवारकं घृतम्—

खदिरार्जुनतालीस-कुष्ठचन्दनजे रसे ।
 सचीरं साधितं सर्पिर्वमथुं विनियच्छति ॥ ६१ ॥
 सदन्तो जायते यस्तु दन्ताः प्राग्यस्य चोत्तराः ।
 कुर्वीत तस्मिन्नुत्पाते 'शान्तिकं च द्विजातये ॥ ६२ ॥
 दद्यात्सदक्षिणं बालं 'नैगमेषं' च पूजयेत् ।
 'हनुमूलगतो वायुर्दन्तदेशेऽस्थिगोचरः ।
 यदा शिशोः प्रकुपितो नोत्तिष्ठन्ति तदा द्विजाः ॥
 रूक्षाशिनो वातिकस्य चालयत्यनिलः सिराः ।
 हन्वाश्रयाः प्रसुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः ॥'
 तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते 'तालुकण्टकम्' ॥ ६३ ॥
 तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ।
 तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्व्रवम् ॥ ६४ ॥
 वृडास्यकण्ड्वक्षिरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ।
 तत्रोत्क्षिप्य यवक्षारचौद्राभ्यां प्रतिसारयेत् ॥ ६५ ॥
 तालु तद्वत्कणाशुण्ठी-गोशकृद्रस-सैन्धवैः ।

शृङ्गबेरनिशाभृङ्गं कल्कितं वटपल्लवैः ॥ ६६ ॥
 बद्ध्वा गोशकृता लिप्तं कुकूले स्वेदयेत्ततः ।
 रसेन लिम्पेत्ताल्वास्यं नेत्रे च परिषेचयेत् ॥ ६७ ॥
 हरीतकीवचाकुष्ठ-कल्कं माक्षिकसंयुतम् ।
 पीत्वा कुमारः स्तन्येन 'मुच्यते तालुकण्टकात्' ॥ ६८ ॥
 मलोपलेपात्स्वेदाद्वा 'गुदे' रक्तकफोद्भवः ।
 ताम्रो व्रणोऽन्तःकण्डूमान् जायते भूर्युपद्रवः ॥ ६९ ॥
 केचित्तं 'मातृकादोषं' बदन्त्यन्येऽहिपूतनम्^१ ।
 प्रष्टारुगुदकन्दं च केचिच्च तमनामिकम् ॥ ७० ॥
 तत्र^२ धान्याः पयः शोध्यं पित्तश्लेष्महरौषधैः ।
 शृतशीतं च शीताम्बुयुक्तमन्तरपानकम् ॥ ७१ ॥
 सक्षौद्रतार्क्ष्यशैलेन व्रणं तेन च लेपयेत् ।
 त्रिफलाबदरीप्लक्ष्त्वक्काथपरिषेचितम् ॥ ७२ ॥
 कासीसरोचनातुत्थमनोह्वाऽऽलरसाञ्जनैः ।
 लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वाऽवचूर्णयेत् ॥ ७३ ॥
 सुशलक्ष्णैरथवा यष्टीशङ्खसौवीरकाञ्जनैः ।
 सारिवाशङ्खनाभिभ्यामसनस्य त्वचाऽथवा ॥ ७४ ॥
 रागकण्डूत्कटे कुर्याद्रक्तस्त्रावं जलौकसा ।
 सर्वं च पित्तव्रणजिच्छस्यते 'गुदकुट्टके' ॥ ७५ ॥
 पाठावेल्लाद्विरजनी-मुस्तभाङ्गीपुनर्नवैः ।
 सविस्वभ्रूषणैः सर्पिर्बृश्चिकालीयुतैः शृतम् ॥ ७६ ॥

१. बदन्त्यन्येऽपि पूतनम्-इति पा० ।

२. तत्र = तस्मिन् गुद कन्दे सति ।

लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः^१ ।
 व्याधेर्यद्यस्य भैषज्यं स्तनस्तेन प्रलेपितः ।
 स्थितो मुहूर्तं धौतोऽनुपीतस्तं तं जयेद्ब्रह्म ॥ ७७ ॥
 इत्युत्तरस्थाने द्वितीयोऽध्यायः ।

तृतीयोऽध्यायः ।

^२अथातो बालग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो^३ महर्षयः ।
 'पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः शूलपाणिना ।
^४'मनुष्यविग्रहाः पञ्च सप्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः ॥ १ ॥
 स्कन्दो विशाखो मेषाख्यः श्वग्रहः पितृसंज्ञितः ।
 शकुनिः पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना ॥ २ ॥
 मुखमण्डलिका तद्वद्रेवती शुष्करेवती ।
 तेषां ग्रहीष्यतां रूपं प्रततं रोदनं ज्वरः ॥ ३ ॥
 सामान्यं रूपमुन्नासजृम्भाभ्रूक्षेपदीनताः ।
 फेनस्त्रावोर्ध्वदृष्टयोष्ठदन्तदंशप्रजागराः ॥ ४ ॥

-
१. मृत्तिकामक्षणं बालस्य स्वाभाविकम् ।
 २. अथ = बालाऽमयप्रतिषेधानन्तरं यतो बालग्रहा अपि रोग-
 हेतवः अतः-तत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 ३. अत्र आदिशब्दाद् धन्वन्तरि-प्रभृतयः, मुहूर्ते-उत्तरतन्त्रे
 द्रष्टव्याः सर्वे विषयाः ।
 ४. मनुष्यविग्रहाः = पुरुषशरीराः स्कन्दादयः, स्त्रीशरीराः शकु-
 निप्रभृतयः ।

रोदनं कूजनं स्तन्यविद्वेषः स्वरवैकृतम् ।
नखैरकस्मात्परितः स्वधान्यङ्गविलेखनम् ॥ ५ ॥

स्कन्दगृहीतलक्षणम् ।

तत्रैकनयनस्त्रावी शिरो विक्षिपते मुहुः ।
हतैकपक्षः स्तब्धाङ्गः सस्वेदो नतकन्धरः ॥ ६ ॥
दन्तखादी स्तनद्वेषी त्रस्यन् रोदिति विस्वरः ।
वक्रवक्त्रो वमेल्लालां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते ॥ ७ ॥
वसाऽसृगन्धिरुद्विग्नो बद्धमुष्टिशकृच्छिशुः ।
चलितैकाक्षिगण्डभ्रूः संरक्तोभयलोचनः ॥ ८ ॥
'स्कन्दाऽऽर्तस्तेन' वकल्यं मरणं वा भवेद् ध्रुवम् ।

विशाखगृहीतलक्षणम् ।

संज्ञानाशो मुहुः केशलुञ्चनं कन्धरानतिः ॥ ९ ॥
विनम्य जृम्भमाणस्य शकृन्मूत्रप्रवर्तनम् ।
फेनोद्वमनमूर्ध्वेक्षा-हस्तभ्रूपादनर्तनम् ॥ १० ॥
स्तनस्वजिह्वासन्दंशसंरम्भज्वरजागराः ।
पूयशोणितगन्धिश्च^१स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ ११ ॥

मेषलक्षणम् ।

आध्मानं पाणिपादास्यस्पन्दनं फेननिर्वमः ।
तृणमुष्टिवन्धातीसारस्वरदन्यविवर्णताः ॥ १२ ॥
कूजनं स्तननं छर्दिः कासहिध्माप्रजागराः ।
ओष्ठदंशाङ्गसङ्कोचस्तम्भबस्ताऽऽभगन्धताः ॥ १३ ॥

१. स्कन्दाऽपस्मार-इति विशाखस्य नामान्तरम् ।

ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः ।
मूर्च्छैकनेत्रशोफश्च^१ नैगमेषग्रहाकृतिः ॥ १४ ॥

श्वग्रहलक्षणम् ।

कम्पो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम् ।
बहिरायामनं जिह्वादंशोऽन्तः कण्ठकूजनम् ॥ १५ ॥
धावनं विट्सगन्धत्वं क्रोशनं श्वानवच्छुनि^२ ।

पितृग्रहः ।

रोमहर्षो मुहुस्त्रासः सहसा रोदनं ज्वरः ॥ १६ ॥
कासातिसारवमथुजृम्भातृट्श्वगन्धताः ।
अङ्गेष्वाक्षेपविक्षेपशोषस्तम्भविवर्णताः ॥ १७ ॥
मुष्टिवन्धः स्तुतिश्चाक्ष्णोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे ।

शकुनिः ।

स्रस्ताङ्गत्वमतीसारो जिह्वातालुगले घ्राणाः ॥ १८ ॥
स्फोटाः सदाहरुक्पाकाः सन्धिषु स्युः पुनःपुनः ।
निश्यहि प्रविलीयन्ते पाको बक्त्रे गुदेऽपि वा ॥ १९ ॥
भयं शकुनिगन्धत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे ।

पूतना

पूतनायां वमिः कम्पस्तन्द्रा रात्रौ प्रजागरः ॥ २० ॥
हिष्माध्मानं शकृद्भेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः ।
स्रस्तहृष्टाङ्गरोमत्वं काकवत्पूतिगन्धता ॥ २१ ॥

शीतपूतना

शीतपूतनया कम्पो रोदनं तिर्यगीक्षणम् ।

१. नैगमेषः = मेषः । २. शुनि = श्वग्रहगृहीते सति ।

तृष्णाऽन्त्रकूजोऽतीसारो वसावद्विस्त्रगन्धता ॥ २२ ॥

पार्श्वस्यैकस्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च ।

अन्धपूतना ।

^१अन्धपूतनया छर्दिज्वरः कासोऽल्पनिद्रता ॥ २३ ॥

वर्चसो भेदवैवर्ण्यदौर्गन्धान्यङ्गशोषणम् ।

दृष्टिसादोऽतिरुक्कण्डूपोथकीजन्म शून्यता ॥ २४ ॥

हिध्मोद्वेगस्तनद्वेष-वैवर्ण्यं स्वरतीक्ष्णता ।

वेपथुर्मत्स्यगन्धित्वमथवा साम्लगन्धिता ॥ २५ ॥

मुखमण्डलिका ।

^२मुखमण्डितया पाणिपादस्य रमणीयता ।

सिराभिरसिताभाभिराचितोदरता ज्वरः ॥ २६ ॥

अरोचकोऽङ्गलपनं गोमूत्रसमगन्धता ।

रेवती ।

रेवत्यां श्यावनीलत्वं कर्णनासाक्षिमर्दनम् ॥ २७ ॥

कासहिध्माक्षिविक्षेप-वक्त्रवक्त्रवरक्तताः ।

वस्तगन्धो ज्वरः शोषः पुरीषं हरितं द्रवम् ॥ २८ ॥

शुष्करेवती ।

जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वाङ्गसङ्क्षयः ।

असाध्यलक्षणम् ।

केशशातोऽन्नविद्वेषः स्वरदैन्यं विवर्णता ॥ २९ ॥

रोदनं गृध्रगन्धित्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ।

१. अन्धपूतना = दृष्टिपूतना । २. मुखमण्डिता = मुखमण्डलिका ।

उदरे ग्रन्थयो वृत्ता यस्य नानाविधं शकृत् ॥ ३० ॥
 जिह्वाया निम्नता मध्ये श्यावं तालु च तं त्यजेत् ।
 भुञ्जानोऽन्नं बहुविधं यो बालः परिहीयते ॥ ३१ ॥
 तृष्णागृहीतः क्षामाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती ।
 'हिंसारत्यर्चनाकाङ्क्षा ग्रहग्रहणकारणम् ॥ ३२ ॥
 तत्र 'हिंसात्मके' बालो महान् वा क्षुतनासिकः ।
 क्षतजिह्वः कण्ठेद्वादमसुखी साश्रुलोचनः ॥ ३३ ॥
 दुर्वर्णो हीनवचनः पूतिगन्धिश्च जायते ।
 क्षामो मूत्रपुरीषं स्वं मृद्नाति न जुगुप्सते ॥ ३४ ॥
 हस्तौ चोद्यम्य संरब्धो हन्त्यात्मानं तथा परम् ।
 तद्वच्च शस्त्रकाष्ठाद्यैरग्निं वा दीप्तमाविशेत् ॥ ३५ ॥
 अप्सु मज्जेत्पतेत्कूपे कुर्यादन्यच्च तद्विधम् ।
 तृड्दाहमोहान् पूयस्य छुर्दनं च प्रवर्तयेत् ॥ ३६ ॥
 रक्तं च सर्वमार्गेभ्यो रिष्टोत्पत्तिं च तं त्यजेत् ।
 रहःस्त्रीरतिसंलापगन्धस्त्रग्भूषणप्रियः ॥ ३७ ॥
 हृष्टः शान्तश्च दुःसाध्यो 'रतिकामेन' पीडितः ।
 दीनः परिमृशेद्वक्त्रं शुष्कोष्ठगलतालुकः ॥ ३८ ॥
 शङ्कितं वीक्षते रौति ध्यायत्यायाति दीनताम् ।
 अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नाति बुभुक्षते ॥ ३९ ॥
 गृहीतं 'बलिकामेन' तं विद्यात्सुखसाधनम् ।
 'हन्तुकामं' जयेद्धोमैः सिद्धमन्त्रप्रवर्तितैः ॥ ४० ॥

१. हिंसा च रतिश्च, पूजाग्रहणेच्छा च बालग्रहणां बालक-
ग्रहणे हेतुः ।

इतरौ तु यथाकामं रतिबल्यादिदानतः ।

क्रियाक्रममाह—

अथ साध्यग्रहं बालं विविक्ते शरणे स्थितम् ॥ ४१ ॥

त्रिरह्नः सिक्तसम्मृष्टे सदा सन्निहितानले ।

विकीर्णभूतिकुसुमपत्रबीजान्नसर्षपे ॥ ४२ ॥

१रक्षोघ्नतैलज्वलित-प्रदीपहतपाप्मनि ।

व्यवायमद्यपिशित-निवृत्तपरिचारके ॥ ४३ ॥

पुराणसर्पिषाऽभ्यक्तं परिषिक्तं सुखाम्बुना ।

साधितेन बलानिम्बवैजयन्तीनृपद्रुमैः ॥ ४४ ॥

पारिभद्रककट्वङ्गजम्बूवरुणकटूतैः ।

कपोतवङ्कापामार्ग-पाटलामधुशिग्रुभिः ॥ ४५ ॥

काकजङ्घामहाश्वेता-कपित्थक्षीरिपादपैः ।

• सकदम्बकरजैश्च धूपं स्नातस्य चाचरेत् ॥ ४६ ॥

द्वीपिन्याग्राहिसिंहर्क्षचर्मभिर्घृतमिश्रितैः ।

२पूतीदशाङ्गसिद्धार्थवचाभस्मातदीप्यकैः ॥ ४७ ॥

सकुष्ठैः सघृतैर्धूपः सर्वग्रहविमोक्षणः ।

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ॥ ४८ ॥

पाठा प्रतिविषा व्योषं दशाङ्गः कश्यपोदितः ।

सर्षपा निम्बपत्रार्कमूलमश्वत्थुरा वचा ॥ ४९ ॥

भूर्जपत्रं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारणः ।

अनन्ताऽऽम्रास्थितगरं मरिचं मधुरो गणः ॥ ५० ॥

१. रक्षोघ्नः = सर्षपः । २. पूती = पूतिकरञ्जः ।

शृगालविज्ञा मुस्ता च कल्कितैस्तैर्घृतं पचेत् ।
 दशमूलरसक्षीरयुक्तं तदग्रहजित्परम् ॥ ५१ ॥
 रास्ना द्वधंशुमतीवृद्ध-पञ्चमूलवचाघनात् ।
 क्वाथे सर्पिः पचेत्पिष्टैः सारिवाव्योषचित्रकैः ॥ ५२ ॥
 पाठाविडङ्गमधुकपयस्याहिङ्गुदारुभिः ।
 सग्रन्थिकैः सेन्द्रयवैः शिशोस्तत्सततं हितम् ॥ ५३ ॥
 सर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम् ।
 सारिवासुरभीब्राह्मीशङ्खिनीकृष्णसर्षपैः ॥ ५४ ॥
 वचाऽश्वगन्धासुरसायुक्तैः सर्पिर्विपाचयेत् ।
 तन्नाशयेद् ग्रहान् सर्वान् पानेनाभ्यञ्जनेन च ॥ ५५ ॥
 गोशृङ्गलोमबालाहिनिर्मोकवृषदंशविट्^१ ।
 निम्बपत्राज्यकटुका-मदनं बृहतीद्वयम् ॥ ५६ ॥
 कार्पासास्थिवच्छागरोमदेवाह्वसर्षपम् ।
 मयूरपत्रश्रीवासं तुषकेशं सरामठम् ॥ ५७ ॥
 मृन्नाण्डे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।
 धूपनार्थं हितं सर्वभूतेषु विषमे ज्वरे ॥ ५८ ॥
 घृतानि भूतविद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानि च ।
 युष्म्यात्तथा बलिं होमं स्नपनं मन्त्रतन्त्रवित् ॥ ५९ ॥
 पूतीकरञ्जत्वक्पत्रं क्षीरिभ्यो बर्बरादपि ।
 तुम्बीविशालारलुकाशमीबिल्वकपित्थतः ॥ ६० ॥
 उत्काध्य तोयं तद्वात्रौ बालानां स्नपनं शिवम् ।

१. वृषान् = मूषकान् दशतीति वृषदंशो = मूषकमुक् = बिडालः ।

अनुबन्धाद्यथाकृच्छं ग्रहापायेऽप्युपद्रवान् ।

बालामयनिषेधोक्तभेषजैः समुपाचरेत् ॥ ६१ ॥'

इत्युत्तरतन्त्रे कौमारतन्त्रं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥



चतुर्थोऽध्यायः ।

'अथाऽतो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

'लक्ष्येज्ज्ञानविज्ञानवाक्चेष्टाबलपौरुषम् ।

पुरुषेऽपौरुषं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत् ॥ १ ॥

भूतस्य रूपप्रकृतिभाषागत्यादिचेष्टितैः ।

यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं तमादिशेत् ॥ २ ॥

सोऽष्टादशविधो देवदानवादिविभेदतः ।

हेतुस्तदनुषक्तौ तु सद्यः पूर्वकृतोऽथवा ॥ ३ ॥

प्रज्ञापराधः सुतरां तेन कामादिजन्मना ।

लुप्तधर्मव्रताचारः पूज्यानप्यतिवर्तते ॥ ४ ॥

तं तथा भिन्नमर्यादं पापमात्मोपघातिनम् ।

देवादयोऽप्यनु घ्नन्ति, ग्रहाश्छिद्रप्रहारिणः, ॥ ५ ॥

छिद्रं पापक्रियारम्भः पाकोऽनिष्टस्य कर्मणः ।

एकस्य शून्येऽवस्थानं श्मशानादिषु वा निशि ॥ ६ ॥

१. अथ = बालग्रहविज्ञान-चिकित्सानन्तरं यतः सजातीयत्वेन भूतविज्ञानं स्मृतिविषयीभूतमतस्तदेव व्याख्यास्यामः ।

दिग्वासस्त्वं गुरोर्निन्दा रतेरविधिसेवनम् ।
 अशुचेर्देवतार्चादि परसूतकसङ्करः^१ ॥ ७ ॥
 होममन्त्रबलीज्यानां विगुणं परिकर्म च ।
 समासाद्दिनचर्यादिप्रोक्ताचारव्यतिक्रमः ॥ ८ ॥
 गृह्णन्ति शुक्लप्रतिपन्नयोदश्योः सुरा नरम् ।
 शुक्लत्रयोदशीकृष्णद्वादश्योर्दानवा ग्रहाः ॥ ९ ॥
 गन्धर्वास्तु चतुर्दश्यां द्वादश्यां चोरगाः पुनः ।
 पञ्चम्यां शुक्लसप्तम्येकादश्योस्तु धनेश्वराः^२ ॥ १० ॥
 शुक्लाष्टपञ्चमीपूर्णमासीषु ब्रह्मराक्षसाः ।
 कृष्णे रक्षःपिशाचाद्या नवद्वादशपर्वसु ॥ ११ ॥
 दशमावास्ययोरष्टनवम्योः पितरोऽपरे ।
 गुरुवृद्धादयः प्रायः कालं सन्ध्यासु लक्षयेत् ॥ १२ ॥
 फुल्लपद्मोपममुखं साम्यदृष्टिमकोपनम् ।
 अल्पवाक्स्वेदविष्मूत्रं भोजनानभिलाषिणम् ॥ १३ ॥
 देवद्विजातिपरमं शुचिसंस्कृतवादिनम् ।
 मीलयन्तं चिरान्नेत्रे सुरभिं वरदायिनम् ॥ १४ ॥
 शुक्लमाल्याम्बरसशिच्छैलोज्ज्वलभवनप्रियम् ।
 अनिद्रमप्रष्टव्यं च विद्याद्देववशीकृतम् ॥ १५ ॥
 जिह्वदृष्टिं दुरात्मानं गुरुदेवद्विजद्विषम् ।
 निर्भयं मानिनं शूरं क्रोधनं व्यवसायिनम् ॥ १६ ॥

१. सूतकशब्देन-आशौचमात्रस्य ग्रहणम् ।

२. धनेश्वराः = यक्षाः ।

रुद्रः स्कन्दो विशाखोऽहमिन्द्रोऽहमिति वादिनम् ।
 मधमांसरुचिं विद्याद्दैत्यग्रहगृहीतकम्^१ ॥ १७ ॥
 स्वाचारं सुरभिं हृष्टं गीतनर्तनकारिणम् ।
 स्नानोद्यानरुचिं रक्तवस्त्रमात्यानुलेपनम् ॥ १८ ॥
 शृङ्गारलीलाभिरतं^२ गन्धर्वाध्युषितं वदेत् ।
 रक्ताक्षं क्रोधनं स्तब्धदृष्टिं वक्रगतिं चलम् ॥ १९ ॥
 श्वसन्तमनिशं जिह्वालोलिनं^३ सृक्किणीलिहम् ।
 प्रियदुग्धगुडस्नानमधोवदनशायिनम् ॥ २० ॥
 'उरगाधिष्ठितं' विद्याश्चस्यन्तं चाऽऽतपन्नतः ।
 विप्लुतत्रस्तरक्ताक्षं शुभगन्धं सुतेजसम् ॥ २१ ॥
 प्रियनृत्यकथागीतस्नानमात्यानुलेपनम् ।
 मत्स्यमांसरुचिं हृष्टं तुष्टं बलिनमव्ययम् ॥ २२ ॥
 चलिताग्रकरं कस्मै किं ददामीति वादिनम् ।
 रहस्यभाषिणं वैद्यद्विजातिपरिभाविनम् ॥ २३ ॥
 अल्परोषं द्रु(ह)तगतिं विद्याद् 'यक्षगृहीतकम्' ।
 हास्यनृत्यप्रियं रौद्रचेष्टं छिद्रप्रहारिणम् ॥ २४ ॥
 आक्रोशिनं शीघ्रगतिं देवद्विजभिषग्विषम् ।
 आत्मानं काष्ठशस्त्राद्यैर्ध्वन्तं भोःशब्दवादिनम् ॥ २५ ॥
 शास्त्रवेदपठं विद्याद् गृहीतं 'ब्रह्मराक्षसैः' ।
 सक्रोधदृष्टिं शृकुटिमुद्धहन्तं ससम्भ्रमम् ॥ २६ ॥

१. कुत्सितं गृहीतं गृहीतकम्, 'कुत्सिते' इति कम् ।

२. अध्युषितम् = कृताऽऽवेशम् ।

३. 'प्रान्तावोष्ठस्य, सृक्किणी' ।

प्रहरन्तं प्रधावन्तं शब्दन्तं भैरवाननम् ।
 अन्नाद्विनाऽपि बलिनं नष्टनिद्रं निशाचरम् ॥ २७ ॥
 निर्लज्जमशुचिं शूरं क्रूरं परुषभाषिणम् ।
 रोषणं रक्तमाल्यस्त्रीरक्तमद्यामिषप्रियम् ॥ २८ ॥
 दृष्ट्वा च रक्तं मांसं च लिहानं दशनच्छदौ ।
 हसन्तमन्नकाले च 'राक्षसाधिष्ठितं' वदेत् ॥ २९ ॥
 अस्वस्थचित्तं नैकत्र तिष्ठन्तं परिधाविनम् ।
 उच्छिष्टनृत्यगान्धर्व-हासमद्यामिषप्रियम् ॥ ३० ॥
 निर्भर्त्सनाद्दीनमुखं रुदन्तमनिमित्ततः ।
 नखैर्लिखन्तमात्मानं रुक्षध्वस्तवपुःस्वरम् ॥ ३१ ॥
 आवेदयन्तं दुःखानि सम्बद्धाऽवद्धभाषिणम् ।
 नष्टस्मृतिं शून्यरतिं लोलं नग्नं मलीमसम् ॥ ३२ ॥
 रथ्याचैलपरीधानं तृणमालाविभूषणम् ।
 आरोहन्तं च काष्ठाश्वं^१ तथा सङ्करकूटकम् ॥ ३३ ॥
 बद्धाशिनं 'पिशाचेन' विजानीयादधिष्ठितम् ।
 प्रेताकृतिक्रियागन्धं भीतमाहारविद्विषम् ॥ ३४ ॥
 तृणच्छिदं च 'प्रेतेन' गृहीतं नरमादिशेत् ।
 बहुप्रलापं कृष्णास्यं प्रविलम्बितयायिनम् ॥ ३५ ॥
 शून्यप्रलम्बवृषणं 'कूष्माण्डाधिष्ठितं' वदेत् ।
 गृहीत्वा काष्ठलोष्टादि भ्रमन्तं चीरवाससम् ॥ ३६ ॥
 नग्नं धावन्तमुन्नस्तदृष्टिं तृणविभूषणम् ।

१. तथा सङ्करस्य = अवकरस्य, कूटकं = राशिम्, आरोहन्तम्-
 इत्यन्वयः ।

श्मशानशून्यायतन-रथ्यैकद्रुमसेविनम् ॥ ३७ ॥
 तिलाज्जमद्यमांसेषु संरक्तं रक्तलोचनम् ।
 'निषादाधिष्ठितं' विद्याद्वदन्तं परुषाणि च ॥ ३८ ॥
 याचन्तमुदकं चान्नं त्रस्ताऽऽलोहितलोचनम् ।
 उग्रवाक्यं च जानीयान्नरम्—'औकिरणार्दितम्' ॥ ३९ ॥
 गन्धमाल्यरतिं सत्यवादिनं परिवेपिनम् ।
 बहुनिद्रं च जानीयाद् 'वेतालेन' वशीकृतम् ॥ ४० ॥
 अप्रसन्नदृशं दीनवदनं शुष्कतालुकम् ।
 चलन्नयनपद्माणं निद्रालुं मन्दपावकम् ॥ ४१ ॥
 अपसव्यपरीधानं तिलमांसगुडप्रियम् ।
 स्खलद्वाचं च जानीयात् 'पितृग्रहवशीकृतम्' ॥ ४२ ॥
 'गुरुवृद्धर्षिसिद्धाभिशापचिन्तानुरूपतः ।
 व्याहाराहारचेष्टाभिर्यथास्वं तद्ग्रहं वदेत् ॥ ४३ ॥
 'कुमारवृन्दानुगतं नग्नमुद्धतमूर्धजम् ।
 अस्वस्थमनसं दैर्घ्यकालिकं तं ग्रहं त्यजेत् ॥ ४४ ॥'
 इत्युत्तरस्थाने चतुर्थोऽध्यायः ।

१. गुरु-वृद्ध-मुनि-सिद्धानां प्रधर्षणेन, तैरभिशापः सन् तदनु-
 रूपचिन्तादियुतः, तद्ग्रहाधिष्ठितो वेदितव्यः ।

२. सर्वेषां ग्रहगृहीतानामसाध्यलक्षणमाह—कुमाराणां =
 स्ववयस्यानां बालकानां वृन्दैः = समूहैः, अनुगतम् = अनुसृतम्,
 नग्नं = विवस्त्रम्, उद्धता उद्धर्वाऽभिमुखाः, मूर्धजाः = केशा यस्य
 तम्, अस्वस्थं व्याकुलं मानसं = चित्तं यस्य तम्, (दीर्घस्य भावो

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो भूतप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘भूतं’^१ जयेदहिंसेच्छं जपहोमबलिघ्नैः ।

तपःशीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः ॥ १ ॥

औषधमाह—

हिङ्गुव्योषाल^२नेपालीलशुनार्कजटाजटाः ।

अजलोमी सगोलोमी भूतकेशी वचा लता ॥ २ ॥

कुक्कुटी सर्पगन्धाख्या तिलाः काण(ल)विषाणिके ।

वज्रप्रोक्ता वयस्था च शृङ्गी मोहनवल्ल्यपि ॥ ३ ॥

स्रोतोजाञ्जनरक्षोघ्नं रक्षोघ्नं चान्यदौषधम् ।

खराश्वश्वाविदुष्टूर्त्तगोधानकुलशल्यकात् ॥ ४ ॥

द्वीपिमार्जारगोसिंहव्याघ्रसामुद्रसत्त्वतः ।

दैर्घ्यं ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्, काले भवः कालिकः पुनः कर्मधारयः,
दीर्घकालिकमिति सुगमः पाठः । दीर्घकालाऽनुवर्त्तिनं यं यं ग्रहं विधात्
तं त्यजेत्, असाध्यत्वात् । इति भूतविज्ञानम् ।

१. भूतास्त्रिविधाः हिंसाकामाः, रत्तिकामाः, पूजाकामाश्चेति ।
तत्र अहिंसाकामं भूतं जपादिभिर्जयेत् ।

२. आलं = हरितालम्, नेपाली = कस्तूरी (मनःशिला वा)
आलसाहचर्यात् । जटा = जटामांसी, लता = प्रियङ्गुः, कुक्कुटी =
शित्तिवारकः । कालविषाणिके = काकोलीक्षीरकाकोल्यौ-इत्यरुणः ।
शृङ्गी = अतिविषा, मोहनवल्ली = मन्दारकः ।

चर्मपित्तद्विजनखा वर्गेऽस्मिन् साधयेद् घृतम् ॥ ५ ॥
 पुराणमथवा तैलं नवं तत्पान-नस्ययोः ।
 अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यमेषां चूर्णं च धूपने ॥ ६ ॥
 एभिश्च गुटिकां युञ्ज्यादञ्जने सावपीडने ।
 प्रलेपे कल्कमेतेषां क्वाथं च परिषेचने ॥ ७ ॥
 'प्रयोगोऽयं' ग्रहोन्मादान्सापस्मारान् शमं नयेत् ।
 गजाह्वा पिप्पलीमूलव्योषामलकसर्षपान् ॥ ८ ॥
 गोधानकुलमार्जारक्षपित्तप्रपेक्षितान् ।
 नावनाभ्यङ्गसेकेषु विदधीत 'ग्रहापहान्' ॥ ९ ॥
 सिद्धार्थकं वचा हिङ्गु प्रियङ्गु रजनीयद्वयम् ।
 मञ्जिष्ठा श्वेतकटभी वचा श्वेताद्रिकर्णिका ॥ १० ॥
 निम्बस्य पत्रं बीजं तु नक्तमालशिरीषयोः ।
 सुराह्णं ज्यूषणं तर्पिर्गोमूत्रे तैश्चतुर्गुणे ॥ ११ ॥
 सिद्धं 'सिद्धार्थकं नाम' पानेऽनस्ये च योजितम् ।
 ग्रहान्सर्वाग्निहन्त्याशु विशेषादासुरान् ग्रहान् ॥ १२ ॥
 कृत्याऽलक्ष्मीविषोन्माद-ज्वरापस्मारपाप्म च ।
 एभिरेवौषधैर्बस्तवारिणा^१ कल्पितोऽगदः ॥ १३ ॥
 पाननस्याञ्जनालेपस्तनोद्धर्षणयोजितः ।
 गुणैः पूर्ववदुद्दिष्टो राजद्वारे च सिद्धिकृत् ॥ १४ ॥
 सिद्धार्थकव्योषवचाऽश्वगन्धा
 निशाद्वयं हिङ्गुपलाण्डुकन्दम् ।

बीजं करञ्जात्कुसुमं शिरीषात्
 फलं च वल्कश्च कपित्थवृक्षात् ॥ १५ ॥
 समाणिमन्थं सनतं सकुष्ठं
 स्योनाकमूलं किणिही सिता च ।
 बस्तस्य मूत्रेण विभावितं तत्
 पित्तेन गव्येन गुडान् विदध्यात् ॥ १६ ॥
 दुष्टव्रणोन्मादतमोनिशान्धा-
 नुद्रङ्गकान् चारिनिमग्नदेहान् ।

दिग्धाहतान् दर्पितसर्पदष्टां-

स्ते साधयन्त्यञ्जनस्यलेपैः ॥ १७ ॥

कार्पासास्थिमयूरपिच्छवृहती-निर्माल्यपिण्डीतक-
 त्वङ्मांसीवृषदंशविट्-तुषवचा-केशाऽहिनिर्मोचनैः^१ ।
 नागेन्द्रद्विजशृङ्गहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं
 स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुराऽऽवेशज्वरघ्नं परम् ॥ १८ ॥

त्रिकटुकदलकुङ्कुमग्रन्थिकचारसिंही-

निशादारुसिद्धार्थयुग्माग्बुशक्राह्वयैः ।

सितलशुनफलत्रयोशीरतिक्तावचा-

तुल्ययष्टीबलालोहितैलाशिलापद्मकैः ।

दधितगरमधूकसारप्रियाह्वा-

निशाख्याविपाताचर्यशैलैः सचव्यामयैः ।

कल्कितैर्धृतमभिनवमशेषमूत्रांशसिद्धं मतं

‘भूतरावाऽऽह्वयं’ पानतस्तद् ग्रहघ्नं परम्^२ ॥ १९ ॥

१. अहिनिर्मोचनैः = सर्पनिर्मोचकैः । २. दण्डकः = प्रथमः, चण्ड-

नत-मधु-करञ्ज-लाक्षा-पटोली-समङ्गा-वचा-
 पाटलीहिङ्गुसिद्धार्थसिंहीनिशायुग्लतारोहिणी-
 बदरकटुफलत्रिकाकाण्डदारुकुमिघ्नाजगन्धा
 मराङ्गोल्लकोशातकीशिग्रुनिम्बाश्वुदेन्द्राह्वयैः ।
 गदशुकतरुपुष्पबीजोग्रयष्ट्यद्रिकर्णानिकुम्भा-
 ग्निविल्वैः समैः कल्कितंर्मत्रवर्गेण सिद्धं घृतम् ।
 विधिविनिहितमाशु सर्वैः क्रमैर्योजितं हन्ति
 सर्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरांस्तन्महाभूतरावं स्मृतम्^१ ॥ २० ॥
 ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः ।
 दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुञ्जीत चिकित्सकः^२ ॥ २१ ॥
 स्नान-वस्त्र-वसा-मांस-मद्य-क्षीर-गुडादि च ।
 रोचते यद्यदा येभ्यस्तत्तेषामाहरेत्तदा ॥ २२ ॥
 रत्नानि गन्धमालयानि बीजानि मधुसर्पिणी ।
 भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां 'सामान्यो विधि'रित्ययम् ॥ २३ ॥
 सुरर्षिगुरुवृद्धेभ्यः सिद्धेभ्यश्च 'सुरालये' ।
 दिश्युत्तरस्यां तत्रापि देवायोपहरेद्बलिम् ॥ २४ ॥
 'पश्चिमायां' यथाकालं दैत्यभूताय चत्वरे ।
 गन्धर्वाय 'गवां मार्गे' सवस्त्राभरणं बलिम् ॥ २५ ॥
 पितृनागग्रहे 'नद्यां' नागेभ्यः पूर्वदक्षिणे ।

वृष्टिः सप्तविंशत्यक्षरपादः । अर्णः, त्रिंशदक्षरपादः । अयञ्च त्रिंश-
 दक्षरपादः, छन्दःशास्त्रनियमाऽक्रान्तः, रगणवृद्धेरेव विहितत्वात् ।

१. अस्य तु व्याल-इति नाम षट्त्रिंशदक्षरपादत्वात् ।

२. अत्र चिकित्सकः—भूतविषाकुशलः ।

यक्षाय 'यक्षायतने' सरितोर्वा समगमे ॥ २६ ॥
 'चतुष्पथे' राक्षसाय भीमेषु गहनेषु च ।
 रक्षसां 'दक्षिणस्यां' तु 'पूर्वस्यां' ब्रह्मरक्षसाम् ॥ २७ ॥
 'शून्यालये' पिशाचाय पश्चिमां दिशमास्थिते ।
 शुचिशुक्लानि माल्यानि गन्धाः क्षैरेयमोदनम् ॥ २८ ॥
 दधि च्छत्रं च धवलं देवानां बलिरिष्यते ।
 हिङ्गुसर्पपषड्ग्रन्थाभ्योपैरर्धपलोन्मितैः ॥ २९ ॥
 चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 तत्पाननावनाभ्यङ्गैर्देवग्रहविमोक्षणम् ॥ ३० ॥
 नस्याञ्जनं वचाहिङ्गुलशुनं वस्तवारिणा ।
 दैत्ये बलिर्बहुफलः सोशीरकमलोत्पलः ॥ ३१ ॥
 नागानां सुमनोलाजगुडापूपगुडौदनैः ।
 परमाक्षमधुक्षीरकृष्णमृन्नागकेसरैः ॥ ३२ ॥
 वचापद्मपुरोशीररक्तोत्पलदलैर्बलिः ।
 श्वेतपत्रं च रोध्रं च तगरं नागसर्षपाः ॥ ३३ ॥
 शीतेन वारिणा पिष्टं नावनाञ्जनयोर्हितम् ।
 यक्षाणां क्षीरदध्याज्यमिश्रकौदनगुग्गुलुः ॥ ३४ ॥
 देवदारूत्पलं पद्ममुशीरं वस्त्रकाञ्चनम् ।
 हिरण्यं च बलिर्योज्योऽमूत्राज्यक्षीरमेकतः ॥ ३५ ॥
 सिद्धं समोन्मितं पाननावनाभ्यञ्जने हितम् ।
 हरीतकी हरिद्रे द्वे लशुनो मरिचं वचा ॥ ३६ ॥
 निम्बपत्रं च वस्ताम्बु-कल्कितं नावनाञ्जनम् ।
 'ब्रह्मरक्षोबलिः' सिद्धं यवानां पूर्णमाढकम् ॥ ३७ ॥

तोयस्य कुम्भः पललं छत्रं वस्त्रं विलेपनम् ।
 गायत्रीविंशतिपलक्काथेऽर्धपलिकैः पचेत् ॥ ३८ ॥
 ज्यूषणत्रिफलाहिङ्गुषड्ग्रन्थामिशिसर्षपैः ।
 सनिम्बपत्रलशुनैः कुडवान्सप्त सर्पिषः ॥ ३९ ॥
 गोमूत्रे त्रिगुणे पाने नस्याभ्यङ्गेषु तद्धितम् ।
 'रक्षसां' पललं शुक्लं कुसुमं मिश्रकौदनम् ॥ ४० ॥
 बलिः पक्काममांसानि निष्पावा रुधिरौक्षिताः^१ ।
 नक्तमाल-शिरीषत्वड्मूलपुष्पफलानि च ॥ ४१ ॥
 तद्वच्च कृष्णपाटल्या विट्त्वमूलं कटुत्रिकम् ।
 हिङ्गुविन्दयवसिद्धार्थलशुनामलकीफलम् ॥ ४२ ॥
 नावनाञ्जनयोर्योज्यो बस्तमूत्रद्रुतोऽगदः ।
 एभिरेव घृतं सिद्धं गवां मूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥
 'रक्षोग्रहान्' वारयते पानाभ्यञ्जननावनैः ।
 'पिशाचानां' बलिः सीधुपिण्याकः पललं दधि ॥ ४४ ॥
 मूलकं लवणं सर्पिः सभूतौदनयावकम् ।
 हरिद्राद्वयमजिष्टामिशिसैन्धवनागरम् ॥ ४५ ॥
 हिङ्गुप्रियङ्गुत्रिकटुरसोनत्रिफला वचा ।
 पाटलाश्वेतकटभीशिरीषकुसुमैर्घृतम् ॥ ४६ ॥
 गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाभ्यञ्जनयोर्हितम् ।
 बस्ताम्बुपिष्टैस्तैरेव योज्यमञ्जननावनम् ॥ ४७ ॥
 देवर्षिपितृगन्धर्वे तीक्ष्णं नस्यादि वर्जयेत् ।

१. रुधरेण-उक्षिताः सिक्ताः निष्पावाः = शिम्बीधान्यानि ।

सर्पिःपानादिमृद्वस्मिन् भैषज्यमवचारयेत् ॥ ४८ ॥
 ऋते पिशाचान्सर्वेषु प्रतिकूलं च नाचरेत् ।
 सवैद्यमातुरं धनन्ति क्रुद्धास्ते हि महौजसः ॥ ४९ ॥
 'ईश्वरं द्वादशभुजं नाथमार्यावलोकितम् ।
 सर्वव्याधिचिकित्सन्तं जपन् सर्वग्रहान् जयेत् ॥ ५० ॥
 तथोन्मादानपस्मारानन्यं वा चित्तविप्लवम् ।'
 महाविद्यां च मायूरीं शुचिं तं श्रावयेत्सदा ॥ ५१ ॥
 भूतेशं पूजयेत् स्थाणुं प्रमथाख्यांश्च तद्गणान् ।
 जपन् सिद्धांश्च तन्मन्त्रान् ग्रहान्सर्वानपोहति ॥ ५२ ॥
 यच्चानन्तरयोः ^१किञ्चिद्वच्यतेऽध्याययोर्हितम् ।
 ोक्तमिह ^२तत्सर्वं प्रयुञ्जीत परस्परम् ॥ ५३ ॥

इत्युत्तरस्थाने पञ्चमोऽध्यायः ।

—४—

षष्ठोऽध्यायः ।

^१अथाऽत उन्मादप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'उन्मादाः षट् पृथग्दोषनिचयाऽधिविषोद्भवाः ।
 उन्मादो नाम मनसो दोषैरुन्मार्गगैर्मदः ॥ १ ॥

१. अनन्तरयोः-उन्मादाऽपस्मारयोरध्याययोः ।

२. इह = भूतप्रतिषेधे ।

३. अथ भूतप्रतिषेधज्ञानानन्तरं यतो बहुधासादृश्यादुन्मादस्य
 स्मृतिरतस्तत्प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

शारीरमानसैर्दुष्टैः ॥ अहितादन्नपानतः ।
 विकृताऽसात्म्यसमलाद् विषमादुपयोगतः ॥ २ ॥
 विषमस्याल्पसत्त्वस्य व्याधिवेगसमुद्भवात् ।
 क्षीणस्य चेष्टाविषम्यात्पूज्यपूजाव्यतिक्रमात् ॥ ३ ॥
 आधिभिश्चित्तविभ्रंशाद् विषेणोपविषेण च ।
 एभिर्विहीनसत्त्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः ॥ ४ ॥
 धियो विधाय कालुष्यं हत्वा मार्गान् मनोवहान् ।
 उन्मादं कुर्वते, तेन धी-विज्ञान-स्मृति-भ्रमान् ॥ ५ ॥
 देहो दुःखसुखभ्रष्टो भ्रष्टसारथिवद्रथः ।
 भ्रमत्यचिन्तितारम्भः ॥ तत्र वातात्कृशाङ्गता ॥ ६ ॥
 अस्थाने रोदना-क्रोशहसितस्मितनर्तनम् ।
 गीतवादित्रवागङ्ग-विक्षेपास्फोटनानि च ॥ ७ ॥
 १ असाम्ना वेणुगीतादिशब्दानुकरणं मुहुः ।
 आस्यात्फेनागमोऽजस्रमटनं बहुभाषिता ॥ ८ ॥
 अलङ्कारोऽनलङ्कारैरयानैर्गमनोद्यमः ।
 २ गृद्धिरभ्यवहार्येषु तस्मात्तमे वाऽवमानता ॥ ९ ॥
 उत्पीडितारुणाक्षित्वं जीर्णं चान्ने गदोद्भवः ।
 पित्तात्सन्तर्जनं क्रोधो मुष्टिलोष्ट्राद्यभिद्रवः ॥ १० ॥
 शीतच्छायोदकाकाङ्क्षा नम्रत्वं पीतवर्णता ।
 असत्यज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ॥ ११ ॥

१. असाम्ना = औद्धत्येन ।

२. अयानैः = वाहनीकृतैः काष्ठ-पाषाणादिभिः ।

३. अनावश्यकत्वेऽपि लोभो गृद्धिः ।

कफादरोचकश्छर्दिरल्पेहाहारवाक्यता ।
 स्त्रीकामता रहःप्रीतिर्लासिद्धाणकस्रुतिः ॥ १२ ॥
 बैभस्स्यं शौचविद्वेषो निद्रा श्वयथुरानने ।
 उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते ॥ १३ ॥
 सर्वायतनसंस्थानसन्निपाते तदात्मकम् ।
 उन्मादं दारुणं विद्यात् तं भिषक्परिवर्जयेत् ॥ १४ ॥
 'धनकान्तादिनाशेन' दुःसहेनाभिषङ्गवान् ।
 पाण्डुर्दीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति परिदेवते ॥ १५ ॥
 रोदित्यकस्मान्मिष्यते 'तद्गुणान् बहु मन्यते ।
 शोकविलष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते ॥ १६ ॥
 'विषेण' श्याववदनो नष्टच्छायाबलेन्द्रियः ।
 वेगान्तरेऽपि सम्भ्रान्तो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥
 'अथानिलज' उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।
 पूर्वमावृतमार्गे तु सस्नेहं मृदु शोधनम् ॥ १८ ॥
 'कफपित्तभवे'ऽप्यादौ वमनं सविरेचनम् ।
 स्निग्धस्विन्नस्य वस्ति च शिरसः सविरेचनम् ॥ १९ ॥
 तथास्य शुद्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ।
 इत्थमप्यनुवृत्तौ तु तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ॥ २० ॥
 हर्षणाऽऽश्वासनोद्भास-भयताडनतर्जनम् ।
 अभ्यङ्गोद्धर्तनालेपधूमान् पानं च सर्पिषः ॥ २१ ॥
 युञ्ज्यात्तानि हि शुद्धस्य नयन्ति प्रकृतिं मनः ।

हिङ्गुघृतम् ।

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ॥ २२ ॥

सिद्धं समूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम् ।

(ब्राह्मीघृतम्)

द्वौ प्रस्थौ स्वरसाद् ब्राह्मया घृतप्रस्थं च साधितम् ॥ २३ ॥

व्योषश्यामात्रिवृद्धन्तीशङ्खपुष्पीनृपद्रुमैः ।

ससप्तलाकृमिहरैः कल्कितैरक्षसम्मितैः ॥ २४ ॥

पलवृद्धया प्रयुञ्जीत परं मात्राचतुष्पलम् ।

उन्मादकुष्ठापस्मारहरं बन्ध्यासुतप्रदम् ॥ २५ ॥

वाक्स्वरस्मृतिमेधाकृद् धन्यं 'ब्राह्मीघृतं' स्मृतम् ।

कल्याणकं घृतम् ।

वराविशालाभद्रैलादेवदार्वेलवालुकैः ॥ २६ ॥

द्विसारिवा-द्विरजनी-द्विस्थिरा-फलिनीनतैः ।

बृहतीकुष्ठमञ्जिष्ठा-नागकेसरदाडिमैः ॥ २७ ॥

वेह्लतालीसपत्रैला-मालतीमुकुलोत्पलैः ।

सदन्तीपञ्चकहिमैः कर्षोशैः सर्पिषः पचेत् ॥ २८ ॥

प्रस्थं भूतग्रहोन्माद-कासापस्मारपाण्मसु ।

पाण्डु-कण्डूविषे शोफे मोहे मेहे गरे ज्वरे ॥ २९ ॥

अरेतस्यप्रजसि वा दैवोपहतचेतसि ।

अमेघसि स्वलद्धाचि स्मृतिकामेऽल्पपावके ॥ ३० ॥

बल्यं मङ्गल्यमायुष्यं कान्तिसौभाग्यपुष्टिदम् ।

'कल्याणकमिदं' 'सर्पिः' श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ ३१ ॥

महाकल्याणकं धृतम् ।

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्वैकविंशतिम् ।

रसे तस्मिन् पचेत्सर्पिर्गृष्टिश्चौरचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

वीराद्विमेदाकाकोलीकपिकच्छूविषाणिभिः ।

शूर्पपर्णायुतैरेतन् 'महाकल्याणकं' परम् ॥ ३३ ॥

बृंहणं सन्निपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ।

महापैशाचकं धृतम् ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ॥ ३४ ॥

त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी ।

कायस्था शूकरी छत्रा अतिच्छत्रा पलङ्कषा ॥ २५ ॥

महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ।

कटम्भरा वृश्चिकाली शालिपर्णी च तैर्धृतम् ॥ ३६ ॥

सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।

'महापैशाचकं नाम' धृतमेतद्यथाऽमृतम् ॥ ३७ ॥

बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ।

उन्मादसूदनी वर्त्तिः ।

ब्राह्मीमैन्द्रीं विडङ्गानि व्योषं हिङ्गु जटां मुराम् ॥ ३८ ॥

रासनां विशल्यां लशुनं विषघ्नां सुरसां वचाम् ।

ज्योतिष्मतीं नागविन्नामनन्तां सहरीतकीम् ॥ ३९ ॥

काच्छीं च हस्तिमूत्रेण पिष्ट्वा छायाविशोषिता ।

वर्तिर्नस्याञ्जनालेपधूपैरुन्मादसूदनी ॥ ४० ॥

अवपीडाश्च विविधाः सर्षपाः^१ स्नेहसंयुताः ।

१. सर्षपाः विघ्नन्ते येषु ते सर्षपाः अर्श आदित्वादच् स्नेह-

१कटुतैलेन चाभ्यङ्गो ध्मापयेच्चास्य तद्रजः ॥ ४१ ॥
 सहिष्णुस्तीक्ष्णधूमश्च सूत्रस्थानोदितो हितः ।
 शृगालशल्यकालक-जलौकावृषबस्तजैः ॥ ४२ ॥
 मूत्रपित्तशकृल्लोमनखचर्मभिराचरेत् ।
 धूपधूमाञ्जनाभ्यङ्गप्रदेहपरिषेचनम् ॥ ४३ ॥
 धूपयेत्सततं चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः ।
 वातश्लेष्मात्मके प्रायःॐ पैत्तिके तु प्रशस्यते ॥ ४४ ॥
 तिक्तकं जीवनीयं च सर्पिः स्नेहश्च मिश्रकः ।
 शिशिराण्यन्नपानानि मधुराणि लघूनि च ॥ ४५ ॥
 विध्येत्सिरां यथोक्तां वा तृप्तं मेद्यामिषस्य वा ।
 निवाते शाययेदेवं मुच्यते मतिविभ्रमात् ॥ ४६ ॥
 प्रक्षिप्याऽसलिले कूपे शोषयेद्वा बुभुक्षया ।
 आश्वासयेत्सुहृत्तं १वा वाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥ ४७ ॥
 ब्रूयादिष्टविनाशं वा दर्शयेदद्भुतानि वा ।
 बद्धं सर्षपतैलाक्तं न्यस्तं चोत्तानमातपे ॥ ४८ ॥
 कपिकच्छ्वाऽथवा तप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ।
 कशाभिस्ताडयित्वा वा बद्धं श्वश्रे विनिक्षिपेत् ॥ ४९ ॥

संयुताः अर्थात्सर्षपस्यैव स्नेहेन युक्ताः, सर्षपपिष्टयुक्ताः सर्षपस्नेह-
 युक्ता वा, अवपीडाः = नासिकापूरणाः कल्काः कर्तव्या इत्यर्थः ।
 समस्तपाठे तु स्पष्टोऽर्थः ।

१. कटुतैलेन = सर्षपस्नेहेन ।

२. सुहृत् = उन्मत्तस्य दुःखेन दुःखी, न तु परिहासकः ।

अथवा वीतशस्त्राश्मजने सन्तमसे गृहे ।
 सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तेः सिंहैर्गजैश्च तम् ॥ ५० ॥
 अथवा राजपुरुषा बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ।
^१भाययेयुर्वधेनैनं तर्जयन्तो नृपाज्ञया ॥ ५१ ॥
 देहदुःखभयेभ्यो हि परं प्राणभयं मतम् ।
 तेन याति शमं तस्य सर्वतो विप्लुतं मनः ॥ ५३ ॥
 सिद्धा क्रिया प्रयोज्येयं देशकालाद्यपेक्षया ।
 दृष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ॥ ५३ ॥
 तस्य तत्सदृशप्राप्तिः सान्त्वाश्वासैः शमं नयेत् ।
 कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ॥ ५४ ॥
 परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ।
 भूतानुबन्धमीचेत प्रोक्तलिङ्गाधिकाकृतिम् ॥ ५५ ॥
 यद्युन्मादे ततः कुर्याद् भूतनिर्दिष्टमौषधम् ।
 बलिं च दद्यात्पललं यावकं सक्तुपिण्डिकाम् ॥ ५६ ॥
 स्निग्धं मधुरमाहारं तण्डुलान् रुधिरोक्षितान् ।
 पक्कामकानि मांसानि सुरामैरेयमासवम् ॥ ५७ ॥
 अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जात्याः सहचरस्य च ।
 चतुष्पथे गवां तीर्थे नदीनां सङ्गमेषु च ॥ ५८ ॥
 निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ।
 निजागन्तुभिरुन्मादैः सत्त्ववाञ्छ स युज्यते ॥ ५९ ॥

१. भाययेयुः = भीषयेयुः, साधारणभयस्योन्माद-निदानत्वेऽपि
 प्राणबधभयस्य विपर्यस्तार्थकारित्वेनोपक्रमत्वमिति न विरोधः ।

प्रसाद^१ इन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसा तथा^२ ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ६० ॥'
इत्युत्तरस्थाने षष्ठोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ।

^१अथाऽतोऽपस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
'स्मृत्यपायो^३ ह्यपस्मारः,^४ स धीसत्त्वाभिसम्प्लवात् ।
जायतेऽभिहृते चित्ते चिन्ताशोकभयादिभिः ॥ १ ॥

१. प्रसादः = यथार्थज्ञानविषयता—एतेन चक्षुरादीनामिन्द्रियाणां प्रसन्नत्वेन यथार्थ—ग्राहित्वं व्यज्यते ।

२. तथा = प्रसादः ।

३. अथ = उन्मादप्रतिषेध—विज्ञानानन्तरं यतः 'एकसम्बन्धिज्ञान-मपरसम्बन्धिस्मारकमिति नियमः, अतः स्मृतिविषयत्वे सति—उपेक्षानर्हत्वरूपप्रसङ्गसङ्गत्या उन्माद—सदृशस्याऽपस्मारस्य प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

४. अनुभवजन्यं ज्ञानं स्मृतिः, तस्या अपायो = ध्वंसः = विस्मृतिरित्यर्थः । अपस्मरणम् = अपस्मारः भावे घञ् अपस्मर्यते = विस्मर्यतेऽनेन रोगेणेति विग्रहे तु—'अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम्' इति घञ् ।

५. सः = अपस्मारः = चिन्ताशोकभयादिभिर्चित्तेऽभिहृते सति धियः = विचारशालिन्याः बुद्धेः सत्त्वस्य = सत्त्वगुणप्रधानस्य मनो-

१ उन्मादवत्प्रकुपितैश्चित्तदेहगतैर्मलैः ।
 हते सत्त्वे हृदि व्याप्ते संज्ञावाहिषु खेषु च ॥ २ ॥
 तमो विशन्मूढमतिर्बीभत्साः कुरुते क्रियाः ।
 दन्तान् खादन् वमन् फेनं हस्तौ पादौ च विलिपन् ॥ ३ ॥
 पश्यन्नसन्ति रूपाणि प्रखलन्पतति क्षितौ ।
 विजिह्वाक्षिभ्रुवा दोषवंगोऽस्तीति विबुद्ध्यते ॥ ४ ॥
 कालान्तरेण स पुनश्चैवमेव विचेष्टते ।
 अपस्मारश्चतुर्भेदो वाताद्यैर्निचयेन तु ॥ ५ ॥
 'रूपमुत्पित्स्यमानेऽस्मिन्' हृत्कम्पः शून्यता भ्रमः ।
 तमसो दर्शनं ध्यानं भ्रूयुदासोऽक्षिवैकृतम् ॥ ६ ॥
 अशब्दश्रवणं स्वेदो लालासिङ्घाणकस्रुतिः ।
 अविपाकोऽरुचिर्मूर्च्छा कुक्ष्याटोपो बलक्षयः ॥ ७ ॥
 निद्रानाशोऽङ्गमर्दस्त्वृट् स्वप्ने गानं सनर्तनम् ।
 पानं मद्यस्य तैलस्य तयोरेव च मेहनम् ॥ ८ ॥
 तत्र 'वाता'त्फुरत्सक्थि प्रपतंश्च मुहुर्मुहुः ।
 अपस्मरति संज्ञां च लभते विस्वरं रुदन् ॥ ९ ॥
 उत्पिण्डिताक्षः श्वसिति फेनं वमति कम्पते ।
 आविध्यति शिरो दन्तान् दशत्याध्मातकन्धरः ॥ १० ॥

व्यापारस्य च-अभिसंप्लवात्=विकृतत्वाज् जायते, अत्रयं परम्परा—

प्राक्तनकर्मविपाकाच्चिन्ताशोकादयो नुः स्थुः ।

तैर्धी-सत्त्वविकारात्, स्मृतिनाशात् स्यादपस्मारः ।

१. मनसो मदः = उन्मादः, स्मरणशक्तिनाशोऽपस्मार-इति
 भेदः । अन्तःकरणरोगाविमौ ।

परितो वित्तिपत्यङ्गं विषमं विनताङ्गुलिः ।
 रुक्षश्यावारुणाक्षित्वङ्गुनखास्यः कृष्णमीक्षते ॥ ११ ॥
 चपलं परुषं रूपं विरूपं विकृताननम् ।
 अपस्मरति 'पित्तेन मुहुः संज्ञां च विदन्ति' ॥ १२ ॥
 पीतफेनाक्षिवक्त्रत्वगास्फालयति मेदिनीम् ।
 भैरवाऽऽदीप्तरुषित-रूपदर्शी तृषान्वितः ॥ १३ ॥
 'कफा'च्चिरेण ग्रहणं चिरेणैव विबोधनम् ।
 चेष्टाऽल्पा भूयसी लाला शुक्लनेत्रनखास्यता ॥ १४ ॥
 शुक्लाभरूपदर्शित्वं सर्वलिङ्गं च वर्जयेत् ।
 अथाऽऽवृतानां धीचित्त-हृत्त्वानां प्राक्प्रबोधनम् ॥ १५ ॥
 तीक्ष्णैः कुर्यादपस्मारे 'कर्मभिर्वमनादिभिः' ।
 'वातिकं' बस्तिभूयिष्ठैः, 'पैत्तं' प्रायो विरेचनैः ॥ १६ ॥
 'श्लैष्मिकं' वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ।
 सर्वतस्तु विशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च ॥ १७ ॥
 अपस्मारविमोक्षार्थं 'योगान्संशमनान्' शृणु ।

पञ्चगव्यं घृतम् ।

^१ गोमयस्वरस-क्षीर-दधिमूत्रैः शृतं हविः ॥ १८ ॥
 अपस्मारज्वरोन्माद-कामलान्तकरं पिबेत् ।

महापञ्चगव्यं घृतम् ।

द्विपञ्चमूलीत्रिफलाद्विनिशाकुटजत्वचः ॥ १९ ॥

१. गोमयश्च—'अग्रमग्रं चरन्तीनामोषधीनां रसं वने' इति
 मन्त्रवर्णितः, न तु—अन्नभक्षिणीनां गवाम् । कश्यपसंहिता द्रष्टव्या ।

ससर्पणमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ।
 शम्पाकपुष्करजटा-फलगुमूलदुरालभाः ॥ २० ॥
 द्विपलाः सलिलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ।
 भार्ङ्गीपाठाढकीकुम्भ-निकुम्भव्योषरोहिषैः ॥ २१ ॥
 मूर्वाभूतीकभूनिम्ब-श्रेयसीसारिवाद्वयैः ।
 मदन्यन्मिनिचुलैरक्षांशैः सर्पिषः पचेत् ॥ २२ ॥
 प्रस्थं तद्वद् द्रवैः पूर्वैः 'पञ्चगव्यमिदं महत्' ।
 ज्वरापस्मारजठरभगन्दरहरं परम् ॥ २३ ॥
 शोफार्शःकामलापाण्डु-गुल्मकासग्रहापहम् ।
 ब्राह्मीरस-वचा-कुष्ठ-शङ्खपुष्पी-शृतं 'घृतम्' ॥ २४ ॥
 पुराणं मेध्यमुन्मादाऽलक्ष्म्यपस्मारपाप्मजित् ।
 तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ २५ ॥
 क्षीरद्रोणे पचेत्सिद्धमपस्मारविमोक्षणम् ।
 कंसे ^१क्षीरेक्षुरसयोः काश्मर्येऽष्टगुणे रसे ॥ २६ ॥
 कार्ष्णिकैर्जीवनीयैश्च सर्पिःप्रस्थं विपाचयेत् ।
 'वातपित्तोद्भवं' क्षिप्रमपस्मारं निहन्ति तत् ॥ २७ ॥
 तद्वत्काशविदारीक्षु-कुशकाथशृतं पयः ।
 कूष्माण्डस्वरसे सर्पिरष्टादशगुणे शृतम् ॥ २८ ॥
 यष्टीकल्कमपस्मारहरं धीवाक्स्वरप्रदम् ।
 कपिलानां गवां पित्तं नावनं परमं हितम् ॥ २९ ॥

१. कंसे = आढकद्रव्ये, -(चत्वारः कुडवाः = प्रस्थः = चतुःप्रस्थ-
 मथाढकम् । पात्रं तदेव विशेषम् , कंसः = प्रस्थाष्टकं तथा-) इति
 चरकाष्टकल्प ० १२।९८ ।

श्वशृगालबिडालानां सिंहादीनां च पूजितम् ।
 गोधानकुलनागानां वृषभर्त्तगवामपि ॥ ३० ॥
 पित्तेषु साधितं तैलं नस्येऽभ्यङ्गे च शस्यते ।
 त्रिफलाव्योषपीतद्रु-यवक्षारफणिज्जकैः ॥ ३१ ॥
 श्यामापामार्गकारञ्ज-बीजैस्तेलं विपाचितम् ।
 वस्तमूत्रे हितं नस्यं चूर्णं वाऽऽध्मापयेद्भिषक् ॥ ३२ ॥
 नकुलोलूकमार्जार-गृध्रकीटाहिकाकजैः ।
 तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूममस्य प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥
 शीलयेत्तैललशुनं पयसा वा शतावरीम् ।
 ब्राह्मीरसं कुष्ठरसं वचां वा मधुसंयुताम् ॥ ३४ ॥
 समं क्रुद्धैरपस्मारो दोषैः शारीरमानसैः ।
 यज्जायते यतश्चैष महामर्मसमाश्रयः ॥ ३५ ॥
 तस्माद्रसायनैरेनं दुश्चिकित्स्यमुपाचरेत् ।
^१तदार्तं चाग्नितोयादेर्विषमात्पालयेत्सदा^२ ॥ ३६ ॥
 मुक्तं मनोविकारेण त्वमित्थं कृतवानिति ।
 न^३ब्रूयाद्विषयैरिष्टैः क्लिष्टं चेतोऽस्य बृंहयेत् ॥ ३७ ॥
 इत्युत्तरस्थाने भूततन्त्रं नाम सप्तमोऽध्यायः ।

१. तदार्तम् = अपस्मारपीडितम् ।

२. सदेति रोगस्याऽनियतकालत्वात् ।

३. न ब्रूयात्—पुनरपि मनोविकाराऽनुवृत्तिभयात् । इति भूत-
तन्त्रम् ।

अष्टमोऽध्यायः ।

१ अथाऽतो वर्त्मरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो १ महर्षयः ॥

‘सर्वरोगनिदानोक्तंरहितैः कुपिता मलाः ।

अचक्षुष्यैर्विशेषेण प्रायः पित्तानुसारिणः ॥ १ ॥

सिराभिरूर्ध्वं प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः ।

वर्म सन्धि सितं कृष्णं दृष्टिं वा सर्वमक्षि वा ॥ २ ॥

रोगान् कुर्युःॐ चलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः ।

सुप्तोत्थितस्य कुरुते ‘वर्मस्तम्भं’ सवेदनम् ॥ ३ ॥

पांशुपूर्णाभनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमश्रु च ।

विमर्दनास्याच्च शमः, ‘कृच्छ्रोन्मीलं’ वदन्ति तम् ॥ ४ ॥

चालयन्वर्मनी वायुर्निमेषोन्मेषणं मुहुः ।

करोत्यरुद्धं निमेषोऽसौॐ वर्म यत्तु निमील्यते ॥ ५ ॥

विमुक्तसन्धि निश्चेष्टं हीनं वातहतं हि तत् ।

कृष्णाः पित्तेन बह्व्योऽन्तर्वर्म कुम्भीकबीजवत् ॥ ६ ॥

आध्मायन्ते पुनर्भिन्नाः पिटिकाः कुम्भिसंज्ञिताः ।

सदाहकलेदनिस्तोदं रक्ताभं स्पर्शनाक्षमम् ॥ ७ ॥

१. अथ = काय-बाल-ग्रह-रूपतन्त्रत्रयनिरूपणानन्तरं यतः
प्रतिज्ञातक्रमप्राप्तमूर्ध्वाङ्गतन्त्रम् अतस्तदेव शालाक्याऽपरपर्यायं
चतुर्थं तन्त्रं व्याख्यास्यामः, तत्राऽपि—प्राधान्यान्नेत्ररोगं व्याख्या-
स्याम इत्यर्थः ।

२. अत्राऽदिशब्दान्निमिः शालाक्यतन्त्राचार्यो गृह्यते ।

- 'पित्तेन' जायते वर्त्म, 'पित्तोत्किलष्टमुशन्ति' तत् ।
करोति कण्डूं दाहं च पित्तं पचमान्तमास्थितम् ॥ ८ ॥
पचमणां शातनं चानु, 'पचमशातं' वदन्ति तम् ।
'पोथक्यः' पिटिकाः श्वेताः सर्षपाभा घनाः कफात् ॥ ९ ॥
शोफोपदेहरुक्कण्डूपिच्छिलाश्रुसमन्विताः ।
कफोत्किलष्टं भवेद्वर्त्म स्तम्भक्लेदोपदेहवत् ॥ १० ॥
- ग्रन्थिः पाण्डुररुक्पाकः कण्डूमान् कठिनः कफात् ।
कोलमात्रः स 'लगणः' किञ्चिदल्पस्ततोऽपि वा ॥ ११ ॥
रक्ता रक्तेन पिटिका तत्तुल्यपिटिकाचिता ।
'उत्सङ्गाख्या' तथोत्किलष्टं राजिमत्स्पर्शनाक्षमम् ॥ १२ ॥
'अशोऽधिमांसं वर्त्मन्तः स्तब्धं स्निग्धं सदाहरूक् ।
रक्तं रक्तेन तस्त्रावि छिन्नं छिन्नं च वर्धते ॥ १३ ॥
मध्ये वा वर्त्मनोऽन्ते वा कण्डूयारुग्वती स्थिरा ।
मुद्गमात्राऽसृजा ताम्रा पिटिका 'ऽञ्जननामिका' ॥ १४ ॥
दोषैर्वर्त्म बहिः शूनं यदन्तः सूक्ष्मखाऽऽचितम् ।
सस्त्रावमन्तरुदकविसाभं 'विसवर्त्म' तत् ॥ १५ ॥
यद्वर्त्मोत्किलष्टमुत्किलष्टमकस्मान्म्लानतामियात् ।
रक्तदोषत्रयोत्कलेशाद् 'वदन्त्युत्किलष्टवर्त्म' तत् ॥ १६ ॥
श्याववर्त्म मलैः सास्त्रैः 'श्यावं' रुक्क्लेदशोफवत् ।
शिलष्टाख्यवर्त्मनी शिलष्टे कण्डूश्वयथुरागिणी ॥ १७ ॥
वर्त्मनोऽन्तः खरा रुक्षाः पिटिकाः सिकतोपमाः ।
'सिकतावर्त्म' कृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ १८ ॥

१. मांसाङ्कुरत्वेन सादृश्यादर्शोव्यवहारः ।

'बहलं' ^१बहलैर्मांसैः सवर्णैश्चीयते समैः ।
 'कुक्कूणकः' शिशोरेव दन्तोत्पत्तिनिमित्तजः ॥ १९ ॥
 स्यात्तेन शिशुरुच्छूनताम्राक्षो वीक्षणाक्षमः ।
 सवर्त्मशूलपैच्छिल्यः कर्णनासाक्षिमर्दनः ॥ २० ॥
 पक्ष्मोपरोधे सङ्कोचो वर्त्मनोर्जायते तथा ।
 खरतान्तर्मुखत्वं चर्लोम्नामन्यानि वा पुनः ॥ २१ ॥
 कण्टकैरिव तीक्ष्णाग्रैर्घृष्टं तैरक्षि शूयते ।
 उप्यते चानिलादिद्विडल्पाहः शान्तिरुद्धृतैः ॥ २२ ॥
 कनीनके बहिर्वर्त्म कठिनो ग्रन्थिरुन्नतः ।
 ताम्रः पक्वोऽस्त्रपूयाऽऽसुद्-^२'अलज्या'ध्मायते मुहुः ॥ २३ ॥
 वर्त्मनन्तर्मांसपिण्डाभः श्वयथुर्ग्रथितोऽरुजः ।
 सास्त्रैः स्याद्-'अर्बुदो' दोषैर्विषमो बाह्यतश्चलः ॥ २४ ॥
 'चतुर्विंशतिरित्येते व्याधयो वर्त्मसंश्रयाः ।
 आद्योऽत्र भेषजैः साध्यो द्वौ ततोऽर्शश्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥
 पक्ष्मोपरोधो याप्यः स्याच्छेषान्छस्त्रेण साधयेत् ।
^३'कुट्टयेत्पक्ष्मसदनं छिन्द्यात्तेष्वपि चार्बुदम् ॥ २६ ॥
 भिन्द्याल्लगणकुम्भीकाबिसोत्सङ्गाञ्जनालजीः ।
 पोथकी-श्याव-सिकता-श्लिष्टोत्थिलश्चतुष्टयम् ॥ २७ ॥
 सकर्दमं सबहलं विलिखेत्सकुक्कूणकम् ॥ २७ ॥^४
 इत्युत्तरस्थानेऽष्टमोऽध्यायः ।

१. बहलैः=गाढैः । २. कुट्टयेत्=छिन्द्यात्, सूचीकूर्चेन करणेन । ३.

नवमोऽध्यायः ।

^१अथाऽतो वर्त्मरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘कृच्छ्रोन्मीले पुराणाज्यं द्राक्षाकल्काम्बुसाधितम् ।

ससितं योजयेत्स्निग्धं नस्यधूमाञ्जनादि च ॥ १ ॥

कुम्भीकावर्त्म लिखितं सैन्धवप्रतिसारितम् ।

^२यष्टीधात्रीपटोलीनां क्वाथेन परिषेचयेत् ॥ २ ॥

निवातेऽधिष्ठितस्याप्तैः शुद्धस्योत्तानशायिनः ।

बहिः कोष्णाम्बुतप्तेन स्वेदितं वर्त्म वाससा ॥ ३ ॥

निर्मुज्य वस्त्रान्तरितं वामाङ्गुष्ठाङ्गुलीधृतम् ।

न स्नंसते चलति वा वर्त्मनैव सर्वतस्ततः ॥ ४ ॥

मण्डलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदाङ्कितम् ।

लिखेत्तेनैव पत्रैर्वा शाकशोफालिजादिजैः ॥ ५ ॥

फेनेन तोयराशेर्वा पिचुना प्रमृजन्नसृक् ।

स्थिते रक्ते सुलिखितं सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ६ ॥

यथास्वमुक्तैरनु च प्रक्षाल्योष्णेन वारिणा ।

घृतेनासिक्तमभ्यक्तं बध्नीयान्मधुसर्पिषा ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्त्वा पिण्डीं च यवसक्तुभिः ।

द्वितीयेऽहनि मुक्तस्य परिषेकं यथायथम् ॥ ८ ॥

कुर्याच्चतुर्थे नस्यादीन्मुञ्चेदेवाहि पञ्चमे ।

१. स्वरूपज्ञानानन्तरं प्रतिषेधज्ञानं जिज्ञासितमेवेति सङ्गतिः
ष्टा । २. यष्टी = मधुयष्टिः ।

समं नखनिभं शोफकण्डूघर्षाद्यपीडितम् ॥ ९ ॥
 विद्यात्सुलिखितं वर्त्म लिखेद्भूयो विपर्यये ।
 रुक्पद्मवर्त्मसदनं संसनादतिलेखनात् ॥ १० ॥
 स्नेहस्वेदादिकस्तस्मिन्निष्टो वातहरः क्रमः ।
 अभ्यज्य नवनीतेन ^१श्वेतरोध्रं प्रलेपयेत् ॥ ११ ॥
 एरण्डमूलकल्लेन पुटपाके पचेत्ततः ।
 सिवन्नं प्रक्षालितं शुष्कं चूर्णितं पोष्टलीकृतम् ॥ १२ ॥
 स्त्रियाः क्षीरे छगल्या ^२ वा मृदितं नेत्रसेचनम् ।
 शालितण्डुलकल्लेन लिप्तं तद्वत्परिष्कृतम् ॥ १३ ॥
 कुयान्नेत्रेऽतिलिखिते मृदितं दधिमस्तुना ।
 केवलेनाऽपि वा सेकं मस्तुना जाङ्गलाशिनः ॥ १४ ॥
 पिटिकां 'ब्रीहिवक्त्रेण' ^३ भित्त्वा तु कठिनोज्जताम् ।
 निष्पीडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत् ॥ १५ ॥
 लेखने भेदने चायं क्रमः सर्वत्र वर्त्मनि ।
 पित्तास्रोत्खिलष्टयोः स्वादुस्कन्धसिद्धेन सर्पिषा ॥ १६ ॥
 सिराविमोक्षः स्निग्धस्य त्रिवृच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ।
 लिखिते सुतरक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम् ॥ १७ ॥
 यष्टीकषायः सेकस्तु क्षीरं चन्दनसाधितम् ।
 पद्मणां सदनं सूच्या रोमकूपान् विकुट्टयेत् ॥ १८ ॥
 ग्राहयेद्वा जलौकाभिः पयसेक्षुरसेन वा ।

१. लोभो द्विविधः, श्वेतवल्कलो रक्तवल्कलश्च, श्वेतवल्कलोऽपि
 द्विविधः, श्वेतपुष्पः, पीतपुष्पश्चेति ।

२. छगल्याः = मेथ्याः । ३. ब्रीहिवक्त्रं यन्त्राध्याये द्रष्टव्यम् ।

वमनं नावनं सर्पिः शृतं मधुरशीतलैः ॥ १९ ॥
 सञ्चूर्ण्य पुष्पकासीसं भावयेत्सुरसारसैः ।
 ताम्रे दशाहं परमं पद्मशाते तदञ्जनम् ॥ २० ॥
 पोथकीलिखिताः शुण्ठीसैन्धवप्रतिसारिताः ।
 उष्णाम्बुक्षालिताः सिञ्चेत् खदिराढकिशिग्रुभिः ॥ २१ ॥
 अप्सिद्धैर्द्विनिशाश्रेष्ठा मधुकैर्वा समाक्षिकैः ।
 कफोत्किलष्टे विलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ २२ ॥
 सूक्ष्मैः सैन्धवकासीस-मनोद्धाकणताक्ष्यजैः ।
 वमनाञ्जननस्यादि सर्वं च कफजिद्धितम् ॥ २३ ॥
 कर्तव्यं लगणेऽप्येतदशान्तावग्निना दहेत् ।
 कुकूणे खदिरश्रेष्ठानिम्बपत्रैः शृतं घृतम् ॥ २४ ॥
 पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टीसर्षपसैन्धवैः ।
 अभयापिप्पलीद्राक्षाक्काथेनैनां विरेचयेत् ॥ २५ ॥
 मुस्ताद्विरजनीकृष्णाकल्केनालेपयेत्स्तनौ ।
 धूपयेत्सर्षपैः साज्यैः शुद्धां^१ क्वाथं च पाचयेत् ॥ २६ ॥
 पटोलमुस्तमृद्धीकागुडूचीत्रिफलोद्भवम् ।
 शिशोस्तु लिखितं वर्त्म सुतासृग्वाऽम्बुजन्मभिः ॥ २७ ॥
 धान्यश्मन्तकजम्बूत्थपत्रक्वाथेन सेचयेत् ।
 प्रायः क्षीरघृताशित्वाद्वालानां श्लेष्मजा गदाः ॥ २८ ॥
 तस्माद्वमनमेवाग्रे सर्वव्याधिषु पूजितम् ।
 सिन्धूत्थ-कृष्णाऽपामार्ग-बीजाज्यस्तन्यमाक्षिकम् ॥ २९ ॥

१. शुद्धाम् = कृतवमनविरेचनां धात्रीम् ।

चूर्णो वचायाः सक्षौद्रो मदनं मधुकान्वितम् ।
 क्षीरं क्षीराक्षमशं च भजतः क्रमशः शिशोः ॥ ३० ॥
 वमनं सर्वरोगेषु विशेषेण कुकूणके ।
 सप्तलारससिद्धाज्यं योज्यं चोभयशोधनम् ॥ ३१ ॥
 द्विनिशारोध्रयष्ट्याह्वरोहिणीनिम्बपल्लवैः ।
 कुकूणके हिता वर्तिः पिष्टेस्तान्नरजोन्वितैः ॥ ३२ ॥
 क्षीरक्षौद्रघृतोपेतं दग्धं वा लोहजं रजः ।
 एलारसोनकतकशङ्खोषणफणिज्जकैः ॥ ३३ ॥
 वर्तिः कुकूणपोथक्याः सुरापिष्टैः सकटफलैः ।
 पद्मरोधे प्रवृद्धेषु शुद्धदेहस्य रोमसु ॥ ३४ ॥
 उत्सृज्य द्वौ भ्रुवोऽधस्ताद्भागौ भागं च पद्मततः ।
 यवमात्रं यवाकारं तिर्यक्छित्त्वाऽऽर्द्रवाससा ॥ ३५ ॥
 अपनेयमसृक् तस्मिन्नल्पीभवति शोणिते ।
 सीव्येत्कुटिलया सूच्या मुद्गमात्रान्तरैः पदैः ॥ ३६ ॥
 बद्ध्वा ललाटे पट्टं च तत्र सीवनसूत्रकम् ।
 नातिगाढश्लथं सूच्या निक्षिपेदथ योजयेत् ॥ ३७ ॥
 मधुसर्पिकवलिकां न चास्मिन् बन्धमाचरेत् ।
 न्यग्रोधादिकषायैश्च सक्षीरैः सेचयेद्भुजि ॥ ३८ ॥
 पञ्चमे दिवसे सूत्रमपनीयावचूर्णयेत् ।

१. क्षीरं भजतः शिशोः सिन्धूत्यादि वमनं पूजितं सर्वरोगेषु
 क्षीराक्षं भजतः शिशोः सक्षौद्रः-वचायाश्चूर्णो वमने पूजितः सर्वं
 अन्नं भजतः शिशोः—मधुकेन = यष्टीमधुनाऽन्वितं मदनं वमने
 सर्वरोगेषु पूजितम् । कुकूणके विशेषेण पूजितम् ।

गैरिकेण व्रणं युञ्ज्यात्तीक्ष्णं नस्याञ्जनादि च ॥ ३९ ॥
 दहेदशान्तौ निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रयां वलीम् ।
 सन्दंशेनाधिकं पक्ष्म हत्वा तस्याश्रयं दहेत् ॥ ४० ॥
 सूच्यग्रेणान्निवर्णेन दाहो बाह्यालजेः पुनः ।
 भिन्नस्य क्षारवह्निभ्यां सुच्छिन्नस्यार्बुदस्य च ॥ ४१ ॥
 इत्युत्तरस्थाने नवमोऽध्यायः ।

दशमोऽध्यायः ।

१ अथाऽतः सन्धिसितासितरोगविज्ञानमारभ्यते ॥
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'वायुः क्रुद्धः सिराः प्राप्य जलाभं जलवाहिनीः ।
 अस्तु स्नावयते वर्त्मशुक्लसन्धेः कनीनकात् ॥ १ ॥
 तेन नेत्रं सरुग्रागशोफं स्यात्स 'जलास्रवः' ।
 कफात्कफस्रवे श्वेतं पिच्छिलं बहलं स्रवेत् ॥ २ ॥
 कफेन शोफस्तीक्ष्णाग्रः क्षारबुद्बुदकोपमः ।
 पृथुमूलबलः स्निग्धः सर्वणमृदुपिच्छिलः ॥ ३ ॥
 महानपाकः कण्डूमान् 'उपनाहः' स नीरुजः ।
 रक्ताद् रक्तस्रवे ताम्रं बहूष्णं चाश्रु संस्रवेत् ॥ ४ ॥
 वर्त्मसन्ध्याश्रया शुक्ले पिटिका दाहशूलिनी ।
 ताम्रा मुद्रोपमा भिन्नं रक्तं स्रवति 'पर्वणी' ॥ ५ ॥

१. अथ = वर्त्मरोगविज्ञानानन्तरं यतः सामीप्यात् सन्धेः सि-
 तसितयोश्चोपस्थितिः, अतस्तद्रोगविज्ञानमारभ्यते ।

'पूयास्त्रावे'मलाः सास्त्रा वर्त्मसन्धेः कनीनकात् ।
 स्त्रावयन्ति मुहुः पूयं सास्त्रवङ्मांसपाकतः ॥ ६ ॥
 'पूयालसो' व्रणः सूक्ष्मः शोफसंरम्भपूर्वकः ।
 कनीनसन्धावाधमायी पूयास्त्रावी सवेदनः ॥ ७ ॥
 कनीनस्यान्तर'लजी' शोफो रुक्तोद-दाहवान् ।
 अपाङ्गे वा कनीने वा कण्डूषापक्ष्मपोटवान् ॥ ८ ॥
 पूयास्त्रावी 'कृमिग्रन्थि'ग्रन्थिः कृमियुतोऽर्तिमान् ।
 उपनाह-कृमिग्रन्थि-पूयाऽलसक-पर्वणीः ॥ ९ ॥
 शस्त्रेण साधयेत् , पञ्च साऽलजीनास्त्रवांस्यजेत् ।

इति सन्धिरोगा नव ।

पित्तं कुर्यात्सिते बिन्दूनसितश्यावपीतकान् ॥ १० ॥
 मलाक्तादर्शतुल्यं वा सर्वं शुक्लं सदाहरकम् ।
 रोगोऽयं 'शुक्तिकासंज्ञः' सशकृद्भेदतृड्ज्वरः ॥ ११ ॥
 कफाच्छुक्ले समं श्वेतं चिरवृद्धयधिमांसकम् ।
 'शुक्लार्म'शोफस्त्वरुजः सवर्णो बहलो मृदुः ॥ १२ ॥
 गुरुः स्निग्धोऽम्बुबिन्द्वाभो 'बलासग्रथितं' स्मृतम् ।
 बिन्दुभिः पिष्टधवलैरुत्सन्नैः 'पिष्टकं' वदेत् ॥ १३ ॥
 रक्तराजीततं शुक्लमुप्यते यत्सवेदनम् ।
 अशोफाश्रूपदेहं च 'सिरोत्पातः' स शोणितात् ॥ १४ ॥
 उपेक्षितः सिरोत्पातो राजीस्स एव वर्धयन् ।
 कुर्यात्सास्त्रं 'सिराहर्ष' तेनाच्युद्वीक्षणाऽक्षमम् ॥ १५ ॥
 सिराजाले 'सिराजालं' बृहद्रक्तं घनोन्नतम् ।
 'शोणितार्म' समं श्लक्ष्णं पद्माभमधिमांसकम् ॥ १६ ॥

नीरुक् श्लक्ष्णोऽर्जुनं बिन्दुः शशलोहितलोहितः ।
 मृद्धाशुवृद्धयरुद्धमांसं प्रस्तारि श्यावलोहितम् ॥ १७ ॥
 'प्रस्तार्यर्म' मलैः सास्त्रैः॥ 'स्त्रावर्म' स्त्रावसन्निभम् ।
 शुष्कासृक्पिण्डवच्छ्रद्यावं यन्मांसं बहलं पृथु ॥ १८ ॥
 'अधिमांसार्म' तद्दाह-घर्षवन्त्यः सिरावृताः ।
 कृष्णासन्नाः सिरासंज्ञाः पिटिकाः सर्षपोपमाः ॥ १९ ॥
 शुक्ति-हर्ष-सिरोत्पात-पिष्टक-ग्रथिताऽर्जुनम् ।
 साधयेदौषधैः पट्कं, शेषं शस्त्रेण सप्तकम् ॥ २० ॥
 नवोत्थं तदपि द्रव्यैः॥ अर्मोक्तं^१ यच्च पञ्चधा ।
 तच्छेद्यमसितप्राप्तं मांसस्त्रावसिरावृतम् ॥ २१ ॥
 चर्मोद्दालवदुच्छ्रायि दृष्टिप्राप्तं च वर्जयेत् ।

इति सितभागरोगाः ।

पित्तं कृष्णेऽथवा दृष्टौ शुक्रं तोदाश्रुरागवत् ॥ २२ ॥
 छित्रा त्वचं जनयति तेन स्यात्कृष्णमण्डलम् ।
 पक्वजम्बूनिभं किञ्चिन्निम्नं च क्षतशुक्रकम् ॥ २३ ॥
 तत्कृच्छ्रसाध्यं याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात् ।
 तत्र तोदादिबाहुल्यं सूचीविद्वाभकृष्णता ॥ २४ ॥
 तृतीयपटलच्छेदादसाध्यं निश्चितं व्रणैः ।
 शङ्खशुक्लं कफात्साध्यं नातिरुक् शुद्धशुक्रकम् ॥ २५ ॥
 आताम्रपिच्छिलास्रसुदाताम्रपिटिकातिरुक् ।

१. यच्च शुक्लाऽर्म शोणिताऽर्म प्रस्तार्यर्म-स्त्रावाऽर्म-अधिमांसार्म-
 इति पञ्चधा अर्म उक्तं, तच्छेदनाहम् ।

अजाविट्सदृशोच्छ्रायकाण्य्या वज्याऽसृजाऽजका ॥ २६ ॥
 सिराशुक्रं मलैः सास्त्रैस्तज्जुष्टं कृष्णमण्डलम् ।
 सतोददाहंताम्राभिः सिराभिरवतन्यते ॥ २७ ॥
 अनिमित्तोष्णशीताच्छ्रघनास्त्रस्तु च तस्यजेत् ।
 दोषः सास्त्रैः सकृत्कृष्णं नीयते शुक्लरूपताम् ॥ २८ ॥
 धवलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाकृति ।
 अतितीव्ररुजाराग-दाह-श्वयथुपीडितम् ॥ २९ ॥
 पाकात्ययेन तच्छुक्रं वर्जयेत्तीव्रवेदनम् ।
 यस्य वा लिङ्गनाशोऽन्तःश्यावं यद्वा सलोहितम् ।
 अत्युत्सेधावगाढं वा साश्रुनाडीव्रणावृतम् ॥ ३० ॥
 पुराणं विषमं मध्ये विच्छिन्नं यच्च शुक्रकम् ।
 'पञ्चेत्युक्ता गदाः कृष्णे' साध्याऽसाध्यविभागतः ॥ ३१ ॥
 इत्युत्तरस्थाने दशमोऽध्यायः ।

—(१)—

एकादशोऽध्यायः ।

अथातः सन्धिसितासितरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'उपनाहं भिषक् स्विन्नं' भिन्नं ब्रीहिमुखेन च ।
 लेखयेन्मण्डलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत् ॥ १ ॥
 पिप्पलीक्षौद्रसिन्धूत्थैर्वध्नीयात्पूर्ववत्ततः ।
 पटोलपत्रामलककाथेनाश्रोतयेच्च तम् ॥ २ ॥
 १. स्विन्नं वर्त्मरोगप्रतिषेधोक्तेन प्रकारेण कृतस्वेदम् ।

पर्वणी बडिशोनाऽऽत्ता बाह्यसन्धिभिभागतः ।
 वृद्धिपत्रेण वर्ध्याऽर्धे स्यादश्रुगतिरन्यथा ॥ ३ ॥
 चिकित्सा चार्मवत्क्षौद्रसैन्धवप्रतिसारिता ।
 पूयालसे सिरां विध्येत्ततस्तमुपनाहयेत् ॥ ४ ॥
 कुर्वीत चाक्षिपाकोक्तं सर्वं कर्म यथाविधि ।
 सैन्धवार्द्रककासीसलोहताम्रैः सुचूर्णितैः ॥ ५ ॥
 चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत सक्षौद्रैर्वा रसक्रियाम् ।
 कृमिग्रन्थि करीपेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च ॥ ६ ॥
 त्रिफलाक्षौद्रकासीससैन्धवैः प्रतिसारयेत् ।
 पित्ताभिष्यन्दवच्छुक्तिं बलासाह्वय-पिष्टके ॥ ७ ॥
 कफाभिष्यन्दवन्मुक्त्वा सिराव्यधमुपाचरेत् ।
 बीजपूररसाक्तं च व्योषकट्फलमञ्जनम् ॥ ८ ॥
 जातीमुकुलसिन्धूत्थदेवदारुमहौषधैः ।
 पिष्टैः प्रसन्नया वर्तिः शोफकण्डूघ्नमञ्जनम् ॥ ९ ॥
 रक्तस्यन्दवदुत्पातहर्षजालार्जुने क्रिया ।

अञ्जनान्याह—

'सिरोत्पाते' विशेषेण घृतमाक्षिकमञ्जनम् ॥ १० ॥
 'सिराहर्षे' तु मधुना श्लक्ष्णघृष्टं रसाब्जनम् ।
 'अर्जुने' शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्चोतनं हितम् ॥ ११ ॥
 स्फटिकः कुङ्कुमं शङ्खो मधुको मधुनाऽञ्जनम्^१ ।

१. इच्युतिर् = आसेचने, इच्युतिर्—इत्येके ।

२. अर्जुने रोगे हितम्—इत्यनुवर्तत ।

मधुना चाञ्जनं^१ शङ्खः फेनो वा सितया सह^२ ॥ १२ ॥
 अमोक्तं पञ्चधा तत्र तनु धूमाविलं च यत् ।
 रक्तं दधिनिभं यच्च शुकवक्तस्य भेषजम् ॥ १३ ॥
 उत्तानस्येतरत् स्विन्नं ससिन्धूथेन चाञ्जितम् ।
 रसेन बीजपूरस्य निमील्यात्ति विमर्दयेत् ॥ १४ ॥
 इत्थं संरोषिताक्षस्य प्रचलेऽर्माधिमांसके^३ ।
 धृतस्य निश्चलं मूर्ध्नि वर्त्मनोश्च विशेषतः ॥ १५ ॥
 आपाङ्गमीक्षमाणस्य वृद्धेऽर्मणि कनीनकात् ।
 वली स्याद्यत्र तन्मार्मं बडिशेनावलम्बितम् ॥ १६ ॥
 नात्यायतं मुचुण्ड्या वा सूच्या सूत्रेण वा ततः ।
 समन्तान्मण्डलाग्रेण मोचयेदथ मोक्षितम् ॥ १७ ॥
 कनीनकमुपानीय चतुर्भागावशेषितम् ।
 छिन्द्यात्कनीनके रक्षेद्वाहिनीश्चाश्रुवाहिनीः ॥ १८ ॥
 कनीनकव्यधादश्रुनाडी चाक्षिणं प्रवर्तते ।
 वृद्धेऽर्मणि तथाऽपाङ्गात्पश्यतोऽस्य कनीनकात् ॥ १९ ॥
 सम्यक् छिन्नं मधुव्योषसैन्धवप्रतिसारितम् ।
 उष्णेन सर्पिषा सिक्तमभ्यक्तं मधुसर्पिषा ॥ २० ॥
 बध्नीयात्सेचयेन्मुक्त्वा तृतीयादिदिनेषु च ।
 करञ्जबीजसिद्धेन क्षीरेण कथितैस्तथा ॥ २१ ॥
 सक्षौद्रैर्द्विनिशारोध्र पटोलीयष्टिकिशुकैः ।
 कुरण्टमुकुलोपेतैर्मुञ्चेदेवाहि सप्तमे ॥ २२ ॥

१. हितम् । २. शङ्खः समुद्रफेनो वा शर्करया सह हितः । इति
 चत्वारः प्रयोगा अर्जुने सहाध्यातनेन ।

सम्यक् छिन्ने भवेत्स्वास्थ्यं हीनातिच्छेदजान्गदान् ।
 सेकाञ्जनप्रभृतिभिर्जयेल्लेखनवृंहणैः ॥ २३ ॥
 सिता-मनःशिलालेय(प)लवणोत्तमनागरम् ।
 अर्धकषोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुप्लुतम् ॥ २४ ॥
 अञ्जनं श्लेष्मतिमिरपिक्लशुक्रार्मशोषजित् ।
 त्रिफलैकतमद्रव्यस्वचं पानीयकल्किताम् ॥ २५ ॥
 शरावपिहितां दग्ध्वा कपाले चूर्णयेत्ततः ।
 पृथक्शेषौषधरसैः पृथगेव च भाविताम् ॥ २६ ॥
 सा मषी शोषिता पेध्या भूयो द्विलवणान्विता ।
 त्रीण्येतान्यञ्जनान्याह लेखनानि परं निमिः ॥ २७ ॥
 सिराजाले सिरायास्तु कठिना लेखनौषधैः ।
 न सिध्यन्त्यर्मवत्तासां पिटिकानां च साधनम् ॥ २८ ॥
 दोषानुरोधाच्छुक्रेषु स्निग्धरुक्षवराघृतम् ।
 तिक्तमूर्ध्वमसृक्स्त्रावो रेकसेकादि चेप्यते ॥ २९ ॥
 त्रिखिवृद्धारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत् ।
 सिरयाऽनु हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ॥ ३० ॥
 सिद्धेनोत्पलकाकोलीद्राक्षायष्टीविदारिभिः ।
 ससितेनाजपयसा सेचनं सलिलेन वा ॥ ३१ ॥
 रागाश्रुवेदनाशान्तौ परं लेखनमञ्जनम् ।
 वर्तयो जातिमुकुललाक्षागैरिकचन्दनैः ॥ ३२ ॥
 प्रसादयन्ति पित्तास्रं घ्नन्ति च क्षतशुक्रकम् ।
 दन्तैर्दन्तिवराहोद्भृगवाभ्राजखरोद्भवैः ॥ ३३ ॥
 सशङ्खमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ।

क्षतशुक्रमपि व्यापि दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ३४ ॥
 तमालपत्रं गोदन्तशङ्खफेनोऽस्थि गार्दभम् ।
 ताम्रं च वर्तिर्मृत्रेण सर्वशुक्रकनाशिनी ॥ ३५ ॥
 रस्नादि दन्ताः शृङ्गाणि धातवस्स्यूषणं त्रुटिः ।
 करञ्जबीजं लशुनो व्रणसादि च भेषजम् ॥ ३६ ॥
 सव्रणात्र गगम्भीरस्त्वक्स्थशुक्रघ्नमञ्जनम् ।
 निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपाननस्यरसाञ्जनैः ॥ ३७ ॥
 सरुजं नीरुजं तृप्तिपुटपाकेन शुक्रकम् ।
 शुद्धशुके निशायष्टीसारिवाशाबराग्भसा ॥ ३८ ॥
 सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णाम्भोमग्नयाऽथवा ।
 बृहतीमूल्यष्ट्याह्व-ताम्रसैन्धवनागरैः ॥ ३९ ॥
 धात्रीफलाम्बुना पिष्टैर्लेपितं ताम्रभाजनम् ।
 यवाज्यामलकीपत्रैर्बहुशो धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥
 तत्र कुर्वीत गुटिकास्ता जलक्षौद्रपेषिताः ।
 'महानीला' इति ख्याताः शुद्धशुक्रहराः परम् ॥ ४१ ॥
 स्थिरे शुके घने चाऽस्य बहुशोऽपहरेदसृक् ।
 शिरःकायविरेकांश्च पुटपाकांश्च भूरिशः ॥ ४२ ॥
 कुर्यान्मरिचवैदेहीशिरीषफलसैन्धवैः ।
 घर्षणं त्रिफलाकाथपीतेन लवणेन वा ॥ ४३ ॥
 कुर्यादञ्जनयोगौ वा श्लोकार्धगदिताविमौ ।
 शङ्ख-कोलास्थि-कतक-द्राक्षा-मधुक-माक्षिकैः ॥ ४४ ॥
 'सुरादन्तार्णवमलैः शिरीषकुसुमान्वितैः ।
 धात्रीफणिज्जकरसे क्षारो लाङ्गलिकोद्भवः ॥ ४५ ॥

उषितः शोषितश्चूर्णः शुक्रवर्षणमञ्जनम् ।
 मुद्गा वा निस्तुषाः पिष्टाः शङ्खचौद्रसमायुताः ॥ ४६ ॥
 सारो मधूकान्मधुमान् मज्जा वाऽन्नास्समाक्षिका ।
 गो-खराऽश्वोष्पदशनाः शङ्खः फेनः समुद्रजः ॥ ४७ ॥
 वर्तिरर्जुनतोयेन दुष्टशुक्रकनाशिनी ।
 उत्सन्नं वा सशल्यं वा शुक्रं वालादिभिर्लिखेत् ॥ ४८ ॥
 सिराशुके त्वदृष्टिघ्ने चिकित्सा व्रणशुक्रवत् ।
 पुण्ड्रयष्ट्याह्वाकाकोलीसिंहीलोहनिशाऽञ्जनम् ॥ ४९ ॥
 कल्कितं छागदुग्धेन सघृतैर्धूपितं यवैः ।
 धात्रीपत्रैश्च पर्यायाद्वर्तिर्नेत्राञ्जनं परम् ॥ ५० ॥
 अशान्तावर्मवच्छस्त्रमजकाख्ये च योजयेत् ।
 अजकायामसाध्यायां शुकेऽन्यत्र च तद्विधैः ॥ ५१ ॥
 वेदनोपशमं स्नेहपानासृक्स्त्रावणादिभिः ।
 कुर्याद्बीभत्सतां जेतुं शुक्रस्योत्सेधसाधनम् ॥ ५२ ॥
 नालिकेरास्थिभस्माततालवंशकरीरजम् ।
 भस्माद्भिः स्त्रावयेत्ताभिर्भावयेत्करभास्थिजम् ॥ ५३ ॥
 चूर्णं शुकेष्वसाध्येषु तद्वैवर्ण्यधनमञ्जनम् ।
 साध्येषु साधनायालमिदमेव च शीलितम् ॥ ५४ ॥
 अजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्त्रान्य चोदकम् ।
 समं प्रपीड्याङ्गुष्ठेन वसार्देणानुपूरयेत् ॥ ५५ ॥
 व्रणं गोमांसचूर्णेन बद्धं बद्धं विमुच्य च ।
 सप्तरात्राद् व्रणे रूढे कृष्णभागे समे स्थिरे ॥ ५६ ॥
 स्नेहाञ्जनं च कर्तव्यं नस्यं च क्षीरसर्पिषा ।

तथापि पुनराधमाने भेदच्छेदादिकां क्रियाम् ॥ ५७ ॥

युक्त्या कुर्याद्यथा नातिच्छेदेन स्यान्निसज्जनम् ।

नित्यं च शुक्रेषु शृतं यथास्वं

पाने च मर्शं च घृतं विदध्यात् ।

न हीयते लब्धबला तथान्त-

स्तीक्ष्णाञ्जनैर्दृक् सततं प्रयुक्तैः ॥ ५८ ॥'

इत्युत्तरस्थाने एकादशोऽध्यायः ।



द्वादशोऽध्यायः ।

१ अथाऽनो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘सिरानुसारिणि मले प्रथमं’ पटलं श्रिते ।

अव्यक्तमीक्षते^१ रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः ॥ १ ॥

प्राप्ते ‘द्वितीयं’ पटलमभूतमपि पश्यति ।

भूतं तु यरनादासन्नं दूरे सूक्ष्मं च नेक्षते ॥ २ ॥

दूरान्तिकस्थं रूपं च विपर्यासेन मन्यते ।

दोषे ‘मण्डलसंस्थाने’ मण्डलानीव पश्यति ॥ ३ ॥

द्विधैकं ‘दृष्टिमध्यस्थे’ बहुधा ‘बहुधा स्थिते’ ।

‘दृष्टेरभ्यन्तरगते’ ह्रस्ववृद्धविपर्ययम् ॥ ४ ॥

नान्तिकस्थ‘मधःसंस्थे’ दूरगं नो‘परि स्थिते’ ।

१. सन्धिसिताऽसितरोगतत्प्रतीकारज्ञानानन्तरं दृष्टिरोगज्ञानं सामीप्यात्प्राधान्याच्च, स्मृतिपथमारूढमिति तन्निरूपयिष्यामः ।

पार्श्वे पश्येन्न 'पार्श्वस्थे' तिमिराख्योऽयमामयः ॥ ५ ॥
 प्राप्नोति 'काचतां' दोषे 'तृतीयपटलाश्रिते' ।
 तेनोर्ध्वमीक्षते नाधस्तनुचैलावृतोपमम् ॥ ६ ॥
 यथावर्णं च रज्येत दृष्टिर्हीयेत च क्रमात् ।
 तथाप्युपेक्षमाणस्य 'चतुर्थ' पटलं गतः ॥ ७ ॥
 लिङ्गनाशं मलः कुर्वन् छादयेद् दृष्टिमण्डलम् ।
 तन्न 'वातेन' तिमिरे ध्याविद्धमिव पश्यति ॥ ८ ॥
 चलाविलारुणाभासं प्रसन्नं चेक्षते मुहुः ।
 जालानि केशान्मशकान् रश्मींश्चोपेक्षितेऽत्र च ॥ ९ ॥
 काचीभूते दृगरुणा पश्यत्यास्यमनासिकम् ।
 चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं चक्रमृज्वपि मन्यते ॥ १० ॥
 वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रजोभूमावृतामिव ।
 स्पष्टारुणाभां विस्तीर्णां सूक्ष्मां वा हतदर्शनाम् ॥ ११ ॥
 स 'लिङ्गनाशः क्वाते' तु सङ्कोचयति दृक्सराः ।
 दृङ्मण्डलं विशत्यन्तर्गम्भीरा दृगसौ स्मृता ॥ १२ ॥
 'पित्तजे' तिमिरे विद्युत्स्वद्योतद्योतदीपितम् ।
 शिखितित्तिरिपिच्छाभं प्रायो नीलं च पश्यति ॥ १३ ॥
 काचे दृक् काचनीलाभा तादृगेव च पश्यति ।
 अर्केन्दुपरिवेषाग्निमरीचीन्द्रधनूंषि च ॥ १४ ॥
 भृङ्गनीला निरालोका दृक् स्निग्धा लिङ्गनाशतः ।
 दृष्टिः पित्तेन ह्रस्वाख्या सा ह्रस्वा ह्रस्वदर्शना ॥ १५ ॥
 भवेत्पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना ।
 'कफेन' तिमिरे प्रायः स्निग्धं श्वेतं च पश्यति ॥ १६ ॥

शङ्खेन्दुकुन्दकुसुमैः कुमुदैरिव चाचितम् ।
 'काचे' तु निष्प्रमेन्द्वर्कप्रदीपाद्यैरिवाचितम् ॥ १७ ॥
 सिताभासा च दृष्टिः स्याल्लिङ्गनाशे तु लक्ष्यते ।
 मूर्तः कफो दृष्टिगतः स्निग्धो दर्शननाशनः ॥ १८ ॥
 बिन्दुर्जलस्येव चलः पद्मिनीपुटसंस्थितः ।
 उष्णो सङ्कोचमायाति छायायां परिसर्पति ॥ १९ ॥
 शङ्खकुन्देन्दुकुमुद-स्फटिकोपमशुक्लिमा ।
 'रक्तेन' तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति ॥ २० ॥
 'काचेन' रक्ता कृष्णा वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति ।
 लिङ्गनाशेऽपि तादृग् दृङ् निःप्रभा हतदर्शना ॥ २१ ॥
 संसर्ग-सन्निपातेषु विद्यात्सङ्कीर्णलक्षणान् ।
 तिमिरादीनकस्माच्च तैः स्याद्व्यक्ताकुलेक्षणम् ॥ २२ ॥
 तिमिरे शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते ।
 द्योत्यते नकुलस्येव यस्य दृङ् निचिता मलैः ॥ २३ ॥
 'नकुलान्धः' स तत्राहि चित्रं पश्यति नो निशि ।
 अर्केऽस्तमस्तकन्यस्तगभस्तौ स्तम्भमागताः ॥ २४ ॥
 स्थगयन्ति दृशं दोषा 'दोषान्धः' स गदोऽपरः ।
 दिवाकरकरस्पृष्टा अष्टा दृष्टिपथान्मलाः ॥ २५ ॥
 विलीनलीना यच्छन्ति व्यक्तमत्राहि दर्शनम् ।
 उष्णतप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात् ॥ २६ ॥
 त्रिदोषरक्तसम्पृक्तो यात्यूष्मोर्ध्वं ततोऽङ्घ्रिणि ।
 दाहोषे मलिनं शुक्लमहन्याविलदर्शनम् ॥ २७ ॥
 रात्रावान्ध्यं च जायेत विदग्धोष्णेन सा स्मृता ।

भृशमम्लाशनादोषैः सास्त्रैर्या दृष्टिराचिता ॥ २८ ॥
 सकलेदकण्डूकलुषा विदग्धाम्लेन सा स्मृता ।
 शोकज्वरशिरोरोगसन्तप्तस्यानिलादयः ॥ २९ ॥
 धूमाविलां धूमदर्शां दृशं कुर्युः स 'धूमरः' ।
 सहस्रैवालपसत्त्वस्य पश्यतो रूपमद्भुतम् ॥ ३० ॥
 भास्वरं भास्करादिं वा वाताद्या नयनाश्रिताः ।
 कुर्वन्ति तेजः संशोष्य दृष्टिं मुषितदर्शनाम् ॥ ३१ ॥
 वैडूर्यवर्णां स्तिमितां प्रकृतिस्थामिवाव्यथाम् ।
 औपसर्गिक इत्येष लिङ्गनाशः अत्र वर्जयेत् ।
 विना 'कफलिङ्गनाशान् गम्भीरां ह्रस्वजामपि ॥ ३२ ॥
 षट् काचा नकुलान्धश्च याप्याः, शेषांस्तु साधयेत् ।
 द्वादशेति गदा दृष्टौ निर्दिष्टाः सप्तविंशतिः ॥ ३३ ॥'
 इत्युत्तरस्थाने द्वादशोऽध्यायः ।

१. कफजलिङ्गनाशाख्यदृष्टिरोगं विना—वात-पित्त संसर्ग-सन्नि-
 पात-रक्तजोपसर्गिकान् षड्लिङ्गनाशान् वर्जयेत्, ह्रस्वजामपि गम्भीरां
 वर्जयेत् अष्टौ दृष्टि-रोगा असाध्या इत्यर्थः । वात-पित्त-कफ-रक्त-
 संसर्ग-सन्निपातजाः । षट् काचाः, नकुलान्धश्च एते सप्त याप्याः ।
 शेषांस्तु—वाततिमिरं, पित्ततिमिरं, कफतिमिरं, संसर्गतिमिरं,
 सन्निपाततिमिरं, कफलिङ्गनाशः, पित्तविदग्धा दृष्टिः, दोषान्धः, उष्ण-
 विदग्धा दृष्टिः, विदग्धाम्ला दृष्टिः धूमरः, इति-द्वादश साधयेत्,
 इति = पूर्वोक्तप्रकारेण संकलनया दृष्टौ सप्तविंशतिः = २७ गदाः =
 रोगाः, निर्दिष्टाः = निरूपिताः । इति ।

त्रयोदशोऽध्यायः ।

‘अथाऽतस्तिमिरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘तिमिरं काचतां याति, काचोऽप्यान्ध्यमुपेक्षया’^१ ।

नेत्ररोगेष्वतो घोरं ‘तिमिरं’ साधयेद् द्रुतम् ॥ १ ॥

तुलां पचेत् जीवन्त्या द्रोणेऽपां पादशेषिते ।

तत्काथे द्विगुणक्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

प्रपौण्डरीककाकोली-पिप्पलीरोध्रसैन्धवैः ।

शताह्वामधुक-द्राक्षा-सितादारुफलत्रयैः ॥ ३ ॥

कार्षिकैर्निशि तत्पीतं तिमिरापहरं परम् ।

द्राक्षाचन्दनमज्जिष्ठा-काकोलीद्वयजीवकैः ॥ ४ ॥

सिताशतावरीमेदा-पुण्ड्राह्वमधुकोत्पलैः ।

पचेज्जीर्णं घृतप्रस्थं समक्षीरं पिचून्मिवैः ॥ ५ ॥

हन्ति तत्काचतिमिर-रक्तराजीशिरोरुजः ।

पटोलनिम्बकटुका-दार्वासेव्यवराष्ट्रपम् ॥ ६ ॥

१. अथ = दृष्टि दोषनिरूपणानन्तरं यतो दृष्टिदोषेषु तिमिरं क्रमप्राप्तं, समधिकवक्तव्यञ्च । अतस्तत्प्रतीकाराध्यायं प्रथमं पृथग् व्याख्यास्यामः ।

२. उप = उपरिकाले गता ईक्षा = करिष्याम्यस्य प्रतीकारमित्याकारको विचारः, उपेक्षा = विलम्बकारिता, (न वेगितोऽन्यकार्यः स्यात् नाऽजित्वा साध्यमामयम्) इति सूत्रोच्छ्वन्नकर्तृता तया । उपेत्य-ईक्षा-उपेक्षा-इत्यर्थस्तु-न कर्तव्यः, विरुद्धत्वात् ।

सधन्वयास-त्रायन्ती-पर्पटं पालिकं पृथक् ।
 प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि^१ ॥ ७ ॥
 तदाढकेऽर्धपालिकैः पिष्टैः प्रस्थ घृतात्पचेत् ।
 मुस्तभूनिम्बयष्ट्याङ्ग-कुटजोदीच्यचन्दनैः ॥ ८ ॥
 सपिप्पलीकैस्तत्सर्पि-घ्राणकर्णाऽऽस्यरोगजित् ।
 विद्रधिज्वरदुष्टास्त्र-विसर्पाऽपचि-कुष्ठनुत् ॥ ९ ॥
 विशेषाच्छुक्रतिमिर-नक्तान्ध्योष्णाम्ल-दाहनुत् ।
 त्रिफलाष्टपलं क्वाथ्यं पादशेषं जलाढके ॥ १० ॥
 तेन तुल्यपयस्केन त्रिफलापलकल्कवान् ।
 अर्धप्रस्थे घृतात्सिद्धः सितया माक्षिकेण वा ॥ ११ ॥
 युक्तं पिबेत्तु तिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम् ।
 यष्टीमधुद्विकाकोलीग्याघ्रीकृष्णाऽमृतोत्पलैः ॥ १२ ॥
 पालिकैः ससिताद्राक्षैर्घृतप्रस्थं पचेत्समैः ।
 अजाक्षीरवरावासा-मार्कवस्वरसैः पृथक् ॥ १३ ॥
 महात्रैफलमित्येतत्परं दृष्टिविकारजित् ।
 त्रैफलेनाथ हविषा लिहानस्त्रिफलां निशि ॥ १४ ॥
 यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम् ।
 मासमेकं हिताहारः पिबन्नामलकोदकम् ॥ १५ ॥
 सौपर्णं लभते चक्षुरित्याह 'भगवान्निमिः'^२ ।
 ताप्यायोहेमयष्ट्याङ्ग-सिताजीर्णज्यमाक्षिकैः ॥ १६ ॥
 संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी वरा वरा ।

१. नल्वणे = द्रोणपरिमिते, अम्भसि = जले ।

२. निमिः = इक्ष्वाकुतनयः = मिथिलेशः = शालाक्यतन्त्रप्रवर्तकः ।

सघृतं वा वराक्काथं शीलयेत्तिमिरामयी ॥ १७ ॥
 अपूपसूपसक्तून्वा त्रिफलाचूर्णसंयुतान् ।
 पायसं वा वरायुक्तं शीतं समधुशर्करम् ॥ १८ ॥
 प्रातर्भक्तस्य वा पूर्वमद्यात्पथ्यां पृथक् पृथक् ।
 मृद्वीकाशर्कराक्षौद्रैः सततं तिमिरातुरः ॥ १९ ॥
 स्रोतोजांशांश्चतुःषष्टिं ताम्रायोरूप्यकाञ्चनैः ।
 युक्तान् प्रत्येकमेकांशैरन्धमूषोदरस्थितान् ॥ २० ॥
 ध्मापयित्वा समावृत्तं ततस्तच्च निषेचयेत् ।
 रस-स्कन्ध-कषायेषु सप्तकृत्वः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥
 वैडूर्यमुक्ताशङ्खानां त्रिभिर्भागैर्युतं ततः ।
 चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत तत्सर्वतिमिरापहम् ॥ २२ ॥
 मांसीत्रिजातकाऽयः-कुङ्कुमनीलोत्पलाऽभयातुथ्यैः ।
 सितकाचशङ्खफेनक-मरिचाञ्जनपिप्पलीमधुकैः ॥ २३ ॥
 चन्द्रेऽश्विनीसनाथे सुचूर्णितैरञ्जयेद्युगलमक्षणोः ।
 तिमिरार्मरक्तराजीकण्डूकाचादिशममिच्छन् ॥ २४ ॥
 मरिचवरलवणभागौ भागौ द्वौ कणसमुद्रफेनाभ्याम् ।
 सौवीरभागनवकं चित्रायां चूर्णितं कफामयजित् ॥ २५ ॥
 द्राक्षात्मृणालीस्वरसे क्षीरमद्यवसासु च ।
 पृथग् दिव्याप्सु स्रोतोजं सप्तकृत्वो निषेचयेत् ॥ २६ ॥
 तच्चूर्णितं स्थितं शङ्खे ह्वप्रसादनमञ्जनम् ।
 शस्तं सर्वाक्षिरोगेषु विदेहपतिनिर्मितम् ॥ २७ ॥
 निर्दग्धं बादराङ्गारैस्तुथं चेत्थं निषेचितम् ।

१. विदेहपतिः = निमिः ।

क्रमादजापयः सर्पिः क्षौद्रे तस्मात् पलद्वयम् ॥ २८ ॥
 कार्षिकैस्ताप्य-मरिच-स्रोतोज-कटुका-नतैः ।
 पटु-रोध्र-शिला-पथ्या-कणैलाञ्जनफेनिकैः ॥ २९ ॥
 युक्तं पलेन यष्ट्याश्च मूषान्तर्ध्मातचूर्णितम् ।
 हन्ति काचार्मनक्तान्ध्य-रक्तराजीः सुशीलितः ॥ ३० ॥
 चूर्णो विशेषात्तिमिरं 'भास्करो' भास्करो यथा ।
 त्रिंशद्भागा भुजङ्गस्य गन्धपाषाणपञ्चकम् ॥
 शुल्बतारकयोर्द्वौ द्वौ वङ्गस्यैकोऽञ्जनाञ्जयम् ॥ ३१ ॥
 अन्धमूषीकृतं ध्मातं पक्वं विमलमञ्जनम् ।
 'तिमिरान्तकरं' लोके द्वितीय इव भास्करः ॥ ३२ ॥
 १ गोमूत्रे छराणरसेऽम्लकाञ्जिके च
 स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च ।
 यत्तुथं ज्वलितमनेकशो निषिक्तं
 तत्कुर्याद्गरुडसमं नरस्य चक्षुः ॥ ३३ ॥
 श्रेष्ठाजलं भृङ्गरसं सविषाज्यमजापयः ।
 यष्टीरसं च यत्सीसं सप्तकृत्वः पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥
 तप्तं तप्तं पायितं तच्छुलाका
 नेत्रे युक्ता साञ्जनाऽनञ्जना वा ॥
 तैमिर्यार्मस्त्राव-पैच्छिल्य-पैल्लं
 कण्डूं जाड्यं रक्तराजीं च हन्ति ॥ ३५ ॥
 १ रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोस्तुल्यमथाऽञ्जनम् ।

ईषत्कूर्परसंयुक्तमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ३६ ॥

यो गृध्रस्तरुणरविप्रकाशगङ्गा-

स्तस्यास्यं समयमृतस्य गोशकृद्भिः ।

निर्दग्धं समधृतमञ्जनं च पेण्यं

योगोऽयं नयनबलं करोति गार्ध्रम् ॥ ३७ ॥

कृष्णसर्पवदने सहविष्कं दग्धमञ्जनमनिःसृतधूमम् ।

चूर्णितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नतारमपि^१ रक्षति चक्षुः ॥ ३८ ॥

कृष्णं सर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्रापि वृश्चिकान् ।

क्षीरकुम्भे त्रिसप्ताहं क्लेदयित्वाथ मन्थयेत् ॥ ३९ ॥

तत्र यन्नवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम् ।

अन्धस्तस्य पुरीषेण प्रेक्षते ध्रुवमञ्जनात् ॥ ४० ॥

कृष्णसर्पवसां शङ्खः कतकात् फलमञ्जनम् ।

रसक्रियेयमचिरादन्धानां दर्शनप्रदा ॥ ४१ ॥

मरिचानि दशार्धपिचुस्ताप्यात्तुत्थार्धपलं पिचुर्यष्टयाः ।

क्षीराद्र्दग्धमञ्जनमप्रतिसाराख्यमुत्तमं तिमिरे ॥ ४२ ॥

अक्षबीजमरिचामलकत्वक्-

तुत्थयष्टिमधुकर्जलपिष्टैः ।

छाययैव गुटिकाः परिशुष्का

नाशयन्ति तिमिराण्यचिरेण ॥ ४३ ॥

१. भिन्ना तारा = कनीनिका यस्य तदपि रक्षति किमुताऽ-
भिन्नतारमिति शक्यतिशयः सूचितः, न हि भिन्नकनीनिकं चक्षुः
शक्यं रक्षितुम् ।

मारचामलकजलान्नव-

तुत्थाञ्जनताप्यधातुभिः क्रमवृद्धैः ।

षण्मासिक इति योग-

स्तिमिरार्मकलेदकाचकण्डूहन्ता ॥ ४४ ॥

रत्नानि रूप्यं स्फटिकं सुवर्णं

स्रोतोञ्जनं ताम्रमयः सशङ्खम् ।

कुचन्दनं लोहितगैरिकं च

चूर्णाञ्जनं सर्वदृगामयघ्नम् ॥ ४५ ॥

तिलतैलमक्षतैलं^१ शृङ्गस्वरसोऽसनाच्च निर्यूहः ।

आयसपात्रविपक्वं करोति दृष्टेर्बलं नश्यम् ॥ ४६ ॥

दोषानुरोधेन च नैकशस्तं स्नेहास्त्रविस्त्रावणरेकनस्यैः ।

उपाचरेदञ्जनमूर्ध्वबस्तिबस्तिक्रियातर्पणलेपसकैः ॥ ४७ ॥

सामान्यं साधनमिदम् , 'प्रतिदोषमतः शृणु' ।

'वातजे' तिमिरे तत्र दशमूलाम्भसा घृतम् ॥ ४८ ॥

क्षीरे चतुर्गुणे श्रेष्ठाकल्कपक्वं पिबेत्ततः ।

त्रिफलापञ्चमूलानां कषायं क्षीरसंयुतम् ॥ ४९ ॥

एरण्डतैलसंयुक्तं योजयेच्च विरेचनम् ।

समूलजालजीवन्तीतुलां द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ५० ॥

अष्टभागस्थिते तस्मिंस्तैलप्रस्थं पयः समे ।

बलात्रितयजीवन्तीवरीमूलैः पलोन्मितैः ॥ ५१ ॥

यष्टीपलेश्वतुर्भिश्च लोहपात्रे विपाचयेत् ।

लोहे एव स्थितं मासं नावनादूर्ध्वजन्तुजान् ॥ ५२ ॥

१. अक्षतैलं = विभीतक-मज्जस्नेहः ।

वातापित्तमयान् हन्ति तद्विशेषाद् दृगाश्रयान् ।
 केशास्यकन्धरास्कन्धपुष्टिलावण्यकान्तिदम् ॥ ५३ ॥
 सितैरण्डजटासिंहीफलदारुवचानतैः ।
 घोषया बिल्वमूलैश्च तैलं पक्वं पयोऽन्वितम् ॥ ५४ ॥
 नस्थं सर्वोर्ध्वजत्रूथवातश्लेष्ममयार्तिजित् ।
 वसाब्जने च वैयाघ्री वाराही वा प्रशस्यते ॥ ५५ ॥
 गृध्राहिकुकुटोत्था वा मधुकेनान्विता पृथक् ।
 प्रत्यब्जने च स्रोतोऽं रसक्षीरघृते क्रमात् ॥ ५६ ॥
 निषिक्तं पूर्ववद्योज्यं तिमिरघ्नमनुत्तमम् ।
 न चेदेवं शमं याति ततस्तर्पणमाचरेत् ॥ ५७ ॥
 शताह्वाकुष्ठनलदन्काकोलीद्वययष्टिभिः ।
 प्रपौण्डरीकसरलपिप्पलीदेवदारुभिः ॥ ५८ ॥
 सर्पिरष्टगुणक्षीरं पक्वं तर्पणमुत्तमम् ।
 मेदसस्तद्वदेणेयाद्दुग्धसिद्धात्वजाहतात् ॥ ५९ ॥
 उद्धृतं साधितं तेजो मधुकोक्षीरचन्दनैः ।
 श्वाबिच्छ्रल्यकगोधानां दक्ष-तित्तिरिबर्हिणाम् ॥ ६० ॥
 पृथक्पृथगनेनैव विधिना कल्पयेद्वसाम् ।
 प्रसादनं स्नेहनं च पुटपाकं प्रयोजयेत् ॥ ६१ ॥
 वातपीनसवच्चात्र निरुहं सानुवासनम् ।
 'पित्तजे' तिमिरे सर्पिर्जीवनीयफलत्रयैः ॥ ६२ ॥
 विपाचितं पाययित्वा स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ।
 शर्करैलात्रिवृक्षूणैर्मधुयुक्तैर्विरेचयेत् ॥ ६३ ॥
 सुक्षीतान् सेकलेपादीन् युष्क्यान्नेत्रास्यमूर्धसु ।

सारिवापद्मकोशीरमुक्ताशाबरचन्दनैः ॥ ६४ ॥
 वर्तिः शस्ताब्जने चूर्णस्तथा पत्रोत्पलाब्जनैः ।
 सनागपुष्पकपूरयष्ट्याह्रस्वर्णगैरिकैः ॥ ६५ ॥
 सौवीराब्जनतुत्थक-शृङ्गीधानीफलस्फटिककपूरम् ।
 पञ्चांशं पञ्चांशं त्र्यंशमथैकांशमब्जनं 'तिमिरघ्नम्' ॥ ६६ ॥
 नस्यं चाज्यं शृतं क्षीरजीवनीयसितोत्पलैः ।
 'श्लेष्मोद्भवे'ऽमृताकाथ-वराकणशृतं घृतम् ॥ ६७ ॥
 विध्येत्सिरां पीतवतो दद्याच्चानु विरेचनम् ।
 क्वाथं पूगाभयाशुण्ठी-कृष्णाकुम्भनिकुम्भजम् ॥ ६८ ॥
 ह्रीबेरदारुद्विनिशा-कृष्णाकल्कैः पयोऽन्वितैः ।
 द्विपञ्चमूलनिर्यूहे तैलं पक्वं च नावनम् ॥ ६९ ॥
 शङ्खप्रियङ्गुनेपाली-कटुत्रिकफलत्रिकैः ।
 दृग्वैमल्याय विमला वर्तिः स्यात्कोकिला पुनः ॥ ७० ॥
 कृष्णलोहरजोव्योष-सैन्धवत्रिफलाब्जनैः ।
 शश-गो-खर-सिंहोष्ट्र-द्विजा लालाटमस्थि च ॥ ७१ ॥
 श्वेतगोवालमरिच-शङ्खचन्दनफेनकम् ।
 पिष्टं स्तन्याजदुग्धाभ्यां वर्तिस्तिमिरशुक्रजित् ॥
 'रक्तजे' पित्तवत्सिद्धिः शीतैश्चास्त्रं प्रसादयेत् ॥ ७२ ॥
 द्राक्षया नलदरोध्रयष्टिभिः
 शङ्खतान्त्रहिमपद्मपद्मकैः ।
 सोत्पलैश्छगलदुग्धवर्तितै-
 'रस्रजं' तिमिरमाशु नश्यति ॥ ७३ ॥
 'संसर्गसन्निपातोत्थे' यथादोषोदयं क्रिया ।

सिद्धं मधुककृमिजिन्मरिचामरदारुभिः ॥ ७४ ॥
 सक्षीरं नावनं तैलं पिष्टैर्लेपो मुखस्य च ।
 नत-नीलोत्पलानन्ता-यष्ट्याह्वसुनिषण्णकैः ॥ ७५ ॥
 साधितं नावने 'तैलं' शिरोबस्तौ च शस्यते ।
 दद्यादुक्षीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ ७६ ॥
 तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने क्षिपेत् ।
 शीते चास्मिन् हितमिदं 'सर्वजे' तिमिरेऽञ्जनम् ॥ ७७ ॥
 अस्थीनि मज्जपूर्णानि सत्त्वानां रात्रिचारिणाम् ।
 स्रोतोजाञ्जनयुक्तानि वहत्यग्भसि वासयेत् ॥ ७८ ॥
 मासं विंशतिरात्रं वा ततश्चोद्घृत्य शोषयेत् ।
 समेषश्चङ्गीपुष्पाणि सयष्ट्याह्वानि तानि तु ॥ ७९ ॥
 चूर्णितान्यञ्जनं श्रेष्ठं 'तिमिरे' सान्निपातिके ।
 'काचेऽप्येषा क्रिया मुक्त्वा सिरां, यन्त्रनिपीडिताः ॥ ८० ॥
 आन्ध्याय स्युर्मला, दद्यात्स्नान्ये रक्ते जलौकसः ।
 गुडः फेनोऽञ्जनं कृष्णा मरिचं कुङ्कुमाद्रजः ॥ ८१ ॥
 रसक्रियेयं सक्षौद्रा काचन्यापनमञ्जनम् ।
 नकुलान्धे त्रिदोषोत्थे तैमिर्यविहितो विधिः ॥ ८२ ॥
 रसक्रिया घृतक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतैः ।
 ताक्ष्यगैरिकतालीसैर्निशान्धे हितमञ्जनम् ॥ ८३ ॥
 दध्ना विघृष्टं मरिचं राज्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम् ।
 करब्जिकोत्पलस्वर्णगैरिकाम्भोजकेसरैः ॥ ८४ ॥
 पिष्टैर्गोमयतोयेन वर्तिर्दोषान्ध्यानाशिनी ।
 अजामूत्रेण वा कौन्ती-कृष्णाम्रोतोऽसैन्धवैः ॥ ८५ ॥

कालानुसारीत्रिकटु-त्रिफलाऽऽलमनःशिलाः ।
 सफेनाशङ्खागदुग्धेन रात्र्यान्ध्ये वर्तयो हिताः ॥ ८६ ॥
 सन्निवेश्य यकृन्मध्ये पिप्पलीरदहन्पचेत् ।
 ताः शुष्का मधुना घृष्टा निशान्ध्ये श्रेष्ठमञ्जनम् ॥ ८७ ॥
 खादेच्च प्लीहयकृती माहिषे तैलसर्पिषा ।
 घृते सिद्धानि जीवन्त्याः पल्लवानि च भक्षयेत् ॥ ८८ ॥
 तथातिमुक्तकैरण्ड-शेफाल्यभिरुजानि च ।
 भृष्टं घृतं कुम्भयोनेः पत्रैः पाने च पूजितम् ॥ ८९ ॥
 धूमराख्याम्लपित्तोष्ण-विदाहे जीर्णसर्पिषा ।
 सिग्धं विरेचयेच्छीतैः शीतैर्दिह्याच्च सर्वतः ॥ ९० ॥
 गोशकृद्रसदुग्धाज्यैर्विषकवं शस्यतेऽञ्जनम् ।
 स्वर्णगैरिकतालीस-चूर्णावापा रसक्रिया ॥ ९१ ॥
 मेदाशाबरकानन्ता-मञ्जिष्ठादार्विष्यष्टिभिः ।
 श्रीराष्ट्रांशं घृतं पक्वं सतैलं नावनं हितम् ॥ ९२ ॥
 तर्पणं क्षीरसर्पिः स्यादशाम्यति सिरान्वधः ।
 चिन्ताभिघातभीशोक-रौच्यास्सोत्कटकासनात् ॥ ९३ ॥
 विरेकनस्यवमन-पुटपाकादिविभ्रमात् ।
 विदग्धाहारवमनात्कुत्तृष्णादिविधारणात् ॥ ९४ ॥
 अक्षिरोगावसानाच्च पश्येत्तिमिररोगिवत् ।
 यथास्वं तत्र युञ्जीत दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम् ॥ ९५ ॥
 सूर्योपरागानलविद्युदादि-
 विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
 सन्तर्पणं सिग्धहिमादि कार्यं
 तथाञ्जनं हेम घृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

चक्षूरक्षायां सर्वकालं मनुष्यै-

र्यलः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।

व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिन्दिवानां

पुंसामन्धानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥ ९७ ॥

^१त्रिफला रुधिरक्षुतिर्विशुद्धि-

र्मनसो निर्घृतिरञ्जनं च नस्यम् ।

शकुनाशनता सपादपूजा

घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ९८ ॥

अहितादशनात्सदा निवृत्ति-

र्भृशभास्वच्छलसूक्ष्मवीक्षणञ्च ।

मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्

परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ^१ ॥ ९९ ॥

इत्युत्तरस्थाने त्रयोदशोऽध्यायः ।



१. त्रिफलासेवनं रुधिरमोक्षणं, वमनविरेचनाभ्यां कोष्ठशुद्धिः
मनसः प्रसादः, नेत्रयोः सौवीराञ्जनधारणं, नस्तः कर्मणा शिरोवि-
रेचनं चक्षुष्यौषधसेवनं, पादयोः प्रक्षालनपूर्वकं तैलधारणं सूत्रोक्त-
विधिना घृतपानञ्चेति सदैव नेत्ररक्षाकरम् ।

२. पुंसामित्युपलक्षणम्, नेत्ररक्षणस्य तुल्यत्वात् ।

चतुर्दशोऽध्यायः

अथातो लिङ्गनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
'विध्येत्सुजातं निःप्रेक्षं लिङ्गनाशं कफोद्भवम्' ।
आवर्तक्यादिभिः षड्भिर्विवर्जितमुपद्रवैः ॥ १ ॥
सोऽसञ्जातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः ।
शलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरुर्ध्वं प्रपद्यते ॥ २ ॥
करोति वेदनां तीव्रां दृष्टिं च स्थगयेत्पुनः ।
श्लेष्मलैः पूर्यते चाशु सोऽन्यैः सोपद्रवैश्चिरात् ॥ ३ ॥
श्लैष्मिको लिङ्गनाशो हि सितत्वाच्छ्लेष्मणः सितः ।
तस्यान्यदोषाभिभवान्नवत्यानीलता गदे ॥ ४ ॥
तत्रापतचला दृष्टरावतक्यरुणाऽसिता ।
शर्करार्कपयोलेशनिचितेव घनाति च ॥ ५ ॥
राजीमती दृङ्निचिता शालिशूकाभराजिभिः ।
विषमच्छिन्नदग्धाभा सरुक्छिन्नांशुका स्मृता ॥ ६ ॥
दृष्टिः कांस्यसमच्छाया चन्द्रकी चन्द्रकाकृतिः ।
छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ॥ ७ ॥
न विध्येदसिरार्हाणां न दृक्पीनसकामिनाम् ।
नाजीर्णिभीरुवमितशिरःकर्णाक्षिशूलिनाम् ॥ ८ ॥

१. तिमिरप्रतिषेधानन्तरं क्रमप्राप्तं लिङ्गनाशप्रतिषेधं निरूप-
यिष्यामः ।

२. अन्येषां लिङ्गनाशानामसाध्यत्वादाह—कफोद्भवमिति ।

अथ साधारणे काले शुद्धसम्भोजितात्मनः ।
 देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूच्चपीठगः ॥ ९ ॥
 यस्त्रितस्योपविष्टस्य स्विन्नाक्षस्य मुखानिलैः ।
 अङ्गुष्ठमृदिते नेत्रे दृष्टौ दृष्टोत्प्लुतं मलम् ॥ १० ॥
 स्वनासां प्रेक्षमाणस्य निष्कम्पं मूर्ध्नि धारिते ।
 कृष्णादर्धाङ्गुलं मुक्त्वा तथार्धार्धमपाङ्गतः ॥ ११ ॥
 तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठः शलाकां निश्चलं धृताम् ।
 दैवच्छिद्रं नयेत्पार्श्वार्धदूर्ध्वमामन्थयन्निव ॥ १२ ॥
 सव्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सव्येन चेतरत् ।
 विध्येत् ॐ सुविशुद्धे शब्दः स्यादरुक्चाम्बुलवस्तुतिः ॥ १३ ॥
 सान्त्वयन्नातुरं चानु नेत्रं स्तन्येन सेचयेत् ।
 शलाकायास्ततोऽग्रेण निर्लिखेन्नेत्रमण्डलम् ॥ १४ ॥
 अबाधमानः शनकैर्नासां प्रतिनुदंस्ततः ।
 उच्छिन्दनाच्चापहरेद् दृष्टिमण्डलगं कफम् ॥ १५ ॥
 स्थिरे दोषे चले वाऽपि स्वेदयेदक्षि बाह्यतः ।
 अथ दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ॥ १६ ॥
 धृताप्लुतं पिचुं दत्त्वा न्धातुं शाययेत्ततः ।
 विद्धादन्येन पार्श्वेन तमुत्तानं द्वयोर्व्यधे ॥ १७ ॥
 निवाते शयनेऽभ्यक्तशिरःपादं हिते रतम् ।
 क्षवथुं कासमुद्गारं छीवनं पानमम्भसः ॥ १८ ॥
 अधोमुखस्थितिं स्नानं दन्तधावनभक्षणम् ।
 सप्ताहं नाचरेस्नेहपीतवच्चात्र यन्त्रणा ॥ १९ ॥
 शक्तितो लङ्घयेत्सेको रुजि कोष्णेन सर्पिषा ।

सव्योषामलकं वाढ्यमश्नीयात्सघृतं द्रवम् ॥ २० ॥
 विलेपीं वा त्र्यहाञ्चास्य क्वाथैर्मुक्त्वाऽन्ति सेचयेत् ।
 वातघ्नैः सप्तमे त्वह्नि सर्वथैवाक्षि मोचयेत् ॥ २१ ॥
 यन्त्रणामनुरुध्येत दृष्टेरास्थैर्यलाभतः ।
 रूपाणि सूक्ष्मदीप्तानि सहसा नावलोकयेत् ॥ २२ ॥
 शोफरागरुजादीनामधिमन्थस्य चोद्भवः ।
 अहितैर्वेधदोषाच्च यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ २३ ॥
 कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकसारिवाः ।
 मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥ २४ ॥
 ससर्षपास्तिलास्तद्वन्मातुलुङ्गरसाप्लुताः ।
 पयस्यासारिवानन्तामब्जिष्ठामधुयष्टिभिः ॥ २५ ॥
 अजाक्षीरयुतैर्लेपः सुखोष्णः शर्मकृत्परम् ।
 रोध्रसैन्धवमृद्धीकामधुकैश्छागलं पयः ॥ २६ ॥
 शृतमाश्चोतनं योज्यं रुजारागविनाशनम् ।
 मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षाालाक्षासितान्वितैः ॥ २७ ॥
 वातघ्नसिद्धे पयसि शृतं सर्पिश्चतुर्गुणे ।
 पद्मकादिप्रतीवापं सर्वकर्मसु शस्यते ॥ २८ ॥
 सिरां तथानुपशमे स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।
 मन्थोक्तां च क्रियां कुर्याद्वयधे रूढेऽब्जनं मृदु ॥ २९ ॥
 आढकीमूलमरिचहरितालरसान्जनैः ।
 विद्धेऽष्णिगं सगुडा वर्तियोज्या दिव्याम्बुपेषिता ॥ ३० ॥
 जाती-शिरीष-धव-मेषविषाण-पुष्प-
 वैदूर्यमौक्तिकफलं पयसा सुपिष्टम् ।

आजेन ताम्रममुना प्रतनु प्रदिग्धं
 सप्ताहतः पुनरिदं पयसैव पिष्टम् ॥ ३१ ॥
 'पिण्डाजनं' हितमनातपशुष्कमक्षिण-
 विद्धे प्रसादजननं बलकृच्च दृष्टेः ।
 'स्रोतोज-विद्रुम-शिलाऽम्बुधिफेन-तीक्ष्णै
 रस्यैव तुल्यमुदितं गुणकल्पनाभिः ॥ ३२ ॥
 इत्युत्तरस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः॥

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'वातेन नेत्रेऽभिष्यण्णे' नासानाहोऽल्पशोफता ।
 शङ्खाक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम् ॥ १ ॥
 शुष्काल्पा दूषिका शीतमच्छमश्रु चला रुजः ।
 निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राज्जन्तूनामिव सर्पणम् ॥ २ ॥

१. स्रोतोजेत्यादि लघुपिण्डाजनम् । इति ।

२. लिङ्गनाश-प्रतिषेध-निरूपणानन्तरं क्रमप्राप्तं सर्वाक्षिरोग-
 विज्ञानं निरूपयिष्यामः अभिष्यण्णे—स्त्राववति सति, स्यन्दू-प्रस्र-
 वणे-इत्यस्मात् क्तप्रत्यये 'यस्य विभाषा' इति सूत्रेणैतो निषेधे-'रदा-
 भ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः'-इति नत्वे णत्वे-अभिष्यण्णः इति ।
 भिष्यन्दे = इति पाठे स्त्रावे सति-इत्यर्थः ।

६. नासाया नाहो = बन्धः शुष्कत्वम् । णह-बन्धने षञ् ।

अक्षयाध्मातमिवाभाति सूक्ष्मैः शल्यैरिवाचितम् ।
 स्निग्धोष्णैश्चोपशमनंॐ सोऽभिष्यन्द उपेक्षितः ॥ ३ ॥
 'अधिमन्थो' भवेत्तत्र कर्णयोर्नदनं भ्रमः ।
 'अरण्येव च मथ्यन्ते ललाटाक्षिभ्रवादयः ॥ ४ ॥
 'हताधिमन्थः' सोऽपि 'स्यात् प्रमादात्तेन वेदनाः ।
 अनेकरूपा जायन्ते, व्रणो दृष्टौ च दृष्टिहा ॥ ५ ॥
 मन्याक्षिशङ्कतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयेत् ।
 व्यथांतीव्रामपैच्छिल्यरागशोकं विलोचनम् ॥ ६ ॥
 सङ्कोचयति पर्यश्रु सोऽन्यतोवातसंज्ञितः' ।
 तद्वन्नेत्रं भवेज्जिह्वं 'शूनं 'वातविपर्यये' ॥ ७ ॥

पित्ताभिष्यन्दः ।

दाहो धूमायनं शोफः श्यावता वर्त्मनो बहिः ।
 अन्तः क्लेदोऽश्रुपीतोष्णं रागः पीताभदर्शनम् ॥ ८ ॥
 क्षारोक्षित ताक्षित्वं 'पित्ताभिष्यन्द'लक्षणम् ।
 ज्वलदङ्गारकीर्णाभं यकृत्पिण्डसमप्रभम् ॥ ९ ॥
 'अधिमन्थे'भवेन्नेत्रंॐस्यन्दे तु^१ कफसम्भवे ।
 जाढ्यं शोफो महान् कण्ठूर्निद्राऽज्ञानमिनन्दनम् ॥ १० ॥

१. अरणिर्वह्निमन्थे ना द्वयोर्निर्मथ्यदारुणि-इति मेदिनीकोशा-
 दत्र पुमानरणिशब्दः प्रयोक्तुमुचितः, रोगस्य मन्थकत्वात्, कर्णा-
 दीनां मथ्यत्वात् ।

२. सोऽपि = प्रमादादुपेक्षितोऽधिमन्थोऽपि=हताधिमन्थः स्यात् ।

३. शूनं = सशोधम् । ऊनमिति पठित्वा हीनमित्यरुणव्याख्या ।

४. तु-शब्दः कफसम्भवाऽभिष्यन्द-कफसम्भवाधिमन्थयोर्विवेकार्थः ।

सान्द्रस्निग्धबहुश्वेतपिच्छावद्दूषिका श्रुता ।
 'अधिमन्थे' नतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमण्डलम् ॥ ११ ॥
 प्रसेको नासिकाध्मानं पांशुपूर्णमिवेक्षणम् ।
 रक्ताश्रुराजीदूषीकशुक्लमण्डलदर्शनम् ॥ १२ ॥
 रक्तस्यन्देन-नयनं सपित्तस्यन्दलक्षणम् ।
 मन्थेऽक्षि ताम्रपर्यन्तमुत्पाटनसमानरुक् ॥ १३ ॥
 रागेण-बन्धूकनिभं ताम्र्यति स्पर्शनाक्षमम् ।
 असृङ्गनिमग्नारिष्टाभं कृष्णमग्न्याभदर्शनम् ॥ १४ ॥
 अधिमन्था यथास्वं च सर्वे स्यन्दाधिकव्यथाः ।
 शङ्ख-दन्त-कपोलेषु कपाले चाऽतिरुक्कराः ॥ १५ ॥
 'वातपित्तोत्तरं' घर्षतोदभेदोपदेहवत् ।
 रुक्षदारुणवत्सर्पि-कृच्छ्रोन्मीलनमीलनम् ॥ १६ ॥
 विकृणनविशुष्कत्वशीतेच्छाशूलपाकवत् ।
 उक्तः 'शुष्काक्षिपाकोऽयं ऋसशोफः' स्याद्विभिर्मलैः ॥ १७ ॥
 सरक्तैस्तत्र शोफोऽतिरुग्दाहष्टीवनादिमान् ।
 पक्कोदुम्बरसङ्काशं जायते शुक्लमण्डलम् ॥ १८ ॥
 अश्रूष्णशीतविशदपिच्छलाच्छघनं मुहुः ।
 अल्पशोफेऽल्पशोफस्तु^१ पाकोऽन्यैर्लक्षणैस्तथा ॥ १९ ॥
 अक्षिपाकात्यये शोफः संरम्भः कलुषाश्रुता ।

१. नेत्रमिति सम्बध्यते ।

२. तथा-अन्यैर्लक्षणैः शुष्कपाकाक्षिपाकोत्तैर्लक्षणैरुपलक्षितः,
 पाकः = अक्षिपाकात्ययो भवति (विनाऽपि प्रत्ययं पूर्वोत्तरपदलोपो
 वक्तव्यः ।

कफोपदिग्धमसितं सितं प्रक्लेदरागवत् ॥ २० ॥

दाहो दर्शनसंरोधो वेदनाश्चानवस्थिताः ।

अम्लोषितलक्षणम् ।

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोल्बणैर्मलैः ॥ २१ ॥

सिराभिर्नेत्रमारूढः करोति श्यावलोहितम् ।

सशोफदाहपाकाश्रु भृशं चाविलदर्शनम् ॥ २२ ॥

‘अम्लोषितो’ऽयम् ऋत्युक्ता गदाः ‘षोडश’ सर्वगाः^१ ।

हताधिमन्थमेतेषु^२ साक्षिपाकात्ययं त्यजेत् ॥ २३ ॥

वातोद्भूतः पञ्चरात्रेण दृष्टिं

सप्ताहेन श्लेष्मजातोऽधिमन्थः ।

रक्तोत्पन्नो हन्ति तद्वन्निरात्रात्^३

मिथ्याचारात् पॅत्तिकः सद्य एव ॥ २४ ॥’

इत्युत्तरस्थाने पञ्चदशोऽध्यायः ।

१. सर्वगाः = सर्वनेत्रगाः ।

२. एतेषु = षोडशसु-नेत्ररोगेषु-हताधिमन्थः=अक्षिपाकात्ययश्च वर्ज्यः, असाध्यत्वात् ।

३. मिथ्याचारात् वातोद्भूतोऽधिमन्थः पञ्चरात्रेण दृष्टिं हन्ति-
इत्येवं प्रकारेण मिथ्याचारादित्यस्य सर्वत्राऽन्वयः कर्तव्यः । शालिनी-
वृत्तम् । इति ।

षोडशोऽध्यायः ।

^१अथाऽतः सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘प्राग्रूप एव स्यन्देषु तीक्ष्णगण्डूषनावनम् ।

कारयेदुपवासं च कोपादन्यत्र वातजात् ॥ १ ॥

दाहोपदेहरागाश्व-शोफशान्त्यै ‘बिडालकम्’ ।

कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः ॥ २ ॥

सरसाब्जनयष्ट्याह्व-नतचन्दनसैन्धवैः ।

सैन्धवं नागरं ताक्ष्यं भृष्टं मण्डेन सर्पिषः ॥ ३ ॥

वातजे घृतभृष्टं वा योज्यं शबरदेशजम् ^२ ।

मांसीपद्मककाकोलीयष्ट्याह्वैः पित्तरक्तयोः ॥ ४ ॥

मनोह्वाफलिनीक्षौद्रैः कफे सर्वैस्तु सर्वजे ।

सितमरिचभागमेकं चतुर्मनोह्वं द्विरष्टशाबरकम् ।

संचूर्ण्य वस्त्रबद्धं प्रकुपितमात्रेऽवगुण्ठनं नेत्रे ॥ ५ ॥

^३आरण्याश्छगणरसे ^४पटावबद्धाः

सुस्विन्ना नखवितुषीकृताः कुलत्थाः ।

१. सर्वाक्षिरोगविज्ञानानन्तरं तत्प्रतिषेधज्ञानमपेक्षितम्-इत्यव-
सरसङ्गतिः ।

२. शबरदेशजो = लोभ्रः । गालवः शावरो लो (रो)भ्रः तिरीट-
स्तित्वमार्जनौ इत्यमरः ।

३. आरण्याः कुलत्थाः = वनकुलत्थिकाः ।

४. छगणरसे = गोशकुद्रसे-इत्यरुणः, प्रहर्षिणीवृत्तम् ।

तच्चूर्णं सकृदवचूर्णनाक्षिशिथे^१

नेत्राणां विधमति सद्य एव कोपम् ॥६॥

घोषाभयातुत्थकयष्टिरोधै-

र्मूती ससूक्ष्मैः श्लथवस्त्रबद्धैः ।

ताम्रस्थधान्याग्लनिमग्नमूति-

रतिं जयत्यक्षिणि नैकरूपाम् ॥ ७ ॥

षोडशभिः सलिलपलैः पलं तथैकं कटङ्कटेर्याः सिद्धम् ।

सेकोऽष्टभागशिष्टः क्षौद्रयुतः सर्वदोषकुपिते नेत्रे ॥ ८ ॥

वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम् ।

शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥९॥

तरुणमुरुबूकपत्र

मूलं च विभिद्य सिद्धमाजे क्षीरे ।

वाताभिष्यन्दरुजं

सद्यो विनिहन्ति सक्तुपिण्डिका चोष्णा ॥ १० ॥

आश्रोतनं मारुतजे काथो बिल्वादिभिर्हितः ।

कोष्णः सहैरण्डजटा-बृहतीमधुशिग्रुभिः ॥ ११ ॥

हीबेरवक्रशार्ङ्गेष्टोदुम्बरत्वक्षु साधितम् ।

साम्भसा पयसाऽऽजेन शूलाश्रोतनमुत्तमम् ॥ १२ ॥

मन्जिष्ठा-रजनीलाक्षा-द्राक्षाद्विमधुकोत्पलैः ।

काथः सशर्करः शीतः सेचनं रक्तपित्तजित् ॥ १३ ॥

कसेरुयष्ट्याद्वरजस्तान्तवे शिथिलं स्थितम् ।

अप्सु दिव्यासु निहितं हितं स्यन्देऽस्त्रपित्तजे ॥ १४ ॥

१. शयनसमये-इति तात्पर्यम् ।

पुण्ड्रयष्टीनिशामूती प्लुता स्तन्ये सशर्करे ।
 छागदुग्धेऽथवा दाहरुग्रागाश्रुनिवर्तनी ॥ १५ ॥
 श्वेतरोध्रं समधुकं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।
 वस्त्रस्थं स्तन्यमृदितं पित्त-रक्ताऽभिघातजित् ॥ १६ ॥
 नागरत्रिफलानिम्ब-वासारोध्ररसं ^१कफे ।
 कोष्णमाश्रोतनम् क्लमिश्रैर्भेषजैः सान्निपातिके ॥ १७ ॥
 सर्पिः पुराणं पवने पित्ते शर्करया युतम् ।
 व्योषसिद्धं कफे पीत्वा यवक्षारावचूर्णितम् ॥ १८ ॥
 स्नावयेद्बुधिरं भूयस्ततः स्निग्धं विरेचयेत् ।
^१आनूपवेसवारेण शिरोवदनलेपनम् ॥ १९ ॥
 उष्णेन शूले, दाहे तु-पयःसर्पिर्युतैर्हिमैः ।
 तिमिरप्रतिषेधं च वीक्ष्य युञ्ज्याद्यथायथम् ॥ २० ॥
 अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते ।
 अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ २१ ॥
 रूष्यं रूक्षेण गोदध्ना लिम्पेन्नीलत्वमागते ।
 शुष्के तु मस्तुना वर्ति 'र्वाताद्यामय' नाशिनी ॥ २२ ॥
 सुमनःकोरकाः शङ्खस्त्रिफला मधुकं बला ।
 'पित्तरक्तापहा' वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणा ॥ २३ ॥

१. रसः-इति पुँल्लिङ्गपाठः साधीयान् ।

२. त्रिधा हि देशः-अनूपः, जाङ्गलः, मिश्रश्चेति, अनूपे = जल-
 प्राये देशे भवस्य मृगादेर्वेसवारेण, वेसवारलक्षणं यक्ष्मप्रकरणे २१२
 पृष्ठे द्रष्टव्यम् ।

सैन्धवं त्रिफला व्योषं शङ्खनाभिः समुद्रजः ।
 फेनः शैलेयकं सर्जो वर्तिः 'श्लेष्माक्षिरोगनुत्' ॥ २४ ॥
 पाशुपतो योगः ।
 प्रपौण्डरीकं यष्ट्याह्वं दार्वी चाष्टपलं पचेत् ।
 जलद्रोणे रसे पूते पुनः पक्वे घने क्षिपेत् ॥ २५ ॥
 पुष्पाञ्जनाद्वशपलं कर्षं च मरिचात्ततः ।
 कृतश्चूर्णोऽथवा वातः सर्वाभिष्यन्दसम्भवान् ॥ २६ ॥
 हन्ति रागरूजाघर्षान् सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ।
 अयं 'पाशुपतो' योगो रहस्यं भिषजां परम् ॥ २७ ॥
 शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ।
 घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन चाणुना ॥ २८ ॥
 परिषेको हितश्चात्र पयः कोष्णं ससैन्धवम् ।
 सर्पिर्युक्तं स्तन्यपिष्टमञ्जनं हि महौषधम् ॥ २९ ॥
 वसा चानूपसत्त्वोत्था किञ्चित्सैन्धवनागरा ।
 घृताक्तान् दर्पणे घृष्टान् केशान् मल्लकसम्पुटे ॥ ३० ॥
 दग्ध्वाऽऽज्यपिष्टा लोहस्था सा मषी श्रेष्ठमञ्जनम् ।
 सशोफे चाल्पशोफे च स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ॥ ३१ ॥
 रेकः स्निग्धे पुनर्द्राक्षापथ्याक्काथत्रिवृद्घृतैः ।
 श्वेतरोध्रं घृतभृष्टं चूर्णितं तान्तवस्थितम् ॥ ३२ ॥
 उष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परम् ।
 दार्वीप्रपौण्डरीकस्य क्काथो वाऽऽश्रोतने हितः ॥ ३३ ॥
 'सन्धावांश्च प्रयुञ्जीत घर्षरागाश्रुगघरान् ।

१. सन्धावनाम्नः प्रयोगान्-ताम्रं लोहे-इत्यादिनीक्तान् ।

ताम्रं लोहे मूत्रघृष्टं प्रयुक्तं,
 नेत्रे सर्पिर्धूपितं वेदनाघ्नम् ।
 ताम्रैर्घृष्टो गव्यदध्नः सरो वा,
 युक्तः कृष्णासैन्धवाभ्यां वरिष्ठः ॥ ३४ ॥
 शङ्खं ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः
 शम्याः पत्रैर्धूपितं तद्यवैश्च ।
 नेत्रे युक्तं हन्ति 'सन्धावसंज्ञं'
 क्षिप्रं घर्षं वेदनां चातितीव्राम् ॥ ३५ ॥
 उदुम्बरफलं लोहे घृष्टं^१ स्तन्येन, धूपितम् ।
 साज्यैः शमीच्छदैर्दाहशूलरागाश्रुहर्षजित् ॥ ३६ ॥
 शिग्रुपल्लवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे ।
 घृतेन धूपितो हन्ति शोफघर्षाश्रुवेदनाः ।
 तिलाग्भसा मृत्कपालं कांस्यं घृष्टं सुधूपितम् ।
 निम्बपत्रैर्घृताभ्यक्तैर्घर्षशूलाश्रुरागजित् ॥ ३८ ॥
 सन्धावेनाऽब्जिते नेत्रे विगतौषधवेदने ।
 स्तन्येनाश्चोतनं कार्यं त्रिःपरं नाब्जयेच्च तैः ॥ ३९ ॥
 तालीसपत्रचपला-नतलोहरजोऽब्जनैः ।
 जातीमुकुलकासीस-सैन्धवैर्मूत्रपेषितैः ॥ ४० ॥
 ताम्रमालिप्य सप्ताहं धारयेत्पेषयेत्ततः ।
 मूत्रेणैवानु गुटिकाः कुर्याच्छायाविशोषिताः ॥ ४१ ॥
 ताः स्तन्यघृष्टा घर्षाश्रुशोफकण्डूविनाशनाः ।

१. स्तन्येन लोहे घृष्टं घृताक्तैः शमीपत्रैर्धूपितमित्यन्वयः ।

व्याघ्रीत्वङ्मधुकं ताम्ररजोऽजाक्षीरकल्कितम् ॥ ४२ ॥
 शम्यामलकपत्राज्यधूपितं शोफरुक्प्रणुत् ।
 'अम्लोषिते' प्रयुञ्जीत पित्ताभिष्यन्दसाधनम् ॥ ४३ ॥
 उत्क्लिष्टाः कफपित्तास्र-निचयोत्थाः, कुकूणकः ।
 पद्मोपरोधः शुष्काक्षिपाकः पूयालसो विसः ॥ ४४ ॥
 पोथक्यम्लोषितोऽल्पाख्यः स्यन्दमन्था विनाऽनिलात् ।
 एतेऽष्टादश 'पिल्लाख्या' दीर्घकालानुबन्धिनः ॥ ४५ ॥
 चिकित्सा पृथगेतेषां स्वं स्वमुक्ताऽथ वक्ष्यते ।
 'पिल्लीभूतेषु' सामान्याद् ॥ अथ पिल्लाक्षिरोगिणः ॥ ४६ ॥
 स्निग्धस्य च्छर्दितवतः सिराविद्वहतासृजः ।
 विरिक्तस्य च वर्मानु निर्लिखेदाविशुद्धितः ॥ ४७ ॥
 तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
 त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ ४८ ॥
 पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
 तत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोफांश्च नाशयेत् ॥ ४९ ॥
 करञ्जबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च ।
 सङ्क्षुब्ध साधयेत्काथे पूते तत्र रसक्रिया ॥ ५० ॥
 अब्जनं पिल्लभैषज्यं पद्मणां च प्ररोहणम् ।
 रसाब्जनं सर्जरसो रीतिपुष्पं मनःशिला ॥ ५१ ॥
 समुद्रफेनं लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
 अब्जनं मधुना पिष्टं क्लेदकण्डूघ्नमुत्तमम् ॥ ५२ ॥
 अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ।
 भावितं वस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ॥ ५३ ॥

सैन्धवत्रिफलाकृष्णा-कटुकाशङ्खनाभयः ।

सताम्ररजसो वर्तिः पिल्ल-शुक्रक-नाशिनी ॥ ५४ ॥

पुष्पकासीशचूर्णो वा सुरसारसभावितः ।

ताम्रे दशाहं तत पैल्लयपचमशातजिदब्जनम् ॥ ५५ ॥

आलं^१ च सौवीरकमब्जनं च

ताभ्यां समं ताम्ररजश्च सूक्ष्मम् ।

पिल्लेषु रोमाणि निषेवितोऽसौ

चूर्णः करोत्येकशलाकयाऽपि ॥ ५६ ॥

लाक्षानिर्गुण्डीभृङ्गदार्वीरसेन

श्रेष्ठं कार्पासं भावितं सप्तकृत्वः ।

दीपः प्रज्वालयः सर्पिषा तत्समुत्था

श्रेष्ठा पिल्लानां रोपणार्थं मषी सा ॥ ५७ ॥

वर्ष्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम् ।

पुनःपुनर्विरेकं च नित्यमाश्चोतनाब्जनम् ॥ ५८ ॥

नावनं धूमपानं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ।

पूयालसे त्वशान्तेऽन्तर्दाहः सूक्ष्मशलाकया ॥ ५९ ॥

चतुर्नवतिरित्यक्षोर्हेतुलक्षणसाधनैः ।

परस्परमसङ्कीर्णाः कात्स्न्येन गदिता गदाः ॥ ६० ॥

सर्वदा च निषेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः ।

पुराणयवगोधूमशालिषष्टिककोद्रवान् ॥ ६१ ॥

मुद्गादीन् कफपित्तघ्नान् भूरिसर्पिःपरिप्लुतान् ।

शाकं चैवंविधं मांसं जाङ्गलं दाडिमं सिताम् ॥ ६२ ॥

सैन्धवं त्रिफलां द्राक्षां वारि पाने च नाभसम् ।
 आतपत्रं पदत्राणं विधिवद्दोषशोधनम् ॥ ६३ ॥
 वर्जयेद्देगसंरोधमजीर्णाध्यशनानि च ।
 शोकक्रोधदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च ॥ ६४ ॥
 विदाहि विष्टम्भकरं यच्चेहाऽऽहारभेषजम् ।
 द्वे पादमध्ये पृथुसन्निवेशे
 सिरि गते ते बहुधा च नेत्रे ।
 १ ताम्रक्षणोद्धर्तनलेपनादीन्
 पादप्रयुक्तान्नयनं नयन्ति २ ॥ ६५ ॥
 ३ मलोष्णसङ्घट्टनपीडनाद्यै-
 स्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः ।
 भजेत्सदा दृष्टिहितानि तस्मा-
 दुपानदभ्यञ्जनधावनानि ॥ ६६ ॥
 इत्युत्तरस्थाने षोडशोऽध्यायः ।



सप्तदशोऽध्यायः ।

१ अथातः कर्णरोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 २ प्रतिश्यायजलक्रीडा-कर्णकण्डूयनैर्मरुत् ।
 ३ ताः=बहुधाभूताः पादस्थसिराद्वयनेदाः । २. नयन्ति=प्रापयन्ति ।
 ३. मलादिभिर्दुष्टास्ता नयनानि दूषयन्ते, तस्मादित्यन्वयः । इति
 ४. दृष्टश्रुतयोः प्रबलप्रामाण्यं साधर्म्यम्-अतो नेत्ररोगविज्ञाना-

मिथ्यायोगेन शब्दस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपनैः ॥ १ ॥
 प्राप्य श्रोत्रसिराः कुर्याच्छूलं स्रोतसि वेगवत् ।
 अर्धावभेदकं स्तम्भं शिशिराऽनभिनन्दनम् ॥ २ ॥
 चिराच्च पाकं पक्वं तु लसीकामल्पशः सवेत् ।
 श्रोत्रं शून्यमकस्माच्च स्यात्सञ्चारविचारवत् ॥ ३ ॥
 शूलं पित्तात्कदाहोषा-शीतेच्छाश्वथुज्वरम् ।
 आशुपाकं प्रपक्वं च सपीत-लसिका-स्रुति ॥ ४ ॥
 सा लसीका स्पृशेद्यद्यत्तत्पाकमुपैति च ।
 कफाच्छिरोहनुग्रीवागौरवं मन्दता रुजः ॥ ५ ॥
 कण्डूः श्वथुरुष्णेच्छा पाकाच्छ्वेतघना स्रुतिः ।
 करोति श्रवणे शूलमभिघातादिपीडितम् ॥ ६ ॥
 रक्तं पित्तसमानार्तिं किञ्चिद्वाधिकलक्षणम् ।
 शूलं समुदितैर्दोषैः सशोफज्वरतीव्ररूक् ॥ ७ ॥
 पर्यायादुष्णशीतेच्छं जायते श्रुतिजाड्यवत् ।
 पक्वं सितासितारक्त-घनपूयप्रवाहि च ॥ ८ ॥
 शब्दवाहिसिरासंस्थे शृणोति पवने मुहुः ।
 नादानकस्माद्विविधान् , 'कर्णनादं' वदन्ति तम् ॥ ९ ॥
 श्लेष्मणाऽनुगतो वायुर्नादो वा समुपेक्षितः ।
 उच्चैः 'कृच्छ्राच्छ्रुति' कुर्याद्वधिरत्वं क्रमेण च ॥ १० ॥
 वातेन शोषितः श्लेष्मा स्रोतो लिम्पेत्ततो भवेत् ।

नन्तरं श्रोत्ररोगविज्ञानं स्मृतिविषयत्वेनोपेक्षानर्हतया निरूपणीयम् ।
 दूरस्थग्राहकत्वं तु न साधर्म्यम् , 'वीचीतरङ्ग'-न्यायेन स्वदेशप्राप्त-
 स्यैव शब्दस्य श्रोत्रेन्द्रिय-ग्राह्यत्वात् ।

रुगौरवं पिधानं च, स 'प्रतीनाह'संज्ञितः ॥ ११ ॥
 कण्डूशोफौ कफाच्छ्रोत्रे स्थिरौ^१ तत्संज्ञया 'स्मृतौ' ।
 कफो विद्रग्धः पित्तेन सरुजं नीरुजं त्वपि ॥ १२ ॥
 घनपूति बहुक्लेदं कुरुते 'पूतिकर्णकम्' ।
 वातादिदूषितं श्रोत्रं मांसासृक्क्लेदजां रुजम् ॥ १३ ॥
 खादन्तो जन्तवः कुर्युस्तीव्रां स 'कृमिकर्णकः' ।
 श्रोत्रकण्डूयनाज्जाते क्षते स्यात्पूर्वलक्षणः ॥ १४ ॥
 'विद्रधिः'^२ पूर्ववच्चान्यः शोफोऽशोऽर्बुदमीरितम्^३ ।
 तेषु रुक्पूतिकर्णत्वं बधिरत्वं च बाधते ॥ १५ ॥
 गर्भेऽनिलात्सङ्कुचिता शष्कुली 'कृचिकर्णकः' ।
 एको नीरुगनेको वा गर्भे 'मांसाङ्कुरः' स्थिरः ॥ १६ ॥
 'पिप्पली' पिप्पलीमानः सन्निपाता'द्विदारिका' ।
 सवर्णः सरुजः स्तब्धः श्रयथुः स उपेक्षितः ॥ १७ ॥
 कटुतैलनिभं पक्कः स्रवेत् कृच्छ्रेण रोहति ।
 सङ्कोचयति रूढा च सा ध्रुवं कर्णशष्कुलीम् ॥ १८ ॥
 सिरास्थः कुरुते वायुः पालीशोषं 'तदाह्वयम्'^४ ।

१. तत्संज्ञया = कण्डू-शोफनाम्ना ।

२. दृष्टत्वङ्मांसमेदोऽस्थि-सावाऽसृक्कण्डराश्रयः । यः शोफो
 बहिरन्तर्वा महामूलो महारुजः । वृत्तः स्यादायतो यो वा स्मृतः
 षोढा स विद्रधिः । निदाने ११ अध्याये ३ । वात-पित्त-कफ-सन्नि-
 पात-रक्त-क्षतजत्वेन षोढा, अत्र तु कर्णविद्रधिरेकः ।

३. कर्णाशः; कर्णाऽर्बुदमिति ।

४. तदाऽह्वयम् = पालीशोषसंज्ञकम् ।

कृशा दृढा च तन्त्रीवत् पाली वातेन 'तन्त्रिका' ॥ १९ ॥

सुकुमारे चिरोत्सर्गारमहसैव प्रवर्धिते ।

कर्णे शोफः सरुक् पाल्यामरुणः परिपोटवान्^१ ॥ २० ॥

परिपोटः^२ स पवनात् ॥ 'उत्पातः' पित्तशोणितात् ।

गुर्वाभरणभाराद्यैः 'श्यावो' रुग्दाहपाकवान् ॥ २१ ॥

श्वयथुः स्फोटपिटिका-रागोषाक्लेदसंयुतः ।

पाल्यां शोफोऽनिलकफात्सर्वतो निर्व्यथः स्थिरः ॥ २२ ॥

स्तब्धः सवर्णः कण्डूमान् उन्मन्थो 'गल्लिरश्च' सः ।

दुर्विद्धे वर्धिते कर्णे सकण्डूदाहपाकरुक् ॥ २३ ॥

श्वयथुः सन्निपातोत्थः, स नाम्ना 'दुःखवर्धनः' ।

कफासृक्कृमिजाः सूक्ष्माः सकण्डूक्लेदवेदनाः ॥ २४ ॥

'लेह्याख्याः' पिटिकास्ता हि लिङ्ग्यः पालीमुपेक्षिताः ।

पिप्पली सर्वजं शूलं विदारी कूचिकर्णकः ॥ २५ ॥

^३एषामसाध्या, याप्यका, तन्त्रिकाऽन्यास्तु साधयेत् ।

पञ्चविंशतिरित्युक्ताः 'कर्णरोगा' विभागतः ॥ २६ ॥

इत्युत्तरस्थाने सप्तदशोऽध्यायः ।

१. परिपोटः = स्फुटनम् । पुट-संश्लेषणे भावे घञ् 'पोटः' = संश्लेषः परिगतः = विगतः पोटः, तद्वान् ।

२. एषां = कर्णरोगाणां मध्ये—कर्णपिप्पली, सन्निपातजकर्ण-शूलम्, विदारी, कूचिकर्णकः इति चत्वारो रोगाः—असाध्याः । एका = केवलम्—तन्त्रिका-याप्या । अन्यान् विंशतिरोगास्तु साधयेत् । रोगानामसु ' ' एवं चिह्नं कृतमस्ति सुगमार्थम् । इति ।

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कर्णरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
'कर्णशूले 'पवनजे, पिबेद्रात्रौ रसाशितः ।
वातघ्नसाधितं सर्पिः कर्णं स्विन्नं च पूरयेत् ॥ १ ॥
पन्नाणां पृथगश्वत्थ-बिल्वार्कैरण्डजन्मनाम् ।
तैलसिन्धूत्थदिग्धानां स्विन्नानां पुटपाकतः ॥ २ ॥
रसैः कवोष्णैस्तद्वच्च मूलकस्यारलोरपि ।
गणे वातहरेऽम्लेषु मूत्रेषु च विपाचितः ॥ ३ ॥
महास्नेहो द्रुतं हन्ति सुतीव्रामपि वेदनाम् ।
महतः पञ्चमूलस्य काष्ठात्क्षौमेण वेष्टितात् ॥ ४ ॥
तैलसिक्तात्प्रदीप्ताग्रात् स्नेहः सद्यो रूजापहः ।
योज्यश्चैवं भद्रकाष्ठात् कुष्ठात् काष्ठाच्च सारलात् ॥ ५ ॥
वातव्याधिप्रतिश्याय-विहितं हितमत्र च ।
वर्जयेच्छिरसा स्नानं शीताम्भः पानमह्वयपि ॥ ६ ॥
पित्तशूले सितायुक्त-घृतस्निग्धं विरेचयेत् ।
द्राक्षाद्यष्टिशृतं स्तन्यं शस्यते कर्णपूरणम् ॥ ७ ॥
यष्ट्यनन्ता-हिमोशीर-काकोलीरोध्रजीवकैः ।
मृणालविसमञ्जिष्ठा-सारिवाभिश्च साधयेत् ॥ ८ ॥
यष्टीमधुरसप्रस्थं क्षीरद्विप्रस्थसंयुतम् ।
तलस्य कुडवं नस्यपूरणाभ्यञ्जनैरिदम् ॥ ९ ॥
निहन्ति शूलदाहोषाः केवलं क्षौद्रमेव वा ।

यष्टयादिभिश्च सघृतैः कर्णौ दिव्यास्मन्ततः ॥ १० ॥
 वामयेत् पिप्पलीसिद्धसर्पिः स्निग्धं कफोद्धवे ।
 धूमनावनगण्डूष-स्वेदान् कुर्यात्कफापहान् ॥ ११ ॥
 लशुनार्द्रकशिग्रूणां सुरङ्गया मूलकस्य च ।
 कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ १२ ॥
 अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तांल्लवणान्वितान् ।
 सन्निधाय स्नुहीकाण्डे ^१कोरिते तच्छदावृतान् ॥ १३ ॥
 स्वेदयेत्पुटपाकेन स रसः शूलजित्परम् ।
 रसेन बीजपूरस्य कपित्थस्य च पूरयेत् ॥ १४ ॥
 सूक्तेन पूरयित्वा वा फेनेनान्ववचूर्णयेत् ।
 अजाविमूत्रवंशत्वक्-सिद्धं तैलं च पूरणम् ॥ १५ ॥
 सिद्धं वा सार्षपं तैलं हिङ्गुतुग्बरुनागरैः ।
 रक्तजे पित्तवत्कार्यं सिरां चाशु विमोक्षयेत् ॥ १६ ॥
 पक्वे पूयवहे कर्णे धूम-गण्डूष-नावनम् ।
 युञ्ज्यान्नाडीविधानं च दुष्टव्रणहरं च यत् ॥ १७ ॥
 स्रोतः प्रमृज्य दिग्धं तु द्वौ कालौ पिचुवर्तिभिः ।
 पूरेण धूपयित्वा वा माक्षिकेण प्रपूरयेत् ॥ १८ ॥
 सुरसादिगणकाथ-फाणिताक्तां च योजयेत् ।
 पिचुवर्तिं सुसूक्ष्मैश्च तच्चूर्णैरवचूर्णयेत् ॥ १९ ॥
 शूलक्लेदगुरुत्वानां विधिरेष निवर्तकः ।

१. कोरिते = निष्कुलीकृते, कुर = शब्दे, छेदने तु-वृत्तिरने-
 कार्थत्वात् । तु० प० से० ण्यन्ताच्चावे क्तः, अन्तःकृताऽवकाशे सेदुण्ड-
 काण्डे-इत्यर्थः ।

प्रियङ्गुमधुकाम्बुष्ठा-धातक्युत्पलपर्णिभिः ॥ २० ॥
 मज्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन च ।
 पचेत्तैलं तदास्त्रावं निगृह्णात्याशु पूरणात् ॥ २१ ॥
 नादबाधिर्ययोः कुर्याद्वातशूलोक्तमौषधम् ।
 श्लेष्मानुबन्धे श्लेष्माणं प्राग्जयेद्वमनादिभिः ॥ २२ ॥
 एरण्डशिग्रुवरुण-मूलकात्पत्रजं रसे ।
 चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणोन्मिते ॥ २३ ॥
 यष्ट्याह्वाक्षीरकाकोली-कल्कयुक्तं निहन्ति तत् ।
 नादबाधिर्यशूलानि नावनाभ्यङ्गपूरणैः ॥ २४ ॥
 पक्वं प्रतिविपाहिङ्गुमिशित्वक्स्वर्जिकोपणैः ।
 ससूक्तैः पूरणात्तैलं रुक्स्त्रावश्रुतिनादनुत् ॥ २५ ॥
 'कर्णनादे' हितं तैलं सर्षपोत्थं च पूरणे ।

क्षारतैलम् ।

शुष्कमूलकखण्डानां क्षारो हिङ्गु महौषधम् ॥ २६ ॥
 शतपुष्पावचाकुष्ठदारुशिग्रुरसाञ्जनम् ।
 सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकौह्निदसैन्धवम् ॥ २७ ॥
 भूर्जग्रन्थिविडं मुस्ता मधुसूक्तं चतुर्गुणम् ।
 'मातुलुङ्गरसस्तद्वत् कदलीस्वरसश्च तैः ॥ २८ ॥
 पक्वं तैलं जयत्याशु सुकृच्छ्रानपि पूरणात् ।
 कण्डूं क्लेदं च बाधिर्यं पूतिकर्णं च रुक्कमीन् ॥ २९ ॥
 'क्षारतैलमिदं' श्रेष्ठं मुखदन्तामयेषु च ।

अथ सुप्ताविव स्यातां कर्णौ रक्तं हरेत्ततः ॥ ३० ॥
 सशोफक्लेदयोर्मन्दश्रुतेर्वमनमाचरेत् ।
 बाधिर्यं वर्जयेद्बाल-वृद्धयोश्चिरजं च यत् ॥ ३१ ॥
 'प्रतीनाहे' परिकलेद्य स्नेहस्वेदैर्विशोधयेत् ।
 कर्णशोधनकेनानु कर्णौ तैलस्य पूरयेत् ॥ ३२ ॥
 ससूक्तसैन्धवमधोर्मातुलुङ्गरसस्य वा ।
 शोधनाद् रुक्षतोत्पत्तौ घृतमण्डस्य पूरणम् ॥ ३३ ॥
 क्रमोऽयं मलपूर्णेऽपि कर्णे कण्डूवां कफापहम् ।
 नस्यादि तद्वच्छोफेऽपि कटूष्णैश्चात्र लेपनम् ॥ ३४ ॥
 कर्णस्त्रावोदितं कुर्यात्पूतिकृमिकर्णयोः ।
 पूरणं कटुतैलेन विशेषात् 'कृमिकर्णके' ॥ ३५ ॥
 वमिपूर्वा हिता 'कर्णविद्रधौ' विद्रधिक्रिया ।
 पित्तोत्थकर्णशूलोक्तं कर्तव्यं 'क्षतविद्रधौ' ॥ ३६ ॥
 अर्शोऽर्बुदेषु नासावत्क्लामा कर्णविदारिका ।
 कर्णविद्रधिवत्साध्या यथादोषोदयेन च ॥ ३७ ॥
 पालीशोषेऽनिलश्रोत्र-शूलवन्नस्यलेपनम् ।
 स्वेदं च कुर्यात् स्विन्नां च पालीमुद्वर्तयेत्तिलैः ॥ ३८ ॥
 प्रियालबीजयष्ट्याह्व-हयगन्धायवान्वितैः ।
 ततः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यङ्गं निर्यमाचरेत् ॥ ३९ ॥
 शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डजीवकैः ।
 तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥ ४० ॥
 कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचितम् ।
 आनूपमांसकाथे च पालीपोषणवर्धनम् ॥ ४१ ॥

पालीं छित्वातिसङ्ग्रीणां शेषां सन्धाय पोषयेत् ।
 याप्यैवं 'तन्त्रिकाख्यापि' परिपोटेऽप्ययं विधिः ॥ ४२ ॥
 'उत्पाते' शीतलैर्लेपो जलौकोहतशोणिते ।
 जम्बाम्रपल्लवबला-यष्टीरोध्रतिलोत्पलैः ॥ ४३ ॥
 सधान्याम्लैः समञ्जिष्टैः सकदम्बैः ससारिवैः ।
 सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं विसर्पोक्तघृतानि च ॥ ४४ ॥
 उन्मन्थेऽभ्यञ्जनं तैलं गोधाकर्कवसान्वितम् ।
 तालपत्र्यश्वगन्धार्क-बाकुचीतिलसैन्धवैः ॥ ४५ ॥
 सुरसालाङ्गलीभ्यां च सिद्धं तीक्ष्णं च नावनम् ।
 दुर्बिद्धेऽश्मन्तजम्बाम्र-पत्रकाथेन सेचिताम् ॥ ४६ ॥
 तैलेन पालीं स्वभ्यक्तां सुश्लक्ष्णैरवचूर्णयेत् ।
 चूर्णैर्मधुकमब्जिष्ठाप्रपुण्ड्राह्वनिशोद्धवैः ॥ ४७ ॥
 लाक्षाविडङ्गसिद्धं च तैलमभ्यञ्जने-हितम् ।
 स्विन्नां गोमयजैः पिण्डैर्बहुशः परिलेहिकाम् ॥ ४८ ॥
 विडङ्गसारैरालिम्पेदुरभ्रीमूत्रकल्कितैः ।
 कौटजेक्षुदकारञ्ज-बीजशम्याकवल्कलैः ॥ ४९ ॥
 अथवाभ्यञ्जने तैर्वा कटुतैलं विपाचयेत् ।
 सनिम्बपत्रमरिच-मदनैर्लेहिकाव्रणे ॥ ५० ॥
 छिन्ने तु कर्णे शुद्धस्य बन्धमालोच्य यौगिकम् ।
 शुद्धास्त्रं 'लागयेत्क्षणे सद्यश्छिन्ने विशोधनम् ॥ ५१ ॥
 कर्णरोगविधानम्—
 अथ ग्रथित्वा केशान्तं कृत्वा छेदनलेखनम् ।

निवेश्य सन्धिं सुषमं न निम्नं न समुन्नतम् ॥ ५२ ॥
 अभ्यज्य मधुसर्पिभ्यां पिचुप्लोतावगुण्ठितम् ।
 सूत्रेणागाढशिथिलं बद्ध्वा चूणैरवाकिरेत् ॥ ५३ ॥
^१शोणितस्थापनैर्व्रण्यमाचारं चादिशेत्ततः ।
 सप्ताहादामतैलाक्तं शनैरपनयेत् पिचुम् ॥ ५४ ॥
 सुरुढं जातरोमाणं शिलष्टसन्धिसमस्थिरम् ।
 सुवर्ष्माणं सुरागं च शनैः कर्णं विवर्धयेत् ॥ ५५ ॥
^२जलशूकः स्वयङ्कुप्ता रजन्यौ बृहतीफलम् ।
 अश्वगन्धावलाहस्तिपिप्पलीगौरसर्पपाः ॥ ५६ ॥
 मूलं कोशातकाश्चघ्नरूपिकासप्तपर्णजम् ।
 छुच्छुन्दरी कालमृता गृहं मधुकरीकृतम् ॥ ५७ ॥
 जतूका जलजन्मा च तथा शाबरकन्दकम् ।
 एभिः कल्कैः खरं पक्कं सतैलं माहिषं घृतम् ॥ ५८ ॥
 हस्थश्चमूत्रेण परम्-अभ्यङ्गात्कर्णवर्धनम् ।
 'अथ' कुर्याद्वयस्थस्य छिन्नां शुद्धस्य नासिकाम् ॥ ५९ ॥
 छिन्धान्नासासमं पत्रं तत्तुल्यं च कपोलतः ।
 त्वङ्मांसं नासिकासन्ने रक्षस्तत्तनुतां नयेत् ॥ ६० ॥
 सीम्येद् गण्डं ततः सूच्या सेविन्या पिचुयुक्तया ।

१. शोणितस्थापनैः = यष्टी-मधु-कर्पूर-गैरिकादिभिः । च. सू. १४।२४ ।

२. जलशूकः = शैवालः । रूपिकः = अर्कः । छुच्छुन्दरी = गन्ध-मुखी सा कालेन मृता न तु स्वयं मारिता । जतूका = चर्मचटिका, (चमगादर) जलजन्मा = जलौका । शबरकन्दको = लशुनः ।

नासाच्छेदे च लिखिते परिवर्त्योपरि त्वचम् ॥ ६१ ॥
 कपोलबन्धं सन्दध्यात्सीव्येन्नासां च यत्नतः ।
 नाडीभ्यामुत्तिपेदन्तः सुखोच्छ्वासप्रवृत्तये ॥ ६२ ॥
 आमृतैलेन सिक्त्वा तु पतङ्गमधुकाञ्जनैः ।
 शोणितस्थापनैश्चान्यैः सुश्लक्ष्णं रवचूर्णयेत् ॥ ६३ ॥
 ततो मधुघृताभ्यक्तं बद्ध्वाऽऽचारिकमादिशेत् ।
 ज्ञात्वावस्थान्तरं कुर्यात् सद्योघ्नणविधिं ततः ॥ ६४ ॥
 छिन्द्याद्रूढेऽधिकं मांसं नासोपान्ते च चर्मवत् ।
 सीव्येत्ततश्च सुश्लक्ष्णं हीनं संवर्धयेत्पुनः ॥ ६५ ॥
 निवेशिते यथान्यासं सद्यश्छेदेऽप्ययं विधिः ।
^१नाडीयोगाद्विनौष्ठस्य नासासन्धानवद्विधिः ॥ ६६ ॥
 इत्युत्तरस्थानेऽष्टादशोऽध्यायः ।



एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो नासारोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः ।
 नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनाऽन्येन ^२वारिणा ॥ १ ॥

१. नाडीयोगं विना छिन्नस्यौष्ठस्य नासा सन्धानविधिमतिदि-
 शति नाडीयोगादिति ।

२. अन्येन = नित्याऽभ्यस्तमिन्नेन ।

१ अत्यम्बुपानरमणच्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः ।

क्रुद्धा वातोत्पन्ना दोषा नासायां स्त्यानतां गताः ॥ २ ॥

जनयन्ति 'प्रतिशयायं' वर्धमानं क्षयप्रदम् ।

तत्र 'वातात्प्रतिशयाये' मुखशोषो भृशं क्षयः ॥ ३ ॥

घ्राणोपरोधनिस्तोद-दन्तशङ्खशिरोव्यथाः ।

कीटका इव सर्पन्ति मन्यते परितो भ्रुवौ^२ ॥ ४ ॥

स्वर-सादश्चिरात्पाकः शिशिराऽच्छ-कफस्रुतिः ।

'पित्तात्' तृष्णाज्वरघ्राण-पिटिकासम्भवभ्रमाः ॥ ५ ॥

नासाग्रपाको रूक्षोष्णस्तान्मपीत-कफस्रुतिः ।

'कफात्' कासोऽरुचिः श्वासो वमथुर्गान्त्रगौरवम् ॥ ६ ॥

माधुर्यं वदने कण्ठः स्निग्धशुक्लघना स्रुतिः ।

'सर्वजो' लक्षणैः सर्वैरकस्माद् वृद्धिशान्तिमान् ॥ ७ ॥

दुष्टं नासासिराः प्राप्य प्रतिशयायं करोत्यसृक्^३ ।

उरसः सुप्तता ताम्रनेत्रत्वं श्वासपूतिता ॥ ८ ॥

कण्ठः श्रोताक्षिनासासु पित्तोक्तं चात्र लक्षणम् ।

दुष्टप्रतिशयायः ।

सर्व एव प्रतिशयाया 'दुष्टतां' यान्त्युपेक्षिताः ॥ ९ ॥

यथोक्तोपद्रवाधिक्यात्, स^४ सर्वेन्द्रियतापनः ।

साम्प्रिसादज्वरश्वास-कासोरःपार्श्ववेदनः ॥ १० ॥

१. अतिजलपानेनाऽतिजलक्रीडया चेत्यर्थः ।

२. भ्रुवौ परितः कीटकाः सर्पन्ति इति मन्यते ।

३. असृक् = रुधिरं 'कर्तुं' दुष्टं सत् नासा सिराः प्राप्य प्रति-
शयायं करोति-इत्यन्वयः । ४. सः = प्रतिशयायः ।

कुप्यत्यकस्माद्बहुशो मुखदौर्गन्ध्यशोफकृत् ।
 नासिकाक्लेदसंशोष-शुद्धिरोधकरो मुहुः ॥ ११ ॥
 पूयोपमाऽसिता रक्तग्रथिता श्लेष्मसंस्तुतिः ।
 मूर्च्छन्ति चात्र कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः ॥ १२ ॥
 'पक्कलिङ्गानि' तेष्वङ्ग-लाघवं क्षवथोः शमः ।
 श्लेष्मा सचिक्कणः पीतो ज्ञानं च रसगन्धयोः ॥ १३ ॥
^१तीक्ष्णाऽऽघ्राणोपयोगार्करश्मिसूत्रतृणादिभिः ।
 वातकोपिभिरन्यैर्वा नासिकातरुणास्थिनि ॥ १४ ॥
 विघट्टितेऽनिलः क्रुद्धो रुद्धः शृङ्गाटकं ^२व्रजन् ।
 निवृत्तः कुरुतेऽत्यर्थं क्षवथुं स 'भृशक्षवः' ॥ १५ ॥
 शोषयन्नासिकास्रोतः कफं च कुरुतेऽनिलः ।
 शूकपूर्णाभनासात्वं कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः ॥ १६ ॥
 स्मृतोऽसौ 'नासिकाशोषोऽनासानाहे' तु जायते ।
 नद्धत्वमिव नासायाः श्लेष्मरुद्धेन वायुना ॥ १७ ॥
 निःश्वासोच्छ्वाससंरोधात् स्रोतसी संवृते इव ।
 पचेन्नासापुटे 'पित्तं' त्वङ्मांसं दाहशूलवत् ॥ १८ ॥
 स 'घ्राणपाकः' ऋस्त्रावस्तु 'तत्संज्ञः' श्लेष्मसम्भवः ।
 अच्छो जलोपमोऽजस्रं विशेषान्निशि जायते ॥ १९ ॥

अपीनसमाह ।

'कफः' प्रवृद्धो नासायां रुद्ध्वा स्रोतांस्यपीनसम् ।

१. तीक्ष्णानां = मरिचादीनामाघ्राणस्य = शिङ्खनस्योपयोगेन
 तथा रविरश्मिप्रभृतिभिः ।

२. शृङ्गाटकं-चक्षुः-कर्ण-नासा-रसनानां चतुष्पथं मस्तकस्थम् ।

कुर्यात्स घुर्घुरं श्वासं पीनसाधिकवेदनम् ॥ २० ॥
 अवेरिव स्रवत्यस्य प्रक्लिन्ना तेन नासिका ।
 अजस्रं पिच्छलं पीतं पक्वं सिङ्घाणकं घनम् ॥ २१ ॥
 'रक्तेन' नासा दग्धेन बाह्यान्तः स्पर्शनाऽऽसहा ।
 भवेद्धूमोपमोच्छ्वासा सा 'दीप्तिर्दहतीव च ॥ २२ ॥
 तालुमूले मलैर्दुष्टैर्मरुतो मुखनासिकात् ।
 श्लेष्मा च पूतिर्निर्गच्छेत्, 'पूतिनासं' वदन्ति तम् ॥ २३ ॥
 निचयादभिघाताद्वा पूयासृङ् नासिका स्रवेत् ।
 तत् पूयरक्तमाख्यातं शिरोदाहरुजाकरम् ॥ २४ ॥
 पित्तश्लेष्मावरुद्धोऽन्तर्नासायां शोषयेन्मरुत् ।
 कर्फं स शुष्कपुटतां प्राप्नोति 'पुटकं' तु तत् ॥ २५ ॥
 'अशोऽर्बुदानि' विभजेद्दोषलिङ्गैर्यथायथम् ।
 सर्वेषु कृच्छ्राच्छ्वसनं पीनसः प्रततं क्षवः^१ ॥ २६ ॥
 सानुनासिकवादित्वं पूतिनासः शिरोभ्यथा ।
 अष्टादशानामित्येषां यापयेद्दुष्टपीनसम् ॥ २७ ॥

इत्युत्तरस्थान एकोनविंशोऽध्यायः ।

१. दुक्षु = शब्दे—'ऋदोरप्' गुणः, 'क्षवः—स्त्री क्षुत् क्षुतं क्षवः पुंसि, इत्यमरः ।

विंशोऽध्यायः ।

अथातो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
'सर्वेषु पीनसेष्वादौ' निवातागारगो भवेत् ।
स्नेहन-स्वेद-वमन-धूम-गण्डूष-धारणम् ॥ १ ॥
वासो गुरूष्णं शिरसः सुघनं परिवेष्टनम् ।
लध्वग्ललवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमद्रवम् ॥ २ ॥
धन्वमांसगुडक्षीरचणकत्रिकटूत्कटम् ।
यवगोधूमभूयिष्ठं दधिदाडिमसाधितम् ॥ ३ ॥
बालमूलकजो^१यूषः कुलत्थोत्थश्च पूजितः ।
कवोष्णं दशमूलाम्बु जीर्णौ वा वारुणीं पिबेत् ॥ ४ ॥
जिघ्रेक्षोरकतर्कारी-वचाजाज्युपकुञ्चिकाः ।
व्योषतालीसचविका-तित्तिडीकाम्लवेतसम् ॥ ५ ॥
साग्न्यजाजि द्विपलिकं स्वगेलापत्रपादिकम् ।
जीर्णाद्गुडात्तुलार्धेन पक्वेन वटकीकृतम् ॥ ६ ॥
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ।
शताह्वात्वग्बलामूलं स्योनाकैरण्डबिल्वजम् ॥ ७ ॥
सारग्वधं पिबेद्धूमं वसाज्यमदनान्वितम् ।
अथवा सघृतान् सक्तून् कृत्वा मक्षकसम्पुटे ॥ ८ ॥

१. नियन्त्रितो वातो यस्मिन् तत्-निवातं तच्चागारं निवा-
ताऽगारम् । न तु निर्वातम्, तथापेक्षितत्वे तथैवाऽपठिष्यत् ।

२. शुष्कबालमूलकज इत्यर्थः, तस्यैव योग्यत्वात्, सूत्रोक्तत्वाच्च ।

रथजेस्नानं शुचं क्रोधं भृशं शय्यां हिमं चलम् ।
 पिबेद् 'वातप्रतिश्याये' सर्पिर्वातघ्नसाधितम् ॥ ९ ॥
 पटुपञ्चकसिद्धं वा विदार्यादिगणेन वा ।
 स्वेद-नस्यादिकां कुर्यात् चिकित्सामर्दितोदिताम्^१ ॥ १० ॥
 'पित्तरक्तोत्थयोः' पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ।
 परिपेकान्प्रदेहांश्च शीतैः कुर्वीत शीतलान् ॥ ११ ॥
 धवत्वक्त्रिफलाश्यामाश्रीपर्णीयष्टिबिल्वकैः ।
 क्षीरे दशगुणे तैलं 'नावनं' सनिशैः पचेत् ॥ १२ ॥
 'कफजे' लङ्घनं लेपः शिरसो गौरसर्पपैः ।
 सक्षारं वा घृतं पीत्वा वमेत् पिष्टैस्तु नावनम् ॥ १३ ॥
 बस्ताम्बुना पटुव्योषवेह्लवत्सकजीरकैः ।
 कटुतीक्ष्णैर्घृतैर्नस्यैः कवलैः सर्वजं जयेत् ॥ १४ ॥
 यक्ष्मकृमिक्रमं कुर्वन् यापयेद्दुष्टपीनसे ।
 व्योषोरुवूककृमिजिह्वारुमाद्रीगदेज्जुदम् ॥ १५ ॥
 वार्ताकबीजं त्रिवृता सिद्धार्थः पूतिमत्स्यकः ।
 अग्निमन्थस्य पुष्पाणि पीलुशिग्रुफलानि च ॥ १६ ॥
 अश्वविड्भ्रसमूत्राभ्यां हस्तिमूत्रेण चैकतः ।
 क्षौमगर्भो कृतां वर्ति धूमं घ्राणास्यतः पिबेत् ॥ १७ ॥
 क्षवथौ पुटकाख्ये च तीक्ष्णैः प्रधमनं हितम् ।
 शुण्ठीकुष्ठकणावेह्लद्राक्षकल्ककषायवत् ॥ १८ ॥
 साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवपुटप्रणुत् ।

१. अर्दिताख्ये वातरोगे कथिताम् ।

नासाशोषे बलातैलं पानादौ भोजनं रसैः ॥ १९ ॥
 स्निग्धो धूमस्तथा स्वेदो नासानाहेऽप्ययं विधिः ।
 पाके दीप्तौ च पित्तघ्नं तीक्ष्णं नस्यादि संस्तुतौ ॥ २० ॥
 कफपीनसवत्पूतिनासापीनसयोः क्रिया ।
 लाक्षाकरञ्जमरिचवेल्लहिङ्गकणागुडैः ॥ २१ ॥
 अविमूत्रद्रुतैर्नस्यं कारयेद्वमने कृते ।
 शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः ॥ २२ ॥
 सवेल्लसुरसैस्तैलं नावनं परमं हितम् ।
 पूरक्ते नवे कुर्याद्रक्तपीनसवत्क्रियाम् ॥ २३ ॥
 अतिप्रवृद्धे नाडीवत् ऋदग्धेष्वर्शोऽर्बुदेषु च ।
 निकुम्भकुम्भसिन्धूत्थमनोह्वालवणाम्निकैः ॥ २४ ॥
 कल्कितैर्धृतमध्वाक्तां घ्राणे वर्तिं प्रवेशयेत् ।
 शिम्वादि नावनं चात्र पूतिनासोदितं भजेत् ॥ २५ ॥
 त्युत्तरस्थाने विंशोऽध्यायः ।

एकविंशोऽध्यायः ।

अथातो मुखरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'मात्स्यमाहिषवाराह-पिशिताऽऽमकमूलकम् ।
 माष-सूप-दधि-क्षीर-शुक्लेष्टुरसफाणितम् ॥ १ ॥
 अवाक् शय्यां च भजतो द्विषतो दन्तधावनम् ।
 धूमच्छर्दनगण्डूषानुचितं च सिराव्यधम् ॥ २ ॥

क्रुद्धाः श्लेष्मोत्सवणा दोषाः कुर्वन्त्यन्तर्मुखे गदान् ।
 तत्र 'खण्डौष्ठ' इत्युक्तो वातेनोष्ठो द्विधा कृतः ॥ ३ ॥
 'ओष्ठकोपे' तु पवनात् स्तब्धावोष्ठौ महारुजौ ।
 दाल्येते परिपाटयेते परुषासितकर्कशौ ॥ ४ ॥
 पित्तात्तीक्ष्णसहौ पीतौ सर्षपाकृतिभिश्चितौ ।
 पिटिकाभिर्महाक्लेदावाशुपाकौऽऽकफात्पुनः ॥ ५ ॥
 शीतासहौ गुरु शूनौ सवर्णपिटिकाचितौ ।
 'सन्निपातादनेकाभौ दुर्गन्धाऽऽस्त्रावपिच्छलौ ॥ ६ ॥
 अकस्मान्मलानसंशूनरुजौ विषमपाकिनौ ।
 रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ७ ॥
 खर्जरसदृशं चाऽत्र क्षीणे 'रक्तेऽर्बुदं' भवेत् ।
 मांसैपिण्डोपमौ मांसात् स्यातां मूर्च्छात्कृमी क्रमात् ॥ ८ ॥
 तैलाभश्चयथुक्लेदौ सकण्डवौ मेदसा मृदू ।
 क्षतजाववदीर्येते पाटयेते चासकृत्पुनः ॥ ९ ॥
 ग्रथितौ च पुनः स्यातां कण्डूलौ दशनच्छदौ ।
 जलबुद्बुदवद्वातकफादोष्ठे 'जलार्बुदम्' ॥ १० ॥
 'गण्डालजी' स्थिरः शोफो गण्डे दाहज्वरान्वितः^१ ।
 वातादुष्णसहा दन्ताः शीतास्पर्शाधिकव्यथाः ॥ ११ ॥
 दाल्यन्त इव शूलेन, शीताख्यो 'दालनश्च' सः ।
 'दन्तहर्षे' प्रवाताम्लशीतभक्ष्यासहा द्विजाः ॥ १२ ॥
 भवन्त्यम्लाशनेनैव सरुजाश्चलिता इव ।
 'दन्तभेदे' द्विजास्तोदभेदरुक्स्फुटनान्विताः ॥ १३ ॥

१. इत्योष्ठरोगाः । २. इत्येको गण्डरोगः ।

‘चाल’श्चलद्भिर्दशनैर्भक्षणादधिकव्यथैः ।

‘करालः’ सुकरालानां दशनानां समुद्भवः ॥ १४ ॥

दन्तोऽधिकोऽधिदन्ताख्यः स चोक्तः खलु वर्धनः ।

जायते जायमानेऽतिरूग् जाते तत्र शाम्यति ॥ १५ ॥

अधावनान्मलो दन्ते कफो वा वातशोषितः ।

‘पूतिगन्धः स्थिरीभूतः शर्करा’ सोऽप्युपेक्षितः ॥ १६ ॥

शातयत्यणुशो दन्तात्कपालानि ‘कपालिका’ ।

‘श्यावः’ श्यावत्वमायाता रक्तपित्तानिलैर्द्विजाः ॥ १७ ॥

समूलं दन्तमाश्रित्य दोषैरुल्लवणमारुतैः ।

शोषिते मज्जि सुषिरे दन्तेऽन्नमलपूरिते ॥ १८ ॥

पूतित्वात्कृमयः सूक्ष्मा जायन्ते, जायते ततः ।

अहेतुतीव्रार्तिशमः ससंरम्भोऽसितश्चलः ॥ १९ ॥

प्रभूतपूयरक्तस्तु, स चोक्तः ‘कृमिदन्तकः’ ।

श्लेष्मरक्तेन पूतीनि वहन्त्यस्त्रमहेतुकम् ॥ २० ॥

शीर्यन्ते दन्तमांसानि मृदुक्लिन्नाऽसितानि च ।

‘शीतादोऽसौ’ उपकुशः पाकः पित्तासृगुद्भवः ॥ २१ ॥

दन्तमांसानि दह्यन्ते रक्तान्युत्सेधवन्त्यतः ।

कण्डूमन्ति स्रवन्त्यस्त्रमाध्मायन्तेऽसृजि स्थिते ॥ २२ ॥

चला मन्दरुजो दन्ताः पूति वक्त्रं च जायते ।

दन्तयोस्त्रिषु वा शोफो बदरास्थिनिभो घनः ॥ २३ ॥

कफास्त्रात्तीव्ररूक् शीघ्रं पच्यते ‘दन्तपुष्पुटः’ ।

१. अधावनादन्ते मलः कफो वा वातेन शोषितः स्थिरीभूतः पूतिगन्धः, सः = पूतिगन्धः उपेक्षितश्चेत्-शर्करा-इत्युच्यते ।

दन्तमांसे मलैः सास्त्रैवाह्यान्तः श्वयथुर्गुरुः ॥ २४ ॥
 सरुदाहः स्रवेद्भिन्नः पूयासं 'दन्तविद्रधिः' ।
 श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान् पित्तरक्तजः ॥ २५ ॥
 लालास्रावी ^१स 'सुषिरो' दन्तमांसप्रशातनः ।
 स सन्निपातज्वरवान् सपूयरुधिरस्रुतिः ॥ २६ ॥
 'महासुषिर' इत्युक्तो विशीर्णद्विजबन्धनः ।
 दन्तान्ते कीलवच्छोफो हनुकर्णरुजाकरः ॥ २७ ॥
 प्रतिहन्त्यभ्यवहतिं श्लेष्मणा, सोऽ'धिमांसकः' ।
 घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान् ॥ २८ ॥
 यस्मिंश्चलन्ति दन्ताश्च स 'विदर्भो'ऽभिघातजः ।
 दन्तमांसाश्रितान् रोगान् यः साध्यानप्युपेक्षते ॥ २९ ॥
 अन्तस्तस्यास्त्रवन् दोषः सूक्ष्मां सञ्जनयेद्भूतिम् ।
 पूयं मुहुः सा ^२स्रवति त्वङ्मांसास्थिप्रभेदिनी ॥ ३० ॥
^३ताः पुनः पञ्च विज्ञेया लक्षणैः स्वैर्यथोदितैः ।

अथ जिह्वारोगाः ।

शाकपत्रखरा सुप्ता स्फुटिता वातदूषिता ॥ ३१ ॥
 जिह्वाऽपित्तात् सदाहोषा रक्तैर्मांसाङ्कुरैश्चिता ।
 शास्मलीकण्टकाभैस्तु कफेन बहला गुरुः ॥ ३२ ॥
 कफपित्तादधः शोफो जिह्वास्तम्भकृदुन्नतः ।

१. सः = रोगः सुषिरनामा । २. सा = सूक्ष्मागतिः ।

३. ताः = सूक्ष्मा गतयः वातपित्तकफसन्निपातरक्तजभेदेन पञ्च,
इति दन्तमूले त्रयोदश ।

मत्स्यगन्धिर्भवेत् पक्वः, सोऽलसो' मांसशातनः ॥ ३३ ॥
 प्रबन्धनेऽधो जिह्वायाः शोफो जिह्वाग्रसन्निभः ।
 साङ्कुरः कफपित्तास्रैर्लालोषास्तम्भवान् खरः ॥ ३४ ॥
 'अधिजिह्वः' सरुक्कण्डूर्वाक्याऽऽहारविघातकृत् ।
 तादृगेवो'पजिह्वस्तु' जिह्वाया उपरि स्थितः ॥ ३५ ॥

तालुरोगाः ।

तालुमांसेऽनिलाद्दुष्टे पिटिकाः सरुजः खराः ।
 बह्व्यो घनाः स्त्रावयुक्तास्ता'स्तालुपिटिकाः' स्मृताः ॥ ३६ ॥
 तालुमूले कफात्सास्त्रान्मत्स्यबस्तिनिभो मृदुः ।
 प्रलम्बः पिच्छिलः शोफो नासयाऽऽहारमीरयन् ॥ ३७ ॥
 कण्ठोपरोधनृट्कास-वमिकृद् 'गलशुण्डिका' ।
 तालुमध्ये निरुड्मांसं संहतं 'तालुसंहतिः' ॥ ३८ ॥
 पद्माकृतिस्तालुमध्ये रक्ताच्छ्वयथुरर्बुदम्' ।
 'कच्छपः' कच्छपाकारश्चिरवृद्धिः कफादरुक् ॥ ३९ ॥
 कोलाभः श्लेष्ममेदोभ्यां 'पुष्पुटो' नीरुजः स्थिरः ।
 पित्तेन पाकः 'पाकाख्यः' पूयास्त्रावी महारुजः ॥ ४० ॥
 वातपित्तज्वरायासैस्तालुशोषस्तदाह्वयः ।
 जिह्वाग्रबन्धजाः कण्ठे दारुणा मार्गरोधिनः ॥ ४१ ॥
 मांसाङ्कुराः शीघ्रचया 'रोहिणी' शीघ्रकारिणी ।
 कण्ठास्यशोषकृद्वातात्सा^१ हनुश्रोत्ररुक्करी ॥ ४२ ॥

१. सा = रोहिणी वातात् कण्ठाऽऽस्ययोः शोषकृत्, हनुश्रो-
 त्रयोः रुक्करी ।

पित्ताज्ज्वरोषातृणमोह-कण्ठधूमायनान्विता ।
 क्षिप्रजा क्षिप्रपाकार्तिरागिणी स्पर्शनासहा ॥ ४३ ॥
 कफेन पिच्छिला पाण्डुःॐ असृजा स्फोटकान्विता ।
 तप्तझारनिभा कर्णरुक्करी पित्तजाकृतिः ॥ ४४ ॥
 गम्भीरपाका निचयाःसर्वलिङ्गसमन्विता ।
 दोषैः कफोल्वणैः शोफः कोलवद् ग्रथितोन्नतः ॥ ४५ ॥
 शूककण्टकवत्कण्ठे 'शालूको' मार्गरोधनः ।
 'वृन्दो' वृत्तोन्नतो दाहज्वरकृद् गलपार्श्वगः ॥ ४६ ॥
 हनुसन्ध्याश्रितः कण्ठे कार्पासीफलसन्निभः ।
 पिच्छिलो मन्दरुक् शोफः कठिन'स्तुण्डिकेरिका' ॥ ४७ ॥
 बाह्यान्तः श्वयथुर्घोरो गलमार्गार्गलोपमः ।
 'गलौघो' मूर्धगुरुतातन्द्रालालाज्वरप्रदः ॥ ४८ ॥
 'वल्यं' नातिरुक् शोफस्तद्वदेवायतोन्नतः ।
 'मांसकीलो' गले दोषैरेकोऽनेकोऽथवाऽल्परुक् ॥ ४९ ॥
 कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यवहतिः पृथुमूलो गिलायुकः ।
 भूरिमांसाङ्कुरवृता तीव्रतृड्ज्वरमूर्धरुक् ॥ ५० ॥
 'शतघ्नी' निचिता वर्तिः शतघ्नावातिरुक्करी ।
 व्याप्तसर्वगलः शीघ्रजन्मपाको महारुजः ॥ ५१ ॥
 पूतिपूयनिभस्त्रावी श्वयथु'र्गलविद्रधिः' ।
 जिह्मावसाने कण्ठादावपाकं श्वयथुं मलाः ॥ ५२ ॥
 जनयन्ति स्थिरं रक्तं नीरुजं, तद् 'गलार्बुदम्' ।
 पवनश्लेष्ममेदोभिर्गलगण्डो भवेद्बहिः ॥ ५३ ॥
 वर्धमानः स कालेन मुष्कवल्गुम्बतेऽतिरुक् ।

कृष्णोऽरुणो वा तोदाढ्यः ^१स वाताकृष्णराजिमान् ॥५४॥
 वृद्धस्तालुगले शोषं कुर्याच्च विरसास्यताम् ।
 स्थिरः सवर्णः कण्डूमान् शीतस्पर्शो गुरुः कफात् ॥ ५५ ॥
 वृद्धस्तालुगले लेपं कुर्याच्च मधुरास्यताम् ।
 मेदसः श्लेष्मवद्भानि-वृद्धयोः सोऽनुविधीयते ॥ ५६ ॥
 देहं वृद्धश्च कुरुते गले शब्दं स्वरेऽल्पताम् ।
 श्लेष्मरुद्भानिलगतिः शुष्ककण्ठो हतस्वरः ॥ ५७ ॥
 ताम्यन् प्रसक्तः श्वसिति, येन ^२स स्वरहानिलात् ।
 इति गलरोगाः ।

करोति वदनस्यान्तर्ग्रणान्सर्वसरोऽनिलः ॥ ५८ ॥
 सञ्चारिणोऽरुणान् रूक्षानोष्ठौ ताम्रौ चलत्वचौ ।
 जिह्वा शीतासहा गुर्वी स्फुटिता कण्टकाचिता ॥ ५९ ॥
 विवृणोति च कृच्छ्रेण मुखं 'पाको मुखस्य' सः ।
 अधः प्रतिहतो वायुरशोऽगुल्मकफादिभिः ।
 यास्यूध्वं वक्त्रदौर्गन्ध्यं कुर्वन्नूर्ध्वगद'स्तु सः ॥ ६० ॥
 'मुखस्य पित्तजे पाके' दाहोषे तिक्तवक्त्रता ।
^३क्षारोक्षितक्षतसमा व्रणाः ऋतद्वच्च 'रक्तजे' ॥ ६१ ॥
 'कफजे' मधुरास्यत्वं कण्डूमत्पिच्छिला व्रणाः ।

१. सः = गलगण्डः ।

२. येन = रोगेण श्लेष्मरुद्धाऽनिलगतिः । श्वसिति स = रोगः
 स्वरहा = स्वरघ्ननामा ।

३. क्षारेण = भस्मादिना-उक्षितानि सिक्तानि-अवचूर्णितानि वा
 यानि क्षतानि तैः समा = तुल्याः, समत्वञ्च समानपीडावत्त्वेन ।

अन्तः कपोलमाश्रित्य श्यावपाण्डु कफोऽर्बुदम् ॥ ६२ ॥
 कुर्यात्तत्पाटितं च्छिन्नं मृदितं च विवर्धते ।
 'मुखपाको' भवेत्सास्त्रैः सर्वैः सर्वाकृतिर्मलैः ॥ ६३ ॥
 पूत्यास्यता च तैरेव दन्तकाष्ठादिविद्विषः ।
 ओष्ठे गण्डे द्विजे मूले जिह्वायां तालुके गले ॥ ६४ ॥
 वक्त्रे सर्वत्र चेत्युक्ताः पञ्चसप्ततिरामयाः ।
 एकादशैको दश च, त्रयोदश तथा च षट् ॥ ६५ ॥
 अष्टावष्टादशाष्टौ च क्रमात्क्षतेष्वनुपक्रमाः ।
 करालौ मांसरक्तोष्ठावर्बुदानि जलाद्विना ॥ ६६ ॥
 कच्छपस्तालुपिटिका गलौघः सुषिरो महान् ।
 स्वरघ्नोर्ध्वगदश्यावशतघ्नीवलयालसाः ॥ ६७ ॥
 नाड्योष्ठकोपौ निचयात् रक्तात्सर्वैश्च रोहिणी ।
 दशने स्फुटिते दन्तभेदः पक्वोपजिह्विका ॥ ६८ ॥
 गलगण्डः स्वरभ्रंशी कृच्छ्रोच्छ्वासोऽतिवत्सरः ।
 याप्यस्तु हर्षो भेदश्च, शोषान् शस्त्रौषधैर्जयेत् ॥ ६९ ॥
 इत्युत्तरस्थाने एकविंशोऽध्यायः ।



द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मुखरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'खण्डौष्ठस्य विलिख्यान्तौ' स्यूत्वा व्रणवदाचरेत् ।

१. अन्तौ = खण्डितप्रान्तौ—विलिख्य = क्षुराऽग्नेण चर्मभेदन-

यष्टीज्योतिष्मतीरोध-श्रावणीसारिवोत्पलैः ॥ १ ॥
 पटोत्था काकमाच्या च 'तैलमभ्यञ्जनं' पचेत् ।
 नस्यं च तैलं' वातघ्नमधुरस्कन्धसाधितम् ॥ २ ॥
 महास्नेहेन वातौष्ठे सिद्धेनाक्तः पित्तुर्हितः ।
 देवधूपमधूच्छिष्टगुग्गुल्वमरदारुभिः ॥ ३ ॥
 यष्ट्याह्वचूर्णयुक्तेन तेनैव प्रतिसारणम् ।
 नाड्यौष्ठं स्वेदयेद्दुग्धसिद्धैरेरण्डपल्लवैः ॥ ४ ॥
 खण्डौष्ठविहितं नस्यं तस्य मूर्ध्नि च तर्पणम् ।
 पित्ताभिघातजावोष्ठौ जलौकोभिरुपाचरेत् ॥ ५ ॥
 रोधसर्जरसचौद्रमधुकैः प्रतिसारणम् ।
 गुडूचीयष्टिपत्तङ्ग-सिद्धमभ्यञ्जने घृतम् ॥ ६ ॥
 पित्तविद्रधिवच्चात्र क्रियाञ्जशोणितजेऽपि च ॥
 हृदमेव भवेत्कार्यं कर्म' ओष्ठे तु 'कफोत्तरे' ॥ ७ ॥
 पाठाक्षारमधुव्योषर्हतास्त्र प्रतिसारणम् ।
 धूमनावनगण्डूषाः प्रयोज्याश्च कफच्छिदः ॥ ८ ॥
 स्विन्नं भिन्नं विमेदस्कं दहेन्मेदोजमग्निना ॥
 प्रियङ्गुरोध्रत्रिफलामाक्षिकैः प्रतिसारयेत् ॥ ९ ॥
 सचौद्रा घर्षणं तीक्ष्णाभिन्नशुद्धे जलाब्धे ।
 अवगाढेऽतिवृद्धे वा क्षारोऽग्निर्वा प्रतिक्रिया ॥ १० ॥
 आमाश्वस्थास्वलजीं गण्डे शोफवदाचरेत् ।
 स्विन्नस्य 'शीतदन्तस्य' पालीं विलिखितां दहेत् ॥ ११ ॥

मात्रेण संश्लेषाऽर्हौ कृत्वा ।

१. सन्धि कृत्वा पठनीयम् ।

तैलेन प्रतिसार्या च सक्षौद्रघनसैन्धवैः ।
 दाडिमस्वग्वरातार्च्यकान्ताजग्द्वस्थिनागरैः ॥ १२ ॥
 कवलः क्षीरिणां क्वाथैरणुतलं च नावनम् ।
 'दन्तहर्षे' तथा 'भेदे' सर्वा वातहरा क्रिया ॥ १३ ॥
 तिलयष्टीमधुशृतं क्षीरं गण्डूषधारणम् ।
 सस्नेहं दशमूलाम्बु गण्डूषः 'प्रचलद्विजे' ॥ १४ ॥
 तुत्थरोध्रकणाश्रेष्ठापत्तङ्गपटुघर्षणम् ।
 स्निग्धाः शीत्या यथावस्थं नस्यान्नकवलादयः ॥ १५ ॥
 'अधिदन्तकमालिसं' यदा क्षारेण जर्जरम् ।
 कृमिदन्तमिवोत्पाटय तद्वच्चोपचरेत्तदा ॥ १६ ॥
 अनवस्थितरक्ते च दग्धे व्रण इव क्रिया ।
 अहिंसन् दन्तमूलानि दन्तेभ्यः 'शर्करां' हरेत् ॥ १७ ॥
 क्षारचूर्णैर्मधुयुतस्ततश्च प्रतिसारयेत् ।
 कपालिकायामप्येवं 'हर्षोक्तं' च समाचरेत् ॥ १८ ॥
 जयेद्विस्त्रावणैः स्विन्नमचलं 'कृमिदन्तकम्' ।
 स्निग्धैश्चालेपगण्डूष-नस्याहारश्चलापहैः ॥ १९ ॥
 गुडेन पूर्णं सुपिरं मधूच्छिष्टेन वा दहेत् ।
 सप्तच्छदार्कक्षीराभ्यां पूरणं कृमिशूलजित् ॥ २० ॥
 हिङ्गु-कट्फल-कासीस-स्वर्जिकाकुष्ठवेल्हजम् ।
 रजो रुजं जयत्याशु वस्त्रस्थं दशने धृतम् ॥ २१ ॥
 गण्डूषं धारयेत्तैलमेभिरेव च साधितम् ।
 क्वाथैर्वा युक्तमेरण्ड-द्विव्याघ्रीभूकदम्बजैः ॥ २२ ॥
 क्रियायोगैर्बहुविधैरित्यशान्तरुजं भृशम् ।

दृढमप्युद्धरेदन्तं पूर्वं मूलाद्विमोक्षितम् ॥ २३ ॥
 'सन्दंशकेन' लघुना 'दन्तनिर्घातनेन' वा ।
 तैलं सयष्ट्याह्वरजो गण्डूषो मधुना ततः ॥ २४ ॥
 ततो विदारि-यष्ट्याह्व-शृङ्गाटक-कसेरुभिः ।
 तैलं दशगुणक्षीरसिद्धं युञ्जीत नावनम् ॥ २५ ॥
 कृशदुर्बलवृद्धानां वातार्तानां च नोद्धरेत् ।
 नोद्धरेच्चोत्तरं दन्तं बहुपद्रवकृद्धि सः ॥ २६ ॥
 एषामप्युद्धते स्निग्धः स्वादुः शीतः क्रमो हितः ।
 विस्त्रावितास्त्रे 'शीतादे' सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ २७ ॥
 मुस्तार्जुनत्वक्त्रिफला-फलनीताचर्यनागरैः ।
 तत्काथः कवलो नस्यं तैलं मधुरसाधितम् ॥ २८ ॥
 दन्तमांसान्युपकुशे, स्विन्नान्युष्णाम्बुधारणैः ।
 मण्डलाग्रेण शाकादिपत्रैर्वा बहुशो लिखेत् ॥ २९ ॥
 ततश्च प्रतिसार्याणि घृतमण्डमधुद्रुतैः ।
 लाक्षाप्रियङ्गुपत्तङ्ग-लवणोत्तमगैरिकैः ॥ ३० ॥
 सकुष्ठशुण्ठीमरिच-यष्टीमधुरसाञ्जनैः ।
 सुखोष्णो घृतमण्डोऽनु तैलं वा कवलग्रहः ॥ ३१ ॥
 घृतं च मधुरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ।
 दन्तपुष्पुटके स्विन्नछिन्नभिन्नविलेखिते ॥ ३२ ॥
 यष्ट्याह्वस्वर्जिकाशुण्ठीसैन्धवैः प्रतिसारणम् ।
 विद्रधौ कटुतीक्ष्णोष्णरूक्षैः कवललेपनम् ॥ ३३ ॥

घर्षणं कटुकाकुष्ठवृश्चिकालीयवोद्भवैः ।
 रक्षेत्पाकं हिमैः, पक्वः पाट्यो दाह्योऽवगाढकः ॥ ३४ ॥
 सौषिरे स्विन्नलिखिते सत्तौद्रैः प्रतिसारणम् ।
 रोध्रमुस्तमिशिश्रेष्ठा-ताक्ष्यपत्तङ्गकिंशुकैः ॥ ३५ ॥
 सकटफलैः कषायैश्च तेषां गण्डूष हृण्यते ।
 यष्टीरोध्रोत्पलानन्ता-सारिवागुरुचन्दनैः ॥ ३६ ॥
 सगैरिकसितापुण्ड्रैः सिद्धं तैलं च नावनम् ।
 छित्त्वाधिमांसकं चूर्णैः सत्तौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥
 वचातेजोवतीपाठा-स्वर्जिकायवशूकजैः ।
 पटोलनिम्बत्रिफलाकषायः कवलो हितः ॥ ३८ ॥
 'विदर्भे' दन्तमूलानि मण्डलाग्रेण शोषयेत् ।
 क्षारं युञ्ज्यात्ततो नस्यं गण्डूषादि च शीतलम् ॥ ३९ ॥
 संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपचरेत्ततः ।
 नाडीं दन्तानुगां दन्तं समुद्धृत्याग्निना दहेत् ॥ ४० ॥
 कुब्जां नैकगतिं पूर्णां मदनेन गुढेन वा ।
 धावनं जातिमदन-खदिरस्वादुकण्टकैः ॥ ४१ ॥
 क्षीरिवृक्षाम्बुगण्डूषो नस्यं तैलं च तत्कृतम् ।
 कुर्याद्वातौष्ठकोपोक्तं कण्टकेष्वनिलात्मसु ॥ ४२ ॥
 जिह्वायां पित्तजातेषु घृष्टेषु रुधिरैः स्तुते ।
 प्रतिसारणगण्डूषनावनं मधुरैर्हितम् ॥ ४३ ॥
 तीक्ष्णैः कफोत्थेष्वप्येवं सर्षपयूषणादिभिः ।
 नवे जिह्वालसेऽप्येवं, तं तु शस्त्रेण न स्पृशेत् ॥ ४४ ॥
 उन्नम्य जिह्वामाकृष्टां बडिशोनाधिमज्जिकाम् ।

छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादि च ॥ ४५ ॥
 उपजिह्वां परिस्ताभ्य यवक्षारेण घर्षयेत् ।
 कफघ्नैः शुण्डिका साध्या नस्यगण्डूषघर्षणैः ॥ ४६ ॥
 ऐर्वारुबीजप्रतिमं वृद्धायामसिराततम् ।
 अग्रे निविष्टं जिह्वाया बडिशायबलम्बितम् ॥ ४७ ॥
 छेदयेन्मण्डलाग्रेण नास्यग्रे न च मूलतः ।
 छेदेऽस्यसृक्क्षयान्मृत्युर्हीने व्याधिर्विवर्धते ॥ ४८ ॥
 मरिचातिविषापाठावचाकुष्ठकुटन्नटैः ।
 छिन्नायां सपटुक्षौद्रैर्घर्षणं कवलः पुनः ॥ ४९ ॥
 कटुकातिविषापाठा-निम्बरास्नावचाम्बुभिः ।
 सङ्घाते पुष्पुटे कूर्मे विलिख्यैवं समाचरेत् ॥ ५० ॥
 अपक्वे तालुपाके तु कासीसक्षौद्रताक्ष्यजैः ।
 घर्षणं कवलः शीतकषायमधुरौषधैः ॥ ५१ ॥
 पक्वेऽष्टापदवद्भिन्ने तीक्ष्णोष्णैः प्रतिसारणम् ।
 वृषनिम्बपटोलाद्यैस्तिक्तैः कवलधारणम् ॥ ५२ ॥
 तालुशोषे त्वत्पुष्णस्य सर्पिरुत्तरभक्तिकम् ।
 कणा शुण्ठीशृतं पानमम्लैर्गण्डूषधारणम् ॥ ५३ ॥
 धन्वमांसरसाः क्षिग्धाः क्षीरसर्पिश्च नावनम् ।
 कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च ॥ ५४ ॥
 क्वाथः पानं च दार्वात्त्वङ्निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गजः ।
 हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ५५ ॥
 श्रेष्ठान्योषयवक्षार-दार्वाद्वीपिरसाञ्जनैः ।
 सपाठातेजिनीनिम्बैः सूक्तगोमूत्रसाधितैः ॥ ५६ ॥

कवलो गुटिका चाऽत्र कल्पिता प्रतिसारणम् ।
 निचुलं कटभी मुस्तं देवदारु महौषधम् ॥ ५७ ॥
 वचा दन्ती च मूर्वा च लेपः कोण्णोऽतिशोफहा ।
 अथाऽन्तर्बाह्यतः स्विन्नां 'वातरोहिणिकां' लिखेत् ॥ ५८ ॥
 अङ्गुलीशस्त्रकेणाऽऽशु पटुयुक्तनखेन वा ।
 पञ्चमूलाम्बुकवलस्तैलं गण्डूषनावनम् ॥ ५९ ॥
 विस्राग्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियङ्गुभिः ।
 घर्षेत्सरोध्रपत्तङ्गैः कवलः कथितैश्च तैः ॥ ६० ॥
 द्राक्षापरूषकक्वाथो हितश्च कवलग्रहे ।
 उपाचरेदेवमेव प्रत्याख्यायाऽस्त्रसम्भवाम् ॥ ६१ ॥
 सागारधूमैः कटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ।
 नस्यगण्डूषयोस्तैलं साधितं च प्रशस्यते ॥ ६२ ॥
 अपामार्गफलश्वेता-दन्तीजन्तुधनसन्धवैः ।
 तद्वच्च बृन्द-शालक-तुण्डिकेरी-गिलायुषु ॥ ६३ ॥
 विद्रधौ स्राविते श्रेष्ठारोचनातार्च्यगैरिकैः ।
 सरोध्रपटुपक्वकणैर्गण्डूषघर्षणे ॥ ६४ ॥
 'गलगण्डः' पवनजः स्विन्नो निस्सृतशोणितः ।
 तिलैर्बीजैश्चलट्वोमा-प्रियालशणसम्भवैः ॥ ६५ ॥
 उपनाह्यो व्रणे रूढे प्रलेप्यश्च पुनः पुनः ।
 शिग्रु-तिलवक-तर्कारी-गजकृष्णा-पुनर्नवैः ॥ ६६ ॥
 कालामृताकर्मूलैश्च पुष्पैश्च करहाटजः ।
 १ एकैषिकान्वितैः पिष्टैः सुरया काञ्जिकेन वा ॥ ६७ ॥

१. एकैषिका = त्रिवृत् (निसीत) ।

गुडूचीनिम्बकुटज-हंसपादीबलाद्वयैः ।
 साधितं पाययेत्तैलं सकृष्णादेवदारुभिः ॥ ६८ ॥
 कर्तव्यं कफजेऽप्येतत् ^१स्वेदविम्लापने त्वति ।
 लेपोऽजगन्धातिविषा-विशल्याः सविषाणिकाः ॥ ६९ ॥
 गुञ्जालाबुशुकाह्वाश्च परलाशक्षारकल्किताः ।
 मूत्रशृतं हठक्षारं पक्त्वा कोद्रवभुक् पिबेत् ॥ ७० ॥
 साधितं वत्सकाद्यैर्वा तैलं सपटुपञ्चकैः ।
 कफघ्नान् धूम्रवमन-नावनादींश्च शीलयेत् ॥ ७१ ॥
 मेदोभवे सिरां विध्येत्कफघ्नं च विधिं भजेत् ।
 असनादिरजश्चैनं प्रातर्मृत्रेण पाययेत् ॥ ७२ ॥
 अशान्तौ पाटयित्वा च सर्वान् व्रणवदाचरेत् ।
 'मुखपाकेषु' सक्षौद्राः प्रयोज्या मुखधावनाः ॥ ७३ ॥
 कथितास्त्रिफलापाठा-मृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
 निष्ठेव्या भक्षयित्वा वा कुठेरादिगणोऽथवा ॥ ७४ ॥
 मुखपाकेऽनिलात् कृष्णापट्वेलाः प्रतिसारणम् ।
 तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ७५ ॥
 पित्तास्त्रे रक्तपित्तघ्नः कफघ्नश्च कफे विधिः ।
 लिखेच्छाकादिपत्रैश्च पिटिकाः कठिनाः स्थिराः ॥ ७६ ॥
 यथादोषोदयं कुर्यात्सन्निपाते चिकित्सितम् ।
 नवेऽर्बुदे त्वसंवृद्धे च्छेदिते प्रतिसारणम् ॥ ७७ ॥
 स्वजिकानागरक्षौद्रेः काथो गण्डूष इष्यते ।

१. एतत् = पवनजगलगण्डोक्तं चिकित्सितं कफोत्थेऽपि कर्त्तव्यम्, स्वेद-विम्लापने तु-अति = अत्यर्थ-कर्त्तव्ये ।

गुडूचीनिम्बवल्कोत्थो^१मधुतैलसमन्वितः ॥ ७८ ॥

यवान्मभुक् तीक्ष्णतैलनस्याभ्यङ्गास्तथाचरेत् ।

वमिते पृतिवदने धूमस्तीक्ष्णः सनावनः ॥ ७९ ॥

समङ्गाघातकीरोध्रफलनीपद्मकैर्जलम् ।

धावनं वदनस्यान्तश्चूर्णितैरवचूर्णनम् ।

शीतादोपकुशोक्तं च नावनादि च शीलयेत् ॥ ८० ॥

फलत्रयद्वीपिकिराततित्त-

यष्ट्याह्वसिद्धार्थ-कटुत्रिकाणि ।

मुस्ताहरिद्राद्वय-यावशूक-

वृक्षाम्लकाम्लग्रिमवेतसाश्च ॥ ८१ ॥

अश्वत्थजम्बवान्नधनञ्जयत्वक्

त्वक् चाहिमारात्खदिरस्य सारः ।

क्वाथेन तेषां घनतां गतेन

तच्चूर्णयुक्ता 'गुटिका' विधेयाः ॥ ८२ ॥

ता धारिता भ्रन्ति मुखेन नित्यं

कण्ठीष्ठताल्वादिगदान् सुकृच्छ्रान् ।

विशेषतो रोहिणिकाऽऽस्य शोष-

गन्धान् 'विदेहाधिपतिप्रणीताः' ॥ ८३ ॥

खदिरतुलामम्बुघटे पक्त्वा तोयेन तेन पिष्टैश्च ।

चन्दन-जोङ्गक-कुङ्कुम-परिपेलव-वालकोशीरः ॥ ८४ ॥

सुरतरु-रोध्र-द्राक्षा-भंजिष्ठा-चोच-पद्मक-विडङ्गैः ।

स्पृष्टानत-नख-कटुफल-सूक्ष्मैला-ध्यामकैः सपत्तङ्गैः ॥ ८५ ॥

१. निम्बकल्कोत्थो—इति पाठः सर्वाङ्गसुन्दरा टी०

तलप्रस्थं विपचेत्त कर्षोशः

पाननस्यगण्डूषैस्तत् ।

हत्वास्ये सर्वगदान् जनयति

गाध्रीं दृशं^१ श्रुतिं च वाराहीम् ॥ ८६ ॥

उद्धर्तितं च प्रपुन्नाटरोध-

दावीभिरभ्यक्तमनेन वक्रम्

निर्व्यङ्गनीलीमुखदूषिकादि

सञ्जायते चन्द्रसमानकान्ति ॥ ८७ ॥

पलशतं^२ बाणात्तोयघटे पक्त्वा रसेऽस्मिंश्च पलाधिकैः ।

खदिरजम्बूयष्टयानन्ताम्रैरहिमारनीलोत्पलान्वितैः ॥ ८८ ॥

तैलप्रस्थं पाचयेच्छलक्ष्णपिष्टे-

रेभिर्द्रव्यैर्धारितं तन्मुखेन ।

रोगान्सर्वान् हन्ति वक्त्रे विशेषा-

त्स्थैर्यं धत्ते 'दन्तपङ्क्तेश्चलायाः' ॥ ८९ ॥

खदिरसारगुटिकाः ।

खदिरसादाद् द्वे तुले, पचेद्वत्कात्तुलां चारिमेदसः ।

घटचतुष्के पादशेषेऽस्मिन्, पूते पुनः काथनादघने ॥ ९० ॥

आक्षिप्तं क्षिपेत्सुसूक्ष्मं रजःसेव्याम्बुपत्तङ्गैरिकम् ।

चन्दनद्वयरोध्रपुण्ड्रद्वयव्याह्वलाक्षान्नद्वयम् ॥ ९१ ॥

धातकीकट्फलद्विनिशात्रिफलाचतुर्जातजोङ्गकम् ।

-
१. गृध्रो दूरदर्शी, वराहो दूरश्रावी-अतस्तयोर्दृष्टि-श्रुती उपमा-भूते । २. बाणः = नीलसहचरः ।

मुस्तमञ्जिष्ठान्यग्रोधप्ररोहमांसीयवासकम् ॥ ९२ ॥
 पथकैलेयसमङ्गाश्च शीते, तस्मिंस्तथा पालिकां पृथक् ।
 जातिपत्रिकां सजातीफलां, सहलवङ्गकङ्कोलिकाम् ॥ ९३ ॥
 स्फटिकशुभ्रसुरभिकर्पूरकुडवं च तत्रावपेक्षतः ।
 कारयेद्गुटिकाः सदा चैतां धार्या मुखे 'तद्गदापहाः' ॥ ९४ ॥

अरिमेदस्तैलम् ।

१ काथौषधव्यत्यययोजनेन
 तैलं पचेत्कल्पनयाऽनयेव ।
 सर्वास्यरोगोद्धृतये तदाहुर्दन्त-
 स्थिरत्वे' त्विदमेव मुख्यम् ॥ ९५ ॥
 खदिरैणैता गुटिकास्तैलमिदं चारिमेदसा प्रथितम् ।
 अनुशीलयन् प्रतिदिनं स्वस्थोऽपि दृढद्विजो भवति ॥ ९६ ॥
 क्षुद्रागुह्चीसुमनःप्रवाल-
 दार्वायवासत्रिफलाकषायः ।
 क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं
 सर्वाभयान् वक्रगतान्निहन्ति ॥ ९७ ॥
 पाठादार्वात्वकुष्ठमुस्तासमङ्गा-
 तिक्तापीताङ्गारोध्रतेजोवतीनाम् ।

१. काथौषधयोः खदिरसाराऽरिमेदसोर्व्यत्ययो वैपरीत्यम् ,
 अरिमेदसो वल्कलाद् द्वे तुले प्रयोजयेत् , खदिरसारात् तुलां प्रयोज-
 येत् । अन्यत्सर्वं पूर्ववदित्यरुणः । अरिमेदाः अरिमेदसौ अरिमेदसः,
 वेधस्वत् (अरिमेदो विट्-खदिरे अमरः) ।

चूर्णः सक्षौद्रो दन्तमांसार्तिकण्डू-

पाकस्त्रावाणां नाशनो घर्षणेन ॥ ९८ ॥

गृहधूमताक्षर्यपाठाव्योषक्षाराग्न्ययोवरातेजोह्वैः ।

मुखदन्तगलविकारे सक्षौद्रः 'कालको' विधायश्चूर्णः ॥ ९९ ॥

दार्वीरवक्सिन्धूद्भवमनःशिलायावशूकहरितालैः ।

धार्यः पीतकचूर्णो दन्तास्यगलामये समध्वाज्यः ॥ १०० ॥

द्विक्षारधूमवरापञ्चपटुव्योषवेल्लगिरिताक्षर्यैः ।

गोमूत्रेण विपक्वा गलामयघ्नी रसक्रियैषा ॥ १०१ ॥

गोमूत्रकथनविलीनविग्रहाणां

पथ्यानां ^१जलमिशिकुष्ठभावितानाम् ।

अत्तारं नरमणवोऽपि वक्ररोगाः

श्रोतारं ^२नृपमिव न स्पृशन्त्यनर्थाः ॥ १०२ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।

यण्ड्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ १०३ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-

त्रायन्ति तिक्ताद्विनिशामृतानाम् ।

पीतः कषायो मधुना निहन्ति

मुखस्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ १०४ ॥

१. जलं = वालकः (सुगन्धवाला) मिशिः = शतपुष्पा (सौंफ)

कुष्ठः = कूट—इति प्रसिद्धः, तैर्भावितानां = दन्तभावनानां, गोमूत्र-
कथितानां पथ्यानां = हरीतकीनाम् ।

२. श्रोतारं = हितश्रोतारम् ।

स्वरसः क्वथितो दाह्या घनीभूतः सगैरिकः ।
 आस्यस्थः समधुर्वक्रपाकनाडीव्रणापहः ॥ १०५ ॥
 पटोलनिम्बयण्ड्याह्वासाजात्यरिमेदसाम् ।
 खदिरस्य वरायाश्च पृथगेवं प्रकल्पना ॥ १०६ ॥
 खदिरायोवरापार्थ-मदयन्त्यहिमारकैः ।
 गण्डषोऽम्बुशृतैर्धार्यो दुर्बलद्विजशान्तये ॥ १०७ ॥
 मुखदन्तमूलगलजाः प्रायो रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः ।
 तस्मात्तेषामसकृद् रुधिरं विस्त्रावयेद्दुष्टम् ॥ १०८ ॥
 कायशिरसोर्विरेको वमनं कवलग्रहाश्च कटुतिक्ताः ।
 प्रायः शस्तं तेषां कफरक्तहरं तथा कर्म ॥ १०९ ॥
 यवतृणधान्यं भक्तं विदलैः क्षारोषितैरपस्नेहाः ।
 यूषा भक्ष्याश्च हिता यच्चान्यच्छ्लेष्मनाशाय ॥ ११० ॥
 प्राणानिलपथसंस्थाः श्वसितमपि निरुन्धते प्रमादवतः^१ ।
 कण्ठामयाश्चिकित्सितमतो द्रुतं तेषु कुर्वीत ॥ १११ ॥

इत्युत्तरस्थाने द्वाविंशोऽध्यायः ।



१. प्रमादेन चिकित्सोपेक्षा, ततो रोगाणां बद्धमूलत्वम्, ततो
 दुःसाध्यत्वम्, पुनर्नानोपद्रवाः-भूयः श्वसितमपि रुन्धन्ति कण्ठ-
 रोगाः, अतस्तेषु द्रुतं = रोगस्वरूपज्ञानानन्तरमेव, तत्प्रतीकारं
 कुर्वीत । इति ।

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातः शिरोरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥
इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
धूमाऽऽतप-तुषाराऽम्बुक्रीडाऽतिस्वऽप्नजागरैः ।
उस्स्वेदाऽऽधिपुरोवात-बाष्पनिग्रह-रोदनैः ॥ १ ॥
अस्यम्बुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः ।
उपधानमृजाभ्यङ्ग-द्वेषाऽधः प्रततेक्षणैः ॥ २ ॥
असात्स्यगन्धदुष्टाम-भाष्याद्यैश्च शिरोगताः ।
जनयन्त्यामयान् दोषाः॥ तत्र 'मारुतकोपतः' ॥ ३ ॥
निस्तुद्येते भृशं शङ्खौ ^१घाटा सम्भिद्यते तथा ।
भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च पततीवातिवेदनम् ॥ ४ ॥
बाध्यते स्वनतः श्रोत्रे निष्कृष्येत इवाक्षिणी ।
घूर्णतीव शिरः सर्वं सन्धिभ्य इव मुच्यते ॥ ५ ॥
स्फुरत्यतिसिराजालं कन्धराहनुसङ्ग्रहः ।
प्रकाशाक्षमता घ्राणस्त्रावोऽकस्माद्व्यथाशमौ ॥ ६ ॥
मार्दवं मर्दनस्नेहस्वेदबन्धैश्च जायते ।
शिरस्तापोऽयम्॥अर्धे तु मूर्ध्नः सोऽर्धावभेदकः ॥ ७ ॥
पक्षात्कुप्यति मासाद्वा स्वयमेव च शाम्यति ।
अतिबृद्धस्तु नयनं श्रवणं वा विनाशयेत् ॥ ८ ॥
शिरोऽभितापे पित्तोत्थे शिरोधूमायनं ज्वरः ।
स्वेदोऽक्षिदहनं मूर्च्छा निशि शीतैश्च मार्दवम् ॥ ९ ॥

१. घाटा = कृकाटिका (घाटी)

अरुचिः कफजे मूध्नो गुरुस्तिमितशीतता ।
 सिरानिष्पन्दतालस्यं रुमन्दाऽह्वयधिका निशि ॥ १० ॥
 तन्द्रा शूनाक्षिकूटत्वं कर्णकण्डूयनं वमिः ।
 रक्तात् पित्ताधिकरुजः ॥ सर्वैः स्यात्सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥
 सङ्कीर्णैर्भोजनैर्मूर्ध्नि क्लेदिते रुधिरामिषे ।
 कोपिते सन्निपाते च जायन्ते मूर्ध्नि जन्तवः ॥ १२ ॥
 शिरसस्ते पिबन्तोऽस्त्रं घोराः कुर्वन्ति वेदनाः ।
 पित्तविभ्रंशजननीर्ज्वरः कासो बलक्षयः ॥ १३ ॥
 रौक्ष्यशोफव्यधच्छेददाहस्फुरणपूतिताः ।
 कपाले तालुशिरसोः कण्डूः शोषः प्रमीलकः ॥ १४ ॥
 ताम्राच्छसिङ्घाणकता कर्णनादश्च जन्तुजे ।
 वातोस्वणा शिरःकम्पं तत्संज्ञं कुर्वते मलाः ॥ १५ ॥
 पित्तप्रधानैर्वाताद्यैः शङ्खे शोफः सशोणितैः ।
 तीव्रदाहरुजारागप्रलापज्वरतृडभ्रमाः ॥ १६ ॥
 तिक्तास्यः पीतवदनः क्षिप्रकारी स 'शङ्खकः' ।
 त्रिरात्राजीवितं हन्ति सिध्यत्यप्याशु साधितः ॥ १७ ॥
 पित्तानुबद्धः शङ्खाक्षिभ्रूललाटेषु मारुतः ।
 रुजं सस्पन्दनां कुर्यादनुसूर्योदयोदयाम् ॥ १८ ॥
 आमध्याह्नं विवर्धिष्णुः ^१क्षुद्रतः सा विशेषतः ।
 अव्यवस्थितशीतोष्णमुखा शाम्यत्यतः परम् ॥ १९ ॥
 सूर्यावर्तः स ॥ इत्युक्ता 'दश रोगाः' शिरोगताः ।

१. भूमाक्षुत् = क्षवो विधत्ते यस्य सक्षुद्रान्, (भूमिन् मनु ५) तस्य

शिरस्येव च वक्ष्यन्ते कपाले व्याधयो नव ॥ २० ॥
 कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते ।
 सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशीर्षकम् ॥ २१ ॥
 यथादोषोदयं ब्रूयात् पिटिकाऽर्बुदविद्रधीन् ।
 कपाले क्लेदबहुलाः पित्तासृक्श्लेष्मजन्तुभिः ॥ २२ ॥
 कङ्कुसिद्धार्थकनिभाः पिटिकाः स्युररूषिकाः ।
 कण्डूकेशच्युतिस्तापरोक्ष्यकृत् स्फुटनं त्वचः ॥ २३ ॥
 सुसूक्ष्मं कफवाताभ्यां विद्याहारुणकं तु तत् ।
 रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् ॥ २४ ॥
 प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ।
 रोमकूपान् रुणद्धस्य तेनान्येषामसम्भवः ॥ २५ ॥
 तदिन्द्रलुप्तं 'रूज्यां च' प्राहुश्चाचेति चापरे^१ ।
 खलतेरपि जन्मैवं सदनं तत्र तु क्रमात् ॥ २६ ॥
 सा वातादग्निदग्धाभा पित्तास्त्रिबलसिरावृता ।
 कफाद्धनत्वग्वर्णाश्च यथास्वं निर्दिशेत् त्वचि ॥ २७ ॥
 दोषैः सर्वाकृतिः सर्वैरसाध्या सा नखप्रभा ।
 दग्धाम्निनेव निर्लोमा सदाहा या च जायते ॥ २८ ॥
 शोकश्रमक्रोधकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ।
 केशान् सदोषः पचति 'पलितं' सम्भवत्यतः ॥ २९ ॥
 तद्वातास्फुटितं श्यावं खरं रूक्षं जलप्रभम् ।
 पित्तात्सदाहं पीताभं कफास्त्रिगुणं विवृद्धिमत् ॥ ३० ॥

१. अपरे—ग्रन्थकारा रुढ्यां वृत्तौ (व्याचा) इति-इन्द्रलुप्तस्य
 नाम प्राहुः ।

स्थूलं सुशुक्लं सर्वैस्तु विद्याद्वयामिश्रलक्षणम् ।
 शिरोरुजोद्धवं चान्यद्विवर्णं स्पर्शनासहम् ॥ ३१ ॥
 असाध्या सन्निपातेन खलतिः पलितानि च ।
 'शरीरपरिणामोत्थान्यपेक्षन्ते रसायनम् ॥ ३२ ॥
 इत्युत्तरस्थाने त्रयोविंशोऽध्यायः ।

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातः शिरोरोगप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
 'शिरोऽभितापेऽनिलजे वातव्याधिविधिं चरेत् ।
 घृताभ्यक्तशिरा रात्रौ पिबेदुष्णपयोऽनुपः ॥ १ ॥
 माषान् मुद्गान् कुलत्थान्वा तद्वत्खादेद्घृतान्वितान् ।
 तैलं तिलानां कल्कं वा क्षीरेण सह पाययेत् ॥ २ ॥
 पिण्डोपनाहस्वेदाश्च मांसधान्यकृता हिताः ।
 वातघ्नदशमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम् ॥ ३ ॥
 स्निग्धं नस्यं तथा धूमः शिरःश्रवणतर्पणम् ।
 वरणादौ गणे क्षुण्णे क्षीरमर्धोदकं पचेत् ॥ ४ ॥
 क्षीरावशिष्टं तच्छीतं मथित्वा सारमाहरेत् ।
 ततो मधुरकैः सिद्धं नस्यं तत्पूजितं हविः ॥ ५ ॥
 वर्गेऽत्र पक्वं क्षीरे च पेयं सर्पिः सशर्करम् ।

१. शरीरस्य' परिमाणेन = वाङ्मयेन—उत्थानि = जनितानि
 तु—पालितानि ।

कार्पासमज्जा त्वङ् मुस्ता सुमनःकोरकाणि च ॥ ६ ॥
 नस्यमुष्णाम्बुपिष्टानि सर्वमूर्धरूजापहम् ।
 शर्कराकुङ्कुमशृतं घृतं पित्तासृगन्वये ॥ ७ ॥
 प्रलेपः सघृतैः कुष्ठ-^१कुटिलोत्पलचन्दनैः ।
 वातोद्रेकभयाद्रक्तं न चास्मिन्नवसेचयेत् ॥ ८ ॥
 हृत्यशान्तौ चले दाहः कफे चोष्णं यथोदितम् ।
 अर्धावभेदकेऽप्येषां यथादोषान्वयात् क्रिया ॥ ९ ॥
 शिरीषबीजापामार्ग-मूलं नस्यं बिडान्वितम् ।
 स्थिरारसो वा लेपे तु प्रपुञ्जाटोऽम्लकलिकतः ॥ १० ॥
 'सूर्यावर्ते' तु तस्मिंस्तु सिरयाऽपहरेदसृक् ।
 शिरोऽभितापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य व्यधयेत्सिराम् ॥ ११ ॥
 शीताः शिरोमुखालेप-सेकशोधनवस्तयः ।
 जीवनीयशृते क्षीरसर्पिषी पाननस्ययोः ॥ १२ ॥
 कर्तव्यं रक्तजेऽप्येतत् प्रत्याख्याय च 'शङ्खके' ।
 श्लेष्माभितापे जीर्णाज्यस्नेहितः कटुकैर्वमेत् ॥ १३ ॥
 स्वेद-प्रलेप-नस्याद्या रूक्षतीक्ष्णोष्णभेषजैः ।
 शस्यन्ते चोपवासोऽत्र निचये मिश्रमाचरेत् ॥ १४ ॥
 कृमिजे शोणितं नस्यं^२तेन मूर्च्छन्ति जन्तवः ।
 मत्ताः शोणितगन्धेन निर्यान्ति घ्राणवक्त्रयोः ॥ १५ ॥
 सुतीक्ष्णनस्यधूमाभ्यां कुर्यान्निर्हरणं ततः ।
 विडङ्गस्वर्जिकादन्तीहङ्गुगोमूत्रसाधितम् ॥ १६ ॥

कटुनिम्बेक्षुदीपीलुतैलं नस्यं पृथक् पृथक् ।
 अजामूत्रद्रुतं नस्ये^१ कृमिजित् कृमिजित्परम् ॥ १७ ॥
 पूतिमत्स्ययुतैः कुर्याद्धूमं नावनभेषजैः ।
 कृमिभिः पीतरक्तत्वादृक्तमत्र न निर्हरेत् ॥ १८ ॥
 वाताभितापविहितः कम्पे दाहाद्विना क्रमः ।
 नवे जन्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके ॥ १९ ॥
 वातव्याधिक्रियां, पक्वे कर्म विद्रधिचोदितम् ।
 आमपक्वे यथायोग्यं विद्रधौ पिटिकार्बुदे ॥ २० ॥
 अरुंषिका जलौकोभिर्हृतास्त्रा निम्बवारिणा ।
 सिक्ता प्रभूतलवणैर्लिम्पेदश्वशकृद्रसैः ॥ २१ ॥
 पटोलनिम्बपत्रैर्वा सहरिद्रैः सुकल्कितैः ।
 गोमूत्रजीर्णपिण्याक-कृकवाकुमलैरपि ॥ २२ ॥
 कपालभृष्टं कुष्ठं वा चूर्णितं तैलसंयुतम् ।
 रुंषिकालेपनं क्लेदकण्डूदाहार्तिनाशनम् ॥ २३ ॥
 मालतीचित्रकाश्वन्न-नक्तमालप्रसाधितम् ।
 वचारुंषिकयोस्तैलमभ्यङ्गः क्षुरघृष्टयोः ॥ २४ ॥
 अशान्तौ शिरसः शुद्धयं यतेत वमनादिभिः ।
 विष्येच्छिरां दारुणके लालाब्जां शीलयेन्मृजाम् ॥ २५ ॥
 नावनं मूर्ध्नि बस्ति च लेपयेच्च समाक्षिकैः ।
 प्रियालबीजमधुक-कुष्ठमाषैः ससर्षपैः ॥ २६ ॥
 लाक्षाशम्याकपत्रैर्बगजधत्रीफलैस्तथा ।

१. कृमिजित् = विडङ्गम् अजामूत्रं द्रुतं सत् नस्ये प्रयुक्तं परम् =
 अत्यन्तं कृमिजित् = कृमिनाशकम् ।

कोरदूषतृणचारवारिप्रक्षालनं हितम् ॥ २७ ॥
 'इन्द्रलुते' यथाऽऽसन्नं^१ सिरां बिद्ध्वा प्रलेपयेत् ।
 प्रच्छाय गाढं कासीस-मनोह्वातुत्थकोषणैः ॥ २८ ॥
 वन्यामरतरुभ्यां वा गुज्जामूलफलैस्तथा ।
 तथा लाङ्गलिकामूलैः करवीररसेन वा ॥ २९ ॥
 सक्षौद्रक्षुद्रवार्ताकस्वरसेन रसेन वा ।
 धतूरकस्य पत्राणां भल्लातकरसेन वा ॥ ३० ॥
 अथवा माक्षिकहविस्तिलपुष्पत्रिकण्टकैः ।
 तैलाक्ता हस्तिदन्तस्य मषी वा चौषधं परम् ॥ ३१ ॥
 शुक्रोमोद्वमे तद्वन्मषी मेपविषाणजा ।
 वर्जयेद्धारिणा सेकं यावद्रोमसमुद्भवः ॥ ३२ ॥
 खलतौ पलिते वक्ष्यां हरिहोमि च शोधितम् ।
 नस्यवक्त्रशिरोऽभ्यङ्गप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥ ३३ ॥
 सिद्धं तैलं बृहत्याद्यैर्जीवनीयैश्च नावनम् ।
 मासं वा निम्बजं तैलं क्षीरभुङ्क्तावयेद्यतिः ॥ ३४ ॥
 नीलीशिरीषकोरण्ट-भृङ्गस्वरसभावितम् ।
^२शेखरक्षतिलरामाणां बीजं काकाण्डकीसमम् ॥ ३५ ॥
 पिष्ट्वाऽऽजपयसा लोहाह्लिसादकांशुतापितात् ।
 तैलं स्नुतं^३ क्षीरभुजो नावनात् पलितान्तकृत् ॥ ३६ ॥

१. यथासन्नमिति क्रियाविशेषणम् ।

२. शेलुः = श्लेष्मातकः (लसोडा) ।

३. स्नुतं = निःसृतम् (शृतमिति न पठनीयम्) अर्कांशुतापि-
 ताह्लिसाल्लोहादिति पञ्चम्यन्तेनाऽन्वयात् ।

क्षीरात्सहचराद् भृङ्गरजसः सौरसाद्रसात् ।
 प्रस्थैस्तैलस्य कुडवः सिद्धो यष्टीपलान्वितः ॥ ३७ ॥
 नस्य शैलोद्भवे भाण्डे शृङ्गे मेषस्य वा स्थितः ।
 क्षीरेण श्लक्ष्णपिष्टौ वा दुग्धिका-करवीरकौ ॥ ३८ ॥
 उत्पाद्य पलितं देयावाशये पलितापहौ ।
 क्षीरं प्रियालं ^१यष्ट्याह्वं जीवनीयो गणस्तिलाः ॥ ३९ ॥
 कृष्णाः प्रलेपो वक्त्रस्य हरिहोमवलीहितः ।
 तिलाःसामलकाः पद्मकिञ्जल्को मधुकं मधु ॥ ४० ॥
 बृंहयेच्च रजेच्चैतत् केशान्मूर्धप्रलेपनात् ।
 मांसी कुष्ठं तिलाः कृष्णाः सारिवा नीलमुत्पलम् ॥ ४१ ॥
 क्षौद्रं च क्षीरपिष्टानि केशसंवर्धनं परम् ।
 अयोरजोऽभृङ्गरजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ॥ ४२ ॥
 स्थितमिच्छुरसे मासं समूलं पलितं रजेत् ।
 माषकोद्रवधान्याम्लैर्यवागूस्त्रिदिनोषिता ॥ ४३ ॥
 लोहशुक्लोत्कटा पिष्टा बलाकामपि रञ्जयेत् ।
 प्रपौण्डरीकमधुक-पिप्पलीचन्दनोत्पलैः ॥ ४४ ॥
 सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन च ।
 सर्वान् मूर्धगदान् हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥ ४५ ॥
 वरीजीवन्तिनिर्यासपयोभिर्यमकं पचेत् ।
 जीवनीयैश्च तन्नस्यं सर्वजन्मूर्ध्वरोगजित् ॥ ४६ ॥
 मयूरं पक्ष-पित्ताऽन्त्र-पाद-विट्-तुण्ड-वर्जितम् ।

१. प्रियालं = राजादनम् चार (चिरौजी) इति प्रसिद्धम् ।

दशमूलबलारास्ना-मधुकैस्त्रिपलैर्युतम् ॥ ४७ ॥
 जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।
 कल्कितैर्मधुरद्रव्यैः सर्वजत्रूर्ध्वरोगजित् ॥ ४८ ॥
 तदभ्यासीकृतं पान-वस्त्यभ्यञ्जननावनैः ।
 एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
 चतुर्गुणेन पयसा कल्कैरेभिश्च कार्पिकैः ।
 जीवन्तीत्रिफला-मेदामृद्वीकाद्विपरुषकैः ॥ ५० ॥
 समङ्गाचविकाभार्ज्जिकाश्मरीककटाह्वयैः ।
 आत्मगुप्तामहामेदा-तालखर्जूरमस्तकैः ॥ ५१ ॥
 मृणालविसखर्जूर-यष्टीमधुकजीवकैः ।
 शतावरीविदारीक्षुबृहतीसारिवायुगैः ॥ ५२ ॥
 मूर्वाश्वदंष्ट्रर्षभक शृङ्गाटककसेरुकैः ।
 रास्त्रास्थिरातामलकी-सूक्ष्मैला-शटि-पौष्करैः ॥ ५३ ॥
 पुनर्नवा-तवक्षीरी-काकोलीधन्वयासकैः ।
 मधूकाक्षोटवाताम-मुज्जाताभिषुकैरपि ॥ ५४ ॥
 महामायूरमित्येतन्मायूरादधिकं गुणैः ।
 धात्विन्द्रियस्वरभ्रंश-श्वासकासारिदितापहम् ॥ ५५ ॥
 योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वन्ध्यासुतप्रदम् ।
 आलुभिः कर्कटैर्हंसैः शशैश्चेति प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥
 'जत्रूर्ध्वजानां' व्याधीनामेकत्रिंशच्छतद्वयम् ।
 परस्परमसङ्कीर्णं विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ ५७ ॥

१. जत्रूर्ध्वजानाम् = जत्रुणः = अंसकक्ष-सन्धेः ऊर्ध्वजानां =
 कण्ठादुपरिजानां शालाक्यतन्त्र-विषयाणामित्यर्थः ।

उर्ध्वमूलमधःशाखमृषयः पुरुषं विदुः ।
 मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥ ५८ ॥
 सर्वेन्द्रियाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः ।
 तेन तस्योत्तमाङ्गस्य रक्षायामाहतो भवेत् ॥ ५९ ॥
 इत्युत्तरस्थाने चतुर्विंशोऽध्यायः ।



पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो ब्रणविज्ञान-प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'ब्रणो द्विधा, निजागन्तु-दुष्टशुद्धविभेदतः ।
 निजो दोषैः शरीरोत्थैरागन्तुर्बाह्यहेतुजः ॥ १ ॥
 दोषैरधिष्ठितो दुष्टः, शुद्धस्तैरनधिष्ठितः ।
 संवृतत्वं विवृतता काठिन्यं मृदुतापि वा ॥ २ ॥
 अस्युत्सन्नावसन्नत्वमत्यौण्यमतिशीतता ।
 रक्तत्वं पाण्डुता काण्ण्यं पूतिपूयपरिस्त्रुतिः ॥ ३ ॥
 पूतिमांससिरास्नायुच्छन्नतोत्सङ्किताऽतिरुक् ।
 संरम्भदाहश्चयथु-कण्ड्वादिभिरुपद्रुतिः ॥ ४ ॥
 दीर्घकालानुबन्धश्च विद्याद्दुष्टव्रणाकृतिम् ।
 स पञ्चदशधा दोषैः सरक्तैः ऋतत्र 'मारुतात्' ॥ ५ ॥

१. मूले सुरक्षिते शाखा प्रशाखयोरक्षा रुकरा । इति ।

२. ब्रणस्य विज्ञानसहितं प्रतिषेधं वर्णयामः-एकेनैवाऽध्यायेने-
 त्यर्थः ।

श्यावः कृष्णोऽरुणो भस्म-कपोतास्थिनिभोऽपि च ।
 मस्तुमांसपुलाकाम्बु-तुल्यतन्वल्पसंस्तुतिः ॥ ६ ॥
 निर्मासस्तोदभेदाढ्यो रूक्षश्चटचटायते ।
 'पित्तेन' क्षिप्रजः पीतो नीलः कपिलपिङ्गलः ॥ ७ ॥
 'मूत्रकिंशुकभस्माम्बु तैलाऽऽभोष्ण-बहुस्तुतिः ।
 चारोक्षितक्षतसम-व्यथो रागोध्मपाकवान् ॥ ८ ॥
 'कफेन' पाण्डुः कण्डूमान् बहुश्वेतघनस्तुतिः ।
 स्थूलौष्ठः कठिनः स्नायुसिराजालततोऽल्परूक् ॥ ९ ॥
 प्रवालरक्तो 'रक्तेन' सरक्तं पूयमुद्गिरेत् ।
 वाजिस्थानसमो गन्धे युक्तो लिङ्गैश्च पैत्तिकैः ॥ १० ॥
 द्वाभ्यां, त्रिभिश्च, सवैश्च, विद्याल्लक्षणसङ्करात् ।
 जिह्वाप्रभो मृदुः श्लक्ष्णः श्यावौष्ठपिटिकाः समः ॥ ११ ॥
 किञ्चिदुन्नतमध्यो वा व्रणः शुद्धोऽनुपद्रवः ।
 त्वगामिषसिरास्नायुसन्ध्यस्थीनि व्रणाशयाः^१ ॥ १२ ॥
 कोष्ठो मर्म च तान्यष्टौ^२ दुःसाध्यान्युत्तरोत्तरम् ।
 सुसाध्यः सत्त्व-मांसाऽग्नि-वयोबलवति व्रणः ॥ १३ ॥
 वृत्तो दीर्घस्त्रिपुटकश्चतुरस्त्राकृतिश्च यः^३ ।

१. मूत्र-किंशुक-भस्माऽम्बुतैलाऽऽभा—उष्णा बहुस्तुतिर्यस्मिन् ।

२. व्रणानाम् = ईमाणाम्-आशयाः = आश्रयाः ।

३. स्थानगाम्भोर्य्याद् रोगगाम्भीर्यम्-इति न्यायादिति भावः ।

४. सत्त्वादिगुणविशिष्ट रोगिणि वर्त्तमानो व्रणः सुसाध्यः । यः—

वृत्तदीर्घादि विशेषणविशिष्टः सोऽपि सुसाध्यः रोगस्य मृदुत्वाद्
 इत्यर्थः ।

तथा ^१स्फिक्पायुऽमेढ्रोष्ठ-पृष्ठाऽन्तर्वक्त्रगण्डजः ॥ १४ ॥
 कृच्छ्रसाध्योऽत्तिदशन-नासिकापाङ्गनाभिषु ।
 सेवनी-जठर-श्रोत्र-पार्श्वकक्षा-स्तनेषु च ॥ १५ ॥
 फेनपूयानिलवहः शल्यवानूर्ध्वनिर्वमी ।
 भगन्दरोऽन्तर्वदनस्तथा कट्यस्थिसंश्रियः ॥ १६ ॥
 कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
 व्रणाः 'कृच्छ्रेण सिद्ध्यन्ति' येषां च स्युर्व्रणे व्रणाः ॥ १७ ॥
 'नैव सिद्ध्यन्ति' वीसर्प-ज्वराऽस्तीसार-कासिनाम् ।
 पिपासूनामनिद्राणां श्वासिनामविपाकिनाम् ॥ १८ ॥
 भिन्ने शिरः कपाले वा मस्तुलङ्गस्य दर्शने ।
 साध्यानामप्यसाध्यता—
 स्नायुक्लेदात्सिराच्छेदाद्वाग्भीर्यात्कृमिभक्षणात् ॥ १९ ॥
 अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविपत्वादतर्कितात् ।
 मिथ्याबन्धादतिस्नेहाद्रौक्ष्याद्रोमातिघट्टनात् ॥ २० ॥
 क्षोभादशुद्धकोष्ठत्वात्सौहित्यादतिकर्शनात् ।
 मद्यपानाद्दिवास्वापाद् व्यवायाद्रात्रिजागरात् ॥ २१ ॥
 व्रणो मिथ्योपचाराच्च 'नैव साध्योऽपि' रोहति ।
 कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ २२ ॥
 स्थिराश्चिपिटिकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ।
 अथाऽत्र 'शोफावस्थायां' यथासन्नं ^२विशोधनम् ॥ २३ ॥

१. स्फिगादिजः-व्रणः, तथा = सुसाध्यः, मांसलादिगुणवत्वा-
 त्स्थानानाम् ।

२. आसन्नम् = असत्तिमनतिक्रम्य यथासन्नम्—भावे क्तः,

योज्यं, शोफो हि शुद्धानां व्रणश्चाशु प्रशाम्यति ।
 कुर्याच्छीतोपचारं च 'शोफावस्थस्य' सन्ततम् ॥ २४ ॥
 दोषाग्निरग्निवत्तेन ^१प्रयाति सहसा शमम् ।
 शोफे व्रणे च कठिने विवर्णे वेदनान्विते ॥ २५ ॥
 विषयुक्ते विशेषेण ^२जलौकाद्यैर्हरदसृक् ।
 दुष्टास्त्रेऽपगते सद्यः शोफ-राग-रूजां शमः ॥ २६ ॥
 हते हते च रुधिरे सुशीतैः स्पर्शवीर्ययोः ।
 सुश्लक्ष्णैस्तदहः पिष्टैः क्षीरेक्षुस्वरसद्रवैः ॥ २७ ॥
 शतधौतघृतोपेतैर्मुद्गरन्यैरशोषिभिः ।
 प्रतिलोमं हितो लेपः सेकाभ्यङ्गाश्च तत्कृताः ॥ २८ ॥
 न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थ-प्लक्ष्वेतसवलकलैः ।
 प्रदेहो भूरिसर्पिभिः शोफनिर्वापणः परम् ॥ २९ ॥
 वातोल्बणानां स्तब्धानां कठिनानां महारूजाम् ।
 स्नुतासृजां च शोफानां व्रणानामपि चेदशाम् ॥ ३० ॥
 आनूपवेसवाराद्यैः स्वेदः ^३सोमास्तिलाः पुनः ।
 शृष्टा निर्वापिताः क्षीरे तत्पिष्टा दाहरुग्धराः ^४ ॥ ३१ ॥

विशोधनम् = उपरिभागे व्रणे सति शिरोविरेचनम्, मध्यभागे-
 वमनम्—अधोभागे विरेचनम्, 'जघ्रुनाभी विभाजके' ।

१. तेन = शीतोपचारेण ।

२. भिषग् वाताऽन्वितं रक्तं, विषाणेन विनिर्हरेत् । पित्तान्वितं
 जलौकाभिः कफान्वितमलाबुभिः । च. चि. अ० २१।६९ ।

३. उमया = अतस्य; ताहिताः सोमाः । ४. दाह-रूजौ कर्म-
 भूतौ हरन्तीति-दाह-रूग्-हराः (हरतेरनुधमनेऽच्) ।

स्थिरान् मन्दरुजः शोफान् स्नेहैर्वातकफापहैः ।
 अभ्यज्य स्वेदयित्वा च 'वेणुनाड्या' शनैः शनैः ॥ ३२ ॥
 विम्लापनार्थं मृद्धीयात् तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ।
 यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३३ ॥
 विलीयते स चेन्नैवं ततस्तमुपनाहयेत् ।
 अविदग्धस्तथा शान्तिं 'विदग्धः' पाकमश्नुते ॥ ३४ ॥
 सकोलतिलबल्लोमा दध्यम्ला सक्तुपिण्डिका ।
 सकिण्वकुष्ठलवणा कोष्णा शस्तोपनाहने ॥ ३५ ॥
 सुपक्वे पिण्डिते शोफे पीडनैरुपपीडिते ।
 दारणं दारणार्हस्य सुकुमारस्य चेप्यते ॥ ३६ ॥
 गुग्गुल्वतसिगोदन्त-स्वर्णक्षीरी कपोतविट् ।
 क्षारौषधानि क्षाराश्च पक्कशोफविदारणम् ॥ ३७ ॥
 पूयगर्भानणुद्वारान् सोत्सङ्गान्मर्मगानपि ।
 निःस्नेहैः पीडनद्रव्यैः समन्तात्प्रतिपीडयेत् ॥ ३८ ॥
 शुष्यन्तं समुपेक्षेत प्रलेपं पीडनं प्रति ।
 न मुखे चैनमालिम्पेत् तथा दोषः प्रसिच्यते ॥ ३९ ॥
 कलाययवगोधूममाषमुद्गहरेणवः ।
 द्रव्याणां पिच्छिलानां च त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ॥ ४० ॥
 सप्तसु क्षालनाद्येषु सुरसारग्वधादिकौ ।
 भृशं दुष्टे व्रणे योज्यौ मेहकुष्ठव्रणेषु च ॥ ४१ ॥
 अथवा क्षालनं क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः ।
 अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्गवः ॥ ४२ ॥
 पटोलीतिलयष्ट्याङ्ग-त्रिवृद्गन्तीनिशाद्वयम् ।

निम्बपत्राणि चालेपः^१ सपटुर्व्रणशोधनः ॥ ४३ ॥
 व्रणान् विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान् सन्धिर्मर्मगान् ।
 कृतया त्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ४४ ॥
 वाताभिभूतान् सास्त्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
 यवाज्यभूर्जमदन-श्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ४५ ॥
 निर्वापयेद् भृशं शीतैः पित्तरक्तविषोत्त्वणान् ।
 शुष्कारूपमांसे गर्भरीरे व्रणे उत्सादनं हितम् ॥ ४६ ॥
 न्यग्रोधपद्मकादिभ्यामश्वगन्धाबलातिलैः ।
 अद्यान्मांसादमांसानि विधिनोपहितानि च ॥ ४७ ॥
 मांसं मांसादमांसेन^२ वर्धते शुद्धचेतसः ।
 उत्सन्नमृधुमांसानां व्रणानामवसादनम् ॥ ४८ ॥
 जातीमुकुल-कासीस-मनोह्लाऽऽल-पुराऽग्निकैः ।
 उत्सन्नमांसान् कठिनान् कण्डूयुक्तांश्चिरोत्थितान् ॥ ४९ ॥
 व्रणान्सुदुःखशोभ्यांश्च योजयेत्क्षारकर्मणा ।
 खवन्तोऽश्मरिजा मूत्रं ये चान्ये रक्तवाहिनः ॥ ५० ॥
 छिन्नाश्च सन्धयो येषां यथोक्तैर्ये च शोधनैः ।
 शोध्यमाना न शुद्ध्यन्ति शोभ्याः स्युस्तेऽग्निकर्मणा ॥ ५१ ॥
 शुद्धानां रोपणं योज्यमुत्सादाय यदीरितम् ।
 अश्वगन्धारुहारोघ्नं कट्फलं मधुयष्टिका ॥ ५२ ॥

१. सपटुः = सलवणः, (प्राधान्यात्सैन्धवो ग्राह्यः) ।

२. मांसमदन्ति ये प्राणिनस्ते मांसादास्तैषां मांसेन मांसं वर्द्धते कस्य ? शुद्धं = तन्मांसमक्षणे घृणारहितं (सरुचि) चेतो = मनो यस्य तस्य, न त्वरुचिवतः ।

समङ्गाधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ।
 अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ॥ ५३ ॥
 कल्कं संरोहणं कुर्यात् तिलानां मधुकान्वितम् ।
 स्निग्धोष्णतिक्तमधुरकषायत्वैः स सर्वजित् ॥ ५४ ॥
 स क्षौद्रनिम्बपत्राभ्यां युक्तः संशोधनं परम् ।
 पूर्वाभ्यां सर्पिषा चासौ युक्तः स्यादाशुरोपणः ॥ ५५ ॥
 तिलवद्यवकल्कं तु केचिदिच्छन्ति तद्भिदः ।
 सास्रवित्तविषागन्तु-गम्भीरान्सोष्मणो व्रणान् ॥ ५६ ॥
 क्षीरोपणभैषज्य-श्रुतेनाऽऽज्येन रोपयेत् ।
 रोपणौषधसिद्धेन तैलेन कफवातजान् ॥ ५७ ॥
 'काच्छी रोध्राऽभया-सर्ज-सिन्दूराऽञ्जनतुत्थकम् ।
 चूर्णितं तैलमदनैर्युक्तं 'रोपणमुत्तमम् ॥ ५८ ॥
 समानां स्थिरमांसानां त्वक्स्थानां चूर्णं ईष्यते ।
 ककुभोदुम्बराश्वत्थ-जम्बूकट्फलरोध्रजैः ॥ ५९ ॥
 त्वक्चमाशु निगृह्णन्ति त्वक्चूर्णेश्चूर्णिता व्रणाः ।
 लाक्षाभनोद्धामजिष्ठा-हरितालनिशाद्वयैः ॥ ६० ॥
 प्रलेपः सघृतक्षौद्र 'स्वग्विशुद्धिकरः' परम् ।
 कालीयक-लताऽऽम्रास्थि-हेमकालारसोत्तमैः ॥ ६१ ॥
 लेपः सगोमयरसः 'सवर्णकरणः' परम् ।
 दग्धो वारणदन्तोऽन्तर्धूमं तैलं रसाञ्जनम् ॥ ६२ ॥
 'रोमसञ्जनो' लेपस्तद्वत्तैलपरिप्लुता ।
 चतुष्पाञ्चखरोमास्थि-त्वक्शृङ्गखुरजा मषी ॥ ६३ ॥

१. काच्छी-सौराष्ट्रीमृत् ।

व्रणिनः 'शस्त्रकर्मोक्तं' पथ्यापथ्यान्नमादिशेत् ।
 द्वे पञ्चमूले, वर्गश्च वातघ्नो, वातिले हितः ॥ ६४ ॥
 न्यग्रोधपद्मकाद्यौ तु तद्वत्पित्तप्रदूषिते, ।
 भारग्वधादिः श्लेष्मघ्नः कफे, मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ६५ ॥
 एभिः प्रक्षालनाऽऽलेपघृततैल-रसक्रियाः ।
 चूर्णो वर्तिश्च संयोज्या व्रणे सप्त यथायथम् ॥ ६६ ॥
 जातीनिम्ब-पटोलपत्र-
 कटुका-दार्वा^१निशा-सारिवा-
 मज्जिष्ठाऽभय^१सिक्थ-तुल्य-
 -मधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः ।
 सर्पिः साध्यमनेन सूक्ष्म-
 वदना मर्माश्रिताः क्लेदिनो
 गम्भीराः सरुजो व्रणाः सग-
 तयः शुद्ध्यन्ति रोहन्ति च ॥ ६७ ॥
 इत्युत्तरस्थाने षड्विंशोऽध्यायः ।

षड्विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सद्यो व्रणप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'सद्योव्रणा ये सहसा सम्भवन्त्यभिघाततः ।
 अनन्तरपि तैरङ्गमुच्यते जुष्टमष्टधा ॥ १ ॥

१. अभयम् = उशीरम् । इति ।

घृष्टाऽवकृत्त-विच्छिन्न-प्रविलम्बित-पातितम् ।
 विद्धं भिन्नं विदलितम् ऋतत्र 'घृष्टं' लसीकया^१ ॥ २ ॥
 रक्तलेशेन वा युक्तं, सप्लोषं च्छेदनात्^२ स्रवेत् ।
 अवगाढं ततः कृत्तं, 'विच्छिन्नं' स्यात्ततोऽपि च ॥ ३ ॥
 'प्रविलम्बित' सशेषेऽस्थिन्, पातितं पतितं तनोः^३ ।
 सूक्ष्मास्यशल्यविद्धं तु 'विद्धं'^४ कोष्ठविवर्जितम् ॥ ४ ॥
 भिन्नमन्यद् विदलितं^५ मज्जरक्तपरिप्लुतम् ।
 प्रहारपीडनोत्पेपात्सहास्थना पृथुतां गतम् ॥ ५ ॥
 सद्यः सद्योव्रणं सिञ्जेदथ यष्ट्याह्वसर्पिषा ।
 तीव्रव्यथं कवोष्णेन बलातैलेन वा पुनः ॥ ६ ॥
 क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्कालं विस्तृतस्य च ।
 कपायशीतमधुरस्निग्धा लेपादयो हिताः ॥ ७ ॥
 सद्योव्रणेष्वायतेषु सन्धानार्थं विशेषतः ।
 मधुसर्पिश्च युञ्जीत पित्तघ्नीश्च हिमाः क्रियाः ॥ ८ ॥
 ससंरम्भेषु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
 उपवासो हितं भुक्तं प्रततं रक्तमोक्षणम् ॥ ९ ॥
 घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।

१. लसीकया-रक्तपित्तेन वा युक्तं स्रवेत् तत् घृष्टम् । घृषु
 सङ्घर्षे । २. यत् छेदनात् सप्लोषं स्रवेत् तच्छिन्नमित्यर्थः । छिदिर
 द्वैधीकरणे ततः = छिन्नाद् अवगाढं = गम्भीरं कृत्तं । कृती-छेदने ।

३. तनोः—शरीरात् ।

४. अन्यद्=कोष्ठे विद्धम्-भिन्नमित्युच्यते । भिदिरु विदारणे ।

५. दलविशरणे, (अपि दलति वज्रस्य हृदयम्)

तयोर्हृत्पं स्रवत्यस्त्रं पाकस्तेनाशु जायते ॥ १० ॥
 अत्यर्थमस्त्रं स्रवति प्रायशोऽन्यत्र विक्षते ।
 ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥ ११ ॥
 स्नेहपानपरीपेकस्वेदलेपोपनाहनम् ।
 स्नेहवस्ति च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधितम् ॥ १२ ॥
 इति 'साम्राहिकः' प्रोक्तः सद्योव्रणहितो विधिः ।
 सप्ताहाद्गतवेगे तु ऋपूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥ १३ ॥
 प्रायः सामान्यकर्मदं वक्ष्यते तु पृथक्पृथक् ।
 घृष्टे रुजं निगृह्याशु व्रणे चूर्णानि योजयेत् ॥ १४ ॥
 कल्कादीन्यवकृत्ते तु विच्छिन्नप्रविलम्बिनोः ।
 सीवनं विधिनोक्तेन बन्धनं चानु पीडनम् ॥ १५ ॥
 असाध्यं स्फुटितं नेत्रमदीर्णं लम्बते तु यत् ।
 सन्निवेश्य यथास्थानमग्न्याविद्धसिरं भिषक् ॥ १६ ॥
 पीडयेत् पाणिना पद्मपलाशान्तरितेन तत् ।
 ततोऽस्य सेचने नस्ये तर्पणे च हितं हविः ॥ १७ ॥
 विषकमाजं, यष्ट्याह्व-जीवकर्षभकोत्पलैः ।
 सपयस्कैः परं तद्धि सर्वनेत्राभिघातजित् ॥ १८ ॥
 गलपीडावसन्नेऽक्षिण वमनोत्क्लेशनक्षवाः ।
 प्राणायामोऽथवा कार्यः क्रिया च क्षतनेत्रवत् ॥ १९ ॥
 कर्णे स्थानाच्छ्रुते स्यूते स्रोतस्तैलेन पूरयेत् ।
 कृकाटिकायां च्छिन्नायां निर्गच्छत्यपि मारुते ॥ २० ॥
 समं निवेश्य बध्नीयात् स्यूत्वा शीघ्रं निरन्तरम् ।
 आजेन सर्पिषा चाऽत्र परिषेकः प्रशस्यते ॥ २१ ॥

उत्तानोऽञ्जानि भुञ्जीत शयीत च सुयन्त्रितः ।
 घातं शाखासु तिर्यक्स्थं गात्रे सम्यङ्निवेशिते ॥ २२ ॥
 स्यूत्वा 'वेल्लितबन्धेन' बध्नीयाद् घनवाससा ।
 चर्मणा 'गोष्फणाबन्धः' कार्यश्चासङ्गते व्रणे ॥ २३ ॥
 पादौ विलम्बिमुष्कस्य प्रोक्ष्य नेत्रे च वारिणा ।
 प्रवेश्य वृषणौ सीव्येत् सेवन्या तुन्नसंज्ञया ॥ २४ ॥
 कार्यश्च 'गोष्फणाबन्धः' कट्याभावेश्य पट्टकम् ।
 स्नेहसेकं न कुर्वीत तत्र क्लिद्यति हि व्रणः ॥ २५ ॥
 कालानुसार्यगुर्वेला-जाती-चन्दन-पर्पटैः ।
 शिलादार्यमृतातुल्यैः सिद्धं तैलं च रोपणम् ॥ २६ ॥
 छिन्नां निःशेषतः शाखां दग्ध्वा तैलेन युक्तितः ।
 बध्नीयात् 'कोशबन्धेन' ततो व्रणवदाचरेत् ॥ २७ ॥
 कार्या शल्याहते विद्धे भङ्गाद्विदलिते क्रिया ।
 शिरसोऽपहृते शल्ये 'बालवर्ति' प्रवेशयेत् ॥ २८ ॥
 मस्तुलुङ्गस्रुते क्रुद्धो हन्यादेनं चलोऽन्यथा^१ ।
 व्रणे रोहति चैकैकं शनैरपनयेत्कचम् ॥ २९ ॥
 मस्तुलुङ्गस्रुतो खादेन्मस्तिष्कानन्यजीवजान् ।
 शल्ये हतेऽङ्गादन्यस्मात्स्नेहवर्ति निधापयेत् ॥ ३० ॥
 दूरावगाढाः सूक्ष्मास्या ये व्रणाः स्रुतशोणिताः ।
 सेचयेच्चक्रतैलेन सूक्ष्मनेत्रार्पितेन तान् ॥ ३१ ॥

१. अन्यथा = बालवर्त्यप्रवेशे सति मस्तुलुङ्गे = मस्तिष्कस्नेहे
 स्रुते सति कुपितः-चलः = वातः—एनं = व्रणिनं हन्यादिति सम्बन्धः ।

२. चक्रस्य = तैल-यन्त्रस्य तैलं = स्नेहश्चक्रतैलम्, चक्रनिष्कथितं

‘भिन्ने कोष्ठे’ऽसृजा पूर्णे मूर्च्छाहृत्पाश्ववेदनाः ।
 ज्वरो दाहस्तृडाध्मानं भक्तस्यानभिनन्दनम् ॥ ३२ ॥
 सङ्को विष्मूत्रमरुतां श्वासः स्वेदोऽक्षिरक्तता ।
 लोहगन्धित्वमास्यस्य स्याद् गात्रे च विगन्धता ॥ ३३ ॥
 ‘आमाशयस्थे’ रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
 आध्मानेनाऽतिमात्रेण शूलेन च विशस्यते ॥ ३४ ॥
 ‘पक्काशयस्थे’ रुधिरे सशूलं गौरवं भवेत् ।
 नाभेरधस्ताच्छीतत्वं खेभ्यो रक्तस्य चागमः ॥ ३५ ॥
 ‘अभिक्षोऽप्याशयः’ सूक्ष्मैः स्रोतोभिरभिपूर्यते ।
 असृजा स्यन्दमानेन पार्श्वे मूत्रेण बस्तिवत् ॥ ३६ ॥
 तत्राऽन्तर्लोहितं शीतपादोच्छ्वासकराननम् ।
 रक्ताक्षं पाण्डुवदनमानद्धं च ‘विवर्जयेत्’ ॥ ३७ ॥

तैलं चक्रतैलम् , चक्रनिःसृतं तैलं चक्रतैलम् , चक्रसंक्रातं तैलं चक्रतैलम् । (शाकपार्थिवादिः) पुराणचक्रकाष्ठं खण्डशश्छित्त्वा जले तैलविधिना कथित्वा निःसृतं तैलमित्यर्थः । अतीव गुणयुतं तैलमिदम् , पुराणत्वात् , संयोगमाहात्म्यात् , संस्काराऽनुवर्तनाच्च । यथाहि—पुराण-घृत-तैलादीनां व्रणरोपकत्वं न तथा-नूतनानाम् । शोधनार्थन्तु—तत्कालनिःसृतं ग्राह्यमिति विवेकः । नूतनस्य सरत्वात् । चक्रस्य = चक्रमर्दस्य तैलं ‘चक्रतैलं’ मित्यपि सुसङ्गतम् , चक्रमर्दनस्य व्रणरोपकत्वात् , लेपप्रधानत्वात् , तैलञ्च कल्कीकृत्य तैलविधिना साधनीयम् । (नामैकदेशे नामग्रहणम्) तेन सूक्ष्मनेत्रा-पित्तेन = सूक्ष्मनलिका- (पिचकारी) यन्त्रापित्तेन तान् सेचयेदिति सम्बन्धः ।

'आमाशयस्थे' वमनं हितं^१ पक्वाशयाश्रये ।
 विरेचनं निरूहं च निःस्नेहोष्णैर्विशोधनैः ॥ ३८ ॥
 यवकोलकुलत्थानां रसैः स्नेहविवर्जितैः ।
 भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ ३९ ॥
 अतिनिःस्रुतरक्तस्तु 'भिन्नकोष्ठः' पिबेदसृक् ।
 'क्लिन्नभिन्नान्त्रभेदेन कोष्ठभेदो 'द्विधा' स्मृतः ॥ ४० ॥
 मूर्छादयोऽल्पाः प्रथमे, द्वितीये त्वतिबाधकाः ।
 'क्लिन्नान्त्रः संशयी देही भिन्नान्त्रो' नैव जीवति ॥ ४१ ॥
 यथास्वं मार्गमापन्ना यस्य विष्मूत्रमारुताः ।
 व्युपद्रवः स 'भिन्नेऽपि कोष्ठे' जीवत्यसंशयम् ॥ ४२ ॥
 अभिन्नमन्त्रं निष्क्रान्तं प्रवेश्यं न त्वतोऽन्यथा ।
 उत्पिङ्गिलशिरोग्रस्तं तदप्येके वदन्ति तु ॥ ४३ ॥
 प्रक्षाल्य पयसा दिग्धं तृणशोणितपांसुभिः ।
 प्रवेशयेत्क्लृप्तनखो^३ घृतेनाक्तं शनैः शनैः ॥ ४४ ॥
 क्षीरेणार्द्रकृतं शुष्कं भूरिसर्पिःपरिप्लुतम् ।
 अङ्गुल्या प्रमृशेत्कण्ठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥ ४५ ॥
 तथान्त्राणि विशन्त्यन्तस्तत्कालं पीडयन्ति च ।
 व्रणसौक्ष्म्याद्बहुत्वाद्वा कोष्ठमन्त्रमनाविशत् ॥ ४६ ॥

१. हितमित्यस्य त्रिभिर्वाक्यैरन्वयः ।

२. क्लिन्नम् = आर्द्रं, भिन्नं = विदीर्णं अन्त्रं = पुरीतत्-यस्य
 कोष्ठस्य देहिनो वा सः क्लिन्नाऽन्त्रः भिन्नान्त्रश्च । (द्वन्द्वान्ते श्रूय-
 मार्णं पदं प्रत्ययेमभिसम्बध्यते) तयोर्भेदेन-द्विधा-'भिन्नकोष्ठः'
 कोष्ठभेदश्च । ३. क्लृप्तनखः = छिन्ननखः ।

तत्प्रमाणेन जठरं 'पाटयित्वा' प्रवेशयेत् ।
 यथास्थामं स्थिते सम्यगन्त्रे सीव्येदनु व्रणम् ॥ ४७ ॥
 स्थानादपेतमादत्ते जीवितं कुपितं च तत् ।
 वेष्टयित्वाऽनु पट्टेन घृतेन परिषेचयेत् ॥ ४८ ॥
 पाययेत्तं ततः कोष्णं ^१चित्रातैलयुतं पयः ।
 मृदुक्रियार्थं शकृतो वायोश्चाधः प्रवृत्तये ॥ ४९ ॥
 अनुवर्तेत वर्षं च यथोक्तां व्रणयन्त्रणाम् ।
 उदरान्मेदसो वर्ति निर्गतां भस्मना मृदा ॥ ५० ॥
 अवकीर्य कषायैर्वा श्लक्ष्णैर्मलैस्ततः समम् ।
 दृढं बद्ध्वा च सूत्रेण वर्धयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५१ ॥
 तीक्ष्णेनाग्निप्रतप्तेन शस्त्रेण सकृदेव तु ।
 स्यादन्यथा रुगाटोपो मृत्युर्वा छिद्यमानया ॥ ५२ ॥
 सक्षौद्रे च व्रणे बद्धे सुजीर्णेऽन्ने घृतं पिबेत् ।
 क्षीरं वा शर्कराचित्रालाक्षागोक्षुरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥
 रुग्दाहजित्सयष्ट्याह्वैः परं पूर्वोदितो विधिः ।
 मेदोग्न्ययुदितं तत्र तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५४ ॥
 तालीसं पद्मकं मांसीहरेण्वगुरुचन्दनम् ।
 हरिद्रे पद्मबीजानि सोशीरं मधुकं च तैः ॥ ५५ ॥
 पक्वं सद्योव्रणेषूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ।
 गूढप्रहाराभिहते पतिते विषमोच्चकैः ॥ ५६ ॥
 कार्यं वातास्रजित्स्मिर्मर्दनाभ्यञ्जनादिकम् ।

१. अत्र चित्रा = रक्तैण्डः, तस्यैव योग्यत्वात् ।

विशिलष्टदेहं मथितं क्षीणं मर्माहताहतम्^१ ।
 वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाशिनम् ॥ ५७ ॥
 इत्युत्तरस्थाने षड्विंशोऽध्यायः ।

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भङ्गप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'पातघातादि'^२भिर्द्विधा^३ भङ्गोऽस्थनां सन्ध्यसन्धितः ।
^४प्रसारणाकुञ्चनयोरशक्तिः सन्धिमुक्तता ॥ १ ॥
 इतरस्मिन्^५ भृशं शोफः सर्वावस्थास्वतिव्यथा ।
 अशक्तिश्चेष्टितेऽल्पेऽपि पीड्यमाने सशब्दता ॥ २ ॥
 समासादिति भङ्गस्य लक्षणं, बहुधा तु तत् ।
 भिद्यते भङ्गभेदेन, तस्य सर्वस्य साधनम् ॥ ३ ॥
 यथा स्यादुपयोगाय तथा तदुपदेक्ष्यते ।

१. इतश्च—आहतश्च हताऽऽहतस्तम् अत एव विशिलष्टदेहादि-
 कम् । इति ।

२. आदिशब्दात्—'बध-बन्ध-प्रपतनाद्-दंष्ट्रा-दन्त—नख—
 क्षतात् । आगन्तवो व्रणास्तद्वद् विषस्पर्शाऽग्निशस्त्रजाः, च० चि०
 अ० २५।७ ।

३. सन्धिभङ्गः, असन्धिभङ्गश्चेति—अस्थनां भङ्गो द्विधा ।

४. अत्र पूर्वस्मिन् = सन्धिभङ्गे-इति-आक्षिप्यते-उत्तरत्र-इतर-
 स्मिन् नित्युक्तेः । ५. इतरस्मिन् = असन्धिभङ्गे ।

प्राज्याणुदारि यस्वस्थि स्पर्शं शब्दं करोति यत् ॥ ४ ॥
 यत्रास्थिलेशः प्रविशेन्मध्यमस्थनो विदारितः ।
 भग्नं यच्चाभिघातेन किञ्चिदेवावशेषितम् ॥ ५ ॥
 उन्नम्यमानं क्षतवद्यच्च मज्जनि मज्जति ।
 'तद्दुःसाध्यं' कृशाशक्त-वातलाऽल्पाशिनामपि ॥ ६ ॥
 'भिन्नं कपालं यत्' कट्यां सन्धिमुक्तं च्युतं च यत् ।
 जघनं प्रति पिष्टं च भग्नं यत्तद्विवर्जयेत् ॥ ७ ॥
 असंश्लिष्टकपालं च ललाटं चूर्णितं तथा ।
 यच्च भग्नं भवेच्छङ्खुशिरःपृष्ठस्तनान्तरे ॥ ८ ॥
 सम्यग्यमितमप्यस्थि दुर्न्यासाद् दुर्निबन्धनात् ।
 संक्षोभादपि यद्वच्छेद्विक्रियां 'तद्विवर्जयेत्' ॥ ९ ॥
 आदितो यच्च दुर्जातमस्थि सन्धिरथापि वा ।
 तरुणास्थीनि भुज्यन्ते भुज्यन्ते नलकानि तु ॥ १० ॥
 कपालानि विभिद्यन्ते स्फुटन्त्यन्यानि भूयसा ।
 अथावनतमुक्ष्म्यमुन्नतं चावपीडयेत् ॥ ११ ॥
 आञ्छेदतिक्षिप्तमधोगतं चोपरि वर्तयेत् ।
 आञ्छेदोत्पीडनोन्नाम-चर्मसङ्क्षेपबन्धनैः ॥ १२ ॥
 सन्धीन् शरीरगान्सर्वान् चलानप्यचलानपि ।
 हृत्येतैः स्थापनोपायैः सम्यक् संस्थाप्य निश्चलम् ॥ १३ ॥
 पट्टैः प्रभूतसर्पिर्भिर्वेष्टयित्वा सुखैस्ततः ।
 कदम्बोदुम्बराश्वत्थ-सर्जार्जुनपलाशजैः ॥ १४ ॥
 वंशोद्भवैर्वा पृथुभिस्तनुभिः सुनिवेशितः ।
 सुरलक्ष्णैः सुप्रतिस्तम्भैर्वल्कलैः शकलैरपि ॥ १५ ॥

'कुशाह्वयैः' समं बन्धं^१ पट्टस्योपरि योजयेत् ।
 शिथिलेन हि बन्धेन सन्धेः स्थैर्यं न जायते ॥ १६ ॥
 गाढेनातिरुजादाह-पाकश्चयथुसम्भवः ।
 व्यहृत्प्यहादतौ घर्मे सप्ताहान्मोक्षयेद्धिमे ॥ १७ ॥
 साधारणे तु पञ्चाहाद् भङ्गदोषवशेन वा ।
 न्यग्रोधादिकषायेण ततः शीतेन सेचयेत् ॥ १८ ॥
 तं पञ्चमूलपक्वेन पयसा तु सवेदनम् ।
 सुखोष्णं वावचार्यं स्याच्चक्रतलं विजानता ॥ १९ ॥
 विभज्य देशं कालं च वातघ्नौषधसंयुतम् ।
 प्रततं सेकलेपांश्च विदध्याद् भृशशीतलान् ॥ २० ॥
 २गृष्टिच्चीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ।
 प्रातः प्रातः पिबेद्भग्नः शीतलं लाक्षया युतम् ॥ २१ ॥
 सघ्नस्य तु भग्नस्य व्रणो मधुघृतोत्तरैः ।
 कषायैः प्रतिसार्योऽथ शेषो भङ्गोदितः क्रमः ॥ २२ ॥
 लम्बानि व्रणमांसानि प्रलिप्य मधुसर्पिषा ।
 सन्दधीत व्रणान् वैद्यो बन्धनैश्चोपपादयेत् ॥ २३ ॥
 तान्समान्सुस्थिताब्जात्वा फलिनीरोध्रकट्फलैः ।
 सभङ्गाधातकीयुक्तैश्चूर्णितैरवचूर्णयेत् ॥ २४ ॥
 धातकीरोध्रचूर्णैर्वा रोहन्त्याशु तथा व्रणाः ।
 इति भङ्ग उपक्रान्तः स्थिरधातोर्ऋतौ हिमे ॥ २५ ॥
 मांसलस्याल्पदोषस्य सुसाध्यो दारुणोऽन्यथा ।

१. बन्धप्रकाराः सूत्रस्थाने-२९ अध्याये २९, दौ द्रष्टव्याः ।

२. गृष्टिः = सकृत्प्रसूता ।

पूर्वमध्यान्तवयसामेकद्वित्रिगुणैः क्रमात् ॥ २६ ॥
 मासैः स्थैर्यं भवेत्सन्धेर्यथोक्तं भजतो विधिम् ।
 कटीजङ्घोरुभग्नानां ^१कपाटशयनं हितम् ॥ २७ ॥
 यन्त्रणार्थं तथा कीलाः पञ्च कार्या निबन्धनाः ।
 जङ्घोर्वोः पार्श्वयोर्द्वौ द्वौ तल एकश्च कीलकः ॥ २८ ॥
 श्रोण्यां वा पृष्ठवंशे वा वत्तस्यक्तकयोस्तथा ।
 विमोक्षे भग्नसन्धीनां विधिमेवं समाचरेत् ॥ २९ ॥
 सन्धींश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धान्स्विन्नान् मृदूकृतान् ।
 उक्तैर्विधानैर्बुद्ध्या च यथास्वं स्थानमानयेत् ॥ ३० ॥
 'असन्धिभग्ने' रूढे तु विषमोलवणसाधिते ।
 आपोथ्य भङ्गं यमयेत्ततो भग्नवदाचरेत् ॥ ३१ ॥
 'भग्नं नैति यथा पाकं' प्रययेत् तथा भिषक् ।
 पक्वमांससिरास्त्रायुः सन्धिः श्लेष्मं न गच्छति ॥ ३२ ॥
 वातव्यधिविनिर्दिष्टान् स्नेहान् भग्नस्य योजयेत् ।
 चतुःप्रयोगान् ^२बल्यांश्च वस्तिकर्म च शीलयेत् ॥ ३३ ॥
 शाक्याज्यरसदुग्धाद्यैः पौष्टिकैरविदाहिभिः ।
 मात्रयोपचरेद्भग्नं सन्धिसंश्लेषकारिभिः ॥ ३४ ॥
 ग्लानिर्न शस्यते तस्य, सन्धिविश्लेशकृद्धि सा ।
 लवणं कटुकं क्षारमग्लं मैथुनमातपम् ।
 ध्यायामं च न सेवेत् भग्नो रूक्षं च भोजनम् ॥ ३५ ॥

१. कपाटे = फलके शयनमित्यर्थः ।

२. चत्वारः प्रयोगाः पान-नयाऽभ्यङ्गाऽनुवासनरूपा येषां ते तान् स्नेहान् ।

कृष्णांस्तिलान् विरजसो दृढवस्त्रबद्धान्
सप्त क्षपा वहति वारिणि वासयेत् ।
संशोषयेदनुदिनं, प्रविसार्य चैतान् ।

क्षीरे तथैव, मधुककथिते च तोये ॥ ३६ ॥
पुनरपि पीतपयस्कांस्तान् पूर्ववदेव शोषितान् बाढम् ।
विगततुषानरजस्कान् संचूर्ण्य सुचूर्णितैर्युञ्ज्यात् ॥ ३७ ॥
नलदबालकलोहितयष्टिका-

नखमिशिष्टलवकुष्ठबलात्रयैः ।

अगुरुचन्दनकुङ्कुमसारिवा-

सरलसर्जरसाऽमरदारुभिः ॥ ३८ ॥

पद्मकादिगणोपेतैस्तिलपिष्टं ततश्च तत् ।
समस्तगन्धभैषज्यसिद्धदुग्धेन पीडयेत् ॥ ३९ ॥

शैलेयरास्नांशुमतीकसेरु-

कलानुसारीनतपत्रोद्भिः ।

सक्षीरशुक्लैः सपयस्कदूर्वै-

स्तैलं पचेत्तन्नलदादिभिश्च ॥ ४० ॥

‘गन्धतैलमिदमु’त्तममस्थि-

स्थैर्यकृज्जयति चाशु विकारान् ।

धातपित्तजनितानतिवीर्यान्

व्यापिनोऽपि ^१विविधैरुपयोगैः ॥ ४१ ॥

इत्युत्तरस्थाने सप्तविंशोऽध्यायः ।

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

‘अथाऽतो ‘भगन्दरप्रतिषेधं’ व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘हस्त्यश्वपृष्ठगमनकठिनोत्कटकासनैः ।

अशोनिदानाभिहितैरपरैश्च निषेवितैः ॥ १ ॥

अनिष्टाऽदृष्टपाकेन ^१सद्यो वा साधुगर्हणैः ।

प्रायेण पिटिकापूर्वो योऽङ्गुले द्व्यङ्गुलेऽपि वा ॥ २ ॥

पायोर्व्रणोऽन्तर्वाह्यो वा दुष्टासृङ्मांसगो भवेत् ।

वस्तिमूत्राशयाभ्याश-गतत्वात्स्यन्दनात्मकः ॥ ३ ॥

भगन्दरः स सर्वश्च दारयत्यक्रियावतः ।

भगवस्तिगुदांस्तेषु दीर्यमाणेषु भूरिभिः ॥ ४ ॥

वातमूत्रशकृच्छुक्रं खैः सूक्ष्मैर्वमति क्रमात् ।

दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरागन्तुः सोऽष्टमः स्मृतः ॥ ५ ॥

अपक्वं पिटिकामाहुः पाकप्राप्तं ‘भगन्दरम्’ ।

गूढमूलां ससंरम्भां रुगाढ्यां रुढकोपिनीम् ॥ ६ ॥

‘भगन्दरकरीं’ विद्यात् पिटिकां न त्वतोऽन्यथा ।

१. अथ सादृश्याद्-भगन्दरः स्मृति-विषयः-इति प्रसङ्गसङ्गतिः ।

२. जन्मान्तरीयेण कर्म-विपाकेन, जेहिकेन वा पापपरोगाः कुष्ठ-भगन्दर-गण्डमालोन्मादादयो भवन्तीत्याह—अनिष्टं = दुःखकारणं यददृष्टं = पूर्वार्जितं पापं तस्य पाकेन = फलदत्वेन कर्मविपाकेनेत्यर्थः । सद्यः = अस्मिन्-जन्मनि, ‘अत्युत्कटैः पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुते’ इति न्यायात् ।

तत्र श्यावारुणा तोदभेदस्फुरणरुक्करी ॥ ७ ॥
 पिटिका मारुतात् पित्तादुष्प्रीवावदुच्छ्रिता ।
 रागिणी तनुरूप्माद्या ज्वरधूमायनान्विता ॥ ८ ॥
 स्थिरा स्निग्धा महामूला पाण्डुः कण्डूमती 'कफात्' ।
 श्यावा ताम्रा सदाहोपा घोररुग् 'वातपित्तजा' ॥ ९ ॥
 पाण्डुरा किञ्चिदाश्यावा कृच्छ्रपाका 'कफानिलात्' ।
 पादाङ्गुष्ठसमा 'सर्वैर्दोषैर्'नानाविधव्यथा ॥ १० ॥
 शूलारोचकतृड्दाह-ज्वरच्छर्दिरुपद्रुता ।
 व्रणतां यान्ति ताः पक्काः प्रमादात् तत्र वातजा ॥ ११ ॥
 दीर्यतेऽणुमुखैश्छिद्रैः 'शतपोनकवत्' क्रमात् ।
 अच्छं स्रवद्भिरास्त्रावमजस्रं फेनसंयुतम् ॥ १२ ॥
 शतपोनकसंज्ञोऽयम् उष्ट्रग्रीवस्तु 'पित्तजः' ।
 बहुपिच्छ्यापरिस्त्रावी 'परिस्त्रावी' 'कफोद्भवः' ॥ १३ ॥
 वातपित्तात् 'परित्तेपी' परिक्षिप्य गुदं गतिः ।
 जायते परितस्तत्र प्राकारपरिखेव च ॥ १४ ॥
 ऋजुर्वातकफादृज्या गुदो गत्या तु दीर्यते ।
 कफपित्ते तु पूर्वोत्थं दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः ॥ १५ ॥
 अशोमूले ततः शोफः कण्डूदाहादिमान् भवेत् ।
 स शीघ्रं पक्वभिन्नोऽस्य क्लेदयन्मूलमर्शसः ॥ १६ ॥
 स्रवत्यजस्रं गतिभिरयम'शो' भगन्दरः' ।
 सर्वजः 'शम्बुकावर्तः' शम्बुकावर्तसन्निभः ॥ १७ ॥
 गतयो दारयन्त्यस्मिन् रुक्वेगैर्दारुणैर्गुदम् ।
 अस्थिलेशोऽभ्यवहतो मांसगृद्धया यदा गुदम् ॥ १८ ॥

क्षिणोति ^१तिर्यङ्निर्गच्छन्नुन्मार्गं क्षततो गतिः ।
स्यात्ततः पूयदीर्णायां मांसकोशेन तत्र च ॥ १९ ॥
जायन्ते कृमयस्तस्य खादन्तः परितो गुदम् ।
विदारयन्ति न चिराद्दुन्मार्गीं क्षतजश्च सः ॥ २० ॥
तेषु रुग्दाहकण्ड्वादीन् विद्याद् व्रणनिषेधतः ।
षट्कृच्छ्रसाधनास्तेषां, ^२निचयक्षतजौ त्यजेत् ॥ २१ ॥
प्रवाहिणीं वर्लीं प्राप्तं सेवनीं वा समाश्रितम् ।
^३अथाऽस्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत् ॥ २२ ॥
शुद्धयसूक्ष्मसुतिसेकाद्यैर्यथा पाकं न गच्छति ।
पाके पुनरुपस्निग्धं स्वेदितं चावगाहतः ॥ २३ ॥
यन्त्रयित्वा र्शसमिव पश्येत्सम्यग्भगन्दरम् ।
अर्वाचीनं पराचीनमन्तर्मुखवहिर्मुखम् ॥ २४ ॥
अथान्तर्मुखमेषित्वा सम्यक् शस्त्रेण पाटयेत् ।
वहिर्मुखं च निःशेषं ततः क्षारेण साधयेत् ॥ २५ ॥
अग्निना वा भिषक् साधु क्षारेणैवोष्कन्धरम् ।
नाडीरेकान्तराः कृत्वा पाटयेच्छतपोनकम् ॥ २६ ॥
तासु रुढासु शेषाश्च मृत्युदीर्णं गुदेऽन्यथा ।
परिक्षेपिणि चाप्येवं नाड्युक्तैः क्षारसूत्रकैः ॥ २७ ॥

१. क्षणोति स्तनादिः क्षिणोति स्वादिश्च समानोऽर्थः ।

२. तेषां भगन्दराणां मध्ये एकदोषजास्त्रयः द्विदोषजास्त्रयः-इति
षट् कृच्छ्रं = कष्टं साधनम् = उपक्रमो येषान्ते ।

३. शुद्धया, असूक्ष्मसुत्या सेकेन, लेपेन वा अस्य = भगन्दरिणः
पिटिकामेव यत्नात्तथा—उपाचरेद् यथा पाकं न गच्छति-इत्यन्वयः ।

अशोभगन्दरे पूर्वमशांसि प्रतिसाधयेत् ।
 त्यक्त्वोपचर्यः 'क्षतजः' शल्यं शल्यवतस्ततः ॥ २८ ॥
 आहरेच्च तथा दद्यात् कृमिघ्नं लेपभोजनम् ।
 पिण्डनाढ्यादयः स्वेदाः सुस्निग्धा रुजि पूजिताः ॥ २९ ॥
 सर्वत्र च बहुच्छिद्रे छेदानालोच्य योजयेत् ।
 गोतीर्थ-सर्वतोभद्र-दललाङ्गल-लाङ्गलान् ॥ ३० ॥
 पार्श्वं गतेन शस्त्रेण छेदो 'गोतीर्थको' मतः ।
 सर्वतः 'सर्वतोभद्रः' पार्श्वच्छेदो 'ऽर्धलाङ्गलः' ॥ ३१ ॥
 पार्श्वद्वये 'लाङ्गलकः' ॥ समस्तांश्चाग्निना दहेत् ।
 आस्त्रावमार्गाग्निः शेषान्नैवं विकुरुते पुनः ॥ ३२ ॥
 यतेत कोष्ठशुद्धौ च भिषक् तस्यान्तरान्तरा ।
 लोपो व्रणे विडालास्थि-त्रिफलारसकल्पितम् ॥ ३३ ॥
 ज्योतिष्मती-मलयु-लाङ्गलि-शेलु-पाठा-
 कुम्भाऽग्नि-सर्ज-करवीर-वचा-सुधाऽर्कैः ।
 अभ्यञ्जनाय विपचेत भगन्दराणां
 तैलं वदन्ति परमं हितमेतदेपाम् ॥ ३४ ॥
 मधुक-रोध्र-कणा-त्रुटि-रेणुका-
 द्विरजनी-फलिनी-पटु-सारिवा ।
 कमल-केसर-पद्मक-धातकी-
 मदन-सर्जरसा-भय-रोध्रकाः ॥ ३५ ॥
 सञ्जीवपूरच्छदनैरेभिस्तैलं विपाचितम् ।
 भगन्दराऽपची-कुष्ठ^१-मधुमेह-व्रणापहम् ॥ ३६ ॥

१, मधुमेहव्रणाः = प्रमेहपिटिकाः शराविकाः कच्छपिकादयः

मधुतैलयुता विडङ्गसार-

त्रिफलामागधिकाकणाश्च लीढाः ।

कृमिकुष्ठभगन्दरप्रमेह-

क्षत-नाडीव्रणरोपणा भवन्ति^१ ॥ ३७ ॥

अमृतात्रुटिवेह्वत्सकं

कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।

क्रमवृद्धमिदं मधुदुतं

पिटिकास्थौल्यभगन्दरान् जयेत् ॥ ३८ ॥

मागधिकाऽग्निकलिङ्गविडङ्गै-

र्विल्वधृतैः^१ सवरा-पलषट्कैः ।

गुग्गुलुना सदृशेन समेतैः

क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः ॥ ३९ ॥

गुग्गुलु पञ्चपलं पलिकांशा

मागधिका त्रिफला च पृथक् स्यात् ।

त्वक्नुटिकर्षयुतं मधुलीढं

कुष्ठभगन्दरगुल्मगतिघ्नम् ॥ ४० ॥

शृङ्गबेररजोयुक्तं तदेव च सुभावितम् ।

क्वाथेन दशमूलस्य विशेषाद्वातरोगजित् ॥ ४१ ॥

मधुमेहशब्दः समान्यतः प्रमेहवाची ।

१. औपच्छन्दसिकं वृत्तम् ।

२. बिल्वधृतैः = पलपरिमितैः-मागधिदादिभिः कथंभूतैः त्रिफलापलपट्क सहितैः ।

^१उत्तमाखदिरसारजं रजः

शीलयन्नसनवारिभावितम् ।

हन्ति तुल्यमहिपाख्यमाक्षिकं

कुष्ठमेहपिटिकाभगन्दरम् ॥ ४२ ॥

भगन्दरेष्वेष विशेष उक्तः

शेषाणि तु ^२व्यञ्जनसाधनानि ।

घृणाधिकारात्परिशीलनाच्च

सम्यग्विदित्वौषधिकं विदध्यात् ॥ ४३ ॥

अश्वपृष्ठगमनं चलोरोधं^३

मद्यमैथुनमजीर्णमसात्म्यम् ।

साहसानि विविधानि च

रूढे^४ वत्सरं परिहरेदधिकं वा ॥ ४४ ॥

इत्युत्तरस्थानेऽष्टाविंशोऽध्यायः ।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथात्तो ग्रन्थ्यर्षुद-श्लीपदाऽपचीनाडी-विज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

[अथ ग्रन्थिरोगविज्ञानम् ।]

‘कफप्रधानाः कुर्वन्ति मेदोमांसास्त्रगा मलाः ।

१. उत्तमा = वरा = त्रिफला । २. व्यञ्जनं = प्रकटं साधनम् = उपक्रमो येषां तानि । ३. चलस्य = वातस्य, रोधं = वेगधारणम् । ४. रूढे = रूढेऽपीत्यर्थः । इति ।

वृत्तोन्नतं यं श्वयथुं स ग्रन्थिग्रथनात्स्मृतः ॥ १ ॥
 दोषाऽस्त्र-मांस-मेदोस्थि-सिरा-त्रण-भवा नव ।
 तेऽ तत्र—वातादायाम-तोदभेदान्वितोऽसितः ॥ २ ॥
 स्थानात्स्थानान्तरगतिरकस्माद्धानिवृद्धिमान् ।
 मृदुर्बस्तिरिवानद्धो विभिन्नोऽच्छं स्रवत्यसृक् ॥ ३ ॥
 पित्तात्सदाहः पीताभो रक्तो वा पच्यते द्रुतम् ।
 भिन्नोऽस्त्रमुष्णं स्रवतिऽश्लेष्मणा नीरुजो घनः ॥ ४ ॥
 शीतः सवर्णः कण्डूमान् पक्वः पूयं स्रवेद्धनम् ।
 दोषैर्दुष्टेऽसृजि ग्रन्थिर्भवेन्मूर्च्छत्सु जन्तुषु ॥ ५ ॥
 सिरा मांसं च संश्रित्य सस्त्रापः पित्तलक्षणः ।
 मांसलैर्दूषितं मांसमाहारैर्ग्रन्थिमाहरेत् ॥ ६ ॥
 स्निग्धं महान्तं कठिनं सिरानद्धं कफाकृतिम् ।
 प्रवृद्धं मेदुरैर्मेदोनीतं मांसेऽथवा त्वचि ॥ ७ ॥
 वायुना कुरुते ग्रन्थि भृशं स्निग्धं मृदुं चलम् ।
 श्लेष्मतुल्याकृतिं देहक्षयवृद्धिस्तयोदयम् ॥ ८ ॥
 स विभिन्नो घनं मेदस्ताम्राऽसितसितं स्रवेत् ।
 अस्थि भृङ्गाभिघाताभ्यामुन्नतावनतं तु यत् ॥ ९ ॥
 सोऽस्थिग्रन्थिऽपदातेस्तु सहसाम्भोऽवगह्मनात् ।
 व्यायामाद्वा प्रतान्तस्य सिराजालं सशोणितम् ॥ १० ॥
 वायुः सम्पीड्य सङ्कोच्य वक्रीकृत्य विशोष्य च ।
 निःस्फुरं नीरुजं ग्रन्थिं कुरुते, स 'सिराह्वयः' ॥ ११ ॥
 अरूढे रूढमात्रे वा व्रणे सर्वरसाशिनः ।
 सार्द्धे वा बन्धरहिते गात्रेऽश्माभिहतेऽथवा ॥ १२ ॥

वातास्रमस्रुतं दुष्टं संशोष्य ग्रथितं व्रणम् ।
 कुर्यात्सिदाहः कण्डूमान् , 'व्रणग्रन्थि'रयं स्मृतः ॥ १३ ॥
 साध्या दोषास्रमेदोजा न तु स्थूलखराश्रलाः ।

अथार्बुदरोगविज्ञानम् ।

मर्मकण्ठोदरस्थाश्चर्महस्तु ग्रन्थितोऽर्बुदम् ॥ १४ ॥
 तल्लक्षणं च मेदोन्तैः षोढा दोषादिभिस्तु तत् ।
 प्रायो मेदः कफाढ्यत्वात्स्थिरत्वाच्च न पच्यते ॥ १५ ॥
 सिरास्थं शोणितं दोषः सङ्कोच्यान्तः प्रपीड्य च । •
 पाचयेत् तदानद्धं सास्त्रावं मांसपिण्डितम् ॥ १६ ॥
 मांसाङ्कुरैश्चितं याति वृद्धिं चाशु स्ववेत्ततः ।
 अजस्रं दुष्टरुधिरं भूरि तच्छोणितार्बुदम् ॥ १७ ॥
 तेष्वसृङ्मांसजे वर्ज्यं चत्वार्यन्यानि साधयेत् ।

[अथ श्लीपदरोगविज्ञानम् ।]

प्रस्थिता वङ्गणोर्वादिमधः कायं कफोल्बणाः ॥ १८ ॥
 दोषा मांसाऽस्रगाः पादौ कालेनाश्रित्य कुर्वते ।
 शनैः शनैर्घनं शोफं 'श्लीपदं'^१ तत्प्रचक्षते ॥ १९ ॥
 परिपोटयुतं कृष्णमनिमित्तरुजं खरम् ।
 रूचं च वातात् कृत्वा पित्तात् पीतं दाहज्वरान्वितम् ॥ २० ॥
 कफाद् गुरुस्निग्धमरुक् चितं मांसाङ्कुरैर्बृंहत् ।
 तत्त्यजेद्वत्सरातीतं सुमहत्सुपरिस्तुति ॥ २१ ॥
 पाणि-नासौष्ठ-कर्णेषु वदन्त्येके तु पादवत् ।

१. श्लीपदं = पादवल्मीकम् ।

‘श्लीपदं’ जायते तच्च देशेऽनूपे भृशं नृणाम् ॥ २२ ॥

[अथापचीरोगविज्ञानम् ।]

मेदःस्थाः कण्ठमन्याक्ष-कक्षावङ्गणगा मलाः ।

सवर्णान् कठिनान् स्निग्धान् वार्ताकामलाकृतीन् ॥ २३ ॥

अवगाढान् बहून् गण्डांश्चिरपाकांश्च कुर्वते ।

पच्यन्तेऽल्परुजस्त्वन्ये स्रवन्त्यन्येऽतिकण्डूराः ॥ २४ ॥

नश्यन्त्यन्ये भवन्त्यन्ये दीर्घकालानुबन्धिनः ।

^१गण्डमालाऽपची चेयं दूर्वेव क्षयवृद्धिभाक् ॥ २५ ॥

तां त्यजेत् सज्वर-च्छर्दि-कास-रुक्-शवास-पीनसाम् ^२ ।

[अथ नाडीरोगविज्ञानम् ।]

अभेदात्पक्वशोफस्य व्रणे चापथ्यसेविनः ॥ २६ ॥

अनुप्रविश्य मांसादीन् दूरं पूयोऽभिधावति ।

गतिः सा दूरगमनान्नाडी नाडीव संस्रुते ॥ २७ ॥

नाड्येकानुरन्येषां सैवानेकगतिर्गतिः ।

सा दोषैः पृथगेकस्थैः शल्यहेतुश्च पञ्चमी ॥ २८ ॥

वातात्सरुक्सूक्ष्ममुखी विवर्णा फेनिलोद्धमा ।

स्रवत्यभ्यधिकं रात्रौ कृत्वात्तृड्ज्वरदाहकृत् ॥ २९ ॥

पीतोष्ण-पूति-पूयाऽऽस्रुद् , दिवाऽचातिनिषिञ्चति ।

घनपिच्छिलसंस्त्रावा कण्डूला कठिना कफात् ।

निशि चाऽभ्यधिकक्लेदाऽऽ सवैः सर्वाकृतिं त्यजेत् ॥ ३० ॥

१. पूर्वं गण्डमाला, पाकाऽनन्तरं अपचीत्युच्यते ।

२. पार्श्वरुक्कासपीनसामिति पाठान्तरम् ।

अन्तःस्थितं शल्यमनाहतं तु
 करोति नाडीं, वहते च साऽस्य ।
 फेनानुविद्धं तनुमल्पमुष्णं
 सास्त्रं च पूयं सरुजं च नित्यम्^१ ॥ ३१ ॥
 इत्युत्तरस्थान एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।



त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो ग्रन्थ्यर्बुद-श्लीपदाऽ-
 पचीनाडी-प्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 अथ ग्रन्थिरोगप्रतिषेधः ।

‘ग्रन्थिष्वाग्नेषु कर्तव्या यथास्वं^२ शोफवत् क्रिया ।
 बृहतीचित्रकव्याघ्रीकणासिद्धेन सर्पिषा ॥ १ ॥
 स्नेहयेच्छुद्धिकामं च तीक्ष्णैः शुद्धस्य लेपनम् ।
 संस्वेद्य बहुशो ग्रन्थि विमृदीयात् पुनः पुनः ॥ २ ॥
 एष वाते विशेषेण क्रमः, पित्तास्रजे पुनः ।
 जलौकसौ हिमं सर्वम् ❀ कफजे वातिको विधिः ॥ ३ ॥
 तथाप्यपक्वं छिन्नैः स्थिते रक्तेऽग्निना दहेत् ।
 साध्वशेषं सशेषो हि पुनराप्यायते ध्रुवम् ॥ ४ ॥
 मांसव्रणोद्भवौ ग्रन्थी पाटयेदेवमेव च ।

१. नित्यं वहते—इति सम्बन्धः । इति ।

२. शोफेष्विव शोफवत् ‘तत्र तस्येव’ इति सप्तम्यन्ताद् व्रतिः

कार्यं मेढ्रेभवेऽप्येतत्तप्तः फालादिभिश्च ताम् ॥ ५ ॥

प्रमृद्यात्तिलदिग्धेन छन्नं द्विगुण-वाससा ।

शस्त्रेण पाटयित्वा वा दहेन्मेदसि सूदृष्टे ॥ ६ ॥

सिराग्रन्थौ नवे पेयं तैलं साहचरं तथा ।

उपनाहोऽनिलहरैर्बस्तिकर्म स्त्रिगुण्यधः ॥ ७ ॥

‘अर्बुदे’ ग्रन्थिवत् कुर्याद् यथास्वं सुतरां हितम् ।

अथ श्लीपदरोगप्रतिषेधः ।

श्लीपदेऽनिलजे विध्येत् स्निग्धस्विन्नोपनाहिते ॥ ८ ॥

सिरामुपरि गुल्फस्य द्व्यङ्गुले, पाययेच्च तम् ।

मांससेरण्डजं तैलं गोमूत्रेण समन्वितम् ॥ ९ ॥

जीर्णे जीर्णान्नमशिनयाच्छुण्ठीशृतपयोन्वितम् ।

त्रैवृतं वा पिबेदेवमशान्तावग्निना दहेत् ॥ १० ॥

गुल्फस्याधः सिरामोक्षः पैत्ते सर्वं च पित्तजित् ।

सिरामङ्गुष्ठके विद्ध्वा ‘कफजे’ शीलयेद्यवान् ॥ ११ ॥

सक्षौद्राणि कषायाणि वर्धमानास्तथाभयाः ।

लिम्पेत्सर्षपवार्ताकीमूलाभ्यां धान्ययाथवा ॥ १२ ॥

अथापचीरोगप्रतिषेधः ।

उर्ध्वाधः शोधनं पेयमपच्यां साधितं घृतम् ।

दन्तीद्रवन्तीत्रिवृता-जालिनीदेवबालिभिः ॥ १३ ॥

शीलयेत्कफमेदोघ्नं धूमगण्डूषणावनम् ।

सिरयाऽपहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेण तार्क्ष्यजम्^१ ॥ १४ ॥

ग्रन्थीनपक्वानालिम्पेक्षाकुलीपटुनागरैः ।
 स्विन्नान् लवणपोटल्या कठिनाननु मर्दयेत् ॥ १५ ॥
 शमी-मूलक-शिग्रूणां बीजः सयव-सर्षपैः ।
 लेपः पिष्टोऽम्लतक्रेण ग्रन्थिगण्डविलापनः ॥ १६ ॥
 पाकोन्मुखान् सुतास्रस्य पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ।
 अपक्वानेव वोद्धृत्य क्षाराग्निभ्यामुपाचरेत् ॥ १७ ॥
 'क्षुण्णानि निम्बपत्राणि किलन्नैर्भस्मातकैः सह ।
 शरावसम्पुटे दग्ध्वा सार्धं सिद्धार्थकैः समैः ॥
 एतच्छागाम्बुना^१ पिष्टं गण्डमालाप्रलेपनम् ।
 काकादनीलाङ्गलिका-नलिकोत्तुण्डिकीफलैः ।
 जीमूतबीजकर्कोटी-विशालाकृतवेधनैः ॥ १८ ॥
 पाठान्वितैः पलार्धांशैर्विषकर्षयुतैः पचेत् ।
 प्रस्थं करञ्जतैलस्य निर्गुण्डीस्वरसाढके ॥ १९ ॥
 अनेन माला गण्डानां चिरजा पूयवाहिनी ।
 सिध्यत्यसाध्यकल्पाऽपि^२ पानाऽभ्यञ्जन-नावनैः ॥ २० ॥
 तलं लाङ्गलिकाकन्द-कल्कपादे चतुर्गुणे ।
 निर्गुण्डीस्वरसे पक्वं नस्याद्यैरपक्षीप्रणुत् ॥ २१ ॥
 भद्रश्री-दारु-मरिच-द्विहरिद्रात्रिवृद्धनः ।
 मनःशिलाऽऽल-नलद-विशालाकरवीरकैः ॥ २२ ॥
 गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विषस्यार्धपलेन च ।
 ब्राह्मीरसार्कजक्षीरगोशकृद्रससंयुतम् ॥ २३ ॥

१. छागाम्बुना = छागमूत्रेण ।

२. असाध्यकल्पापि = कष्टसाध्यापीत्यर्थः ।

प्रस्थं सर्षपतैलस्य सिद्धमाशु व्यपोहति ।
 पानाद्यैः शीलितं कुष्ठं दुष्टनाडीघ्रणापचीः ॥ २४ ॥
 वचाहरीतकीलाक्षा-कटुरोहिणिचन्दनैः ।
 तैलं प्रसाधितं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ २५ ॥
 शरपुङ्खोद्भवं मूलं पिष्टं^१ तण्डुलवारिणा ।
 नस्याल्लेपाच्च दुष्टारुरपचीविषजन्तुजित् ॥ २६ ॥
 मूलैरुत्तमवारुण्याः पीलुपर्ण्याः सहाचरात् ।
 सरोध्राभययष्ट्याह्व-शताह्वाद्दीपिदारुभिः ॥ २७ ॥
 तैलं क्षीरसमं सिद्धं नस्येऽभ्यङ्गे च पूजितम् ।
 गोऽव्याजाऽश्वखुरा दग्धा कटुतैलेन लेपनम् ॥ २८ ॥
 पेङ्कुदेन तु कृष्णाहिर्वायसो वा स्वयं मृतः ।
 हृत्यशान्तौ गदस्यान्य-पार्श्वजङ्घासमाश्रितम् ॥ २९ ॥
 बस्तेरूर्ध्वमधस्ताद्वा मेदो हृत्वाग्निना दहेत् ।
 स्थितस्योर्ध्वं पदं भिस्वा तन्मानेन च पार्ष्णितः ।
 तत उर्ध्वं हरेद् ग्रन्थीनित्याह भगवान्निमिः ॥ ३० ॥

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चाङ्गुलानि

मुक्त्वेन्द्रबस्तिं च गदान्यपार्श्वे ।

विदार्य^२ मत्स्याण्डनिभानि

मध्याज्जालानि कर्षेदिति सुश्रुतोक्तिः ॥ ३१ ॥

१. तण्डुलः = विडङ्गः । टयर्गमध्यः शब्दः ।

२. मत्स्याण्डनिभानि जालानि गण्डमालायाः पूर्वरूपे भवन्ति तदानीमेव विपाद्य निष्कासिते सति, काञ्चनारत्वचः क्वाथस्य शुण्ठी-चूर्णेन सेवने गण्डमाला प्रणश्यति, कुतोऽपचीदशा प्राप्तिः, अनु-

आगुल्फकर्णास्सुमितस्य जन्तोस्त-

स्याष्टभागं खुडकाद्विभज्य ।

घ्राणार्जवेऽधः ^१सुरराज-

वस्तेर्भिच्चाक्षमात्रं त्वपरे वदन्ति ॥ ३२ ॥

अथ नाडीरोगप्रतिषेधः ।

उपनाह्यानिलान्नाडीं पाटितां साधु लेपयेत् ।

प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तैलैः पिष्टैः ससैन्धवैः ॥ ३३ ॥

पैर्त्ती तु तिलमज्जिष्ठा-नागदन्तीशिलाह्वयैः ।

रुलैष्मिकीं तिलसौराष्ट्रीनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥ ३४ ॥

शतयजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम् ।

अशस्त्रकृत्यामेषिण्या भिच्चान्ते सम्यगेषिताम् ॥ ३५ ॥

क्षारपीतेन सूत्रेण बहुशो दारयेत् यतिम् ।

व्रणेषु दुष्टसूक्ष्माऽऽस्य-गम्भीरादिषु साधनम् ॥ ३६ ॥

या वर्त्यो यानि तैलानि तन्नाडीष्वपि शस्यते ।

पिष्टं चञ्चुफलं लेपान्नाडीव्रणहरं परम् ॥ ३७ ॥

घोण्टाफलत्वग्लवणं सलाक्षं

बुकस्य पत्रं वनितापयश्च ।

स्नुगर्कदुग्धान्वित एष कल्को

वर्तकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ३८ ॥

भूतोऽयं रोगः प्रथमधर्मपत्न्या साकं तथा दर्शितानि च मत्स्यनि-
मानि जालानि यथास्थानम् ।

१. सुरराजवस्तेः = इन्द्रवस्तेः । इति ।

सामुद्रसौवर्चलसिन्धुजन्म-

सुपक्वघोण्टाफलवेश्मधूमा ।

आम्रात-गायत्रिजपल्लवाश्च

कटङ्कटेर्यावथ चेतकी च ॥ ३८ ॥

कल्केऽभ्यङ्गे चूर्णे वृत्त्यां चैतेषु सेव्यमानेषु ।

अगतिरिव नश्यति गति-श्चपला चपलेषु भूतिरिव ॥४०॥

इत्युत्तरस्थाने त्रिंशोऽध्यायः ।



एकत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः क्षुद्ररोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

‘स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्रसन्निभा ।

पिटिका कफवाताभ्यां बालानाम् ‘अजगल्लिका’ ॥ १ ॥

यवप्रख्या ‘यवप्रख्या’^१ ताभ्यां मांसाश्रिता घना ।

अवक्रा चालजी वृत्ता स्तोकपूया घनोन्नता ॥ २ ॥

ग्रन्थयः पञ्च वा षड्वा ‘कच्छपी’ कच्छपोन्नता ।

कर्णस्योर्ध्वं समन्ताद्वा पिटिका कठिनोग्ररूक् ॥ ३ ॥

शालूकाभा‘पनसिका’ ऋशोफस्त्वल्परुजः स्थिरः ।

हनुसन्धिसमुद्भूतस्ताभ्यां ‘पाषाणगर्दभः’ ॥ ४ ॥

शास्त्रमलीकण्टकाकाराः पिटिकाः सरुजो घनाः ।

१. ताभ्यां = वातकफाभ्याम्, यवाकारा मांसाश्रिता कठिना
पिटिका यवप्रख्या = यवसंज्ञा ।

मेदोगर्भा मुखे यूनां^१ ताभ्यां च 'मुखदूषिकाः' ॥ ५ ॥
 ते 'पद्मकण्टका' ज्ञेया यैः पद्ममिव कण्टकैः ।
 चीयते नीरुजैः श्वेतैः शरीरं कफवातजैः ॥ ६ ॥
 पित्तेन पिटिका वृत्ता पक्षोदुग्धरसन्निभा ।
 महादाहज्वरकरी 'विवृता' विवृतानना ॥ ७ ॥
 गात्रेष्वन्तश्च वक्त्रस्य दाहज्वररुजान्विताः ।
 मसूरमात्रास्तद्वर्णा^२ 'स्तत्संज्ञाः' पिटिका घनाः ॥ ८ ॥
 ततः कष्टतराः स्फोटा 'विस्फोटाख्या' महारुजाः ।
 या पद्मकर्णिकाकारा पिटिका पिटिकान्विता ॥ ९ ॥
 सा विद्धा वातपित्ताभ्याम^३ ताभ्यामेव च 'गर्दभी' ।
 मण्डला विपुलोत्सन्ना सरागपिटिकाचिता ॥ १० ॥
 'कक्षेति' कक्षासन्नेषु प्रायो देशेषु साऽनिलात् ।
 पित्ताद्भवन्ति पिटिकाः सूक्ष्मा 'लाजोपमा' घनाः ॥ ११ ॥
 तादृशी महती त्वेका 'गन्धनामेति' कीर्तिता ।
 घर्मस्वेदपरीतेऽङ्गे पिटिकाः सरुजो घनाः ॥ १२ ॥
 राजिकावर्णसंस्थानप्रमाणा 'राजिकाह्वयाः' ।
 दोषैः पित्तोत्खणैर्मन्दैर्विसर्पति विसर्पवत् ॥ १३ ॥
 शोफोऽपाकस्तनुस्ताम्रो ज्वरकृ^४ 'ज्वालगर्दभः' ।
 मलैः पित्तोत्खणैः स्फोटा ज्वरिणो मांसदारणाः ॥ १४ ॥
 कक्षाभागेषु जायन्ते येऽग्न्याभाः सा^५ 'अग्निरोहिणी' ।

१. ताभ्याञ्च = कफवाताभ्यामेव याः पिटिकाः शारमलीकण्ट-
 काऽऽकृतयः, घनाः, सरुजः, मेदोमध्याः, तरुणानां मुखे स्युः, ताः
 'मुखदूषिका' संज्ञाः ।

पञ्चाहाससरात्राद्वा पञ्चाद्वा हन्ति जीवितम् ॥ १५ ॥
 त्रिलिङ्गा पिटिका वृत्ता जत्रूर्ध्वमिरिवेल्लिका ।
 विदारीकन्दकठिना 'विदारी' कक्षवङ्क्षणे ॥ १६ ॥
 मेदोऽनिलकफैर्ग्रन्थिः स्नायुमांससिराश्रयैः ।
 भिन्नो वसाज्यमध्वाभं खवेत्तत्रोल्वणोऽनिलः ॥ १७ ॥
 मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करामुपपादयेत् ।
 दुर्गन्धं रुधिरं क्लिन्नं नानावर्णं ततो मलाः ॥ १८ ॥
 तां स्त्रावयन्ति निचितां विद्यात्तच्छर्करार्बुदम् ।
 पाणिपादतले सन्धौ जत्रूर्ध्वं वोपचीयते ॥ १८ ॥
 वल्मीकवच्छनैर्ग्रन्थिस्तद्वद्वह्णुभिर्मुखैः ।
 सदाहकण्डूक्लेदाढ्यो वल्मीकोऽसौ समस्तजः ॥ २० ॥
 शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ।
 ग्रन्थिः कीलवदुत्सन्नो जायते 'कदरं' तु तत् ॥ २१ ॥
 वेगसन्धारणाद्वायुरपानोऽपानसंश्रयम् ।
 अणूकरोति बाह्यान्तर्मार्गमस्य, ततः शकृत् ॥ २२ ॥
 कृच्छ्राग्निर्गच्छति व्याधिरयं 'रुद्धगुदो' मतः ।
 कुर्यात्पित्तनिलं पाकं नखमांसे सरुज्वरम् ॥ २३ ॥
 चिप्यमक्षतरोगं च विद्यादुपनखं च तम् ॥
 कृष्णोऽभिघाताद्रूक्षश्च खरश्च 'कुनखो' नखः ॥ २४ ॥
 दुष्टकर्म-संस्पर्शात्कण्डूक्लेदान्वितान्तराः ।
 अङ्गुल्योऽलसमित्याहुः ऋतिलाभांस्तिलकालकान् ॥ २५ ॥
 कृष्णानवेदनांस्त्वक्स्थान् ऋमषां,स्तानेव चोन्नतान् ।
 मषेभ्यस्तूक्ष्णतरां'श्रर्मकीलान्' सितासितान् ॥ २६ ॥

तथाविधो 'जतुमणिः' सहजो लोहितस्तु सः ।
 कृष्णं सितं वा सहजं मण्डलं 'लाब्धनं' समम् ॥ २७ ॥
 शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुखे तनु ।
 श्यामलं मण्डलं 'व्यङ्गं' वक्त्रादन्यत्र 'नीलिका' ॥ २८ ॥
 परुषं परुषस्पर्शं व्यङ्गं श्यावं च 'मास्तात्' ।
 पित्तात्ताम्रान्तमानीलं, श्वेतान्तं कण्डुमक्षकात् ॥ २९ ॥
 रक्ता'द्रक्तान्तमाताम्रं' सोषं चिमचिमायते ।
 वायुनोदीरितः श्लेष्मा त्वचं प्राप्य विशुष्यति ॥ ३० ॥
 ततस्त्वग्जायते पाण्डुः क्रमेण च विचेतना ।
 अल्पकण्डूरविकलेदा सा 'प्रसुप्तिः' प्रसुप्तिः ॥ ३१ ॥
 असम्यग्गमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः ।
 मण्डलान्यतिकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ ३२ ॥
 उत्कोठः, सोऽनुबद्धस्तु 'कोठ' इत्यभिधीयते ।
 प्रोक्ताः षट्त्रिंशदित्येते^१ क्षुद्ररोगा विभागशः ॥ ३३ ॥
 इत्युत्तरस्थान एकत्रिंशोऽध्यायः ।

१. एते क्षुद्ररोगाः—१ अजगल्लिका । २ यवप्रख्या । ३ कच्छ-
 पी । ४ पनसिका । ५ पाषाणगर्दभः । ६ मुखदूषिका । ७ पद्मक-
 ण्टकाः । ८ विवृता । ९ मसूरिका । १० विस्फोटाः । (तारुण्यपिटिकाः)
 ११ पद्मकर्णिका । १२ गर्दभी । १३ वातकक्षा । १४ पित्तकक्षा ।
 १५ गन्धनामा । १६ राजिकाः । १७ जालगर्दभः । १८ अग्निरो-
 हणी । १९ इरिवेल्लिका । २० विदारी । २१ शर्करार्बुदम् ।

द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

अथातः क्षुद्ररोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘विस्त्रावयेज्जलौकोभिरपक्काम्जगल्लिकाम् ।

स्वेदयित्वा ‘यत्रप्रख्यां’ विलयाय प्रलेपयेत् ॥ १ ॥

दारुकुष्ठमनोह्लाऽऽलैः ऋइत्या ‘पाषाणगर्दभात्’ ।

विधिस्तांश्चाचरेत्पक्कान् व्रणवत्साजगल्लिकान् ॥ २ ॥

रोधकुस्तुम्बरु-वचाप्रलेपो ‘मुखदूषिके’ ।

वटपल्लयुक्ता वा नारिकेलोत्थशुक्तयः ॥ ३ ॥

अशान्तौ वमनं नस्यं ललाटे च सिराव्यधः ।

निम्बाम्बुवान्तो निम्बाम्बु-साधितं ‘पद्मकण्ठके’ ॥ ४ ॥

पिबेत्क्षौद्रान्वितं सर्पिर्निम्बाम्बुवधलेपनम् ।

‘विवृतादींस्तु’ जालान्तांश्चिकित्सेदिरिवेत्लिकाम् ।

पित्तवीसर्पवत् तद्वत्, प्रत्याख्यायाऽग्निरोहिणीम् ॥ ५ ॥

२२ वल्मीकः । २३ कदरम् । २४ रुद्धगुदः । २५ चिप्पम् ।

२६ कुनखः । २७ अलसम् । २८ तिलकालकाः । २९ मापाः ।

३० चर्मकीलाः । ३१ जतुगणिः । ३२ लाञ्छनम् । ३३ व्यङ्गम् ।

३४ नीलिका । ३५ प्रसुप्तिः । ३६ उत्कोठः = कोठः ।

१. विवृता ८ जालगर्दभः १७ पर्यन्तान् हरिवेत्लिकाञ्च पि-
षीसर्पवत्-चिकित्सेत् । अग्निरोहिणीम् प्रत्याख्याय = दुःसाध्याम्
प्रतिपाद्य तद्वत् = पित्तवीसर्पवत्—चिकित्सेदित्यन्वयः ।

विलङ्घनं रक्तविमोक्षणं च

विरूक्षणं कायविशोधनं च ।

^१धात्रीप्रयोगान् शिशिरप्रदे-

हान् कुर्यात्सदा जालकगर्दभस्य ॥ ६ ॥

‘विदारिकां’ हते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ।

मेदोर्बुदक्रियां कुर्यात्सुतरां ‘शर्करार्बुदे’ ॥ ७ ॥

प्रवृद्धं सुबहुच्छिद्रं सशोफं मर्मणि स्थितम् ।

‘वल्मीकं’ हस्तपादे च वर्जयेत् ँइतरत्पुनः^२ ॥ ८ ॥

शुद्धस्यास्त्रे हते लिम्पेत् सपट्वारग्वधामृतैः ।

श्यामाकुलत्थिकामूलदन्तीपललसक्तुभिः ॥ ९ ॥

पक्वे तु दुष्टमांसानि गतीः सर्वाश्च शोधयेत् ।

शस्त्रेण सम्यगनु च क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ १० ॥

शस्त्रेणोत्कृत्य निःशेषं स्नेहेन ‘कदरं’ दहेत् ।

निरुद्धमणिवत्कार्यं^३ रुद्धपायीश्चिकित्सितम् ॥ ११ ॥

चिप्यं शुद्धया जितोष्माणं साधयेच्छस्त्रकर्मणा ।

दुष्टं कुनखमप्येवम् ँ‘चरणाऽवलसे’ पुनः ॥ १२ ॥

धान्याम्लसिक्तौ कासीस-पटोलीरोचनातिलैः ।

सनिम्बपत्रैरालिम्पेद् ँदहेत्तु ‘तिलकालकान्’ ॥ १३ ॥

१. धात्री = आमलकी ।

२. इतरत्पुनः = प्रवृद्धादिविशेषणरहितन्तु—वल्मीकं शुद्धस्य अस्त्रे = रुधिरे हते सति लिम्पेदिति सम्बन्धः । पक्वे तु—वल्मीके दुष्टमांसानि सर्वाः गतीश्च शस्त्रेण-क्षारेण-अग्निना वा शोधयेदिति सम्बन्धः । ३. रुद्धपायोः = रुद्धगदस्य ।

'मषांश्च' सूर्यकान्तेन क्षारेण यदि वाऽग्निना ।
 तद्वदुत्कृत्य शस्त्रेण 'चर्मकील'जतूमणी ॥ १४ ॥
 'लाञ्छनादित्रये' कुर्याद्यथासन्नं सिराव्यधम् ।
 लेपयेत्क्षीरपिष्टैश्च क्षीरिवृक्षत्वगङ्कुरैः ॥ १५ ॥
 'व्यङ्गेषु' चार्जुनत्वग्वा 'मज्जिष्ठा' वा समाक्षिका ।
 लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वत्थुरजा मषी ॥ १६ ॥
 रक्तचन्दनमज्जिष्ठा-कृष्टरोध्रप्रियङ्गवः ।
 वटाङ्कुरा मसूराश्च 'व्यङ्गना'मुखकान्तिदाः ॥ १७ ॥
 द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्पपाः पयसा सह ।
 पिष्टाः कुर्वन्ति वक्रेन्दुम्-अपास्तव्यङ्गलाञ्छनम् ॥ १८ ॥
 क्षीरपिष्टा घृतक्षौद्र-युक्ता वा भृष्टनिस्तुषाः ।
 मसूराः क्षीरपिष्टा वा तीक्ष्णाः शालमलिकण्टकाः ॥ १९ ॥
 सगुडः कोलमज्जा वा शशासृक्क्षौद्रकलिकतः ।
 सप्ताहं मातुलुङ्गस्थं कुष्ठं वा मधुनान्वितम् ॥ २० ॥
 पिष्टा वा छागपयसा सक्षौद्रा मौशली जटा ।
 गोरस्थि मुशलीमूल-युक्तं वा साज्यमाक्षिकम् ॥ २१ ॥
 जम्बुवाग्म्रपल्लवा मस्तु हरिद्रे द्वे नवो गुडः ।
 लेपः 'सवर्णकृत्' पिष्टं स्वरसेन च तिन्दुकम् ॥ २२ ॥
 उत्पलपत्रं तगरं, प्रियङ्गुकालीयकं बदरमज्जा ।
 हृदमुद्वर्तनमास्थं, करोति शतपत्रसङ्काशम् ॥ २३ ॥
 एभिरेवौषधैः पिष्टैर्मुखाभ्यङ्गाय साधयेत् ।

यथादोषर्तुकान् स्नेहान् मधुकक्काथसंयुतैः ॥ २४ ॥

यवान् सर्जरसं रोध्रमुशीरं चन्दनं मधु ।

घृतं गुडं च गोमूत्रे पचेदादर्विलेपनात् ॥ २५ ॥

तदभ्यङ्गाग्निहन्त्याशु नीलिका-व्यङ्ग-दूषिकान् ।

मुखं करोति पद्माभं पादौ पद्मदलोपमौ ॥ २६ ॥

कुङ्कुमोशीरकालीय-लाक्षा-यष्ट्याह्व-चन्दनम् ।

न्यग्रोधपादांस्तरुणान् पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ २७ ॥

सनीलोत्पलमज्जिष्टं पालिकं सलिलाढके ।

पक्त्वा पादावशेषेण तेन पिष्टैश्च कार्षिकैः ॥ २८ ॥

लाक्षापत्तङ्गमज्जिष्ठा-यष्टीमधुकुङ्कुमैः ।

अजाक्षीरद्विगुणितं तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ २९ ॥

नीलिकापलितव्यङ्ग-वलीतिलकदूषिकान् ।

हन्ति तन्नस्यमभ्यरतं मुखोपचयवर्णकृत् ॥ ३० ॥

मज्जिष्ठाशवरोद्धवस्तुवरिका-लाक्षाहरिद्राद्वयं

नेपालीहरितालकुङ्कुमगदा-गोरोचनागैरिकम् ।

पत्रं पाण्डु वल्क्य चन्दनयुगं कालीयकं पारदं

पत्तङ्गं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा केसरम् ॥ ३१ ॥

सिक्थं तुथं पद्मकाद्यो वसाज्यं

मज्जा क्षीरं क्षीरिवृक्षांशु चाग्नौ ।

सिद्धं सिद्धं व्यङ्गनील्यादिनाशे

वक्त्रे छायामैन्दर्वीं चाशु धत्ते ॥ ३२ ॥

मार्कवस्वरसक्षीरतोयानीष्टानि नावने ।

‘प्रसुप्तौ’ वातकुष्ठोक्तं कुर्याद्वाहं च वह्निना ॥
 ‘उत्कोठे’ कफपित्तोक्तं ‘कोठे’ सर्वं च कौष्ठिकम्^१ ॥ ३३ ॥
 इत्युत्तरस्थाने द्वात्रिंशोऽध्यायः ।



त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुह्यरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 ‘स्त्रीव्यवायनिवृत्तस्य सहसा भजतोऽथवा ।
 दोषाध्युषित-सङ्कीर्ण-मलिनाऽणुरजःपथाम्^२ ॥ १ ॥
 अन्ययोनिमनिच्छन्तीमगम्यां नवसूतिकाम् ।
 दूषितं स्पृशतस्तोयं रतान्तेष्वपि नैव वा ॥ २ ॥
 विवर्धयिषया तीक्ष्णान् प्रलेपादीन् प्रयच्छतः ।
 मुष्टिदन्तनखोत्पीडाविषवच्छूकपातनैः ॥ ३ ॥
 वेगनिग्रहदीर्घातिखरस्पर्शविघट्टनैः ।
 दोषा दुष्टा गता गुह्यं त्रयोविंशतिमामयान् ॥ ४ ॥
 जनयन्त्युपदंशादीन् ऋउपदंशोऽत्र पञ्चधा ।
 पृथग्दोषैः सरुधिरैः समस्तैश्च ऋ अत्र मारुतात् ॥ ५ ॥
 मेढूशोफे रुजश्चित्राः स्तम्भस्त्वक्परिपोटनम्^३ ।

१. कौष्ठिकम् = कुष्ठरोगोक्तम् । इति ।

२. रजसःपन्थाः = रजःपथः = आर्तवमार्गः । दोषाध्युषितादि-
 विशिष्टः रजःपथो यस्यास्ताम् ।

३. त्वचः परिपोटनम् = सङ्कोचः, पुट = संश्लेषणे भावे ल्युट् ।

पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्तेन श्रयथुर्घनः ॥ ६ ॥
 श्लेष्मणा कठिनः स्निग्धः कण्डूमान् शीतलो गुरुः ।
 शोणितेनासितस्फोट-सम्भवोऽस्त्रस्तुतिर्ज्वरः ॥ ७ ॥
 सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं श्रयथुर्मुष्कयोरपि ।
 तीव्रा रुगाशुपचनं दरणं कृमिसम्भवः ॥ ८ ॥
 याप्यो रक्तोद्भवस्तेषां मृत्यवे सन्निपातजः ।
 जायन्ते कुपितैर्दोषैर्गुह्यासृक्पिशिताश्रयैः ॥ ९ ॥
 अन्तर्बहिर्वा मेढस्य कण्डूला मांसकीलकाः ।
 पिच्छिलास्त्रवा योनौ तद्वच्च च्छत्रसन्निभाः ॥ १० ॥
 तेऽशांस्युपेक्षया घ्नन्ति मेढपुंस्त्व-भगार्तवम्^१ ।
 गुह्यस्य बहिरन्तर्वा पिटिका, कफरक्तजाः ॥ ११ ॥
 सर्षपामानसंस्थाना घनाः 'सर्षपिकाः' स्मृताः ।
 पिटिका बहवो दीर्घा दीर्यन्ते मध्यतश्च याः ॥ १२ ॥
 सोऽवमन्थः' कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षवान् ।
 कुम्भीका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थि-निभाऽऽशुजा ॥ १३ ॥
 'अलर्जी'^२मेहवद्विद्याद् ऋत्तमां रक्तपित्तजाम् ।
 पिटिकां माषमुद्गाभाम् ऋपिटिका पिटिकाचिता ॥ १४ ॥
 कर्णिका पुष्करस्येव ज्ञेया 'पुष्करिकेति' सा ।
 पाणिभ्यां भृशसंव्यूढे 'संव्यूढपिटिका' भवेत् ॥ १५ ॥
 'मृदितं' मृदितं वस्त्रसंरब्धं वातकोपतः ।
 विषमा कठिना भुम्भा वायुना'ऽष्टीलिका' स्मृता ॥ १६ ॥

१. मेढस्य = लिङ्गस्य पुंस्त्वं = पौरुषम्, भगस्य = योनेः,
 आर्तवं = रजः । २. मेहे—इव मेहवत्, सप्तम्यन्ताद्वतिः ।

विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्म मेढूजम् ।
 निवर्तते सरुदाहं क्वचित्पाकं च गच्छति ॥ १७ ॥
 पिण्डितं ग्रथितं चर्म तत्प्रलम्बमधोमणेः ।
 'निवृत्तसंज्ञं' सकफं कण्डूकाटिन्यवत्तु तत् ॥ १८ ॥
 दुरुढं स्फुटितं चर्म निर्दिष्टमवपाटिका ।
 वातेन दूषितं चर्म मणौ सक्तं रुणद्धि चेत् ॥ १९ ॥
 स्रोतोमूत्रं ततोऽभ्येति मन्दधारमवेदनम् ।
 'मणेर्विकाशरोधश्च स 'निरुद्धमणि'र्गदः ॥ २० ॥
 लिङ्गं शूकैरिवापूर्णं 'ग्रथिताख्यं' कफोद्भवम् ।
 शूकदूषितरक्तोत्था स्पर्शहानिस्तदाह्वया ॥ २१ ॥
 छिद्रैरणमुखैर्यत्तु मेहनं सर्वतश्चितम् ।
 वातशोणितकोपेन तं विद्या 'च्छतपोनकम्' ॥ २२ ॥
 पित्तासृग्भ्यां त्वचः पाकस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ।
 मांस्पाकः सर्वजः सर्व-वेदनो 'मांसशातनः' ॥ २३ ॥
 सरागैरसितैः स्फोटैः पिटिकाभिश्च पीडितम् ।
 मेहनं वेदनाश्चोग्रास्तं विद्याद 'सृगर्बुदम्' ॥ २४ ॥
 'मांसार्बुदं' प्रागुदितं 'विद्रधिश्च' त्रिदोषजः ।
 कृष्णानि भूत्वा मांसानि विशीर्यन्ते समन्ततः ॥ २५ ॥
 पक्कानि सन्निपातेन तान् विद्यात् 'तिलकालकान्' ।
 मांसोत्थमर्बुदं पाकं विद्रधिं तिलकालकान् ॥ २६ ॥
 चतुरो वर्जयेदेषां शेषान् शीघ्रमुपाचरेत् ।

१. चर्मवेष्टितो लिङ्गाग्रभागे मणिः

अथ योनिव्यापदः ।

विंशतिर्व्यापदो योनेर्जायन्ते दुष्टभोजनात् ॥ २७ ॥

विषमस्थाङ्गशयनभृशमैथुनसेवनैः ।

दुष्टार्तवादपद्रव्यैर्बलिदोषेण दैवतः^१ ॥ २८ ॥

योनौ क्रुद्धोऽनिलः कुर्याद्रुक्तोदायामसुसताः ।

पिपीलिकासृप्तिमिव स्तरभं कर्कशतां स्वनम् ॥ २९ ॥

फेनिलारुणकृष्णालपतनुरूक्षार्तवस्रुतिम् ।

संसं वङ्कणपार्श्वदौ व्यथां गुल्मं क्रमेण च ॥ ३० ॥

तांस्तांश्च स्वान् गदान् व्यापद्

‘वातिकी’ नाम सा स्मृता ।

सैवाऽ‘तिचरणा’ शोफ-

संयुक्तातिव्यवायतः ॥ ३१ ॥

मैथुनादतिबालायाः पृष्ठजङ्घोरुवङ्क्षणम् ।

रुजन्सन्दूषयेद्योनिं वायुः ‘प्राक्चरणे’ति सा ॥ ३२ ॥

वेगोदावर्तनाद्योनिं प्रपीडयति मारुतः ।

सा फेनिलं रजः कृच्छ्रादुदावृत्तं विमुञ्चति ॥ ३३ ॥

इयं व्यापदुदावृत्ता ॐ‘जातघ्नी’ तु यदानिलः ।

जातं जातं^२ सुतं हन्ति रौक्ष्याद् दुष्टार्तबोद्धवम् ॥ ३४ ॥

अत्याशिताया विषमं स्थितायाः सुरते मरुत् ।

१. देवादिति-दैवतः, आद्यादिभ्य उपसंख्यानमिति सार्वविभक्ति-
कस्तसिः, न तु तसिल् सर्वनामाऽभावात् ।

२. जातं जातम्-इति नित्यवीप्सयोरिति द्वित्वम्, सुतमित्य-
पत्ये लाक्षणिकम् ।

अन्नेनोत्पीडितो योनेः स्थितः स्रोतसि वक्रयेत् ॥ ३५ ॥
 सास्थिमांसं मुखं तीव्ररुजमन्तर्मुखीति सा ।
 वातलाहारसेविन्यां जनन्यां कुपितोऽनिलः ॥ ३६ ॥
 स्त्रियो योनिमणुद्वारां कुर्यात्सूचीमुखीति सा ।
 वेगरोधादृतौ वायुर्दुष्टो विष्मूत्रसङ्ग्रहम् ॥ ३७ ॥
 करोति योनेः शोषं च 'शुष्काख्या' सातिवेदना ।
 षडहात्सप्तरात्राद्वा शुक्रं गर्भाशयान्मरुत् ॥ ३८ ॥
 वमेत्सरुद्धं नीरुजो वा यस्याः सा 'वामिनी' मता ।
 योनौ वातोपतप्तायां स्त्रीगर्भे बीजदोषतः ॥ ३९ ॥
 नृद्वेषिण्यस्तनी च स्यात्'त्पण्डसञ्ज्ञा'ऽनुपक्रमा ।
 दुष्टो विष्टभ्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः ॥ ४० ॥
 कुरुते विवृतां स्रस्तां वातिकीमिव दुःखिताम् ।
 उत्सन्नमांसां तामाहुर्महायोनिं महारुजाम् ॥ ४१ ॥
 यथास्वैर्दूषणैर्दुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।
 करोति दाहपाकोपापूतिगन्धज्वरान्विताम् ॥ ४२ ॥
 भृशोष्णभूरिकुणपनीलपीतासितार्तवाम् ।
 सा व्यापत्पैत्तिकी ॥ रक्तयोन्याख्यासृगतिस्त्रुतेः ॥ ४३ ॥
 कफोऽभिष्यन्दिभिः क्रुद्धः कुर्याद्योनिमवेदनाम् ।
 शीतलां कण्डुलां पाण्डुपिच्छिलां तद्विधस्त्रुतिम् ॥ ४४ ॥
 सा व्यापच्छलैष्मिकी ॥ वातपित्ताभ्यां क्षीयते रजः ।
 सदाहकार्श्यवैवर्ण्यं यस्यां सा लोहितक्षया ॥ ४५ ॥
 पित्तलाया नृसंवासे क्ष्वधूद्धारधारणात् ।
 पित्तयुक्तेन मरुता योनिर्भवति दूषिता ॥ ४६ ॥

शूना स्पर्शासहा सार्तिनीलपीतास्रवाहिनी ।
 बस्तिकुक्षिगुरुत्वातीसारारोचककारिणी ॥ ४७ ॥
 श्रोणिवङ्गणरुक्तोदञ्जरकृत्सा परिप्लुता ।
 वातश्लेष्मामयध्याप्ता श्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥ ४८ ॥
 'उपप्लुता' स्मृता योनिः ॥ 'विप्लुताख्या' त्वधावनात् ।
 सञ्जातजन्तुः कण्डूला कण्ड्वा चातिरतिप्रिया ॥ ४९ ॥
 अकालवाहनाद्वायुः श्लेष्मरक्तविमूर्च्छितः ।
 कर्णिकां जनयेद्योनौ रजोमार्गनिरोधिनीम् ॥ ५० ॥
 सा कर्णिनी ॥ त्रिभिर्दोषैर्योनिगर्भाशयाश्रितैः ।
 यथास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्सा सान्निपातिकी ॥ ५१ ॥
 इति योनिगदा, नारी यैः शुक्रं न प्रतीच्छति ।
 ततो गर्भं न गृह्णाति, रोगांश्चाप्नोति दारुणान् ॥ ५२ ॥
 अस्मधराऽर्शोगुल्मादीनाबाधाश्चाऽनिलानिभिः^१ ॥ ५२ ॥

इत्युत्तरस्थाने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो गुह्यरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 मेढूमध्ये सिरां विध्येदुपदंशे नवोत्थिते ।
 शीतां कुर्यात् क्रियां शुद्धिं विरेकेण विशेषतः ॥ १ ॥

१. वातपित्तकफैः-आबाधाः = पीडाः । इति ।

तिलकलकघृतचौद्रैर्लेपः पक्के तु पाटिते ।

जम्बुवाग्नुसुमनोनीप-श्वेतकाम्बोजिकाङ्कुरान् ॥ २ ॥

शल्लकी-बदरी-बिल्व-पलाशातिनिशोद्धवाः ।

त्वचः क्षीरिद्रुमाणां च त्रिफलां च जले पचेत् ॥ ३ ॥

स क्वाथः क्षालनं^१ तेन पक्वं तैलं च रोपणम् ।

तुत्थगैरिकलोध्रैला-मनोह्याऽऽलरसाञ्जनैः ॥ ४ ॥

हरेणु-पुष्पकासीस-सौराष्ट्रीलवणोत्तमैः ।

लेपः चौद्रयुतैः सूक्ष्मैरुपदंशव्रणापहः ॥ ५ ॥

^२कपाले त्रिफला दग्धा सघृता रोपणं परम् ।

सामान्यं साधनमिदं, प्रतिदोषं तु शोफवत् ॥ ६ ॥

न च याति यथा पाकं प्रयतेत तथा भृशम् ।

पक्वैः स्नायुसिरामांसैः प्रायो नश्यति हि ध्वजः ॥ ७ ॥

‘अर्शसां’ लिङ्गदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ।

^३सर्षपा लिखिताः सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ॥ ८ ॥

तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेत् व्रणरोपणम् ।

क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं स्नाय्वं तथोभयोः ॥ ९ ॥

‘कुम्भीकायां’ हरेद्रक्तं पक्षायां शोधिते व्रणे ।

तिन्दुकत्रिफलारोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ १० ॥

१. क्षालयते = प्रक्षालयतेऽनेनेति क्षालनं करणे ल्युट्, तेन = क्वाथेन पक्वं तैलं च = तु, रोप्यतेऽनेनेति रोपणम्, करणे ल्युट् ।

२. कपाले = कर्परे = खर्परे, दग्धा त्रिफला-इति सम्बन्धः ।

३. सर्षपाः = सर्षपिकाः, लिखिताः घृष्टाः सत्यः सूक्ष्मैः कषायैः-
कषायरसविशिष्टैः = जम्बूकट्फलादिचूर्णैः अवचूर्णयेद् = अवधूलयेत् ।

'अलज्यां' सुतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ।
 'उत्तमाख्यां' तु पिटिकां सन्धिद्य वडिशोद्धृताम् ॥ ११ ॥
 कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां चौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ।
 क्रमः पित्तविसर्पोक्तः 'पुष्करव्यूढयो'र्हितः ॥ १२ ॥
 त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च ॐसेचयेन्मृदितं पुनः ।
 बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ १३ ॥
 'अष्टीलिकां' हते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ।
 'निवृत्तं' सर्विषाऽभ्यज्य स्वेदयित्वोपनाहयेत् ॥ १४ ॥
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सुस्निग्धः 'साल्वणादिभिः' ।
 स्वेदयित्वा ततो भूयः स्निग्धं चर्म समानयेत् ॥ १५ ॥
 मणिं प्रपीड्य शनकैः प्रविष्टे चोपनाहनम् ।
 मणौ पुनः पुनः स्निग्धं भोजनं चाऽत्र^२ शस्यते ॥ १६ ॥
 अयमेव प्रयोज्यः स्यादवपात्र्यामपि क्रमः ।
 नाडीमुभयतोद्वारां निरुद्धे जतुना सृताम् ॥ १७ ॥
 स्नेहाक्तां स्रोतसि न्यस्य सिञ्चेत्स्नेहैश्चलापहैः^३ ।
 ज्यहात्त्र्यहात्स्थूलतरां न्यस्य नाडीं विवर्धयेत् ॥ १८ ॥
 स्रोतोद्वारमसिद्धौ तु विद्वान् शस्त्रेण पाटयेत् ।
 सेवनीं वर्जयन्, कुर्यात्सद्यःक्षतविधिं ततः ॥ १९ ॥
 ग्रथितं स्वेदितं नाड्या स्निग्धोष्णैरुपनाहयेत् ।
 लिम्पेत्क्षपायैः सक्षौद्रैर्लिखित्वा 'शतपोनकम्' ॥ २० ॥
 रक्तविद्रधिक्कार्या चिकित्सा 'शोणितार्बुदे' ।

१. साल्वलादिभिः, साल्वणादिभिरिति पाठौ ।

२. अत्र = 'निवृत्ताख्ये' लिङ्गरोगे । ३. चलापहैः = वातघ्नैः ।

व्रणोपचारं सर्वेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥

अथ योनिरोगप्रतिषेधः ।

‘योनिव्यापस्सु’ भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।

स्नेहनस्वेदवरस्यादिवातजासु विशेषतः ॥ २२ ॥

न हि वातादृते योनिर्वनितानां प्रदुष्यति ।

अतो जित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम् ॥ २३ ॥

पाययेत् बलातैलं, मिश्रकं, सुकुमारकम् ।

स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं ‘दुःस्थितां’ स्थापयेत्समाम् ॥ २४ ॥

पाणिनोन्नमयेज्जिह्वां ‘संवृतां’ व्यधयेत्पुनः ।

प्रवेशयेन्निःसृतां च, ‘विवृतां’ परिवर्तयेत् ॥ २५ ॥

स्थानापवृत्ता योनिर्हि शल्यभूता स्त्रियो भवेत् ।

कर्मभिर्वमनाद्यैश्च मृदुभिर्योजयेत्स्त्रियम् ॥ २६ ॥

सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ।

बस्यभ्यङ्गपरिषेक-प्रलेप-पिचुधारणम् ॥ २७ ॥

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्ष-कासमर्दनिशाद्वयैः ।

गुडूचीसैर्यकाभीरु-शुकनासापुनर्नवैः ॥ २८ ॥

परुषकैश्च विपचेत्प्रस्थमक्षसमैर्घृतात् ।

योनिवातविकारघ्नं तत्पीतं गर्भदं परम् ॥ २९ ॥

वचोपकुञ्जिकाज्जाजी-कृष्णावृषकसैन्धवम् ।

अजमोदायवच्चारशर्कराचित्रकान्वितम् ॥ ३० ॥

पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोढ्य खादेत् तद्घृतभर्जितम् ।

योनिपार्श्वार्तिहृद्रोग-गुल्माशौविनिवृत्तये ॥ ३१ ॥

वृषकं मातुलुङ्गस्य मूलानि मदयन्तिकाम् ।

पिबेन्मद्यैः सलवणैस्तथा कृष्णोपकुञ्चिकैः ॥ ३२ ॥
 रास्नाश्वदंष्ट्रावृषकैः शृतं शूलहरं पयः ।
 गुडूचीत्रिफलादन्ती-क्वाथैश्च परिषेचनम् ॥ ३३ ॥
 नतवार्ताकिनीकुष्ठ-सैन्धवाऽमरदारुभिः ।
 तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ ३४ ॥
 पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः ।
 शीताः पित्तजितः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३५ ॥
 शतावरीमूलतुला चतुष्कात् क्षुण्णपीडितात् ।
 रसेन क्षीरतुल्येन पाचयेत् घृताढकम् ॥ ३६ ॥
 जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परुषकैः ।
 पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षौर्मधुकद्विबलान्वितैः ॥ ३७ ॥
 सिद्धशीते तु मधुनः पिप्पल्याश्च पलाष्ठकम् ।
 शर्कराया दशपलं क्षिपेद्विह्यात्पिचुं ततः ॥ ३८ ॥
 योन्यसृक्शुकदोषघ्नं कृष्यं, पुंसवनं परम् ।
 क्षतं क्षयमसृक्पित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ॥ ३९ ॥
 कामलां वातरुधिरं विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
 अपस्माराऽर्दिताऽऽयाम-मदोन्मादांश्च नाशयेत् ॥ ४० ॥
 एवमेव पयः सर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ।
 'गर्भदं' पित्तजानां च रोगाणां परमं हितम् ॥ ४१ ॥
 खलाद्रोणद्वयक्वाथे घृततैलाढकं पचेत् ।
 क्षीरे चतुर्गुणे कृष्णा-काकनासासितान्वितः ॥ ४२ ॥
 जीवन्तीक्षीरकाकोली-स्थिरावीरद्विजीवकैः ।
 पयस्याश्रावणीमुद्ग-पीलुमाषाख्यपर्णिभिः ॥ ४३ ॥

वातपित्तामयान् हत्वा पानाद्गर्भं दधाति तत् ।
रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धमवेक्ष्य च ॥ ४४ ॥
यथादोषोदयं युज्यात् रक्तस्थापनमौषधम् ।

पुण्याऽनुगं चूर्णम् ।

पाठा जम्बवाग्रयोरस्थि शिलोद्भेदं रसाञ्जनम् ॥ ४५ ॥
अम्बष्टां शाल्मलीपिच्छां समङ्गां वत्सकत्वचम् ।
बाह्लीकबिल्वातिविषा-रोध्र-तोयद-गैरिकम् ॥ ४६ ॥
शुण्ठीमधूक^१मृद्वीका-रक्तचन्दनकट्फलम् ।
कट्वङ्गवत्सकानन्ता-धातकीमधुकार्जुनम् ॥ ४७ ॥
पुण्ये गृहीत्वा सञ्चूर्ण्य सक्षौद्रं-^२तण्डुलाभ्रसा ।
पिबेदर्शःस्वतीसारे रक्तं यश्चोपवेश्यते ॥ ४८ ॥
दोषा जन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।
योनिदोषं रजोदोषं श्यावश्चेतारुणासितम् ॥ ४९ ॥
चूर्णं 'पुण्यानुगं' नाम हितमात्रेण पूजितम् ।
योन्यां बलास-दुष्टायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ ५० ॥
धातक्यामलकीपत्र-स्रोतोजमधुकोत्पलैः ।
जम्बवाग्रसारकासीस-रोध्रकट्फलतिन्दुकैः ॥ ५१ ॥
सौराष्ट्रिकादाडिमत्वग्दुग्धरशलादुभिः ।
अक्षमात्रैरजामूत्रे क्षीरे च द्विगुणे पचेत् ॥ ५२ ॥
तैलग्रस्थं तदभ्यङ्ग-पिचुबस्तिषु योजयेत् ।
शूनोत्तानोज्ञता स्तब्धा पिच्छिला स्त्रावणी तथा ॥ ५३ ॥

१. मधूकमाचीक-इति पाठान्तरम् । २. मूर्द्धन्यमध्योऽयं शब्दः ।

विप्लुतोपप्लुता योनिः सिद्धयेरसस्फोट-शूलिनी ।
 यवान्नमभयारिष्टं सीधु तैलं च शीलयेत् ॥ ५४ ॥
 पिप्पल्ययोरजः पथ्याप्रयोगांश्च समाप्तिकान् ।
 कासीसं त्रिफलं काङ्क्षी साम्रजम्ब्वस्थि धातुकी ॥ ५५ ॥
 पैच्छिल्ये क्षौद्रसंयुक्तश्चूर्णो वैशद्यकारकः ।
 पलाशघातकीजम्बू-समङ्गा-मोचसर्जजः ॥ ५६ ॥
 दुर्गन्धे पिच्छिले क्लेदस्तम्भनश्चूर्ण इष्यते ।
 आरग्वधादिवर्गस्य कषायः परिषेचनम् ॥ ५७ ॥
 स्तब्धानां कर्कशानां च कार्यं मार्दवकारकम् ।
 धारणं वेसवारस्य कृशरापायसस्य च ॥ ५८ ॥
 दुर्गन्धानां कषायः स्यात्तैलं वा कल्क एव वा ।
 चूर्णो वा सर्वगन्धानां पूतिगन्धापकर्षणः ॥ ५९ ॥
 श्लेष्मलानां कटुप्रायाः समूत्रा बस्तयो हिताः ।
 पित्ते समधुकक्षीरा वाते तैलाम्लसंयुताः ॥ ६० ॥
 सन्निपातसमुत्थायाः कर्म साधारणं हितम् ।
 एवं 'योनिषु शुद्धासु' गर्भं विन्दन्ति योषितः ॥ ६१ ॥
 अदुष्टे प्राकृते बीजे 'जीवोपक्रमणे' सति ।
 पञ्चकर्मविशुद्धस्य 'पुरुषस्यापि' चेन्द्रियम् ॥ ६२ ॥
 परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्धनैरुपाचरेत् ।

फल-सर्पिः ।

मज्जिष्ठाकुष्ठतगर-त्रिफलाशर्करावचाः ॥ ६३ ॥
 द्वे निशे मधुकं मेदा दीप्यकः कटुरोहिणी ।
 पयस्या-हिङ्गु-काकोली-वाजिगन्धा-शतावरीः ॥ ६४ ॥

पिष्ट्वात्तांशैर्धृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम् ।
 योनिशुक्रप्रदोषेषु तत्सर्वेषु च शस्यते ॥ ६५ ॥
 आयुष्यं पौष्टिकं मेध्यं धन्यं पुंसवनं परम् ।
 'फलसर्पिरिति' ख्यातं^१ पुष्पे पीतं फलाय यत् ॥ ६६ ॥
 त्रियमाणप्रजानां च गर्भिणीनां च पूजितम् ।
 एतत्परं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम् ॥ ६७ ॥
 इत्युत्तरस्थाने चतुर्त्रिंशोऽध्यायः ।



पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।

^२अथाऽतो विषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्मादुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'मथ्यमाने जलनिधावमृतार्थं सुरासुरैः'^३ ।
 जातः प्रागमृतोत्पत्तेः पुरुषो घोरदर्शनः ॥ १ ॥
 दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रो हरिक्लेशोऽनलेक्षणः ।
 जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनाऽसौ विषसंज्ञितः ॥ २ ॥

१. पुष्पे = आर्त्तवे सति पीतं सत्-यत् = यस्मात् फलाय
 कल्पते-अतः फलसर्पिरिति ख्यातमित्यन्वयः । इति ।

२. अथ विषतन्त्रम् ।

३. सुराऽसुरैः कर्तृभिमिलित्वा सुधार्थं सागरे मथ्यमाने सति-
 अमृतोत्पत्तेः पूर्वं घोरदर्शनादिविशेषणविशिष्टः पुरुषो जातः, तं=पुरुषं
 दृष्ट्वा जगत् = मुवनं विषण्णं = विषादं प्राप्तम् तेन जगतो विषाद-
 प्राप्त्या असौ = पुरुषः सजातविष-संज्ञः । च० चि० अ० २३।४।

हुङ्कृतो ब्रह्मणा मूर्ती ततः स्थावरजङ्गमे ।
 सोऽध्यतिष्ठन्नजं रूपमुज्झित्वा वञ्चनात्मकम् ॥ ३ ॥
 १स्थिरमत्युल्वणं वीर्यं यत्कन्देषु २ प्रतिष्ठितम् ।
 कालकूटेन्द्रवत्साख्यशृङ्गीहालाहलादिकम् १ ॥ ४ ॥
 सर्पलतादिदं प्लासु दारुणं जङ्गमं विषम् ।
 स्थावरं, जङ्गमं, चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् ॥ ५ ॥
 कृत्रिमं गरसंज्ञं, तु क्रियते विविधौषधैः ।
 हन्ति योगवशेनाशु चिराच्चिरतराच्च तत् ॥ ६ ॥
 शोफपाण्डूदरोन्माद-दुर्नामादीन् करोति च ।
 तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाययाशुकरं लघु ॥ ७ ॥
 विकाषि(शि)सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च ।
 ओजसो विपरीतं तत् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुणैः ॥ ८ ॥
 वातपित्तोत्तरं नृणां सद्यो हरति जीवितम् ।
 विषं हि देहं संप्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम् ॥ ९ ॥
 कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान् सहाशयान् ।
 ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते ॥ १० ॥

१. स्थिरम् = स्थावरम् ।

२. कन्देषु वीर्येऽत्युल्वणम्-पुष्पमूलफलादिषु तु कन्दापेक्षया-
 न्यूनवीर्यमित्यर्थः ।

३. आदिशब्दात् = कालकूटम्, वत्सनाभम्, साकतुकम्,
 वालकम्, कर्दमकम्, वैराटम्, मुस्तकम्, शृङ्गी, पुण्डरीकम्,
 महाविषम्, हालाहलम्, मर्कटकम्, काशपुष्पकम्, इन्द्रायुधम्,
 तैलम्,—इति संग्रहोक्ता भेदाः गृह्यन्ते । चरके चि० २३।११-१३ ।

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे पूर्वे प्रजायते ।

जिह्वायाः श्यावता स्तम्भो मूर्छा त्रासः क्लमो वमिः ॥ ११ ॥

द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कण्ठे च वेदना ।

विषं चामाशयं प्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ १२ ॥

तालुशोषस्तृतीये तु शूलं चामाशये भृशम् ।

दुर्बले हरिते शूने जायेते चास्य लोचने ॥ १३ ॥

पक्काशयगते तोदहिध्माकासान्त्रकूजनम् ।

चतुर्थे जायते वेगे शिरसश्चातिगौरवम् ॥ १४ ॥

कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पञ्चमे ।

सर्वदोषप्रकोपश्च पक्काधाने च वेदना ॥ १५ ॥

षष्ठे संज्ञाप्रणाशश्च सुभृशं चाऽतिसार्यते ।

स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे ॥ १६ ॥

प्रथमे विषवेगे तु चान्तं शीताम्बुसेचितम् ।

सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्तमगदं पाययेद् द्रुतम् ॥ १७ ॥

द्वितीये पूर्ववद्वान्तं विरिक्तं चाऽनु पाययेत् ।

तृतीयेऽगदपानं तु हितं नस्यं तथाञ्जनम् ॥ १८ ॥

चतुर्थे स्नेहसंयुक्तमगदं प्रतियोजयेत् ।

पञ्चमे मधुकक्काथमाक्षिकाभ्यां युतं हितम् ॥ १९ ॥

षष्ठेऽतिसारवत्सिद्धिः अवपीडस्तु सप्तमे ।

मूर्ध्नि काकपदं कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ २० ॥

कोशातक्यग्निकाः पाठा सूर्यवल्ल्यमृताभयाः ।

शेलुः शिरीषः किणिही हरिद्रे चौद्रसाङ्गया ॥ २१ ॥

पुनर्नवे त्रिकटुकं बृहत्यौ सारिवे बला ।

एषां यवागूं निर्यूहे शीतां सघृतमाक्षिकाम् ॥ २२ ॥

युष्मज्याद्वेगाभ्तरे सर्वविषघ्नो कृतकर्मणः ।

तद्वन्मधूक-मधुक-पद्म-केसर-चन्दनैः ॥ २३ ॥

चन्द्रोदयनामाऽगदः ।

‘अञ्जनं’ तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।

फलिनी त्रिकटु स्पृक्का नागपुष्पं सकेसरम् ॥ २४ ॥

हरेणु मधुकं मांसी रोचना कालमल्लिका^१ ।

श्रीवेष्टकं सर्जरसः शताह्वा कुङ्कुमं बला ॥ २५ ॥

तमालपत्रं तालीसं भूर्जोशीरे निशाद्वयम् ।

कन्योपवासिनी स्नाता शुक्लवासा मधुद्रुतैः ॥ २६ ॥

द्विजानभ्यर्च्य तैः पुण्ये कल्पयेदगदोत्तमम् ।

वैद्यश्चात्र तदा मन्त्रं प्रयतात्मा पठेदिमम् ॥ २७ ॥

‘नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च ।

यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम् ॥ २८ ॥

एतेन सत्यवाक्येन ‘अगदो’ मे प्रसिद्धयतु ।

नमो वैदूर्यमाते हुलुहुलु रक्ष मां सर्वविषेभ्यः ॥ २९ ॥

गौरि गान्धारि चाण्डालि मातङ्गि स्वाहा ।’

पिष्टे च द्वितीयो मन्त्रः ॐ ‘ओं हरिमायि स्वाहा’ ॥ ३० ॥

अशेषविषवेताल-ग्रहकर्मणपाप्मसु ।

मरकज्याधिदुर्भिक्ष-युद्धाशनिभयेषु च ॥ ३१ ॥

पाननस्याञ्जनालेप-मणिबन्धादियोजितः ।

एष 'चन्द्रोदयो' नाम शान्तिः ^१स्वस्त्ययनं परम् ॥ ३२ ॥

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा

दावाग्निवातातपशोषितं वा ।

स्वभावतो वा ^२न गुणैः सुयुक्तं

दूषीविषाख्यां विषमभ्युपैति ॥ ३३ ॥

वीर्याल्पभावादविभाव्यमेतत् कफावृतं वर्षगणानुबन्धि ।

तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो दुष्टास्त्ररोगी तृडरोचकार्तः ॥ ३४ ॥

मूर्च्छन् वमन् गद्गदवाग् विमुह्यन्

भवेच्च दूष्योदरलिङ्गजुष्टः ।

आमाशयस्थे कफवातरोगी

पक्काशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ॥ ३५ ॥

भवेन्नरो ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो

विलुनपत्तः स यथा विहङ्गः ।

स्थितं रसादिष्वथवा विचित्रान्

करोति धातुप्रभवान् विकारान् ॥ ३६ ॥

प्राग्वाताऽजीर्णशीताऽभ्र-दिवास्वप्नाऽहिताशनैः ।

दुष्टं दूषयते धातूनतो दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३७ ॥

दूषीविषात् सुस्विन्नमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम् ।

'दूषीविषारिमगदं' लेहयेन्मधुना प्लुतम् ॥ ३८ ॥

पिप्पल्यो ध्यामकं मांसी रोध्रमेला सुवर्चिका ।

कुटन्नटं नतं कुष्ठं यष्टी चन्दनगैरिकम् ॥ ३९ ॥

१. शान्तिकरे-शान्तित्वारोपः प्राशस्त्यबोधनाय ।

२. स्वभावतो वा (सु) स्वगुणैर्न युक्तम्- इति पाठः ।

'दूषीविषारिर्नाम्नाऽयं' न चाऽन्यत्राऽपि वार्यते ।
 विषप्रदिग्धेन विद्धस्तु प्रताम्यति मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥
 विवर्णभावं भजते विषादं चाशु गच्छति ।
 कीटैरिवानृतं चास्य गात्रं चिमिचिमायते ॥ ४१ ॥
 श्रोणिपृष्ठशिरःस्कन्धसन्धयः स्युः सवेदनाः ।
 कृष्णदुष्टास्त्रविस्त्रावी तृणमूर्च्छाज्वरदाहवान् ॥ ४२ ॥
 दृष्टिकालुष्यवमथु-श्वासकासकरः क्षणात् ।
 आरक्तपीतपर्यन्तः श्यावमध्योऽतिरुग्मणः ॥ ४३ ॥
 शूयते पच्यते सद्यो गत्वा मांसं च कृष्णताम् ।
 प्रविलिन्नं शीर्यतेऽभीक्ष्णं सपिच्छिलपरिस्रवम् ॥ ४४ ॥
 कुर्यादमर्मविद्धस्य हृदयावरणं द्रुतम् ।
 शल्यमाकृष्य तप्तेन लोहेनानु दहेद् व्रणम् ॥ ४५ ॥
 अथवा मुष्ककश्वेता-सोमत्वक्ताम्रवह्नितः ।
 शिरीषाद् गृध्रनख्याश्च क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ ४६ ॥
 शुक्रनासाप्रतिविषाव्याघ्रीमूलैश्च लेपयेत् ।
 कीटदृष्टचिकित्सां च कुर्यात्तस्य यथार्हतः ॥ ४७ ॥
 व्रणे तु पूतिपिशिते क्रिया पित्तविसर्पवत् ।
 सौभाग्यार्थं^१ स्त्रियो भर्त्रे^२ राज्ञे वाऽरातिचोदिताः ॥ ४८ ॥
 गरमाहारसंपृक्तं यच्छ्रन्त्यासन्नवर्तिनः^३ ।

१. सौभाग्यार्थं = कामुकमङ्गमार्थम् ।

२. शस्त्रेण वेणी विनिगूहितेन, विदूरथं वै महिषी जघान ।
 विषप्रदिग्धेन च नूपुरेण, देवी विरक्ता किल काशिराजम् । बृ० सं० ।

३. आसन्नवर्तिनः = शयनाऽऽसनभोजनाभ्यङ्गादि परिचारकाः ।

नानाप्राण्यङ्गशमल-विरुद्धौषधिभस्मनाम् ॥ ४९ ॥
 विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर-इति स्मृतः ।
 तेन पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निः कासश्चासज्वरार्दितः ॥ ५० ॥
 वायुना प्रतिलोमेन स्वप्नचिन्तापरायणः ।
 महोदरयकृष्णलीहो ^१ दीनवाग्दुर्बलोऽलसः ॥ ५१ ॥
 शोफवान् सतताध्मातः शुष्कपादकरः क्षयी ।
 स्वप्ने गोमायुमार्जार-नकुलव्यालवानरान् ॥ ५२ ॥
 प्रायः पश्यति शुष्कांश्च वनस्पतिजलाशयान् ।
 मन्यते कृष्णमात्मानं गारो गौरं च कालकः ॥ ५३ ॥
 विकर्णनासानयनं पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ।
 एतैरन्यैश्च बहुभिः क्लिष्टो घोरैरुपद्रवैः ॥ ५४ ॥
 गरार्तो नाशमाप्नोति कश्चित्सद्योऽचिकित्सितः ।
 गरार्तो वान्तवान् भुक्त्वा तत्पथ्यं पानभोजनम् ॥ ५५ ॥
 शुद्धहृच्छीलयेद्धेम सूत्रस्थानविधेः ^२ स्मरन् ।
 शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः ॥ ५६ ॥
 लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम् ।
 मूर्वाभृतानतकणा-पटोलीचग्यचित्रकान् ॥ ५७ ॥
 वचामुस्तविडङ्गानि-तक्रकोष्णाम्बुमस्तुभिः ।

शङ्ख—प्रलोभिता-राशे-इत्यन्वयः ।

१. महोदरादीनां द्वन्द्वे मत्वर्थीयोऽच-टिलोपः ।

२. विधेरिति कर्मणि षष्ठी, 'शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमचूर्णस्य दापयेदि'ति-सूत्रम् ।

पिबेद्रसेन वाम्लेन गरोपहतपावकः ॥ ५८ ॥

पारावतामिषशठी-पुष्कराह्वृतं हिमम् ।

गरतृष्णारुजाकास-श्वासहिध्माज्वरापहम् ॥ ५९ ॥

२विषप्रकृतिकालान्न-दोषदूष्यादिसङ्गमे ।

‘विषसङ्कटमुद्दिष्टं’ शतस्यैकोऽन्न जीवति ॥ ६० ॥

क्षुत्तृष्णाघर्मदौर्बल्य-क्रोधशोकभयश्रमैः ।

अजीर्णवर्चोद्वतः पित्तमारुतवृद्धिभिः ॥ ६१ ॥

तिलपुष्पफलाघ्राण-भूबाष्पघनगर्जितैः ।

हस्तिमूषिकवादित्र-निःस्वनैर्विषसङ्कटैः ॥ ६२ ॥

पुरोवातोत्पलामोदमदनैर्वर्धते विषम् ।

वर्षासु चाम्बुयोनित्वात्सङ्खलेदं गुडवद्गतम् ॥ ६३ ॥

विसर्पति घनापाये तदगस्त्यो हिनस्ति च ।

प्रयाति मन्दवीर्यत्वं विषं तस्माद् घनात्यये ॥ ६४ ॥

इति प्रकृतिसाम्यर्तु-स्थानवेगबलाबलम् ।

आलोच्य निपुणं बुद्ध्या कर्मानन्तरमाचरेत् ॥ ६५ ॥

श्लैष्मिकं वमनैरुष्ण-रूक्ष-तीक्ष्णैः प्रलेपनैः ।

कषायकटुतिक्तैश्च भोजनैः शमयेद्विषम् ॥ ६६ ॥

२. विषप्रकृतिः = पित्तम्, हेमसर्वविषाण्याशु, गरांश्च विनियच्छति ॥ च० चि० २३।२३९ ॥ विष-कालः = वर्षा, विषान्नम् = सर्षपादि, विषदोषः = पित्तम्, विषदूष्यम् = रक्तम्, एतेषां संयोगे सति विषसङ्कटमित्युच्यते । विषपदस्य द्वन्द्वादौ श्रूयमाणत्वेन प्रत्येकमन्वयः ।

पैत्तिकं खंसनैः सेकप्रदेहैर्भुशशीतलैः ।
 कषायतिक्तमधुरैर्घृतयुक्तैश्च भोजनैः ॥ ६७ ॥
 वातात्मकं जयेत्स्वादु-स्निग्धाम्ललवणान्वितैः ।
 सघृतैर्भोजनैर्लेपैस्तथैव पिशिताशनैः ॥ ६८ ॥
 नाघृतं खंसनं शस्तं प्रलेपो भोज्यमौषधम् ।
 सर्वेषु सर्वावस्थेषु विषेषु न घृतोपमम् ॥ ६९ ॥
 विद्यते भेषजं किञ्चिद्विशेषात्प्रबलेऽनिले ।
 अयत्नाच्छ्लेष्मिकं साध्यं यत्नात्पित्ताशयाश्रयम् ।
 सुदुःसाध्यमसाध्यं वा वाताशयगतं विषम्^१ ॥ ७० ॥

इत्युत्तरस्थाने पञ्चविंशोऽध्यायः ।



१. मुहुर्मुहुः शिरोन्यासः, शोथः सस्तौष्ठकर्णता ।
 ज्वरस्तब्धाक्षिगात्रत्वं, हनुकम्पोक्कमर्दनम् ॥ २२९ ॥
 रोमाऽपगमनं ग्लानिररतिर्वैपथ्यभ्रमः ।
 चतुष्पदां भवत्येतद्दंष्टानामिह लक्षणम् ॥ २३० ॥
 देवदारु हरिद्रे द्वे सरलं चन्दनाऽगुरु ।
 रास्ना गोरोचनाऽजाजी गुग्गुलिबक्षु रसो नतम् ॥ २३१ ॥
 चूर्णं ससैन्धवाऽनन्तं गोपित्तमधुसंयुतम् ।
 चतुष्पदानां दंष्टानाम्, 'अगदः' सार्वकर्मिकः ॥ २३२ ॥
 च० चि० अ० २३ । इति ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्पविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥
'दर्वीकरा मण्डलिनो राजीमन्तश्च पन्नगाः ।
त्रिधा समासतो^१ भौमा, भिद्यन्ते ते त्वनेकधा ॥ १ ॥
^२व्यासतो योनिभेदेन नोच्यन्तेऽनुपयोगिनः ।
विशेषाद्रूक्षकटुकमग्लोष्णं स्वादुशीतलम् ॥ २ ॥
विषं दर्वीकरादीनां क्रमाद्वातादिकोपनम् ।
तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च ॥ ३ ॥
विषोत्पणा भवन्त्येते^३ व्यन्तरा ऋतुसन्धिषु ।
रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः ॥ ४ ॥
फणिनः शीघ्रगतयः सर्पा 'दर्वीकराः स्मृताः ।
ज्ञेया 'मण्डलिनो'ऽभोगा^४ मण्डलैर्विविधश्चिताः ॥ ५ ॥
प्रांशवोऽमन्दगमना ॥ 'राजीमन्त'स्तु राजिभिः ।
स्निग्धा विचित्रवर्णाभिस्तिर्यग्धूर्वा विचित्रिताः ॥ ६ ॥
गोधासुतस्तु गौधेरो विषे दर्वीकरैः समः ।
चतुष्पाद् ॥ व्यन्तरान्विद्यादेतेषामेव सङ्करात् ॥ ७ ॥
व्यामिश्रलक्षणास्ते हि सन्निपातप्रकोपनाः ।

१. समासतः = सङ्क्षेपात् ।

२. व्यासतः = विस्तरतः सुश्रुते द्रष्टव्याः ।

३. व्यन्तराः = सङ्करजातयः ।

४. अभोगाः = अल्पशरीराः, (अहेः शरीरं भोगः स्यात्) ।

आहारार्थं भयात्पादस्पर्शादतिविषात् क्रुधः ॥ ८ ॥
 पापवृत्तितया वैराद्देवर्षियमचोदनात् ।
 दशन्ति सर्पास्तेषूक्तं विषाधिक्यं यथोत्तरम् ॥ ९ ॥
 आदिष्टात्कारणं ज्ञात्वा प्रतिकुर्याद्यथायथम् ।
 व्यन्तरः पापशीलत्वान्मार्गमाश्रित्य तिष्ठति ॥ १० ॥
 यत्र लालापरिकलेदमात्रं गात्रे प्रदृश्यते ।
 न तु दंष्ट्राकृतं दंशं^१ तत्तुण्डाहतमादिशेत् ॥ ११ ॥
 एकं दंष्ट्रापदं द्वे वा 'व्यालीढाख्य'मशोणितम् ।
 दंष्ट्रापदे सस्ते द्वे 'व्यालुप्तं' त्रीणि तानि तु ॥ १२ ॥
 मांसच्छेदादविच्छिन्नरक्तवाहीनि 'दंष्ट्रकम्' ।
 दंष्ट्रापदानि चत्वारि तद्वद्दृष्टनिपीडितम् ॥ १३ ॥
 निर्विषं द्वयमत्राद्यमसाध्यं पश्चिमं वदेत् ।
 विषं नाहेयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः ॥ १४ ॥
 रक्तमण्वपि तु प्राप्तं वर्धते^२ तैलमम्बुवत् ।
 भीरोस्तु सर्पसंस्पर्शान्नयेन कुपितोऽनिलः ॥ १५ ॥
 कदाचित्कुरुते शोफं 'सर्पाङ्गाभिहतं' तु तत् ।
 दुर्गान्धकारे विद्धस्य^३ केनचिद्दृशङ्कया ॥ १६ ॥
 विषोद्वेगो ज्वरच्छर्दिर्मूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत् ।
 ग्लानिर्मोहोऽतिसारो वा तच्छङ्काविषमुच्यते ॥ १७ ॥

१. तत् = दंशं, तुण्डेन = मुखेन-आहतं = कृत्वाऽऽघातं वदेत् ।

२. अम्बुनीव-अम्बुवत्, सप्तम्यन्ताद् वतिः ।

३. केनचित् = काष्ठादिना विद्धस्य दंष्ट्रशङ्कया यो विषोद्वेगः,
 स्यात्-तत्-शङ्काविषमित्युच्यते-इत्यन्वयः ।

तुद्यते 'सविषो दंशः' कण्डूशोफरुजान्वितः ।
 दह्यते प्रथितः किञ्चिद् विपरीतस्तु निर्विषः ॥ १८ ॥
 'पूर्वे' दर्वीकृतां वेगे दुष्टं श्यावीभवस्यसृक् ।
 श्यावता तेन वक्रादौ सर्पन्तीव च कीटकाः ॥ १९ ॥
 'द्वितीये' ग्रन्थयो वेगे, 'तृतीये' मूर्ध्नि गौरवम् ।
 दुर्गन्धो दंशविकलेद'श्चतुर्थे' घ्नीवनं वमिः ॥ २० ॥
 सन्धिविरलेषणं तन्द्रा 'पञ्चमे' पर्वभेदनम् ।
 दाहो हिध्मा च, 'षष्ठे' च हृत्पीडा गात्रगौरवम् ॥ २१ ॥
 मूर्च्छाऽविपाकोऽतीसारः, प्राप्य शुक्रं तु 'सप्तमे' ।
 स्कन्धपृष्ठकटीभङ्गः सर्वचेष्टानिवर्तनम् ॥ २२ ॥
 अथ 'मण्डलिदष्टस्य' दुष्टं पीतीभवस्यसृक् ।
 तेन पीताङ्गता दाहो, 'द्वितीये' श्वयथूद्धवः ॥ २३ ॥
 'तृतीये' दंशविकलेदः स्वेदस्तृणा च जायते ।
 चतुर्थे ज्वर्यते, दाहः पञ्चमे सर्वगात्रगः ॥ २४ ॥
 दष्टस्य 'राजिलै' दुष्टं पाण्डुतां याति शोणितम् ।
 पाण्डुता तेन 'गात्राणां' द्वितीये गुरुताऽति च, ॥ २५ ॥
 'तृतीये' दंशविकलेदो नासिकाक्षिमुखस्रवाः ।
 चतुर्थे गरिमा मूर्ध्नो मन्यास्तम्भश्च पञ्चमे ॥ २६ ॥
 गात्रभङ्गो ज्वरः शीतः श्लेशयोः पूर्ववद्वदेत् ।
 कुर्यात्पञ्चसु वेगेषु चिकित्सां न ततः परम् ॥ २७ ॥

अल्पविषाः

जलाप्लुता रतिक्षीणा भीता नकुलनिर्जिताः ।

१. दर्वीकृतां = दर्वीकराणां पूर्वे = प्रथमे—वेगे = विषवेगे ।

शीतवातातपव्याधि-क्षुत्तृष्णाश्रमपीडिताः ॥ २८ ॥

तूर्णं देशान्तरायाता विमुक्तविषकञ्चुकाः ।

कुशौषधीकण्टकवद् ये चरन्ति^१ च काननम् ॥ २९ ॥

देशं च दिव्याध्युषितं^२ सर्पास्ते 'अल्पविषा' मताः ।

असाध्यता ।

श्मशानचित्तिचैत्यादौ^३ पञ्चमीपक्षसन्धिषु ॥ ३० ॥

अष्टमीनवमीसन्ध्यामध्यरात्रिदिनेषु च ।

याम्याग्नेयमघाश्लेषाविशाखापूर्वनैर्ऋते ॥ ३१ ॥

^४ नैर्ऋताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत् ।

दष्टमात्रः सितास्याक्षः शीर्यमाणशिरोरुहः ॥ ३२ ॥

स्तब्धजिह्वो मुहुर्मूर्च्छन् शीतोच्छ्वासो न जीवति ।

हिध्मा श्वासो वमिः कासो दष्टमात्रस्य देहिनः ॥ ३३ ॥

जायन्ते युगपद्यस्य स हच्छूली न जीवति ।

१. ये च-कुशौषधी-कण्टकवद्-काननं = वनं चरन्ति = भ्रमन्ति ते सर्पाः ।

२. ये च दिव्यैः सुरमुनिसिद्धादिभिः, अध्युषितम् = अधिष्ठितम्-देशं चरन्ति ते सर्पाः-अल्पविषाः कथिताः-विषतन्त्रकुशलैः ।

३. आदिशब्दात् 'श्मशान-चैत्य-वल्मीक-पञ्चाऽऽश्रम-सुरालये-' इत्यादयः, च० चि० अ० २३।१५९ चितिः = कृतचयना यज्ञभूमिः, सामान्यचत्वरश्च, यजुर्वेद० अ० ११-१८ पर्यन्तम् ।

४. नैर्ऋताख्यः = पञ्चदशधा विभक्तस्य दिवसस्य द्वादशो भागः-निर्ऋतिदेवताको मुहूर्तस्त्वस्मिन्, मु० चि० प्र० ६ ।

फेनं वमति निःसंज्ञः श्यावपादकराननः ॥ ३४ ॥
 नासावसादो भङ्गोऽङ्गे विङ्भेदः श्लथसन्धिता ।
 विषपीतस्य दष्टस्य दिग्धेनाभिहतस्य च ॥ ३५ ॥
 भवन्त्येतानि रूपाणि सम्प्राप्ते जीवितक्षये ।
 न नस्यैश्वेतना तीक्ष्णैर्न क्षतात्क्षतजागमः ॥ ३६ ॥
 दण्डाहतस्य नो राजिः प्रयातस्य यमान्तिकम् ।

साध्यता ।

अतोऽन्यथा तु त्वरया प्रदीप्तागारवद्विषक् ॥ ३७ ॥
 रक्षन् कण्ठगतान् प्राणान् विषमाशु शमं नयेत् ।
 मात्राशतं विषं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः ॥ ३८ ॥
 देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयेत् ।
 एतस्मिन्नन्तरे कर्म दंशस्योत्कर्तनादिकम् ॥ ३९ ॥
 कुर्याच्छीघ्रं यथा देहे विषवह्नी न रोहति ।
 दष्टमात्रोऽदशेदाशु तमेव पवनाशिनम् ॥ ४० ॥
 लोष्टं महीं वा दशनैश्छित्त्वा चाऽनु ससम्भ्रमम् ।
 निष्ठीवेन समालिम्पेद्दंशं कर्णमलेन वा ॥ ४१ ॥
 दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टां चतुरङ्गुले ।
 क्षौमादिभिर्वेणिकया^१ सिद्धैर्मन्त्रैश्च मन्त्रवित् ॥ ४२ ॥
 अम्बुवस्सेतुबन्धेन बन्धेन स्तभ्यते विषम् ।
 न वहन्ति सिराश्चाऽस्य विषं बन्धाभिपीडिताः ॥ ४३ ॥

१. स्वजप्यमन्त्राः विपरीताक्षर-पठिताः सन्तः, विषाऽपनयने
 सिद्धाः, शाबर-मन्त्राश्च बहवः ।

निष्पीड्यान्द्धरेदंशं मर्मसन्ध्यगतं तथा ।
 न जायते विषावेगो बीजनाशादिवाऽङ्कुरः ॥ ४४ ॥
 दंशं मण्डलिनां मुक्त्वा पित्तलत्वादथाऽपरम् ।
 प्रतप्तैर्हर्मलोहाद्यैर्दहेदाशूलमुकेन वा ॥ ४५ ॥
 करोति भस्मसात्सद्यो वह्निः किं नाम च क्षणात् ।
 आचूषेत्पूर्ववक्त्रो वा^१ मृद्भस्मा-गद-गोमयैः ॥ ४६ ॥
 प्रच्छायांतररिष्टायाः, मांसलं तु विशेषतः ।
 अङ्गं सहैव दंशेन लेपयेदगदैर्मुहुः ॥ ४७ ॥
 चन्दनोशीरयुक्तेन सलिलेन च सेचयेत् ।
 सिरामोकः ।

विषे प्रविस्ते विध्येत्सिरां सा परमा क्रिया ॥ ४८ ॥
 रक्ते निर्द्वियमाणे हि कृत्स्नं निर्द्वियते विषम् ।
 दुर्गन्धं सविषं रक्तमग्नौ चटचटायते ॥ ४९ ॥
 यथादोषं विशुद्धं च पूर्ववत्क्षयेदसृक् ।
 सिरास्वदृश्यमानासु योज्याः शृङ्गजलौकसः ॥ ५० ॥
 शोणितं 'स्रुतशेषं' च विलीनं विषोष्मणा ।
 लेपसेकैस्तु बहुशः स्तम्भयेद्भृशशीतलैः ॥ ५१ ॥
 अस्कन्ने विषवेगाद्धि मूर्च्छाय-मद-हृद्द्रवाः ।
 भवन्ति, तान् जयेच्छीतैर्वीजेचारोमहर्षतः ॥ ५२ ॥
 स्कन्ने तु रुधिरं सद्यो विषवेगः प्रशाम्यति ।

१. वा मृद् भस्माऽगद-गोमयैः पूर्ववक्त्रः सन्-अरिष्टायाः =
 बन्धनपट्टिकायाः-अन्तः = मध्यं प्रच्छाद्य = प्रच्छादनं कृत्वाऽऽचूषेत् ।
 अरुणः । छो = छेदने दि०, छद = अपवारणे चु० ।

विषं कर्षति तीक्ष्णत्वाद् हृदयं, तस्य गुप्तये ॥ ५३ ॥
 पिबेद् घृतं घृतक्षौद्रमगदं वा घृताप्लुतम् ।
 हृदयावरणे चास्य श्लेष्मा हृद्युपचीयते ॥ ५४ ॥
 प्रवृत्तगौरवोत्क्लेशहृत्प्रासं वामयेत्ततः ।
 द्रवैः काञ्जिककौलत्थतैलमद्यादिवर्जितैः ॥ ५५ ॥
 वमनैर्विषहन्निश्च नैवं व्याप्नोति तद्वपुः ।
 भुजङ्ग-दोष-प्रकृति-स्थान-वेग-विशेषतः ॥ ५६ ॥
 सुसूक्ष्मं सम्यगालोच्य विशिष्टां चाऽऽचरेत्क्रियाम् ।
 सिन्दुवारितमूलानि श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ ५७ ॥
 पानं 'दर्वीकरैर्दष्टे' नस्यं मधु सपाकलम् ।
 'कृष्णसर्पण' दष्टस्य लिम्पेद्दंशं हृतेऽसृजि ॥ ५८ ॥
 चारटीनाकुलीभ्यां वा तीक्ष्णमूलविषेण वा ।
 पानं च क्षौद्रमञ्जिष्ठा-गृहधूमयुतं घृतम् ॥ ५९ ॥
 तण्डुलीयककाशमर्य-किणिहीगिरिकर्णिकाः ।
 मातुलुङ्गी सिता सेलुः पाननस्याञ्जनैर्हितः ॥ ६० ॥
 अगदः 'फणिनां' घोरे विषे राजीमतामपि ।
 समा सुगन्धा मृद्वीका श्वेताख्या गजदन्तिका ॥ ६१ ॥
 अर्धोशं सौरसं पत्रं कपित्थं बिल्वदाडिमम् ।
 सक्षौद्रो मण्डलिविषे विशेषादगदो हितः ॥ ६२ ॥
 पञ्चवल्क-वरा-यष्टी-नाग-पुष्पैलवालुकम् ।
 जीवकर्षभकौशीरं सितापद्मकमुत्पलम् ॥ ६३ ॥
 सक्षौद्रो 'हिमवान्नाम'^१ हन्ति 'मण्डलिनां' विषम् ।

१. हिमवान् नामा अगदः ।

लेपाच्छ्वयथुवीसर्प-विस्फोटज्वरदाहहा ॥ ६४ ॥
 काश्मर्यवटशुङ्गानि^१ जीवकर्षभकौ सिता ।
 मज्जिष्ठा मधुकं चेति दष्टो 'मण्डलिना' पिबेत् ॥ ६५ ॥
 वंशत्वग्बीजकटुका-पाटली बीजनागरम् ।
 शिरीषबीजातिविषे मूलं गावेधुकं वचा ॥ ६६ ॥
 पिष्टो गोवारिणाष्टाङ्गो हन्ति 'गोनसजं' विषम् ।
 कटुकातिविषाकुष्ठ-गृहधूमहरेणुकाः ॥ ६७ ॥
 सक्षौद्रव्योषतगरा घ्नन्ति 'राजीमतां' विषम् ।
 निखनेत्काण्डचित्राया दंशं यामद्वयं भुवि ॥ ६८ ॥
 उद्धृत्य प्रच्छितं सर्पिर्धान्यमृद्भ्यां प्रलेपयेत् ।
 पिबेत् पुराणं च घृतं वराचूर्णावचूर्णितम् ॥ ६९ ॥
 जीर्णे विरिक्ते भुञ्जीत यवान्नं सूपसंस्कृतम् ।
 करवीरार्ककुसुम-मूललाङ्गलिकाकणाः ॥ ७० ॥
 कल्कयेदारनालेन पाठामरिचसंयुताः ।
 एष 'व्यन्तरदष्टानामगदः' सार्वकार्मिकः ॥ ७१ ॥
 शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम्^२ ।
 भावितं सर्पदष्टानां पाने नस्येऽञ्जने हितम् ॥ ७२ ॥
 द्विपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रचतुष्पलम् ।
 अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥ ७३ ॥
 अथ 'दर्वीकृतां वेगे पूर्वं विस्त्राग्य शोणितम् ।
 अगदं मधुसर्पिभ्यां संयुक्तं त्वरितं पिबेत् ॥ ७४ ॥

१. शुङ्ग-शब्दो वटादिकोरकेषु प्रसिद्धः (शुङ्गा)

२. सितं मरिचं = शोभाजनबीजम् ।

द्वितीये वमनं कृत्वा तद्वदेवागदं पिबेत् ।

विषापहैः प्रयुञ्जीत तृतीयेऽञ्जननावने ॥ ७५ ॥

पिबेच्चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागं वमने कृते ।

पृष्ठपञ्चमयोः शीतैर्दिग्धं सिक्तमभीक्ष्णशः ॥ ७६ ॥

पाययेद्वमनं तीक्ष्णं यवागं च विषापहैः ।

अगदं सप्तमे तीक्ष्णं युञ्ज्यादञ्जननस्ययोः ॥ ७७ ॥

कृत्वाऽवगाढं शस्त्रेण मूर्ध्नि काकपदं^३ ततः ।

मांसं सरुधिरं तस्य चर्म वा तत्र निक्षिपेत् ॥ ७८ ॥

तृतीये वमितः पेयां वेगे मण्डलिनां पिबेत् ।

अतीक्ष्णमगदं षष्ठे गणं वा पद्मकादिकम् ॥ ७९ ॥

आद्येऽवगाढं प्रच्छाय^४ वेगे दष्टस्य राजिलैः ।

अलाबुना हरेद्रक्तं पूर्ववच्चागदं पिबेत् ॥ ८० ॥

षष्ठेऽञ्जनं तीक्ष्णतममवपीडं च योजयेत् ।

अनुक्तेषु च वेगेषु क्रियां दर्वीकरोदिताम् ॥ ८१ ॥

गर्भिणीवालवृद्धेषु मृदुं, विध्येत्सिरां न च ।

त्वङ्मनोह्वानिशो वक्र रसः शार्दूलजो नखः ॥ ८२ ॥

तमालः केसरं शीतं पीतं तण्डुलवारिणा ।

हन्ति सर्वविषान्येतद्वज्रिवज्रमिवासुरान् ॥ ८३ ॥

२. पूर्वनिपातप्रकरणस्याऽनित्यत्वात्संख्याया अल्पीयस्याः इत्य-
स्याऽप्राप्तौ अल्पाक्षरस्य पूर्वनिपातः । वृत्तानुरोधी बलीयान् ।

३. काकपदं = तदाकारं क्षतम् ।

४. प्रच्छाय = छित्वा, छो = छेदने ।

बिल्वस्य मूलं सुरसस्य

पुष्पं फलं करञ्जस्य नतं सुराह्वम् ।

फलत्रिकं व्योषनिशाद्वयं च

बस्तस्य मूत्रेण सुसूक्ष्मपिष्टम् ॥ ८४ ॥

भुजङ्गलतोन्दुरवृश्चिकाद्यै-

र्विषूचिकाजीर्णगरज्वरैश्च ।

आर्तान्नरान् भूतविधर्षितांश्च

स्वस्थीकरोत्यञ्जनपाननस्यः ॥ ८५ ॥

प्रलेपाद्यैश्च निःशेषं दंशाद्रप्युद्धरेद्विषम् ।

भूयो वेगाय जायेत शेषं दूषीविषाय वा ॥ ८६ ॥

बिषापायेऽनिलं क्रुद्धं स्नेहादिभिरुपाचरेत् ।

तैलमद्यकुलत्थाम्लवज्यैः पवननाशनैः ॥ ८७ ॥

पित्तं पित्तज्वरहरैः कषायस्नेहवस्तिभिः ।

समाक्षिकेण वर्गेण कफमारग्वधादिना ॥ ८८ ॥

सिता वैगन्धिको द्राक्षा पयस्या मधुकं मधु ।

पानं समन्त्रपूताम्बुप्रोक्षणं सान्स्वहर्षणम् ॥ ८९ ॥

‘सर्पाङ्गाभिहते’ युञ्ज्यात्तथा ‘शङ्काविषादिते’ ।

कर्केतनं मरकतं वज्रं वारणमौक्तिकम् ॥ ९० ॥

वैडूर्यं गर्दभमणिं पिचुकं विषमूषिकाम् ।

हिमवद्भिरिसम्भूतां सोमराजीं पुनर्नवाम् ॥ ९१ ॥

तथा द्रोणां महाद्रोणां मानसीं सर्पजं मणिम् ।

१. हैमवतीं वचां वासाञ्च ।

विषाणि^१ विपशान्त्यर्थं वीर्यवन्ति च धारयेत् ॥ ९२ ॥
 छत्री शर्शरपाणिश्च चरेद्वात्रौ विशेषतः ।
^२तच्छायाशब्दवित्रस्ताः प्रणश्यन्ति भुजङ्गमाः ॥ ९३ ॥
 इत्युत्तरस्थाने षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कीटलूतादिविषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

[अथ कीटादिविषप्रतिषेधः ।]

सर्पाणामेव विष्मूत्र-शुक्राण्डशक्थजाः ।

दोषैर्व्यस्तैः ^३समस्तैश्च युक्ताः कीटाश्चतुर्विधाः ॥ १ ॥

दृष्टस्य कीटैर्वायव्यैर्दृशस्तोदरुजोत्वणः ।

आग्नेयै, रत्नसंस्त्रावो दाहरागविसर्पवान् ॥ २ ॥

पक्वपीलुफलप्रख्यः खर्जूरसदृशोऽथवा ।

कफाधिकैर्मन्दरुजः पक्वोदुम्बरसन्निभः ॥ ३ ॥

१. विषाणि च धारयेत् । इति संबन्धः ।

२. छत्रच्छायाया शर्शरवाद्य-शब्देन च विशेषेण त्रस्ता = भीताः
 सन्तो भुजङ्गमाः = सर्पाः इत्युपलक्षणं व्याघ्रादयोऽपि पलायन्ते । अतः
 एव पत्रवाहकाः कान्तारेषु रात्रावपि निर्भीका विचरन्ति । इति ।

३. वातोत्वणाः, पित्तोत्वणाः, कफोत्वणाः त्रिदोषोत्वणा-इति
 चतुः प्रकाराः कीटाः, प्रकारान्तरेण तु-बहुभेदाः ।

स्त्रावाढ्यः सर्वलिङ्गस्तु विवर्ज्यः सान्निपातिकैः ।
 वेगाश्च सर्पवच्छोफो वर्धिष्णुर्विस्तरक्तता ॥ ४ ॥
 शिरोक्षिगौरवं मूर्च्छा भ्रमः श्वासोऽतिवेदना ।
 सर्वेषां कर्णिका, शोफो, ज्वरः, कण्डूरोचकः ॥ ५ ॥
 'वृश्चिकस्य' विषं तीक्ष्णमादौ दहति वह्निवत् ।
 ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६ ॥
 दंशः सद्योऽतिरुक्ष्यावस्तुद्यते स्फुटतीव च ।
 १ते गवादिशकृत्कोथादिग्धदष्टादिकोथतः ॥ ७ ॥
 सर्पकोथाच्च सम्भूता मन्द-मध्य-महाविषाः ।
 मन्दाः पीताः सिताः श्यावा रुक्कर्वुरमेचकाः ॥ ८ ॥
 रोमशा बहुपर्वाणो लोहिताः पाण्डुरोदराः ।
 धूम्रोदरास्त्रिपर्वाणो 'मध्यास्तु' कपिलारुणाः ॥ ९ ॥
 पिशङ्गाः शबलाश्चित्राः शोणिताभाः महाविषाः ।
 अग्न्याभा द्व्येकपर्वाणो रक्तासितसितोदराः ॥ १० ॥
 तैर्दष्टः शूनरसनः स्तब्धगात्रो ज्वरार्दितः ।
 खैर्वमन् शोणितं कृष्णमिन्द्रियार्थानसंविदन् ॥ ११ ॥
 स्विद्यन् मूर्च्छन् विशुष्कास्यो विह्वलो वेदनातुरः ।
 विशीर्यमाणमांसश्च प्रायशो विजहात्यसून् ॥ १२ ॥
 १उच्छिदिङ्गस्तु-वक्त्रेण दशत्यभ्यधिकव्यथः ।

१. ते वृश्चिकाः गोमहिषादिपुरीषकोथात् सम्भूता मन्दविषाः,
 विषदिग्धकोथात् दंष्ट्रकोथाच्च-सम्भूताः, मध्यविषाः, सर्पकोथात्
 सम्भूता महाविषाः भवन्ति ।

२. यः-वृश्चिकः वक्त्रेण दशति स उच्छिदिङ्गाख्यः-इति लक्षणम्

साध्यतो वृश्चिकास्तम्भं शोफसो हृष्टरोमताम् ॥ १३ ॥
 करोति सेकमङ्गानां दंशः शीताम्बुनेव च ।
 उष्ट्रधूमः स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः ॥ १४ ॥
 वातपित्तोत्तराः कीटाः श्लैष्मिकाः कणभोन्दुराः ।
 प्रायो वातोत्त्वणविषा वृश्चिकाः सोष्ट्रधूमकाः ॥ १५ ॥
 यस्य यस्यैव दोषस्य लिङ्गाधिक्यं प्रतर्कयेत् ।
 तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः, क्रियाम् ॥ १६ ॥
 हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भः सिरायामाऽस्थिपर्वस्कृ ।
 घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता वातिके विषे ॥ १७ ॥
 संज्ञानाशोष्णनिश्वासौ हृद्वाहः कटुकास्यता ।
 मांसावदरणं शोफो रक्तः पीतश्च पैत्तिके ॥ १८ ॥
 छर्द्यरोचकहृत्प्रासप्रसेकोत्त्वलेशपीनसैः ।
 सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विषम् ॥ १९ ॥
 पिण्याकेन व्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्च वातिके ।
 नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्वृंहणश्च विधिर्हितः ॥ २० ॥
 पैत्तिकं स्तम्भयेस्सेकैः प्रदेहैश्चातिशीतलैः ।
 लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥ २१ ॥
 कीटानां त्रिप्रकाराणां त्रैविध्येन प्रतिक्रिया ।
 स्वेदालेपनसेकांस्तु कोष्णान् प्रायोऽवचारयेत् ॥ २२ ॥
 अन्यत्र मूर्च्छिताद्दंश-पाकतः कोथतोऽथवा ।
 नृकेशाः सर्षपाः पीता गुडो जीर्णश्च धूपनम् ॥ २३ ॥

तस्य कृत्यमाह-अधिकव्यथ-इत्यादि, नामान्तरम्-उष्ट्रधूमः, रात्रिक-
 इति ।

विषदंशस्य सर्वस्य काश्यपः परमब्रवीत् ।
 विषघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्संशोधनानि च ॥ २४ ॥
 साधयेत्सर्पवद्दृष्टान् विषोग्रैः कीटवृश्चिकैः ।
 तण्डुलीयकतुल्यांशां त्रिवृतां सर्पिषा पिबेत् ॥ २५ ॥
 याति कीटविषैः कम्पं न कैलास इवानिलैः ।
 क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः ॥ २६ ॥
 मुक्तालपो वरः शोफतोददाहज्वरप्रणुत् ।
 वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २७ ॥
 पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ।
 दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २८ ॥
 सद्यो वृश्चिकजं दंशं चक्रतैलेन सेचयेत् ।
 विदारिगन्धासिद्धेन कवोष्णेनेतरेण वा ॥ २९ ॥
 लवणोत्तमयुक्तेन सर्पिषा वा पुनः पुनः ।
 सिञ्चेत्कोष्णारनालेन सक्षीरलवणेन वा ॥ ३० ॥
 उपनाहो घृते भृष्टः कल्कोऽजाज्याः ससैन्धवः ।
 आदंशं स्वेदितं चूर्णैः प्रच्छाय प्रतिसारयेत् ॥ ३१ ॥
 रजनीसैन्धवव्योषशिरीषफलपुष्पजैः ।
 मातुलुङ्गाम्लगोमूत्रपिष्टं च सुरसाग्रजम् ॥ ३२ ॥
 लेपः सुखोष्णश्च हितः पिण्याको गोमयोऽपि वा ।
 पाने सर्पिर्मधुयुतं क्षीरं वा भूरिशर्करम् ॥ ३३ ॥
 पारावतशकृत्पथ्यातगरं विश्वभेषजम् ।
 बीजपूररसोन्मिश्रः परमो वृश्चिकागदः ॥ ३४ ॥
 सशैवलोष्टदंष्ट्रा च हन्ति वृश्चिकजं विषम् ।

हिङ्गुना हरितालेन मातुलङ्गरसेन च ॥ ३५ ॥
 लेपाञ्जनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा^१ ।
 करञ्जार्जुनशैलानां कटभ्याः कुटजस्य च ॥ ३६ ॥
 शिरीषस्य च पुष्पाणि मस्तुना दंशलेपनम् ।
 यो मुह्यति प्रश्वसिति प्रलपत्युग्रवेदनः ॥ ३७ ॥
 तस्य पथ्यानिशाकृष्णा-मञ्जिष्ठातिविषोषणम् ।
 सालाबुवृन्तं वार्ताकरसपिष्टं प्रलेपनम् ॥ ३८ ॥
 सर्वत्र चोग्रालिविषे पाययेद्दधिसर्पिषी ।
 विध्येत्सिरां विदध्याच्च वमनाञ्जननावनम् ॥
 उष्णस्निग्धाम्लमधुरं भोजनं चानिलापहम् ॥ ३९ ॥

नागरं गृहकपोतपुरीषं

वीजपूरकरसं हरितालम् ।

सैन्धवं च विनिहन्त्यगदोऽयं

लेपतोऽलिकुलजं विषमाशु ॥ ४० ॥

अन्ते वृश्चिकदष्टानां समुदीर्णे भृशं विषे ।

विषेणालेपयेद्दंशमुच्चिटिङ्गेऽप्ययं विधिः ॥ ४१ ॥

नागपुरीषच्छत्रं रोहिषमूलं च शेलुतोयेन ।

कुर्याद् गुटिकां लेपादियमलिविषनाशनी श्रेष्ठा ॥ ४२ ॥

अर्कस्य दुग्धेन शिरीषबीजं

त्रिर्भावितं^२ पिप्पलिचूर्णमिश्रम् ।

१. वृश्चिकविषापहा-इत्यर्थः ।

२. पिप्पली-शब्दस्य 'छयापोः सञ्ज्ञा छन्दसोर्बहुलम्' इति बाहुलकाद् ह्रस्वः, एवं दार्वी-अश्मरी-प्रभृतीनां यत्र तत्र ह्रस्वः

एषोऽगदो हन्ति विपाणि कीट-

^१भुजङ्गलृतोन्दुरवृश्चिकानाम् ॥ ४३ ॥

शिरीषपुष्पं सकरञ्जबीजं

काश्मीरजं कुष्ठमनःशिले च ।

एषोऽगदो रात्रिकवृश्चिकानां

सङ्क्रान्तिकारी कथितो जिनेन ॥ ४४ ॥

अथ ^२लृताविषविज्ञानम् ।

कीटेभ्यो दारुणतरा लृताः षोडश ता जगुः ।

अष्टाविंशतिरित्येके ततोऽप्यन्ते तु भूयसीः ॥ ४५ ॥

^३सहस्ररश्म्यनुचरा वदन्त्यन्ये सहस्रशः ।

बहूपद्रवरूपा तु लृतैकैव विपात्मिका ॥ ४६ ॥

रूपाणि नामतस्तस्या दुर्ज्ञेयान्यतिसङ्करात् ।

नास्ति स्थानव्यवस्था च दोषतोऽतः प्रचक्ष्यते ॥ ४७ ॥

कृच्छ्रसाध्या पृथग्दोषैरसाध्या निचयेन सा ।

तद्दंशः 'पैत्तिको' दाह-तृट्स्फोटज्वरमोहवान् ॥ ४८ ॥

भृशोष्मा रक्तपीताभः कलेदी 'द्राक्षाफलोपमः' ।

(छन्दोनुरोधो बलीयान्) ।

१. कीटश्च भुजङ्गश्च लृता च उन्दुरश्च वृश्चिकश्चेति द्वन्द्वः ।

उन्दुरः = उन्दुरुः - मूषकवाची द्विरूपोऽयं शब्दः ।

२. 'लृता स्त्री तन्तुवायोर्णनाभमर्कटकाः समाः' (मकड़ी)

३. निरालम्बेऽन्तरिक्षे वृक्षाद् वृक्षान्तरगामित्वेन सूर्यानुचर-
त्वम्-सूक्ष्मलुतानाम् अथवा रश्मिशब्दस्तन्तुवाची नानातन्तुपु-
अनुचरन्तीति यथार्थता ।

‘श्लष्मिकः’ कठिनः पाण्डुः परुषकफलाकृतिः ॥ ४९ ॥

निद्रां शीतज्वरं कासं कण्ठं च कुरुते भृशम् ।

‘वातिकः’ परुषः श्यावः पर्वभेदज्वरप्रदः ॥ ५० ॥

तद्विभागं यथास्वं च दोषलिङ्गैर्विभाषयेत् ।

असाध्यायां तु हन्मोह-श्वासहिध्माशिरोरुजाः ॥ ५१ ॥

श्वेताः पीताः सिता रक्ताः पिटिकाः श्वयथूद्भवः ।

वेपथुर्वमथुर्दाहस्तृडान्ध्यं वक्रनासता ॥ ५२ ॥

श्यावौष्ठवक्त्रदन्तत्वं पृष्ठग्रीवावभञ्जनम् ।

पक्वजम्बुसवर्णं च दंशास्त्रवति शोणितम् ॥ ५३ ॥

सर्वापि सर्वजा प्रायो ‘व्यपदेशस्तु भूयसा’ ।

तीक्ष्णमध्यावरत्वेन सा त्रिधा, हन्त्युपेक्षिता ॥ ५४ ॥

सप्ताहेन दशमहेन पक्षेण च परं क्रमात् ।

लूतादंशश्च सर्वोऽपि ‘दद्रुमण्डलसन्निभः’ ॥ ५५ ॥

सितोऽसितोऽरुणः पीतः श्यावो वा मृदुरूक्षतः ।

मध्ये कृष्णोऽथवा श्यावः पर्यन्ते जालकावृतः ॥ ५६ ॥

विसर्पवांश्छोफयुतस्तप्यते बहुवेदनः ।

ज्वराऽऽशुपाक-विकलेद^१कोथाऽवदरणाऽन्वितः ॥ ५७ ॥

क्लेदेन यत्स्पृशत्यङ्गं तत्राऽपि कुरुते घणम् ।

श्वासदंष्ट्राशकृन्मूत्र-शुक्रलालानखार्तवैः ॥ ५८ ॥

१. विकलेदनं विकलेदः, क्लिष्ट = आर्द्रीभावे, कोथनं कोथः, विशीर्णतया दुर्गन्धवत्त्वम् कुथ = पूती भावे, दि० भावे घञ् । विपू-
र्पादृष्ट = विदारणे—इत्यस्माद् भावे ल्युट् अवदरणम् । ज्वरादीनां
द्रव्ये-अन्वितेन तृतीयासमासः ।

अष्टाभिरुद्धमत्येषा विषं वक्त्रैर्विशेषतः ।
लूता नाभेर्दंशयूर्ध्वमूर्ध्वं वाऽधश्च कीटकाः ॥ ५९ ॥
तद्दूषितं च वस्त्रादि देहे पृक्तं विकारकृत् ।
दिमार्धं लचयते नैव दंशो लूताविषोद्भवः ॥ ६० ॥
सूचीव्यधवदाभाति ततोऽसौ प्रथमेऽहनि ।
अव्यक्तवर्णः प्रचलः किञ्चित्कण्डूरुजान्वितः ॥ ६१ ॥
द्वितीयेऽभ्युन्नतोन्तेषु पिटकैरिव वा चितः ।
व्यक्तवर्णो नतो मध्ये कण्डूमान् ग्रन्थिसन्निभः ॥ ६२ ॥
तृतीये सज्वरो रोमहर्षकृद्रक्तमण्डलः ।
शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु सस्रवः ॥ ६३ ॥
महांश्चतुर्थे श्वयथुस्तापश्वासभ्रमप्रदः ।
विकारान् कुरुते तांस्तान् पञ्चमे विषकोपजान् ॥ ६४ ॥
षष्ठे व्याप्नोति मर्माणि सप्तमे हन्ति जीवितम् ।
इति तीक्ष्णं विषं मध्यं हीनं च विभजेदतः ॥ ६५ ॥
एकविंशतिरात्रेण विषं शाम्यति सर्वथा ।

अथ लूतादिविषप्रतिपेधः ।

अथाशु लूतादृष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥
दहेच्च^१ जाम्बवौष्ठाद्यैर्न तु पित्तोत्तरं दहेत्^२ ।
कर्कशं भिन्नरोमाणं मर्मसन्ध्यादिसंश्रितम् ॥ ६७ ॥
प्रसृतं सर्वतो दंशं न छिन्दीत दहेन्न च ।
लेपयेद्दग्धमगदैर्मधुसैन्धवसंयुतैः ॥ ६८ ॥

१. जाम्बवौष्ठः क्षारदानयन्त्रविशेषः । सू० अ० २५ ।

२. पिताऽधिकेषु रोगेषु दाहः शान्त्यै न कल्पते ।

सुशीतैः सेचयेच्चानु कषायैः क्षीरिषृत्तजैः ।
 सर्वतोऽपहरेद्रक्तं शृङ्गाद्यैः सिरयाऽपि वा ॥ ६९ ॥
 सेकालेपास्ततः शीता बोधिश्लेष्मान्तकाक्षकैः ।
 फलिनीद्विनीशाक्षौद्र-सर्पिभिः 'पद्मकाह्वयः' ॥ ७० ॥
 'अशेषलूताकीटानामगदः' सार्वकामिकः ।
 हरिद्राद्वयपत्तङ्ग-मञ्जिष्ठानतकेसरैः ॥ ७१ ॥
 सक्षौद्रसर्पिः पूर्वस्मादधिकश्रम्पकाह्वयः ।
 तद्वद्गोमयनिष्पीडशर्कराघृतमाक्षिकैः ॥ ७२ ॥
 अपामार्गमनोह्वाऽऽल-दार्वाध्यामकगैरिकैः ।
 नतैलाकुष्ठमरिच-यष्ट्याह्वृतमाक्षिकैः ॥ ७३ ॥
 अगदो 'मन्दरो' नाम तथाऽन्यो 'गन्धमादनः' ।
 नतरोध्रवचाकट्वी-पाठैलापत्रकुङ्कुमैः ॥ ७४ ॥
 विषघ्नं बहुदोषेषु प्रयुञ्जीत विशोधनम् ।
 यष्ट्याह्वमदनाङ्गोक्षजालिनीसिन्दुवारकाः ॥ ७५ ॥
 कफे श्रेष्ठाम्बुना पीत्वा विषमाशु समुद्धरेत् ।
 शिरीषपत्रखड्मूलफलं वाङ्गोक्षमूलवत् ॥ ७६ ॥
 विरेचयेच्च त्रिफला-नीलिनीत्रिवृतादिभिः ।
 निवृत्ते दाहशोफादौ कर्णिकां पातयेत् व्रणात् ॥ ७७ ॥
 कुसुम्भपुष्पं गोदन्तः स्वर्णक्षीरी कपोतविट् ।
 त्रिवृतासैन्धवं दन्ती कर्णिकापातनं तथा ॥ ७८ ॥
 मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखसंयुतम् ।
 तद्वच्च सैन्धवं कुष्ठं दन्ती कटुकदौर्गधिकम् ॥ ७९ ॥
 राजकोशातकीमूलं किणो वा मथितोद्भवः ।

कर्णिकापातसमये बृंहयेच्च विषापहैः ॥ ८० ॥

स्नेहकार्यमशेषं च सर्पिषैव समाचरेत् ।

विषस्य वृद्धये तैलमग्नेरिव तृणोलुपम् ॥ ८१ ॥

हीबेरवैकङ्कतगोपकन्या^१—

मुस्ताशमीचन्दनटिण्डुकानि ।

शैवालनीलोत्पलवक्रयष्टी-

त्वग्नाकुलीपन्नक-राठमध्यम् ॥ ८२ ॥

रजनीघनसर्पलोचना-कणशुण्ठीकणमूलचित्रकाः ।

वरुणागुरुबिल्वपाटली-पिचुमन्दाभयशेलुकेसरम् ॥ ८३ ॥

बिल्वचन्दननतोत्पलशुण्ठी-पिप्पलीनिचुलवेतसकुष्ठम् ।

शुक्तिशाकवरपाटलिभार्ङ्गी^२सिन्दुवारकरहाटवराङ्गम् ॥ ८४ ॥

पित्तकफानिललूताः पानाऽञ्जन-नस्य-लेप-सेकेन ।

अगदवरा वृत्तस्थाः कुमतीरिव वारयन्त्येते^३ ॥ ८५ ॥

१. गोपकन्या = गोपी = शारि वा = अनन्ता (अनन्तमूल)

२. सिन्धुवारः = निर्गुण्डी (सेंधुवा) करहाटः = पन्नकन्दः,
वराङ्गम् = त्वक् (दालचीनी)

३. एते = पूर्वोक्तस्यः वृत्तेषु = इन्द्रवज्रा-वैतालीय-स्वागता-
रूपेषु पाद्येषु तिष्ठन्तीति वृत्तस्थाः (नार्धस्था नापि पादस्थाः)
अगदाः = योगाः कर्तारः पानेन-अजनेन, नस्येन, लेपेन, सेकेन
वा यथासम्भवं न तु यथासंख्यं पित्तादि-प्रधानाः लूताः =
तद्दंशजपीडाः वारयन्ति = शमयन्ति के का इव वृत्तेषु = सद्बृत्तेषु =
सदाचारेषु तिष्ठन्ती वृत्तस्थाः सत्पुरुषाः कुमतीः = कुबुद्धीरिवेत्येक-
देश-विवर्तिन्युपमा ।

रोधं सेव्यं पद्मकं पद्मरेणुः

कालीयाख्यं चन्दनं यच्च रक्तम् ।

कान्तापुष्पं दुग्धिनीका मृणालं

लूताः सर्वा धनन्ति सर्वक्रियाभिः^१ ॥ ८६ ॥

इत्युत्तरस्थाने सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।



अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो मूषिकाऽलर्क^२विषप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

अथ मूषिकाविषप्रतिषेधः ।

‘लालनश्चपलः पुत्रो हसिरश्चक्रिरोऽजिरः :

कषायदन्तः कुलकः कोकिलः कपिलोऽसितः ॥ १ ॥

अरुणः शबलः श्वेतः कपोतः पलितोन्दुरः ।

छुच्छुन्दरो रस्त्रालाख्यो दशाष्टौ चेति मूषिकाः ॥ २ ॥

शुक्रं पतति यत्रैषां शुक्रदिग्धैः स्पृशन्ति वा ।

यदङ्गमङ्गैस्तत्राऽस्ते दूषिते पाण्डुतां गते ॥ ३ ॥

ग्रन्थयः श्वयथुः कोथो^३मण्डलानि भ्रमोऽरुचिः ।

शीतज्वरोऽतिरूक् सादो वेपथुः पर्वभेदनम् ॥ ४ ॥

१. सर्वक्रियाभिः = पानाऽञ्जन-नस्यलेपसकैः । इति ।

२. अलर्कः = उन्मत्तः कुक्कुरः ।

३. कोथो = पूतोमावो = दौर्गन्ध्यम् ।

रोमहर्षः स्तुतिर्मूर्च्छा दीर्घकालानुबन्धनम् ।
 श्लेष्माऽनुबद्ध-बद्धाऽऽखु-पोतक-च्छर्दनं सत् ॥ ५ ॥
^१व्यवाययाखुविषं कृच्छं भूयो भूयश्च कुप्यति ।
^२मूर्च्छाङ्गशोफवैवर्ण्य-क्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ॥ ६ ॥
 शिरोगुरुत्वं लालाऽसृक्छर्दिश्चासाध्यलक्षणम् ।
 शूनवस्ति विवर्णौष्ठमाख्याभैर्ग्रन्थिभिश्चितम् ॥ ७ ॥
 छुच्छुन्दरसगन्धं च वर्जयेदाखुदूषितम् ।

❀ अलर्कादिविषविज्ञानम् । ❀

शुनः श्लेष्मोत्त्वणा दोषाः संज्ञां ^३संज्ञावहाश्रिताः ॥ ८ ॥
 सुष्णन्तः कुर्वते क्षोभं धातूनामतिदारुणम् ।
 लालावानन्धबधिरः सर्वतः ^४सोऽभिधावति ॥ ९ ॥
 स्रस्तपुच्छहनुस्कन्धः शिरोदुःखी नताननः ।
 दंशस्तेन विदष्टस्य सुप्तः कृष्णं चरत्यसृक् ॥ १० ॥
 हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तग्भ-तृष्णामूर्च्छोद्भवोऽनु च ।
 अनेनान्येऽपि बोद्धव्या व्याला दंष्ट्राग्रहारिणः ॥ ११ ॥
 कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्य-सुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः ।
 विदाहरागरूपपाक-शोथग्रन्थिविकुञ्चनम् ॥ १२ ॥
 दंशावदरणं स्फोटाः कर्णिका मण्डलानि च ।
 सर्वत्र सविषे लिङ्गं विपरीतं तु निर्विषे ॥ १३ ॥
 दष्टो येन तु तच्चेष्टा-रुतं कुर्वन्विनश्यति ।
 पश्यंस्तमेव चाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ १४ ॥

१. कष्टसाध्यलक्षणम् । २. असाध्यलक्षणम् ।
 ३. संज्ञा = चेतनाम् । ४. सः = उन्मत्तः कुक्कुरः ।

योऽद्भ्यस्त्रस्येददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।
 'जलसन्त्रासनामानं' दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ १५ ॥
 आसुना 'दष्टमात्रस्य' दंशं काण्डेन दाहयेत् ।
 दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकाऽन्यथा ॥ १६ ॥
 दग्धं विस्नावयेदंशं प्रच्छित्तं च प्रलेपयेत् ।
 शिरीषरजनीवक्र-कुङ्कुमामृतवल्लिभिः ॥ १७ ॥
 अगारधूममज्जिष्ठा-रजनीलवणोत्तमैः ।
 लेपो जयत्यासुविषं कर्णिकायाश्च पातनः ॥ १८ ॥
 ततोऽभ्रैः क्षालयित्वा तु तोयैरनु च लेपयेत् ।
 पालिन्दी-श्वेतकटभी-बिल्वमूल-गुडूचिभिः ॥ १९ ॥
 अन्यैश्च विषशोफघ्नैः सिरां वा मोक्षयेद् द्रुतम् ।
 छर्दनं नीलिनीकायैः शुकाख्याङ्कोल्लयोरपि ॥ २० ॥
 कोशातक्याः शुकाख्यायाः फलं जीमूतकस्य च ।
 मदनस्य च सञ्चूर्ण्य दध्ना पीत्वा विषं वमेत् ॥ २१ ॥
 वचामदनजीमूत-कुष्ठं वा मूत्रपेषितम् ।
 पूर्वकल्पेन पातव्यं सर्वोन्दुरविषापहम् ॥ २२ ॥
 विरेचनं त्रिवृक्षीली-त्रिफलाकल्क इष्यते ।
 अञ्जनं गोमयरसो व्योषसूचमरजोन्वितः ॥ २३ ॥
 कपित्थगोमयरसो मधुमानवलेहनम् ।
 तण्डुलीयकमूलेन सिद्धं पाने हितं घृतम् ॥ २४ ॥
 द्विनिशाकटभीरक्ता-यष्ट्याह्वैर्वाऽमृतान्वितैः ।
^१आस्फोटमूलसिद्धं वा ^२पञ्चकापित्थमेव वा ॥ २५ ॥

१. आस्फोटमूलम्=अर्कमूलम् । २. पञ्चकापित्थम्=कपित्थपञ्चाङ्गम् ।

सिन्दुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।
 वचाश्वदंष्ट्राजीमूतमेषां क्वाथं समाक्षिकम् ॥ २६ ॥
 पिबेच्छाल्योदनं दध्ना भुञ्जानो मूषिकार्दितः ।
 तक्त्रेण शरपुङ्खाया बीजं सञ्चूर्ण्य वा पिबेत् ॥ २७ ॥
 अङ्गोल्लमूलकल्को वा वस्तमूत्रेण कल्कितः ।
 पानालेपनयोर्युक्तः सर्वाखुविषनाशनः ॥ २८ ॥
 कपित्थमध्यतिलक-तिलाङ्गोल्लजटाः पिबेत् ।
 गवां मूत्रेण पयसा मञ्जरीं तिलकस्य वा ॥ २९ ॥
 अथवा सैर्यकान्मूलं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ।
 कटुकालाबुविन्यस्तं पीतं वाग्बु निशोषितम् ॥ ३० ॥
 सिन्दुवारस्य मूलानि बिडालास्थि विषं नतम् ।
 जलपिष्टोऽगदो हन्ति नस्याद्यैराखुजं विषम् ॥ ३१ ॥
 सशेषं मूषिकविषं प्रकुप्यत्यभ्रदर्शने ।
 यथायथं वा कालेषु दोषाणां वृद्धिहेतुषु ॥ ३२ ॥
 तत्र सर्वे यथावस्थं प्रयोज्याः स्युरूपक्रमाः ।
 यथास्वं ये च निर्दिष्टास्तथा दूषीविषापहाः ॥ ३३ ॥

अथालर्कविषप्रतिपेधः ।

दंशं ह्यलर्कदष्टस्य दग्धमुष्णेन सर्पिषा ।
 प्रदिष्टादगदैस्तैः पुराणं च घृतं पिबेत् ॥ ३४ ॥
 अर्कक्षीरयुतं चाऽस्य योज्यमाशु विरेचनम् ।
 अङ्गोक्षोत्तरमूलाम्बु त्रिफलं सहविःपलम् ॥ ३५ ॥
 पिबेत्सधत्तूरफलां श्वेतां वाऽपि पुनर्नवाम् ।

ऐकध्यं ^१पललं तलं रूपिकायाः पयो गुडः ॥ ३६ ॥
 भिनत्ति 'विषमालकं' घनघृन्दमिवानिलः ।
 समन्त्रं सौषधीरत्नं स्नपनं च प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥
 चतुष्पान्निर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तपरिहृतम् ।
 शूयते पच्यते राग-ज्वरस्त्रावरुजान्वितम् ॥ ३८ ॥
^२सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका ।
 रजन्द्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ ३९ ॥
 इत्युत्तरस्थानेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथास्तो रसायनाध्यायं व्याख्यास्यामः ।
 इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।
 'दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः ।
 प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम् ॥ १ ॥
 वाक्सिद्धिं वृषतां कान्तिमवाप्नोति रसायनात् ।
 लाभोपायो हि शस्तानां रसादीनां रसायनम् ^३ ॥ २ ॥

१. पललं = मृष्टतिलचूर्णम् रूपिका = अर्कः = मन्दारः (मदार)
 (आंक) तस्य दुग्धम् । (अन्ये पाठाः प्रमादतः)

२. सोमवल्कः = श्वेतरवदिरः, अश्वकर्णः = सालः (साल),
 (सखुवा) गोजिह्वा = दर्विका वनौषधिभेदः, न तु-शाकभेदः ।
 इति-विषतन्त्रम् । ३. च० चि० अ० पा० १।७।८ ।

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः ।
 स्निग्धस्य स्नुतरक्तस्य विशुद्धस्य च सर्वथा ॥ ३ ॥
 अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रासायनो विधिः ।
 वाजीकरो वा मलिने वस्त्रे रङ्ग इवाफलः ॥ ४ ॥
 रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृषयो विदुः ।
 कुटीप्रावेशिकं मुख्यं वातातपिकमन्यथा^१ ॥ ५ ॥
 निर्वाते निर्भये हर्म्ये^२ प्राप्योपकरणे पुरे ।
 दिश्युदीच्यां शुभे देशे त्रिगर्भां सूक्ष्मलोचनाम् ॥ ६ ॥
 धूमातपरजोव्याल-स्त्रीमूर्खाद्यविलङ्घिताम् ।
 सज्जवैद्योपकरणां सुमृष्टां कारयेत्कुटीम् ॥ ७ ॥
 अथ पुण्येऽद्वि सम्पूज्य^३ पूज्यांस्तां प्रविशेच्छुचिः ।
 तत्र संशोधनैः शुद्धः सुखी जातबलः पुनः ॥ ८ ॥
 ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।
 दानशीलदयासत्य-व्रतधर्मपरायणः ॥ ९ ॥
 देवतानुस्मृतियुतः युक्तस्वप्नप्रजागरः ।
 प्रियौषधः पेशलवाक् प्रारभेत रसायनम् ॥ १० ॥
 हरीतकीमामलकं सैन्धवं नागरं वचाम् ।
 हरिद्रां पिप्पलीं वेल्लं गुडं चोष्णाम्बुना पिबेत् ॥ ११ ॥

१. अन्यथा = मुख्याऽशक्तौ ।

२. प्राप्तुं शक्यानि-उपकरणानि = सामग्र्यो यस्मिन् तादृशे
 पुरे = नगरे ।

३. पूज्यान् = देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धादीन् , च० चि० अ०
 १ पा० ३०—३५

स्निग्धः स्विन्नो नरः पूर्वं तेन साधु विरिच्यते ।
 ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ॥ १२ ॥
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम् ।
 दद्याद्वावकमाशुद्धेः पुराणशकृतोऽथवा ॥ १३ ॥
 इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनमुपाहरेत् ।
 यस्य यद्यौगिकं पश्येत्सर्वमालोच्य सात्म्यवित् ॥ १४ ॥
 पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम् ।
 पञ्चानां पञ्चमूलानां सार्धं पलशतद्वयम्^१ ॥ १५ ॥
 जले दशगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे ।
 आपोथ्य कृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ ॥ १६ ॥
 विनीय तस्मिन्निर्यूहे योजयेत्कुडवांशकम् ।
 स्वगेलामुस्तरजनी-पिप्पल्यगुरुचन्दनम् ॥ १७ ॥
 मण्डूकपर्णीकनकशङ्खपुष्पीवचाप्लवम् ।
 यष्ट्याह्वयं विडङ्गं च चूर्णितं तुलयाधिकम् ॥ १८ ॥
 सितोपलार्धभारं च पात्राणि त्रीणि सर्पिषः ।
 द्वे च तैलात्पचेत्सर्वं तदग्नौ लेहतां गतम् ॥ १९ ॥
 अवतीर्णं हिमं युज्याद्विंशैः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः ।
 ततः खजेन मथितं निदध्याद् घृतभाजने ॥ २० ॥
 या नोपरुन्ध्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता ।
 षष्टिकः पयसा चाऽत्र जीर्णे भोजनमिष्यते ॥ २१ ॥
 वैखानसा वालखिल्यास्तथा चाऽन्ये तपोधनाः ।

१. 'भागान् दशपलोन्मितान्'-इत्यस्य चरकस्य व्याख्यारूपं
 वचनं पलशतद्वयमिति । च० चि० अ० १ पा० १।४१-५७ ।

ब्रह्मणा विहितं धन्यमिदं प्राश्य रसायनम् ॥ २२ ॥

तन्द्राश्रमक्लमवली-पलितामयवर्जिताः ।

मेधास्मृतिबलोपेता बभूवुरमितायुषः ॥ २३ ॥

इति ब्राह्मरसायनम् ।

अभयामलकसहस्रं^१ निरामयं पिप्पलीसहस्रयुतम् ।

तरुणपलाशक्षारद्रवीकृतं स्थापयेद्भाण्डे ॥ २४ ॥

उपयुक्ते च क्षारे च च्छायासंशुष्कचूर्णितं योज्यम् ।

पादांशेन सितायाश्चतुर्गुणाभ्यां मधुघृताभ्याम् ॥ २५ ॥

तद्घृतकुम्भे भूमौ निधाय षण्माससंस्थमुद्घृत्य ।

प्राह्णे प्राश्य यथानलमुचिताहारो भवेत्सततम् ॥ २६ ॥

इत्युपयुञ्ज्याऽशेषं वर्षशतमनामयो जरारहितः ।

जीवति बलपुष्टिवपुः स्मृतिमेधाद्यन्वितो विशेषेण ॥ २७ ॥

इति अभयामलकापलेहः ।

नीरुजार्द्रपलाशस्य^२ छिन्ने शिरसि तस्त्रुतम् ।

अन्तर्द्विहस्तं गम्भीरं पूर्यमामलकैर्नवैः ॥ २८ ॥

आमूलं वेष्टितं दध्नेः पद्मिनीपङ्कलेपितम् ।

आदीप्य गोमयैर्वन्यैर्निर्वाति स्वेदयेत्ततः ॥ २९ ॥

स्विन्नानि तान्यामलकानि तृप्त्या

खादेन्नरः क्षौद्रघृतान्वितानि ।

१. निरामयं = कीट-भक्षितत्व-विशीर्णत्वादिदोषरहितम्, च०
चि० अ० १ पा० २।७

२. पलाशत्वगवनद्धानामित्यस्य चरकपाठस्य २० पा० १।७५
परिवर्त्तनं संक्षितान्तरप्रामाण्यात्स्वानुभवाद् वा ।

क्षीरं शृतं चाऽबु पिबेत्प्रकामं
 तेनैव वर्तेत च मासमेकम् ॥ ३० ॥
 वर्ज्यानि वर्ज्यानि च तत्र यत्ना-
 त्स्पृश्यं च शीताम्बु न पाणिनाऽपि ।
 एकादशाहेऽस्य ततो व्यतीते

पतन्ति केशा दशना नखाश्च ॥ ३१ ॥
 अथाल्पकैरेव दिनैः सुरुपः स्त्रीष्वक्षयः कुञ्जरतुल्यवीर्यः ।
 विशिष्टमेधाबलबुद्धिसत्त्वो भवत्यसौ वर्षसहस्रजीवी ॥ ३२ ॥

इति सिवन्नाऽमलकम् ।

दशमूलबलामुस्तजीवकर्षभकोत्पलम् ।
 पर्णिन्यौ पिप्पलीशृङ्गीमेदातामलकीत्रुटिः ॥ ३३ ॥
 जीवन्ती जोङ्गकं द्राक्षा पौष्करं चन्दनं शठी ।
 पुनर्नवाद्विकाकोली-काकनासामृताह्वयाः ॥ ३४ ॥
 विदारिवृषमूलं च तदैकध्यं पलोन्मितम् ।
 जलद्रोणे पचेत्पञ्चधात्रीफलशतानि च ॥ ३५ ॥
 पादशेषं रसं तस्माद्व्यस्थीन्यामलकानि च ।
 गृहीत्वा भर्जयेत्तैल-घृताद् द्वादशभिः पलैः ॥ ३६ ॥
 मस्यण्डिकातुलार्धेन युक्तं तल्लेहवत्पचेत् ।
 स्नेहार्धं मधु सिद्धे तु तवक्षीर्याश्चतुःपलम् ॥ ३७ ॥
 पिप्पल्या द्विपलं दद्याच्चतुर्जातं कणार्धिकम् ।
 अतोऽवलेहयेन्मात्रां कुटीस्थः पथ्यभोजनः ॥ ३८ ॥
 इत्येष 'च्यवनप्राशो यं' प्राश्य च्यवनो मुनिः ।
 जराजर्जरितोऽप्यासीञ्जारीनयननन्दनः ॥ ३९ ॥

कासं श्वासं ज्वरं शोषं हृद्रोगं वातशोणितम् ।
मूत्रशुक्राश्रयान् दोषान् वैस्वर्यं च व्यपोहति ।
बालवृद्धक्षतक्षीण-कृशानामङ्गवर्धनः ॥ ४० ॥

^१मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्व-

मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।

स्त्रीषु प्रहर्षं बलमिन्द्रियाणा-

मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्तः ॥ ४१ ॥

इति च्यवनप्राशः ।

^२मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिन्धुजन्मना ।

पृथग्लोहैः सुवर्णेन वचया मधुसर्पिषा ॥ ४२ ॥

सितया वा समा युक्ता समायुक्ता रसायनम् ।

‘त्रिफला सर्वरोगघ्नी’ मेधायुःस्मृतिबुद्धिदा ॥ ४३ ॥

त्रिफलारसायनानि ।

^३मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं यथाम्नि,

क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।

रसं गुडूच्याः, सहमूलपुण्याः

कल्कं प्रयुजीत च शङ्खपुण्याः ॥ ४४ ॥

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि

बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।

१. च० चि० अ० १ पा० १।१।-६२-७४ ।

२. च० २० पा० ३।४५-४७ ।

३. मण्डूकपर्णी = ब्राह्मीभेदः (गुल्फनफशा) इति केचित् ।

च० २० पा० ३।३०-३१ ।

मेध्यानि चैतानि रसायनानि

मेध्या विशेष्टेण तु शङ्खपुष्पी ॥ ४५ ॥

इति मेध्यरसायनानि ।

नलदं कटुरोहिणी पयस्या

मधुकं चन्दनसारिवोग्रगन्धाः ।

त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे

सपटोलं लवणं च तैः सुपिष्टैः ॥ ४६ ॥

त्रिगुणेन रसेन शङ्खपुष्प्याः

सपयस्कं घृतनल्लवणं विपक्वम् ।

उपयुज्य भवेज्जडोऽपि वाग्मी

श्रुतधारी^१ प्रतिभानवानरोगः ॥ ४७ ॥

इति प्रतिभारसायनम् ।

पेयैर्मृणालबिसकेसरपत्रबीजैः

सिद्धं सहेमशकलं पयसा च सर्पिः ।

‘पञ्चारविन्दमिति’ तत्प्रथितं पृथिव्यां

प्रभ्रष्टपौरुषबलप्रतिभैर्निषेव्यम् ॥ ४८ ॥

इति वरुणं रसायनम् ।

यस्त्रालकन्ददलकेसरचक्षुपक्कं

नीलोत्पलस्य तदपि प्रथितं द्वितीयम् ।

सर्पिश्चतुःकुवलयं सहिरण्यपत्रं

^२मेध्यं गवामपि भवेत्किमु मानुषाणाम् ॥ ४९ ॥

१. प्रतिभानं = प्रतिभा, (नवनवोन्मेषशालिनी बुद्धिः प्रतिभा)

२. मेधायै = धारणाशक्त्यै दितं मेध्यम् ।

इति मेध्यं रसायनम् ।

^१ब्राह्मीवचासैन्धवशङ्खपुष्पी-

मस्त्याक्षकब्रह्मसुवर्चलेन्द्रयः ।

वैदेहिका च त्रियवाः पृथक् स्यु-

र्यवौ सुवर्णस्य तिलो विषस्य ॥ ५० ॥

सर्पिषश्च पलमेकत एतद्यो-

जयेत्परिणते च घृताढ्यम् ।

भोजनं समधु वत्सरमेवं

शीलयन्नधिकधीस्मृतिमेधः ॥ ५१ ॥

अतिक्रान्तजराभ्याधितन्द्रालस्यश्रमक्लमः ।

जीवत्यब्दशतं पूर्णं श्रीतेजःकान्तिदीप्तिमान् ॥ ५२ ॥

विशेषतः कुष्ठकिलासगुल्म-

विषज्वरोन्मादगरोदराणि ।

अथर्वमन्त्रादिकृताश्च कृत्याः

शाम्यन्त्यनेनातिभलाश्च वाताः ॥ ५३ ॥

इति ब्राह्मयादिरसायनम् ।

^१शरन्मुखे नागबलां पुष्ययोगे समुद्धरेत् ।

अक्षमात्रं ततो मूलाञ्चूर्णितात्पयसा पिबेत् ॥ ५४ ॥

लिङ्गान्मधुघृताभ्यां वा क्षीरवृत्तिरनञ्जभुक् ।

१. च० र० पा० ३।२४-२९ ऐद्रं र० ।

२. तपसि-तपस्ये वा-इति चरके-रपा० ३।११। देशभेदेन
जायूनां सरसत्वं विचार्य कालो निर्णेतव्यः, शरदि तु-सर्वत्र संरसा
एव सर्वा ओषध्यः ।

एवं वर्षप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं बली ॥ ५५ ॥

इति नागबलारसायनम् ।

^१फलोन्मुखो गोकुुरकः समूल-

श्छायाविशुष्कः सुविचूर्णिताङ्गः ।

सुभावितः स्वेन रसेन तस्मा-

न्मात्रां परां प्राप्सुतिर्कीं पिबेद्यः ॥ ५६ ॥

क्षीरेण तेनैव च शालिमशनम्

जीर्णे भवेत्स द्वितुलोपयोगात् ।

शक्तः सुरुपः सुभगः शतायुः

कामी ^२ककुब्भानिव गोकुलस्थः ॥ ५७ ॥

वाराहीकन्दमार्द्रार्द्रं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत् ।

मासं निरन्नो मासं च क्षीरान्नादौ जरां जयेत् ॥ ५८ ॥

^३तत्कन्दश्लक्ष्णचूर्णं वा स्वरसेन सुभावितम् ।

घृतक्षौद्रप्लुतं लिह्यात्तत्पक्वं वा घृतं पिबेत् ॥ ५९ ॥

तद्वद्विदार्यतिबलाबलामधुकवायसीः ।

श्रेयसी श्रेयसी युक्ता पथ्याधात्रीस्थिरामृताः ॥ ६० ॥

मण्डूकीशङ्कुसुमा-वाजिगन्धाशतावरीः ।

उपयुञ्जीत ^४धीमेधावयःस्थैर्यबलप्रदाः ॥ ६१ ॥

१. फलोन्मुखः = फलामिमुखः ।

२. ककुब्भानिवेति-उपमानं बलातिशयबोधनार्थम् ।

३. तच्छब्देनेह वाराह्या ग्रहणं (कचिदेकदेशेनाप्यन्वयः)
वाराही = गृष्टिकन्दः = स द्विधो ग्राम्यो वन्यश्च मधुरस्तिक्तश्च क्रमात् ।

४. धीः बुद्धिः-बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया मतिरागामिगोचरा,

यथास्वं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयः पीतसितासितैः ।
 यथोत्तरं स गुणवान् विधिना च रसायनम् ॥ ६२ ॥
 छायाशुष्कं ततो मूलं मासं शूर्णीकृतं लिहन् ।
 सर्पिषा मधुसर्पिभ्यां पिबन् वा पयसा यतिः ॥ ६३ ॥
 अम्भसा वा हिताग्नाशी शतं जीवति नीरुजः ।
 मेधावी बलवान् कान्तो वपुष्मान् दीप्तपावकः ॥ ६४ ॥
 तैलेन लीढो मासेन वातान् हन्ति सुदुस्तरान् ।
 मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान् ॥ ६५ ॥

अथ भस्मातकरसायनम् ।

‘भस्मातकानि’ पुष्टानि धान्यराशौ निधापयेत् ।
 ग्रीष्मे सङ्गृह्य हेमन्ते स्वादुस्निग्धहिमैर्वपुः ॥ ६६ ॥
 संस्कृत्य तान्यष्टगुणे सलिलेऽष्टौ विपाचयेत् ।
 अष्टांशशिष्टं तत्काथं सत्वीरं शीतलं पिबेत् ॥ ६७ ॥
 वर्धयेत्प्रत्यहं चानु तत्रैकैकमरुष्करम् ।
 सप्तरात्रत्रयं^१ यावत्, त्रीणि त्रीणि ततः^२ परम् ॥ ६८ ॥
 आचत्वारिंशतस्तानि द्वासयेद् बृद्धिवत्ततः^३ ।
 सहस्रमुपयुञ्जीत सप्ताहैरिति सप्तभिः ॥ ६९ ॥
 यन्त्रितात्मा^४ घृतक्षीरशालिषष्टिकभोजनः ।

प्रश्ना नवनवोन्मेपशालिनी प्रतिभा मता-इति भेदो बोध्यः, मेधावीति कचित्पाठः ।

१. त्रिसप्ताहं यावत् । २. ततः परम् = द्वाविंशतिदिनादारभ्य ।
३. ततः = एकचत्वारिंशदिनादारभ्य ।
४. यन्त्रितात्मा = जितेन्द्रियः ।

तद्वस्त्रिगुणितं कालं प्रयोगान्तेऽपि चाचरेत् ॥ ७० ॥

आशिषो लभते पूर्वा वह्नेर्दीप्तिं विशेषतः ।

प्रमेहकृमिकुष्ठाशोमेदोदोषविवर्जितः ॥ ७१ ॥

द्वितीयं भस्मातकरसायनम्—

पिष्टस्वेदनमरुजैः पूर्णं भस्मातकैर्विजर्जरितैः ।

भूमिनिखाते कुम्भे प्रतिष्ठितं कृष्णमृल्लिप्तम् ॥ ७२ ॥

परिवारितं समन्तात्पचेत्ततो गोमयाम्बिना मृदुना ।

तत्स्वरसो यश्च्यवते गृह्णीयात्तं दिनेऽन्यस्मिन् ॥ ७३ ॥

अमुमुपयुज्य स्वरसं मध्वष्टमभागिकं द्विगुणसर्पिः ।

पूर्वविधियन्त्रितास्मा प्राप्नोति गुणान्स तानेव ॥ ७४ ॥

तृतीयं भस्मातकरसायनम्—

पुष्टानि पाकेन परिच्युतानि भस्मातकान्याढकसम्मितानि ।

घृष्टेष्टिकाचूर्णकणैर्जलेन प्रक्षाल्य संशोष्य च मारुतेन ॥ ७५ ॥

जर्जराणि विपचेज्जलकुम्भे पादशेषधृतगालितशीते ।

तद्रसं पुनरपि श्रपयेत् क्षीरकुम्भसहितं चरणस्थे ॥ ७६ ॥

सर्पिः पक्वं तेन तुल्यप्रमाणं

युञ्ज्यात्स्वेच्छं शर्कराया रजोभिः ।

एकीभूतं तत्स्वजज्ञोभणेन

स्थाप्यं धान्ये सप्तरात्रं सुगुप्तम् ॥ ७७ ॥

तममृतरसपाकं यः प्रगे प्राशमश्नन्

अनु पिबति यथेष्टं वारि दुग्धं रसं वा ।

स्मृतिमतिबलमेधासत्त्वसारैरुपेतः

कनकनिचयगौरः सोऽश्नुते दीर्घमायुः ॥ ७८ ॥

चतुर्थं भल्लातकरसायनम् ।
 द्रोणेऽम्भसां व्रणकृतां^१ त्रिशताद्विपक्वात्
 काथाढके पलसमैस्तिलतैलपात्रम् ।
 तिक्ताविषाद्वयवरा-गिरिजन्मताचर्यैः
 सिद्धं परं निखिलकुष्ठनिबर्हणाय ॥ ७९ ॥
 सहामलकशुक्तिभिर्दधिसरेण तैलेन वा
 गुढेन पयसा घृतेन यवसक्तुभिर्वा सह ।
 तिलेन सह माक्षिकेण पललेन सूप्तेन वा^२
 वपुष्करमरुष्करं परममेध्यमायुष्करम्^३ ॥ ८० ॥
 भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानि च ।
 भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि ॥ ८१ ॥
 कफजो न स रोगोऽस्ति न विघ्नधोऽस्ति कश्चन ।
 यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रमग्निबलप्रदम् ॥ ८२ ॥
 वातातपविधानेऽपि विशेषेण विवर्जयेत् ।
 कुलत्थ-दधि-शुक्तानि, तलाभ्यङ्गाग्निसेवनम् ॥ ८३ ॥
 'वृक्षास्तुवरका' नाम पश्चिमाणवतीरजाः ।
 वीचीतरङ्गविज्ञोभ-मारुतोद्धूतपल्लवाः ॥ ८४ ॥
 तेभ्यः फलान्याददीत सुपक्वान्यम्बुदागमे ।
 मज्जा फलेभ्यश्चादाय शोषयित्वाऽवचूर्ण्य च ॥ ८५ ॥
 तिलवत्पीडयेद् द्रौण्यां काथयेद्वा कुसुम्भवत् ।
 तत्तैलं संहतं भूयः पचेदासलिलहयात् ॥ ८६ ॥

१. व्रणकृतां = भल्लातकानाम् । २. युतं भल्लातकम् ।

३. पृथ्वीवृत्तम्-घृते-माक्षिके-इति पदमध्ययतिदोषाक्रान्तम् ।

अवतार्य करीषे च पञ्चमात्रं निधापयेत् ।
 स्निग्धस्विन्नो हृतमलः पक्षाद्दुष्टस्य तत्ततः ॥ ८७ ॥
 चतुर्थभक्तान्तरितः प्रातः^१पाणितलं पिबेत् ।
 मन्त्रेणानेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे ॥ ८८ ॥
 'मज्जसार'^२महावीर्यं सर्वान् धातून् विशोधय ।
 शङ्खचक्रगदापाणिस्त्वामाज्ञापयतेऽच्युतः ॥ ८९ ॥
 तेनास्योर्ध्वमधस्ताच्च दोषा यान्त्यसकृत्ततः ।
 सायमस्नेहलवणां यवागूं शीतलां पिबेत् ॥ ९० ॥
 पञ्चाहानि पिबेत्तैलमित्थं^३वर्ज्यानि वर्जयेत् ।
 पञ्चं मुद्गरसान्नाशी सर्वकुष्ठैर्विमुच्यते ॥ ९१ ॥
 तदेव खदिरकाथे त्रिगुणे साधु साधितम् ।
 निहितं पूर्ववत्पञ्चं पिबेन्मासं सुयन्त्रितः ॥ ९२ ॥
 तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वन्नाहारमीरितम् ।
 अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत्कुष्ठिनं नरम् ॥ ९३ ॥
 सर्पिर्मधुयुतं पीतं तदेव खदिराद्विना ।
 पञ्चं मांसरसाहारं करोति द्विशतायुषम् ॥ ९४ ॥
 तदेव नस्ये पञ्चाशद्विसानुपयोजितम् ।
 वपुष्मन्तं श्रुतधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥ ९५ ॥

१. पाणितलम् = कर्षमितम् ।

२. मज्जः सारो मज्जसारस्तत्संबुद्धौ, मज्जन् राजन्-वत् ।

३. कुलत्थ-दधि-शुक्तानि तैलाऽभ्यङ्गाग्निसेवनम्-इति पूर्वोक्तानि ८३ ।

पिप्पलीरसायनम् ।

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा ।
 रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ ९६ ॥
 तिस्रस्त्रिंशश्च पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।
 पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ ९७ ॥
 प्रयोज्या मधुसन्मिश्रा रसायनगुणैषिणा ।

वर्द्धमानपिप्पली ।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दश पैप्पलिकं दिनम् ॥ ९८ ॥
 वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः ।
 जीर्णौषधश्च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ॥ ९९ ॥
 पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ।
 पिष्टास्ता वलिभिः पेयाः श्रुता मध्यबलैर्नरैः ॥ १०० ॥
 तद्वच्च छागदुग्धेन द्वे सहस्रे प्रयोजयेत् ।
 एभिः प्रयोगैः पिप्पल्यः कासश्वासगलग्रहान् ॥ १०१ ॥
 यक्ष्ममेहग्रहण्यर्शःपाण्डुत्वविषमज्वरान् ।
 घ्नन्ति शोफं वमिं हिध्मां प्लीहानं वातशोणितम् ॥ १०२ ॥
 १ बिल्वार्द्धमात्रेण च पिप्पलीनां
 पात्रं प्रलिम्पेदयसो निशायाम् ।
 प्रातः पिबेत्तत्सलिलाञ्जलिभ्यां २
 वर्षं यथेष्टाशनपानचेष्टः ॥ १०३ ॥

१. बिल्वार्द्धमात्रेण = अर्द्धपलेन ।

२. पलं चतुर्गुणं विद्यादञ्जलिं कुडवं तथा ।

अतिदिष्टरसायनानि ।

शुण्ठीविडङ्गत्रिफलागुडूची-

यष्टीहरिद्रातिबलाबलाश्च ।

मुस्तासुराह्वागुरुचित्रकाश्च

सौगन्धिकं पङ्कजमुत्पलानि ॥ १०४ ॥

धवाश्वकर्णासनबालपत्र-

सारास्तथा पिप्पलिवत्प्रयोज्याः ।

लोहोपलिप्ताः पृथगेव जीवे-

त्समाः शतं व्याधिजराविमुक्तः ॥ १०५ ॥

क्षीराञ्जलिभ्यां च रसायनानि

युक्तान्यमून्यायसलेपनानि ।

कुर्वन्ति पूर्वोक्तगुणप्रकर्ष-

मायुःप्रकर्षं द्विगुणं ततश्च ॥ १०६ ॥

असनखदिरयूषैर्भावितां सोमराजी^१

मधुघृतशिखिपथ्यालोहचूर्णैरुपेताम् ।

^२शरदमवलिहानः ^३पारिणामान् विकारान्

जयति मितहिताशी तद्गदाहारजातान् ॥ १०७ ॥

तीव्रेण कुष्ठेन परीतमूर्तिर्यः

सोमराजीं नियमेन खादेत् ।

१. सोमराजीम् = बाकुचीम् ।

२. शरदं = वर्षपर्यन्तम्-अत्यन्तसंयोगे द्वितीया, हायनोऽस्त्री
शरत्समाः । ३. पारिणामान् = जराजनितान् ।

संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजीं वपुषाऽतिशेते ॥ १०८ ॥
ये सोमराज्या वितुषीकृताया-
श्चूर्णैरुपेतात्पयसः सुजातात् ।

उद्धृत्य सारं मधुना लिहन्ति
तक्रं तदेवानुपिबन्ति चान्ते ॥ १०९ ॥

कुष्ठिनः^१ कुथ्यमानाङ्गास्ते जाताङ्गुलिनासिकाः ।
भान्ति वृक्षा इव पुनः प्ररूढनवपल्लवाः ॥ ११० ॥

अथ लशुनस्य ।

शीतवातहिमदग्धतनूनां
स्तब्धभुग्नकुटिलव्यथितास्थनाम् ।

भेषजस्य पवनोपहतानां
घट्टयते विधिरतो 'लशुनस्य'^२ ॥ १११ ॥

राहोरमृतचौर्येण लूनाद्ये पतिता गलात् ।
अमृतस्य कणा भूमौ ते^३ रसोनत्वमागताः ॥ ११२ ॥
द्विजा नाश्नन्ति तमतो दैत्यदेहसमुद्भवम् ।
साक्षादमृतसम्भूतेर्ग्रामणीः^४ स रसायनम् ॥ ११३ ॥
शीलयेत्लशुनं शीते वसन्तेऽपि कफोत्त्वणः ।
वनोदयेऽपि वातार्तः सदा वा ग्रीष्मलीलया^५ ॥ ११४ ॥

१. कुथ्यमानाङ्गा विशीर्यमाणशरीराः । कुथ-पूती भावे, दिवादिः ।

२. रसोनत्वं = लशुनत्वम् । ३. ग्रामणीः = अग्रणीः ।

४. उष्णसमयोचितेन विधिना ।

स्निग्धशुद्धतनुः शीतमधुरोपस्कृताशयः ।
 तदुत्तंसावतंसाभ्यां चर्चितानुचराजिरः ॥ ११५ ॥
 तस्य कन्दान् वसन्तान्ते^१ हिमवच्छकदेशजान् ।
 अपनीतत्वचो रात्रौ^२ तिमयेन्मदिरादिभिः ॥ ११६ ॥
 तत्कल्कस्वरसं प्रातः शुचितान्तवपीडितम् ।
 मदिरायाः सुरुढायास्त्रिभागेन समन्वितम् ॥ ११७ ॥
 मद्यस्यान्यस्य तैलस्य मस्तुनः काञ्जिकस्य वा ।
 तत्काल एव वा युक्तं युक्तमालोच्य मात्रया ॥ ११८ ॥
 तैलसर्पिर्वसामज्ज-क्षीरमांसरसैः पृथक् ।
 क्वाथेन वा यथान्याधि रसं केवलमेव वा ॥ ११९ ॥
 पिबेद्गण्डूषमात्रं प्राक् कण्ठनाडीविशुद्धये ।
 प्रततं स्वेदनं चानु वेदनायां प्रशस्यते ॥ १२० ॥
 शीताम्बुसेकः सहसा वमिमूर्च्छाययोर्मुखे ।
 शेषं पिबेत् क्लृमापाये स्थिरतां गत ओजसि ॥ १२१ ॥
 विदाहपरिहाराय परं शीतानुलेपनः ।

१. हिमवति ये शकदेशाः भूस्थान (भूटान) इति प्रसिद्धारतेषु
 जाताः स्वयं, न तु रोपिताः (वन्या इत्यर्थः) तान् कन्दान् तत्र हि
 वनेषु प्रशस्ततया लभ्यते वन्यो लशुनः तस्यैव पत्राणि तत्सदृशस्या-
 न्यस्य च पत्राणि जग्ध्नाम्ना व्यवहरन्ति हूणाः (तन्नामा) ग्राम्यस्तु
 द्विजातीनामभक्ष्यः—छत्राकं विड्वराहश्च लशुनं ग्रामकुक्कुटम् ।
 पलाण्डुं गृजनञ्चैव मत्स्या जग्ध्वा पतेद् द्विजः,—इत्यत्र ग्रामकुक्कुट-
 साहचर्यात् । गृजनशब्देन (सलगम इति प्रसिद्धः कन्दो गृह्यते
 निर्णयसिन्धौ द्रष्टव्यम् । २. तिम = आद्रीभावे ।

धारयेत्साम्बुकणिका मुक्ताः कर्पूरमालिकाः ॥ १२२ ॥
 कुडवोऽस्य परा मात्रा तदर्थं केवलस्य तु ।
 पलं पिष्टस्य तन्मज्जः सभक्तं प्राक् च शीलयेत् ॥ १२३ ॥
 जीर्णशाल्योदनं जीर्णं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ।
 भुञ्जीत यूषैः पयसा रसैर्वा धन्वचारिणाम् ॥ १२४ ॥
 मद्यमेकं पिबेत्तत्र तृट्प्रबन्धे जलान्वितम् ।
 अमद्यपस्त्वारनालं फलाम्बु परिसिथिकाम् ॥ १२५ ॥
 तत्कल्कं वा समधृतं घृतपात्रे खजाहतम् ।
 स्थितं दशाहादशनीयात्तद्वद्वा वसया समम् ॥ १२६ ॥
 विकञ्चुकप्राज्यरसोनगर्भान्
 सशूल्यमांसान् विविधोपदंशान् ।
 विमर्दकान् वा घृतशुक्तयुक्तान्
 प्रकाममद्याल्लघु तुच्छमशनम् ॥ १२७ ॥
 पित्तरक्तविनिर्मुक्त-समस्तावरणाऽऽवृते ।
 शुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्यं लशुनात्परम् ॥ १२८ ॥
 प्रियाम्बुगुडदुग्धस्य मांसमद्याम्लविद्विषः ।
 अतितिक्षोरजीर्णं च रसोनो व्यापदे ध्रुवम् ॥ १२९ ॥
 पित्तकोपभयादन्ते युञ्ज्यान्मृदु विरेचनम् ।
 रसायनगुणानेवं परिपूर्णान्समश्नुते ॥ १३० ॥

शिलाजतुरसायनम् ।

ग्रीष्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वमन्ति यत् ।
 हेमादिषड्धातुरसं प्रोष्यते तच्छिलाजतु ॥ १३१ ॥
 सर्वं च तिक्तकटुकं नात्युष्णं कटु पाकतः ।

छेदनं च विशेषेण लौहं तत्र प्रशस्यते ॥ १३२ ॥
 गोमूत्रगन्धि कृष्णं, गुग्गुलुवाभं विशर्करं मृत्स्नम् ।
 स्निग्धमनग्लकषायं, मृदु गुरु च शिलाजतु श्रेष्ठम् ॥ १३३ ॥
 व्याधिव्याधितसारम्यं, समनुस्मरन् भावयेदयःपात्रे ।
 प्राक् केवलजलधौतं, शुष्कं क्वाथैस्ततो भाव्यम् ॥ १३४ ॥
 समगिरिजमष्टगुणिते निःक्वाथ्यं भावनौषधं तोये ।
 तन्निर्यूहेऽष्टांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद् गिरिजम् ॥ १३५ ॥
 तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्भस्मे भूयः ।
 स्वैः स्वैरेवं क्वाथैर्भाव्यं वारान् भवेत्सप्त ॥ १३६ ॥
 अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तिक्तकसाधितम् ।
 त्र्यहं युज्जीत गिरिजमेकैकेन तथा त्र्यहम् ॥ १३७ ॥
 फलत्रयस्य यूषेण पटोल्या मधुकस्य च ।
 योगं योग्यं ततस्तस्य कालापेक्षं प्रयोजयेत् ॥ १३८ ॥
 शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ।
 गुणान् समग्रान् कुरुते सहसा व्यापदं न च^१ ॥ १३९ ॥
 एक-त्रि-सप्त-सप्ताहं कर्षमर्धपलं पलम् ।
 हीनमध्योत्तमो योगः शिलाजस्य क्रमान्मतः ॥ १४० ॥
 संस्कृतं संस्कृते देहे प्रयुक्तं गिरिजाह्वयम् ।
 युक्तं व्यस्तैः समस्तैर्वा ताम्रायोरूप्यहेमभिः ॥ १४१ ॥
 क्षीरेणालोडितं कुर्याच्छीघ्रं रासायनं फलम् ।
 कुलस्थान्^२ काकमार्ची च कपोतांश्च सदा त्यजेत् ॥ १४२ ॥

१. व्यापदश्च न कुरुते-इत्यन्वयः ।

२. काकमार्ची = नानाविधा (मकोय, डमाटर) इत्यादि-

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्य-

रूपो जत्वश्मजं यं न जयेत्प्रसह्य ।

तत्कालयोगैर्विधिवत्प्रयुक्तं

स्वस्थस्य चोजौ विपुलां दधाति ॥ १४३ ॥

‘कुटीप्रवेशः’ क्षणिनां परिच्छदवतां हितः ।

अतोऽन्यथा तु ये तेषां ‘सूर्यमारुतिको’ विधिः ॥ १४४ ॥

वातातपसहा योगा वक्ष्यन्तेऽतो विशेषतः ।

सुखोपचारा भ्रंशोऽपि ये न देहस्य बाधकाः ॥ १४५ ॥

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।

त्रिशः समस्तमथवा प्राक् पीवं स्थापयेद्वयः ॥ १४६ ॥

सदाऽभयारसायनम् ।

गुणेन मधुना शुण्ठ्या कृष्ण्या लवणेन वा ।

द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ १४७ ॥

घृतपक्वाऽभयारसायनम् ।

हरीतकीं सर्पिषि सम्प्रताप्य

समश्नतस्तत्पिबतो घृतं च ।

भवेच्चिरस्थायि बलं शरीरे

सकृत् कृतं साधु यथा कृतज्ञे ॥ १४८ ॥

धात्रीरसक्षौद्रसिताघृतानि

हिताशनानां लिहतां नराणाम् ।

भेदभिन्नाः, शिलाजतुनः सन्धानकर्तृत्वं, कुलत्थादीनां भेदकत्वमिति

विरोधात् त्यज्यन्ते ते ।

१. सूर्यमारुतिकः = वातातपिकः ।

प्रणाशमायान्ति जराधिकारा
 ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ १४९ ॥
 धात्रीकृमिघ्नाऽसनसार-
 चूर्णं सतैलसर्पिर्मधुलोहरेण ।
 निषेवमाणस्य भवेन्नरस्य
 तारुण्यलावण्यमविप्रणष्टम् ॥ १५० ॥
 लोहं रजो वेल्लभवं च सर्पिः
 क्षौद्रद्रुतं स्थापितमब्दमात्रम् ।
 सामुद्रके बीजकसारकृपते
 लिहन् बली जीवति कृष्णकेशः ॥ १५१ ॥
 विडङ्गभस्मातकनागराणि
 येऽश्नन्ति सर्पिर्मधुसंयुतानि ।
 जरानर्दीं रोगतरङ्गिणीं ते
 लावण्ययुक्ताः पुरुषास्तरन्ति ॥ १५२ ॥
 खदिरासनयूषभाविताया-
 स्त्रिफलाया घृतमाक्षिकप्लुतायाः ।
 बीजकस्य रसमङ्गुलिहार्थं
 शर्करामधुघृतं त्रिफलां च ।
 शीलयस्सु पुरुषेषु जरत्ता^१
^१स्वागताऽपि विनिवर्तत एव ॥ १५४ ॥

१. जरतो = वृद्धस्य भावो जरत्ता = जरा । जरन्, जरन्ती ।
 जरन्तः ।

२. सुतराम्-आगता स्वागता, वृत्तमपि सूचितम् ।

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य
 पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम् ।
 मासद्वयं तन्निगुणं समां वा
 जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ १५५ ॥
 अतिदेशः ।
 मूर्वाबृहत्पुष्पमतीबलाना-
 मुशीरपाठाऽसनसारिवाणाम् ।
 कालानुसार्यागुरुचन्दनानां
 वदन्ति पौनर्नवमेव कल्पम् ॥ १५६ ॥
 शतावरीकल्ककषायसिद्धं,
 ये सर्पिरश्नन्ति सिताद्वितीयम् ।
 तान् जीविताध्वानमभिप्रपन्नान् ,
 न विप्रलुम्पन्ति विकारचौराः^१ ॥ १५७ ॥
 पीताऽश्वगन्धा पपसार्धमासं
 घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
 कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
 बालस्य सस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥ १५८ ॥
 दिने दिने कृष्णतिलप्रकुञ्चं^३
 समश्नतां शीतजलानुपानम् ।

१. जीविताद्ध्वचरा विकाररूपाः स्तेनाः, जराजन्या रोगाः ।

लुप्ल = छेदने । २. पीता सती ।

३. प्रकुञ्चः = पलम् 'पलं मुष्टिः, प्रकुञ्चोऽथ चतुर्थिका' ।

पोषः शरीरस्य भवत्यनल्पो

दृढीभवन्त्यामरणाच्च दन्ताः ॥ १५९ ॥

चूर्णं^१ दंष्ट्रामलकामृतानां

लिहन्ससर्पिर्मधुभागमिश्रम् ।

वृषः स्थिरः शान्तविकारदुःखः

समाः शतं जीवति कृष्णकेशः ॥ १६० ॥

सार्धं तिलैरामलकानि कृष्णै-

रक्षाणि^१ सङ्क्षुब्ध हरीतकीर्वा ।

येऽद्युर्मयूरा इव ते मनुष्या

रम्यं परीणाममवाप्नुवन्ति ॥ १६१ ॥

‘शिलाजतु’क्षौद्रविडङ्गसर्पिलोहाभयापारदताप्यभक्षः ।

आपूर्यते दुर्बलदेहधातुस्त्रिपञ्चरात्रेण यथा शशाङ्कः ॥ १६२ ॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति

दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् ।

क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः

समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ १६३ ॥

मासं ब्रह्ममप्युपसेवमानाः

क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि ।

भवन्ति रक्षोभिरघृण्यरूपा

मेधाविनो निर्मलमृष्टवाक्याः ॥ १६४ ॥

^१मण्डूकपर्णीमपि भक्षयन्तो

भृष्टां घृते मासमनञ्जभक्ष्याः ।

जीवन्ति कालं विपुलं प्रगल्भा-

स्तारुण्यलावण्यगुणोदयस्थाः ॥ १६५ ॥

लाङ्गलीत्रिफलालोहपलपञ्चाशतीकृतम् ।

मार्कवस्वरसे षष्ठ्या गुटिकानां शतत्रयम् ॥ १६६ ॥

झायाविशुष्कं गुटिकार्धमद्यात्पूर्वं समस्तामपि तां क्रमेण ।

भजेद्विरिक्तः क्रमशश्च मण्डं पेयां विलेपीं रसकौदनं च ॥

सर्पिःस्निग्धं मासमेकं यतात्मा

मासादूर्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः ।

वर्ज्यं यस्मात्सर्वकालं त्वजीर्णं

वर्षेणैवं योगमेवोपयुञ्ज्यात् ॥ १६८ ॥

भवति विगतरोगो योऽप्यसाध्यामयातः

प्रबलपुरुषकारः शोभते योऽपि वृद्धः ।

उपचितपृथुगान्त्रश्रोत्रनेत्रादियुक्तः ।

तरुण इव समानां पञ्च जीवेच्छृतानि ॥ १६९ ॥

गायत्री-शिखि-विंशपाऽसन-शिवा-वेङ्कटाऽक्ष-कारुष्करान्

पिष्ट्वाऽष्टादशसङ्कुणेऽम्भसि घृतान् खण्डैः सहायोमयैः ।

पात्रे लोहमये त्र्यहं रविकरैरालोडयन् पाचये-

वमौ चानु मृदौ सलोहशकलं पादस्थितं तत्पचेत् ॥ १७० ॥

पूतस्यांशः क्षीरतोऽशस्तथांशौ

भाङ्गार्जिर्यासाद् द्वौ वरायास्त्रयोऽशाः ।

अंशाश्चत्वारश्चेह हैयङ्गवीना-

देकीकृत्यैतत्साधयेत्कृष्णलौहे ॥ १७१ ॥

ब्राह्मी च । ब्राह्मी च नानाविधा । सर्वाः, रसायनभूताः ।

विमलखण्डसितामधुभिः पृथग्

युतमयुक्तमिदं यदि वा घृतम् ।

स्वरुचिभोजनपानविच्छेदितो

भवति ना पलशः^१ परिशीलयन् ॥ १७२ ॥

श्रीमान्निर्धूतपाप्मा वनमहिषबलो वाजिधेगः स्थिराङ्गः

केशैर्भृङ्गाङ्गनीलैर्मधुसुरभिमुखो नैकयोषिस्त्रिवेदी ।

वाङ्मेधाधीसमृद्धः सुपटुहुतवहो^२ मासमात्रोपयोगाद्

धत्तेऽसौ नारसिंहं वपुरनलशिखातप्तचामीकराभम् ॥ १७३ ॥

अत्तारं 'नारसिंहस्य' व्याधयो न स्पृशन्त्यपि ।

चक्रोज्ज्वलभुजं भीता नारसिंहमिवासुराः ॥ १७४ ॥

भृङ्गप्रवालानमुनैव भृष्टान्

घृतेन यः खादति यन्त्रितात्मा ।

विशुद्धकोष्ठोऽसनसारसिद्ध-

दुग्धानुपस्तकृतभोजनार्थः ॥ १७५ ॥

मासोपयोगात् स सुखी जीवस्यद्दशतद्वयम् ।

गृह्णाति सकृदप्युक्तमविलुप्तस्मृतीन्द्रियः ॥ १७६ ॥

अनेनैव च कल्पेन यस्तैलमुपयोजयेत् ।

तानेवाप्नोति स गुणान् कृष्णकेशश्च जायते ॥ १७७ ॥

उक्तानि शक्यानि फलान्वितानि

युगानुरूपाणि रसायनानि ।

१. पलशः = प्रकुञ्चशः ।

२. सुपटुहुतवहो = यथोचितपाचकशक्तिः ।

महानुशंसान्यपि चापराणि

प्राप्त्यादिकष्टानि^१ न कीर्तितानि ॥ १७८ ॥

रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन् व्याधयो यदि ।

यथास्वमौषधं तेषां कार्यं मुक्त्वा रसायनम् ॥ १७९ ॥

आचाररसायनम् ।

सत्यवादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।

शान्तं सद्बृत्तनिरतं विद्यान्नित्यरसायनम् ॥ १८० ॥

गुणैरेभिः समुदितः सेवते यो रसायनम् ।

स निर्वृतात्मा दीर्घायुः परचेह च मोदते ॥ १८१ ॥

शास्त्रानुसारिणी चर्या^२ चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः^३ ।

^४बुद्धिरस्खलिताऽर्थेषु परिपूर्णं रसायनम् ॥ १८२ ॥

[समाप्तं रसायनतन्त्रम् ।]

इत्युत्तरस्थान एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।



१. इन्द्रोत्तरसायनादीनि-च० र० पा० ४ । ७ । न कथितानि-
अशक्यत्वात् । २. चर्या = आचाररसायनम् ।

३. पार्श्ववर्तिनः = सहधर्मिणी-पुत्र-शिष्य-भृत्यादयः । अत
एव कालिदासः-‘ते बहुज्ञस्य चित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीभृत’ इति ।
तेषां चित्तज्ञत्वाऽभावे सदाऽऽधिगमत्वात्सदाऽऽतुरता ।

४. बुद्धिरस्खलिता = प्रज्ञापराधाऽभावः । इति रसायनतन्त्रम् ।

चत्वारिंशोऽध्यायः ।

१अथाऽतो वाजीकरणाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ।

‘वाजीकरणमन्विच्छेत्सततं विषयी पुमान् ।

तुष्टिः पुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र संश्रितम् ॥ १ ॥

अपत्यसन्तानकरं यत्सद्यःसम्प्रहर्षणम् ।

वाजीवाऽतिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽङ्गनाः ॥ २ ॥

भवत्यतिप्रियः स्त्रीणां येन येनोपचीयते ।

तद्वाजीकरणं २विद्धिदेहस्योर्जस्करं परम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्यम्

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं लोकद्वयरसायनम् ।

अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तनिर्मलम् ॥ ४ ॥

प्रयोजनम्

अरूपसत्त्वस्य तु क्लेशैर्वाध्यमानस्य रागिणः ।

शरीरक्षयरक्षार्थं वाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

कल्पस्योदग्रवयसो वाजीकरणसेविनः ।

सर्वेष्वृतुष्वहरहर्व्यवायो न निवार्यते ॥ ६ ॥

अथ स्निग्धविशुद्धानां निरुहान्सानुवासनान् ।

१. अथ परिशेषाद् वाजीकरणाध्यायः ।

२. वजनं = वाजो = वेगः, वज = गतौ वाजोऽस्यास्तीति वाजी =

कामवेगवान्, नित्ययोगे मत्वर्थीयः, अवाजी वाजी क्रियतेऽ
नेनेति-वाजीकरणम्-इत्यपि वेदितव्यम् ।

घृततैलरसक्षीरशर्कराक्षौद्रसंयुतान् ॥ ७ ॥
 योगविद् योजयेत्पूर्वं क्षीरमांसरसाशिनम् ।
 ततो वाजीकरान् योगान् शुक्रापत्यविवर्धनान् ॥ ८ ॥
 अच्छायः पूतिकुसुमः फलेन रहितो द्रुमः ।
 यथैकश्चैकशाखश्च 'निरपत्यस्तथा' नरः ॥ ९ ॥
 स्खलद्गमनमव्यक्त-वचनं धूलिधूसरम् ।
 अपि लालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम् ॥ १० ॥
 अपत्यं, तुल्यता ^१ केन दर्शनस्पर्शनादिषु ।
 किं पुनर्यद्यशोधर्म-मानश्रीकुलवर्धनम् ॥ ११ ॥
 शुद्धकाये यथाशक्ति ^२ 'वृष्ययोगान्' प्रयोजयेत् ।
 शरेष्कुशकाशानां विदार्या वीरणस्य च ॥ १२ ॥
 मूलानि कण्टकार्याश्च जीवकर्षभकौ बलाम् ।
 मेदे द्वे द्वे च काकोलयौ शूर्पपण्यौ शतावरीम् ॥ १३ ॥
 अश्वगन्धामतिबलामात्मगुप्तां पुनर्नवाम् ।
 वीरां पयस्यां जीवन्तीमृद्धिं रासनां त्रिकण्टकम् ॥ १४ ॥
 मधुकं शालिपर्णीं च भागांस्त्रिपलिकान् पृथक् ।
 माषाणामाढकं चैतद् द्विद्रोणे साधयेदपाम् ॥ १५ ॥
 रसेनाढकशेषेण पचेत्तेन घृताढकम् ।
 दत्त्वा विदारीधात्रीक्षु-रसानामाढकाढकम् ॥ १६ ॥

१. तस्य-इति शेषः ।

२. वर्षतीति वृषः = कामः, वृषु सेचने-'इगुप्रथशाप्रीकिरः कः' ।

वर्षणं वृषः सेचनशक्तिः घञर्थे कः, वृषाय हिता वृष्याः, तस्मै हित-
 मिति यत् । वृष्याश् च ते योगाः ।

घृताक्षतुर्गुणं क्षीरं पेण्याणीमानि चाऽऽवपेत् ।
 वीरां स्वगुप्तां काकोल्यौ यष्टीं फल्गूनि पिप्पलीम् ॥ १७ ॥
 द्राक्षां विदारीं खर्जूरं मधुकानि शतावरीम् ।
 तस्मिद्धपूतं चूर्णस्य पृथक् प्रस्थेन योजयेत् ॥ १८ ॥
 शर्करायास्तुगायाश्च पिप्पल्याः कुडवेन च ।
 मरिचस्य प्रकुञ्चेन पृथगर्धपलोन्मितैः ॥ १९ ॥
 त्वजेलकेसरैः श्लक्ष्णैः क्षौद्राद् द्विकुडवेन^१ च ।
 पलमात्रं ततः खादेत् प्रत्यहं रसदुग्धभुक् ॥ २० ॥
 तेनाऽऽरोहति वाजीव कुलिङ्ग इव हृष्यति ।
 विदारीपिप्पलीशालि-प्रियालेक्षुरकाद्रजः ॥ २१ ॥
 पृथक् स्वगुप्तामूलाच्च कुडवांशं तथा मधु ।
 तुलार्धं शर्कराचूर्णात् प्रस्थार्धं नवसर्पिषः ॥ २२ ॥
 सोऽक्षमात्रमतः खादेद् यस्य रामाशतं गृहे ।
 सात्मगुप्ताफलान् क्षीरे गोधूमान् साधितान् हिमान् ॥ २३ ॥
 माषान्वा सघृतक्षौद्रान् खादन् गृष्टिपयोऽनूपः ।
 जगति रात्रिं सकलामखिन्नः^२ खेदयेत्स्त्रियः ॥ २४ ॥
 बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ।
 यः खादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ २५ ॥
 चूर्णं विद्वार्या बहुशः स्वरसेनैव भावितम् ।
 क्षौद्रसर्पिर्युतं लीढ्वा प्रमदाशतमृच्छति ॥ २६ ॥
 कृष्णाधात्रीफलरजः स्वरसेन सुभाविताम् ।

१. पलं चतुर्गुणं विधाद् अजलिं कुडवं तथा ।

२. खेदयन्-इति पा० ।

शर्करामधुसर्पिर्भिर्लीढ्वा योऽनु पयः पिबेत् ॥ २७ ॥
 स नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ।
 कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ २८ ॥
 पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ।
^१कुलीरशृङ्गा यः कल्कमालोढ्य पयसा पिबेत् ॥ २९ ॥
 सिताघृतपयोऽज्ञाशी स नारीषु वृत्तयते ।
 यः पयस्यां पयःसिद्धां खादेन्मधुघृतान्विताम् ॥ ३० ॥
 पिबेद्वाष्कयणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः ।
 स्वयङ्मुक्तेष्टुरकयोर्वीजचूर्णं सशर्करम् ॥ ३१ ॥
 धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रासभायते ।
 उच्चटाचूर्णमप्येवं शतावर्याश्च योजयेत् ॥ ३२ ॥
 चन्द्रशुभ्रं दधिसरं ससितं षष्टिकौदनम् ।
 पटे सुमार्जितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ३३ ॥
 श्वदंष्ट्रेष्टुरमाषात्मगुप्ताबीजशतावरीः ।
 पिबन् क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाशतम् ॥ ३४ ॥
 यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम् ।
 मनसो हर्षणं यच्च तत्सर्वं वृष्यमुच्यते ॥ ३५ ॥
 द्रव्यैरेवंविधैस्तस्माद्वर्षितः प्रमदां व्रजेत् ।
 आत्मवेगेन चोदीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहर्षितः ॥ ३६ ॥
 सेव्याः सर्वेन्द्रियसुखा धर्मकल्पद्रुमाङ्कुराः ।
 विषयातिशयाः पञ्चशराः कुसुमधन्वनः ॥ ३७ ॥

१. कुलीरशृङ्गा = कर्कटशृङ्गा (काकडासिंगी)

इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्था हर्षप्रीतिकराः परम् ।
 किं पुनः स्त्रीशरीरे ये^१ संघातेन प्रतिष्ठिताः ॥ ३८ ॥
 नामापि यस्या हृदयोत्सवाय
 यां पश्यतां तृप्तिरनाप्तपूर्वा ।
 सर्वेन्द्रियाकर्षणपाशभूता
 कान्तानुवृत्ति-व्रतदीक्षिता या ॥ ३९ ॥
 कलाविलासाङ्गवयोविभूषा शुचिः
 सलज्जा रहसि प्रगल्भा ।
 प्रियंवदा तुल्यमनःशया या
 सा स्त्री^२ वृषत्वाय परं नरस्य ॥ ४० ॥
 आचरेच्च सकलां रतिचर्यां
 कामशास्त्रविहितामनवद्याम् ।
 देशकालबलशक्त्यनुरोधाद्
 वैद्यतन्त्रसमयोक्यविरुद्धाम्^३ ॥ ४१ ॥
 अभ्यञ्जनोद्धर्तनसेकगन्ध-
 स्नक्पत्रवस्त्राभरणप्रकाराः ।
 गान्धर्वकाव्यादिकथाप्रवीणाः
 समस्वभावा वशागा वयस्याः ॥ ४२ ॥

१. स्त्रीशरीरे रूप रस गन्ध स्पर्शाः सर्वे सहैव स्थिताः, अन्यत्र तु विकीर्णा इत्यर्थः चरकभागीरथ्यां द्रष्टव्यम् ।

२. वृषत्वाय = वीर्यवर्द्धनाय, (प्रवृत्तिनी स्त्री शुक्रस्य) इति चरकोक्तेः ।

३. 'धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ, इति भगवदुक्तेः ।

दीर्घिका स्वभवनान्तनिविष्टा पद्मरेणुमधुमत्तविहङ्गा ।
 नीलसानुगिरिकूटनितम्बेकाननानि पुरकण्ठगतानि^१ ॥४३॥
 दृष्टिसुखा विविधा तरूजातिः श्रोत्रसुखः कलकोकिलनादः ।
 अङ्गसुखर्तुवशेन विभूषा चित्तसुखः—सकलः परिवारः ॥४४॥
 ताम्बूलमच्छमदिरा कान्ता निशा शशाङ्काङ्का ।
 यद्यच्च किञ्चिदिष्टं मनसो वाजीकरं तत्तत् ॥ ४५ ॥

मधु मुखमिव सोत्पलं प्रियायाः
 कलरणना परिवादिनी प्रियेव ।

कुसुमचयमनोरमा च शय्या
 किसलयिनी लतिकेव पुष्पिताग्रा ॥ ४६ ॥
 देशे शरीरे च न काचिदतिर-
 र्थेषु नाल्पोऽपि मनोविधातः ।

वाजीकराः सन्निहिताश्च योगाः
 कामस्य कामं परिपूरयन्ति ॥ ४७ ॥

अथाग्र्याणि संगृह्णाति ।

मुस्तापर्पटकं ज्वरे^२ तृषि जलं मृदुमृष्टलोष्टोद्भवं,^३
 लाजाश्छर्दिषु, बस्तिजेषु गिरिजं, मेहेषु धात्रीनिशे ।

१. पुरकण्ठः = पुरोयकण्ठः उप-इत्यस्य त्यागश्छन्दोऽनुरोधात् ।

२. ज्वरे मुस्तासहितं-पर्पटकं शमाय-अलम्-इत्युत्तरेणान्वयः
 सर्वत्र ।

३. मृदुः = मृत्तिकायाः मृष्टं कृतभज्जनं यल्लोष्टं पिण्डं तदुद्भवं =
 तत्पातनेन कृततापम् पुनः स्वभावशीतम् ।

पाण्डौ श्रेष्ठमयोऽभयाऽनिलकफे, प्लीहामये पिप्पली,
सन्धाने कृमिजा, ^१विषे ^२शुकतरु, मेदोनिले गुग्गुलुः ॥४८॥

^३वृषोऽस्त्रपित्ते, कुटजोऽतिसारे,
भस्मलातकोऽर्शःसु, गरेषु हेम ।

स्थूलेषु ताक्ष्यं, कृमिषु कृमिघ्नं,

शोषे सुरा च्छागपयोऽनुमांसम् ॥ ४९ ॥

अक्ष्यामयेषु त्रिफला, गुडूची वातास्ररोगे, मथितं ग्रहण्याम् ।

कुष्ठेषु सेव्यः ^४खदिरस्य सारः, सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥५०॥

उन्मादं घृतमनवं ^५शोकं मद्यं, व्यपस्मृतिं ब्राह्मी ।

निद्रानाशं क्षीरं जयति रसाला प्रतिश्यायम् ॥ ५१ ॥

मांसं काश्यं, लशुनः प्रभञ्जनं, स्तब्धगात्रतां स्वेदः ।

^६गुडमञ्जर्याः खपुरो नस्यात्स्कन्धांसबाहुरुजम् ॥ ५२ ॥

नवनीतखण्डमर्दितमौष्ट्रं मूत्रं पयश्च हन्त्युदरम् ।

नस्यं मूर्धविकारान्, विद्रुधिमचिरोत्थमस्त्रविस्त्रावः ॥५३॥

नस्यं कवलो मुखजान्, नस्याञ्जनतर्पणानि नेत्ररुजः ।

वृद्धत्वं क्षीरघृते, मूच्छां शीताम्बुमारुतच्छायाः ॥ ५४ ॥

समशुक्ताद्रकमात्रा मन्दे वह्नौ, श्रमे सुरा स्नानम् ।

दुःखसहस्वे स्थैर्यं व्यायामो, गोक्षुरर्हितः कृच्छ्रे ॥ ५५ ॥

१. कृमिजा = लाक्षा । २. शुकतरुः = शिरीषः ।

३. वृषो = वासा । ४. खदिरः कुष्ठहराणाम् ।

५. अनवं = पुराणम् ।

६. गुडमञ्जर्याः = कृष्णशाल्मल्याः, खपुरः = निर्यासः ।

कासे निदिग्धिका, पार्श्व-शूले पुष्करजा जटा ।
 वयसः स्थापने धात्री, त्रिफलागुग्गुलुवर्णे ॥ ५६ ॥
 बस्तिर्बातविकारान्, पैत्तान् रेकः, कफोद्भवान् वमनम् ।
 क्षौद्रं जयति बलासं, सर्पिः पित्तं, समीरणं तैलम् ॥ ५७ ॥
 हृत्प्रथं यत्प्रोक्तं ^१रोगाणामौषधं शमायालम् ।
 तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम् ॥ ५८ ॥

शास्त्रमुपसंहरति—

इत्यात्रेयादागमय्यार्थसूत्रं
 तत्सूक्तानां पेशलानामवृत्तः ।
 भेडादीनां सम्मतो भक्तिनम्रः
 पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ^२ ॥ ५९ ॥
 दृश्यन्ते भगवन् केचिदात्मवन्तोऽपि रोगिणः ।
 द्रव्योपस्थानुसम्पन्ना वृद्धवैद्यमतानुगाः ॥ ६० ॥
 क्षीयमाणामयप्राणा विपरीतास्तथापरे ।
 हिताहितविभागस्य फलं तस्मादनिश्चितम् ॥ ६१ ॥
 किं शास्ति शास्त्रमस्मिन्निति कल्पयतोऽग्निवेशमुख्यस्य ।
 शिष्यगणस्य पुनर्वसुराचख्यौ कात्स्न्यतस्तत्त्वम् ॥ ६२ ॥
 न चिकित्साऽचिकित्सा च तुल्या भवितुमर्हति ॥

१. लोहित-शालयः शूकधान्यानाम्-इत्यारभ्य सर्वसन्धासः
 सुखानाम् इत्यन्तेन ग्रन्थेन सूत्रस्थाने चरके पञ्चविंशेऽध्याये ३६-४०
 पर्यन्तम् ।

२. चरके सू. अ. २५।३२।

विनापि क्रियया स्वास्थ्यं गच्छतां षोडशांशया^१ ॥ ६३ ॥
 आतङ्कपङ्कमम्रानां हस्तालम्बो भिषग्जितम् ।
 जीवितं त्रियमाणानां सर्वेषामेव नौषधात् ॥ ६४ ॥
 न ह्युपायमपेक्षन्ते सर्वे रोगा न चान्यथा ।
 उपायसाध्याः सिध्यन्ति^२ नाहेतुर्हेतुमान् यतः ॥ ६५ ॥
 यदुक्तं सर्वसम्पत्तियुक्तयापि चिकित्साया ।
 मृत्युर्भवति तन्नेवं नोपायेऽस्यनुपायता ॥ ६६ ॥
 अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचिक्रिया ।
 न सिध्येद्दैव-वैगुण्यान्नस्वियं षोडशात्मिका^३ ॥ ६७ ॥

चिकित्साया निश्चितफलत्वम् ।

कस्यासिद्धोऽमितोयादिः स्वेदस्तम्भादिकर्मणि ।

३. भिषक्, द्रव्याणि, सेवकः, चिकित्सकाऽऽज्ञापालको रोगीति चतुष्पात्-चिकित्सा, प्रत्येकं तेषां चत्वारो गुणा इति षोडशांशतया ।

१. 'साधनं नत्वसाध्यानां व्याधीनामुपदिश्यते-इति चरकः ।]

२. अयम्भावः—प्रारब्धकर्मणामवश्यभोक्तव्याद् यस्य कर्मणो यदा पाकः, तदा भोक्तुः प्रज्ञापराधः, ततो मिथ्याहारविहारादि-सेवनम् ततो रोगाः ततः स्मृतिविभ्रमः, ततो विपरीतज्ञापकता, ततो वैष्यस्य विपरीतज्ञानम्, ततोऽयथार्थौषधवितरणमिति विगुणा, दैवविगुणस्य चिकित्सेति न षोडशगुणा । च० सू० अ० ९-१० द्रष्टव्यम् ।

न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरगवेधुकम् ॥ ६८ ॥
 कस्य माषात्मगुप्तादौ वृष्यत्वे नास्ति निश्चयः ।
 विष्णून्नकरणाऽऽक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे ॥ ६९ ॥
 विषं कस्य जरां याति मन्त्रतन्त्रविवर्जितम् ।
 कः प्राप्तः कल्पतां पथ्यादृते रोहिणिकादिषु ॥ ७० ॥
 अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धान्तनिश्चितम् ।
 महतापि प्रयत्नेन वार्यतां कथमन्यथा ॥ ७१ ॥
 चन्दनाद्यपि दाहादौ रूढमागमपूर्वकम् ।
 शास्त्रादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लङ्घनबुंहणम् ॥ ७२ ॥
 चतुष्पाद्गुणसम्पन्ने सम्यगालोच्य योजिते ।
 मा कृथा व्याधिनिघाते ^१चिकित्सां चिकित्सते ॥ ७३ ॥
 एतद्धि मृत्युपाशानामकाण्डे छेदनं दृढम् ।
 रोगोन्नासितभीतानां रक्षासूत्रमसूत्रकम् ॥ ७४ ॥
 एतत्तदमृतं साक्षाज्जगत्यायासवर्जितम् ।
 याति हालाहलत्वं च सद्यो दुर्भाजनस्थितम् ॥ ७५ ॥
 अज्ञातशास्त्रसद्भावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।
 त्यजेद्दूरान्निषक्पाशान् ^२पाशान् वैवस्वतानिव ॥ ७६ ॥
 भिषजां साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।

१. षोडशगुणवति चिकित्सिते सति तु व्याधिशमने, विषये सन्देहं न कुरु-इति भावः ।

२. कुत्सिता भिषजो निषक्पाशः (याप्ये पाशप्) तान् । वैवस्वतोऽत्र यमः ।

अभ्यस्तकर्मणां भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥ ७७ ॥
 इति तन्त्रगुणैर्युक्तं^१ तन्त्रदोषविवर्जितम् ।
 चिकित्साशास्त्रमखिलं व्याप्य यत् परितः स्थितम् ॥ ७८ ॥
 विपुलामलविज्ञानमहामुनिमतानुगम्^२ ।
 महासागरगम्भीरसङ्ग्रहार्थोपलक्षणम् ॥ ७९ ॥
 अष्टाङ्गवैद्यकमहोदधिमन्थनेन ।
 योऽष्टाङ्गसङ्ग्रहमहामृतराशिरासः ।
 तस्मादनल्पफलमल्पसमुद्यमानां
 प्रीत्यर्थमेतमुदितं पृथगेव तन्त्रम्^३ ॥ ८० ॥
 इदमागमसिद्धत्वात्प्रत्यक्षफलदर्शनात् ।
 मन्त्रवत्सम्प्रयोक्तव्यं न मीमांस्यं कथञ्चन ॥ ८१ ॥
 दीर्घजीवितमारोग्यं धर्ममर्थं सुखं यशः ।
 पाठावबोधानुष्ठानैरधिगच्छत्यतो ध्रुवम् ॥ ८२ ॥
 एतत्पठन् सङ्ग्रहबोधशक्तः
 स्वभ्यस्तकर्मा भिषगप्रकल्प्यः ।

१. चरके सिद्धिस्थाने-द्वादशाध्याये-६८-७१॥ पर्यन्तं द्रष्टव्याः,
तन्त्र गुणाः ।

२. महामुनयः पुनर्वसु-धन्वन्तरि-निमि-कश्यपादयः ।

३. तन्त्रं = शास्त्रम्, न तु खण्डग्रन्थः ।

४. इदम् = अष्टाङ्गहृदयम्, मयापि-आगमसिद्धत्वसाधनायैव
यत्र तत्र चरक-प्रामाण्यं दर्शितम्-न मीमांसायै ग्रन्थकर्तुरा-
सत्वाद् ।

आकम्पयत्यन्यविशालतन्त्र-

कृताभियोगान्यदि तन्न चित्रम् ॥ ८३ ॥

यदि चरकमधीते तद्भ्रुवं सुश्रुतादि-

प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः^१।

अथ चरकविहीनः^१ प्रक्रियायामखिन्नः

किमिह खलु करोतु व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

अभिनिवेशवशादभियुज्यते

सुभणितेऽपि न यो दृढमूलकः^२ ।

पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं

स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च

पथ्यं तैलं सर्पिर्माक्षिकं च क्रमेण ।

एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो

वा का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिधातृवशात् किंवा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।

अतो मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलम्ब्यताम् ॥ ८७ ॥

अपिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरकसुश्रुतौ ।

१. चरकविहीनः किन्तु-अधीतसुश्रुतः, अत एव प्रक्रियायाम् =
शूलचिकित्सायामखिन्नः = कुशलः । व्याधितानां = ज्वरातीसारका-
सादिमताम् ।

२. दृढमूलकः-इति पाठः । मूलमार्षतन्त्रम् ।

भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् प्राङ्गं सभाषितम्^१ ॥८८॥

हृदयमिव हृदयमेतत्सर्वायुर्वेदवाङ्मयपयोधेः^२ ।

कृत्वा^३ यच्छुभमाप्तं शुभमस्तु परं ततो जगतः ॥ ८९ ॥

इति श्रीसिंहगुप्तसूनुवाग्भटविरचितायामष्टाङ्गहृदय-

संहितायामुत्तरस्थानं समाप्तम् ॥

समाप्तमिदमष्टाङ्गहृदयम्

१. सुष्ठु-सरलक्रमेण भाषितम्-अष्टाङ्गहृदयम् ।

२. सर्वे = आयुर्वेदाः चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, निमिसंहिता,
कश्यपसंहिता प्रभृतयः ।

३. यत्सर्वायुर्वेदसारभूतमष्टाङ्गहृदयरूपं शुभम्-प्राप्तं ततः जगतः
परं = अत्यन्तं शुभमस्तु ।

इति श्री चरक-भागीरथी-सूर्यचरित-गोलसूत्र-मन्दारमञ्जरी-

टीकाकारक-पण्डित श्री तारादत्तपन्तरचिता-

अष्टाङ्गहृदये भागीरथीसमाप्ता ।

श्रीविश्वेश्वरार्पणम् ।

पारिभाषिकशब्दकोषः

अकल्पः—आतुरः

अकुप्यम्—हेम, रजतञ्च

अक्षिपाकः—नयनरोगभेदः

अखलः—प्राणाचार्यः, खल-
भिन्नः

अगदः—विषहा जायुः

अग्निदोषाः—पाचकशक्ते-
दोषाः मन्दत्वादयः

अङ्गमर्दः—शरीरपीडा (टूटन)
(फूटन) (मरोड) इत्यादिः

अजपदम्—चर्मभेदकं शस्त्रं
शस्त्राध्याये द्र०

अजीर्णाशनम्—अजीर्णे पुन-
र्भोजनम्

अतिप्रलापः—अनर्थकवचनम्

अतिप्रवृत्तिः—पुरीषादीना-
मतिनिःसरणम्

अतिबला—बलाच्चतुष्टयेऽन्य-
तमः क्षुपः

अतिसंसर्गः—पञ्चकर्मणा-
मतिरेकः

अतिसारः—अतिसरणम्
(दरत)

अतिसारी—अतिसाराऽऽ-
तुरः, अतिसारकी

अतिस्निग्धः—स्नेहन-
कर्मणाऽतिचिक्कणः

अधिपः—मस्तकस्थं मर्म, शा०
मर्मविभागे द्र०

अधिष्ठानम्—आधारः

अध्यस्थिः—कौकसोपरिगतः
शोफः

अनुनादः—अनुरणनम् =
स्पष्टः शब्दः

अनुलोमः—अनुकूलः

अनुलोमनम्—वातादीनामा-
नुकूल्यम्, वाताद्यनुकूलता-
करो जायुश्च

अमुवासनम्- पायुद्वारेण दीयमान-
अनुवासन- स्नेहपिचुः
वस्ति:- (पिचकारी)
अनुवासित:- इतस्नेहवस्तिः
(पिचुः)

अनूपः—जलप्रायप्रदेशः,
तद्वासिनो जन्तवश्च
अन्नम्—पुरीतत् (आंतर)
अन्नवृद्धिः—
मुष्कवृद्धिः (पृ० ३३१ द्र०)
अन्येषाम्—अहोरात्रस्य
मध्ये सकृत्समागन्ता
विषमज्वरभेदः (पृ० २८१)

अन्वर्थकः—यौगिकः शब्दः
पाचकः, 'पक्ता' इत्यादिः
अपक्वः—आमः = पाकमप्राप्तः
अपतन्त्रकः—वातव्याधिभेदः
(पृ० ३५३)

अपस्तम्भः { अन्तर्हृदयस्थे
सिरामर्मणी
अपलापा- { (पृ० २३६)

अप्रतिकार्यः-प्रतिकर्तुम्-
शक्यः, असाध्यः
अब्धातुः-देहस्थो जलांशः,
आप्योधातुश्च, लसीकादिः
अभयम्-नलदं = सेव्यम्
(खस)

अभया-अव्यथा-पथ्या-का-
वस्था-हरीतकीति पर्यायाः
अभिघातः-पीडा, आकस्मि-
को घातश्च
अभिचारः-मारणोच्चाटना-
दिकम्-अथर्ववेदोक्तं कर्म
अभिषुकः-स्नेहयोनिस्तरः
च० सू० १३

अभिषुक्तम्-पूर्वोक्तस्य फलम्
अभिष्यन्दि-स्रोतस्सु छिन्न-
तारकम्
अभ्यङ्गः-स्नेह (तैलादि)
मर्दनम्

अभ्यन्तरः-अन्तरालस्थः
अम्लपित्तम्-अम्लोद्गारवान्
उदावर्त-वमि-सदृशो रोगः

अम्लविपाकी-अम्लपरिणामवान्
अम्लवेतसम्-सहस्रवेधिक-
 लम् 'सहस्रवेधी चुक्रोम्ल-
 वेतसः' इत्यमरः

अयोगः-पञ्चकर्मणां जायूनाञ्च
 अनुचितो योगः-फलराहित्यम्
अरिष्टम्-कथिताऽऽसवः,
 सूतिकागृहञ्च

अर्दितवायुः-मुखाद्धैवकता-
 ऽऽपादकः शिरःकम्पको वात-
 व्याधिः (पृ. ३५५)

अर्द्धावभेदकः-अर्द्धकपालिका
अर्बुदम्-रक्तविकारजो रोग-
 भेदः उत्तरस्थाने

अर्मरोगः-नेत्ररोगविशेषः
अर्मशेषः-शस्त्रक्रियायाः परि-
 शिष्टम्-अर्म

अर्शः-दुर्नाम-हतनाम-गुदा-
 कुरः एकवचने, अर्शास्ति,
 दुर्नामानि, हतनामानि,
 गुदाकुराः बहु० (बवासीर)

अलावुः-कथिता तुम्बी, द्विधा
 दीर्घा च वर्चुला, नि०,
 मिष्टा, तिक्ता, च
अल्पवीर्यः-हीनसत्वः-
 न्यूनसत्वः

अवगाहः- } द्रवद्रव्यप्र-
 वेशनम्
 (जलावगा-
अवगाहनम्- । हलणमात्र-
 शान्ता)रघु

अवश्यः-वमनाऽनर्हः, गर्भि-
 णीप्रभृतिः
अवलेहः-लेहः, लेहनम् वा-
 साऽवलेहादिः

अवष्टम्भः-पुरीषादीनाम-
 वरोधः
अवष्टम्भकम्-पुरीषादिप्रति-
 रोधकम्

अविदाहि-विदाहाऽकारकम्
अवेध्याः-शस्त्रक्रियाऽनर्हाः
अव्यक्तरसः-विशिष्टाऽरुचिः

अनुद्भूतो रसश्च
अश्मरी-मूत्ररोगः (पथरी)
अष्टीला-जानूपरिस्थमस्थि,
 तत्सदृशो वातरोगश्च

असात्म्यम्—अनुपशयः

(पृ० २७०)

असृग्दरः—प्रदरः स्त्रीरोगः

अस्थिभग्नम्—कीकसभङ्गः

अस्त्रम्—रुधिरम्, आर्तवञ्च

आकुञ्चनम्—सङ्कोचनम्

आग्नेयम्—उष्णत्वप्रधानम्

उत्तरायणदिः कालः विन्ध्या-

दिर्देशः

आटोपः—जठरे गुडगुडाय-

मानः शब्दः

आढकम्—कल्पस्थात्ते अ० ६

पूर्व

आतपसेवनम्—सूर्यस्याऽग्ने-

र्वा धर्मसेवनम्

आध्मानम्—दोषैरामाशया-

टोपः

आनाहः—बद्धमलता

आनूपः—जलप्रायो देशस्त-

द्वासिनो जन्तवो वा

आप्यम्—जलमयम्

आमः—अपकः = शलाढुः

(आँव) इति च

आमाशयः—नाभेस्तान्तरं ज-

न्तोरामाशय इति स्मृतः,

ऋतुजं फलादि च

आर्तवम्—स्त्रीयां प्रतिमास-

जायमानारजः क्षितिः ऋतु-

जं फलादि च

आवरणम्—प्रच्छादनम्

(पृ० ३६०)

आवर्तः—भ्रूवरूपरिस्थं मर्म

आवर्तकी—दृष्टेश्चापल्यं (विन्दुः

रोगजन्यम्)

आवृतः—आवरेणेन संयुतः;

प्रच्छादितो वा (पृ० ३६०)

आशयः—रुधिराद्याश्रयीभूतः

शरीरस्थकोशः; अवकाशो वा -

आशुकारी—शीघ्रकारी

(पृ० २८४)

आश्रोतनं—नेत्रे द्रवौषधविन्दु-

पूरणम्

आसवः—मद्यभेदः

आसुतः—कृताभिषवः

आस्थापनः—मलहरणार्थं

क्रियमाणो बस्तिः निरुहबस्तिः

आस्यपाकः-मुखरोगः

आस्रावः-नेत्रस्रावः

इङ्गुदी-तापसतरुः

इत्कटः-तृणभेदः तृणपञ्च-
मूलेषु

इन्द्रवस्तिः-जानोरधस्थं मर्म
(पिण्डी)

इन्द्रवारुणी-लता फलञ्च
(इन्द्राणी)

उत्कारिका-पिष्टविकारः
(रोटी)

उत्क्लेशः-वमनाऽवभासः
(उकाई)

उत्क्षेपः-कर्णनेत्रयोर्मध्यस्थं
मर्म

उत्तानम्-अगम्भीरम् =
ऊर्द्धाऽस्यत्वञ्च

उत्सर्गः-बहिर्निःसारणम्

उत्सादनम्-व्रणरोइपणम्

उदकमेहः-कफप्रमेहेषु प्रथमो
भेदः

उद्वेकः-कोपः = वृद्धिः

उद्वर्तनम्-(उवटन)

उद्वेगः-(धक्काहट)

उन्दुकः-मलाशयः

उपचारः-सेवा

उपदंशः-गुह्यरोगः (पृ. ७९१)

उपानहम्-स्वेदविभेदः
(पृ० ११८)

उष्णवीर्यम्-शुठीप्रभृतिः
(पृ० ७२)

उन्मादः-मानसरोगः
(पागलपना)

ऊर्ध्वजनुगतः-शालाक्य- स
तन्त्रविषयः

ऊर्ध्वावातः-वातस्योर्ध्वप्रवृत्तिः

ऋक्षः-मृगजातिभेदः भल्लूकश्च

ऋद्धिः- } वृष्यो वृणजातिः
} कन्दः

ऋषभकः } रसोनकन्दवत्

एककुष्ठम्-कुष्ठविशेषः
(पृ. ३४६)

एलवालुकम्-सुगंधिद्रव्यभेदः

एषणी-नाडीव्रणगत्यन्वेषणार्थं
शस्त्रभेदः

ऐन्द्री-स्थूलैला ओषधिविशे-
षश्च

ओजः—सप्तधातुसारः, अष्टमो

धातुः

औपसर्गिकः—सञ्चारी रोग

उपद्रवश्च

औदकाः—जलचराः

औद्भिदम्—क्षारलवणम्,

भूरुहाश्च

कक्षादाहः—कक्षास्थः सदाहः

शोथः (कखवरी) (कखौरी)

कच्छुः—त्वग्रोगः (खाज)

कणभः—विषी कीटविशेषः

(पृ. ८२४)

कण्डरा—शारीरे स्था० द्र०

कर्णनादः—कर्णशब्दः

कर्णपीठम्—कर्णपाली

कर्णपूरणम्—कर्णे तैलादीनां

प्रयोगः

कर्णस्रोतः—कर्णविवरम्

कर्णिका—व्रणजः शोथः

कर्षुदारः—(रक्तकचनार)

कर्शनं—लङ्घनादि

कललम्—यकरात्रोषितं

शुक्रशोणितम्

कला—शरीरगता धातूनामा-

धरभूता त्वक्

कलकः—पिष्टमौषधं द्रवम्

कल्पः—प्रकारः काथचूर्णादिः

कल्प्यः—प्रत्यूषो रोगरहितश्च

कवलः—सञ्चार्यो मुखपूरणः

काचः—नेत्रविकारः

कामला—विकृतः पाण्डुरोगः

कासः—(खांसी)

किक्विसानि—उरुस्तनोदरे

प्रसूतिजन्या वलिविभेदाः

किटिभम्—वातकफोद्भवः

क्षुद्रकुष्ठरोगविशेषः (पृ. ३४६)

कुट्टम्—गोर्दं किट्टम्मलोऽस्त्रि-

याम्

किलाटः—तक्रविकारः

किलासः—क्षुद्रकुष्ठविशेषः

कुटीप्रावेशिकः—मुख्ये रसा-

यनसेवनप्रकारः

कुडवः—प्रकुञ्चचतुष्टयम्

(पावभर)

कुष्ठतैलम्—कुष्ठादिद्रव्यैः

साधितं तैलम्

कूर्चा-करपादतलस्था मांस-
रज्जुग्रन्थिः; कण्ठशिश्नयो-
र्मध्यगः मांसपिण्डाकाराव-
यवश्च

कूर्चिका-कूर्चिका क्षीरविकृतिः
कृच्छ्रसाध्यः-दुःखेन चिकित्स्यः
कृत्या-अभिचारजा देवयोनिः
पिशाचादिः

केम्बुकम्-शकभेदः

कोद्रू-क्षुद्रधान्यम्

कोविदारः-शुक्काञ्चनारः
(कचनार)

कोष्ठं-सुगन्धिद्रव्यभेदः
('चोख' इति लोके)

कोष्ठाङ्गानि-अन्तरङ्गानि

क्रूरः-क्रूरकोष्ठः, मृदकोष्ठ-इति
व्यवहारो वैद्यके

क्लेदशक्तिः-आर्द्रिभाव-
शक्तिः, क्लिदू-आर्द्रिभावे

क्लेदांशः-आर्द्रतांशः

क्लोम-तिलकम् = उदर्यजला-
धारः

क्वाथः-तृतीयः कषायः

क्षारसूत्रम्-क्षारदिग्धं सूत्रम्
क्षीरकाकोली-(सकाकुल)
क्षीरिवृक्षः-दुग्धवोस्तरः,
वटादिः

क्षुद्रोधः-बुभुक्षाप्रवृत्तिः
खमीरम्-अम्लीभूत-धान्य-
काथफेनः

खजः-मन्थनसाधनम्
सू० अ० २५

खरपाकः-तीव्रपाकः
गणाङ्गं-सामाजिकं धनम्
गरपीडितः-संयोगजं विषं
गरस्तेन पीडितः

गर्भस्त्रावः-पञ्चममासत्पूर्वं
गर्भस्रुतिः

गलग्रहः-गलरोधः
गाढः-दृढबन्धः

गात्रभेदः-अवयवपीडा
गात्रसादः-हस्तपादादीनां
शून्यत्वप्रतीतिः

गुरु-गुरुत्वविशिष्टः (भारी)
गुरुफौ-पादघुटिके

गोफणाबन्धः—बन्धविशेषः

सू० अ० २५-२६

ग्रहणी—संग्रहणी=प्रवाहिका ।

ग्रहाः—बालग्रहाः; स्कन्दादयः

ग्राहकः—बद्धमलताकरः

चन्द्रिका—(चमचमायित्वम्)

चर्मदलम्—क्षुद्रकुष्ठभेदः

चिकित्सा—रूपप्रतिक्रिया

चिरकारी—विलम्बकारी

चुक्रम्—अम्लरसं शुक्तम् (चूक)

जङ्गमः—प्राणी, प्राणिजन्यो

वा तैलविषादिः

जतुमणिः—सहजा लोहिता,

चर्मकीलाऽऽकारा मांसग्रंथिः

(पृ. ७९६)

जशु—सन्धीतस्यैव जशुणी,

स्कन्धमुजयोः सन्धिः

जाङ्गलः—प्रवातप्रचुरातपः

स्वरूपतरुदेशः

जीवकम्—अष्टवर्गोक्तम्

जीवजीवकः—चकोरः खगा-

न्तरश्च

जीवनम्—

जीवनीयम्—

जीवन्ती—शाकोत्तमा (पृ. ४७)

डिम्बः—पकाशयादधोगत-

प्रदेशः

तन्द्रा—निन्द्राभासः

तर्पणम्—सू० स्था० २४ द्र०

तिक्तः—यथा निम्बरसः

तिर्यक्—यथा पक्षिणां गतिः ।

तीक्ष्णमूलविरेचनम्—दन्ती-

द्रवन्तीत्यादि

तुल्यसेवनी—सेवनीभेदः सूची

त्रिकम्—पृष्ठवंशाधोभागः

त्रिवृत्तम्—त्रिवृता (निसोत)

त्रिवृद्घृतम्—

त्रैवृत्तघृतम्—

ददुः—त्वग्रोगभेदः

दन्ती—जयपालः तीक्ष्णारेचकः

दारणम्—शङ्खक्षारादिभिः

पिटिकादीनां भेदः

दीपकम्—बुभुक्षावर्द्धकं

शतपुष्पादि

दीपनम् } पाचनशक्ति-
दीपनीयम् } वर्द्धकं कर्म-
औषधश्च

दुष्टव्रणः-वातादिदूषितो व्रणः-
शुद्धिहीनः

दूषिकम्-वदनस्थं कृष्णलक्ष्म

दूष्याः-दौषैर्विकार्या रसादयो
धातवो मलाश्च

दोषलम्-दोषान् वातादीन्
लाति—आदत्ते आतोऽनुप-
सर्गे कः, दोषा सन्त्यास्मिन्
स्वनिष्ठजनकतानिरूपितज-
न्यतासम्बन्धेनेति सिध्मा-
दित्वालच्, दोष-विकृति-
कारकम्

दोहदजन्यम्-दौहदम्-सुद-
क्षिणा दौर्हदलक्षणं दधौ-
इति रघुः

द्रवः-स्यन्दनवान् तैलजलादि

द्रवन्ती-परण्डतरुः

द्रोणः-षोडशप्रस्थ-ऽऽपरिमितम्

द्वन्द्वजः-द्विदोषजः

द्विकम्-युग्मम्

नस्यम्-नावन-मर्श-प्रतिम-
शादिभेदैर्नासया 'पञ्चधा'
वायुसेवनम् ।

नागसर्पपः-सर्पपभेदः

नाडीस्वेदः-नलिकया वाष्प-
सेवनम्

नाभसं-नभसः आकाशस्ये-
दम् ना०

नाभिः-आमाशय-पक्वाशय-
योर्मध्यम् । कस्तूरिकामदश्च

निदानम्-नितरान्दीयते =
उत्पाद्यते कार्यमनेनेति—
निदानम् = आदिकारणम्
यथा ज्वरे दधि-त्रपुसम् तस्य
विवेचकमायुर्वेदाङ्गश्च

निजः-वातादिकारणजन्यः

निरामः-आमरहितः

निरूढः-योजितनिरूढबस्तिः

निरूहणम्-निरूढबस्ति-

प्रयोगः

निरूहबस्तिः-कषायपिचुः

(पिचकारी)

निर्यासः-पादपद्रवः-हिङ्गु-
गुग्गुलु-पिच्छा-श्रीवेष्टादि-
पदार्थाः

निःशूकं-तुषहीनम्
नैगमेषः-बालग्रहभेदः

पञ्चसारः-मधु-शर्करा-मृद्रीका-
खर्जूर-परूपकानां प्रपानक-
भेदः (सरबत)

पणवः-चर्मवाद्यभेदः

परिपाकः-पक्ताऽवस्थाप्राप्तिः

परिषेकः-
परिषेचनम्-

काथादिभिः;
द्रवपदार्थै-
मूर्ध्नि शरीरे
वा सेचनम्

परिस्रावः-पिच्छिल-स्रावः

पलम्-प्रकञ्चः ऽ-

पाकः-पिटकादिषु पूयोत्पत्तिः;
परिपक्वता च

पाचनम्-पाककृतिः पक्वता
कारको जायुश्च

पाञ्चभौतिकम्-भूमिजल-
तेजोऽनिलगगनस्वरूपम्

पाटनम्-विदारणं भेदनं
छेदनं वा

पादचतुष्टयम्-चिकित्सायाः

चत्वारः (भिषक्-रोगी-
औषधं-सेवकश्च) पादाः

पानकम्-पेयभेदः (पन्ना) इति
पानात्ययः-मधातिपानं

तदुद्भूतो वा मदात्ययनामा
रोगः

पामा-विचर्चिका चर्मरोगभेदः

पार्थिवम्-भौमम्

पार्श्वसन्धिः-कटिपार्श्वस्थमर्म

पिचुकम्-(साङ्गरुण्ड) इति
प्रसिद्धम्

पिच्छा-शाल्मली वेष्टादिः

(गौद) वदनाद स्रवत्स-
कफः स्रावो वा

पिच्छावस्तिः-पिच्छिलौष-

धेन दीयमानो वास्तः,
तदौषधञ्च

पिण्डस्वेदः-स्वेदविशेषः

पिच्छिलम्-विजिलम्-उपो-
दिकादि

पिटिका-मेहादिविकारजन्या

शराविकादिका (पृ० ३२५)]

पित्तलम्—पित्तप्रकोपकम्
पिष्टकम्—अर्मरोग भेदः (नेत्रो-
 परि वृद्धं मांसम्)
पीडनम्—पूयादिनिःसारक-
 मौषधम्
पीलुः—गुडफलः (विन्ध्यऽस्ति)
पुटपाकः—पुटपिहित-औषध-
 पाचनम्
पुंसवनम्—पुरुषसन्तानजन-
 को विधिरौषधं च
पूतिशुकम्—दूषितं रेतः
 (शुक्रदोषः)
पेशी—मांस पिण्डी, मांसी च
पोथकी—पक्ष्मस्था सिताः
 पिटिकाः
प्रकुञ्जः—पलम्
प्रच्छानम्—पूयरुधिरनिःसार-
 णाय शृङ्गयोजनम्
प्रतिलोमम्—प्रतिकूलम्
प्रतिलोमनम्—प्रतिकूलता-
 पादनम्
प्रतिश्यायः—नासारोगः
 पीनसः

प्रतिवापः—लेहादिषु चूर्णप्रक्षेपः
प्रतिसारणम्—रसनादिकेषु
 शुष्काद्रौषधयोर्लेपः धर्षणं
 वा (पृ० १४८)
प्रदरः—तन्नामकः प्रसिद्धः
 स्त्रीरोगः प्रतूनी (पृ० ३३४)
प्रधमनम्—नस्यविशेषः (चूर्ण-
 स्य नलिकादिद्वारा नासायां
 प्रापणम्)
प्रमाथि—दोषपूर्णस्रोतस्सु
 प्रविश्य दोषाणां द्रवीकरणेन
 स्रोतोमुखोद्घाटनकारक-
 मौषधम्
प्रमेहाः—मूत्रवीर्यरोगाः
प्रमेहपिटिकाः—शराविकादयः
प्रलेपकः—पुराणज्वरविशेषः
प्रवाहिणी वली—गुदवलित्र-
 येऽत्यन्तभृता वली
प्रवृत्तिः—मलादीनां बहिर्नि-
 ष्कासनम् उत्सर्गः
प्रसादः—सत्त्वांशः लोष्टप्रसाद
 इत्यादि
प्रसादनं—पुटपाकः (पृ. १५६)

प्रसृतम्-पलद्रव्यम् S=
 प्रसेकः-लपने लालास्रावः
 प्रस्थः-चतुःषष्टि तोलकाः S१
 प्रादेशिकः-एकदेशवर्त्ती
 प्रीणनम्-प्रीतिकरमौषधम्
 ङ्गीहा-(पिलही)
 फणौ-श्रोत्रवर्त्मगे मर्मणी
 (पृ० २३७)
 फलकोशः-मुष्ककोशः
 फलवर्त्तिः-विरेचकौषधदिग्धा
 वर्त्तिः
 फिरङ्गोपदंशः-उपदंशरोगः
 बद्धगुदोदरम्-उदररोगभेदः
 बस्तिः-मूत्राशयः बस्तिर्ना-
 भेरधोद्वयोरित्यमरः
 बस्तिकर्म-पिचुयोजनं
 (पृ० १२९)
 बृहत्यादिगणः-सिंहीव्याघ्रां
 माषमुद्रपर्णीगोक्षुरयुतः
 बृहत्यौ-स्तनमूलार्जवभागस्थे
 सिरे.
 बृहत्त्वम्-स्थूलता
 बृंहणम्-वृद्धिकारकम्,
 पोषकं वा.

बृंहणवस्तिः-पुष्टिकरोवस्तिः
 बृंहणात्मकं-पोषणांशयुक्तम्
 ब्राह्मरसायनम्-पथ्यादिलेहः
 विडिडालकं-(पृ० ६३१)
 भगन्दरम्-गुदासन्नपिटिका-
 जन्यो विलमयोरोगः
 भङ्गातकाबलेहः-रसपाकः
 भेदकम् } मलद्रवकारकम्
 भेदकम् } सारकं च
 भ्रमः-मिथ्याज्ञानम्
 मक्षश्शूलः-प्रसवानन्तरजः
 शूलः (वायगोला) स्त्रीरोगः
 मण्डलम्-त्वग्रोगभेदः
 मण्डूरम्-पुराणलोहकिट्टम्
 मणिबन्धः-प्रकोष्ठमर्म कर-
 भाऽधः प्रदेशः
 मधुरगणः-घृतादिपदार्थाः
 मनोबहस्त्रोतः-मनोवृत्ति
 प्रवर्तिका नाडी.
 मन्थः-घृतोष्णोदकद्रुतसक्तु-
 पानम्
 मन्यास्तम्भः-मन्यायाः ॥

गलपार्श्वसिरायाः, वाता-
दिना ग्रहः.

मषः-त्वचि लक्ष्म 'मसा'
इति लोके.

मसूरिका-सूक्ष्मपिटिका
मस्तु-दध्युपरिस्थं जलम्
महास्रोतः-मुखविवराद् गुद-
विवरान्ता महानलिका

महाकुष्ठम्-कापालादयः
काकणान्ताः सप्त.

महामेदा-(पञ्जे की सालम-
मिश्री) ।

मात्रा-औषधाऽऽदीनां मानम्
मात्रावस्तिः-स्नेहपान मात्रा
सदृशमानः स्नेहवस्तिः
(पृ० १३६)

माषपर्णी-(वनमाष=वनउर्द)
मिथ्यायोगः-व्यर्थो, विपर्ययो

वा योगः (पृ० ४)

मिश्रकघृतं-तैलमिश्रं घृतम्

मूढगर्भः-मृतगर्भः

मूढवायुः-स्तब्धो वातः

मूत्रकृच्छ्रम्-मूत्ररोगः
(पृ० ३२१)

मूत्रशुक्लम्-मूत्रेण सह शुक्लस्य-
स्रवणम्

मूत्रहरीतकी-गोमूत्रस्विन्ना
हरातकी

मूच्छा-विस्मृतिः

मूती-पोट्टली.

मूत्रजठरम्-मूत्ररोगभेदः
(पृ० ३२०)

मूत्रजबृद्धिः- } निदाने
मूत्राघातः- } अ० ९

मूर्धतैलं-अभ्यङ्ग परिषेक-
पिचु वस्तिभिः मूर्ध्नि तल-
धारणम्

मूर्धविरेचनम्-कट्फलादि
चूर्णनस्येन मस्तकदोष-
शोधनम्

मेदः-वपा

मेदस्करम्-मेदोजनकम्.

मेदस्वी-मेदोयुतः

मेदा-बृंहणं हरिद्रासदृशचूर्ण
मूलम् (सालममिश्री).

मेदुरमांसम्-बहुस्निग्धं मांसम्

मेदोर्बुद्धम्-मेदोविकृतिज-
न्यो रोगभेदः

मेदोर्वृद्धिः—वपावृद्धिः
मेधा—धारणावतीवृद्धिः
मेघं—मेदोवर्द्धकम्
मेध्यं—धारणाशक्तिवर्धकम्
मेहः—प्रमेहः प्रसिद्धः
मोचरसः—शाल्मलीवेषः तस्य
 मुसली च
मोहः—वैचित्यम्
यकृत्—कालखण्डम्
यवागूः—षड्गुणजले तण्डुलैः
 पक्का पेया
यापनम्—कालक्षेपः
यापनवस्तिः—यापनक्रिया-
 शीलो वस्तिः द्वादश विधः
याप्यः—पथ्याहारादिभिः
 स्वास्थ्यशीलोऽसाध्यरोगः
यूषः—मुद्रादि काथसारः
योगः—नाना जायुसंयोगः
योगवाही—स्वसंयुत-योगो-
 पकारकः
योनिव्यापदः—स्त्रीरोगाः
 विंशतिः

रक्ताक्षः—सरधिरमर्शः
रक्षोघ्नम्—रक्षः पिशाचादि-
 नाशकम् वचासर्षपादि-
 आथर्वणं मन्त्रं वा
रजः—स्त्रीणामर्तवं; आर्तवस्रावः
 चूर्णं धूलिश्च
रसाः—स्वादादिषड्रूपाः
 मांसस्य सारो वा
रसाञ्जनम्—रसगर्भम्—रस-
 वतीतिख्यातम्
रसायनी—शारीरक-धातूनां
 सौष्ठवोत्पादिका ओषधिः
 क्रिया च
राजसः—रजोगुणप्रधानः,
 विषयाक्तो वा
रिष्टम्—भाविमरणचिह्नम्
रोचकम्—रुचिकरम्
रोपणं—व्रणपूर्तिकृतम्
रोमावर्तः—शिरोगतं मर्ममर्मा-
 ध्याये शा० अ० ४
लघुपद्ममूलम्—दृष्ट्यादिवर्गः
लङ्घित—कृतोपवासः

लट्वा-पक्षिविभेदः क्षुद्रः पक्षी,
 (कवडा) करजभेदश्च
लाजकक्षा-कक्षसमीपे लाजा-
 सट्टशपिटिका
लीनः-विलयं गतः गुप्तश्च
लूता-मर्कटकः-तन्नुवायकौटः
 (मकडी)
लेखनम्-शोधादीनां धर्षणेन
 द्रवीकरणम्
लोहितम्-वामजं धामूलगं मर्म
वटकः-द्वौ शाणौ बटकः
वटादिगणः-न्यग्रोधादिवर्गः
वयःस्थापनम्-युवत्वस्थाप-
 कम् , आयुर्वृद्धिकरं वा
वर्मरोगाः-नेत्रपक्ष्मगता रोगाः
वध्मरोगाः-अन्त्रवृद्धिजाता
 मुष्कवृद्ध्यादयः
वर्मिमुखः-वर्मि-मीनवदन-
 तुल्यः-सन्दशः (चिमटा)
वली-काश्यवाधैक्यादि-
 जास्त्वग्रेखाः
वाजीकरणम्-बलशुक्रवर्द्धक-
 मौषधम्

वाढ्यमण्डः } भृष्टयव-
वाढ्यमन्थः } पिष्टमण्डः
वातरक्तम्-वातशोणितम्
वातातपिकः-रसायनसेव-
 नस्य गौणोः विधिः सूर्य-
 मारुतिकः
वातानुलोमनं-वातस्य अनु-
 कूलताकरम् (औषधम्)
वाताभितापः-वातजो शिरः-
 शूलः
वाताष्टीला-उदरे ग्रन्थि-
 विशेषजनको वातरोगः
वातोत्तरः-वातोल्बणः
वान्तः-कृतवमनः
वामकम्-वमनकारकम्
वायव्यम्-वायुजनकं
 तत्सम्बन्धि वा
वारुणी-श्वेतमदिरा
वासाघृतम्-अटरुषसाधितं
 घृतम्
विकलः-दुर्बलः

विकाषि (शि) शिथिलान्
सन्धि-
विकाषिता बन्धास्तु,
यत्करोति
विकाशि
तत्

विचर्चिका-चर्मरोगः, क्षुद्रकु०
(पैण) पामा

वेपथुः-कम्पः पवनजः

विदारिका-कक्षा स्कन्ध-
सन्ध्यादिजा ग्रन्थिः कन्द-
विशेषश्च

विदाहः-विपाकः, तापश्च

विदाहि-कण्ठादितापकरम्

विद्रधिः-प्रमेहस्य प्राधानोप-
द्रवः

विद्रतम्-विशेषेण विलीनं

विधुरे-कर्णपृष्ठयोरधोभागे नते
मर्मणी

विपादिका- } पादस्फोटः
विपादी-

विबन्धः-मलप्रतिरोधः

विमार्गगामी-उत्पथगः

विम्लापनम्-ग्रन्थ्यादीनां
कोमलीकरणम्

विरिक्तः-कृतविरेचनः

विरेचनम्-रेचकयोजनम्

विलेपी-विरलद्रवः पेयांभेदः

विशदः-पिच्छिलविपरीतः

विषमाग्निः-कदाचित् पचन-
कारी कदाचिदपचनकार्यग्निः

विषमाग्नम्-हित-देशकाल-
मात्रा विपरीत-आहारः

विषमूषिका-विषहा वनस्प-
तिभेदः (बकाणानिम्ब)
(बकायन)

विषूचिका-अजीर्णजा
महामारी, (हैजा)

विष्टब्धम्-अवष्टम्भविशिष्ट-
मजीर्णम्

विसर्गकालः-वर्षा-शरद्-
शीतमयः कालः यस्मिन्सूर्यः
जीव-वनस्पतिषु बलं
ददाति

विसर्पः-विसृत्वरो रक्तरोगः

विस्फोटः—चर्मविकारविशेषः

पिटकः

वीर्यम्—द्रव्यस्थं शीतोष्णादि

कारणं तत्त्वं शुक्रं, शक्तिश्च

वृक्षौ—प्रस्त्रावपिण्डौ वृषणौ च

वृद्धिः—अन्त्रवृद्धिजन्या

अण्डवृद्धिप्रभृ०

वृषणः—अण्डः मुष्कः

वृष्यम्—बलं शुक्रवर्धकम्

वेगावरोधः—प्रवृत्तानां मल-

मूत्रादीनां वेगनिरोधः

वैकल्यम्—विकलता

वैकृतम्—विकृतिजन्यं-अनिष्ट

सूचकञ्च

व्यङ्गम्—मुखोपरिगतं कृष्णं

वर्णं लक्ष्म (वांग)

व्यधः—सिरादीनां शस्त्रेण वेधः

व्यावधि—शरीरं व्याप्य पुनः

पचनं शीलभौषधम्

व्योषादिविरचनं—कल्पस्था-

नोक्तास्त्रिकटुयुता त्रिवृता-

गुटिकाः

व्रणरोपकम्—व्रणपूरणकृत्

व्रणशुक्रम्—व्रणसहितं

शुक्रम्, क्षतरूपमक्षिस्थं शुद्धं

शकृत्—पुरीषम्

शङ्खः—कर्णनेत्रयोर्मध्ये

किञ्चिदुपरिस्थं मर्म

शङ्खनाभिः—शङ्खकारः—

आवर्तः

शङ्खपुष्पी—तृणजातिरोषधिः

शतघृतम्—शतवारं धौतं

घृतम्

शतघ्नी—गलरोगभेदः शस्त्रं च

शमः—दोषाणां शमनं

म्लानताकरं च

शमनम्—दोषाणां समावस्था

प्रापणं तच्छीलं बौषधम्

शरभः—मृगविभेदः

(शरौ) इति

शरावसम्पुटः—शरावद्वयकृतः

पुटः प्र०

शर्करा—विकृत-अश्मरी

गुडवालुका च

शर्करार्ज्वम्—क्षुद्ररोगभेदः

शलाका-मसृणा नेत्रौषधयो-
जिनी वर्त्तिका

शण्यम्-काच-कण्टक-बंश-
क्ष्वेडादिः (कांटा)

शशाङ्ककिरणम्-कर्पूरनाडि-
कानामधेयं पक्वान्नम्

शाखाः-द्वौ वाहू , द्वे जङ्घे
इति शरीरस्य चत्वारो
भागाः

शाण्डाकी-मूलक-सर्षप-
शाक-काथशुक्तः

शाबरम्-(१) } लोभः श्वेतः
शाबरलोभम् }

शारीरम्-शरीररचनाप्रदर्श-
कमायुर्वेद-शास्त्रस्यान्यतः
स्थानम्

शिग्र्वादिनस्पनम्-शोभा-
जनवाजादिजन्यतैलम्

शिरःशूलः-शिरोरोगः ।

शिरोबस्तिः-मस्तके

(चर्मादिभिः) स्नेहधार-
णभेदः

शिरोभितापः-मस्तकपीडा

शिरोविरेचम्-नस्येन शिरः-
शोधनम् ।

शीतवीर्यः-शीतक्रियाकारी
(पृ० ७१)

शीतादः-कृमिभेदः

शुक्तम्-कालान्तरेणाऽम्ल-
त्वाऽऽपन्नं द्रव्यम् (शिरका)

शुक्रम-नेत्ररोगः वा
शुक्रप्रदेशः

शुक्रम-नेत्रस्य भागः

शुक्रलम्-शुक्रवर्धकम्

शुक्राश्मरी-शुक्रस्थगनजा
मूत्रग्रन्थिः

शुष्कार्शः-रुधिरस्रुतिरहि-
तमशः

शूकः-किंशारः, जलजन्तुः
जलमण्डूकतुल्यो विषज-

न्तुर्वा

(१) गालवः शाबरो लोभस्तिरीटस्तिखमार्जनौ, वृक्षवाचिनः
शब्दाः पुंलिङ्गाः वृक्षावयववृक्षविकारवाचिनः क्लोबा इति सर्वत्र बोध्यम् ।

शूकधान्यम्—किंश्

यवशालिगोधूमादिधान्यम्

शूल्यमांसम्—शूलसंस्कृतं

मांसम्

शृङ्गं—प्रधानंशिखरंविषाणं च

शृङ्गाटकम्—मस्तकस्थं नेत्रा-

दिस्रोतसां चतुपथः

शोधः—शोफः (सूजन)

शोधनम्—शरीरस्य पञ्चक-

र्मणां शुद्धिः

श्यामा—कृष्णात्रिवृत् (काली

निसीत)

श्रावणी—औषधिभेदः

श्लीपदम्—पादवल्मीकम्

श्लेष्मा—कफः, बलासः

श्वासः—(दमा)

श्वित्रम्—चर्मनिष्ठं शुक्लं कुष्ठम्

सततः—अहोरात्रे कालद्वयाऽ-

नुवृत्तिकरो विषमज्वरः

सङ्करादिस्वेदः—स्वेदाध्याये

द्र० (पसीना)

सङ्कीर्णाशनम्—पथ्याऽपथ्य-

मिहैकत्रशेयं, समशनं, बुधैः

तदेव संकीर्णाशनम्

संघातः—तालूपरि प्रवृद्धं मांसम्

संज्ञा—संज्ञानं चैतन्यं ज्ञानं,

भानं वा

सद्योव्रणः—आघातजो व्रणः

सन्ततः—विषमज्वरभेदः

संधावः—योगविशेषाः नेत्र-

रोगहराः ।

सन्धिः—शरीरावयवादीनां

कालादीनाञ्च संयोगः

सन्निपातः—वातादीनां सन्नि-

पत्यकोपः

सन्न्यासः—तीव्रो मूर्च्छा-

विशेषः

सग्राप्तिः—वातादिभिः रोगो-

त्पत्तिकारः

सम्यग्योगः—वमनादीनां

सम्यक् परिपाकः

सरलनिर्यासः—श्रीवेष्टः ।

सरलद्रवः (गन्दाविरोजा)

सर्पिर्गुडः—घृतयुतगुटिकाः

सर्षपपिटिकाः—सर्षपमानाः

पिटिकाः गुह्यरोगः

संव्यूहनं—समूहीकरणम्

संशोधनम्—पञ्चकर्मणा शरी-

रशुद्धिः

संसर्गः—दोषद्वयस्य परस्परं

संसर्जनं संयोगः

संसर्गी—पञ्चकर्माऽनन्तरं पेया-

दिपानरूपकोविधि (पृ. १२५)

संसृष्टः—जातसंसर्गः, संसर्गी-

भूतः

संस्कारः—क्रियाभिः पदार्थेषु

णोत्पादनम्

संस्तरस्वेदः—(१)

सहचरतैलं—पीतकुरण्टकादि-

तैलम्

सहजः—पैतृकः, सहैव जा-

सात्म्यम्—प्रकृत्यनुकूलम्

सान्द्रत्वम्—निविडत्वम्

सान्निपातिकः—त्रिदोषजः

सारः—सत्त्वांशः खदिरसारः—

इत्यादि

सिध्मः—किलासः

(शी)सीधु—इक्षुरसजातं, मधु

सीमन्तः—शिरस्था सेवनी

सूतिकारोगः—प्रसूतिरोगः

सुषिरं—लालास्रावी दन्तरोगः

(पृ०)

(१) चरके—त्रयोदशविधः स्वेदः स्वेदाध्याये निरूपितः, सू. १३ अ. ९ अत्र तु—चतुर्विध एव स्वेदः, सू० ७ अतः संस्तरस्वेद-
सङ्करस्वेदयोः—उष्मस्वेदः, पिण्डस्वेदः, इति व्यवहारः ।

विशेष सूचना—चलः = वातः, छगणरसः = गोमयरसः पिला
ख्याः = १८ नेत्ररोगा खल्ली = विश्वाची-गृध्रस्थ
इत्यादयस्तत्र तत्र टिप्पण्यां व्याख्याताः, इति
तत्रैव ग्रन्थे द्रष्टव्या—इति शम् ।

सूक्ष्मम्-सूक्ष्मतरस्रोतस्स्वन्तः
 प्रविश्य स्रोतोबन्धमोचन-
 त्कम्
सूक्ष्मः-विहितौषधिभिः सिंचनं,
 पेकः
सेवनी-सीमन्तः
सौदीरम्-अम्लीकृतो यवैः
 पेयाविभेदः अञ्जनञ्च
 अन्धः-अनघ्नः
सुभ्रम्-स्तब्धता
तभकः-मलमूत्रादीनामव-
 गन्धकः
तंभनं-प्रतिरोधनं प्रतिरो-
 धकञ्च स्वेदनविपरीतं कर्म
स्तैमित्यं-आर्द्राभावप्रतीतिः
 आर्द्रता च
यगिकाबंधः-लिङ्गमुष्काङ्गु-
 ष्ठादौ परितः पट्टबन्धनम्
रूपनी-भ्रूवोर्मध्यस्थं मर्म
सविरं-शैलेयम् ३०२।१३३
सखरं-वृक्ष = लताद्युद्भूतम्
 स्था विषं, तैलम्
सखः-तैलं, सर्पिर्वसा, मज्जा.

स्नेहनं-देहे स्नेहशीलनम्
स्नेहनपुटपाकः-शिरसिजा-
 शुधारण भिभेदः
सुकुमारतैलम्-सुकुमारं
 रसायनम्
स्नेहपाकः-तैलघृतादीनां
 पाकविधानम्
स्नेहपानं-घृतादिपानम्
स्पर्शहानिः-लिङ्गारोगविशेषः
स्त्रावः-रक्तपूयादीनां निःस-
 रणम्
स्रोतः-स्थूलेषु सूक्ष्मेषु च शरी-
 रविवरेषु प्रयुज्यतेऽयं शब्दः
स्वरधनः-गलरोगभेदः
स्वरभ्रंशः-
स्वरभङ्गः- } कण्ठध्वनिरोध
स्वरसः-ओषधेः स्वकीयो रसः
 प्रथमः कषायः
स्विन्नः-कृतस्वेदः
स्वेदः-(पसीना)
हताधिमन्थः-नेत्ररोगभेदः
हनुग्रहः-हनोः अवरोधः

हनुभ्रंशः-हनुसंन्धिशिथिलता
हपुषादिघृतं-(शेरणी)
(हाउबल) (हाडवेर) घृतम्
हिध्मा-हिका (हिचकी)
हिमः-अहोरात्रोषितः शीत-
कषायः
हीनयोगः-मानान्यूनो योगः
हृद्ग्रहः-हृदये स्तब्धत्वम् ।

हृद्घ्रणः-विद्रधिरोगः ।
हृत्तासः-गलातर्विदाहः
हृषीकम्-इन्द्रियम्
हृष्टः-काकविशेषः, तुष्टश्च ।
हेतिः-बह्वेरचिः, आयुधम्,
रविकान्तिश्च
हेतुः-कारणं निदानम्



प्राप्तिस्थानम्—
चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय
पो० बा० नं० ८, बनारस—१

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तक
L.B.S. National Academy of Administration, Lib

मुससूरी

MUSSOORIE

यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।

This book is to be returned on the date last sta

| दिनांक Date | उधारकर्ता की संख्या Borrower's No. | दिनांक Date | उ कं Bo |
|----------------|---------------------------------------------|----------------|---------------|
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |
| | | | |



125507
LBSNAA

15.536
गगन

अवाप्ति सं० ~~14106~~

ACC. No.....

पुस्तक म.

..... Book No

वागन

136

~~14106~~

LIBRARY

BAHADUR SHASTRI

dey of Administration

MUSSOORIE

125507

Issued for 15 days only but
be recalled earlier if urgen-

charge of 25 Paise per day per
e charged.

renewed on request, at the
the Librarian.

are and Reference books may
and may be consulted only

if damaged or injured in any way
be replaced or its double
paid by the borrower.

book fresh, clean & moving